M.A./M.Sc. G.E. - 06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

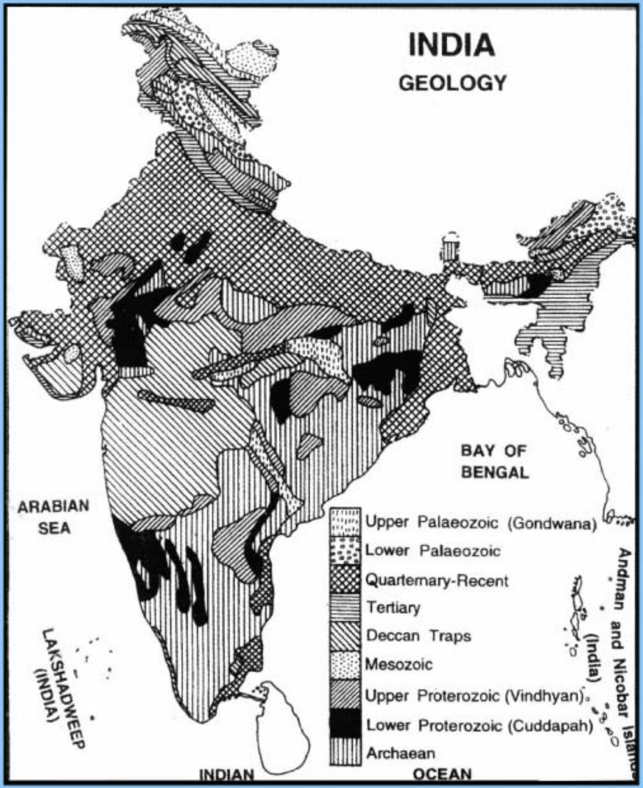

भारत का वृहद् भूगोल

M.A./M.Sc. G.E.-06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भारत का वृहद् भूगोल

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक/समन्वयक

सलाहकार / समन्वयक

प्रोफेसर (डॉ.)एस.सी. कलवार

पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर(राज.)

प्रभारी विज्ञान कार्यक्रम

डॉ. अशोक शर्मा

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

सदस्य

1. **प्रोफेसर एच.एस. शर्मा**
   अधिष्ठाता विज्ञान संकाय
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर(राज.)
2. **प्रोफेसर सन्तोष शुक्ला**
   प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   एच.एस. गौड़ केन्द्रीय विश्वविद्यालय,सागर
   (मध्य प्रदेश)
3. **प्रोफेसर सूर्यकान्त**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   पुंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (पंजाब)
4. **प्रोफेसर (डॉ.) एन.एल. गुप्ता**
   पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   मोहनलाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर(राज.)
5. **प्रोफेसर के.एस. सोहल**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)

सम्पादन तथा पाठ लेखन

सम्पादक

प्रोफसर श्री कमल शर्मा

इमेरिटस फ़ेलो एवं पूर्व,विभागाध्यक्ष,

भूगोल विभाग

एवं निदेशक जनसंख्या शोध केन्द्र

एच.एस.गौड़ केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

लेखक

1. **डॉ. एन.आर. कस्वां**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
   श्रीगंगानगर.(राज.)
2. **डॉ. बी.सी. जाट**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
   नीम का थाना (राज.)
3. **डॉ. एन.के. जेतवाल**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
   बून्दी(राज.)
4. **डॉ. संदीप यादव**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
   बून्दी (राज.)
5. **प्रोफसर रोली कंचन**
   पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
   भूगोल विभाग, विज्ञान संकाय
   एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा,
   वडोदरा,(गुजरात)
6. **डॉ. पी.आर. चौहान**
   भूगोल विभाग
   जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय
   जोधपुर (राज.)
7. **डॉ. मानसिंह**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
   नीम का थाना (राज.)
8. **डॉ. रविन्द्र कुमार**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
   चुरू (राज.)
9. **डॉ. जे.के. जैन**
   पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
   भूगोल विभाग, जयनारायण व्यास
   विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
10. **डॉ. एल.सी. अग्रवाल**
    वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
    राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
    कोटा (राज.)
11. **डॉ. बी.एल. भादू**
    विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
    महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
    बून्दी(राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी, **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

उत्पादन-पुनः मुद्रण : अक्टूबर, 2012 ISBN NO- 13/978-81-8496-172-0

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

भारत का वृहद् भूगोल

इकाई संख्या		इकाई	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	:	भारत: स्थिति, विस्तार, एवं स्थानिक सम्बन्ध	8–22
इकाई - 2 अ		भौमिकी	23–41
इकाई - 2 ब	:	भू-आकृति	42–69
इकाई - 3	:	अफवाह तंत्र एवं जल संसाधन	70–104
इकाई - 4	:	प्रमुख नदी घाटी परियोजनायें एवं जल संसाधनों का संरक्षण	105–127
इकाई - 5	:	जलवायु	128–148
इकाई - 6	:	प्राकृतिक वनस्पति एवं वन्य जीव	149–168
इकाई - 7	:	मिट्टी- वर्गीकरण, समस्याएँ एवं संरक्षण	169–191
इकाई - 8	:	खनिज संसाधन	192–208
इकाई - 9	:	ऊर्जा संसाधन	209–234
इकाई - 10	:	जनसंख्या एवं अधिवास	235–265
इकाई - 11	:	कृषि	266–319
इकाई - 12	:	उद्योग	320–360
इकाई - 13	:	परिवहन एवं संचार तन्त्र एवं व्यापार	361–388
इकाई - 14	:	प्रादेशिक नियोजन	389–412
इकाई - 15	:	भारत के भौगोलिक प्रदेश	413–428
इकाई - 16	:	राजस्थान का प्रादेशिक अध्ययन	429–451
इकाई - 17	:	समसामयिक मुद्दे	452–483
इकाई - 18	:	भारत का राजनीतिक परिदृश्य	484–505

परिचयात्मक

भारत के भूगोल की इस पुस्तक में समसामयिक भौगोलिक-आर्थिक-मानवीय दशाओं के अन्तर्सम्बन्धों तथा इनके बदलते प्रतिरूप को प्रस्तुत किया गया है। स्वतंत्रता के बाद भारत का सामाजिक और आर्थिक विकास बड़ी तेजी से हुआ है। इस विकास का सम्यक विवरण प्रस्तुत करना इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है। विकास के क्षेत्रीय स्वरूप तथा भौगोलिक आधार का घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिए विकास को समझने के लिए भौतिक-स्वरूप रख प्राकृतिक संसाधनों के वितरण का मूल्याकन आवश्यक होता है। विकास के साथ-साथ संसाधनों का दोहन अति तीव्र गति से बढ़ा है। संसाधनों के अति शोषण के फलस्वरूप उनका अवनयन, कमी और प्रदूषण होने लगा है। इस कारण उनके संरक्षण एवं प्रबंधन की आवश्यकता भी बढ़ती जा रही है। इसकी भी चर्चा इस पुस्तक में की गई है।

इस पुस्तक को तैयार करने में भौगोलिक दृष्टिकोण पर जोर रहा है। क्षेत्रीय विभिन्नता की व्याख्या पर सर्वाधिक जोर है। यह विभिन्नता वहाँ उपस्थित विभिन्न तत्वों के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों के कारण उत्पन्न होती है। इस कारण क्षेत्रीय विभिन्नता को स्पष्ट करने के लिए इन सम्बन्धों की विवेचना की गई है। वस्तुओं और घटनाओं के वितरण को समझाना दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है। विभिन्न भागों में मानव और पर्यावरण की विभिन्नता के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागों में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विविधता मिलती है। इस पुस्तक में देश की विविधता को उजागर किया गया है। इस विविधता को स्पष्ट करने के लिए क्षेत्रों की आन्तरिक समानता के आधार पर विभिन्न प्रदेश भी निर्धारित किए गए हैं। देश में विकास के साथ कई तरह की समस्याएं भी जन्म ले रही हैं। उन समस्याओं की भी चर्चा यहाँ की गई है।

इस पुस्तक को यह स्वरूप देने में ग्यारह लेखकों का योगदान है। ये अनुभवी लेखक हैं। देश की भौतिक एवं सापेक्षिक स्थिति की समीक्षा (इकाई 01) तथा जनसंख्यात्मक संभावनाएँ रख समस्याओं की विवेचना (इकाई दस) डॉ. एन. के. जेतवाल ने किया है । डॉ. जे. के. जैन ने भूगर्भिक संरचना (इकाई 2 अ) और संसाधन (इकाई 07) के लेखन का दायित्व बड़ी गंभीरता से निभाया । भौतिक दशा (इकाई 2ब) का वर्णन डॉ. बी.स्ल भादू ने किया है । डॉ. बी. सी. जाट ने इस पुस्तक की छ : इकाइयों (इकाई 03,05,09,11,14एव17) का लेखन कर सबसे गुरुतर भार उठाया है । प्रथम तीन इकाइयाँ क्रमश: अपवाह तथा जल संसाधन, जलवायु एव ऊर्जा संसाधनों की विवेचना पर हैं और बाद की तीन इकाइयाँ कृषि, प्रादेशिक नियोजन तथा समसामयिक समस्याओं की चर्चा पर केन्द्रित हैं । डॉ. पी. आर. चौहान नदी घाटी योजनाओं के अद्यतन स्वरूप (इकाई 04) को प्रस्तुत किया है । वही डॉ. एन. आर. कस्बा ने प्राकृतिक वनस्पति एव वन (इकाई छ :), डॉ. रवीन्द्र कुमार ने देश की खनिज सम्पदा (इकाई आठ), प्रो. रोली कंचन ने बदलते औद्योगिक परिदृश्य (इकाई बारह), डॉ. मान सिंह ने पीरवहन, संचार रख व्यापार (इकाई तेरह) तथा डॉ. संदीप यादव ने देश की राजनैतिक परिदृश्य (इकाई 18) की गहनता से समीक्षा की है । भारत के भौगोलिक प्रदेश (इकाई 15) तथा निर्दिष्ट भौगोलिक

प्रदेशों की गहन विवेचना (इकाई 16) का दायित्व डॉ. एल. सी. अग्रवाल ने निभाया है । लेखकों की सहज स्वीकृति, लेखन की तत्परता और सामयिक विचार-विमर्श श्लाघनीय है ।

पुस्तक लेखन में नवीनतम उपलब्ध आकड़ों का उपयोग किया गया है । ये आकड़े प्रामाणिक स्रोतों से लिए गए हैं । सेंट्रल स्टेटिस्टिकल आर्गनाइजेशन द्वारा प्रकाशित स्टेटिस्टिकल अक्ट्रेक्ट, भारत सरकार के सूचना एव प्रसारण विभाग द्वारा प्रकाशित भारत संदर्भ ग्रन्थ, भारत सरकार के वित्त मंत्रालय द्वारा प्रकाशित आर्थिक सर्वेक्षण तथा भारत की जनगणना की तालिकाएं आदि सूचनाओं के मुख्य स्रोत हैं । विश्लेषण को सुगम और सुग्राहय बनाने के लिए तालिकाओं और मानचित्रों का सहारा लिया गया है ।

इकाई 1 : भारत : स्थिति, विस्तार एवं स्थानिक सम्बन्ध (India: Location, Extent and Spatial Relations)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 भारत का सामान्य परिचय
1.3 स्थिति एवं विस्तार
1.4 आकार एवं आकृति
1.5 सीमाएं
1.6 दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के संदर्भ में भारत
1.7 भारतीय स्थिति की भू–राजनीतिक महत्ता
1.8 विविधता में एकता
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 संदर्भ ग्रन्थ
1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Summary)

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप समझ सकेंगे –

- भारत की स्थिति एवं विस्तार,
- भारत का आकार एवं आकृति,
- भारत की प्राकृतिक एवं कृत्रिम–सीमाएँ,
- दक्षिण एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के संदर्भ में भारत की सापेक्षिक स्थिति,
- भारत की स्थिति का भू–राजनीतिक महत्व,
- भारत में विविधता में एकता।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी देश के भौतिक एवं मानवीय पक्षों का अध्ययन करने से पूर्व उसकी सामान्य जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है, जो उसका भौगोलिक आधार होती है। भारत भौतिक एवं मानवीय विशेषताओं का एक विलक्षण स्थलखण्ड है जो बहुआयामी व्यक्तित्व के कारण विश्व के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। अनेक ऐतिहासिक उतार–चढ़ाव एवं सीमा पार से आयी अनेक जातियों को भारतीय समाज ने आत्मसात किया जिससे अनेक विविधताओं बढ़ती चली गयी। भारत के धरातल, जलवायु, मृदा, वनस्पति, खनिज पदार्थ, जनसंख्या आदि में इतनी विविधता

है कि मानवीय क्रियाकलापों की विभिन्नता एक स्वाभाविक घटना है। भारत के व्यक्तित्व रचना में इसके भौतिक, मानवीय एवं ऐतिहासिक तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत के विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर इसकी स्थिति, आकार, सीमाओं, विविधताओं आदि का भरपूर प्रभाव पड़ा है।

1.2 भारत का सामान्य परिचय

प्रत्येक भूभाग का एक अपना व्यक्तित्व होता है। यह व्यक्तित्व वहाँ उपस्थित तत्वों के अन्र्तसम्बन्धों तथा उस क्षेत्र का अन्य क्षेत्रों से स्थानिक सम्बन्धों का परिणाम होता है। वास्तव में स्थानिक सम्बन्धों का क्षेत्र के उन्नति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। स्थानिक सम्बन्ध उस क्षेत्र की स्थिति पर निर्भर होता है। ये स्थितियां कई तरीके से व्यक्त की जाती हैं, जिनमें ज्यामितीय स्थिति अथवा यथार्थ स्थिति, प्राकृतिक स्थिति और सापेक्षिक स्थिति मुख्य हैं। यथार्थ स्थिति अक्षांश भूमध्यरेखा से दूरी होती है और तापमान, दिन की लम्बाई, मौसम आदि की दशा का बोध कराती है। देशान्तर से समय का बोध होता है। प्राकृतिक स्थिति मौसम के माध्यम से जनजीवन को प्रभावित करती ही है साथ ही पारगम्यता के द्वारा बाहरी क्षेत्रों से सम्पर्क की घनिष्टता भी निश्चित करती है। सापेक्षिक स्थिति देश की नीति, विदेश नीति और विश्व के देशों में सापेक्षिक महत्व के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। क्षेत्र का क्षेत्रफल और जनसंख्या को दृष्टि से आकार, विस्तार और आकृति भी आन्तरिक संभावनाओं और बाहरी सम्बन्धों को प्रभावित करते है। इन्ही तथ्यों के सन्दर्भ में भारत की स्थिति–जन्य विशेषताओं की चर्चा यहाँ की गई है।

1.3 स्थिति एवं विस्तार (Location and Extent)

भारत पूर्णतः उतरी गोलार्द्ध में दक्षिणी एशिया के मध्य में स्थित है। भौगोलिक–दृष्टि से भारत भूमध्य रेखा के उत्तर में $8^0$4' से $37^0$6' उत्तरी अंक्षाश तथा $68^0$7' से $97^0$25' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है (चित्र 1.1)। भारत भूमि से दूर बंगाल की खाड़ी में स्थित केन्द्रशासित प्रदेश अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह $6^0$4' उत्तरी अक्षांश से 14^0 उत्तरी अक्षांश एवं 92^0 पूर्वी देशान्तर से 94^0 पूर्वी के मध्य स्थित है। भारत का दक्षिणतम बिन्दु 'इन्दिरा पॉइन्ट' (ग्रेट निकोबार द्वीप में) तथा भारतीय मुख्य भूमि के दक्षिणी छोर में लगभग 2^0 अक्षांशों का अन्तर है। इसी प्रकार अरब सागर में स्थित लक्षद्वीप समूह 8^0 उत्तरी अक्षांश से $12^0$3' उत्तरी अक्षांश तथा 71^0 से 73^0 पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है। कर्क रेखा देश के मध्य से होकर गुजरती हे। $82^0$30' पूर्वी देशान्तर मध्य भारत में इलाहाबाद के निकट से होकर गुजरती है जिसको देश के प्रामाणिक समय का आधार माना गया है। भारत का प्रामाणिक समय ग्रीनविच माध्य समय (GMT) से 5 घण्टा 30 मिनट आगे है। दक्षिणी एशिया में भारत की विशिष्ट प्रायद्वीपीय स्थिति सामरिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। प्रायर्द्वाप के पूर्व में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर और दक्षिण में हिन्द महासागर स्थित हैं। अंतरस्तर्य व्यापारिक जलमार्गों पर स्थित होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क की उत्तम सुविधा प्राप्त है। हिन्द महासागर के अनेक द्वीपों पर विश्व की महान शक्तियों के नियंत्रण की स्पर्धा के कारण हिन्द महासागर का अत्यधिक सामरिक महत्व रहा है। वायुमार्गो की दृष्टि से भारत की स्थिति विशेष महत्व की है। यहां पश्चिमी देशों से

सुदूर पूर्व की ओर जाने वाले वायुयान ईंधन एवं यात्री लेते है तथा आपातकालीन मरम्मत भी करायी जाती है। ऐसी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण प्राचीनकाल से ही भारत का संपर्क तत्कालीन संपूर्ण सभ्य विश्व से था। स्थलीय व जलीय स्थिति के कारण आज भी भारत की स्थिति दक्षिणी एशिया में सबसे महत्वपूर्ण है।

नामकरण

'भारत' नाम का मूल इस देश की सांस्कृतिक और इतिहास में है।उस प्राचीन शासक का नाम भरत था जिसने देश की आधारभूत एकता की कल्पना की थी। भारतीय धर्म–ग्रंथों में उनका उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद मे उसे शक्तिशाली आर्य जाति का नेता कहा गया है। ऐतर्य ब्राह्मण में इस के राज्याभिषेक ,राष्ट्रविजय और अश्वमेघ यज्ञ का उल्लेख है। भागवत पुराण में उसे सम्राट कहा गया है जिसने गैर–आर्य लोगों के आर्यकरण की प्रक्रिया की गति को तेज किया था (आर.एल. सिह 1994, पृ,1)। विष्णु पुराण में (हिन्द) महासागर से उत्तर और हिमालय के दक्षिण के भूभाग को 'भारत' कहा है तथा यहाँ के निवासियों को भारती। एक परम्परा यह भी है कि दुश्यन्त पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा।

भारत का तुल्य अंग्रेजी शब्द इण्डिया (India) की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'इण्डोइ' (Indio) से हुआ है, जिसका अर्थ इण्डोस (Indos) के पास का क्षेत्र है। 'इण्डोस' को लैटिन में 'इण्डस' (Indus)–कहा जाता है। रोमन लोगों ने सिन्धु नदी को 'इण्डस' और उससे पार के क्षेत्र को 'इण्डिया कहा। परसियन भाषा में 'स' का उच्चारण 'ह' किया जाता है। इसलिए इन लोगों ने सिन्धु को 'हिन्दु' और इससे पूर्व स्थित भूभाग को हिन्दुस्तान कहा।

1.4 आकार एवं आकृति (Size and Shape)

15 अगस्त सन् 1947 को बने भारतीय गणतंत्र का क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है। यह

चित्र-1.1: भारत-राज्य एवं केन्द्र शासित क्षेत्र

विश्व के कुल सतही क्षेत्रफल का 2.34 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व में सातवां (रूस, चीन, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील और आस्ट्रेलिया के बाद) बड़ा देश है। यह रूस रहित यूरोप महाद्वीप के बराबर है। यह कनाडा का 1/3 तथा रूस का 1/5 भाग है। इसकी विशालता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि क्षेत्रफल में यह पाकिस्तान से चार गुना, जर्मनी से 9 गुना, नेपाल से 22 गुना और बंगलादेश से तेईस गुना बड़ा है।

इसका आकार एक अनियमित चतुर्भुज का है। देश के मध्य से गुजरने वाली कर्क रेखा को उभयनिष्ठ आधार मानकर दो त्रिभुज बनाए जा सकते है जिनमें से एक का शीर्ष सियाचिन और दूसरे का कन्याकुमारी हो। इन त्रिभुजों की भुजाओं से चतुर्भुज का आकार बनता है। इसकी उतर–दक्षिण लम्बाई 3,214 किलोमीटर और पूर्व–पश्चिम चौड़ाई 2,938 किलोमीटर है। मुख्य भूमि का उत्तरी छोर जम्मू–कश्मीर और दक्षिणी छोर तमिलनाडु राज्य (कन्याकुमारी) है। मुख्य भूखण्ड से बाहर बंगाल की खाड़ी मे अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह और दक्षिणी अरब सागर में लक्षद्वीप द्वीपसमूह स्थित हैं।

क्षेत्रफल की तुलना में जनसंख्या का आकार काफी बड़ा है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या 102.7 करोड़ है –जो विश्व की कुल जनसंख्या का 16.7 प्रतिशत है। जनसंख्या के आकार की दृष्टि से भारत विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। इसकी जनसंख्या संयुक्त राज्य अमेरिका की 4 गुनी, रूस की 7 गुनी और आस्ट्रेलिया की 53 गुनी है। इसका परिणाम विश्व के बड़े देशों की तुलना में भारत में भूमि पर जनसंख्या का दबाव बहुत अधिक है।

बोध प्रश्न – 1

1. भारत वर्ष का उल्लेख किस पुराण में मिलता है?
   – – ––– –––– –––– –– – –– – – ––– – – ––– – – –– – – ––
   –– – – – –– – –– –– – –– – – –– – – –– – – – – –– – –– – –
2. इस देश का नाम भारतवर्ष कैसे पड़ा?
   – – ––– –––– –––– –– – –– – – ––– – – ––– – – –– – – –
   ––– – – – –– – –– –– – –– – – –– – – –– – – – – –– – –– –
3. भारत को इण्डिया किस आधार पर कहा गया?
   – – ––– –––– –––– –– – –– – – ––– – – ––– – – –– – – ––
   –– – – – –– – –– –– – –– – – –– – – –– – – – – –– – –– – –
4. भारत की भोगोलिक स्थिति बताइये?
   – – ––– –––– –––– –– – –– – – ––– – – ––– – – –– – – ––
   –– – – – –– – –– –– – –– – – –– – – –– – – – – –– – –– – –
5. 'इन्दिरा पॉइन्ट' कहाँ स्थित है?
   – – ––– –––– –––– –– – –– – – ––– – – ––– – – –– – – ––
   –– – – – –– – –– –– – –– – – –– – – –– – – – – –– – –– – –
6. $82^0 30$ पूर्वी देशान्तर का क्या महत्व है?

_ _ ___ ____ ____ __ _ __ _ _ ___ _ _ ___ _ _ __ _ _ __

__ _ _ _ __ _ __ __ _ __ _ _ __ _ _ __ _ _ _ _ __ _ __ _ _

7. ग्रीनविच समय व भारतीय समय में कितना अन्तर है?

_ _ ___ ____ ____ __ _ __ _ _ ___ _ _ ___ _ _ __ _ _ __

__ _ _ _ __ _ __ __ _ __ _ _ __ _ _ __ _ _ _ _ __ _ __ _ _

8. भारत का क्षेत्रफल कितना है तथा विश्व में कौन सा स्थान है?

_ _ ___ ____ ____ __ _ __ _ _ ___ _ _ ___ _ _ __ _ _ __

__ _ _ _ __ _ __ __ _ __ _ _ __ _ _ __ _ _ _ _ __ _ __ _ _

9. भारत की आकृति कैसी है?

_ _ ___ ____ ____ __ _ __ _ _ ___ _ _ ___ _ _ __ _ _ __

__ _ _ _ __ _ __ __ _ __ _ _ __ _ _ __ _ _ _ _ __ _ __ _ _

10. जनसंख्या मे भारत विश्व में किस स्थान पर है?

_ _ ___ ____ ____ __ _ __ _ _ ___ _ _ ___ _ _ __ _ _ __

__ _ _ _ __ _ __ __ _ __ _ _ __ _ _ __ _ _ _ _ __ _ __ _ _

1.5 सीमाएँ (Boundaries)

भारत के समेकित स्वरूप का आधार मुख्यत: भौगोलिक है। देश की सीमाओं पर भौगोलिक प्रधानता स्पष्ट नजर आती है। किसी देश की सीमाएँ प्राकृतिक बनावट, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों. उनके इतिहास, लोकाचार, रिवाज, परम्परा एवं प्रकृति से निर्धारित होती है। प्राकृतिक सीमाएँ अधिक स्थायी होती है जबकि कृत्रिम सीमाएँ परिस्थितियों, सन्धियों, युद्धों आदि सें बनती और बिगड़ती रहती हैं। महासागर, पर्वत श्रेणियाँ, मरूस्थल, नदियाँ, दलदल आदि दो देशों के बीच प्राकृतिक व सुनिश्चित सीमाएँ बनाती हैं। पर्वत श्रेणियों एवं जल विभाजकों का प्राकृतिक सीमा में सबसे अधिक महत्व होता है। अन्त राष्ट्रीय कानून के अनुसार यदि किसी देश की सीमा सुनिश्चित और अपीरवर्तनर्शाल प्राकृतिक स्वरूप के सहारे फैली है तथा परम्पराओं व लोकाचारी प्रथाओं पर आधारित है, तो उसको पुन: निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं होती। इस दृष्टि से भारत की उत्तरी सीमा अर्द्धचक्राकार रूप में अफगानिस्तान, चीन, भारत के त्रिसंगम स्थल से प्रारम्भ होकर पूर्वी की ओर चीन तथा म्यांमार तक; पश्चिम में पाकिस्तान से आरम्भ होकर दक्षिणपूर्व में बंगलादेश तक विस्तृत है। संसार में इस सीमा रेखा की, बडी सीमाओं में गणना की जाती है।

भारत की सीमाओं को दो वर्गों में रखा गया है – 1. प्राकृतिक सीमाएँ तथा 2. कृत्रिम सीमाएं

1.5.1 प्राकृतिक सीमाएँ (Natural Boundries)

भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत श्रेणी, सुदूर पूर्व में अराकानयोमा श्रेणी, दक्षिण पश्चिम में अरब सागर, दक्षिण पूर्व में बंगाल की खाड़ी और धुर दक्षिण में हिन्द महासागर इसकी प्राकृतिक सीमाएँ बनाते हैं। विशाल हिमालय पर्वत श्रेणी रूस, चीन एवं मध्य एशिया के अन्य देशों से इसे पृथक करती है। उत्तर की ओर जोजिला, जाराला, वार्डिग ला, इमिस–ला, कराकोरम आदि दर्रे हैं परन्तु

अत्यधिक ऊँचाई के कारण हमेशा हिम से आवृत रहते हैं। इसलिए भारत व इन देशों के बीच स्थलीय व्यापार नगण्य सा है। उत्तर–पश्चिमी भाग में (पाकिस्तान में) अनेक नीचे दर्रे जैसे खैबर, गोमल, बोलन, टोची, कुर्रम आदि स्थित हैं जिनसे होकर प्राचीन काल में आर्य, मंगोल, तुर्क, हूण, शक, मुगल आदि अनेक आक्रमणकारी जातियाँ मध्य एशिया से भारत आयी और यहीं बस गयी। पूर्वी भाग में यद्यपि हिमालय की श्रेणियाँ नीची हैं परन्तु सघन वन, तग घाटियों और तीव्रगामी नदियों के कारण भारत म्यामार के बीच स्थल मार्ग से अधिक आवागमन नहीं होता। अरुणाचल प्रदेश की ओर सामरिक दृस्टी से त्सले, तुंग तथा तोग्यप दर्रे महत्वपूर्ण है।

भारत के दक्षिण में हिन्द महासागर प्राकृतिक सीमा के रूप में फैला है। इसके तीन ओर विशाल भूखण्ड, उत्तर में दक्षिण एशिया, पश्चिम में अफ्रीका, पूर्व में म्यांमार तथा दक्षिण पूर्व में मलेशिया, इण्डोनेशिया व अन्य द्वीप समूह स्थित हैं। मध्य युग में अरब व्यापारियों ने भारतीय तट पर अनेक व्यापारिक बस्तियाँ स्थापित की। 17वीं सदी में अंग्रेज, डच, फ्रांसीसी व पुर्तगाली व्यापारी इसी महासागर से होकर भारत पहुँचे।

1.5.2 कृत्रिम सीमाएं (Artificial Boundries)

भारत की स्थलीय सीमा 15200 किमी तथा समुद्री सीमा 7516.6 किमी है। भारत के उत्तर, पश्चिम एवं पूर्व में स्थित देशों के मध्य कृत्रिम सीमाएँ निर्धारित हैं। चीन, पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान एवं म्यांमार की स्थलीय सीमाएं कृत्रिम रूप में निर्धारित की गयी हैं।

(i) **भारत पाकिस्तान के बीच की सीमा–**भारत व पाकिस्तान के मध्य की सीमा स्थलीय व कृत्रिम है जो कश्मीर, पंजाब, पश्चिमी राजस्थान तथा कच्छ प्रदेश तक विस्तृत है। कश्मीर का सीमान्त क्षेत्र पर्वतीय है जिस पर पाकिस्तान ने अनाधिकृत कब्जा किया हुआ है। सतलज व रावी नदियाँ कुछ दूरी तक प्राकृतिक सीमा बनाती हैं। भारत पाकिस्तान के बीच 1971 के युद्ध के बाद नियंत्रण रेखा का निर्धारण किया है। भारत पाकिस्तान सीमा को रेड क्लिफ रेखा के नाम से जाना जाता है।

(ii) **भारत–चीन के बीच की सीमा–**सर 1914 में शिमला में एक त्रिदलीय सम्मेलन (भारत–चीन व तिब्बत) में सीमा रेखा का निर्धारण किया गया। यह भारत की उत्तरी पूर्वी सीमा है जो 4224 किमी लम्बी है। कुछ स्थानों पर नदियों और कुछ स्थानों पर हिमालय की चोटियों से निर्धारित प्राकृतिक सीमा के रूप में भी मिलती है। इसे मेकमोहन रेखा के नाम से पुकारा जाता है। इस सीमा को तीन खण्डों में बांटा जा सकता है –

(अ) पश्चिम क्षेत्र: यह 1942 में कश्मीर राज्य के प्रतिनिधि, तिब्बत के दलाईलामा व चीन सम्राट के प्रतिनिधियों के बीच एक सन्धि के अनुसार निर्धारित की गई है। यह 1770 किमी लम्बी है जिसका अधिकांश भाग तिब्बत व कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में है।

(ब) मध्य क्षेत्र: भारत चीन की मध्य सीमा हिमालय के जल विभाजक द्वारा अंकित है। 1954 में भारत चीन समझोते में इस रेखा का उल्लेख किया गया। यह तिब्बत को हिमाचल प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश से अलग करती है।

(स) पूर्वी क्षेत्र: सिक्किम से लेकर भूटान तथा पूर्वी में भारत–चीन –म्यानमार के मिलन बिन्दु तक 1225 किमी लम्बी है। इसका निर्धारण 1914 के त्रिदलीय सम्मेलन में किया गया था।

(iii) **भारत–म्यांमार के बीच सीमा रेखा –** भारत व म्यांमार के बीच संपूर्ण सीमा स्थलीय है। दोनो देशों के मध्य हिमालय से निकली पूर्वी श्रेणिया (लुसाई, पटकोई एवं अराकानयोमा) स्थलीय सीमा बनाती हैं। इस सीमा के सहारे अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैण्ड और मणिपुर राज्य स्थित हैं।

(iv) **भारत–अफगानिस्तान के मध्य की सीमा रेखा–**भारत व अफनिस्तान के मध्य स्थलीय सीमा हिमालय पर्वत द्वारा प्राकृतिक सीमा के रूप में नियंत्रित है। यह 80 किमी लम्बी है। इस सीमा रेखा को डूरन्ड रेखा कहा जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत की विशिष्ट सीमाओं ने इस देश को एशिया के अन्य भागों से एक अलग ही स्वरूप प्रदान कर एक संपूर्ण भौगोलिक इकाई बनाया है। जहां एक ओर उत्तरी एवं पूर्वी सीमा पर्वतीय है तो वहीं दूसरी ओर दक्षिणी सीमा महासागर द्वारा आवृत है। अपनी विशिष्ट सीमाओं के कारण ही चिजम का कथन सर्वथा सटीक प्रतीत होता है कि "विश्व में केवल बर्मा (वर्तमान म्यांमार) को छोडकर अन्य ऐसा कोई देश नहीं है जिसको प्रकृति ने इतनी अच्छी तरह परिसीमित किया हो, जितना भारत को।"

1.6 दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के संदर्भ में भारत

अपनी विशिष्ट भौगोलिक अवस्थिति एवं विस्तार के कारण भारत दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के संदर्भ में महत्वपूर्ण स्थिति रखता है। हिन्दमहासागर के शीर्ष पर स्थित होने के कारण अन्तराष्ट्रीय व्यापारिक मार्गों का प्रमुख केन्द्र बन गया है (चित्र 1,2) भारत का विस्तार उष्ण एवं शीतोष्ण दोनों जलवायु कटिबन्धों में होने के कारण कृषि उत्पादन में विशिष्ट स्थान है। प्राचीनकाल से भारत एक सशक्त भौगोलिक इकाई के रूप में रहा है। दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्व एशिया में विभिन्न देशों से भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से संयुक्त रहते हुये अपनी विशालता व विविधता के कारण एक उपमहाद्वीप का स्वरूप बनाये रखा है। पूर्वी गोलार्द्ध में हिन्द महासागर के शीर्ष पर भारत की स्थिति के कारण यह दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों से विविध रूपों में जुड़ा रहा है।

चित्र – 1.2: भारत की भौगोलिक स्थिति

(i) **दक्षिणी एशिया :** – दक्षिणी एशिया में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान आदि देश शामिल हैं। भारत दक्षिण एशिया में सबसे बड़ा देश है जो जनसंख्या, प्रतिव्यक्ति आय सकल घरेलू उत्पादन एवं मानव विकास की द्रस्टि से सर्वोच्च स्थान रखता है। यह प्रदेश मानसून जलवायु का क्षेत्र है। यहां की प्राकृतिक व आर्थिक दशाएँ मानसूनी जलवायु से प्रभावित हैं। कृषि इस प्रदेश के अर्थतंत्र का प्रमुख आधार है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अधिकांश राष्ट्र कृषि के व्यापारिक एवं औद्योगीकरण के प्रयत्नशील हैं। आर्थिक क्रियाओं की दृष्टि से सभी देश भारत से समरूपता रखते है। भारत के उत्तर में दीवार की भांति हिमालय पर्वत की स्थिति एवं उसके दरों से विभिन्न जातियों का आगमन इसके सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक है। यद्यपि आज सभी राष्ट्र तीव्र गति से विकास कर रहे है, परन्तु विविध कारणों से आपसी तनाव व शीतयुद्ध की स्थिति में हैं।

(ii) **दक्षिणी पूर्वी एशिया:** – यह प्रदेश म्यानमार से फिलीपिंस तक विस्तृत हैं जिसमें म्यांमार, थाइलैण्ड, लाओस, वियतनाम, मलेशिया, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, सिंगापुर, फिलीपिंस आदि देश आते हैं। इस प्रदेश के दक्षिण में भूमध्यरेखीय जलवायु एवं उत्तर में मानसूनी जलवायु मिलती है। इस प्रदेश में बागाती कृषि की प्रधानता है। चाय, चावल रबड़, गर्म मसाले आदि के उत्पादन में भारत ने संतोषजनक प्रगति की है। यह प्रदेश सांस्कृतिक संक्रमण का क्षेत्र रहा है। बौद्ध धर्म का विभिन्न देशों में प्रसार भारत से ही हुआ है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि दक्षिणी एवं दक्षिणी से एशियाई देशों में क्षेत्रफल, जनसंख्या, कृषि पशुपालन, खनिज सम्पदा, परिवहन एवं व्यापार की दृष्टि से भारत सबसे अग्रणी राष्ट्र है।

बोध प्रश्न – 2

1. भारत की प्राकृतिक सीमा किससे निर्धारित है?

   ....

   ....

2. उन दर्रों के नाम बताइये जिनसे होकर प्राचीन काल में आक्रमणकारी भारत आये?

   ....

   ....

3. भारत के पूर्वी भाग में सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण दर्रे कौन से है?

   ....

   ....

4. भारत–पाक सीमा रेखा को किस नाम से जाना जाता है?

   ....

   ....

5. भारत–चीन सीमा को किस नाम से पुकारा जाता है?

	....
	....
6.	दक्षिणी–ही एशिया में किन– 2 देशों को शामिल किया जाता है?
	....
	....
7.	दक्षिणी एशिया में भारत की स्थिति कैसी है?
	....
	....

1.7 भारतीय स्थिति की भू–राजनीतिक महत्ता (Geopolitical Significance of India's Location)

भारत अपनी भू–राजनीतिक स्थिति और भौगोलिक स्वरूप के कारण विश्व का एक अनूठा देश है। उत्तर में हिमालय की उतुंग श्रेणीयों तथा दक्षिण में हिन्दमहासागार के मध्य भारत की स्थिति एक सशक्त स्थिति (Commanding Position) का द्योतक है। भारत की इसी सामरिक स्थिति के कारण सैकड़ों वर्षों से यूरोपीय देशों के 'लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। ब्रिटेन भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर पश्चिमी एशिया, दक्षिणी एशिया द. पू अफ्रीका, आस्ट्रेलिया एवं–दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफल रहा है। यद्यपि चीन द्वारा सन 1962 में आक्रमण के बावजूद हिमालय पर्वत भारत का महान सुरक्षा प्रहरी है। चीन व पाकिस्तान की सीमाएं जरूर तनाव की अवस्था में हैं, परन्तु भारत के अन्य पडोसी देश छोटे होने से भारत की भू–राजनीति का सकारात्मक पक्ष रहा है। भारत अपनी भू–राजनीतिक महत्ता के कारण दक्षिणी एशिया का अगुआ राष्ट्र बना हुआ है। इसका उदाहरण भारत व पड़ौसी देशों के संगठन 'सार्क' (SAARC) की स्थापना और इसमें भारत की प्रमुख भूमिका है। अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के अलावा भारत की थल, जल एवं वायु सेना भी सशक्त रही है, जिससे यह एक शक्तिशाली राष्ट्र बनता जा रहा है।

1.8 विविधता में एकता (Unity in Diversity)

भारत भूमि मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास की भूमि रही है। इसकी विशालता के कारण यहाँ अनेक प्रकार की विषमताएं पायी जाती हैं। इसी कारण भारत को विविधताओं का देश कहा जाता है। यह कथन निम्न तथ्यों से स्वयं सिद्ध हो जाता है –

(i) **धरातलीय विविधताएँ–** भारत का क्षेत्रफल विश्व का 2.34 प्रतिशत है जबकि यहाँ विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। भारत का लगभग 85 प्रतिशत भू–भाग (उत्तरी हिमालय को छोडकर) मानव उपयोग में आ रहा है, जबकि रूस, कनाडा, चीन, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों के लिए यह तथ्य लागू नहीं होता। रूस व कनाडा में हिमाच्छादित भूमि, चीन का पश्चिमी भाग निर्जन प्राय: भूमि, ब्राजील के काफी बड़े भाग में घने वन, आस्ट्रेलिया का अधिकांश भाग गर्म मरूस्थल और संयुक्त राज्य अमेरिका के 17.6 लाख वर्ग किमी से अधिक भाग में पहाड़ी व मरूस्थलीय धरातल का विस्तार है।

भारत के उत्तर में महान हिमालय पर्वत, दक्षिण में कठौर चट्टानी दृढ़ भूखण्ड प्रायद्वीपीय पठार, पश्चिम में मरूभूमि और उत्तर–मध्य–पूर्व के उपजाऊ समतल मैदानों का विस्तार, नदी घाटियाँ आदि धरातलीय विविधता के उदाहरण हैं।

(ii) **भूगर्भिक संरचना में विविधता–**भगूर्भिक दृष्टि से भारत में अनेक विविधताएं पायी जाती हैं। दक्षिण का प्रायद्वीपीय पठार विश्व का प्राचीनतम व कठोर चट्टानों से निर्मित स्थल खण्ड है जिसमें खनिजों की विविधताएँ पायी जाती हैं, जबकि हिमालय पर्वत नवीनतम एवं सर्वोच्च भूखण्ड है। इसकी चट्टानों में मिलने वाले जीवांश सिद्ध करते हैं कि कभी यह पर्वत सह के गर्भ में था। उत्तर का विशाल मैदान नदियों द्वारा लायी गयी काँप मिट्टी से निर्मित नवीन भू–आकार है।

(iii) **जलवायु सम्बन्धी विविधताएँ : –** भारत का आधा भाग उष्णकटिबन्ध में तथा आधा भाग शीतोष्ण कटिबन्ध में आता है। अत : इसे उपोष्ण जलवायु (Subtropical Climate) वाला देश कहते हैं। जहां एक और मेघालय के मौसिन ग्राम में सर्वाधिक वर्षा (1187 सेमो) प्राप्त होती है तो वही दूसरी ओर पश्चिमी राजस्थान के शुष्क प्रदेश में 20 सेमी से भी कम वर्षा होती है। इसी प्रकार पश्चिमी घाट में 250 सेमी से अधिक और इसके पूर्व के वृष्टि छाया प्रदेश में 50 सेमी से भी कम वर्षा होती है। ग्रीष्म काल में पश्चिमी राजस्थान में गंगानगर में 51^0 सर्वोच्च तापमान एवं शीतकाल में लद्दाख के लेह में न्यूनतम – 45^0 सेग्रे तापमान अंकित किये गये हैं 1 इन विषमताओं वाली जलवायु को मानसूनी जलवायु कहा जाता है।

(iv) **ज़ैविक विविधाताएं : –** विश्व के 25 जैव विविधता क्षेत्रों में से भारत में 2 क्षेत्र हैं– पूर्वी हिमालय क्षेत्र व पशिचमी घाट यहाँ वनस्पति एवं जैव समुदाय सम्बन्धी विविधता मिलती है। भारत जहाँ एक ओर हिमालय क्षेत्र एवं पश्चिमी घाट में सदाबहार वनस्पति मिलती है तो वहीं दूसरी ओर मध्य भारत में पतझड़ और पश्चिमी राजस्थान में शुष्क कंटीली मरूदभिद वनस्पति पायी जाती है।

(v) **आर्थिक क्रियाओं में विविधताएँ :** – देश में जलवायु, धरातल, मृदा, खनिज आदि में विभिनताएँ मिलने से आर्थिक क्रियाओं यथा कृषि, उद्योग, व्यापार, परिवहन आदि में भी विविधताएं मिलती हैं। देश के पूर्वोत्तर पहाड़ी भागों में स्थानान्तरणशील कृषि, गंगा–सतलज–बह्मपुत्र के मैदान में गहन सिंचित कृषि और पश्चिमी राजस्थान में शुष्क कृषि का रूप मिलता है। औद्योगिक विकास तो और भी केन्द्रित है। आज भी उद्योग बड़े महानगरों और कुछ केन्द्रों में ही सीमित हैं तथा विस्तृत ग्रामीण क्षेत्र इनसे अछूते हैं। पुराने कुटीर और गृह उद्योग भी आधुनिक उद्योगों के सामने दम तोड़ रहे हैं। सन् 1999–2000 में देश के कुल रजिस्टर्ड फैक्टरियों (1,31,558) में से तीन–चौथाई (95,823) केवल नौ राज्यों में स्थित है। इनकी संख्या मेघालय में 27 से लेकर तमिलनाडु में 20,249 हैं।

(vi) **सांस्कृतिक विविधताएँ –** विविध भौतिक दशाओं से अनुकूलन के कारण सांस्कृतिक दशाओं में भी उतनी ही विविधता आई। ऐतिहासिक काल में विभिन्न प्रजाति, धर्म, भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाज के लोग भारत आए और यहीं पर बस गए। इसी कारण यहां इतनी अधिक सांस्कृतिक विविधता मिलती है जितनी अन्यत्र नहीं। आज भी यहां विभिन्न प्रजाति वाले तथा विभिन्न धार्मिक मान्यताओं वाले लोग साथ–साथ रहते हैं जिनकी भाषा, धर्म, रीति–रिवाज, खानपान, वेश–भूसा आदि भिन्न–भिन्न है। भारत की संस्कृति के मूलभूत दर्शन–सहिष्णुता,

अहिंसा और विश्व–बन्धुत्व इसी विविधता के समिश्रण का परिणाम है। इस देश में अण्डमान–निकोबार में नीग्रिटो, मध्य भारत में प्रोटो–आस्ट्रेलायड (मुंडा, कोल, संथाल, आदि जनजातियां, उत्तर पश्चिम भारत (पंजाब, हरियाणा, राजस्थान तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश) में मेडीटरेनियन्स, तमिलनाडु, में' डिनारिक्स, उत्तरी मैदान पर नाडिक्स तथा उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों पर मंगोलायड प्रजाति के लोग रहते हैं।

लोगों के ईश्वर आराधना की विधियां एवं धार्मिक मान्यताएं भी विविध हैं। फलत: विविध धर्मावलम्बी लोग (हिन्दू सर 2001 में 80.46%), मुस्लिम (13.43%), ईसाई (2.34%), सिख। (1.87%), बुद्धिस्ट (0. 77%), जैन (0. 41%), ज्यू और पारसी देश के विभिन्न भागो, में निवास करते हैं। देश में तीन राज्य नागालैंड, मिजोरम और मेघालय क्रिश्चियन प्रधान, पंजाब सिख प्रधान और जम्मू–कश्मीर इस्लाम प्रधान हैं। इनके पूजास्थलों के रूप में मंदिर मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा, बिहार आदि सम्पूर्ण देश में मिलते हैं। भारतीय समाज का विभिन्न जाति और समुदायों मे विभाजन भी सामाजिक बहुरूपता का अच्छा उदाहरण है। भारत के – एन्थ्रोपोलोजिकल सर्वे विभाग ने हाल ही में जनजातियों और क्षेत्रीय समुदायों की संख्या 4,693 बताया है।

भारत में ऐसा माना जाता है कि प्रति 50 किमी पर यहाँ बोली, रहन–सहन, रीति रिवाज आदि में परिवर्तन आ जाता है। यहाँ भाषाओं में अनेक विविधताएँ मिलती हैं। देश में 225 बोलियां बोली जाती हैं जिनमें 22 भाषाएँ प्रमुख हैं। इतनी बोलियाँ व भाषाएँ इस देश की एकता में बाधक नहीं रही। भारत की वेदिक संस्कृति विश्व की प्राचीनतम् संस्कृतियों में से एक है।

उपरोक्त विविधताओं एवं विभिन्नताओं के कारण ही पाश्चात्य विद्वानों ने कहा है कि भारत को एक उप महाद्वीप कहलाने का उतना ही अधिकार है जितना आप को। उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत विविधताओं (diversities), अतिरेक (extremes), विलक्षणताओं (pecularities) तथा विरोधाभासों (paradoxes) का देश है। इसको देखते हुए भारत की अखण्डता पर प्रश्न–चिन्ह लगाया जाता रहा है। सन् 1991 में सोवियत रूस के विभाजन के बाद भारत के सम्बन्ध में भी इसी तरह के विचार व्यक्त किए जाने लगे थे। इन सभी: विविधताओं के होने हुए भी भारत एक एकीकृत राष्ट्र के रूप में विद्यमान रहा है। वास्तव में जिस तरह किसी बगीचे में विभिन्न प्रजाति के पौधे होते हैं फिर भी प्रबन्धन की दृष्टि से वह बगीचा एक ही इकाई होता है, उसी तरह भारत भी भौतिक, धार्मिक, भाषाई, आर्थिक आदि दृष्टियों से विविधताओं का देश होते हुए भी भारतीय संस्कृति से बंधा एक राष्ट्र है।

यहाँ यह उल्लेख करना उपयुक्त है कि भारत एक सुस्पष्ट दृढ़ भौतिक इकाई है और यहाँ के निवासी अपने आपको इस भौतिक इकाई का निवासी मानते हैं। यद्यपि बाहरी आक्रमण अथवा आन्तरिक अलगाववाद के कारण विविधता बढ़ी है, फिर भी आज भी लोग यह स्वीकार करते हैं कि प्रकृति ने ही उन्हें एक साथ एक बड़े परिवार के रूप में रहने के लिए रखा है। इसी भावनात्मक लगाव के कारण सभी समुदाय भारतरूपी एक इकाई के अंग बने हैं। इसी एकात्मकता के कारण इस देश में लोग चाहे उत्तर में आएं हो अथवा दक्षिण में सभी ने इन भागों को भारत ही कहा। इस भारत के रूप में एकीकृत भौतिक इकाई का प्रभाव का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसी के नाम पर हिन्द महासागर का नामकरण किया गया। विश्व में किसी अन्य महासागर का नाम किसी देश के नाम पर नही है।

इस भौतिक पृष्ठभूमि में लोगों के जीवन में समरसता और मूल्यों में एकरूपता का विकास हुआ है। आर्य और द्रविड संस्कृतियों के सम्मिश्रण से बनी यह भारतीय संस्कृति देश को एक सूत्र में बांध रखी है। सम्पूर्ण देश में संस्कृति के मूल तत्व सहिष्णुता, अहिंसा, सत्य, सह–अस्तित्व, दया, करुणा आदि का समान रूप मिलता है। देश को सांस्कृतिक बंधन में बांधत्रे के लिए देश के चारों कोनों पर चार धामों की स्थापना की गई है उत्तर में बद्री धाम, दक्षिण में रामेश्वरम् में जगन्नाथ पुरी और पश्चिम मैं द्वारिका पुरी। सांस्कृतिक एकता बना रखने के लिए इन धार्मिक केन्द्रों पर विपरीत दिशा के पुजारी कार्यरत हैं। प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में आयोजित होने वाले कुंभ में लाखों लोगों का भाग लेना भी इस सांस्कृतिक एकता का प्रमाण है। सांस्कृतिक एकता का प्रमाण यह है कि देश के कोने–कोने से लोग गंगा–स्नान के लिए आते हैं। साथ ही कई क्षेत्रीय नदियों को गंगा–तुल्य मान रखा है, जैसे नर्मदा मध्य भारत की गंगा, कावेरी दक्षिण की गंगा आदि हैं, जिससे उत्तर की गंगा न पहुंचते वाले इन्ही नदियों में स्नान कर सकें। इस प्रकार गंगाकरण सांस्कृतिक एकरूपता का प्रमाण है।

भारतीय संस्कृति अत्यन्त परिपक्क है जिसमें एकता पर जोर और विविधता का सम्मान किया जाता है। हिन्दुत्व एक उदार संस्कृति है जिसका मंत्र सर्वधर्म समभाव का है। यहाँ इस्लाम का विस्तार हुआ और ईसाइत्व भी शताब्दियों से पनप रहा है; परन्तु सभी एक इकाई के अंग के रूप में आचरण करते हैं। यहाँ तक कि धर्म में अन्तर होने पर भी मुस्लिम लोगों तथा हिन्दुओं के सांस्कृतिक लक्षण, भोजन सम्बन्धी आदतें, वेषभूषा, भाषा, बोली आदि में अत्यधिक समानता है। ये सभी स्वतंत्रता आंदोलन में कंधा से कंधा मिला कर संघर्ष किये हैं। अब भी विदेशी आक्रमण के समय एक स्वर से बोलते हैं।

देश के अन्दर की धरातलीय विषमता वास्तव में सीमा के अहाता के रूप में काम करती रही है न कि अवरोध के रूप में। इनसे घिरे क्षेत्रों में सांस्कृतिक विलक्षणता पनपती रही परन्तु विभिन्न क्षेत्रों के बीच सम्पर्क बढ़ाने में ये भूस्वरूप कभी बाधक नही रहे। इसका परिणाम यह है कि देश में विविध लक्षणों वाले प्रदेश हैं, परन्तु उन सब के बीच सांस्कृतिक एकता भी है। सर्वत्र हिन्दू संस्कृति का विकास हुआ।

भारत की एकता में यहाँ का इतिहास भी सहायक है। ऐतिहासिक काल में यहाँ क्षेत्रीयता की विचारधारा बलवती नही रही है। साम्राज्य की स्थापना अथवा जनजातीय संगठन वास्तव में क्षेत्रीय व्यवस्था के अंग थे। यूरोपीय देशों की भांति उपनिवेश स्थापित करने की प्रवृत्ति यहाँ नही रही है, अन्यथा भारत में भी अनेक देश होते। इसके साथ ही अंग्रेजों ने भी एकता बनाए रखने में परोक्ष योगदान किया है। ब्रिटिश काल में केन्द्र द्वारा नियंत्रित अफसरों द्वारा न केवल भारतीय ब्रिटिश राज्यों पर शासन किया जाता था बल्कि उनका देशी रियासतों पर भी नियंत्रण होता था। इस प्रकार देश के लोग केन्द्रीय सत्ता को पहिले से ही स्वीकार करते रहे है। इसी तरह इनका योगदान प्रशिक्षित गैर –राजनीतिक सेना की स्थापना, देश के विभिन्न भागों को जोडनें वाली रेलवे लाइन का निर्माण, संचार के साधन स्थापित करना, सम्पर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा को बढ़ावा देना और निर्वाध आवास–प्रवास को बढ़ावा देना आदि के माध्यम से है। बाद में अंग्रेजों को हटाने के लिए चलाए गए आन्दोलन ने तो देश के विभिन्न भागों को एक सूत्र में बांध दिया। इस प्रकार स्वतंत्रता के समय भारत सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से एकीकृत इकाई था और

उसका स्व राष्ट्र के रूप में उदय एक स्वाभाविक घटना थी। सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से एक सूत्र में बँधें होने के कारण ही देशी रियासतों ने भारतीय गणतंत्र में मिलना उचित समझा।

आधुनिक भारत के संघीय प्रजातांत्रिक संविधान का देश को एक सूत्र में बांध रखने में बहुत बड़ा योगदान है। इस संविधान में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के अधिकारों और कर्तव्यों का सुस्पष्ट उल्लेख है जिससे उनमें टकराव नही होता। संसाधनों एवं लोगों का अन्तर्क्षेत्रीय आदान–प्रदान इस राजनीतिक एकता के कारण ही संभव होता है।

बोध प्रश्न– 3

1. दक्षिणी एशिया में भू–राजनीतिक दृष्टि से भारत का सकारात्मक पहलू क्या है?

   ....

   ....

2. भारत में विश्व के क्षेत्रफल व जनसंख्या का क्या अनुपात है?

   ....

   ....

3. भारत की भूगर्भिक संरचना में विविधता का कौन सा उदाहरण है?

   ....

   ....

4. विश्व में सर्वाधिक वर्षा वाला स्थान कौन सा है?

   ....

   ....

5. भारत मे मुख्य भाषाएँ कितनी हैं?

   ....

   ....

6. भारत में विश्व के कितने जैव विविधता क्षेत्र पाये जाते हे?

   ....

   ....

1.9 सारांश (Summary)

भारत के विविध पक्षों का सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए इसकी आधारभूत सामान्य जानकारी प्राप्त होती है। भारत भौतिक एवं मानवीय विशेषताओं का एक विलक्षण स्थलखण्ड है। भारतवर्ष या हिन्दुस्तान या इण्डिया या भारत आदि नामों से विख्यात विशाल आकार के इस देश की दक्षिणी एशिया में एक महत्वपूर्ण सामरिक स्थिति है। स्थल, जल एवं वायुमार्गों की दृष्टि से भारत का संपूर्ण विश्व से व्यापारिक संपर्क रहा है। क्षेत्रफल में इसका विश्व में सातवाँ स्थान है, जबकि जनसंख्या में दूसरा स्थान है।

उत्तर में हिमालय श्रेणी एवं दक्षिण में हिन्दमहासागर इसकी प्राकृतिक सीमा का निर्धारण करते हैं, जबकि चीन, पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान एवं म्यांमार की स्थलीय सीमा कृतिम रूप

में निर्धारित की गई है। दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्ति एशिया में विभिन्न देशों में भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से संयुक्त रहते हुये अपनी विशालता व विविधता के कारण एक उपमहाद्वीपीय स्वरूप बनाये रखा है। भारत दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया में सबसे बड़ा देश है जो जनसंख्या, प्रतिव्यक्ति आय, सकल घरेलू उत्पादन, मानव विकास आदि की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान रखता है।

अपनी भू–राजनीतिक स्थिति और भौगोलिक स्वरूप के, कारण भारत विश्व का एक अनूठा देश है। अपनी विशिष्ट सामरिक स्थिति के कारण सैकड़ों वर्षों से यूरोपीय देशों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। यहां धरातलीय, जलवायु, भूगर्भिक, जैविक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अनेक विविधताएं पायी जाती हैं, परन्तु अनेक विभिन्नताओं के होते हुये भी भारत में एक सर्वव्यापी एकता पायी जाती है। विभिन्नता में एकता भारत की संस्कृति का विशिष्ट लक्षण है।

1.10 शब्दावली (Glossary)

- **प्रायद्वीप:** तीन ओर समुद्र से घिरा हुआ स्थलखण्ड
- **जलविभाजक:** प्राकृतिक रूप से बहते हुये जल को बांटने या अलग–अलग दिशा की ओर मोडने वाले स्थान
- **प्राकृतिक सीमा:** नदी, पर्वत, महासागर, मरूस्थल आदि प्राकृतिक तत्वों द्वारा निर्धारित व नियंत्रित दो देशों के मध्य की सीमा
- **कृत्रिम सीमा** : किसी समझोते या संधि द्वारा निर्धारित दो देशों के मध्य की सीमा
- **भू–राजनीतिक** धरातलीय विशेषताओं के संदर्भ में राजनैतिक महत्ता
- **मरूद्भिद :** मरूस्थलीय भागों में पायी जाने वाली वनस्पति।

1.11 संदर्भ ग्रन्थ (Reference books)

1. श्रीकमल शर्मा, सम्पादक, **भारत का भूगोल**, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 2004.
2. पी. आर. चौहान एवं महातम प्रसाद, **भारत का वृहद् भूगोल,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर 2005
3. चतुर्भुज मामोरियां एवं जे. पी. मिश्रा, **भारत का वृहद् भूगोल,** साहित्य भवन, आगरा, 2006
4. सुरेश कुमार बंसल, **भारत का वृहद् भूगोल**, मिनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2008
5. अलका गौतम, **भारत का भूगोल,** रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ, 2005
6. राम कुमार गुर्जर एवं बी. सी. जाट **भारत का भूगोल,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2006
7. बी. पी. राव, **भारत एक भौगोलिक समीक्षा,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1995
8. Ranjit Tirtha, **Geography of India,** Rawat Publication New Delhi 2005

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न– 1

1. विष्णुपुराण में।
2. प्राचीनकाल में आर्यो की भरत नाम की शाखा से।
3. यूनानियों ने सिन्धु नदी को 'इण्डस' तथा इस देश को 'इण्डिया' कहा।
4. $8^0$4' से $37^0$6' उत्तरी अंक्षाश तथा $68^0$7' से $97^0$25' पूर्वी देशान्तर के बीच।
5. ग्रेट निकोबार द्वीप में।
6. देश में प्रामाणिक समय निर्धारण में इसका उपयोग किया जाता है।
7. 5 घण्टे 30 मिनट का।
8. क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किमी तथा विश्व में सातवाँ स्थान।
9. चतुष्कोंणीय।
10. दूसरा।

बोध प्रश्न–2

1. भारत की प्राकृतिक सीमा हिमालय पर्वत श्रृंखला व हिन्द महासागर से निर्धारित है।
2. खैबर, गोमल, बोलन, ढोची, कुर्रम, आदि।
3. त्सेला, तुंग तथा तोग्यप दर्रे।
4. रेडक्लिफ रेखा।
5. मेक मोहन रेखा।
6. म्यांमार, थाईलैण्ड, लाओस, वियतनाम, मलेशिया, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, सिंगापुर, फिलीपिंस आदि।
7. दक्षिणी एशिया में भारत सर्वोच्च स्थान पर है।

बोध प्रश्न–3

1. पड़ौसी देश छोटे व क्रमहीन स्थिति में होना।
2. विश्व का 2.34 प्रतिशत क्षेत्रफल तथा 16.7 प्रतिशत जनसंख्या।
3. प्राचीनतम स्थल दक्षिण का पठार व नवीनतम् स्थलरूप हिमालय पर्वत
4. मौसिनग्राम (1187 सेमी वर्षा)
5. मुख्य भाषाएं 22 हैं।
6. विश्व के 25 जैव विविधता क्षेत्र में से 2 भारत में पाये जाते हैं।

1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न।

1. भारत की स्थिति, विस्तार, आकार एवं सीमाओं की समीक्षा कीजिए।
2. दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के संदर्भ में भारत की अवस्थिति की व्याख्या कीजिये
3. "भारत में विविधता में एकता है" कथन की विवेचना कीजिए।
4. भारत की सीमाओं का मूल्यांकन करते हुये भारतीय स्थिति की भू–राजनीतिक महत्ता की विवेचना कीजिये।

इकाई 2 अ : भौमिकी (Geology)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भूगर्भिक इतिहास

2.3 संरचनात्मक विभाग

2.3.1 प्रायद्वीप

2.3.2 हिमालय या बाह्य प्रायद्वीप

2.3.3 सिन्धु–सतलज मैदान

2.4 भारत के प्रमुख शैल समूह

2.4.1 अति प्राचीन समूह

2.4.1.1 आर्कियन समूह

2.4.1.2 धारवाड़ समूह

2.4.2 पुराण समूह

2.4.2.1 कुड्डप्पा समूह

2.4.2.2 विन्ध्यन समूह

2.4.3 द्रविड समूह

2.4.4 आर्य समूह

2.4.4.1 गोंडवाना समूह

2.4.4.2 ऊपरी कार्बोनीफेरस एवं पर्मियन समूह

2.4.4.3 ट्रियासिक समूह

2.4.4.4 जुरासिक समूह

2.4.4.5 क्रिटेशस समूह

2.4.4.6 टर्श्यरी

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे –

- भारत की भौभिकी के अध्ययन का महत्व,
- भारत की भौभिकी का कालिक विकास क्रम,
- भारत के संरचनात्मक तथा भौभिकी विभागों एवं उनके उपविभागों का विशद् विवरण

- भारत के प्रमुख शैलसमूहों का कालिक विकास, प्रमुख लक्षण एवं वितरण।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

भूगर्भिक संरचना किसी प्रदेश के उच्चावच तथा भूआकृतिक लक्षणों के निर्धारण में न केवल प्रमुख नियन्त्रक कारक है, अपितु यह शैलों की प्रकृति तथा खनिजों के निर्माण में भी महत्वपूर्ण है। प्रदेश की भूगर्भिक संरचना का अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह कृषि, खनन आदि विभिन्न क्रियाओं के लिए मूलभूत है। काँपीय शैलें, जो कृषि के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं अवसादी शैलों से निर्मित होती हैं, जबकि आग्नेय तथा कायान्तरित शैलें अनुर्वर मिट्टी उत्पन्न करती हैं। जीवाश्मयुक्त सागरीय निक्षेपों से निर्मित अवसादी शैलों में पेट्रोलियम पाया जाता है, जबकि आग्नेय तथा कायान्तरित शैलें लौह धातु तथा तांबे–जैसे अनेक उपयोगी धात्विक खनिज प्रदान करती हैं।

2.2 भारत का भूगर्भिक इतिहास (Geological History of India)

देश में पुरा कैम्ब्रियन से लेकर आधुनिक काल तक की शैल समूह मिलते हैं। पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास को पाँच कल्पों (eras) में बाँटा जाता है – (i) नूतन (Neozoic), (ii) नवजीव (Cainozoic), (iii) मध्यजीव (Mesozoic), (iv) पुराजीव (Palaeozoic), एवं (v) आद्य Eozoic or Protorozic)। भारतीय भूगर्भिक सर्वेक्षण विभाग के हॉलैण्ड (T.Holland) ने भारत में चार भूगर्भिक महाकल्प सुझाए हैं – आर्यन, द्रविड़, पुराण तथा आर्कियन।

भारत का जटिल तथा विविधतापूर्ण भूगर्भिक इतिहास पृथ्वी के धरातल पर निर्मित प्रथम संरचना के साथ आरम्भ होकर आधुनिकतम काँपीय निक्षेपों के बिछने तक विस्तृत है। आर. एल. सिंह (1971) ने भारत में निम्नलिखित प्रमुख भूगर्भिक चरणों कीं पहचान की है–

1. प्रथम चरण में पुरा कैम्ब्रियन महाकल्प (Pre–Cambrian era) में 60 करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी का धरातल ठण्डा होकर ठोस हुआ। इस चरण में आर्कियन शैलों (archaean rocks) का निर्माण हुआ, जो अब प्रायद्वीप पर अनावृत मिलती हैं। अरावली श्रेणियों का निर्माण इसी समय हुआ।
2. द्वितीय चरण में आग्नेय क्रिया तथा अन्तर्वेधन (instrusions) के साथ–साथ धारवाड़ अवसादों में वलन पड़े।
3. तृतीय चरण में कैम्ब्रियन महाकल्प में 50 करोड़ वर्ष पूर्व प्राचीन स्थलखण्ड के अन्दर अथवा किनारों पर अवस्थित कुड्डप्पा तथा विन्ध्यन बेसिनों में कैल्शियमी व जलीय अवसाद निक्षेपित हुए तथा प्राचीन, स्थलखण्ड में (upliftment) हुआ।
4. चतुर्थ चरण में 27 करोड़ वर्ष पूर्व पर्मो–कार्बोनीफेरस हिमनदन (Permo–Carboniferous glaciation) हुआ, जिससे गर्तों में व्यापक रूप से हिम–जलीय निक्षेप बिछ गए। कालान्तर में इनमें भ्रंशन (faulting) होने पर गोंडवाना शैलों का निर्माण हुआ, जिनमें देश के 95 प्रतिशत कोयला भण्डार पाए जाते हैं।
5. पाँचवें चरण में 20 करोड़ वर्ष पूर्व गोंडवानालैण्ड का विभंजन (rupture) हुआ तथा प्रायद्वीप उत्तर की ओर प्रवाहित हुआ। इससे विन्ध्यन अवसादों में उत्क्षेप हुआ तथा पश्चिमी घाटों का निर्माण हुआ।
6. 13.5 करोड़ वर्ष पूर्व क्रिटेशिस लावा के प्रवाह से दकन ट्रैप का निर्माण हुआ।

7. भारतीय प्लेट के एशियाई प्लेट से टकराने के कारण टर्श्यरी पर्वतीकरण तीन चरणों में हुआ, जिससे हिमालय की तीन समान्तर श्रेणियों का निर्माण हुआ – (i) ओलिगोसीन (Oligocene) युग में 2.5–4 करोड़ वर्ष पूर्व हिमाद्रि या महा हिमालय, (ii) मध्य मायोसीन (mid–miocene) युग में 1.4 करोड़ वर्ष पूर्व हिमाचल या लघु हिमालय, तथा (iii) प्लायोसीन (Pliocene) के बाद 750 हजार वर्ष पूर्व शिवालिक या बाह्य हिमालय। इसी चरण में गंगा–सिन्धु द्रोणी में अवसादन हुआ।
8. प्लायोसीन –होलोसीन युग के दौरान सिन्धु –गंगा द्रोणी में अवसादन हुआ।
9. अन्त में प्लीस्टोसीन (Pleistocene) युग के दौरान अनेक भूगर्भिक घटनाएँ हुई जैसे राजमहल–गोरो गैप या माल्दा गैप अधोवलन (down–warping), सिन्धु –गंगा जलविभाजक (पोटवार का पठार) में संचलन, जिसने प्राचीन इण्डो–व्रत या शिवालिक नदी के प्रवाह को भंग का दिया तथा उत्तरी विशाल मैदान के वर्तमान अपवाह प्रतिरूप को उत्पन्न किया, नर्मदा–ताप्ती द्रोणी का निर्माण तथा पश्चिमी तट का धँसना (foundering)।

2.3 भारत के संरचनात्मक विभाग (Structural Divisions of India)

उपर्युक्त प्रस्तरशैलिक (lithological), अवसादी (sedimentaion) तथा विवर्तनिक (tectonic) इतिहास के आधार पर वाडिया (Wadia) ने भारत को तीन विशिष्ट संरचनात्मक खण्डों में विभाजित किया है– (1) प्रायद्वीपीय खण्ड, (2) प्रायद्वीपेतर खण्ड (हिमालय प्रदेश), तथा (3) सिन्धु–गंगा द्रोणी।

2.3.1 प्रायद्वीप (peninsula)

स्तरशैलिक (stratigraphy) दृष्टि से प्रायद्वीप एक प्राचीन स्थिर भूखण्ड को सूचित करता है, जो केम्ब्रियन युग से विद्यमान रहा है। स्थानीय या क्षणिक अपवाद सहित, यह कभी–भी समुद्र में नहीं डूबा। विवर्तनिक दृष्टि से प्रायद्वीप प्राचीन जटिल शैल संस्तरों से निर्मित हैं, जो पृथ्वी के धरातल पर होने वाली महान भू–क्रान्तियों से अप्रभावित, स्थिर एवं मजबूत आधार पर टिकी हैं। पर्वत शक्तियाँ भी प्रायद्वीप के मौलिक आधार को विस्थापित नहीं कर सकी। दकन के भूखण्डों में तनाव एवं सम्पीडन के कारण विभंग (fracture) तथा ऊर्ध्वाधर संचलन अवश्य अनुभव किए। भूआकृतिक दृष्टि से, प्रायद्वीप में अवशिष्ट पर्वतों, अपरदित पहाड़ियों तथा विशाल गालाश्मों (tors) से युक्त स्थलाकृति दर्शनीय है। प्रायद्वीपीय नदियों की घाटियाँ चौरस तथा उथली हैं, जिनका ढाल अत्यंत मन्द है तथा जलधाराएँ अपरदन के आधार तल को प्राप्त कर चुकी है। कुल मिलाकर प्रायद्वीप को एक 'हॉर्स्ट' (horst) की संज्ञा दी जा सकती है। यह एक ठोस, स्थिर तथा दृढ़ भूखण्ड है। वैसे गोंडवाना युग में प्रायद्वीप पर भूखण्डों के संचलन से दरारों तथा भ्रंशों का निर्माण अवश्य हुआ।

प्रायद्वीपीय भूखण्ड, जो प्राचीन गोंडवानालैण्ड का अंग है, आर्कियन से लेकर आर्य समूह तक की जटिल शैलों से निर्मित है (चित्र 2अ.1)। प्रायद्वीपीय भारत निम्नलिखित स्थलाकृतिक चक्रों से होकर गुजरा है, जिसने प्रदेश की भूआकृति को अत्यधिक प्रभावित किया है –

2.3.2 हिमालय या बाह्य प्रायद्वीप (Himalayas or Extras Peninsula)

स्तरशैलिक (stratigraphically) की दृष्टि से हिमालय अपने भूगर्भिक इतिहास के अधिकांश भाग में समुन्द्र के अन्दर रहे हैं तथा कैम्ब्रियन से लेकर विविध युगों के सागरीय अवसादों से ढँके रहे हैं। विवर्तनिक दृष्टि से (tectonically), हिमालय एक कमजोर तथा लचीली इकाई को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें बड़े पैमाने पर वलन (crumpling) तथा विकृति (deformation) हुई। स्थलाकृतिक दृष्टि से (physiographic ally), इन्हें विवर्तनिक पर्वत कहा जा सकता है (चित्र–2 अ.।)। इस प्रदेश की तीव्रगामी नदियाँ अब भी अपने विकास की युवावस्था में हैं तथा निरन्तर अपने जलमार्गों को गहरा कर रही हैं। इन नदियों ने पर्वतों में गहरी तथा संकरी घाटियों का निर्माण किया है।

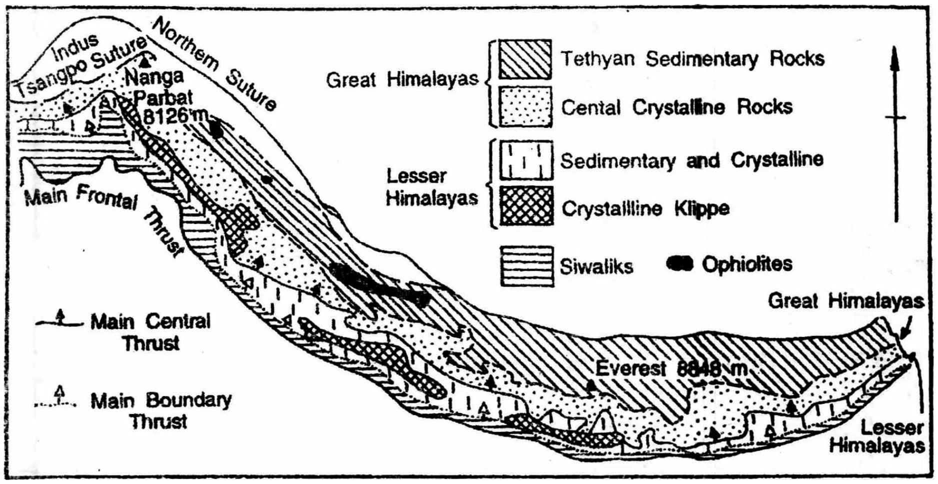

चित्र-2अ.1: हिमालय की भूगर्भिक संरचना

2.3.3 सिन्धु–सतलज मैदान (Indo–Gangetic Plains)

पंजाब में सिन्धु बेसिन से लेकर असम में ब्रहापुत्र घाटी तक भारत के उत्तरी मैदान भूगर्भिक दृष्टि से अभिनव उत्पत्ति के हैं। ये मैदान मूलत प्रायदीप तथा हिमालय के मध्य एक गहरे गर्त के रूप में उपस्थित थे। एडवर्ड सुएस ने इसे 'अग्रगर्त' (foredeep) की संज्ञा दी, जो हिमालय की उच्च धरातलीय लहरों के समक्ष स्थित था। इसके विपरीत, बुर्राड (Burrard) ने इसे एक भ्रंश घाटी(riftvally) माना, जो शिवालिक तथा प्रायद्वीप की उत्तरी सीमा के सहारे समान्तर मध्य स्थल के एक भाग के धँसने से उत्पन्न हुई। ब्लैनफोर्ड (Blanford) के अनुसार यह एक उथला सागरीय धरातल है, जो बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर के पीछे हटने से उत्पन्न हुआ। नवीनतम मत के अनुसार यह गर्त भूपटल में एक झोल (sag) मात्र है। इन मैदानों की रचना गंगा–सिन्धु तन्त्र की नदियों द्वारा हिमालय के अपरदन से प्राप्त मोटे काँपीय अवसादों के हिमालय की तलहटी मैं एकत्रित होने से हुई। ये मैदान चीका तथा सिल्ट की गहरी 'परतों से ढँके हैं।

2.4 प्रमुख शैलसमूह (Major Rock System)

भारत की शैलों को अनेक वर्गों में वर्गीकृत किया गया है, जिनमें बड़े वर्ग 'समूह' (group) उनके विभाग 'समूह' (system) तथा उपविभाग 'सीरीज' (series) कहलाते हैं। ये शैलें पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास के विभिन्न काल से सम्बन्धित हैं। प्रमुख शैलसमूहों तथा शैलसमूहों को चार समूहों में संगठित किया गया है (चित्र 2.3) – (i) पुरा कैम्ब्रियन युग की शैलें (आर्कियन तथा धारवाड समूहों), (ii) पुराण समूहों (धारवाड़ एवं कुड्डप्पा समूह), (iii) द्रविड़ समूहों (विन्ध्यन समूह), तथा (iv) आर्य समूह (गोंडवाना, दकन ट्रैप, टर्श्यरी व काटरनरी समूह)।

2.4.1 अति प्राचीन समूह (Archaen Group)

इस समूह को निम्नलिखित दो समूह में बाँटा जाता है – (i) आर्कियन समूह, तथा (ii) धारवाड़ समूह।

2.4.1.1 आर्कियन समूह (Arcgaen system)

आर्कियन शैलें पृथ्वी की प्राचीनतम शैले हैं। ये शैलें प्राचीन पठारों तथा पर्वतों का आधार बनाती है। ये अजैविक, पूर्णत: रवेदार, अत्यधिक भ्रंशित, पत्रित (foliated) तथा पातालीय (intruded) शैलों द्वारा अन्तर्वेशित (intruded) हैं। इन लक्षणों ने इन शैलों को बहुत जटिल बना दिया है। ये शैलें इतनी अधिक कायांतरित हैं कि इनकी मौलिक विशेषताएँ नष्ट हो गईं हैं।

आर्कियन समूह की नीस तथा शिस्ट भारत के धरातल पर सर्वाधिक विस्तुत एवं प्राचीनतम शैलें हैं। ये शैलें समूह 1,87,500 वर्ग किमी क्षेत्र पर फैले हैं। ये शैलें प्रायद्वीपीय के दो–तिहाई क्षेत्र पर उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बुन्देलखण्ड, राजस्थान, तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश आदि राज्यों में मिलती हैं। हिमालय प्रदेश में ये शैलें मध्य हिमालय श्रेणियों के सम्पूर्ण विस्तार में अनावृत रूप में मिलती हैं–

(i) **बंगाल नीस (Bengal gneiss)** : इसकी आकृति विशिष्ट गुम्बदाकार है। यह प्रमुखत: पश्चिम बंगाल, झारखण्ड (छोटा नागपुर, राँची, हजारीबाग जिलों), उड़ीसा तथा कर्नाटक में मिलती है। यह सोन घाटी तथा असम में भी उपस्थित है। यह अत्यधिक पत्रित शैल है, जिसका संधटन ग्रेनाइट से ग्रेनोडायोराइट या एम्फीबोलाइट तक तथा प्रचुर एपीडोट, एपीटाइट, गार्नेट, स्फनि, टूरमेलाइन, मैग्रेटाइट, इल्मेनाइट आदि से हुआ है।

(ii) **बुन्देलखण्ड नीस (Bundelkhand gneiss) :** प्रमुखत: यह बुन्देलखण्ड उच्च प्रदेश में उपस्थित है। इसके साथ ही यह महाराष्ट्र, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश एवं उड़ीसा में भी मिलती है। यह मोटे कणों वाली नीस है जो देखने में ग्रेनाइट–जैसी लगती है। यह डोलोमाइट, संगमरमर तथा कॉटरजाइट–जैसी शैलों व खनिजों से रहित होने के कारण बंगाल नीस से भिन्न है।

(iii) **चारनोकाइट या नीलगिरि नीस (Charnokite or Nilgiri gneiss) :** यह तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, केरल, उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान में पाई जाती है। यह नीलाभ–भूरे से गहरे रंग की शैल है। इसका गठन मध्यम से मोटे कणों द्वारा हुआ है तथा इसका संघटन हाइपरस्थीन, एस्टेटाइट, काटरज, माइक्रोलाइन, प्लैगियोक्लेज, हॉर्नब्लेण्ड, ऑगाइट तथा कुछ मात्रा में जिरकन, मैग्रेटाइट, इल्मेनाइट, ग्रेफाइट तथा गार्नेट से हुआ है।

(iv) **हिमालय नीस (Himalayan gneiss) :** हिमालय की मध्यवर्ती श्रेणियों की रचना मुख्यत: ग्रेनाइट, नीस, शिस्ट, फाइलाइट आदि से हुई है। वाडिया के अनुसार हिमालय के अध: स्तर ऑर्थानीस तथा ग्रेनाइट से निर्मित हैं, जबकि शिखर स्तरित जवाश्मयुक्त अवसादों से।

आर्कियन शैलों में धात्विक तथा अधात्विक खनिज पाए जाते हैं, जो अत्यधिक आर्थिक महत्व के हैं। ये शैलें लौह अयस्क, ताम्र अयस्क, मैंगनीज अयस्क, अभ्रक आदि में बहुत समृद्ध हैं।

2.4.1.2 धारवाड़ समूह (Dharwar group)

यह समूह आर्कियन नीस तथा शिस्ट शैलों के अपरदित पदार्थ से निर्मित शैलों का है। ये शैलें प्राय: आर्कियन शैलों के ऊपर बिछी हुई हैं। अन्यत्र ये नीस या इनसे अधिक पुराने शैल संस्तरों के मध्य मिलती हैं। धारवाड़ समूह कायांतरित आर्कियन अवसादों से निर्मित हैं, जो विवर्तनिक क्रियाओं से अत्यधिक विकृत हो गए हैं। अतएव इनमें अवसादी शैली के गुण नष्ट हो गए हैं। यह समूह शिस्ट, फाइलाइट तथा स्लेट–जैसी शैलों का जटिल सम्मिश्र है। इनमें टूरमेलाइन, ग्रेनाइट, ड्यूनाइट–जैसी पातालीय (plutonic) शैलों का अन्तर्वेधन मिलता है। इनकी पेग्मेटाइट शिराओं (veins) में मस्कोवाइट, बेराइल, पिचब्लेण्ड, कोलम्बाइट आदि खनिज बहुतायत से मिलते हैं। ये शैलें संकरे, लम्बाकार अभिनतीय उभारों (outcrops) में मिलती हैं तथा खनिज सम्पन्न हैं।

धारवाड़ शैलें दक्षिणी दकन, प्रायद्वीप के मध्यवर्ती तथा पूर्वी भागों, उत्तर–पश्चिम प्रदेश तथा हिमालय में बिखरी मिलती हैं। इनका सर्वाधिक विस्तार कर्नाटक के धारवाड़ क्षेत्र में है।

2.4.2 पुराणा समूह (Purana Group)

पुराणा समूह पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास में प्रोटेरोजाइक युग (60 करोड़ वर्ष पूर्व) से सुसंगत है। धारवाड़ युग के अन्त में तीव्र भू–संचलनों के कारण धारवाड़ अवसादों में वलन क्रिया होने से अरावली–जैसे पर्वतों का निर्माण हुआ। धारवाड़ स्थलाकृति बेसिनों की उत्पत्ति आधार तल तक अपरदित हो गई। स्थानीय संवलन (warping) तथा अवतलन (subsidence) के नए हुई, जिनमें अपरदित पदार्थ एकत्रित हो गया। इस प्रकार पुराणा समूह का निर्माण हुआ। इस समूह में दो शैल समूह मिलते हैं – (i) कडप्पा, तथा (ii) विन्ध्यन।

2.4.2.1 कडप्पा समूह (Cuddapah System)

यह शैल समूह आन्ध्रप्रदेश के कडप्पा जिले के नाम पर नामकृत है, जहाँ ये शैलें एक अर्द्ध–चन्द्राकार बेसिन में कडप्पा तथा कुर्नूल जिला में विस्तृत हैं। ये शैलें कड्प्पा, गोदावरी तथा नर्मदा–सोन–दामोदर बेसिन में केम्ब्रियन युग से लेकर एलगोनिकन युग तक निक्षेपित हुई।

ये शैलें निम्नलिखित चार प्रमुख क्षेत्रों में मिलती हैं– (i) आन्ध्रप्रदेश के कड्प्पा, तथा कुर्नूल जिले, (ii) मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा तथा महाराष्ट्र, (iii) राजस्थान–दिल्ली प्रदेश, तथा (iv) प्रायद्वीपेत्तर भाग में लघु हिमालय।

(i) **कडप्पा प्रदेश :** कडप्पा सूमह कडप्पा बेसिन में सर्वाधिक विकसित हे। ये शैलें चार प्रमुख सीरीज में मिलती हैं।

(ii) **मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा तथा महाराष्ट्र:** इस प्रदेश में कडप्पा शैलें पाँच प्रमुख क्षेत्रों में मिलती हैं – मध्यप्रदेश के (i) छतरपुर तथा पन्ना जिलों में बिजावर सीरीज, (ii) ग्वालियर

जिले में ग्वालियर सीरीज; छत्तीसगढ़ में (iii) ऊपरी महानदी घाटी में रायपुर सीरीज, (iv) महाराष्ट्र के बीजापुर जिले में कालदगी सीरीज, तथा (v) गोदावरी एवं प्राणहिता घाटी में पाखल सीरीज।

(iii) **राजस्थान –**दिल्ली प्रदेश: इस प्रदेश में कडप्पा शैलें 'दिल्ली-समूह' कहलाती हैं। हेरोन (Heron) ने दिल्ली समूह को पाँच सीरीज में बाँटा है।

(iv) **प्रायद्वीपेत्तर प्रदेश:** इस प्रदेश में कडप्पा समूह के दृष्यांष कश्मीर, शिमला तथा नेपाल हिमालय में दर्शनीय हैं। यहाँ स्लेट तथा क्राटरजाइट प्रमुख शैलें हैं।

कडप्पा शैलें जीवाश्मरहित हैं। इनमें लोहा तथा मैंगनीज अयस्क, बैराइट्स, एसबेस्टस, ताँबा, निकिल, कोबाल्ट, स्लेट, संगमरमर, स्टियटाइट, जैस्पर आदि खनिज मिलते हैं।

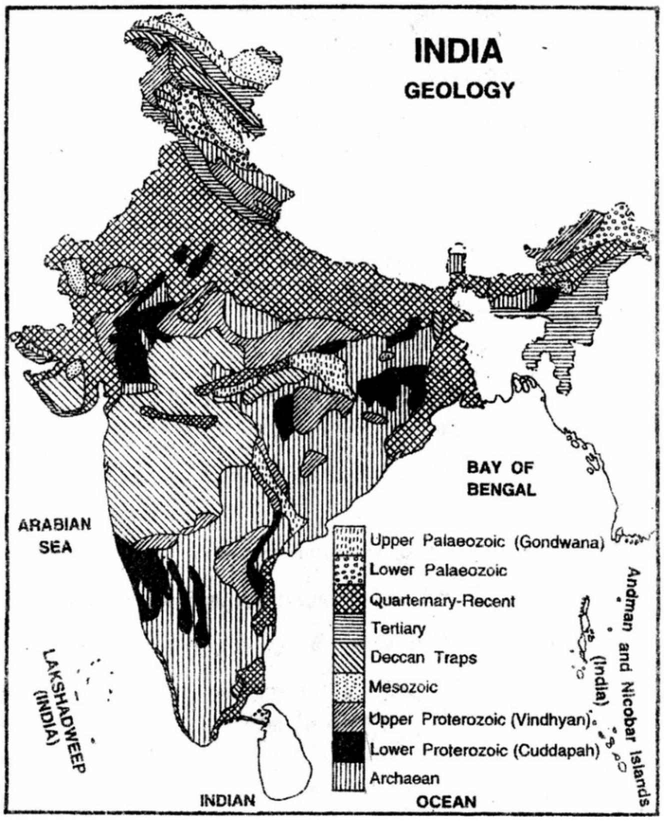

चित्र–2अ.2 : भारत में प्रमुख शैल सूमहों का वितरण

2.4.2.2 विन्ध्यन समूह (Vindhyan System)

इस समूह का नामकरण विन्ध्याचल पहाडियों के नाम पर हुआ है, जहाँ ये शैलें प्रचुरता से मिलती हैं। यह समूह राजस्थान में चित्तौड़गढ़ जिले से लेकर बिहार में सासाराम जिले तक एक लाख वर्ग किमी से अधिक क्षेत्र में है। ये निक्षेप 4,270 मीटर से अधिक मोटे हैं तथा इनमें चूनापत्थर, शैल तथा बालूपत्थर–जैसी अवसादी शैलों की प्रधानता है। कुछ स्थानों पर ये शैले दकन लावा के नीचे दबी हैं।

विन्ध्यन समूह को दो भागों में बाँटा गया है – (i) निचला विन्ध्यन, तथा (ii) ऊपरी विन्ध्यन। निचले विन्ध्यन समूह की शैलों पर सागरीय प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, जबकि ऊपरी विन्ध्यन

शैलें नदीय व ज्वारनदमुखी उत्पत्ति की हैं। निचले विन्ध्यन शैल समूहों में समुद्रों में निक्षेपित शैल चूना पत्थर तथा बालुका पत्थर पाए जाते हैं किन्तु इनके ऊपर नदियों एवं में निक्षेपित बालुका पत्थर उपस्थित हैं जिनकी मोटाई काफी अधिक है तथा ये अब भी क्षैतिज स्थिति में हैं।
निचले विन्ध्यन समूह को पुन: चार सीरीज में विभाजित किया गया है – (i) सेमरी, (ii) कुर्नूल, (iii) भीमा, तथा (iv) मलानी एवं जालौर/सिवाना। सेमरी सीरीज सोन घाटी में उपस्थित है। कुर्नुल सीरीज आन्ध्रप्रदेश के कुर्नूल जिले में पाई जाती है। भीमा सीरीज कर्नाटक की भीमा घाटी में गुलबर्गा तथा बीजापुर जिलों में पाई जाती है। मलानी सीरीज: यह राजस्थान के बाड़मेर व जालौर जिलों में मलानी क्षेत्र में विस्तृत है।
विन्ध्यन शैलों में बहुमूल्य पत्थर, आभूषणों के पत्थर, हीरे, निर्माण सामग्री तथा सीमेन्ट, काँच व रसायन उद्योगों के कच्चे माल मिलते है। इनमें निम्न श्रेणी का लौह अयस्क तथा मैंगनीज भी उपलब्ध होता है। पन्ना तथा गोलकुंडा की खाने हीरों के लिए विख्यात हैं, जो विन्ध्यन काँग्लोमरेट से सम्बन्धित है।

2.4.3 द्रविड़ समूह (Dravidian Group)

द्रविड़ युग में पृथ्वी या जीवन प्रारम्भ हुआ, जो केम्ब्रियन युग (600 मिलियन वर्ष पूर्व) का द्योतक है तथा मध्य कार्बोनीफेरस युग (300 मिलियन वर्ष पूर्व) तक जारी रहा। इस युग की शैलें प्रायद्वीप में प्राय: अनुपस्थित हैं, जहां दीर्घ समय तक शान्त काल बना रहा। इसके विपरीत, प्रायद्वीपेत्तर क्षेत्र में अवतलन हुआ तथा कुछ स्थानों पर सागरीय दशाएँ उत्पन्न हुई।
द्रविड़ समूह की शैलों को निम्नलिखित पाँच भागों में बाँटा गया है – (i) केम्ब्रियन, (ii) ऑर्डोविसियन, (iii) साइलूरियन, (iv) डेवोनियन, तथा (v) निचला व मध्य कॉर्बोनीफेरस।

(i) **केम्ब्रियन:** इन शैलों में शेल, बालूपत्थर, स्लेट, मृतिका, नमक आदि खनिज मुख्यत: कश्मीर में बारामूला, अनन्तनाग व पीर पंजाल क्षेत्र तथा हिमाचल प्रदेश में स्पीति में मिलते हैं।

(ii) **ऑर्डोविसियन:** ये शैलें कश्मीर में लिड्डर घाटी व हंडवारा बेसिन और हिमाचल प्रदेश में स्पीति बेसिन में मिलती हैं।

(iii) **साइलूरियन:** ये शैलें भी कश्मीर में लिहडर घाटी व हंडवारा बेसिन और हिमाचल प्रदेश में स्पीति बेसिन में मिलती हैं।

(iv) **डेवोनियन :** इन शैलों में मोटे कार्दजाइट उपस्थित हैं। ये लिड्डर घाटी, पीर पंजाल तथा स्पीति में मिलती हैं।

(v) **निचला व मध्य कॉर्बोनीफेरस :** इस समूह में लिड्डर घाटी का चूनापत्थर तथा लिपाक सीरीज (स्पीति बेसिन) सम्मिलित हैं। इन्हीं क्षेत्रों में मध्य कॉर्बोनीफेरस समूह की शैलें भी उपस्थित हैं।

2.4.4 आर्य समूह (Aryan Group)

भारतीय भूगर्भविज्ञान में आर्य युग ऊपरी कार्बोनीफेरस युग में प्रारम्भ होता है। इस युग की प्रधान घटनाएँ निम्नलिखित हैं -

ऊपरी कार्बोनीफेरस युग में हिमालय के स्थान पर एक विशाल भूअभिनतीय सागर स्थित था। यह अटलांटिक महासागर से वर्तमान भूमध्यसागर द्वारा तथा प्रशान्त महासागर से चीन द्वारा जुड़ा हुआ था।

1. कश्मीर हिमालय क्षेत्र में तीव्र ज्वालामुखी क्रिया हुई। प्रायद्वीप पर भ्रंश पैदा हुए जिनमें जलीय तथा सरोवरीय (lacustrine) अवसाद निक्षेपित हुए, जिनसे गोंडवाना शैलों का निर्माण हुआ।
2. पृथ्वी के विभिन्न भागों में हार्सीनियन पर्वतीकरण हुआ।
3. गोंडवाना महाद्वीप का विभंजन हुआ तथा इसके विभिन्न भाग प्रवाहित होने लगे। भारतीय प्लेट का उत्तर की ओर प्रवाह हुआ जो एशियाई भूखण्ड (अंगारालैण्ड) से टकराई।
4. बेसाल्ट के विस्तृत प्रवाह से ढकन ट्रैप निर्मित हुआ।
5. टर्श्यरी युग में अल्पाइन पर्वतीकरण हुआ तथा रॉकी, एण्डीज, आल्प्स व हिमालय के नवीन वलित पर्वत उत्पन्न हुए।
6. भारतीय उपमहाद्वीप की वर्तमान आकृति निर्धारित हुई।
7. प्लीस्टोसीन युग में पृश्वी के विशाल भाग मोटी हिमचादरों से ढँक गए।
8. मानव का विकास तथा प्रसार हुआ।

आर्य युग की शैलों को निम्नलिखित नौ प्रमुख समूहों में बाँटा जाता है – (i) गोंडवाना, (ii) ऊपरी कार्बोनीफेरस तथा पर्मियन. (iii) ट्रियासिक, (IV) जुरासिक, (v) क्रिटेशस, (VI) टर्श्यरी (vii) इयोसीन, (viii) ओलिगोसीन तथा मायोसीन, एवं (ix) प्लीस्टोसीन।

2.4.4.1 गोंडवाना समूह (Gondwana System)

ये शैलें गोंडवानालैण्ड के ऊपरी भागों में मिलती है। गोंडवाना समूह मध्य कार्बोनीफेरस युग में प्रायद्वीपीय बेसिनों में निर्मित स्तरित अवसादी शैलों के बड़े पैमाने पर अन्तिम निर्माण को सूचित करता है। इनका निर्माण ऊपरी कार्बोनीफेरस से लेकर जुरासिक युग तक दिरग्यवरदी में हुआ, जिसके दौरान अनेक जलवायवीय परिवर्तन भी हुए।

गोंडवाना शैलें चार प्रमुख क्षेत्रों में मिलती हैं – (i) दामोदर घाटी, (ii) महानदी घाटी, (iii) गोदावरी, वैनगंगा व वर्धा घाटियाँ, तथा (iv) कच्छ, काठियावाड़, पश्चिमी राजस्थान, कश्मीर एवं सिक्किम (चित्र 2.5)।

गोंडवाना समूह को क्षैतिज रूप से निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है – (1) निचला, तथा (2) ऊपरी/फॉक्स (Fox), कृष्णन (Krishnan) तथा मेंहदीरत्ता (Mehdiratta) के अनुसार निचली गोंडवाना शैलों मैं ग्लोसोप्टेरिस वनस्पति (glossopteris flora) मिलती है, जबकि ऊपरी गोंडवाना में टाइलोफाइलम वनस्पति (Ptilophyllum flora) उपस्थित है –

(1) **निचला गोंडवाना समूह (Lower Gondwana System):** इसमें निम्नलिखित तीन सीरीज सम्मिलित हैं – (i) तलचिर (ii) दामुदा, तथा (iii) पंचेत। तलचिर सीरीज का नामकरण उड़ीसा के ढेन्कानाल जिले के तलचिर क्षेत्र के नाम पर हुआ है। इसमें मुख्यत: बालूपत्थर तथा जीवाश्मयुक्त शेल पाई जाती हैं। **दामुदा सीरीज** यह गोंडवाना समूह की सबसे महत्वपूर्ण सीरीज है। इसका सर्वोत्तम विकास पश्चिम बंगाल के दामुदा क्षेत्र में हुआ

है। इसमें कोयला की परतें विशेषत: रानीगंज व बाराकर क्षेत्रों में मिलती हैं। लौह अयस्क, शेल तथा बालूपत्थर भी उपस्थित हैं। **पंचेत सीरीज:** यह निचले गोंडवाना समूह की – नवीनतम सीरीज है, जिसका नामकरण रानीगंज के दक्षिण में पंचेत पहाड़ियों के नाम पर हुआ है। इसमें बालूपत्थर तथा शेल मिलते हैं, जबकि कोयले की परतें अनुपस्थित हैं।

(2) **ऊपरी गोंडवाना समूह (Upper Gondwana System) :** इसमें निम्नलिखित चार सीरीज सम्मिलित हैं – (i) महादेव, (ii) राजमहल, (iii) जबलपुर, तथा (iv) उमिया। **महादेव सीरीज** को सतपुड़ा श्रेणी में स्थित पंचमढ़ी के नाम पर पंचमढ़ी सीरीज भी कहते हैं। इसमें बालूपत्थर तथा शेल के मोटे संस्तर पाए जाते हैं, किन्तु कोयला परतें अनुपस्थित हैं। **राजमहल सीरीज** का नामकरण राजमहल पहाड़ियों के नाम पर हुआ है। इसमें डोलेराइट, चीका, बालूपत्थर, शेल तथा हैमेटाइट पाए जाते हैं। **जबलपुर सीरीज** सतपुड़ा तथा मध्यप्रदेश में व्यापक रूप से विकसित है। इसमें चूनापत्थर, चीका, बालूपत्थर, शेल तथा लिग्नाइट पाए जाते हैं। **उमिया** सीरीज गुजरात के उमिया गाँव के नाम पर नामंकृत है। इसमें सागरीय काँग्लोमरेट, बालूपत्थर तथा शेल मिलते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि गोंडवाना समूह की शैलों में देश का 95 प्रतिशत से अधिक कोयला मिलता है। बालूपत्थर भवन निर्माण में प्रयुक्त होता है। अग्नि मिट्टी रिफ्रेक्टरी में प्रयुक्त होती है। लौह अयस्क, चूना तथा सिरेमिक उद्योग के लिए कच्चे माल भी इसी समूह की शैलों में पाया जाते हैं

2.4.4.2 ऊपरी कार्बोनीफेरस एवं पर्मियन समूह (Upper Carboniferous and Permian System)

इस काल में टॉथिस सागर अंगारालैण्ड तथा गोंडवानालैण्ड के मध्य स्थित था। इस काल में वे भूगर्भिक घटनाएँ हुई – (i) स्पीति बेसन का छिछला होना, तथा (ii) कश्मीर में लावा का तीव्र प्रवाह, जिसने पूर्ववर्ती स्थलाकृति को नष्ट कर दिया तथा पीर पंजाल की शैलों का निर्माण किया। ये शैलें स्पीति बेसिन, कश्मीर, शिमला, हजारा आदि क्षेत्रों में पाई जाती हैं!

2.4.4.3 ट्रियासिक समूह (Triassic System)

यह समूह कश्मीर, हिमाचल प्रदेश दशा कुमायूँ (विशेषत : स्पीति) प्रदेश में सुविकसित है, इसे लिलांग समूह कहा जाता है। इसके निचले, मध्य तथा ऊपरी समूह मोटाई तथा प्रस्तर रचना सम्बन्धी अन्तर पाए जाते है।

2.4.4.4 जुरासिक समूह (Jurassic System)

जुरासिक समूह स्पीति (शेल व चूनापत्थर) साल्ट रेंज (चूनापत्थर, चीका, बालूपत्थर व शेल), ब्लूचिस्तान (चूनापत्थर), हजारा (शेल), कश्मीर (चूनापत्थर), कच्छ (बालूपत्थर शेल, चूनापत्थर), राजस्थान (चूनापत्थर, बालूपत्थर, काँग्लोमरेट तथा कंकरी) एवं तमिलनाडु तट में उपस्थित हैं। इस काल में राजस्थान, कच्छ तथा पूर्वी तट के सहारे सागर का अतिसमूहण हुआ।

2.4.4.5 क्रिटेशस समूह (Cretaceous System)

इस काल में बड़ी मात्रा में बेसाल्ट का प्रवाह हुआ,जिससे दकन ट्रैप का निर्माण हुआ। कोरोमण्डल तट तथा नर्मदा घाटी में सागर का अतिसमूहण हुआ।

इस समूह की शैलें देश में व्यापक रूप से वितरित हैं, जो विविधतापूर्ण हैं। प्रायद्वीप में ये शैलें दकन ट्रोप प्रदेश में उपस्थित हैं। दकन ट्रैप एक ज्वालामुखीय पठार है, जो दरारी उद्भेदन से निर्मित हुआ। इसका ढाल सोपानी है। इसका विस्तार 5 लाख वर्ग किमी से अधिक क्षेत्र पर गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश तथा उत्तरी कर्नाटक में मिलता है। इसके अतिरिक्त लावा के अन्य छोटे तथा बिखरे दूरस्थ क्षेत्र भी हैं, जो राजमहेन्द्री (आन्ध्रप्रदेश), झारखण्ड तथा सिन्ध (पाकिस्तान) में स्थित हैं। दकन ट्रैप की अधिकतम मोटाई मुम्बई के निकट 3,000 मीटर है। ट्रैप की शैलों में अनोर्थाइट. एलबाइट, हाइपरस्थीन, डायोप्साइड, मैग्नैटाइट, ऑर्थोक्लेज, काटरज, इल्मेनाइट, एपेटाइट तथा आर्लिवाइन जैसे खनिज मिलते हैं। ट्रैप की शैलें बाघ तथा लामेट। संस्तरों पर बिछी हैं, जिनके ऊपर नुमुलिटिक चूनापत्थर बिछा है।

दकन ट्रैप का बेसाल्ट सड़क तथा इमारतों के निर्माण में व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त इसमें कार्ट्रज, एगेट, अमेथीस्ट आदि अर्द्ध–मूल्यवान पत्थर (रत्न) भी मिलते है। मैग्रेटाइट से लौह अयस्क प्राप्त होता है। बॉक्साइट भी एक उपयोगी खनिज है। बेसाल्ट के विघटन से 'रेगुर' मिट्टी बनती है, जो कैल्शियम, मैग्रीशियम, कार्बोनेट्स, पोटाश तथा फॉस्फेट से समृद्ध है। यह मिट्टी कपास के लिए अत्युत्तम है।

2.4.4.6 टर्श्यरी समूह (Tertiary System)

टर्श्यरी युग भारत के भूगर्भिक इतिहास में दो कारणों से महत्वपूर्ण है – (i) गोंडवानालैण्ड अन्तिम रूप से भंग हुआ तथा इसके विशाल भाग सागर में डूब गए, तथा (ii) टीथिस भूअभिनतीय अवसादों के उत्क्षेप से हिमालय की उच्च पर्वत श्रेणियों का निर्माण हुआ।

टर्श्यरा समूह की शैलें सिन्ध से लेकर बलुचिस्तान (पाकिस्तान) तक एक लम्बी पेटी में तथा: हिमालय के सहारे असम एवं म्यामार तक मिलती हैं। टर्श्यरी शैलें काठियावाड़ कच्छ, राजस्थान तथा मालाबार और कोरोमण्डल तटों के सहारे भी पाई जाती हैं। टर्श्यरी समूह को निम्नलिखित चार समूह में विभाजित किया जाता है – (i) इयोसीन, (ii) ओलिगोसीन एवं निचला मायोसीन, ((iii) मध्य मायोसीन एवं निचला प्लीस्टोसीन (शिवालिक), तथा (iv) मध्य प्लीस्टोसीन एवं नूतन (चित्र 2अ.3)।

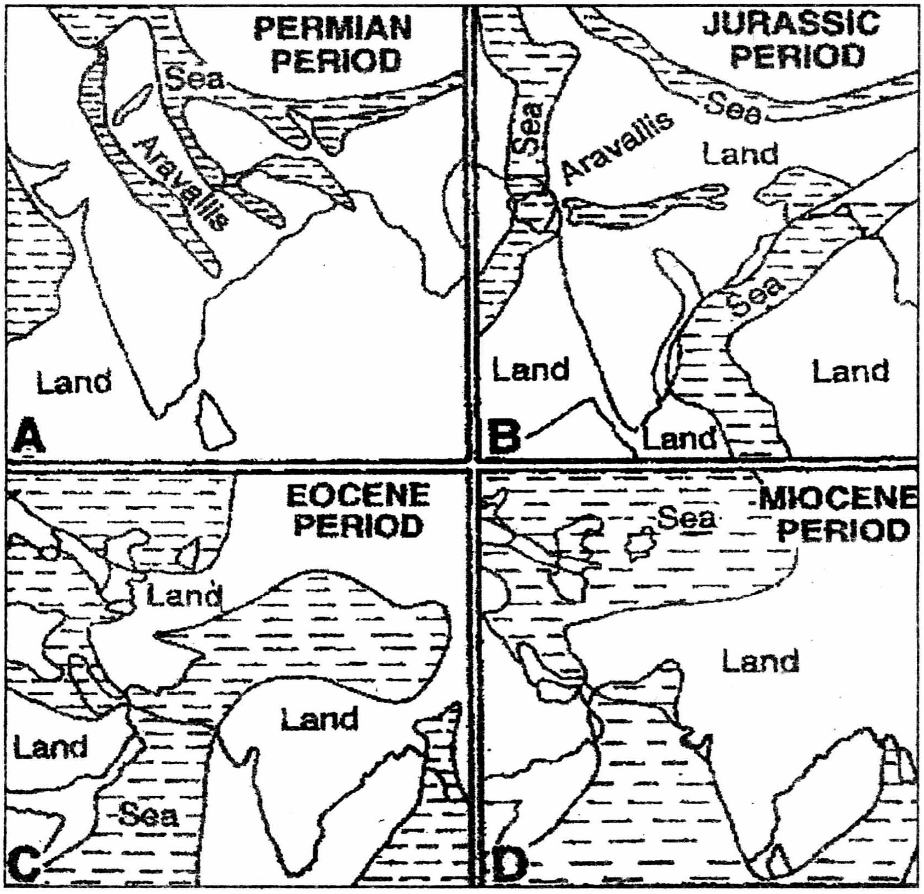

चित्र – 2अ.3: भारत में पर्मियन, जुरासिक, इयोसीन तथा मायोसीन शैलों का वितरण

(i) **इयोसीन समूह (Eocene System) :** इस समूह की शैलों में तीन सीरीज मिलती हैं – (i) रानीकोट (निचली), (ii) लाकी (मध्य), तथा (iii) किरथर (ऊपरी)। रानीकोट सीरीज में बालूपत्थर, शेल तथा चीका के ऊपर चूनापत्थर व शेल बिछे हैं। लाकी सीरीज में चूनापत्थर व शेल एवं किरथर सीरीज में मुख्यत : नुमुलिटिक चूनापत्थर मिलते हैं। किरथर सीरीज जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, राजस्थान, असम तथा गुजरात में मिलती है। रियासी तथा जम्मू के निकट पाई जाने वाली शेल में कुछ कोयला व ग्रेफाइट की परतें भी मिलती हैं।

असम में ये शैले बरैल सीरीज के रूप में मिलती हैं, जो हैफलाँग – दिसाँग भ्रंश के दोनों किनारों पर स्थित है। इनके ऊपरी भाग में कोयला मिलता है। मेघालय में जैन्तिया सीरीज, शिमला में सुबाथू सीरीज तथा गढ़वाल हिमालय भी इयोसीन समूह से सम्बन्धित हैं।

(ii) **ओलिगोसीन एवं निचला मायोसीन समूह (Oligocene and Lower Miocene System)** : ये शैलें हिमालय के प्रथम संचलन के बाद टीथिस के बेसिनों में निक्षेपित हुई। ओलिगोसीन शैलें उथले जल में उत्पन्न हुईं तथा असम की बरैल श्रेणी के अपवाद सहित ये देश में सुविकसित नहीं हैं।

निचले मायोसीन निक्षेप शिमला में डगशाई तथा कसौली संस्तरों, असम की सुरमा सीरीज, कच्छ तथा सौराष्ट्र के रानी व गज संस्तरों, उड़ीसा के बारीपदा संस्तरों तथा केरल के किलोन संस्तरों में मिलते हैं।

(iii) **मध्य मायोसीन एवं निचला प्लीस्टोसीन (शिवालिक) समूह (Middle Miocene and Lower Pleistocene) :** शिवालिक समूह हिमालय की तलहटी के सहारे पाया जाता है। असम में यह दिहांग सीरीज कहलाता है। इस समूह की शैलें अधिकांशत: जलीय (arenaceous) हैं, जो लैगूनों तथा झीलों में नदियों द्वारा निक्षेपित की गईं। इनकी रचना मोटे पदार्थों, जैसे – कंकर, बालूपत्थर, काँग्लोमरेट, चीका आदि से हुई है। ये 5,000 मीटर तक मोटी हैं। शिवालिक समूह को तीन वर्गों में बाँटा जाता है – निचला, मध्य तथा ऊपरी। मोटे पदार्थों से निर्मित होने के कारण ये शैलें हिमालय में अत्यधिक अपरदित एवं अपक्षयित हो गई हैं।

प्रायद्वीप में शिवालिक शैलें कच्छ तथा सौराष्ट्र में गज सीरीज के ऊपर बिछी हैं। दक्षिण भारत में ये शैलें तन्जौर (तमिलनाडु) में कारीकल संस्तर व केरल में वरकला के निकट वरकली संस्तर के रूप में तथा आन्ध्रप्रदेश में राजमहेन्द्री व कुद्दलौर में और तमिलनाडु में दक्षिण अर्काट जिले में मिलती हैं।

निचली शिवालिक शैलें ऊपरी पुरी बालूपत्थर तथा शेल के ऊपर बिछी हैं। प्रमुख शैलें अभ्रकयुक्त बालूपत्थर तथा चीका हैं। मध्य शिवालिक शैलों में अधिकांशत : बालूपत्थर हैं, जिसमें अभ्रक की अधिकता है। ऊपरी शिवालिक समूह में मोटे काँग्लोमरेट, कंकरी तथा चीका सम्मिलित हैं, जो अत्यधिक जीवाश्मयुक्त हैं।

(iv) **मध्य प्लीस्टोसीन एवं नवीन समूह (Middle Pleistocene and Recent System):** ये शैलें भारत में अत्यधिक विस्तृत तथा विविधतापूर्ण विकास वाली हैं। ये शैलें उत्तरी भारत में 6.5 लाख वर्ग किया क्षेत्र पर विस्तृत हैं। ये मुख्यत : नदी निक्षेपों के रूप में दर्शनीय हैं। ये शैलें मध्य तथा आन्तरिक हिमालय के हिम निक्षेपों में तथा मरुस्थलीय, सरोवरीय रथ तटवर्ती निक्षेपों में भी मिलती हैं। वाडिया के अनुसार इस काल में पश्चिमी तट के सहारे व्यापक रेखीय भ्रंशन; बजरी के संस्तरों, करेवा तथा ऊपरी शिवालिक परतों में विवर्तनिक उथल–पुथल प्रमुख घटनाएँ है। वस्तुत: इसी समय देश की वर्तमान स्थलाकृति सुनिश्चित हुई।

लीस्टोसीन हिमनदन पृथ्वी के धरातल पर सबसे व्यायक हिमनदन था। यह हिमालय प्रदेश में भी अनुभव किया गया। इस हिमयुग में चार या अधिक हिमनदन काल हुए जिनके मध्य उष्ण अन्तर्हिमकाल घटित हुए। हिमालय में 1,800 मीटर की ऊँचाई तक व्यापक हिमनदन क्रिया हुई।1,400 मीटर की ऊँचाई तक पहाड़ियों के पार्श्व तथा घाटियों की तली हिमनदीय अपोढ़ (drift) तथा हिमोढ़ों (moraines) से ढँक गई। धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) में 900 मीटर की ऊँचाई पर हिमोढ़ पाए गए हैं। डि–टेरा (De–Terra) तथा पेटरसन (Paterson) ने कश्मीर प्रदेश में चार या पाँच हिमकाल तथा तीन अन्तर्हिमकाल बताए हैं। प्रथम तथा द्वितीय हिमकाल के दौरान कश्मीर घाटी में अवसादों के भारी मात्रा में निक्षेप हुए। तीसरे क्या तथा हिमकाल के हिमोढ़ पीर पंजाल

श्रेणी में मिलते हैं। हिमनदन के कारण हिमालय में अनेक हिमनदीय झीलों की उत्पत्ति हुई, जैसे – भदरवा का कैलाश कुण्ड, बटोल के निकट सानासर बेसिन, गुलमर्ग बेसिन, अल्पात्री, शेषनाग, कौन्सरनाग आदि। हिमनदन के कारण शिवालिक के अधिकांश स्तनपायी जीव नष्ट हो। प्रायद्वीप में प्लीस्टोसीन हिमनदन का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

लीस्टोसीन से पूर्वी भारत में दो अन्य हिमनदन धारवाड़ तथा ऊपरी कार्बोनीफेरस युग में हुए धारवाड हिमनदन के प्रमाण दक्षिण भारत में कालहुग काँग्लोमरेट में मिलते हैं, जबकि ऊपरी कार्बोनीफेरस हिमनदन के प्रमाण अरावली (राजस्थान), मध्यप्रदेश, उड़ीसा तथा शिमला की पहाड़ियों में उपलब्ध होते हैं।

वर्तमान समूह की शैलों की निर्माण प्रक्रिया आज भी जारी है। इस काल में तटीय बालूकास्तूप और नदियों के मुहानों का निर्माण हुआ है। नर्मदा, ताप्ती, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, पेरियार आदि नदियों ने अपने–अपने मुहानों पर काँप के विस्तृत निक्षेप एकत्र किए हैं। बंगाल की खाड़ी के तटीय भागों पर बालूकास्तूप के पर्याप्त जमाव मिलते हैं।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि भारत का प्रायद्वीपीय भाग प्राचीनतम से लेकर आधुनिक काल तक की शैलों से सुसज्जित है। यहाँ पर अनेक ऐसी शैलें पाई जाती हैं जो अपने मूल रूप को बदल चुकी हे। इसके विपरीत, हिमालय पर्वतीय प्रदेश व विशाल मैदान प्रमुख रूप से टर्श्यरी व आधुनिक काल की शैलों से सुसज्जित हैं।

बोध प्रश्न– 1

1. किसी प्रदेश की भूगर्भिकी का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है?

   ....

   ....

2. भारत के प्रमुख शैल समूहों तथा शैल समूहों को कितने समूहो में संगठित किया गया है?

   ....

   ....

3. आर्कियन शैलों का निर्माण कब हुआ? भारत में ये शैल समूह कहाँ पाए जाते हैं?

   ....

   ....

4. देश के 95 प्रतिशत कोयला भण्डार किन शैलों में मिलते है? ये शैलें कब बनीं? भारत में ये किन प्रमुख क्षेत्रों में मिलती है?

   ....

   ....

5. दकन ट्रेप का निर्माण कब और कैसे हुआ?

   ....

   ....

6. टर्श्यरी युग भारत के भुगर्भिक इतिहास में किन कारणों से महत्त्वपूर्ण है?

....

....

7. टर्श्यरी पर्वतीकरण कब और कितने चरणों में सम्पन्न हुआ? इन चरणों के दौरान हिमालय के कौनसी पर्वत क्षेत्रों का निर्माण हुआ?

....

....

8. भारत में धारवाड़ शैल समूह कहाँ मिलते हैं?

....

....

9. भारत में कुड्डप्पा शैलें किन प्रमुख क्षेत्रों में वितरित पाई जाती है?।

....

....

10. विन्ध्य शैलों में कौनसे खनिज उपलब्ध होते हैं?

....

....

2.6 सारांश (Summary)

भारत में पुरा कैम्ब्रियन (600 मिलियन वर्ष पूर्व) से लेकर आधुनिक काल तक की शैल संरचनाएं मिलती हैं। स्तरशैलिक दृष्टि से प्रायद्वीप एक प्राचीन स्थिर भूखण्ड है, जो आर्कियन से लेकर आर्य समूह तक की जटिल 'से निर्मित है। यह पठार पुरा धारवाड़ से लेकर सीनोजोइक तक अनेक स्थलाकृतिक चक्रों से होकर गुजरा है, जिसने प्रदेश की भौतिकाकृति को अत्यधिक प्रभावित किया है। हिमालय की उत्पत्ति टर्श्यरी युग में टीथिस भूअभिनति के अवसादों में उत्क्षेप तथा वलन क्रिया से हुई। पंजाब में सिन्धु बेसिन से लेकर असम में ब्रह्मपुत्र घाटी तक विस्तीर्ण भारत के उत्तरी विशाल मैदान की उत्पत्ति अग्रगर्त में हिमालयी नदियों द्वारा निक्षेपित मोटे काँपीय अवसादो से हाल ही में हुई है।

भारत में आर्कियन शैलें बंगाल नीस, बुन्देलखण्ड नीस, चारनोकाइट नीस, हिमालय नीस के रूप में लगभग 1,87,500 वर्ग किमी क्षेत्र में मिलती हैं। पुराण समूह कुड्डप्पा तथा विन्ध्यन दो शैलसमूहों के रूप में मुख्यत आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान और लघु हिमालय क्षेत्रों में मिलता है। द्रविड़ समूह कैम्ब्रियन, ऑर्डोविसियन, साईलुरियन, डेवोनियन तथा निचले व मध्य कार्बोनीफेरस शैलसमूहों के रूप में मुख्यत : प्रायद्वीपेत्तर क्षेत्र में मिलता है। प्रायद्वीप में ये प्राय: अनुपस्थित हैं। आर्य समूह गोंडवाना ऊपरी कार्बोनीफेरस एवं पर्मियन, ट्रियासिक, जुरासिक, क्रिटेशस तथा टर्श्यरी शैलसमूहों के रूप में देश के विभिन्न भागों में वितरित मिलता है। गोंडवाना समूह की शैलों में देश का 95 प्रतिशत से अधिक कोयला मिलता है। टर्श्यरी युग में दो महत्वपूर्ण भूगर्भिक घटनाएँ हुई – (i) गोंडवानालैण्ड अन्तिम रूप से भंग हुआ एवं इसके विशाल भाग सागर में डूब गए, तथा (ii) टीथिस भूअभिनतीय अवसदों के उत्क्षेप से हिमालय

की रचना हुई। मध्य प्लीस्टोसीन एवं नवीन समूह की शैलें भारत में अत्यधिक विस्तृत (उत्तरी भारत में 6.5 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर) तथा विविधतापूर्ण हैं। ये मुख्यत: नदी निक्षेपों के रूप में मिलती है।

2.7 शब्दावली (Glossary)

- **अन्तर्हिमयुग (Interglaciel Period) :** हिमानीकरण तथा शीतल जलवायु वाले हिमयुगों के मध्य की अपेक्षाकृत गर्म जलवायु वाली अवधि, जिस समय हिमचादरों का निवर्तन (retreat) होता है।
- **अग्रगर्त (Foredeep) :** किसी पर्वतीय तटीय भूमि के निकट अथवा उसके समानान्तर महासागर की तली में निर्मित गहरा, संकीर्ण तथा तीव्र ढाल वाला लम्बाकार गर्त।
- **अधिक्षेप (Overthrust) :** शैली के अत्यधिक वलन की स्थिति, जिसमें अत्यधिक सम्पीडन के कारण वलन की दोनों भुजाएँ क्षैतिज तल के सहारे एक–दूसरे के समानान्तर हो जाती हैं।
- **अपशेप मैदान (Outwash Plain) :** किसी हिमानी के हिमद्रवण से उत्पन्न सरिताओं द्वारा किए गए निक्षेप से निर्मित जलोढ़ मैदान।
- **अपनति (Anticline) :** शैल संस्तरों में सम्पीडन के कारण वलन पड़ने से (वलित संरचना में) निर्मित ऊपरी मेहराबदार मोड़।
- **अवतलन (Subsidence) :** भूपर्पटी के किसी भाग का अपने चतुर्दिक भागों के सापेक्ष नीचे धँसने की क्रिया।
- **अवशिष्ट पर्वत (Residual Mountain)** – वह पर्वत जो अनाच्छादन क्रियाओं द्वारा कटकर अधिक नीचा तथा सपाट शिखर वाला हो।
- **असममित घाटी (Asymmetrical Valley) :** असमान पार्श्वों वाली घाटी, जिसके एक पार्श्व का ढाल दूसरे पार्श्व की तुलना में अधिक होता है।
- **असममित वलन (Asymmetrical Fold)** वलन का एक प्रकार, जिसकी दोनों भुजाओं के झुकाव में असमानता पाई जाती है।
- **काँग्लोमरेट (Conglomerate) :** गोलाकार कंकड, पत्थर, रेत, मृत्तिका आदि के मिश्रण द्वारा निर्मित अवसादी शैल।
- **गॉर्ज (Gorge) :** तीव्र पार्श्वों वाली अधिक गहरी किन्तु संकीर्ण घाटी।
- **चतुर्थ महाकल्प (Quaternary Era) :** भूवैज्ञानिक इतिहास में कैनोजोइक महाकल्प का अन्तिम कल्प, जिसकी अवधि 15 लाख वर्ष पूर्व से लेकर अब तक मानी जाती है।
- **जीवाश्म (Fossils) :** भूपर्पटी की शैलों में लम्बी अवधि तक दबा हुआ प्राणियों तथा पदार्थों का परिरक्षित अवशेष।
- **भ्रंश घाटी (Rift Valley) :** दो समानान्तर भ्रंशों के मध्य का गहरा भाग, जिसकी चौड़ाई अत्यन्त कम किन्तु लम्बाई अधिक होती है।
- **नीस (Gneiss) :** मोटे तथा बड़े कणों वाली रूपान्तरित शैल, जिसकी संरचना प्राय : पर्णित (bandad) होती है।

- **प्लेट विवर्तनिकी (Plate Tectonic) :** भूआकृतिविज्ञान का एक नवीन सिद्धान्त, जो प्लेटों की आकृति, उनके प्रवाह तथा प्रवाह से उत्पन्न स्थलाकृतियों की व्याख्या करता है।
- **बालूकास्तूप (Sand Dune) :** मरुस्थलों में पवन द्वारा बालू के निक्षेप से निर्मित टीला।
- **हॉर्स्ट (Horst) :** दो समानान्तर भ्रंशों के बीच के भूखण्ड के ऊपर उठ जाने से अथवा दो समानान्तर भ्रंशों के बाहरी भूखण्डों के नीचे धँस जाने से निर्मित उच्चभूमि या पर्वत।
- **भूसन्नति (Geosyncline) :** भूपर्पटी में दीर्घकालीन संवलन द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पन्न नतवलन (down fold)।
- **भ्रंश (Fault) :** तनावमूलक भूसंचलन की तीव्रता के कारण भूपटल की शैलों में एक तल के सहारे उत्पन्न दरार या विभंग, जिसमें विभगतल के सहारे बड़े पैमाने पर शैल खण्डों का स्थानान्तरण होता है।
- **मेसोजोइक महाकल्प (Mesozoic Era)** : भूवैज्ञानिक इतिहास का द्वितीय महाकल्प, जिसकी अवधि 22.5 करोड़ वर्ष पूर्व से लेकर 6.5 करोड़ वर्ष पूर्व तक मानी जाती है।
- **वलन (Fold) :** भूगर्भिक शक्ति द्वारा उत्पन्न क्षैतिज संचलन के कारण भूपटलीय शैलों में उत्पन्न होने वाला लहरदार मोड़ या झुकाव।
- **विवर्तनिकी (Tectonic) :** भूविज्ञान की एक शाखा जो भूपटल के संरचनात्मक तथ्यों के निर्माण में संलग्र प्रसछों के अध्ययन से सम्बन्धित होती हे।
- **सम्पीडन (Compression) :** किसी क्षेत्र या पदार्थ पर विपरीत दिशाओं से पड़ने वला बल, जिससे उसके आकार में संकुचन होता है।
- **शैल संस्तर (Rock Bed) :** भूपटल में स्थित किसी एक ही प्रकार का शैल संगठन।

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. तिवारी, विजय कुमार : **भारत का भूगोल**, भाग प्रथम व द्वितीय, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई, 1997
2. सिंह, जगदीश : **भारत – भौगोलिक आधार एवं आयाम,** राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002
3. बंसल, सुरेश चन्द्र **भारत का भूगोल**, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2004
4. गौतम, अलका **भारत का वृहद् भूगोल,** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007 (आंग्ल संस्करण भी उपलब्ध)
5. चौहान, पी. आर. एवं प्रसाद महातम : **भारत का वृहद् भूगोल**, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर 2007
6. मिश्र, जे. पी. **भारत का भूगोल**, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007
7. सिंह, सविन्द्र **भूआकृतिवि ज्ञान**, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2007
8. शर्मा, श्रीकमल, सम्पादक, **भारत का भूगोल**, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल 2004.

9. Government of India: **The Gazetteer of India**, Vol.I– **The Land**,Publication Division, New Delhi, 1965
10. Spate, O.H.K. and Learmonth, A.T.A.: **India and Pakistan– Land People and Economy**, Methuen &Co., London, 1967
11. Wadia, M.S.: **Geology of India**, Tata McGraw Hill Publishing Co.,New Delhi, 1975
12. Krishnan, M.S.: **Geology of India and Burma,** CBS Publishers and Distributors, Delhi, 1982
13. Dixit, K.R.(ed): **India– Geomorphological Diversity**, Rawat Publication, Jaipur, 1994
14. Mathur, S.M.: **Physical Geology of India**, National Book Trust, New Delhi, 1994
15. Valdiya, K.S.: **Dynamic Himalaya**, University Press, Hyderebad, 1998

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न– 1

1. भौतिकाकृतिक लक्षणों को समझने के लिए; खनिजों, शैलों तथा मिट्टी निर्माण प्रक्रिया जानने के लिए; खनिजों तथा भूमिगत जल का पता लगाने के लिए; भूमि–उपयोग नियोजन के लिए, इत्यादि।
2. चार समूहों में – (i) पुरा कैन्बियन (आर्कियन तथा धारवाड़ समुह), (ii) पुराण (धारवाड़ तथा कुड्डप्पा समूह), (iii) द्रविड़ (विन्ध्यन समूह), तथा (iv) आर्यन (गौंडवाना, दकन ट्रैप, टर्श्यरी एवं काटरनरी समूह)।
3. पुरा कैम्ब्रियन महाकल्प में 600 मिलियन वर्ष पूर्व। क्षेत्र – प्रायद्वीप के दो–तिहाई क्षेत्र पर उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बुन्देलखण्ड, राजस्थान, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा आन्ध्रप्रदेश में।
4. गोंडवाना शैलों में, जो लगभग 270 मिलियन वर्ष पूर्व बनीं। चार प्रमुख क्षेत्रों में, वितरित मिलती हैं – (i) दामोदर घाटी, (ii) महानदी घाटी, (iii) गोदावरी, वैनगंगा व वर्धा घाटियाँ, तथा (iv) कच्छ, काठियावाड़, पश्चिमी राजस्थान, कश्मीर एवं सिक्किम।
5. 135 मिलियन वर्ष पूर्व क्रिटेशस लावा के प्रवाह से।
6. दो कारणों से – (i) गोंडवानालैण्ड अन्तिम रूप से भंग हुआ एवं इसके विशाल भाग सागर में डूब गए, तथा (ii) टीथिस भूअभिनतीय अवसादों के उत्क्षेप से हिमालय की उच्च पर्वत श्रेणियों का निर्माण हुआ।
7. तीन चरणों में – (i) ओलिगोसीन (25–40 मिलियन वर्ष पूर्व) – हिमाद्रि या महा हिमालय का निर्माण, (ii) मध्य मायोसीन (14 मिलियन वर्ष पूर्व) – हिमाचल या लघु हिमालय का

निर्माण, तथा (iii) प्लायोसीन के बाद 750 हजार वर्ष पूर्व शिवालिक या बाह्य हिमालय का निर्माण।

8. दक्षिणी दकन, प्रायद्वीप के मध्यवर्ती व पूर्वी भागों, उत्तर–पश्चिमी प्रदेश तथा हिमालय में। सर्वाधिक विस्तार कर्नाटक के धारवाड़ क्षेत्र में।
9. चार प्रमुख क्षेत्रों में – (i) आन्धप्रदेश के कुड्डप्पा व कुर्नूल जिले, (ii) मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा एवं महाराष्ट्र, (iii) राजस्थान–दिल्ली प्रदेश, तथा (iv) लघु हिमालय।
10. बहुमूल्य पत्थर, आभूषण के पत्थर, हीरे, काँच, रसायन, निर्माण सामग्री व सीमेन्ट तथा निम्न श्रेणी के लौह अयस्क व मैंगनीज।

2.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत के प्रमुख शैलसमूह का वर्गीकरण कीजिए तथा उनके प्रमुख लक्षण व आर्थिक महत्व को निरूपित कीजिए।
2. आर्कियन समूह की शैलें भारत की आधारक्ष शैलें हैं। ' इनकी प्रमुख विशेषताओं, वितरण तथा आर्थिक महत्व को समझाइए।
3. धारवाड़ समूह के शैलसमूहों के प्रमुख लक्षणों, वितरण तथा आर्थिक महत्व को प्रदर्शित कीजिए
4. 'संसाधनों की दृष्टि से गोंडवाना शैलसमूह का अत्यधिक महत्व है। ' इनके वितरण तथा प्रमुख विशेषताओं के सन्दर्भ में समझाइए।
5. टर्श्यरी युग भारत के भूगर्भिक इतिहास में क्यों महत्वपूर्ण है? इसके विभिन्न शैलसमूहों का वर्णन कीजिए।

इकाई 2 ब : भू–आकृति (Physiography)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भारत के भूआकृतिक प्रदेश

2.2.1 उत्तरी पर्वत

2.2.2 उत्तरी विशाल मैदान

2.2.3 प्रायद्वीपीय पठार

2.2.4 तटीय मैदान

2.2.5 भारतीय द्वीपसमूह

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे –

- भारत की भूआकृति की विक्यिता,
- भारत की भूआकृति का कालिक विकास कम,
- भारत के भूआकृति विभागों एवं उनके उपविभागों की धरातलीय विशेषताओं का विशद् विवरण।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत की भूगर्भिक संरचना ने देश में उच्चावच तथा भौतिक लक्षणों की विविधता को जन्म दिया है। देश के लगभग 10.6 प्रतिशत क्षेत्र पर पर्वत, 18.5 प्रतिशत क्षेत्र पर पहाडियाँ, 27.7 प्रतिशत क्षेत्र पर पठार तथा 43.2 प्रतिशत क्षेत्र पर मैदान विस्तृत हैं। देश के उत्तर में हिमाच्छादित शिखर, विशाल हिमनद गहरी तंग तथा अनुदैर्ध्य घाटियों सहित हिमालय की उच्च पर्वत श्रेणियों का विस्तार है। हिमालय के दक्षिण में सिन्धु, गंगा व ब्रहमपुत्र क्रम की विशाल नदियों द्वारा प्रवाहित समतल मैदान स्थित हैं। इन नदियों के बेसिन समतल घाटियों, नदी तटीय टीलों, विसर्प, गोखुर झील, बाढ़ के मैदान आदि लक्षणों से युक्त हैं। पश्चिमी राजस्थान एक रेतील मरुस्थल है, जो रेतीले टीलों तथा अल्पकालिक जलधाराओं से युक्त एक वृक्षहीन भूक्षेत्र है। मैदान के दक्षिण में भारतीर प्रायद्वीप टेबिलनुमा एक सपाट भूमि है, जिस पर अपरदित शैलों, स्कार्फ भूमि, सोपानी स्थलाकृति तथा कहीं –कहीं समतल शिखरयुक्त अवशिष्ट श्रेणियाँ व घाटियाँ स्थित हैं। अरब सागर में लक्षद्वीप तथा बंगाल की खाड़ी में अण्ड मान एवं निकोबार द्वीपसमूह मुख्यत प्रवाल उत्पत्ति के हैं।

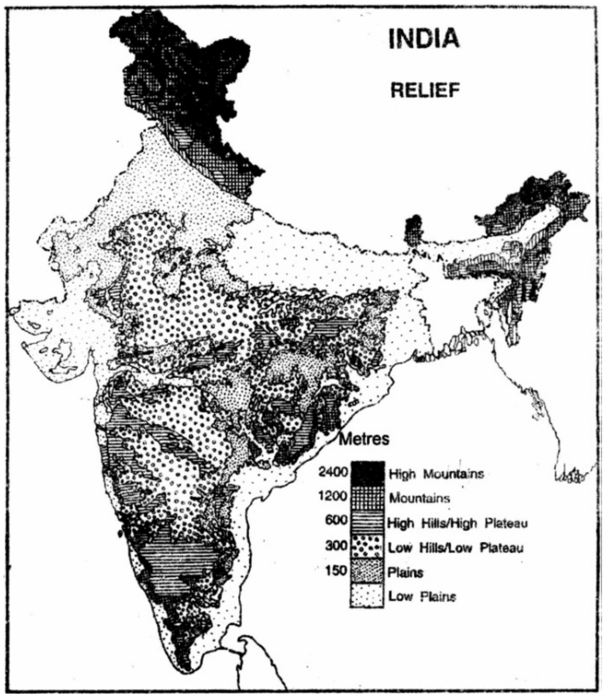

चित्र – 2ब.1: भारत का उज्जावच

2.2 भूआकृतिक प्रदेश (Physiographic Divisions)

भारत एक विशाल देश है। इसकी सीमाओं के अन्दर भौतिक दशाओं में भी बहुत अधिक विविधता मिलती है। इस विविधता का अनुमान इसी से लगया जा सकता है कि द्वितीय अनुक्रम (Second order) के सभी भूस्वरूप भारत में उपस्थित हैं। ये हैं पर्वत, पठार और मैदान। उत्तरी सीमा पर हिमालय पर्वत की श्रेणियां स्थित हैं। ठीक इसके दक्षिण निक्षेपण से बना सतलज –गंगा का मैदान है। इसके भी दक्षिण प्रायद्वीपीय पठार हैं जो विश्व के सुस्थिर भूखण्डों में से एक है। ' उनके अंदर काफी विभिन्नताएं हैं। एक पर्वतीय प्रदेश में पठारी और मैदानी क्षेत्र भी दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए उत्तर के पर्वतीय प्रदेश के बीच स्थित श्रीनगर की घाटी एक समतल मैदान है। इसके विपरीत प्रायद्वीपीय पठार पर पर्वत श्रेणियों के अवशेष तथा पहाड़ियां भी पायी जाती हैं। संरचना, उच्चावच एवं स्थिति को ध्यान में रखते हुए एस. पी. चटर्जी ने भारत को सात प्रमुख भूआकृतिक विभागों (Physiographic Divisions) में बांटा है; जिन्हे पाँच वृहद् प्रदेशों मैं रखा जा सकता है – (I) उत्तरी पर्वत, (II) उत्तरी विशाल मैदान, (III) प्रायद्वीपीय पठार, (Iv) तटीय मैदान, तथा (V) भारतीय द्वीपसमूह (चित्र 2.2 एवं 2.3)।

2.2.1 उत्तरी पर्वत (Northern Mountains)

भारत की उत्तरी सीमा पर फैले पर्वतीय भाग को सामूहिक रूप से उत्तरी पर्वतीय प्रदेश कहा जाता है। इस भाग में हिमालय पर्वत के अलावा कई पर्वत श्रेणियां स्थित हैं। कश्मीर की पर्वत श्रेणियाँ एवं पठार, हिमालय तथा पूर्वांचल की श्रेणियाँ एक विशिष्ट तन्त्र की रचना करती हैं। हिमालय एक अत्यन्त ऊबड़ –खाबड़ तथा अविच्छिन्न विस्तारयुक्त उच्च पर्वतीय प्रदेश है जो

पश्चिम में सिन्धु नदी से पूर्व में ब्रहमपुत्र नदी तक विस्तृत है। यह विश्व के नवीनतम वलित पर्वतों में से एक है।

2.2.1.1 उत्पत्ति एवं विकास (origin and Evolution) ।

हिमालय की निम्नलिखित विशिष्टताएँ हैं जिन्हें उनकी उत्पत्ति तथा विकास की व्याख्या समय ध्यान में रखना चाहिए –

1. हिमालय की तीन समान्तर श्रेणियाँ सिन्धु तथा ब्रहमपुत्र के गॉर्ज के मध्य एक उन्नत बनाती हैं।
2. हिमालय के दोनों सिरों पर दीर्घ वलन (syntaxial bend) उपस्थित हैं – पश्चिम में कश्मीर वलन तथा पूर्व में असम वलन। इन्हें 'हेयरपिन ' (gairpin) वलन की संज्ञा दी गई है।
3. तिब्बत के पठार से निकलने वाली अनेक नदियाँ, जैसे - सिन्धु, सतलज, अरुण, कोसी तथा ब्रहमपुत्र ने हिमालय को काटकर गहरी गॉर्ज का निर्माण किया है। ये नदियाँ पूर्ववर्ती अपवाह तन्त्र को प्रस्तुत करती हैं।
4. मुख्य 'हिमालय श्रेणी पूर्व की ओर अधिक ऊंची है। यहाँ विश्व के कुछ उच्चतम शिखर स्थित हैं।
5. हिमालय पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में अधिक चौड़े हैं।
6. हिमालय पश्चिम में सोपान की भांति दक्षिण से उत्तर की ओर –ऊँचे उठे हैं तथा प्रत्येक सोपान क्रमिक सीमान्त भ्रंशों द्वारा पृथक् है।
7. हिमालय में विभिन्न भूगर्भिक युगों की अत्यधिक कायान्तीरत शैलें मिलती हैं। इन शैलों में विभिन्न युगों के जीवाश्म भी मिलते है।
8. सम्पूर्ण हिमालय में एक –जैसी तीव्रता वाली वलन क्रिया नहीं हुई है। महा हिमालय श्रेणी प्रधानत: नापे या ग्रीवा खण्डों (nappes) का क्षेत्र है, जैसे – कश्मीर नापे, गढ़वाल नापे. अल्मोड़ा नापे, काठमाण्डू नापे तथा खुन्बु नापे; जबकि बाहय हिमालय (शिवालिक) में असममित अभिनतियों (synclines) तथा अपनतियों (anticlines) वाले सरल वलन पाए जाते हैं।

हिमालय की जटिल संरचना को देखते हुए भूवैज्ञानिकों ने इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न यह प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें निम्नलिखित दो प्रमुख वर्गो में रखा जा सकता है – (i) भूअभिनतीय विकास, तथा (ii) प्लेट विवर्तनिकी पर आधारित विकास।

1. भूसन्नतीय विकास (Geosynclinal Evolution)

इस मत के विद्वानों ने हिमालय की शैलों की प्रकृति तथा सागरीय जीवाश्मों के साक्ष्यों के आधार पर अपने निष्कर्ष दिए हैं। हिमालय की भूअभिनतीय उत्पत्ति को विद्वानों द्वारा व्यापक मानता प्राप्त हुई है। इस वर्ग के विद्वानों में सुएस (Suess), आर्गण्ड (Argand) कोबर (Kober) आदि सम्मिलित हैं। इन विद्वानों के अनुसार पेन्जिया (Pangea) के विभंजन से उत्तर में स्थित अंगारालैण्ड तथा दीक्षण में स्थित' गोंडवानालैण्ड. भूखण्डों के मध्य टीथिस सागर की उत्पत्ति हुई। यह सागर मेसोजोइक युग (18 करोड़ वर्ष पूर्व) में –हिमालय के स्थान पर स्थित था। दोनों भूखण्डों के अपरदन से प्राप्त पदार्थ टीथिस अभिनति में एकत्रित हुए पदार्थ के दबाव के कारण

अभिनति की तली में अवतलन हुआ तथा पदार्थो की मोटाई बढ़ती गई। क्रिटेशियस युग के दौरान अभिनति की तली में उत्थान होने लगा, जिससे पदार्थ में वलन पड़े तथा हिमालय की तीन श्रेणियों का क्रमिक विकास हुआ।

सुएस का मत : एडवर्ड सुएस के अनुसार हिमालय में वलन उत्तर की ओर से सम्पीडन के कारण हुआ। अंगारालैण्ड ने एक पश्चमूमि (foreland) की भांति व्यवहार किया, जबकि गोंडवानालैण्ड ने स्थिर रहते हुए अग्रभूमि (foreland) का कार्य किया। अंगारालैण्ड के दक्षिण की ओर संचलन के कारण टीथिस के अवसादों में प्रायद्वीपीय भूमि की ओर सम्पीडन हुआ। इस प्रकार तीन चापाकर श्रेणियों का निर्माण हुआ।

आर्गण्ड का मत : स्विस भूवैज्ञानिक आर्गण्ड के अनुसार अंगारालैण्ड एक स्थिर भूखण्ड था, जबकि गोंडवानालैण्ड उत्तर की ओर गतिशील हुआ, जिससे टीथिस के अवसादों में वलन हुआ। विद्वानों ने यद्यपि डस सिद्धान्त की बहुत आलोचना की, तथापि बाद में प्लेट विवर्तनिकी ने इसे पुष्ट किया।

कोबर का मत : कोबर के अनुसार: हिमालय के स्थान पर टीथिस भूसन्नति विद्यमान थी। हिमालय के उत्तरी सिरे पर अंगारालैण्ड तथा दीक्षिणी सिरे पर गोंडवानालैण्ड स्थित था। दोनों ने ही अग्र भूमि का कार्य किया। कोबर ने इन दृढ़ भूखण्डों को ' क्रेटोजन ' (Kratogens) कहा। इयोसीन युग के दौरान दोनों दृढ़ भूखण्ड निकट आने लगे, जिससे टीथिस के अवसादों में वलन पड़े। इस प्रकार उत्तर में कुनलुन तथा दक्षिण में हिमालय पर्वत बने। तिब्बत के पठार ने इन दोनों पर्वतों के बीच ' मध्यीपण्ड (median mass) है, जो वलन क्रिया से अप्रभावित रहा।

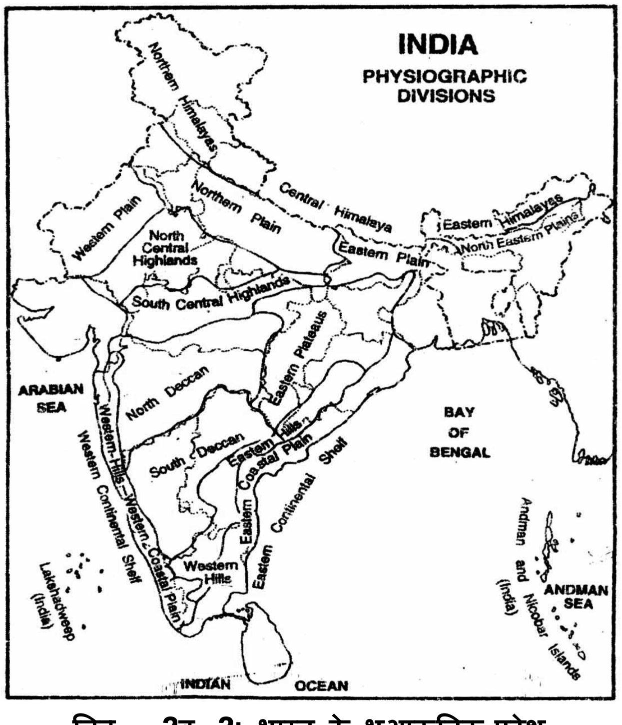

चित्र – 2ब. 2: भारत के भूआकृतिक प्रदेश

हिमालय की उत्पत्ति के बारे में अनेक विद्वानों, जैसे – बुर्रार्ड (Burrard), फॉक्स एवं वैडल (Fox and Weddel), हीम (Heim), पास्को (Pascoc) आदि ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए। यद्यपि

कोबर का सिद्धान्त हिमालय के अनेक लक्षणों की सही व्याख्या करता है (विशेषत : तिब्बत के पठार का मध्यपिण्ड की भांति व्यवहार करने के सम्बन्ध में) तथापि अनेक विशेषताओं की व्याख्या अपूर्ण ही है। उदाहरणार्थ, यदि गोंडवानालैण्ड अग्रभूमि के उत्तर की ओर गतिशील होने से हिमालय की उत्पत्ति हु ई तो उच्चतम तथा तीव्र वलन वाली पर्वत श्रेणी विशाल मैदान के सिरे पर हिमालय के सबसे दक्षिणी भाग में होनी चाहिए थी। वस्तुस्थिति इससे उल्टी है। हिमालय की सबसे दक्षिणी श्रेणी (शिवालिक) तीनों समान्तर श्रेणियों में सबसे नीची है। इसके अतिरिक्त, हाल ही में प्रकाशित कुछ अन्य विसंगतियाँ भी हैं, जिनका स्पष्टीकरण हिमालय की भूसन्नतीय उत्पत्ति से सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ, (i) द्रास तथा कोहिस्तान से पूर्व की ओर विस्तृत 600 किमी लम्बी ज्वालामुखीय श्रृंखला, जो 9 करोड़ वर्ष पुरानी है, (ii) स्पीति नदी की तली की शैलों में मृत मोलस्क (molluscs) आदि सागरीय जीवाश्मों तथा सागरीय लहरों के चिन्ह (iii) देहरादून, काठमाण्डू तथा दार्जिलिंग में ताड़ वृक्ष के जीवाश्म, जो यह सूचित करते हैं कि ये क्षेत्र कभी सागरीय पुलिन (sea beaches) थे, (iv) शिमला के निकट ग्रेनाइट की उपस्थिति, जो केवल अत्युच्च तापमान पर ही निर्मित हो सकती थी, (v) लद्दाख में 14,000 फुट की ऊँचाई पर हिप्पोपोटेमस की खोपड़ी की खोज, (vi) जास्कर श्रेणी के शिखर पर स्थित शैलें, जो भूपटल से 10–20 किमी नीचे ही बन सकती थीं इत्यादि।

2. प्लेट विवर्तनिकी पर आधारित उत्पत्ति (Origin based on plate Tectonics)

प्लेट विवर्तनिकी द्वारा हिमालय की अनेक जटिल विसंगतियों, उच्च भूकम्पीयता (seismicity) तथा अस्थिरता की व्याख्या सम्भव है। वर्ष 1960 के दशक में प्लेट विवर्तनिकी सिद्धान्त चर्चित हु आ। इस सिद्धान्त के अनुसार हिमालय –जैसे वलित पर्वत प्लेटों की अभिसारी (converging) सीमा पर बने हैं। जब दो महाद्वीपीय प्लेटें परस्पर टकराती हैं तो हल्की प्लेट भारी प्लेट के नीचे क्षेपित (subduct) हो जाती है। इससे उत्पन्न क्षैतिज सम्पीडन अवसादों को भींचकर वलनों का निर्माण करता है, जो प्लेट के किनारों पर या दो प्लैटों के मध्य स्थित भूसन्नति में निक्षेपित होते हैं।

हिमालय का निर्माण 'एशियाई तथा भारतीय प्लेटो के अभिसरण क्षेत्र (convergence zone) के स्थान पर हु आ। टीथिस सागर दोनों प्लेटों के निकट आने से संकुचित होने लगा। भारतीय प्लेट ने टीथिस के अवसादों में क्षैतिज सम्पीडन उत्पन्न किया, जिससे तीन 'समान्तर श्रेणियाँ निर्मित हु ईं। यह प्रक्रिया 3–2 करोड़ वर्ष पूर्व पूर्ण हु ई। वाडिया के अनुसार हिमालय बहु त तेजी से यकायक ऊपर उठे, अतएवं समान्तर परतों के मध्य सीमान्त भ्रंश पाए जाते हैं (चित्र 2ब.3)

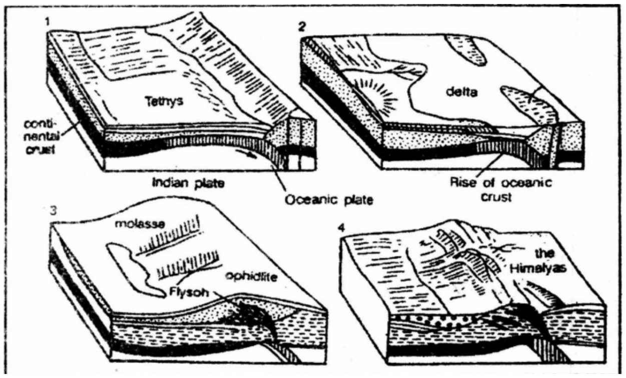

चित्र – 2ब.3 : भारत के भूआकृतिक प्रदेश

प्लेट विवर्तनिकी से हिमालय के अनेक ऐसे तथ्यों का स्पष्टीकरण हो जाता है जो विद्वानों को उलझा रहे थे। गहरे भूकम्प मूल (focus) तथा उच्च परिमाण (magnitude) वाले भूकम्प सरकती हुई प्लेटों वाले अभिसारी क्षेत्रों में उत्पन्न होते हैं। भ्रंशन तथा प्रलयकारी उद्गारों से भी विनाशकारी भूकम्प आते हैं।

हिमात्म अत्यधिक विषम स्थलाकृति तथा उच्च उचावच प्रस्तुत करते हैं। आन्तरिक हिमालय में भव्य हिमाच्छादित शिखर तथा गहरी V –आकार की घाटियों अन्तर्ग्रन्थित स्कन्धों (interlocking spurs) सहित मिलती हैं। इसके विपरोत, लघु हिमालय में तीव्र ढाल, सघन वनाच्छादित कटक (ridges), पहाड़ियों तथा श्रेणियाँ पाई जाती हैं। हिमोढ़ों (moraines), सूच्चाकार शिखर (pyramidal peaks), अरेतों (aretes) से युक्त हिमनदीय स्थलाकृति तथा पीरहिमानीय (periglacial) लक्षण यहां मिलते हैं। कश्मीर से असम तक विस्तृत हिम क्षेत्र पाए जाते है। ये हिम क्षेत्र अनेक घाटी हिमनदों को हिम तथा गंगा के मैदान की सराव सदवाहिनी नदियों को जल प्रदान करते है। हिमालय में अन्तर्पर्वतीय पठारों (intermontane plateaus) तथा विशाल बेसिनों का अभाव है। कश्मीर की घाटी हिमालय में एकमात्र विशाल समतल क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त दून, काँगड़ा, कुल्लू काठमाण्डू भागीरथी तथा मन्दाकिनी की घाटियाँ भी यहाँ स्थित हैं।

हिमालय का एक अन्य सार्वभौमिक लक्षण उच्चावच का प्रतिलोमीकरण (inversion of relief) है, अर्थात् अपनतियाँ (anticlines) घाटियों तथा अभिनीतयाँ (synclines) शिखर एवं कटकों का निर्माण करती हैं। महा हिमालय तथा लघु हिमालय में नदी वेदिकाएँ बहुधा मिलती हैं। अनेक स्थानों पर नदियों के दोनों तटों पर युग्मित वेदिकाएँ (paired terraces) पाई जाती हैं। आन्तरिक हिमालय में अधिकांश घाटियाँ U –आकार अथवा I –आकार की गॉर्ज के रूप में स्थित हैं। गंगा तथा उसकी सहायक नदियाँ V – आकार की घाटियां बनाती हैं।

2.2.1.2 हिमालय की सरंचना (Structure of Himalayas)

हिमालय की संरचना शिमला गढ़वाल तथा कुमायूँ खण्डों में आल्प्स –पर्वत –जैसी तथा स्पीति प्रदेश में जूड़ा –पर्वत –जैसी है। आल्प्स प्रकार की संरचना जटिल है जिसमें अनेक क्षेप (thrust) तथा ग्रीवाखण्ड (nappe) पाए जाते हैं, जबकि जूड़ा प्रकार की संरचना सरल है। हिमालय का एक विशिष्ट लक्षण अनेक दीर्घ वलनों या 'हेयरपिन ' मोड़ों की उपस्थित है, जो पश्चिमी तथा पूर्वी सिरों पर मैजूद हैं।

वलनों की तीव्रता तथा निर्माण की आयु के आधार पर हिमालय को निम्नलिखित चार समान्तर सरचनात्मक क्षेत्रों में –बाँटा जाता है – (i) तिब्बत क्षेत्र (ट्रान्स–हिमालय ,(ii) महा हिमालय, (iii) लघु हिमालय, तथा (iv) उप हिमालय।

(i) **तिब्बत क्षेत्र :** यह क्षेत्र 40 किमी चौड़ा है। इसमें सागरीय अवसाद पाए जाते हैं, जिनके ऊपर टर्श्यरी ग्रेनाइन् शेले बिछी हैं। इसमें आंशिक रूप से कायान्तीरत अवसाद पाए जाते हैं, जो हिमालयी अक्ष (axis) के मूल (core) की रचना करते है

(ii) **महा हिमालय क्षेत्र:** यह क्षेत्र लगभग 25 किमी चौड़ा है। इसकी औसत ऊँचाई 5,000 मीटर है। यह क्षेत्र लघु हिमालय के उत्तर में एक दीवार की भांति एकायक उठा हुआ है। इसी क्षेत्र में विश्व के कुछ सर्वोच्च शिखर, विस्तृत हिम। क्षेत्र तथा हिमनद स्थित हैं। यह प्रधानत:

रवेदार आग्नेय या कायान्तीरत शैंली से निर्मित है। यह एक अविच्छिन्न श्रेणी है, जिसमे तीव्र कटक तथा चौड़े स्कन्ध विशेष रूप से मिलते हैं।

(iii) **लघु हिमालय क्षेत्र:** यह क्षेत्र लगभग 80 किमी चौड़ा है। इसकी औसत ऊँचाई 1,300– 5,000 मीटर है। इसमें जीवाश्मरहित अवसाद या कायान्तीरत रवेदार शैलें पाई जाती हैं, जो कश्मीर, हिमाचल तथा गढ़वाल प्रदेश में प्रमुख ग्रीवाखण्ड क्षेत्र की रचना करती हैं। यहाँ स्लेट, चूनापत्थर तथा क्रार्टजाइट प्रमुख शैलें हैं। इस क्षेत्र के दक्षिणी सिरे पर अत्यधिक सम्पीडित ऊपरी पैल्योजोइक से इयोसीन युग तक की शैलों वाली स्वस्थानिक मेखला (autochthonous belt) मिलती है, जिसमें प्राय : ज्वालामुखी शैलें पाई जाती हैं। इनमें क्षैतिज संचलन नहीं हु आ है।

(iv) **उप हिमालय क्षेत्र:** यह क्षेत्र 8–45 किमी चौड़ा तथा 1,300 मीटर से कम औसत ऊँचाई वाला है। यह एक विच्छिन्न श्रेणी है। यह पश्चिम में चौड़ी तथा पूर्व की ओर संकरी है। शिवालिक श्रेणी इस क्षेत्र की दक्षिणी सीमा बनाती है, जबकि आन्तरिक भाग में विवर्तनिक अनुदैध्र्य घाटियाँ (जिन्हे 'दून' या 'दुआर' कहा जाता है) स्थित हैं। देहरा, कोटा, पाटली, कोठरी, चुम्बी, क्यार्दा आदि ऐसी ही घाटियाँ हैं। इस क्षेत्र में जीवाश्मयुक्त अवसाद, जैसै – बालूपत्थर, चीका, चूनापत्थर, कॉंग्लोमरेट आदि पाए जाते हैं, जो अधिकांशत : ऊपरी टर्श्यरी युग के हैं।

2.2.1.3 हिमालय के अनुदैर्ध्य विभाग (Longitudinal Divisions of Himalayas)

उत्तर से दक्षिण की ओर हिमालय में तीन समान्तर श्रेणियाँ पाई जाती हैं –

1. **महा हिमालय या हिमाद्रि:** यह हिमालय की सर्वोच्च तला सबसे उत्तरी श्रेणी है, जिसका आन्तरिक भाग आर्कियन शैलों तथा सिरे कायान्तरित अवसादी शैलों से निर्मित हैं। इस श्रेणी की औसत ऊँचाई 6,100 मीटर है। माउण्ट एवरेस्ट (8, 850 मीटर), कंचनजंघा (8,598 मीटर), मकालू (8,481 मीटर), धौलागिरि (8,172 मीटर), मनासलू (8,156 मीटर), चो – ओयू (8, 153 मीटर) तथा अन्नपूर्णा (8,078 मीटर) शिखर 8,000 मीटर से अधिक ऊँचे है, जो वर्ष भर हिमाच्छादित रहते हैं। इन श्रेणियों में अनेक दर्रे 2, 500 मीटर से अम्न्कि ऊँचाई पर स्थित हैं। कश्मीर में बुर्जिल तथा जोजिला; हिमाचल प्रदेश में बाराला चाला तथा शिपकी ला; उत्तराखण्ड में थागला, नीति, लिपुलेख; तथा सिक्किम में नाथूला एवं जेलेपला उल्लेखनीय दर्रे हैं।

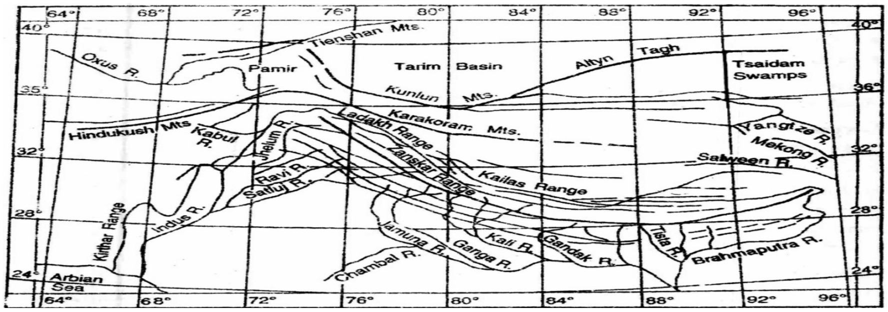

चित्र– 2ब.4: हिमालय तथा अन्य पर्वत श्रेणियाँ

हिमाद्री एक चाप की भांति पश्चिम में नंगा पर्वत से पूर्व में नामचा बरवा (7, 756 मीटर) तक 2, 500 किमी की लम्बाई में विस्तृत हैं। गंगोत्री मिलाम, जेमू आदि अनेक हिमनद यहाँ स्थित हैं। यह एक असममित (asymmetrical) श्रेणी है। उत्तर –पश्चिम में जास्कर श्रेणी इसी का विस्तार है।

2. **लघु हिमालय या हिमाचल :** यह श्रेणी हिमाद्रि के दक्षिण तथा शिवालिक श्रेणी के उत्तर में मुख्य सीमान्त क्षेप (Main Boundary Thrust–MBT) द्वारा पृथक् है। इसकी अनेक समान्तर श्रेणियाँ हैं, जैसे – धौलाधार, पीर पंजाल, नाग टिब्बा, महाभारत तथा मसूरी। इस श्रेणी में पीर पंजाल (3,494 मीटर) तथा बनिहाल (2, 832 मीटर) दो प्रमुख दर्रे स्थित हैं। इस श्रेणी में अनेक पर्वतीय नगर, जैसे – शिमला, चैल, चकरौता, मसूरी, नैनीताल, रानीखेत, अल्मोड़ा, दार्जिलिंग आदि स्थित हैं। यहाँ अनेक घाटियाँ स्थित हैं, जैसे – पीर पंजाल तथा हिमाद्रि की एक पश्चिमी श्रेणी के मध्य कश्मीर घाटी और हिमाचल प्रदेश में काँगड़ा घाटी, जो धौलाधार श्रेणी की तलहटी से लेकर आगे तक फैली एक सरचनात्मक घाटी (structural valley) है। कुल्लू घाटी एक अनुप्रस्थ घाटी (transverse valley) है। लघु हिमालय के दक्षिणी ढाल तीव्र, विषय तथा नग्न हैं, जबकि उत्तरी ढाल मन्द एवं सघन वनाच्छादित हैं। ढालों के सहारे' अनेक चरागाह स्थित हैं, जिन्हें कश्मीर में 'मर्ग' (Merg) तथा उत्तराखण्ड में 'बुग्याल' (Bugyal) एवं 'पयार' (Payar) कहा जाता है।

3. **शिवालिक:** इसे बाहा हिमालय भी कहा जाता है। यह हिमालय की सबसे दक्षिणी श्रेणी है। इसके दक्षिणी ढाल अपेक्षाकृत अधिक तीव्र हैं। इस श्रेणी में चौरस स्कार्प (scarp), अभिनतीय घाटियाँ तथा अपनतीय शिखर विद्यमान हैं। शिवालिक के उत्तरी ढाल तथा लघु हिमालय के दक्षिणी ढाल के मध्य अनेक समतल तल वाली संरचनात्मक घाटियाँ स्थित हैं, जिन्हें पश्चिम में 'दून' (Dun) तथा पूर्व में 'दुआर:' (Duar) कहा जाता हैं। ये श्रेणी अनेक स्थानीय नामों से जानी जाती है, जैसे – जम्बू – कश्मीर में जम्मू पहाड़ी, उत्तराखण्ड में दुदवा श्रेणी, नेपाल में चूरिया पहाड़ी तथा अरुणाचल प्रदेश में डाफला, मिरी, अबोर व मिशिमी पहाड़ियाँ। यह श्रेणी घने उष्णकटिबन्धीय आर्द्र पर्णपाती वनों से ढकी है।

ट्रान्स हिमालय (Trans Himalayas)

ट्रान्स हिमालय लगभग 40 किमी चौड़े तथा 965 किमी लम्बे हैं। इनके अन्तर्गत मुख्यत : कराकोरम, लद्दाख तथा कैलाश श्रेणियाँ सम्मिलित हैं, जिनकी औसत ऊँचाई 3,100–3,700 मीटर है। यहाँ अनेक दर्रे स्थित हैं, जिनकी ऊँचाई 5,200 मीटर से अधिक है। ट्रान्स हिमालय लगभग वनविहीन प्रदेश है। इस प्रदेश की सबसे महत्वपूर्ण श्रेणी कराकोरम है। इसमें अनेक उच्च शिखर (जैसे– K–2, ऊँचाई 28,611 मीटर) तथा विशाल हिमनद (जैसे –सियाचीन 72 किमी, बियाफो, बाल्टोरो. हिस्पर, बाटुरा आदि) स्थित हैं। पश्चिम में यह श्रेणी पामीर की गाँठ से मिल जाती है, जबकि दक्षिण –पूर्व की ओर यह कैलाश श्रेणी के रूप में विस्तृत है। कराकोरम के दक्षिण में लद्दाख श्रेणी सिन्धु तथा इसकी सहायक श्योक के मध्य जलविभाजक का कार्य करती है।

2.2.1.4 हिमालय का प्रादेशिक विभाजन (Regional Divisions of Himalayas)

एस पी. चटर्जी ने हिमालय को निम्नलिखित चार अनुप्रस्थ उपविभागों में विभाजित किया है -(i) पश्चिमी हिमालय, (ii) मध्य हिमालय, तथा (iii) पूर्वी हिमालय, तथा उत्तरपूर्वी श्रेणियाँ।

1. **पश्चिमी हिमालय :** इनका विस्तार सिन्धु से नेपाल की सीमा पर स्थित काली नदी तक 880 किमी लम्बाई में है, जो जम्मू – कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड में लगभग 433 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत है। यह भाग औसत रूप से 3,000 मीटर ऊँचाई पर स्थित हैं। इस प्रदेश में अनेक द्रोणियाँ विद्यमान हैं। इस प्रदेश को दो भूआकृतिक विभाग। में बाँटा जाता है – (i) उत्तरी कश्मीर हिमालय जहाँ लद्दाख का पठार तथा कराकोरम श्रेणी तथा (ii) दक्षिणी कश्मीर हिमालय। उत्तरी कश्मीर हिमालय में लद्दाख का पठार तथा कराकोरम एवं सम्बन्धित श्रेणियां स्थित हैं। दक्षिणी कश्मीर हिमालय में कश्मीर की संरचनात्मक घाटी फैली है जो उत्तर में जास्कर श्रेणी तथा दक्षिण में गिर राजाल श्रेणी के मध्य स्थित है। यह घाटी बड़ी झील के भरने तथा क्रमश: ऊपर उठने से बनी है। झेलम नदी इस घाटी होकर बहती है। कश्मीर की एक प्रमुख विशेषता करेवा निक्षेप है, जिसमें सिल्ट. बालू तथा चीका की प्रधानता है।

   हिमाचल हिमालय लगभग 45, 000 वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत हैं। इस खण्ड में महा हिमालय जास्कर श्रेणी के रूप में, लघु हिमालय पीर पंजाल व धौलाधार श्रेणी के रूप में तथा बाहय हिमालय शिवालिक श्रेणी के रूप में विस्तृत हैं। इन श्रेणियों के उत्तरी ढाल नग्न हैं जबकि दक्षिणी ढाल विषम एवं वनाच्छादित हैं। कुल्लू काँगड़ा तथा लाहुल एवं स्पीति की घाटियाँ इस खण्ड में स्थित हैं। जोजीला रोहतांग, दारा लाचाला, शिपकीला आदि प्रमुख दर्रे है।

   कुमायूँ हिमालत सतलज तथा काली नदियों के मध्य 320 किमी लम्बाई में 38,000 वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत है। नन्दा देवी इस प्रदेश का उच्चतम शिखर है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, त्रिशूल, कामेत, माना आदि अन्य प्रमुख शिखर हैं। इस प्रदेश में अनेक झिलें पाई जाती है।

   मसूरी तथा नाग टिब्बा (नगतिमा) श्रेणियाँ लघु हिमालय को सूचित करती हैं। शिवालिक श्रेणी मसूरी श्रेणी के दक्षिण में विस्तृत है। शिवालिक तथा लघु हिमालय के मध्य दून घाटी स्थित है। कुमायूँ हिमालय तथा तिब्बत को जोड़ते हुए अनेक दर्रे स्थित हैं, जैसे – थागला, मुलिंग ला माना, नीति, कुंगड़ी –बिगड़ी, दर्मा, लिपुलेख आदि।

2. **मध्य हिमालय:** यह खण्ड काली नदी से तिस्ता नदी तक 800 किमी लंबाई में लगभग 1. 16 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत है। इसका अधिकांश भाग (दार्जिलिंग तथा सिक्किम हिमालय के अपवादस्वरूप) नेपाल के अन्तर्गत है। यहाँ हिमालय की तीनों श्रेणियाँ विद्यमान हैं। विश्व का सर्वोच्च शिखर माउण्ट एवरेस्ट इसी खण्ड में नेपाल में स्थित है। कंचन जगा (8, 598 मीटर). मकालू (8, 481 मीटर), अन्नपूर्णा (8, 075 मीटर), धौलागिरि (8,168 मीटर) आदि अन्य उच्च शिखर हैं। यहाँ लघु हिमालय को काटकर घाघरा, गण्डक तथा काली नदियाँ बहती हैं। महा हिमालय तथा लघु हिमालय के मध्य काठमाण्डू व पोखरा सरचनात्मक घाटियों हैं। गण्डक नदी के पार शिवालिक श्रेणी अनुपस्थित है।

3. **पूर्वी हिमालय** यह खण्ड तिस्ता तथा ब्रह्मपुत्र नदियों के मध्य 720 किमी लम्बाई में लगभग 67,500 वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत हैं। इसका विस्तार भूटान तथा अरुणाचल प्रदेश में है। इसे असम हिमालय भी कहा जाता है। इस प्रदेश में आका, डाफला, मिरी. अबोर, मिशिमी आदि अनेक पहाड़ियाँ स्थित हैं। यहाँ नामचा बरवा (7,756 मीटर), कुलाकांगडी (7, 539 मीटर), चामो –लहरी (7, 314 मीटर), ग्यालपेरी (7,151 मीटर) आदि उच्च शिखर स्थित हैं। जेलेप ला, बुमला, सेला तुंगा योंग्याप, कांगड़ी, कार्पोला आदि अनेक दर्रे यहीं स्थित हैं।
4. **उत्तर–पूर्वी पर्वत**: इसके अन्तर्गत अरुणाचल प्रदेश, नागालैण्ड. मणिपुर तथा मिजोरम की उत्तर–दक्षिण दिशा में विस्तृत पहाड़ियों सम्मिलित हैं। इन सघन वनाच्छादित पहाडियों को अनेक स्थानीय नामों से पुकारा जाता है, जैसे – अरुणाचल प्रदेश में पटकोई बुम, नागा पहाड़ियाँ, मणिपुर पहाड़ियाँ, त्रिपुरा पहाड़ियाँ तथा बरैल श्रेणी।

हिमालय में हिमनद (Glaciers in Himalayas)

हिमरेखा की ऊँचाई हिमालय के विभिन्न भागों में भिन्न –भिन्न है। पूर्वी हिमालय में यह 4, 400 मीटर पर मिलती है. जबकि कश्मीर में 5,100–5, 800 मीटर तक। पश्चिमी हिमालय में वर्षा की न्यूनता हिमरेखा को प्रभावित करती है। मुख्य हिमालय में विश्व के कुछ विशालतम हिमनद स्थित हैं। अधिकांश हिमनद 3 से 5 किमी लम्बे हैं, किन्तु ससाइमी। (159 किमी), सियाचीन (72 किमी), हेस्पर (61 किमी), बियाफो (60 किमी), बाल्टोरो तथा बाटुरा (प्रत्येक 58 किमी), रीमो (40 किमी), पुनमाह (27 किमी), गंगोत्री (26 किमी), जेमू (26 किमी), मिलाम (19 किमी), केदारनाथ (14 किमी) आदि कुछ विशाल हिमनद हैं। हिमालय के हेमनद क्रमश: पीछे हट रहे हैं। इनमें अनेक हिमनदों के अग्रभाग (snout) में बड़ी मात्रा में हिमोढ़ पाए जाते है ।

बोध प्रश्न– 1

1. हिमालय की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कौन सी दो प्रमुख संकल्पनाएँ प्रस्तुत की गई है?
   ....
   ....
2. हिमालय की भूसत्रतीय उत्पत्ति को मान लेने में कौन सी प्रमुख विसंगतियाँ बाधक है?
   ....
   ....
3. प्लेट विवर्तनिकी संकल्पना के अनुसार हिमालय की उत्पत्ति किस प्रकार हुई?
   ....
   ....
4. हिमालय के कितने अनुदैर्ध्य विभाग किए गए हैं?
   ....
   ....
5. हिमालय के कितने अनुप्रस्थ विभाग किए गए हैं?

……………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………

2.2.2 उत्तरी विशाल मैदान (Northern Great Plains)

विशाल मैदान उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में प्रायद्वीपीय पठार के मध्य लगभग 3 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत हैं। ये काँपीय मैदान हैं, जो सिन्धु, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र एवं उनकी सहायक नदियों द्वारा लाए गए अवसादों से निर्मित है मैदान लगभग 2,400 किमी लम्बाई तथा 150 से 500 किमी चौड़ाई में विस्तृत हैं। ये असम में मात्र 100 किमी, राजमहल पहाड़ियों के निकट 160 किमी, इलाहाबाद के निकट 280 किमी तथा पंजाब एवं राजस्थान में 500 किमी चौड़ाई में विस्तृत हैं। इनकी औसत ऊँचाई 150 मीटर है तथा ढाल प्रवणता अत्यन्त निम्न (13 सेमी प्रति किमी) है। दक्षिण –पश्चिम की ओर ये मैदान थार के मरुस्थल में विलीन हो जाते हैं। ओल्डहम (Oldham) के अनुसार काँप के निक्षेपों की मोटाई 4,000–6,000 मीटर है, जबकि ग्लेनी (Glennie) के अनुसार 2 ,000 मीटर।

विशाल मैदान एक समरूप स्थलाकृति प्रस्तुत करते हैं, जिसकी समरसता नदी के ऊँचे किनारों (bluffs), कगारों (lavees), बीहड़ों (ravines) तथा खालों (Khols) द्वारा भंग होती है। वर्षाकाल में बाढ के कारण नदियों के मार्ग परिवर्तन इन मैदानों की प्रमुख विशेषता है।

2.2.2.1 विशाल मैदान की उत्पत्ति (Origin of Great Plains)

विशाल मैदानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत प्रस्तुत किए गए हैं। सुएस के अनुसार जब प्रायद्वीपीय दृढ़ भूखण्ड ने हिमालय का दक्षिण की ओर प्रसार रोका तो हिमालय की उच्च धरातलीय लहरों के समक्ष एक अग्रगर्त (foredeep) पैदा हो गया। यह अग्रगर्त एक विशाल भूसन्नति की भांति था। हिमालय से उतरने वाली नदियों ने इस अग्रगर्त को काँप के अवसादों से भर दिया। इस प्रकार विशाल मैदान उत्पन्न हु ए।

बुर्राड के अनुसार हिमालय की उत्पत्ति के समय दो समान्तर भ्रंशों की मध्यस्थ भूमि के डूबने से एक भ्रंश घाटी का निर्माण हु आ। यह भ्रंश घाटी हिमालय की नदियों द्वारा लाए गए काँप से भर गई। बुर्राड का मत आधुनिक भूवैज्ञानिकों को स्वीकार्य नहीं है क्योंकि ऐसी विशाल भ्रंश घाटी का निर्माण धरातलीय अधिवलन (down warping) द्वारा सम्भव नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, प्रायद्वीपीय अग्रभूमि के उत्तरी भाग में ऐसी किसी भ्रंश घाटी का भूगर्भिक साक्ष्य भी नहीं मिलता।

आधुनिक मत के अनुसार यह प्रदेश भूपटल में एक झोल (sag) को प्रकट करता है, जो उत्तर की ओर प्रवाहित होने वाले उपमहाद्वीप तथा टीथिस बेसिन के मध्य निर्मित हु आ। बाद में यह नदीय निक्षेपों द्वारा पाट दिया गया।

2.2.2.2 विशाल मैदान के भौतिक विभाग (Physical Divisions of Great Plains)

काँप निक्षेपों की प्रकृति, ढाल प्रवणता, अपवाह तथा अन्य भौतिक विशेषताओं के आधार पर विशाल मैदान को निम्नलिखित पाँच संरचनात्मक इकाइयों में बाँटा जा सकता है -(i) भाबर, (ii) बांगर, (iii) तराई (iv) खादर, तथा (iv) डेल्टा

1. **भाबर.** यह शिवालिक श्रेणी की तलहटी के सहारे सिन्धु से तिस्ता नदी तक स्थित है। यह 8 –16 किमी चौड़ी पेटी है, जिसकी रचना बजरी तथा मिले–जुले अवसादों से हुई है। अत्यधिक सरन्ध्रता के कारण इस क्षेत्र में छोटी नदियों विलुप्त हो जानी हैं तथा उनके शुष्क मार्ग शेष रह जाते हैं। भाबर मैदान पश्चिम में चीड़ तथा पूर्व की ओर संकरे हैं।
2. **तराई :** भाबर के दक्षिण में यह 15–30 किमी चौड़ी दलदली पेटी है, जहाँ नदियाँ धरातल पर पुन: प्रकट होती हैं। पूर्व में अधिक वर्षा होने के कारण यह पेटी अधिक विस्तृत है। यह पेटी कभी घने वनों से आच्छादित, वन्य जीवन में समृद्ध तथा मच्छरों के प्रकोप से ग्रस्त थी, किन्तु अब इसे साफ कर कृषि–फार्म बना लिए गए हैं।
3. **बांगर :** यह पेटी पुरानी काँप के निक्षेपों से निर्मित काँपीय वेदिकाओं को सूचित करती है। काँप कैल्शियम कॉर्बोनेट या कंकड की अधिकता पाई जाती है। शुष्क क्षेत्रों में धरातल पर लवण के निक्षेप 'रेह' के रूप में दर्शनीय हैं। बांगर का निर्माण चीका, दोमट तथा बलुई दोमट से हुआ है 4. खादर : यह पेटी बाढ़ के मैदानों की नवीन काँप को सूचित करती है, जो प्रतिवर्ष बाढ़ के समय सिल्ट के नए निक्षेपों से समृद्ध होती है।
4. **डेल्टा :** डेल्टाई मैदान प्राय: कीचड़ तथा दलदल से युक्त होते हैं। इनमें उच्चभूमि 'चार' (char) तथा दलदली निम्नभूमि 'बील (beel) कहलाती है।

धरातल के लक्षणों के आधार पर इस विशाल मैदान को तीन उप विभागों में बांटा जाता है : – (1) पश्चिमी शुष्क मैदान, (2) उत्तरी मैदान तथा (3) पूर्वी मैदान।

1. **पश्चिमी मैदान :** अरावली श्रेणी से पश्चिम राजस्थान मे फैले भाग को पश्चिमी मैदान कहा जाता है। इस भाग की प्रमुख नदी सी है। यद्यपि यह भाग शुष्क है परंतु मरुस्थल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पानी मिलने पर यहां विभिन्न फसलें पैदा की जा सकती है। इस मैदान का लगभग सभी भाग पर्मो –कार्बोनीफेरस से प्लीस्टोसीन युग तक सह के नीचे था। इसका उत्थान प्लीस्टोसीन काल में हुआ। तब से सामान्य अपरदन चक्र प्रारंभ हुआ। यह भाग एक हजार वर्ष पूर्व शुष्क नहीं था और इस भाग में सरस्वती, द्रिसदवती और सतलज जैसी नदियां बहती थीं जिनकी सूत्री घाटियां यहां मौजूद हैं। इस मैदान का पश्चिमी भाग मरूस्थली और पूर्वी भाग राजस्थान बागड कहा जाता है।
2. **उत्तरी मैदान** :इस मैदान का निर्माण सिन्दु की सहायक नदियों – सतलज, व्यास और रावी तथा गंगा–यमुना तथा उनकी सहायक नदियो द्वारा किया गया है। इस भाग में धरातलीय असमानताएं नहीं हैं तथा जल प्रवाह के आधार पर इसके कई प्राकृतिक प्रदेश किये जा सकते हैं। ये पश्चिम से पूर्व की ओर है – पंजाब का मैदान, गंगा–यमुना दोआब, रोहेलखण्ड का मैदान और अवध का मैदान। इस मैदान की ऊँचाई उत्तर में 300 मीटर से दक्षिण–पूर्व में 200 मीटर के मध्य है। रावी तथा व्यास के मध्य अपर बारी दोआब, व्यास तथा सतलज के मध्य बिस्त दोआब तथा दक्षिण में मालवा का मैदान अपेक्षाकृत उच्चभूमि हैं। इस मैदान का ढाल पश्चिम में सिन्धु मैदान की ओर तथा दक्षिण में कच्छ रन की ओर है। इसके दक्षिण में स्थित एक संकरी पेटी में यमुना प्रवाहित होती है, जबकि घग्घर एक मौसमी नदी है, जो सतलज तथा यमुना के मध्य बहती है।

3. **पूर्वी मैदान:** गंगा के मध्य और निचली घाटी में फैले मैदान को पूर्वी मैदान कहा जाता है। यह बिहार और पश्चिम बंगाल में फैला है। यह पश्चिम से पूर्व की ओर संकरा होता जाता है। पूर्वी भाग में राजमहल की पहाड़ियां गंगा के काफी निकट आ गई हैं। यह मैदान उत्तरी बिहार, दक्षिणी बिहार, उत्तरी बंगाल के मैदान तथा बंगाल बॅसिन से मिल कर बना है। मैदान का धूर पूर्वी भाग असम की संकरी घाटी में विस्तृत है, जो पश्चिम के अपवाद सहित, सभी दिशाओं में पर्वतों मे घिरा है। यह मैदान ब्रह्मपुत्र द्वारा निर्मित है, जिसका ढाल दक्षिण–पश्चिम की ओर है। ब्रह्मपुत्र नदी गंगा के साथ मिलकर डेल्टा बनाते हुए बंगाल की खाड़ी में गिरती है। अत्यन्त धीमी डाल प्रवणता तथा उथले जलमार्ग के कारण ब्रह्मपुत्र नदी अत्यधिक घुमावदार है तथा इसमें अनेक नदीय द्वीप स्थित हैं। इसमें प्रतिवर्ष भयंकर बाढ़ आती है।

2.2.3 प्रायद्वीपीय पठार (Peninsular Plateaux)

उत्तरी विषाल मैदान के दक्षिण 16 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर प्रायद्वीपीय पठार फैला हैं। यह भारत का विशालतम भौतिक विभाग है। इसका विस्तार दक्षिण–पूर्वी राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उडीसा, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल राज्यों में है।

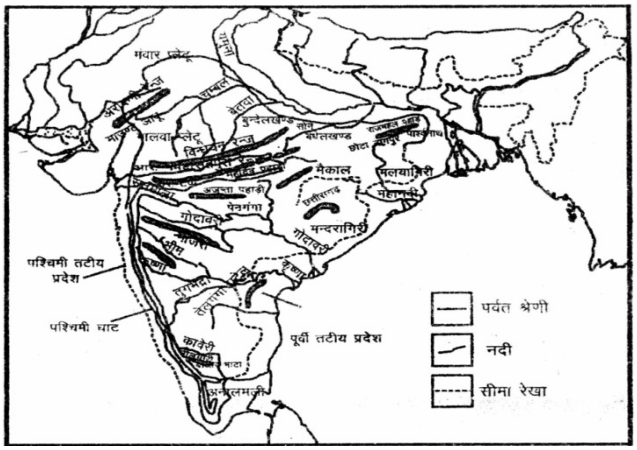

चित्र – 2ब. 5: भारत के प्रायद्वीपीय पठार की प्रमुख पर्वत श्रृंखलाएँ तथा नदियाँ

प्रायद्वीपीय पठार की औसत ऊँचाई 600–900 मीटर है। उत्तर –पश्चिम में अरावली श्रेणियाँ इसकी सीमा 'बनाती हैं, जबकि इसकी उत्तरी सीमा बुन्देलखण्ड उच्चभूमि, कैमूर तथा राजमहल पहाडियों द्वारा सुनिश्चित होती है। पठार का सामान्य ढाल पूर्व तथा दक्षिण –पूर्व की ओर है। पठार का एक लम्बा तथा घटनापूर्ण भूगर्भिक इतिहास रहा है, जिसके दौरान इसके वर्तमान उच्चावच लक्षण विकसित हुए यह पठार अपने इतिहास के अधिकांश भाग में सागर तल से ऊपर रहा है। इसमें अनाच्छादन के अनेक चक्र सक्रिय रहे है।

2.2.3.1 उच्चावच (Relief)

प्रायद्वीपीय पठार अपरदन चक्र की जीर्णावस्था को प्राप्त कर चुका है। इसकी सामान्य रचना एक तरंगित पठार (rolling plateau) की भांति है, जिसके मध्य भाग में एकाकी अवशिष्ट पहाड़ियाँ तथा इसे घेरते हुए पहाड़ियों की श्रृंखला स्थित है। पहाड़ी श्रेणियों में पश्चिमी तथा स्थित घाट एवं अरावली उल्लेखनीय हैं, जबकि विन्ध्य, सतपुड़ा तथा मेघालय की पहाड़ियों अवशिष्ट पर्वत हैं।

2.2.3.2 प्रायद्वीपीय पठार के विभाग (Physical Divisions of Peninsular Plateaux)

विन्ध्य श्रेणी तथा 21^0 से 24^0 उत्तरी अक्षाशों के मध्य स्थित नर्मदा रख ताप्ती नदियों की भ्रंश घाटियाँ प्रायद्वीपीय पठार को दो असमान भागों में बाँटती हैं – (1) मध्य उच्चभूमि, तथा (2) दकन पठार। वस्तुत : विन्ध्य श्रेणियाँ तथा सतपुड़ा की पहाड़ियाँ उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के मध्य एक प्राकृतिक अवरोधक का निर्माण करती हैं, जहाँ क्रमश : पूर्ववर्ती आर्य व द्रविड़ संस्कृति पनपीं।

1. मध्य उचभूमि (Central Highlands)

मध्य उच्चभूमि में (i) अरावली श्रेणी, (ii) पूर्वी राजस्थान उच्चभूमि तथा मध्य भारत पठार, (iv) बुन्देलखण्ड उच्चभूमि, (v) मालवा पठार, (vi) विन्ध्याचल का कगारी प्रदेश (vii) विन्ध्याचल श्रेणी तथा (viii) नर्मदा की घाटी सम्मिलित हैं।

(i) **अरावली श्रेणी :** यह श्रेणी पालनपुर (गुजरात) से राजस्थान में होकर दिल्ली तक लगभग 800 किमी लम्बाई में विस्तृत है। यह श्रेणी मुख्यत : पुरा कैम्ब्रियन युगीन कार्टजाइट, नीस तथा शिस्ट शैलों से निर्मित है। यह उत्तर में 400 मीटर तथा दक्षिण में 900 मीटर से अधिक ऊँची है। इसका सर्वोच्च शिखर गुरु शिखर (1,722 मीटर) आबू की पहाड़ियों में स्थित है। अरावली पर्वत अत्यधिक अपरदित तथा विच्छेदित हैं। पुरा कैम्बियन युग में यह एक विशाल पर्वत श्रृंखला थी, जो हिमालय से लक्षद्वीप तक विस्तृत थी। दीर्घकाल तक अपरदन होने के कारण अब ये नीची पहाड़ियों के रूप में शेष हैं। उदयपुर के उत्तर–पश्चिम में ये पहाड़ियाँ जर्गा पहाड़ियों (1, 431 मीटर), टोडगढ के निकट मारवाड़ पहाड़ियों, अलवर के निकट हर्षनाथ पहाड़ियों तथा धुर उत्तर में दिल्ली रिज के नाम से विख्यात हैं। फरमर (Fermor) के अनुसार अरावली एक 'हॉर्स्ट' (horst) है। अरावली को पार करने वाली अधिकांश नदियाँ, जैसे – माही, लूनी, जोजरी, बाण्डी, सूकड़ी आदि वर्षाकालीन नदियाँ हैं।

(ii) **पूर्वी राजस्थान उच्चभूमि :** अरावली के पूर्व में स्थित ये उच्चभूमि 250– 500 मीटर ऊँची हैं। पूर्वी मैदान के अन्तर्गत चम्बल बेसिन, बनास मैदान, माही मैदान या छप्पन मैदान सम्मिलित हैं। चम्बल–सिन्ध बेसिन बाढ़ के मैदान नदी के ऊँचे किनारों (bluffs), दोआब (।interfluves) तथा बीहड़ों (ravines) से युक्त हैं। बीहड़ों का विस्तार लगभग 4, 500 वर्ग किमी क्षेत्र पर है। बनास के मैदान को दक्षिण में मेवाड़ मैदान तथा उत्तर में मालपुरा–करौली मैदान भी कहते हैं। मेवाड़ का मैदान आर्कियन नीस से निर्मित एक विच्छेदित

भूभाग है। मध्य माही का मैदान भी अत्यधिक विच्छेदित है, जिसे स्थानीय रूप से 'बागड' कहा जाता है।

(iii) **मध्य भारत पठार -** पूर्वी राजस्थान उच्च भूमि के पूर्व में एक पहाड़ी पठारी प्रदेश है, जिसे मध्य भारत पठार कहते हैं। इसका निर्माण मुख्यत : विन्ध्यन युग की बालुका पत्थर, चूना पत्थर और शैल की क्षैतिक शैली से हुआ है। इस कारण पठार का अधिकांश भाग समतल है। शिवपुरी और मुरैना पठार ऐसे पठार हैं जिन्हे भाण्डेर युग के चट्टानों से निर्मित स्कार्प मुख्य क्षेत्र से अलग करता है। चम्बल इसी प्रदेश में बहती है।

(iv) **बुन्देलखण्ड उच्चभूमि :** इसका विस्तार दक्षिण–पश्चिमी उत्तरप्रदेश तथा उत्तर–पश्चिमी मध्यप्रदेश के 54,560 वर्ग किमी क्षेत्र पर है। इस प्रदेश में मुख्यत : रवेदार आग्रेय तथा कायान्तीरत शैलें (बुन्देलखण्ड नीस) मिलती हैं। यहाँ निचली विन्ध्यन शैलें भाण्डेर, रीवा तथा कैमूर सीरीज के रूप में तथा मध्य में शैल मौजूद हैं। प्रदेश की स्थलाकृति जीर्णावस्था में है। उत्तरी भाग एक चौरस मैदान है, जबकि दक्षिणी भाग मेज की भांति है। जहाँ–तहाँ सपाट शिखर वाली पहाड़ियाँ समप्राय धरातल पर अवशिष्ट रूप में स्थित हैं। उत्तरी काँपीय मैदान में बेतवा, धसान, केन आदि नदियों ने गहरी घाटियों, चट्टानी तटों, प्रपातों तथा बीहड़ों का निर्माण किया है।

(v) **मालवा पठार:** यह पठार लगभग 1.5 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत है। उत्तर में अरावली, दक्षिण में विन्ध्य श्रेणी एवं पूर्व में बुन्देलखण्ड पठार इसकी सीमाएँ निर्धारित करते हैं। इसकी औसत ऊँचाई 500 – 600 मी. है। यहाँ प्रायद्वीप के सभी प्रमुख शैलक्रम मिलते हैं। यह विस्तृत लावाप्रवाह से निर्मित है। पठार अत्यधिक कटा–फटा है। इसमें सपाट शिखर वाली वनाच्छादित श्रेणियों द्वारा पृथक् तरंगित मैदान स्थित हैं। इस पठार पर चम्बल, बेतवा, काली सिन्ध तथा पार्वती नदियाँ बहती है।

(vi) **बुन्देलखण्ड उच्च भूमि** के दक्षिण में मध्य भारत का एक विशेष प्रकार का पठारी प्रदेश है जिसे विन्ध्यन स्कार्प लैण्ड्स कहते हैं। इसका निर्माण सम्भवत : कैम्ब्रियन युग में शुष्क तथा अर्द्धशुष्क प्रदेशों से आने वाली नदियों द्वारा लाये गये मलवे का समुद्र में निक्षेपित चट्टानों से हुआ है। तब से इसका कई बार उत्थान तथा कई' बार समप्राय भूमि में परिवर्तन हुआ। इसकी सबसे बड़ी विशेषता जो इस प्रदेश को अन्य प्रदेशों से अलग करती है वह अपरदन से निर्मित कगार हैं जिनकी दिशा पूर्व– पश्चिम है। कठोर बालूका पत्थर ही कगार के निर्माता हैं जो तीन पठारों का निर्माण करते हैं। इन पठारों का ढाल क्रमश : तीन सोपानों मे पश्चिम से पूर्व की ओर कम होता जाता है। इन तीनों पठारों का विस्तार कैमूर पहाड़ियों के उत्तर में है। उत्तर की ओर बहने वाली नदियां इस उत्तरी कगार को काट कर जल प्रपात बनाती हैं। टौंस, बेतवा, केन आदि अपेक्षाकृत उच्च विन्ध्यन पहाड़ियों के होते हुए भी उत्तर की ओर बहती हैं। यहाँ ये अध्यारोपित (Superimposed) प्रतीत होती हैं।

(vii) **विन्ध्याचल श्रेणी (Vindhyan Range) –** इसका विस्तार नर्मदा और सोन नदियों के उत्तर में उच्च पहाड़ियों के रूप में है। इस कगार का तीव्र ढाल नर्मदा और सोन की ओर है तथा उत्तरी ढाल मंद है। अपरदन के कारण कई पहाड़ियां मुख्य कगार से अलग हो

गई हैं। ऐसी तीव्र ढाल वाली पहाड़ियां होशंगाबाद के पास प्रमुख हैं। सबसे ऊँची शिखर 600 मी. से थोड़ी ऊँची है। गनूरगढ़ के पश्चिम विन्ध्यन शैल नही है। इसलिए कगार अस्पष्ट हो जाता है और इसकी ऊँचाई 500 मी. से अधिक नहीं हो पाती है। उदयपुर नगर के पास मुख्य कगार ऊँची हो जाती है, जहां नदियां गार्ज तथा जलप्रपात बनाती हैं। गोमनपुर चोटी (556 मी) के पास विन्ध्यन कगार का अन्त होता है। यहां से कई स्पर दक्षिणी ओर फैले हैं जिन्हें बाघ की पहाड़ियां कहा जाता है।

(viii) **नर्मदा की घाटी –** नर्मदा नदी एक असममित घाटी से होकर बहती है जो उत्तर में विन्ध्याचल था दक्षिण में सतपुड़ा श्रेणियों से घिरी है। इसके निर्माण का कारण क्रिटेशियस युग के अन्त में दो समानान्तर रेखा में भ्रंशन तथा उसके अवतलन से माना जाता है। नर्मदा अमरकंटक पठार से निकलकर शीघ्र ही एक बैसाल्ट के पठार से नीचे उतरती है तथा मण्डला तक विसर्प बनाती हुई बहती है। एल्यूवियम बेसिन से बहती हुई यह चट्टानी गार्ज बनाती है जिनमें धुआंधार मुख्य है। पश्चिम में होशंगाबाद का मैदान है। इससे आगे नदी मानधाता गार्ज होकर बहती है। पुन : मंडलेश्वर के मैदान को पार करती हुई यह मुकरता गार्ज में प्रवेश करती है और 120 किमी. अध्यारोपित नदी के रूप में बहती है। गार्डेश्वर के पास यह पहाड़ी भाग छोड़ मैदान और भडोच के पास समुन्द्र में गिरती है।

2. दकन पठार (deccan Plateaux)

यह देश का सबसे बड़ा भूआकृतिक प्रदेश है जिसका विस्तार पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक है। इसकी उत्तर–दक्षिण अधिकतम लम्बाई पचमढ़ी से लेकर कन्याकुमारी तक 1600 किमी. तथा अधिकतम चौड़ाई सह्याद्रि से राजमहल की पहाड़ियों तक 1400 किमी. है। इस पठार के दक्षिणी भाग की ऊँचाई 1000 मीटर से अधिक है, परन्तु उत्तरी भाग 500 मीटर से अधिक ऊँचा नहीं है। यह पठारी भाग त्रिभुज के आकार का है जिस त्रिभुज का शीर्ष भड़ोच के पास है तथा आधार रेखा भारत के धुर दक्षिणी छोर से पूर्वी घाट के सहारे राजमहल की पहाड़ियों तक फैली है। सह्याद्रि (पश्चिमी घाट) और सतपुड़ा शेष दो भुजाओं का काम करती हैं। इन श्रेणियों से घेरे दकन पठार तथा पूर्वी पठारों का समूह हैं। यह महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक तथा तमिलनाडु राज्यों में विस्तृत है। इस पठार का निर्माण ज्वालामुखी क्रिया द्वारा हुआ है। लावा के निक्षेप 2, 000 मीटर से अधिक गहरे हैं। इस पठार का आधार प्राचीन रवेदार शैलों से निर्मित है। इसमें जीवाश्मरहित ग्रेनाइट, नीस, बेसाल्ट, चूनापत्थर, बालूपत्थर तथा काटरज शैलें मिलती हैं। इन शैलों में कोयला, मैंगनीज, लौह अयस्क, अभ्रक, मैग्रेसाइट, बॉक्साइट, हीरा आदि खनिज पाए जाते हैं।

प्रायद्वीपीय पठार के उपविभाग तथा भूआकृतिक प्रदेश निम्नानुसार हैं : –

1. उत्तरी दकन पठार: i. सतपुड़ा श्रेणी ii. महाराष्ट्र पठार;
2. दक्षिणी दकन पठार: i. तेलंगाना का पठार तथा ii. कर्नाटक का पठार;
3. पूर्वी पठार i. बघेलखण्ड पठार, ii. छोटा नागपुर पठार, iii. गढजात की पहाड़ियां iv. महानदी बेसिन तथा.v. दण्डकारण्य;
4. सह्याद्रि (पश्चिमी घाट): i. उत्तरी सह्याद्रि ii. मध्य सह्याद्रि तथा iii. दक्षिणी

5. पूर्वी घाट: i. उत्तरी पूर्वी घाट, ii. दक्षिणी पूर्वी घाट, iii. नीलगिरि तथा iv. तमिलनाडु की उच्च भूमि।

1. उत्तरी दकन पठार

उत्तरी सह्याद्रि के पूर्व में दकन लावा से बना भूभाग है। इसे ही उत्तरी दकन पठार कहा जाता है। इस भाग को दो भूआकृतिक प्रदेशों बांटा जाता है – सतपुड़ा श्रेणी और महाराष्ट्र का पठार।

(i) **सतपुड़ा श्रेणी :** यह श्रेणी उत्तर में नर्मदा तथा दक्षिण में ताप्ती नदी घाटियों के मध्यस्थित है। पश्चिम में रतनपुर से पूर्व में अमरकंटक तक इस श्रेणी का विस्तार लगभग 900 किमी में है, जिसकी औसत उँचाई 770 मीटर है। महादेव पहाड़ियों के शिखर 1,200 मीटर से अधिक ऊँचे हैं। पंचमढ़ी के निकट धूपगढ़ (1,350 मीटर) उच्चतम शिखर है। सतपुड़ा श्रेणी में पश्चिम में राजपीपला पहाड़ियाँ, मध्य में महादेव पहाड़ियों तथा पूर्व में मैकाल श्रेणी (जिसका उच्चतम शिखर अमरकण्टक में 1,064 मीटर ऊँचा है) सम्मिलित हैं। यह प्रदेश पहाड़ियों तथा घाटियों का सम्मिश्र है। इसके उत्तरी ढाल पर नर्मदा तथा दक्षिणी ढाल पर वैनगंगा, वर्धा एवं ताप्ती नदियाँ बहती हैं।

(ii) **महाराष्ट्र पठार** इसका विस्तार कोंकण तट तथा सह्याद्रि को छोडकर सम्पूर्ण राज्य पर है। अधिकांश क्षेत्र पर दकन टैप की शैलें बिछी हैं। वर्धा–वैनगंगा बेसिन में आर्कियन नीस, किनारों पर धारवाड़ तथा कहीं–कहीं कडप्पा व विन्ध्यन शैलें मिलती हैं। उत्तर में ताप्ती बेसिन (200 – 300 मीटर) एक असममित घाटी है, जिसका ढाल दक्षिण की ओर मन्द तथा उत्तर में सतपुड़ा पहाड़ियों की ओर तीव्र है। महाराष्ट्र पठार को पुन : पाँच लघु भौतिक इकाइयों में बाँटा गया है – (i) अजन्ता पहाड़ियाँ, (ii) गोदावरी घाटी, (iii) अहमदनगर बालाघाट पठार, (iv) भीमा बेसिन, तथा (v) महादेव उच्चभूमि।

2. दक्षिणी दकन पठार

आन्ध्र प्रदेश तथा कर्नाटक के पठारी भाग को दक्षिणी दकन पठार कहा जाता है। उत्तरी दकन पठार के विपरीत यह भाग आर्कियन्स नीस चट्टानों से बना है। दक्षिणी दकन पठार के दो स्पष्ट प्राकृतिक प्रदेश हैं – तेलंगाना पठार तथा कर्नाटक पठार।

(i) **तेलंगाना या आन्ध्र पठार :** भूगर्भिक दृष्टि से यह प्रदेश प्रायद्वीप का समतलीकृत भाग है, जिसमें प्रधानत : कैम्ब्रियन –पूर्व की नीस शैलें पाई जाती हैं। प्रदेश को दो लघु भौतिक इकाइयों में बाँटा जाता है – (i) तेलंगाना, तथा (ii) रायलसीमा उच्चभूमि तेलंगाना प्रदेश समप्राय मैदानों की एक पेटी है, जिसकी औसत ऊँचाई 300 – 600 मीटर है। इसका सामान्य ढाल पूर्व की ओर है। इसके उत्तरी तथा उत्तर –पूर्वी भाग पर गोदावरी घाटी स्थित है। रायलसीमा पठार एक समतल भूमि है, जो कर्नाटक पठार का उत्तरी विस्तार है। पापाधनी तथा चित्रावती की संकीर्ण घाटियाँ इस पठार की समरसता को भंग करती हैं।

(ii) **कर्नाटक पठार :** यह पठार कर्नाटक तथा केरल के कुछ भाग पर विस्तृत है। इस प्रदेश की भूगर्भिक संरचना जटिल है, जिसमें आर्कियन से लेकर आधुनिक युग तक की शैलें मिलती हैं। प्रदेश की औसत ऊँचाई 600 – 900 मीटर है। मुलानगिरि (1, 923 मीटर) बाबाबूदन

पहाड़ियों की सर्वोच्च तथा कुद्रेमुख (1,892 मीटर) द्वितीय उच्च शिखर है। यह प्रदेश अत्यधिक विच्छेदित है। इसे तीन भूआकृतिक इकाइयों में बाँटा जाता है – (i) मलनाद, (ii) उत्तरी उच्चभूमि, तथा (iii) दक्षिणी उच्चभूमि। मलनाद एक पहाड़ी प्रदेश है, जो 320 किमी लम्बाई में विस्तृत है। यह पश्चिमी घाट के आर –पार स्थित है। उत्तरी उच्चभूमि एक चौड़ा पठार (300 – 600 मीटर) है, जिसमें चौरस तली वाली घाटियाँ स्थित हैं। दक्षिणी उच्चभूमि अधिक ऊँची (600 – 900 मीटर) तथा अधिक विच्छेदित है, जिसमें तरंगित पठारों तथा ग्रेनाइट की पहाड़ियों का क्रम मिलता है।

3. पूर्वी पठार

पूर्वी मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तरी उड़ीसा के पठारी क्षेत्र का सामूहिक नाम पूर्वी पठार है। यहां प्राचीन चट्टानों की उपस्थिति के कारण दकन पठार से पूर्णत : भिन्न भूआकृतियां मिलती हैं। यह नदी बेसिनों और पहाड़ियों का क्षेत्र है। इस भाग में बघेलखंड पठार, छोटा नागपुर पठार, गढजात की पहाड़ियां, महानदी बेसिन और दण्डकारण्य मुख्य प्राकृतिक इकाइयाँ है

(i) **छोटानागपुर पठार –**झारखण्ड में स्थित छोटा नागपुर पठार प्राचीन नीस और ग्रेनाइट का बना हुआ उच्च भूभाग है। इस भाग की प्रमुख नदी दामोदर है जो अपने गोंडवानायुगीन कोयला भंडारों के लिए प्रसिद्ध है। यह उच्च भाग कई छोटे –छोटे पठारों में बंटा है। इनमें रांची का पठार सबसे विशिष्ट है। भीमकाय ग्रेनाइट की गोल पहाड़ियां तथा पुरातन बाढ़ के मैदान के थोड़े उठे हुए चबूतरे इस पठार के भूस्वरूप की मुख्य विशेषताएं हैं। यहाँ की प्रमुख नदियां दक्षिण कोयल और सुवर्ण रेखा हैं। रांची पठार के सीमान्त काफी छिन्न–भिन्न हैं जहां कई जल प्रपात बने हैं। दामोदर के उत्तर में हजारीबाग और कोदरमा पठार स्थित हैं। छोटा नागपुर पठार के उत्तरपूर्वी सीमा पर राजमहल की पहाड़ियां हैं जिनके ऊपर जुरासिक युगीन लावा का आवरण है।

(ii) **बघेलखण्ड पठार –** मैकाल पठार से पूर्व में फैला पहाड़ी क्षेत्र बघेलखण्ड पठार कहा जाता है। इसकी उत्तरी सीमा पर सोन नदी है। अमरकंटक से निकल कर सोन नदी इस पठार पर बहती है और कैमूर के समानान्तर इसकी घाटी भ्रंसित घाटी है। यहां विभिन्न युगों की चट्टानें हैं जिनके कारण भूस्वरूप में भी विविधता है। सोन घाटी के दक्षिण में एक के बाद स्व पहाड़ियाँ और घाटियां हैं। इन पहाड़ियों के दक्षिणपश्चिम में सोहागपुर बेसिन और दक्षिणपूर्व में सरगुजा बेसिन हैं जो कोयला के संचय के लिए प्रसिद्ध हैं। सरगुजा बेसिन के सीमान्त पर कई पाट हैं।

(iii) **गढजात की पहाड़ियां –** ये पहाड़ियों रांची पठार से दक्षिण महानदी तक उड़ीसा में फैली हैं। यह भाग रांची पठार की तुलना में काफी नीचा है, परन्तु धरातलीय उच्चावच बहुत अधिक है जिससे यह बीहड़ के रूप में है। पहाड़ियों में बोनाई की पहाड़ियां, क्योंझर की पहाड़ियां और सिम्पलीपाल गिरिपुंज धारवाड़ युगीन भूखण्ड के अपरदन के बाद बचे अवशेष हैं। इनका कई बार उत्थान तथा कई बार समप्रायकरण हुआ है। क्योंझर पठार की सर्वोच्च चोटी मलयगिरि (118 7मी) है। सिम्पलीपाल लावा का बना है। गढजात के पश्चिमी भाग पर बोनाई तथा बमरा की अत्यन्त कटीफटी पहाड़ियां हैं।

(iv) **महानदी बेसिन :** इसे छत्तीसगढ़ मैदान भी कहते हैं। यह छत्तीसगढ़ राज्य में लगभग 72, 940 वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत है। यहाँ आर्कियन ग्रेनाइट तथा नीस शैलों के ऊपर कुड्डप्पा अवसादी शैलें बिछी हैं। यह बेसिन महानदी तथा इसकी सहायक शिवनाथ, हसदो, माण्ड आदि नदियों द्वारा प्रवाहित है। बेसिन की सीमा पर पहाड़ियों तथा पठारों का कम स्थित है। उत्तरी सीमा लोरमी पठार, पेन्ड्रा पठार, छुरी पहाड़ियों तथा रायगढ़ पहाड़ियों द्वारा निर्धारित होती है। क्षेत्र की स्थलाकृति गोलाकार तरंगित है। पश्चिमी सिरे पर मैकाल श्रेणी तथा दक्षिणी सिरे पर राजहरा पहाडियाँ स्थित हैं, जिनकी रचना धारवाड़ शैलों से हुई है। धुर दक्षिण–पूर्व में बस्तर–उड़ीसा पठार का स्कार्पमेन्ट स्थित है, जो 800 –900 मीटर तक ऊँचा उठ गया है।

(v) **दण्डकारण्य :** इसका विस्तार उड़ीसा, छत्तीसगढ़ तथा आन्ध्रप्रदेश में 89,078 वर्ग किमी क्षेत्र पर है। यह एक विषम पठार है, जिसे दो भौतिक इकाइयों में बाँटा जाता है – (i) दण्डकारण्य उच्चभूमि, तथा (ii) दण्डकारण्य घाट। उच्चभूमि प्रदेश के अन्तर्गत बस्तर का पठार (550 – 750 मीटर) सम्मिलित है, जो पश्चिम में इन्द्रावती नदी द्वारा अत्यधिक विच्छेदित हो गया है। घाटों के अन्तर्गत कालाहाण्डी का पठार (250– 300 मीटर) सम्मिलित है। यहाँ तेल, उदान्ती, सबरी तथा सिलेरु नदियाँ बहती है। उत्तर–पश्चिम की ओर कांकेर बेसिन स्थित है, जो छत्तीसगढ़ मैदान का दक्षिणी विस्तार है। प्रदेश के दक्षिण– पश्चिमी भाग में मलकानगिरी का पठार स्थित है।

4. पश्चिमी घाट अथवा सह्याद्रि

पश्चिमी घाट अथवा सह्याद्रि पश्चिमी तट के सहारे लगभग 1,600 किमी लम्बाई में उत्तर में ताप्ती के मुहाने से दक्षिण में कन्याकुमारी तक विस्तृत हैं। ये अवरोधी पर्वत हैं, जिनका निर्माण अधोवलन के कारण हुआ। इनका पश्चिमी ढाल तीव्र तथा पूर्वी ढाल मन्द एवं सोपानी है। ये घाट प्रायद्वीप के जलविभाजक की रचना करते हैं। सभी प्रमुख नदियाँ रण उनकी सहायक इन पहाड़ियों से निकलकर पूर्व की ओर बंगाल की खाड़ी में प्रवाहित होती हैं। पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ छोटी तथा द्रुतगामी हैं, जिन्होंने संकीर्ण घाटियों तथा अनेक प्रपातों का निर्माण किया है। इनकी औसत ऊँचाई 1,000 – 1,300 मीटर है।

खानदेश में ताप्ती के दक्षिणी सिरे से गोदावरी के स्रोत त्रयम्बक तक पश्चिमी घाट की औसत ऊँचाई 600 मीटर है। इसके कुछ शिखर 1,000 मीटर से अधिक ऊँचे हैं। 16^0 उत्तरी अक्षांश तक समस्त श्रेणी बेसाल्ट से निर्मित है तथा पहाड़ियों चौरस शिखरयुक्त हैं। यहाँ हीरश्चन्द्रगढ़ (1, 424 मीटर), महाबलेश्वर (1,438 मीटर), साल्हेर (1, 567 मीटर) तथा कत्सुबाई (1, 646 मीटर) उच्च शिखर है। महाबलेश्वर कृष्णा नदी सहित चार नदियों का उद्रम प्रदेश है। 160 उत्तरी अक्षांश के दक्षिण में पश्चिमी घाट मुख्यत: ग्रेनाइट तथा नीस से निर्मित हैं। नीलगिरि तक के प्रदेश में चार्नोकाइट तथा शिस्ट शैलों की प्रधानता है। पर्वत श्रेणियाँ तट के बहुत निकट आ गई हैं। सह्याद्रि का पश्चिमी भाग 1, 500–2,000 मीटर ऊँचा है। इस भाग में कोटाबेट्टा (1, 638 मीटर); मकूर्ती (2,562 मीटर) तथा दोदाबेट्टा (2, 637 मीटर) शिखर स्थित हैं। यह भाग आगे नीलगिरि श्रेणी में मिल जाता है। पठार का उच्चतम शिखर अनाईमुडि (2, 695 मीटर) एक गाँठ है, जहाँ से

तीन श्रेणियाँ निकलती हैं – (i) उत्तर की ओर अनाईमलाई पहाड़ियाँ, (ii) दक्षिण की ओर कार्डिमम पहाड़ियाँ, तथा (iii) पूर्व की ओर पलनी पहाड़ियाँ। दक्षिण की ओर पश्चिमी घाट क्रमशः नीचे होते जाते है।

5. पूर्वी घाट

यह एक विच्छिन्न श्रेणी है, जो उत्थित पठारों के क्रम के रूप में विद्‌यमान है। कृष्णन ने पूर्वी खट को चार भूखण्डों मे बाँटा है – (i) महानदी के उत्तर में उत्तरी भाग, (ii) महानदी–कृष्णा के मध्य उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम की ओर फैली श्रेणियों, (iii) कृष्णा ' नदी तथा चेन्नई के मध्य का भाग, तथा (iv) चेन्नई एवं नीलगिरि के मध्य का भाग।

सबसे उत्तरी खण्ड की रचना अन्तर्वेशित आग्नेय शैलों से हुई है। यहाँ उच्चावच की विविधता दर्शनीय है। यह एक विच्छेदित पठार है, जिस पर कुछ शिखर, जैसे – गन्धमर्दन (1,060 मीटर), मेघसानी (1,165 मीटर) तथा मलगिरि (1,187 मीटर) एक हजार मीटर से अधिक ऊँचे हैं महानदी तथा कृष्णा के मध्य एक खण्ड में खोण्डलाइट तथा चार्नोकाइट प्रधान शैलें है! इसकी स्थलाकृति अत्यधिक विच्छेदित है। यहाँ कैम्ब्रियन –पूर्व युग में गौण रूप से वलन क्रिया भी हुई। इस खण्ड की औसत ऊँचाई 1,000 मीटर है। यहाँ महेन्द्रगिरि (1,501 मीटर) सर्वोच्च शिखर है। यहाँ से अनेक नदियाँ निकलती हैं। पश्चिम में गोदावरी ने एक गहरी घाटी का निर्माण किया है।

कृष्णा नदी के दक्षिण में नल्लामलाई, पालकोन्दा तथा वेलीकान्दा की पहाडियाँ कुड्डप्पा क्रम के चूनापत्थर तथा क्रॉर्टज शैलों से निर्मित हैं। इन पहाड़ियों की औसत ऊँचाई 900 मीटर है!

चेन्नई के आगे घाट मुख्यत : चार्नोकाइट तथा गणित : नीस, चूनापत्थर, कॉर्टजाइट एवं अभ्रक – शिस्ट शैली, से निर्मित् हैं। जावादी जिन्जी तथा शिवराय पहाड़ियाँ अन्तत : नीलगिरि में मिल जाती हैं।

तमिलनाडु पठार : यह पठार दक्षिणी सह्यद्रि तथा तमिलनाडु तटीय मैदानों के मध्य लगभग 60. 000 वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत है। जावादी तथा शिवराय पहाड़ियों में इसकी रचना मुख्यत : नीस तथा चार्नोकाइट से हुई है। पूर्वी भाग कॉप मे निर्मित है। इस पठार को दो लघु भौतिक इकाइयों में बाँटा जाता है – (i) तमिलनाडु पहाड़ियाँ, तथा (ii) कोयम्बटूर –मदुरै उच्चभूमि। पहाडियों वे, अन्तर्गत जावादी, शिवराय, कालरायन तथा पचमलाई की पहाड़ियाँ सम्मिलित हैं। शिवराव पहाडियाँ 1,525– 1,647 मीटर तक ऊँची हैं। कोयम्बटूर उच्चभूमि कावेरी से पश्चिम की ओर धीरे – धीरे ऊपर उठती हैं। मदुरै उच्चभूमि सह्याद्रि की तलहटी तक विस्तृत है। यहाँ वैगाई तशा ताम्रपर्णी के बेसिन स्थित हैं।

2.2.4 तटीय मैदान (Origin of Coasts)

प्रायद्वीपीय पठार विविध चौड़ाई 'वाले तटीय मैदानों से घिरे हैं। गुजरात तट के अपवाद सहित पसञ्चानी तट संकीर्ण है, जबकि पूर्वी तट चौड़ा। निमगता एवं नमन के कारण पश्चिमी तट पर नदियों द्वारा निक्षेपात्मक कार्य नही हुआ है। इसके विपरीत, पूर्वी तट पर उन्मग्रता के कारण नदियों ने विशाल डेल्टा बनाए हैं।

2.2.4.1 तटों की उत्पत्ति (Origin of Coasts)

कुछ भूवैज्ञानिकों के अनुसार भारत के तट इयोसीन युग के अन्त में अरब सागर तथा –बंगाल की खाड़ी में भ्रंशन एवं अवतलन होने के कारण उत्पन्न हुए। तटों के सहारे उन्मज्जन तथा निमज्जन के निश्चित साक्ष्य मौजूद हैं। कृष्णन के अनुसार क्रिटेशस युग के मध्य में मेघालय पठार के दक्षिणी भाग तथा 'तमिलनाडु में सागरीय अतिक्रमण हुआ। अण्डमान सागर क्रिटेशस के अन्त में उत्पन्न हुआ। इनायत अहमद ने भारत के तट को निम्नलिखित दस खण्डों में विभाजित किया है–

(i) **उत्तरी सरकार तट:** हुबली तथा कृष्णा नदियों के डेल्टा के मध्य विस्तृत यह तट एक उन्मग्र तट है। यहाँ अनेक पुलिन, बालूकास्तूप तथा भूजिहव (spit) मिलते हैं। चिल्का झील एक प्रमुख लैगून है। इस तट का सागरोन्मुख ढाल अत्यन्त मन्द है।

(ii) **कोरोमण्डल तट:** यह तट कृष्णा डेल्टा से कन्याकुमारी तक विस्तृत है। यहाँ अपतटीय रोधिकाओ की अधिकता है, जबकि लैगून अनुपस्थित हैं।

(iii) **मालाबार तट:** यह तट उन्मग्रता एवं निमग्रता के मिश्रिन लक्षण प्रस्तुत करता है। यहाँ लैगूनों का क्रम, जिसे स्थानीय रूप से 'कयाल' कहते हैं, अपतटीय रोधिकाओं तथा भूजिहवों सहित मिलता है। पश्चजल की उपस्थिति निमग्रता को सूचक है।

(iv) **कोंकण तट:** कारवाड़ से वलसाड तक विस्तृत यह तट एक निमग्र तट है। यहाँ भृगु, लहर–अपरदित चबूतरे, अण्डाकार कटान, स्टैक स्वीकार आदि पाए जाते हैं, जो निमग्रता के सूचक हैं।

(v) **वलसाड–** भावनगर तट: यह एक निमग्र खण्ड हैं, जहाँ खाईयुक्त ज्वारनदमुख मिलते हैं। तटीय क्षेत्र एक निम्न काँपीय मैदान है। नर्मदा तथा ताप्ती के ज्वारनदमुखों पर सर्वत्र दलदल व सिल्ट के निक्षेप वैस्तृत हैं। यहाँ उन्मग्रता के भी कुछ प्रमाण मिलते हैं।

(vi) **काठियावाड़ तट:** भावनगर से दीव तक मिश्रित भूलक्षण मिलते हैं, जैसे – निमग्रता के सूचक खाईयुक्त ज्वारनदमुख तथा उन्मग्रता के सूचक अपतटीय रोधिकाओं तथा भूजिहवों से युक्त सीधे किनारे।

(vii) **वेरावल–द्वारका तट**: यहाँ सीधा किनारा मिलता है, जहाँ अपतटीय रोधिकाएँ. भूजिहव तथा दलदल पाए जाते हैं।

(viii) **कच्छ तट:** कच्छ की खाड़ी के सहारे विस्तृत तट पर ज्वारनदमुख तथा कुछ दलदल एवं भृगुएँ उपस्थित हैं।

(ix) **लक्षद्वीप तट:** लक्षद्वीप के चारों ओर प्रवालभित्तियाँ पाई जाती हैं। यह तट है। यह एक उदासीन तट है, जहाँ उन्मग्नता के निश्चित प्रमाण नहीं मिलते।

(x) **अण्डमान–निकोबार तट:** इन द्वीपों का तट मिश्रित प्रकार का है। यहाँ भृगु, प्रवालभित्तियो तथा उचारनदमुख के अतिरिक्त अपतटीय रोधिकाएँ मिलती हैं, जो क्रमश: निमग्रता एवं उन्मग्रता के सूचक हैं।

2.2.4.2 तटीय मैदानों के भूआकृतिक विभाग (Physiographic Divisions of Coastal Plains)

भौलिकाकृतिक दृष्टि से भारतीय तटीय मैदानों को निम्नलिखित तीन बड़े वर्गों में बाँटा जाता – (i) गुजरात का तटीय मैदान, (ii) पश्चिमी तटीय मैदान, तथा (iii) पूर्वी तटीय मैदान।

1. **गुजरात का तटीय मैदान:** यह गुजरात, दमन, दीव तथा दादरा एवं नगरहवेली के लगभग 1. 79 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत है। यह तटीय मैदान साबरमती, माही तथा अन्य अनेक छोटी नदियों द्वारा लाए गए काँपीय निक्षेपों से निर्मित है। अधिकांश मैदान पवन के निक्षेपात्मक कार्य तथा सागर के निवर्तन से निर्मित हैं। इस में अनेक प्रायद्वीप, खाड़ियाँ, द्वीप, दलदल, पहाड़ियों, पठार आदि पाए जाते हैं। कच्छ का रन ज्वारीय पक भूमि तथा स्नेक जीवित एवं मृत खाड़ियों का एक विस्तृत प्रदेश है। रन के दक्षिण में कच्छ (जो पहले एक द्वीप था) स्थित है। यह दी–पश्चिम को छोड़कर सभी दिशाओं में रन से घिरा हैं।
2. **पश्चिमी तटीय मैदान:** इसका विस्तार 64, 264 वर्ग किमी क्षेत्र पर 1, 400 किमी लम्बाई तथा 10–80 किमी चौड़ाई में है। इसकी ऊँचाई 0 – 150 मीटर है, जो कहीं–कहीं 300 मीटर तक पहुँच जाती है। दमन से गोआ तक विस्तृत कोंकण खण्ड में इसकी चौड़ाई 50–80 किमी है। यह अत्यधिक विच्छेदित है। यहाँ वैतरणा तथा उल्हास नदियाँ बहती हैं।
   कर्नाटक में तटीय मैदान 8–24 किमी चौड़े हैं। ये प्राचीन रवेदार शैलों से निर्मित हैं। तथा अत्यधिक विच्छेदित हैं। इस तट पर भृगु तथा बालूकास्तूप अधिक मिलते हैं। यहाँ शरावती तथा अन्य छोटी नदियाँ बहती हैं, जो अरब सागर में गिरती हैं।
   केरल तटीय मैदान मालाबर तट कहलाता है। यह 20–100 किमी चौड़ा है। इसकी ऊंचाई मात्र 10–30 मीटर है। यहाँ अनेक लैगून तथा पश्चजल मिलते हैं, जिन्हें 'कयाल ' कहते हैं। यहाँ अष्टमुडि तथा वेम्बानद प्रमुख झील, हैं। तटीय मैदान में बेपुर, पोन्नानी, पेरियार तथा पेम्बा–अचनकोविल नदियाँ बहती हैं।
3. **पूर्वी तटीय मैदान:** इसका विस्तार उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश तथा तमिलनाडु तट के, सहारे लगभग 1.02 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर है। यह पश्चिमी तट से अधिक विस्तृत तथा चौड़ा है। इन मैदानों की औसत चौडाई 120 किमी है। नर्मदा तथा ताप्ती के अपवाद सहित सभी प्रमुख प्रायद्वीपीय नदियाँ इस मैदान से होकर बहती हैं तथा विस्तृत डेल्टा का निर्माण करती हैं। उत्तर से दक्षिण यह मैदान निम्नलिखत तीन भूखण्डों में विभाजित किया जाता है – (i) उत्कल मैदान, (ii) आन्ध्र मैदान, तथा ,(iii) तमिलनाडु मैदान –
   (i) **उत्कल मैदान:** यह मैदान लगभग 400 किमी लम्बा व 100 किमी चौड़ा है। इसके अन्तर्गत महानदी डेल्टा सम्मिलित है। इस तटीय मैदान का विशिष्ट लक्षण चिल्का झील है, जो एक लैगून है। इस मैदान की तटरेखा सरल है तथा इसके किनारे पर बालूकास्तूप मिलते हैं, जो तट पर उन्मग्रता के सुचक है। इस मैदान में भार्गवी दया, ऋषिकुल्या तथा महानदी बहती हैं।
   (ii) **आन्ध मैदान:** यह मैदान बरहामपुर (उड़ीसा) से पुलिकट झील (आन्ध्रप्रदेश) तक विस्तृत है। यहाँ गोदावरी तथा कृष्णा के विस्तृत डेल्टा स्थित हैं। इन दोनों डेल्टा के मध्य कोलेरू

झील स्थित है। ये मैदान कृष्णा नदी के साथ लगभग 200 किमी स्थल की ओर विस्तृत हैं।

(iii) **तमिलनाडु मैदान:** यह मैदान पुलिकट झील से कन्याकुमारी तक लगभग 675 किमी लम्बाई में विस्तृत हैं! इसकी औसत चौड़ाई 100 किमी है। कावेरी डेल्टा के निकट यह मैदान 130 किमी चौड़ा है। इस मैदान में कावेरी डेल्टा तथा पुलिकट झील (लैगून) प्रमुख लक्षण हैं।

2.2.5 भारतीय द्वीपसमूह (Indian Islands)

भारत में 247 द्वीप सम्मिलित हैं, जो बंगाल की खाड़ी (204 द्वीप) तथा अरब सागर (43 द्वीप) में बिखरे हैं –

1. **बंगाल की खाड़ी के द्वीप:** बंगाल की खाड़ी के द्वीप अर्द्ध–चन्द्राकृति में फैले हैं, जिनका क्षेत्रफल 8,326 वर्ग किमी है। ये द्वीप अण्डमान रख निकोबार द्वीपसमूह कहलाते हैं, जो परस्पर 10^0 चैनल द्वारा पृथक् हैं। इन द्वीपों का दक्षिणतम बिन्दु 'इन्दिरा पॉइण्ट' (पिग्मेलियन पॉइण्ट) कहलाता है।

   अण्डमान द्वीपसमूह में 204 द्वीप सम्मिलित हैं। वृहत् अण्डमान द्वीप संकरी खाड़ियों, द्वारा उत्तरी अण्डमान, मध्य अण्डमान, दक्षिणी अण्डमान, बरका एवं स्टलैण्ड द्वीप के रूप में पृथक होते हैं। इनके अतिरिक्त, अण्ड–मान के पूर्व मे बैरन तथा नारकोण्डम द्वीप ज्वालामुखी द्वीप हैं। अण्डमान द्वीप अराकान योमा की टर्श्यरी पर्वत श्रृंखला का विस्तार है?

   निकोबार द्वीपसमूह में 18 द्वीप सम्मिलित हैं, जिनमें से 11 द्वीप निर्जन हैं। इस द्वीपसमूह के कुछ द्वीप, जैसे – चीरा, कार निकोबार तथा पुली मिलो प्रवाल उत्पत्ति के हैं, जबकि कच्छल, ननकोडी तथा ग्रेट निकोबार पर्वतीय द्वीप हैं।
2. **अरब सागरीय द्वीप:** अरब सागरीय द्वीपों में लक्षद्वीप समूह के 36 द्वीप सम्मिलित हैं जिनका क्षेत्रफल 108 वर्ग किमी है। इनमें से केवल 10 द्वीप आबाद हैं। कवरत्ती द्वीप पर स्थित कवरत्ती लक्षद्वीप की राजधानी है। मिनिकोय दक्षिणतम द्वीप है, जो शेष द्वीपों से 90 चैनल द्वारा पृथक् होता है। सबसे उत्तर में स्थित द्वीपसमूह को अमीनदीवी कहते हैं। मध्यवर्ती द्वीपसमूह लकादीव कहलाता है। दक्षिण में लक्षद्वीप मालदीव द्वीपों से 80 चैनल द्वारा पृथक् होते है। लक्षद्वीप प्रवाल उत्पत्ति के हैं। इनकी औसत ऊँचाई 3.5 मीटर है। ये बहु त छोटे द्वीप हैं।
3. **अपतटीय द्वीप:** भारत में अनेक अपतटीय द्वीप स्थित हैं। पश्चिमी तटीय द्वीपों में – पीरम भैंसला (काठियावाड़), दीव, वैदा, नीरा, पिरटन, करुम्भर (कच्छ), खडियाबेट, अलियाबेट (नर्मदा–ताप्ती के मुहाने पर), बूचर, एलीफेन्ट, करंजा, सालसेट, क्रॉस (मुम्बई के निकट), भटकल, पिजन कॉंक, सेन्ट मेरी (मंगलौर तट), अन्जीदिव (गोआ तट), वाइपिन (कोची के निकट) तथा पूर्वी तट के द्वीप – पाम्बन, क्रोकोडाइल, अदुन्दा (मन्नार की खाड़ी), पारीकुड (चिल्का झील के मुहाने पर), शॉर्ट, व्हीलर (महानदी–ब्राहमणी के मुहाने पर) तथा न्यूमूर एवं सागर (गंगा डेल्टा) उल्लेखनीय हैं। इनमें से अनेक द्वीप निर्जन हैं।

बोध प्रश्न – 2

1. भारत के उत्तरी विशाल मैदान का विस्तार कितने क्षेत्र पर है?

....

....

2. भारत के उत्तरी विशाल मैदान में कॉप निक्षेपों की मोटाई कितनी है?

....

....

3. कॉप निक्षेपों की प्रकृति, ढाल प्रवणता, अपवाह आदि भौतिक विशेषताओं, आधार पर भारत के उत्तरी विशाल मैदान को कितने भूखण्डों में बाँटा गया है?

....

....

4. भारत के प्रायद्वीपीय मध्यवर्ती पठार में कौन–सी पर्वत श्रेणियाँ व पठार सम्मिलित होते हैं?

....

....

5. दकन पठार को कौन –कौन से भौतिक खण्डों में विभाजित किया गया है?

....

....

6. भारत के तटीय मैदानों की उत्पत्ति कैसे हुई?

....

....

7. भारत के पूर्वी व पश्चिमी तटीय मैदानों में क्या भिन्नताएँ मिलती है?

....

....

2.3 सारांश (Summary)

भारत की भूगर्भिक संरचना ने देश में उच्चावच तथा भौतिक लक्षणों की विविधता को जन्म दिया है। देश के लगभग 10.6 प्रतिशत क्षेत्र पर पर्वत,18.5 प्रतिशत क्षेत्र पर पहाड़ियाँ, 27.7 प्रतिशत क्षेत्र पर पठार तथा 43.2 प्रतिशत क्षेत्र पर मैदान विस्तृत हैं। देश के धुर उत्तर में हिमाच्छादित शिखर, विशाल हिमनद, गहरी तंग घाटियों तथा अनुदैर्ध्य सहित हिमालय की उच्च पर्वत श्रेणियों का विस्तार है। इसके दक्षिण में सिन्धु गंगा –ब्रह्मपुत्र क्रम की विशाल नदियों द्वारा प्रवाहित चौरस मैदान हैं। इन नदियों के बेसिन चौरस घाटियों, नदी तटीय टीलों, विसर्प, गोखुर झील, बाढ़ के मैदान आदि लक्षणों से युक्त हैं। पश्चिमी राजस्थान एक रेतीला मरुस्थल है। विशाल मैदान के दक्षिण में भारतीय प्रायद्वीप एक सपाट भूमि है, जिस पर अपरदित शैलों, स्कार्प भूमि, सोपानी स्थलाकृति तथा कहीं–कहीं चौरस शिखरयुक्त अवशिष्ट श्रेणियाँ व घाटियाँ स्थित हैं। भारत के पूर्वी व पश्चिमी तटीय मैदानों की उत्पत्ति इयोसीन युग के अन्त में अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी

में भ्रंशन एवं अवतलन के कारण उत्पन्न उन्मज्जन एवं निमज्जन के फलस्वरूप मानी जाती है। यहाँ अनेक पुलिन, बालूकास्तूप, लैगून, अपतटीय रोधिकाएँ, निमग्न तट, भृगु, ज्वारनदमुख, काँपीय मैदान, दलदल व सिल्ट, प्रवालभित्तियाँ आदि भौतिकाकृतिक स्वरूप देखने को मिलते हैं। अरब सागर में लक्षद्वीप तथा बंगाल की खाड़ी में अण्डमान एवं निकोबार द्वीपसमूह मुख्यत: प्रवाल उत्पत्ति के हैं।

2.4 शब्दावली (Glossary)

- **अग्रगर्त (Foredeep):** किसी पर्वतीय तटीय भूमि के निकट अथवा उसके समानान्तर महासागर की तली में निर्मित गहरा संकीर्ण तथा तीव्र ढाल वाला लम्बाकार गर्त।
- **अधिक्षेप (Overthrust)**. शैलों के अत्यधिक वलन की स्थिति, जिसमें अत्यधिक सम्पीडन के कारण वलन की दोनों भुजाऐं क्षैतिज तल के सहारे एक–दूसरे के समानान्तर हो जाती हैं।
- **अपक्षेप मैदान (Outwash Plain) :** किसी हिमानी के हिमद्रवण से उत्पन्न सरिताओं द्वारा किए गए निक्षेप मे निर्मित जलोड मैदान।
- **अपनति (Anticline) :** शैल संस्तरों में सम्पीडन के कारण वलन पड़ने से (वलित संरचना में) निर्मित ऊपरी महराबदार मोड़।
- **अवतलन (Subsidence).** भूपर्पटी के किसी भाग का अपने चतुर्दिक भागों के सापेक्ष नीचे धँसने की क्रिया।
- **अवशिष्ट पर्वत (Residual Mountain) :** वह पर्वत जो अनाच्छादन क्रियाओं द्वारा कटकर अधिक नीचा तथा सपाट शिखर वाला हो।
- **असममित घाटी (Asymmetrical Fold) :** असमान पार्श्वो वाली घाटी, जिसके एक पार्श्व का ढाल दूसरे पार्श्व की तुलना में अधिक होता है।
- **असममित वलन (Asymmetrical Fold) :** वलन का एक प्रकार, जिसकी दोनों भुजाओं के झुकाव में असमानता पाई जाती है।
- **उच्चावच (Relief)** : पृथ्वी की ऊपरी सतह (धरातल) की भौतिक आकृति।
- **ज्वारनदमुख (Estuary) :** नदी का जलमग्न मुहाना, जहाँ स्थल से आने वाले जल।
- **खादर (Khadar) :** नदी के किनारे स्थित वह निचली भूमि जहाँ प्राय: हर वर्ष नदी की बाढ़ का जल पहुँच जाता है और नवीन जलोढ़ का जमाव होता रहता है।
- **गॉर्ज (Gorge) :** तीव्र पार्श्वो वाली अधिक गहरी किन्तु संकीर्ण घाटी।
- **जलविभाजक (Watershed) :** दो अपवाह बेसिनों के मध्य स्थित उच्चभूमि, जिसके दोनों ओर भिन्न अपवाह पाए जाते है।
- **भ्रंश घाटी (Rifty Valley) :** दो समानान्तर भ्रंशों के मध्य का गहरा भाग, जिसकी चौड़ाई अत्यन्त कम किन्तु लम्बाई अधिक होती है।
- **पश्चजल (Back Water) :** किसी नदी की मुख्य धारा से पृथक् हुआ जलीय क्षेत्र, जो प्राय: नदी से संलग्न रहता है किन्तु उस पर नदी प्रवाह का प्रभाव बहुत कम होता है।

- **प्लेट विवर्तनिकी (Plate Tectonic) :** भूआकृतिविज्ञान का एक नवीन सिद्धान्त, जो प्लेटों की आकृति, उनके प्रवाह तथा प्रवाह से उत्पन्न स्थलाकृतियों की व्याख्या करता है।
- **बांगर (Bangar) :** नदी द्वारा निर्मित अपेक्षाकृत ऊँचे पुरातन जलोढ़ मैदान, जहाँ नदी का बाढ़ का जल नहीं पहुँच पाता।
- **वालुकास्तूप (Sand Dune) :** मरुस्थलों में पवन द्वारा बालू के निक्षेप से निर्मित टीला।
- **हॉर्स्ट (Horst) :** दो समानान्तर भ्रंशों के बीच के भूखण्ड के ऊपर उठ जाने से अथवा दो समानान्तर भ्रंशों के बाहरी भूखण्डों के नीचे बस जाने से निर्मित उच्चभूमि या पर्वत।
- **भूसन्नति (Geosyncline) :** भूपर्पटी में दीर्घकालीन संवलन द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पन्न नतवलन (down fold)।
- **भूजिहव (Spit) :** सागरतटीय भाग में रेत, बजरी एवं कंकड़–पत्थर के जमाव से निर्मित जिहवा–सदृश्य संकरी एवं निचली भू–आकृति।
- **भ्रंश (Fault) :** तनावमूलक भूसंचलन की तीव्रता के कारण भूपटल की शैलों में एक तल के सहारे उत्पन्न दरार या विभंग जिसमें विभगतल के सहारे बड़े पैमाने पर शैल खण्डों का स्थानान्तरण होता है।
- **लैगून (Lagoon) :** सागर तट पर स्थित एक उथला जलक्षेत्र, जो किसी संकीर्ण स्थलीय पेटी या अवरोध द्वारा सागर से अंशतः या पूर्णतः पृथक् होता है।
- **वलन (Fold) :** भूगर्भिक शक्ति द्वारा उत्पन्न क्षैतिज संचलन के कारण भूपटलीय शैलों में संचलन होने वाला लहरदार मोड़ या झुकाव।
- **विवर्तनिकी (Tectonic) :** भूविज्ञान की एक शाखा जो भूपटल के संरचनात्मक तथ्यों के निर्माण में संलग्न प्रक्रमों के अध्ययन से सम्बन्धित होती है।
- **सम्पीडन (Compression) :** किसी क्षेत्र या पदार्थ पर विपरीत दिशाओं से पड़ने वाला बल, जिससे उसके आकार में संकुचन होता है।

2.5 सन्दर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. तिवारी, विजय कुमार: **भारत का भूगोल**, भाग प्रथम व द्वितीय, **हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुम्बई, 1997**

2. सिंह, जगदीश: भारत – **भौगोलिक आधार एवं आयाम,** राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 2002 '

3. बंसल, सुरेश चन्द्र – **भारत का भूगोल,** मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2004

4. गौतम, अलका : **भारत का बृहद भूगोल,** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007 (आंग्ल संस्करण भी उपलब्ध)

5. चौहान, पी.आर. एवं प्रसाद महातम : **भारत का बृहद् भूगोल**, वसुन्धरा प्रकाशन, 2007

6. मिश्र, जे.पी. : **भारत का भूगोल**, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007

7. सिंह, सविन्द्र : **भूआकृति विज्ञान**, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2007

8. शर्मा श्रीकमल, सम्पादक **भारत का भूगोल**, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 2004.

9. Government of India : **The Gazetteer of India**, Vol. I– **The Land** Publication Division, New Delhi, 1965
10. spate, O.H.K. and Learmonth, A.T.H.: **India and Pakistan–Land People and Economy,** Methuen & Co., London, 1967
11. Wadia, D.N. : **Geology of India,** Tata McGraw Hill Publishing Co., New Delhi, 1975
12. Krishnan, M.S. : **Geology of India and Burma,** CBS Publishers and Distributors, Delhi, 1982
13. Dixit, K.R. (ed.) : **India– Geomorphological Diversity**, Rawat Publication Jaipur, 1994
14. Mathur, S.M. : **Physical Geology of India**, National Book Trust, New Delhi, 1994
15. Vaidiya, K.S. : **Dynamic Himalaya**, University Press, Hyderabad, 1998

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. (i) भूअभिनतीय संकल्पना, और (ii) प्लेट विवर्तनिकी संकल्पना।

2. (i) द्रास तथा कोहिस्तान से पूर्व की ओर विस्तृत 600 किमी लम्बी 90 मिलियन वर्ष पुरानी ज्वालामुखी श्रृंखला, (ii) स्पीति नदी की तली में मृत मोलस्क और सागरीय जीवाश्मों के चिहन, (iii) देहरादून, काठमाण्डू तथा दार्जिलिंग में ताड़ वृक्ष के जीवाश्म, (iv) शिमला के निकट ग्रेनाइट की उपस्थिति, और (v) लद्दाख में 14,000 फुट की ऊँचाई पर हिप्पोपोटेमस की खोपड़ी की खोज।

3. एशियाई तथा भारतीय प्लेटों के परस्पर टकराने के कारण अभिसरण क्षेत्र (टीथिस भूअभिनति) के अवसादों में क्षैतिज सम्पीडन के फलस्वरूप तीव्र उठाव होने से।

4. तीन – (i) महा हिमालय या हिमाद्रि – सबसे उत्तरी श्रेणी, (ii) लघु हिमालय या हिमाचल– हिमाद्रि और शिवालिक श्रेणी के मध्य, तथा (iii) बाह्य हिमालय या शिवालिक – सबसे दक्षिणी श्रेणी।

5. तीन – (i) पश्चिमी हिमालय – सिन्धु से काली नदी के मध्य, (ii) मध्य हिमालय – काली से तिस्ता नदी के मध्य, तथा (iii) पूर्वी या असम हिमालय – तिस्ता से ब्रहमपुत्र नदी के मध्य।

बोध प्रश्न–2

1. लम्बाई सिन्धु से ब्रहमपुत्र नदी तक 2,400 किमी, चौड़ाई 150 से 500 किमी, विस्तार 3 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर।

2. ओल्डहम के अनुसार 4,000– 6,000 मीटर तथा ग्लेनी के अनुसार 2,000 मीटर।

3. पाँच – (i) भाबर, (ii) तराई, (iii) बांगर, (iv) खादर, तथा (v) डेल्टा।

4. अरावली श्रेणी, पूर्वी राजस्थान पठार, माल्वा पठार, बुन्देलखण्ड पठार, विन्ध्याचल–बघेलखण्ड पठार, छोटा नागपुर पठार तथा मेघालय पठार।
5. सतपाल श्रेणी, महाराष्ट्र पठार, महा नदी बेसिक, उड़ीसा पठार, दण्डकारण्य, तेलंगाना या आंध्र पठार, कर्नाटक पठार, तमिलनाडु पठार, पश्चिमी घाट अथवा सह्याद्रि तथा पूर्वी घाट।
6. इयोसिन युग के अन्त में अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में भ्रंशन एवं अवतलन के कारण उत्पन्न उन्मजन एवं निमज्जन से फलस्वरूप।
7. पूर्वी तट पश्चिम तट की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। पूर्वी तट पर उन्मग्रता के कारण नदियों ने विशाल डेल्टा बनाए है जबकि पश्चिमी तट पर निमग्रता तथा नमन के कारण नदियों द्वारा कोई निक्षेप नहीं हुआ है।

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. हिमालय की भौतिकाकृतिक विशेषताओं की सुविस्तृत विवेचना कीजिए।
2. भारत के उत्तरी विशाल मैदानी गर्त की उत्पत्ति कैसे हुई ? इस गर्त का भराव कैसे हुआ ? मैदान में निक्षेपित अवसादों की संरचना समझाइए।
3. भारत के उत्तरी विशाल मैदान का प्रादेशिक विभाजन करते हुए इसके भौतिकाकृतिक लक्षणों की विवेचना कीजिए।
4. भारत का प्रायद्वीपीय पठार अनेक स्थलाकृतिक चक्रों से होकर गुजरा है। ' पठार के विभिन्न भौतिक विभागों के भौतिकाकृतिक लक्षणों के सन्दर्भ में समझाइए।
5. 'भारत के पश्चिमी तटीय मैदान भूतात्विक संरचना व भौतिकाकृति की दृष्टि से पूर्वी तटीय मैदान से व्यापक भिन्नता रखते हैं। " सविस्तार समझाइए।

इकाई 3: अपवाह तंत्र एवं जलसंसाधन (Drainage and Water Resources)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 अपवाह प्रतिरूप

3.3 जल संसाधन

3.3.1 सतही जल

3.3.2 नदी बेसिन

3.4 भूमिगत जल

3.5 जल संसाधन का उपयोग

3.6 राष्ट्रीय जल ग्रिड

3.7 अन्तर्राज्यीय जल विवाद

3.8 राष्ट्रीय जल नीति

3.9 सारांश

3.10 शब्दावली

30.11 सन्दर्भ ग्रंथ

3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे :–

- भारत मे अपवाह प्रणालियाँ,
- भारत की जल सम्पदा का विवरण,
- सतही एवं भूजल संसाधनों का आकलन,
- राष्ट्रीय परिप्रेक्ष में जलग्रिड,
- अन्तर्राज्यीय जल विवादों की जानकारी,
- राष्ट्रीय नदी संगम योजना
- प्रभावी उपयोग के लिए राष्ट्रीय जल नीति की जानकारी।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में जल संसाधनों की उपलब्धता मानसून पर निर्भर करती है जो मानसून काल में प्राप्त वर्षा से उपलब्ध होते हैं। ये जल संसाधन भारत के सतही जल स्रोतों से बहता हुआ सागर तक जाता है तथा इसी दौरान भूमिगत भी होता है। ये सम्पूर्ण प्रक्रिया एक अपवाह क्रम में बहती नदियों के रूप में स्थापित है, इस क्रम को अपवाह प्रतिरूप कहते हैं, जो पूर्णतया धरातल की

बनावट से नियंत्रित होता है। इसलिए भारतीय धरातल पर विकसित अपवाह प्रतिरूप के एक तंत्र के रूप में अध्ययन की।। आवश्यकता है तथा इसका अध्ययन भूमिगत जल एवं सतही नदी बेसिनों में जल की उपलब्धता के सन्दर्भ में किया जाता है।

3.2 अपवाह प्रतिरूप (Drainage Pattern)

भारत के अपवाह के विभिन्न प्रतिरूप मिलते हैं, क्योंकि भारत के धरातलीय विन्यास का विकास भूगर्भिक काल में हुआ है। किसी भौगोलिक क्षेत्र की नदियों में पायी जाने वाली ज्यामितीय व्यवस्था (Geometric Arrangement) को अपवाह प्रतिरूप कहते हैं। अपवाह प्रतिरूप के निर्धारण में अनाच्छादन (अपक्षय एवं अपरदन) स्थलाकृतिक व भूगर्भिक संरचना, ढाल विवर्तनिक घटनायें, जलवायुविक दशाओं एवं जलापूर्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रकार के उद्गम स्थल से लेकर मुहाने तक के सम्पूर्ण प्रवाह क्रम तक स्वयं नदी एवं उसकी सहायक नदियों की व्यवस्था को अपवाह प्रतिरूप कहा जाता है।

अपवाह तंत्र के प्रकार (Types of Drawing System)

अपवाह प्रतिरूप या तंत्र के प्रकारों को अनेक बार अपवाह प्रतिरूप ही मान लिया जाता है जो वास्तव सरिताओं के प्रकार होते हैं तथा संरचना के अनुसार अपनी मुख्य नदी से जुड़े होते हैं। मुख्य नदी में सहायक नदियों के मिलने के क्रम में ही इनके प्रकार निर्धारित होते है। इसमें भूगर्भिक संरचना एवं ढाल के अनुसार नदियाँ विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होती हैं। प्रवाह की दिशा एवं ढाल की दिशा के अनुसार ये निम्नलिखित प्रकार की होती हैं

1. **अनुवर्ती नदियाँ (Consequent Stream) :** वे नदियाँ, जो सामान्य ढाल की दिशा में बहती हैं अनुवर्ती नदियाँ कहलाती हैं। प्रायद्वीपीय भारत की ज्यादातर नदियाँ अनुवर्ती नदियाँ हैं। उदाहरण के लिए प्रायद्वीपीय भारत में गोदावरी, कृष्णा एवं कावेरी जो पश्चिमी घाट से निकलती है तथा बंगाल की खाड़ी में जाकर गिरती हैं, अनुवर्ती नदियाँ हैं।
2. **जालीनुमा (Trellis) अपवाह प्रतिरूप** : यह आयताकार रूप में प्रवाहित नदी क्रम होता है नदियाँ समकोण पर मिलती हैं। छोटा नागपुर के पठारी भाग में ऐसा प्रतिरूप मिलता है।
3. **परवर्ती नदियां (Subsequent Rivers) :** प्रायद्वीप के वृहत् मैदान की तरफ उत्तरी ढाल के कारण विंध्य तथा सतपुड़ा श्रेणी से निकलकर नदियां उत्तर की ओर बहती हैं तथा गंगा के नदी तंत्र में जाकर मिलती हैं। चंबल, सिंध, बेतवा, सोन, गंगा तथा यमुना में जाकर समकोण पर मिलती हैं। ये गंगा अपवाह तंत्र की परवर्ती अपवाह हैं।
4. **अध्यारोपित अपवाह (Superimposed Drainage) :** इसका निर्माण तब होता है, जब किसी नदी की धारा मूलत: शैलों के आवरण पर स्थापित होती है तथा जो अपरदन के कारण हट जाता है ताकि नदी अथवा अपवाह तंत्र नए अनावृत शैल व संरचनाओं से स्वतंत्र हो। दामोदर, स्वर्णरेखा, चम्बल, बनास तथा रीवा पठार में बहने वाली नदियाँ अध्यारोपित अपवाह के उदाहरण हैं।
5. **द्रुमाकृतिक अपवाह (Dendritic Drainage)** : अपवाह जो शाखाओं में फैली हो, जो द्विभाजित हो तथा वृक्ष के समान प्रतीत हों, उसे द्रुमाकृतिक अपवाह कहते हैं। द्रुमाकृतिक अपवाह उस भू–भाग में विकसित होते हैं, जहाँ एकरूप अश्म– वैज्ञानिक विशेषताएँ होती हैं तथा जहाँ भ्रंशन एवं सन्धान निरर्थक होते हैं, उदाहरण के लिए अतिविशाल क्रिस्टलीय शैल

या सघन मैदान, जिसमें चिकनी मिट्टी मौजूद होती है। गंगा के मैदान की ज्यादातर नदियाँ द्रुमाकृतिक प्रकार की हैं।

6. **पूर्ववर्ती अथवा प्रत्यनुवर्ती अपवाह (The Antecedent or Inconsequent Drainage) :** वे नदियाँ, जो हिमालय के उभरने से पहले बहती थीं तथा जिनकी धाराओं की दिशा पर्वतों में महाखड्ड बनाकर दक्षिण की ओर होती थी, पूर्ववर्ती नदियाँ कहलाती हैं। कुछ महत्वपूर्ण पूर्ववर्ती नदियाँ हैंसिंधु, सतलज, गंगा, सरयू (काली), अरूण (कोसी की एक सहायक नदी), तिस्ता तथा ब्रह्मपुत्र, जिनके उद्गम का स्थान वृहत, हिमालय से बाहर है।
7. **कंटकीय प्रतिरूप (Barbed pattern) :** अपवाह का प्रतिरूप जहाँ मुख्य नदी के साथ सहायक नदियों के संगम की विशेषता यह है कि यह एक असंगत सम्मिलन नजर आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सहायक नदी का प्रवाह ऊपर की ओर होता है। यह प्रतिरूप मुख्य नदी के अपहरण (River capture) का परिणाम है जो सहायक नदियां के प्रवाह की दिशा को पूर्ण रूप से बदल देती है लेकिन सहायक नदियों अपने प्रवाह की पूर्व दिशाओं की ओर संकेत करती हैं। नेपाल में अरुण नदी, जो कोसी की एक सहायक नदी है, इसका एक अनुपम उदाहरण है।
8. **आयताकार अपवाह (Rectangular Drainage)** : सह अपवाह प्रतिरूप, जिसकी विशेषता सहायक नदियों तथा मुख्य नदी के बीच समाकोणीय घुमाव (मोड़) तथा समकोणीय सम्मिलन है। यह जालायित अपवाह प्रतिरूप से भिन्न है क्योंकि यह अधिक अनियमित है तथा इसकी सहायक नदियाँ जालायित अपवाह के सहायक नदियों से कम लम्बी तथा कम समानान्तर होती हैं। अपवाह का यह प्रतिरूप विंध्य की पहाडियों में देखा जा सकता है।
9. **अरीय प्रतिरूप (Radial Pattern) :** इस अपवाह प्रतिरूप में किसी केन्द्रीय स्थान से नदियों का बहिर्गमन होता है जो एक पहिये के अरों के अनुरूप होता है। गुम्बद या ज्वालामुखीय शंकु के किनारे इसका विकास होना है। अमरकंटक पहाड़ी से निकलने वाली नदियाँ इसका प्रमुख उदाहरण है। नर्मदा, सोन तथा महानदी अमरकंटक से निकलकर विभिन्न दिशाओं में बहती हैं। ये अरीय प्रतिरूप का प्रमुख उदाहरण है। गिरनार पहाड़ियों (काठियावाड़–गुजरात) तथा मिकिर पहाड़ियों (असम) में भी अरीय अपवाह प्रतिरूप देखे जा सकते हैं।
10. **वलयाकार प्रतिरूप (Annular Pattern)** : इस प्रकार के अपवाह प्रतिरूप में परवर्ती नदियाँ अनुवर्ती नदी से जुड़ने से पहले वक्र अथवा चापाकार मार्ग से होकर गुजरती हैं। यह आंशिक रूप से भूमिगत वृत्ताकार संरचना के अनुकूलन का परिणाम है; एक गुम्बदनुमा आग्नेय अन्तर्वेधन का (बैथोलिथ) परवर्ती नदियों के लिए संकेद्री, कम प्रतिरोधी संस्तर का अपरदन करना आसान है। यह अपवाह प्रतिरूप भारत में सामान्य प्रतिरूप नहीं है। इसके कुछ उदाहरण पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड) में तथा तमिलनाडु एवं केरल की नीलगिरि पहाड़ियों में पाए जाते हैं।
11. **समानान्तर अपवाह (Parallel Drainage)** : वह अपवाह प्रतिरूप, जिसमें नदियाँ लगभग एक –दूसरे के समानान्तर बहती हों, समानान्तर अपवाह कहलाती हैं। छोटी एवं तीव्र

नदियाँ, जो पश्चिमी घाट से निकलकर अरब सागर मे जाकर मिलती हैं, भारत में इस अपवाह प्रतिरूप का उदाहरण है।

3.3 जल संसाधन का आंकलन (Assessment of Water Resources)

भारत में विश्व के कुल जल संसाधनों का 5 प्रतिशत भाग है। के. एल. राव के अनुसार देश में कम –से –कम 1. 6 किमी. लम्बाई की लगभग 10360 नदियाँ हैं, जिनमें औसत वार्षिक प्रवाह 1.869 घन किलोमीटर है। भौगोलिक दृष्टि से अनेक बाधाओं एवं विषम वितरण के कारण इसमें से केवल 690 अरब घन किमी. (32 प्रतिशत) सतही जल का ही उपयोग हो पाता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध पारम्परिक भण्डारण एवं प्रवाह मोड़कर पुन: आपूर्ति के योग्य लगभग 432 वन मीटर जल है। सतही जल का सर्वाधिक प्रवाह सिंधु, गंगा एवं ब्रह्मपुत्र में है, जो कुल प्रवाह का 60 प्रतिशत है। देश की संभाव्यता 1869.35 घन किमी. की विस्तृत तस्वीर से स्पष्ट होता है कि देश में कहाँ जल संसाधनों का अभाव है तथा पर्याप्तता एवं अधिकता है। सर्वप्रथम बेसिनों के अनुसार गंगा, गोदावरी तथा कृष्णा के पास बड़ा क्षेत्र है जहाँ अनेक वर्षा क्षेत्र हैं। बेसिन का विस्तार दक्षिण– पश्चिम में चम्बल, सिंधु, बेतवा व केन तक है। कृष्णा बेसिन में पर्याप्त वर्षा मिलने के उपरान्त भी प्रवाह क्षेत्रों में अनेक शुष्क क्षेत्र अवस्थित हैं। पूर्व की ओर प्रवाहित अधिकांश नदियाँ पश्चिमी घाट से निकलती हैं जो वर्षा वाले स्रोतों से पोषित हैं, फिर भी पश्चिमी घाट के पूर्व में महाराष्ट्र के धूले से बीजापुर बेलारी तक वृष्टि छाया क्षेत्र पाया जाता। इस प्रकार पूर्वी भाग में पर्याप्त जलापूर्ति वाली नदियाँ प्रवाहित होती हैं।

3.4 सतही जल (Surface Water)

भारत में प्रतिवर्ष 1869 अरब घनमीटर धरातलीय जल राशि का आंकलन किया गया है। सतही जल के मुख्य साधन नदियाँ, झीलें, तालाब, पोखर इत्यादि होते हैं। सतही जल का अधिकांश भाग नदियों में बहता है। भारत में भी आकार व लम्बाई वाली अनेक नदियों हैं, जो कि बहुत से भाग को हरा–भरा बनाये रखती हैं, परन्तु भारत का पश्चिमी भाग जो कि थार का मरुस्थल है, उसमें कोई सदावाही नदी नहीं बहती है, हालांकि यहाँ पर कृत्रिम रूप से बनायी गई इन्दिरा नहर इसके बहुत से भाग में जल पहुँचाकर इसे हरा – भरा करती है, भारत के दक्षिण में भी अनेक नदियाँ हैं, भारत की कुल नदियों की लम्बाई लगभग 2 लाख मील तक है।

भारत में दो प्रकार की नदियाँ पायी जाती हैं (1) उत्तर भारत की सदावाही नदियाँ, (2) दक्षिण की मौसमी नदियाँ। उत्तर भारत में हिमालय पर्वत पर जमा अलवणीय जल के 80 प्रतिशत भाग में पिघलते रहने से गंगा, यमुना,सिन्धु, ब्रह्मपुत्र व अनेक नदियाँ प्रवाहित होती हैं, जबकि दक्षिणी भारत की नदियों में महानदी कृष्णा, कावेरी, गोदावरी इत्यादि नदियों हैं, जो बंगाल की खाड़ी में जाकर अपने जल को उड़ेलती हैं, जबकि नर्मदा व ताप्ती नदियाँ अपने पानी को अरब सागर में डालती हैं, इस प्रकार भारत में उत्तरी व दक्षिणी नदियों के कारण आस –पास का धरातल हरा–भरा हो गया है। देश की नदियों से वर्ष में 1869 अरब घनमीटर (घन किमी.) जल बहता है। भूमि की स्थलाकृति व अन्य कारणों से कुल 1869 अरब जल मैं केवल 690 अरब घनमीटर (घन किमी.) जल ही उपयोग में लाया जा सकता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना से पहले (1950 – 51)

देश की नदियों के केवल 95 लाख हेक्टेयर जल का उपयोग होता था, जो नदियों में बहने वाले जल 5.6 प्रतिशत 16 प्रतिशत भाग उपयोग होता था। सिन्धु के पूर्व की तीनों नदियों सतलज. व्यास व रावी का जल 1960 की सिन्धु जल सन्धि के अन्तर्गत अपने देश के लिए उपयोग हेतु उपलब्ध है। दामोदर, महानदी और ताप्ती नदियों का पानी उपयोग में लाने का काम काफी आगे बढ़ा है।

3.5 नदी बेसिन (River Basins)

भारत में निम्नलिखित नदी बेसिन महत्वपूर्ण हैं :

सिन्धु नदी–तिब्बत में स्थित मानसरोवर झील के समीप कैलाश हिमानी इस नदी का उद्गम है, जो समुद्रतल से 5180 मीटर ऊँची है। यह अपने उद्गम स्थल से आगे लद्दाख के त्वेहक नगर को घेरकर बहती है। जिसमें चलकर कराकोरम दर्रे के पास जंस्कर नदी से मिलती है। दांयी ओर इसमें श्योक, गिलगित व काबुल नदी मिलती है। सिन्धु नदी कुल लम्बाई 2897 किलोमीटर है। भारत में इसका प्रवाह मार्ग 1134 किलोमीटर का है। इस नदी से 117884 वर्ग किलोमीटर (भारत का) लाभान्वित होता है। भारत और पाकिस्तान में प्रवाहित होती हुई सिन्धु नदी अरब सागर में गिरती है।

झेलम–यह कश्मीर के घाटी के दक्षिण पश्चिम भाग में बेरीनाग में स्थित एक झरने से निकलती है। यह अपने उद्गम से उत्तर की ओर – वुलर झील होती हुई द.पश्चिम में बहती है। इसमें बारामूला रख अनन्तनाग के मध्य नौगम्य मार्ग है। मंगला इसकी सहायक नदी है। यह पाकिस्तान में झांग के समीप चिनाब से मिल जाती है।

चिनाव–यह सिन्धु की सहायक नदियों में सर्वाधिक लम्बी है। हिमाचल प्रदेश के लाहुल में स्थित टाण्डी के समीप बारालाचा दर्रा इस नदी का उद्गम–स्थल है। यह चन्द्रा एवं भागा नामक धाराओं से मिलकर बनी है अत : हिमाचल प्रदेश में इसे चन्द्रभागा कहते है। बारालाचा दर्रा की सखतल से ऊँचाई 4480 मीटर है। भारत में चिनाव नदी की लम्बाई 1180 किलोमीटर है ओर इसका जल–ग्रहण क्षेत्र 26755 वर्ग किलोमीटर है। इस नदी नाम संस्कृत में 'अस्कनी' या 'चन्द्रभागा' है।

रावी–यह भी सिन्धु की एक प्रमुख सहायक नदी है। पीरपंजाल तथा धौलाधर श्रेणियों के बीच स्थित बंगालह बेसिन रोहताग दर्रा इस नदी का उद्गम–स्थल है। यह पंजाब की एक छोटी नदी है और इसे लाहौर की नदी के नाम से भी जाना जाता है। बांगालह बेसिन समुद्रतल से 4570 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। भारत में रावी नदी की लम्बाई 720 किलोमीटर है और इसका अपवाह क्षेत्र 5957 वर्ग किलोमीटर है। इस नदी का नाम संस्कृत में 'परुष्णी' अथवा 'इरावती' है।

व्यास –यह सिन्धु की एक अन्य सहायक नदी है। यह रोहताँग दर्रे के पास व्यास कुण्ड से निकलती है। भारत में व्यास नदी की लम्बाई 615 किलोमीटर है और इसका जल–ग्रहण क्षेत्र 25,900 वर्ग किलोमीटर है। इस नदी का नाम संस्कृत में 'विपाशा' या 'अर्गिकिया' है।

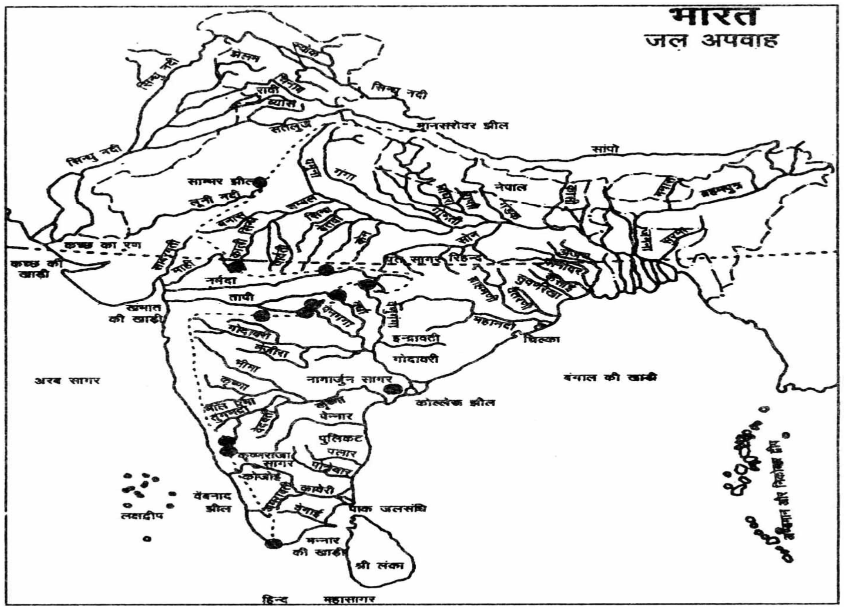

चित्र–3.1 : भारत की प्रमुख नदियाँ

सतलज–इसका उद्‌गम कैलाश श्रेणी के दक्षिणी ढाल पर स्थित मानसरोवर झील के निकट राक्षस झील से (4555 मीटर) से होता है यह हिमाचल प्रदेश में शिपकी दर्रे से प्रवेश करती है, यहीं दरमा दर्रा स्थित है। सतलज सिन्धु की प्रमुख सहायक नदी है। भारत में इस नदी की लम्बाई 1050 किलो मीटर है और इस का जल–ग्रहण क्षेत्र 240000 वर्ग किलोमीटर है। भाखड़ा और नांगल पर बने बांध के कारण यह नदी ज्यादा महत्वपूर्ण है। संस्कृत में इसका नाम 'शतुद्रु' या 'शतुद्री' है।

जंस्कर और श्योक सिन्धु की अन्य सहायक नदियाँ है। जंस्कर श्रेणी जस्कंर नदी का उक्ष्मास्थल है ओर लेह के समीप यह सिन्धु से मिलती है। श्योक का उद्‌गम –स्थल काराकोरम है और यह किरिस के समीप सिन्धु से मिलती है। इसके अतिरिक्त द्रास भी सिन्धु की सहायक नदी है ओर इसका उद्‌गम –स्थल 'जोजिला ' दर्रा और 'देवसई' के मध्य स्थित है।

सरस्वती नदी: अम्बाला जिले की सीमा पर स्थित सिरमौर की शिवालिक श्रेणी से निकलती है ओर अधबद्री में प्रविष्ट होती है। भवनीपुर और बालछापार के बीच यह नदी विलुप्त हो जाती है किन्तु करनाल के समीप फिर उभर आती है। घग्घर नदी (शिवालिक श्रेणी ही उद्‌गम –स्थल) रसूला (पटियाला के समीप) में सरस्वती को 'हाकड़ा' (हकरा) या 'सुतार' कहा जाता है। वैदिक साहित्य में 'सरस्वती' का वर्णन महत्वपर्ण नदी के रूप में किया गया है।

गंगा नदी–यह भारत का महत्वपूर्ण नदी–तंत्र है और इसके अन्तर्गत भारत का एक चौथाई से अधिक क्षेत्र आता है। इस नदी तंत्र की प्रमुख नदी गंगा है। इसका विस्तार 8,38,200 वर्ग किलोमीटर में है। गंगा में सहायक नदी के रूप में बायीं ओर से मिलने वाली नदियाँ हैं – रामगंगा, गोमती, घाघरा, ताप्ती, गण्डक और कोशी, जबकि दायीं ओर से आकर मिलने वाली नदियों है –यमुना, चम्बल, सिन्धु, बेतवा, केन, टोंस, और सोन।

उत्तरकाशी जिले के गंगोत्री में गंगा का उद्‌गम –स्थल है। यह महान हिमालय में स्थित है। गंगोत्री की सखतल से ऊँचाई 7016 मीटर है। गंगा नदी की प्रारम्भ में दो शाखाएँ हैं – भागीरथी

ओर अलकनन्दा। भागीरथी को मुख्य शाखा माना जाता है। भागीरथी और अलकनन्दा का संगम देवप्रयाग में होता है। मन्दाकिनी तथा अलकनन्दा का संगम रुद्रप्रयाग में होता है। अलकनन्दा तथा पिण्डार का संगम कर्ण प्रयाग में होता है। अलकनन्दा तथा धौली का संगम विष्णु प्रयाग में होता है। हरिद्वार के बाद गंगा मैदानी क्षेत्र में प्रविष्ट होती है। देव प्रयाग में भागीरथी ओर अलकनन्दा के सम्मिलन के पश्चात् ही इसका नामकरण गंगा होता है। गंगा नदी जब हिमालय को पार करती है, तब 4870 मीटर गहरे गार्ज का निर्माण करती है। गंगा नदी की लम्बाई 2510 किलोमीटर है।

यमुना–यह एकमात्र ऐसी नदी है, जो हिमालय से उतरकर गंगा में मिलती है। कुमायूँ क्षेत्र के बन्दरपूंछ शिखर पर स्थित यमुनोत्री हिमनद इस नदी का उद्गम –स्थल है। यमुनोत्री हिमनद की सखतल से ऊँचाई 6,315 मीटर है। 152 किलोमीटर पवतीय मार्ग तय करने के बाद यह नदी कलेसर से मैदानी क्षेत्र में प्रविष्ट होती है। इलाहाबाद (उत्तर) में यह नदी गंगा से मिल जाती है। यमुनोत्री से लेकर इलाहाबाद के बीच यमुना नदी की लम्बाई 1375 किलोमीटर है चम्बल,सिन्धु, बेतवा व केन यमुना की सहायक नदियाँ हैं।

सोन–गंगा की प्रमुख सहायक नदी है। अमरकंटक की पहाड़ी इसका उद्गम – स्थल है। अमरकंटक पहाड़ी समुद्रतल से 600 मीटर की ऊँचाई पर अवस्थित है। अपने मार्ग में यह अनेक जलप्रपातों का निर्माण करती है। अमरकंटक से 780 किलोमोटर की दूरी तय करती हुई सोन नदी पटना के समीप रामनगर में गंगा में विलीन हो जाती है। इस नदी का जलग्रहण क्षेत्र 71, 900 वर्ग किलोमीटर

रामगंगा–गंगा में बायीं ओर से आकर मिलने वाली सहायक नदियों में सर्वाधिक प्रमुख है। नैनीताल जिले में निम्न हिमालय (3110 मी.) इस नदी का उद्गम –स्थल है। रामगंगा नदी पर्वतीय क्षेत्र में 144 किलोमीटर की दूरी करती हुई शिवालिक श्रेणी में गहरी घाटी का निर्माण कर बिजनौर जिले के कालागढ़ के समीप मैदानो क्षेत्र में प्रविष्ट होती है। इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) में यह नदी गंगा से मिल जाती है। यमुनोत्री से लेकर इलाहाबाद के बीच यमुना नदी की लम्बाई 1384 किलोमीटर है ओर इसका जलग्रहण क्षेत्र 3,59,000 वर्ग किलोमीटर है। चम्बल, सिन्धु, बेतवा और केन यमुना की सहायक नदियाँ हैं।

शारदा–इसका उद्गम महान हिमालय से होता है। इसको हिमालय में काली पीलीभीत व खेरी में शारदा तथा बहरामघाट के निकट घाघरा के दायें किनारे पर मिलने से पूर्व चाउका कहते हैं।

घाघरा–यह गंगा की प्रमुख सहायक नदी है जो बांयी ओर से आकर मिलती है। कुमायूँ हिमालय का सिलम हिमानी इस नदी का उद्गम–स्थल है। प्रारम्भ में इस नदी को शारदा या काली के नाम से जाना जाता है। पीलीभीत, खीरी, बहराइच, सीतापुर, गोण्डा, फैजाबाद, बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़ और बलिया में प्रवाहित होती हुई बिहार के छपरा जिले में यह गंगा नदी में समाहित हो जाती है। घाघरा नदी की लम्बाई 1080 किलोमीटर है ओर इसका जल–ग्रहण क्षेत्र 1,27,500वर्ग किलोमीटर है। इसका आधा से अधिक क्षेत्र नेपाल में पड़ता है। इसमें ताप्ती नदी बायें किनारे पर बरहाज स्थान पर मिलती है।

तालिका– 3.1 : भारत के प्रमुख नदी बेसिनों में उपलब्ध जल संसाधन

बेसिन	**औसत वार्षिक प्रवाह (घन किमी.)**	**उपयोग हेतु उपलब्ध जल (घन किमी)**	**भण्डारण क्षमता (घन किमी)**

सिन्धु	73	46	14.52
गंगा	501	250	37.40
ब्रह्मपुत्र	537	24	1.09
गोदावरी	119	76	17.27
कृष्णा	68	58	32.23
कावेरी	21	19	7.25
पेन्नार	6.8	6.8	2.37
महानदी	67	50	8.93
ब्रह्मणी	36	18.1	4.29
साबरमती	3.8	1.9	1.30
माही	11.8	3.1	4.16
नर्मदा	41	34.5	3.02
ताप्ती	18	14.5	8.68
सूवर्ण रेखा	10.8	–	–
योग*	**1869**	**690**	**–**

***इसमें अन्य नदी द्रोणियाँ भी सम्मिलित हैं।**

गंडक–नेपाल और चीन की सीमा पर 7600 मीटर की ऊँचाई से निकलने वाली गंडक नदी गंगा में बायी ओर से आकर मिलने वाली सहायक नदियों में प्रमुख है। गण्डक नदी चम्पारन जिले के समीप बिहार में प्रविष्ट होती है। यह नदी बिहार तथा उत्तर प्रदेश में प्रवाहित होती हुई पटना जिले के सोनपुर के समीप गंगा में प्रविष्ट हो जाती है। काली गण्डक, बूढ़ी गंडक, त्रिशूली गंडक आदि इसकी सहायक नदियाँ हैं। गंडक नदी की लम्बाई 425 किलोमीटर है ओर इस नदी का जल–ग्रहण क्षेत्र 45, 800 वर्ग किलोमीटर है, जिसमें से 9,540 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र नेपाल के अन्तर्गत है।

गोमती–यह नदी पीलीभीत जिले के 200 मीटर ऊँचे गोमतताल से निकलती है। यह नदी पीलीभीत, खीरी, सीतापुर, लखनऊ, बाराबंकी, सुलानपुर, जौनपुर, बाजीपुर में प्रवाहित होती हुई गाजीपुर में गंगा में समाहित हो जाती है। कल्याणी, रेथ, कुण्डानाल, बेडनाला, चुनहा, मांगर, मंजुही, सई, पीली, बसुही, बरना आदि गोमती की सहायक नदियाँ हैं।

कोसी–यह नदी बायीं ओर से आकर गंगा में समाहित होने वाली प्रमुख सहायक नदी है। इस नदी को आरम्भिक क्षेत्र में 'अरुणा' नदी के नाम से जाना जाता है, जो गोसाईनाथ के उत्तर में 6770 मीटर की ऊँचाई से निकलती है। यह नदी प्रारम्भ में सात धाराओं – मिलाम्ची, भोटिया, कोशी, टाम्बाकोशी, लिक्सू दूध कोशी, अरुणा और तम्बूर में प्रवाहित होती है। इस नदी की कुल लम्बाई 730 किलोमीटर है तथा अपवाह क्षेत्र 86,900 वर्ग किमी है। इसे प्रलयंकारी बाढ़ों के कारण बिहार का शोक (Sorrow of Bihar) कहा जाता है।

चम्बल–यह यमुना की सहायक नदी है। यह नदी मध्य प्रदेश की जनापाव पहाड़ी 600 मीटर की ऊँचाई से मऊ से निकलती है। यह नदी कोटा, भिण्ड, मुरैना (मध्य प्रदेश) और आगरा तथा इटावा (उत्तर प्रदेश) में 1050 किलोमीटर की दूरी तय करती हुई इटावा के दक्षिण भाग में यमुना नदी में समाहित हो जाती है।

दामोदर–यह नदी झारखण्ड के पलामू जिले के छोटा नागपुर पठार से निकलती है। गही, कोनार, जमुनिया और बाराकर इसकी सहायक नदियाँ हैं। बाराकर के मिल जाने के बाद दामोदर नदी वृहतकार रूप धारण कर लेती है। लगभग 543 किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद यह नदी हुगली में समाहित हो जाती है। दामोदर नदी का जल –ग्रहण क्षेत्र 22,000 वर्ग किलोमीटर है। इसे बंगाल का शोक कहा जाता है। यह कोलकात्ता से 56 किमी. पूर्व हुगली से दायें किनारे पर मिलती है।

टोंस–इस नदी का उद्गम –स्थल कैमूर पहाड़ियों में स्थित तमशा कुंड जलाशय है। यह नदी इलाहाबाद के दक्षिण–पूर्व में सिरसा के गंगा में समाहित हो जाती है। टोंस नदी अपने प्रवाह मार्ग में 114 मीटर ऊँचे प्रसिद्ध प्रपात 'बिहार' का निर्माण करती है।

ब्रह्मपुत्र –ब्रह्मपुत्र नदी भारत में प्रवाहित होने वाली नदियों में सबसे बड़ी नदी हैं, किन्तु प्रवाह–क्षेत्र की दृष्टि से यह भारत की सबसे बड़ी नदी नहीं हैं। तिब्बत पठार में स्थित कैलाश पर्वत के पूर्वी ढाल पर 5150 मीटर की ऊँचाई से यह नदी निकलती है इसका उद्गम मानसरोवर झील से 100 किमी. दक्षिण पूर्व में स्थित है। ब्रह्मपुत्र नदी का प्रवाह क्षेत्र तिब्बत, बांग्लादेश और भारत में है। यह नदी नामचाबरवा शिखर तक पूर्व दिशा में हिमालय के समानान्तर लगभग 1200 किमी. में प्रवाहित होती है। जिसे **'सांग– पो' (Psang–Po)** के नाम से जाना जाता है । नामचाबरवा शिखर के बाद यह दक्षिण तथा दक्षिण–पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती हैं। भारत में इस स्थान पर इसे 'स्वांग ' तथा 'दिहांग' नाम से जाना जाता है। सदिया से आगे बढ़ने के बाद ही इसे ब्रह्मपुत्र कहा जाता है। सुवनशिरी, धनशिरी, मानस, सन्कोश, रैदाक, तिस्ता, दिवांग, लोहित, दीशू कोपिली आदि इसकी सहायक नदियाँ हैं। ब्रह्मपुत्र नदी की कुल लम्बाई 2900 किलोमीटर है, इस नदी का कुल जल–ग्रहण क्षेत्र 5,80,00 वर्ग किलोमीटर से अधिक है, जिसमें से भारत में 3,40,000 वर्ग किलोमीटर है।

दक्षिण भारत की नदियाँ (Rivers of South India)

एक ओर जहाँ उत्तर भारत की नदियाँ बारहमासी हैं, वहीं दक्षिण भारत की नदियों बारहमासी नहीं हैं। बरसात के मौसम में तो उनमें पानी रहता है पर गर्मी और जाड़े के महीने में उनमें पानी का अभाव होता है। दक्षिण भारत की नदियाँ प्राय : प्रायद्वीपीय पठार से निकलती हैं और कुछ पूर्व की ओर तो कुछ पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हैं। पूर्व की ओर प्रवाहित होने वाली नदियाँ बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं और इस प्रकार की नदियों में प्रमुख हैं –,

महानदी–मध्य प्रदेश के अमरकंटक के दक्षिण में सिघंवा से निकलती है। आरम्भिक अवस्था में यह नदी उत्तर –पूर्व दिशा में प्रवाहित होती है। सेवनाथ से मिलने के बाद यह नदी पूर्व की ओर मुड जाती है ओर उसके बाद दक्षिण –पूर्व दिशा में प्रवाहित होती है। सम्भलपुर के निकट यह नदी वृहदाकार हो जाती है और कटक के समीप बंगाल की खाड़ी में गिरने से पूर्व इसमें अनेक सहायक नदियाँ होती हैं। महानदी की लम्बाई 890 किलोमीटर है और इसका जल–ग्रहण क्षेत्र 1, 32,090 वर्ग किलोमीटर है, जिनमें से लगभग 53 प्रतिशत छतीसगढ़ में और 46 प्रतिशत उड़ीसा में है। इसे उड़ीसा का शोक कहते है। इस पर हीराकुण्ड बांध बनाया गया है।

गोदावरी–यह नदी प्रायद्वीपीय नदियों में सबसे बड़ी तथा भारत की सभी नदियों में दूसरी सबसे बड़ी नदी है। यह नदी महाराष्ट्र के नासिक जिले में सह्यद्री श्रेणी के पूर्व में 1067 मीटर की ऊँचाई पर अवस्थित त्रयबंक स्थान से निकलती है। प्राणहिता, इन्द्रावती, शबरी, मजरा, पेनगंगा,

वर्धा, वेनगंगा, ताल, मुला और पवरा इसकी सहायक नदियाँ हैं। धवलेश्वरम् के बाद गोदावरी दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है – पूर्वी शाखा गौतमी गोदावरी कहलाती है और पश्चिमी शाखा वशिष्ट गोदावरी। मध्य में एक नदी और प्रवाहित होती है वैष्णव गोदावरी। गौतमी गोदावरी 'येनम' नामक स्थान पर, वशिष्ठ गोदावरी नरसापुर नामक स्थान पर और वैष्णव गोदावरी नागरा नामक स्थान पर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। गोदावरी नदी की कुल लम्बाई 1465 किलोमीटर है, जबकि उसका जल–ग्रहण क्षेत्र 290,080 वर्ग किलोमीटर है।

कृष्णा–यह प्रायद्वीपीय भारत में पूर्व की ओर प्रवाहित होने वाली दूसरी खबसे बड़ी नदी है, इसका उद्गम महाराष्ट्र में पश्चिमी घाट में 1327 मीटर की ऊँचाई पर स्थित महाबलेश्वर से होता है। कृष्णा की दस प्रमुख सहायक नदियाँ है! जिनमें कोयना, मालप्रभा, घाटप्रथा, वरना, मूसी,पंचगंगा और दूधगंगा प्रमुख हैं। इसका हेडवाटर क्षेत्र कोयना एवं घाटप्रभा के नाम से जाना जाता है। महाराष्ट्र को छोड़ने और आन्ध्र प्रदेश में प्रविष्ट होने के पूर्व कृष्णा से भीमा मिलती है, आन्ध्र प्रदेश में कुरनूल के निकट तुंगभद्रा मिलती है ओर हैदराबाद के दक्षिण में मूसी मिलती है। रायचूर के निकट कृष्णा पश्चिमी घाट की पहाड़ियों से नीचे उतरती है। और 5 मील की दूर तय करने के बाद 120 मीटर नीचे उतर जाती है। विजयवाड़ा से 65 किलोमीटर दूर पहुँचकर कृष्णा के दो भाग हो जाते हैं और अंततः मसुलीपट्टनमू के समीप कृष्णा समुद्र में विलीन हो जाती है। कृष्णा नदी की लम्बाई 1290 किलोमीटर है और इसका जल ग्रहण क्षेत्र 2,51,230 वर्ग किलोमीटर है।

कावेरी–कावेरी नदी को **'दक्षिण भारत की गंगा'** कहते हैं। कर्नाटक राज्य के कुर्ग जिले में मरकारा के निकट सह्यद्रि की ब्रह्मगिरी पहाड़ी (कुर्ग जिले) से कावेरी नदी का उद्गम होता है। ब्रह्मगिरी की ऊँचाई सखतल से 1341 मीटर है। लक्ष्मण तीर्थ, कम्बानी, हैमवती, स्वर्णवती, लोक पावनी, सिमशा, भवानी, नोयल, अमरावती, अरकावती, कनका ओर गाजोटी इसकी मुख्य सहायक नदियाँ हैं। मैसूर में यह बहुत पतली नदी है। तमिलनाडु में प्रविष्ट होने के पूर्व इसका नाम है मेका दाटु 'आडु' थंडम कावेरी'। श्रीरंगम् के समीप यह उत्तरी और दक्षिणी दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है –कावेरीपत्तनम् का प्राचीन बन्दरगाह कावेरी के मुहाने पर ही था। समुद्र में गिरने से पूर्व कावेरी नदी विशाल डेल्टा का निर्माण करती है। इस डेल्टा, का 55 प्रतिशत भाग तमिलनाडु में, 41 प्रतिशत भाग कर्नाटक में और 3 प्रतिशत भाग केरल में पड़ता है। कावेरी नदी की लम्बाई 805 किलोमीटर है और इसका जल – ग्रहण क्षेत्र 72,520 वर्ग किलोमीटर है। कावेरी के प्रवाह–मार्ग में दो बड़े जलप्रपातों का निर्माण होता है –शिवसमुद्रम ओर होकेनागल।

तुंगभद्रा–यह नदी कृष्णा नदी की प्रमुख सहायक नदी है। तुंगभद्रा की 6 सहायक नदियाँ (3 बड़ी व 3 छोटी) हैं। तुंगभद्रा का निर्माण दो श्रेणियों 'तुंग' और 'भद्रा' के मिलने से होता है। दोनों ही श्रेणियों का उदगम स्थल कर्नाटक के चिकमंगलूर जिलों में पश्चिमी घाट में 1200 मीटर की ऊँचाई पर स्थित चोटी 'गंगामूल' है। तुंग उत्तर –पश्चिम की ओर श्रृगेरी से होती हुई बहती है और उसके बाद तीर्थहल्ली से गुजरती है। पहाड़ों की टूटी श्रृंखलाओं के बीच, गहरी घाटियों में स्थित कुदली में तुंग और भद्रा का सम्मिलन होता है। कुमुदावती, औक ओर वर्धा तुंगभद्रा की मुख्य सहायक नदियाँ है। तुंगभद्रा एक पृथक् नदी के रूप में 645 किलोमीटर तक प्रवाहित होती है और इसका जल–ग्रहण क्षेत्र 71,417 वर्ग किलोमीटर है।

भीमा–यह नदी भी कृष्णा नदी की सहायक नदी है। यह नदी दक्षिणी महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में प्रवाहित है। इसका जल–ग्रहण क्षेत्र 76,614 वर्ग किलोमीटर है।

सुवर्णरेखा–इस नदी का उद्‌गम बिहार के छोटानागपुर पठार पर स्थित रांची के दक्षिण–पश्चिम से होता है। यह नदी सामान्यत: पूर्व दिशा की ओर ही प्रवाहित होती हैं –सिंहभूमि झारखण्ड, मयूरभंज (उड़ीसा) ओर मिदनापुर (पश्चिम बंगाल) में प्रवाहित होती है। सुवर्णरेखा नदी की लम्बाई 395 किलोमीटर है और इसका जल–ग्रहण क्षेत्र 36,300 वर्ग किलोमीटर है।

ब्राह्मणी–इस नदी का उद्‌गम कोयल से होता है और गंगपुर के समीप इससे शेख नदी मिलती है। यह नदी बोनाई, तालचर और बालासोर जिले में प्रवाहित होती है। बंगाल की खाड़ी में गिरने से पूर्व ब्राह्मणी में वैतर्णी नदी मैं मिलती है। ब्रह्मणी नदी की लम्बाई लगभग 705 किलोमीटर है और इसका जल –ग्रहण क्षेत्र 36,300 किलोमीटर है।

वैतर्णी–यह नदी ब्राह्मणी की सहायक है, उड़ीसा के केवनझार पठार से इस नदी का उद्‌गम होता है। वैतर्णी नदी की लम्बाई 333 किलोमीटर है और इसका जल –ग्रहण क्षेत्र पूर्वी घाट में लगभग 19, 500 किलोमीटर है।

पैन्नार–कर्नाटक के कोलार जिले में स्थित नंदीदुर्ग पर्वत पर इस नदी का उद्‌गम–स्थल है। इस नदी की दो शाखाएँ हैं। 560 किलोमीटर लम्बी उत्तरी पेत्रार कडप्पा, अनन्तपुर और नेल्लूर जिलों से होकर प्रवाहित होती है तथा नेल्लूर नगर के दक्षिण में बंगाल की खाड़ी में गिरती है। 620 किलोमीटर लम्बी दक्षिणी पेन्नार कर्नाटक के बैंगलोर जिले से होकर प्रवाहित होती है। तमिलनाडु के सेलम और दक्षिणी अर्काट जिलों में प्रवाहित होती हुई कुडालोर के उत्तर में बंगाल की खाड़ी में गिरती है। चित्रवती और पापाग्नि इसकी मुख्य सहायक नदियाँ हैं।

शरावती–इस नदी का उद्‌गम पश्चिमी घाट में 1838 मीटर की ऊँचाई पर स्थित गोदिगाई पहाड़ी से होता है। ताम्रपर्णी (शरावती) की कुल लम्बाई 120 किलोमीटर है और उसमें भी 24 किलोमीटर पहाड़ी ढलान पर ही है। यह नदी कल्याणतीर्थ में 90 मीटर ऊँचे जलप्रपात का भी निर्माण करती है। यह मन्नार की खाड़ी में समाहित हो जाती हूँ। यह नदी होमोगा में अपने उद्भव के बाद प्रसिद्ध गरसोया या जोग प्रपात (289 मी.) बनाती है।

पेरियार–पेरियार दक्षिण भारत में प्रवाहित होने वाली केरल की प्रमुख नदी है। इस नदी का उद्‌गम –स्थल शिवगिरी पर्वत (पश्चिम घाट) है। मदुरै के समीर पेरियार वागाई नदी से मिलती है। इस नदी की कुल लम्बाई 225 किलोमीटर है। कोचीन के उत्तर में यह नदी अरब सागर से मिल जाती है।

केरल में पम्पा नाम की एक और नदी प्रसिद्ध है। इसका उद्‌गम –स्थल कोल्लम जिले की पहाडिया हैं। इस नदी की कुल लम्बाई 144 किलोमीटर है और यह अरब सागर में गिरती है। ओणम पर्व के अवसर पर नाव की दौड़ के लिए भी यह नदी प्रसिद्ध है।

वागई–इस नदी का उद्‌गम पश्चिमी घाट के कार्डमम पर्वत की वर्षा घाटा से होता है। 260 किलोमीटर तक प्रवाहित होने के बाद यह पाक जलडमरूमध्य में समाहित हो जाती हैं।

नर्मदा–पश्चिम की ओर प्रवाहित होने वाली प्रायद्वीपीय नदियों में नर्मदा सबसे बड़ी है! मध्य प्रदेश की मेकाल श्रेणी की 1057 मीटर ऊँची अमरकंटक पहाड़ी इस नदी का उद्‌गम स्थल है। भौगोलिक दृष्टि से यह दक्षिणी भारतीय नदी है, परन्तु उसे उत्तर भारत और दक्षिण भारत को विभाजन करने वाली रेखा माना जाता है। कपिलधारा में यह 25 मीटर की ऊँचाई से गिरती है। यहाँ संगमरमर की पहाड़ियों पर जबलपुर के समीप 'धुंआधार' नामक जलप्रपात का निर्माण करती

है। विन्ध्यन और सतपुड़ा घाटियों के बीच यह 320 किलोमीटर की दूरी तय करती है। नर्मदा की मुख्य सहायक नदी है बंजर, जो उसे मंधाता से मिलाती है। शेर और शक्कर नदीयाँ नरसिंहपुर में मिलता है। तवा ओर गंवाल नदियाँ होशंगाबाद में मिलती हैं। छोटी का खंडवा के पास मिलती है। उत्तर में सिर्फ एक नदी हिरन जबलपुर के समीप नर्मदा में –मिलती है। नर्मदा नदी के मुहाने से लेकर भीतर की ओर 88 किलोमीटर की दूरी तक इस पर समुद्री ज्वार – भाटे का प्रभाव पडता है। यही नदी भ्रंशघाटी (Rift Valley) में प्रवाहित होकर अरब सागर में ज्वारनदमुख (Estuery) बनाती है। 1312 किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद नर्मदा गुजरात में भड़ौच के निकट कैम्बे की खाड़ी में मिल जाती है। इस नदी का जल–ग्रहण क्षेत्र 93,180 वर्ग किलोमीटर है। महाभारत में इस नदी को 'रेवा' कहा गया है।

ताप्ती–इसे 'तापी' भी कहा जाता है। यह नदी मध्य प्रदेश के बेतूल जिले के मुल्ताई (समुद्रतल से 792 मीटर की ऊँचाई पर स्थित) में सतपुड़ा की पहाड़ी से निकलती है। लावदा, पटकी, गज्जल, बोदक, अम्भोरा, खुग्सी,खाण्हू कपरा, सिपरा, उत्तौली, मोना, खेकरी, पूर्णा, भोकर, सुकी, मारे, हरकी, मनकी, गुली, अरूणावती, गोमई, नाघुर, गुरना, बोरी, पंझरा, अमरावती आदि इसकी सहायक नदियाँ हैं। यह नदी बरार से प्रवाहित होती हुई आगे बढ़ती है, तो खानदेश में प्रविष्ट होने के पूर्व पूर्णा नदी मिलती है। सूरत के समीप ज्वारनदमुख (Estuery) का निर्माण करने के बाद यह नदी खम्भात की खाड़ी में गिर जाती है। ताप्ती नदी की लम्बाई 724 किलोमीटर है और इसका जल ग्रहण क्षेत्र 64,450 वर्ग किलोमीटर है। यह उत्तर में सतपुड़ा श्रेणी तथा दक्षिण में अंजता श्रेणी के मध्य स्थित भ्रंश घाटी में प्रवाहित होती है।

लूनी –इसका उद्गम राजस्थान के अजमेर जिले के दक्षिण–पश्चिम में स्थित अरावली में आनासागर (नाग पहाड) से होता है। सरसुती (अजमेर में पुष्कर झील से निकलने वाली) इसकी प्रमुख सहायक नदी है। लूनी नदी 330 किलोमीटर लम्बी है और इसका जल –ग्रहण क्षेत्र 34866.40 वर्ग किलोमीटर है।

साबरमती–राजस्थान राज्य के उदयपुर जिले में जयसमन्द झील से इसका 'उद्गम' होता हैं। इदार और महिकण्ठ से आने वाली सावर और हाथमती इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं। साबरमती की कुल लम्बाई 330 किलोमीटर और इसका जल ग्रहण क्षेत्र 26,674 वर्ग किलोमीटर है। यह नदी खम्भात की खाडी में विलीन हो जाती है।

माही –माही का उद्गम मध्य प्रदेश के बेतूल जिले से होता है। धार, रतलाम और गुजरात में प्रवाहित होती हुई खम्भात की खाड़ी में समाहित हो जाती है। यह नदी 560 किलोमीटर लम्बी है।

3.4 भूमिगत जल संसाधन (Ground Water Resources)

देश में पुन: पूर्तियोग्य (replenishable) अधोभौमिक जल का अनुमानित भंडार लगभग 433.9 अरब घन मीटर है। इसका लगभग 90 प्रतिशत असंगठित संरचना, 6 प्रतिशत अर्द्ध –संगठित चट्टानों वाली संरचना और 4 प्रतिशत संगठित –संरचना में संचित है। असंगठित शैल समूहों में रेत, बजरी, बोल्डर, लेटराइट, दोमट और चीका प्रमुख है।असंगठित चट्टानों तथा मिट्टी का प्रमुखत: क्षेत्र उत्तरी भारत है। इसीलिए इस वृहद् मैदान मैं अधोभौमिक जल के विकास की अपार सम्भावनाएं हैं। यहाँ भारी क्षमता वाले नलकूप खोदे जा सकते हैं। सतलज –गंगा के मैदान के अलावा भाभर क्षेत्र ब्रहमपुत्र बेसिन, राजस्थान में लूनी बेसिन, तटीय मैदान, कश्मीर घाटी, इन

क्षेत्र और मणिपुर घाटी में असंगठित चट्टानें पाई जाती हैं, फलत : इन क्षेत्रो में भी अधोभौमिंक – जल का प्रचुर भंडार है। संगठित चट्टानें ग्रेनाइट,नाइस,बैसाल्ट, स्लेट आदि भारतीय प्रायद्वीप के अधिकांश भाग पर फैली हैं। इन चट्टानों में रंध्रता बहुत कम होती है। फलत: इन भागों में अधोभौमिक जल का भंडार बहुत सीमित होने का अनुमान है। केवल अपक्षयित रंध्रयुक्त शैलों, शैल–संधियों में ही जल का भंडार मिलता है। अर्द्ध–संगठित चट्टानी संरचना में मुख्यत : परतदार चट्टानें (बलुआ पत्थर, चूने का पत्थर, कांग्लोमरेट्स) आती हैं। इनमें रंध्रता और छिद्र काफी अधिक होते हैं। इस कारण इन शैल समूहों में भी अधोभौमिक जल के भंडार पाए जाते हैं। ये शैल समूह राजस्थान, गुजरात और तमिलनाडु राज्यों में पाया जाता हैं। यहाँ भी नलकूप तथा गहरे कुएं खोदे जा सकते हैं।

कुल पुन:पूर्तियोग्य अधोभौमिक जल संसाधन (433.9 अरब घ.मी.) में से लगभग 713 अरब घन मीटर का उपयोग घरेलू तथा औद्योगिक कार्यो के लिए किया जाता है तथा केवल 362.6 अरब घन मी. सिंचाई के लिए उपलब्ध है। जिसमें से शुद्ध 3258 अरब घन मी. सिंचाई के लिए उपयोग किया जा सकता है। इसमें से वर्तमान में 135.0 अरब घनमीटर का उपयोग हो रहा है और 2276 अरब घन मीटर का उपयोग भविष्य में हो सकेगा।

अधोभौमिक जल की सूचना बेसिनवार न होकर राज्यवार है (तालिका 3.2)। सम्भाव्य अधोभौमिक जल संसाधन का वितरण भी असमान है। संभाव्य भंडार की दृष्टि से क्रमश: उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार सबसे प्रमुख हैं। जहाँ देश का आधा अधोभौमिक जल संसाधन संचित है। अन्य पांच राज्यों–तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, गुजरात, उड़ीसा और पंजाब में देश का एक –चौथाई से अधिक संभावित अधोभौमिक जल है। इससे स्पष्ट है कि अधोभौमिक जल का लगभग 40 प्रतिशत गंगा बेसिन में है। इसका कारण उपयुक्त भूगर्भिक संरचना, समतल धरातल और समुचित वर्षा है। वास्तव में अधोभौमिक जल भंडारण में जलभृत (quifer) का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सतलज –गंगा के मैदान में जलमृत संस्तर बहुत मोटा है और उसकी जल धारण करने की क्षमता अत्यधिक है। इसी कारण इतना प्रचुर भंडार है। इसी प्रकार तटीय मैदानों तथा एलूवियल शैलयुक्त नदी घाटियों में भी मोटे जलमृत संस्तर के कारण अधोभौमिक जल का बड़ा भंडार पाया जाता है।

तालिका– 3. 2 : भारत : सम्भावित अधोभौमिक जल के उपयोग के अनुपात के आधार पर राज्यों का वर्गीकरण,2001–2002 (मात्रा अरब घन मीटर)

राज्य	पुन: पूर्ति -योग्य भण्डार (अ.घ.मी.)	देश के भंडार का %(अ.घ.मी.)	उपलब्ध भंडार	शुद्ध उपयोग की मात्रा (अ.घ.मी.)	उपयोग उपलब्ध की मात्रा का %
आन्ध्रप्रदेश	35.2909	8.13	29.9973	7.83.4	26.1
अरुणाचलप्रदेश	1.4385	0.33	1.2227	अल्प	अल्प
आसाम	22.4786	5.18	19.1068	1.4249	7.46
बिहार	26.3796	6.22	22.9327	8.2527	35.99
छत्तीसगढ़	16.0705	3.70	13.6599	0.7647	5.6
गोवा	2.182	0.50	1.855	0.0154	8.3

गुजरात	20.3767	4.70	17.3199	8.5327	49.27
हरियाणा	11.1794	2.58	9.525	7.1846	75.61
हिमाचल प्रदेश	0.2926	0.07	0.2487	0.0413	16.63
जम्मू–कश्मीर	4.4257	1.02	3.762	0.0403	1.07
झारखण्ड	6.6045	1.52	5.6138	1.2146	21.64
कर्नाटक	16.175	3.73	13.7564	4.5481	33.06
केरल	7.9003	1.82	6.5869	1.2509	18.99
मध्यप्रदेश	34.8186	8.03	29.5958	7.3846	24.95
महाराष्ट्र	37.8677	8.73	25.4704	8.8370	34.7
मणिपुर	3.154	0.73	2.681	अल्प	अल्प
मेघालय	0.5397	0.12	0.4587	0.0182	अल्प
मिजोरम	अनुमानित नही				
नागालैंड	0.724	0.17	0.615	अल्प	अल्प
उड़ीसा	20.1287	4.64	17.1094	2.6037	15.22
पंजाब	18.192	4.19	16.373	16.1020	98.34
राजस्थान	12.602	2.90	10.6044	7.7245	72.84
सिक्किम	अनुमानित नही				
तमिलनाडु	20.4069	6.09	22.4458	14.0398	62.55
त्रिपुरा	0.6634	0.15	0.5639	0.1885	33.43
उत्तर प्रदेश	82.5459	19.03	70.164	29.7619	42.42
उत्तराखण्ड	2.8411	0.65	2.4149	0.6843	28.34
पश्चिम बंगाल	23.0914	5.32	19.6277	6.3175	32.19
सभी राज्य	433.0063	99.80	362.0191	134.7627	37.23
केन्द्र शासित राज्य	0.853	0.20	0.3358	0.2777	अल्प
सम्पूर्ण भारत	433.8593	100.00	362.5938	135.0404	37.24

स्रोत : भारत सरकार– इण्डिया 2002.

3.5 जल संसाधन का उपयोग

- **पेय तथा घरेलू उपयोग,**
- **पशुपालन,**
- **सिंचाईं,**
- **उद्योग, जल शक्ति**
- **जल–विद्युत**
- **मनोरंजन**
- **परिवहन उल्लेखनीय उपयोग है।**

भारत में प्रति वर्ष लगभग 500 अरब घन मीटर जल का उपयोग किया जाता है जो कुल उपलब्ध जल संसाधन का लगभग 40% है। जल के विविध उपयोग हैं। इस तरह प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष औसत रूप से 588 घन मीटर का उपभोग किया जाता है। उसी की विश्व का औसत 648 घन मीटर का है। जल के आर्थिक उपयोगों में सिंचाई के लिए इसका उपयोग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है इसके अलावा जल विद्युत का उत्पादन, औद्योगिक उपयोग, आवागमन के साधन, अपशिष्ट पदार्थ को हटाने तथा शुद्धिकरण के साधन तथा मनोरंजन के साधन के रूप में भी जल का उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय (सन् 1999) में कुल जल संसाधन का लगभग 84 प्रतिशत उपयोग सिंचाई के लिए जा रहा है जो सन् 2025 तक घटकर 73 प्रतिशत रह जायेगा, क्योंकि अन्य उपयोगों में आश्चर्यजनक वृद्धि होने की संभावना है। इसके विपरीत केवल 4 प्रतिशत घरेलू उपयोग में तथा 12 प्रतिशत उद्योग, विद्युत उत्पादन आदि के लिए किया गया। तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के कारण प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति औसत रूप से प्राप्य उपयोग योग्य पानी की मात्रा सन् 1951 में 3450 वन मीटर से घटकर सन् 1999 में 1250 घन मीटर हो गया तथा सन् 2050 में 760 घन मीटर हो जाने की संभावना है।

3.5.1 सिंचाई

भारत का अधिकांश भाग उष्ण कटिबंध में स्थित होने के कारण वाष्पीकरण की दर अधिक है। फलस्वरूप कृषि–उत्पादन की वृद्धि के लिए तथा भूमि की 'उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए समय पर जल की प्रति आवश्यक है जो सिंचाई द्वारा ही सम्भव है। भारत में सिंचाई बहुत पहले से हो रही है। उदाहरण के लिए कावेरी नदी पर ग्राण्ड एनीकट बाँध का निर्माण पहिली सदी में ही हो गया था। आधुनिक सिंचाई प्रणाली का विकास सन् 1882 में उत्तर प्रदेश में पूर्वी यमुना नहर के निर्माण के साथ प्रारम्भ हुआ था। परन्तु सिंचाई मे तेजी से वृद्धि स्वतंत्रता के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में हुई है। सन् 1950 – 51 में लगभग 225.6 लाख हेक्टर भूमि पर सिंचाई की गई थी जो सन् 2003 – 04 में 768.2 लाख हेक्टर हो गयी है (तालिका–3.3)।
इस प्रकार इन 54 वर्षो में सिंचित क्षेत्र में लगभग साढ़े तीन गुनी–वृद्धि हुई है। इसके साथ ही सिंचित क्षेत्र का अनुपात भी बढ़ा है। सन् 1950– 51 में सिंचित क्षेत्र कुल कृषित भूमि का 17.1 प्रतिशत था जो बढ़कर सन् 2003 - 04 में 40.3 प्रतिशत हो गया है। फिर भी देश की लगभग दो–तिहाई कृषि अभी भी वर्षा पर निर्भर है।

तालिका– 3.3 : भारत : कृषित एवं सिंचित भूमि की प्रवृत्ति, 1950 – 2004

(क्षेत्र करोड़ हेक्टर में)

वर्ष	कृषित भूमि		सिंचित भूमि		सिंचित भूमि का प्रतिशत	
	निरा	कुल	निरा	कुल	निरा	कुल
1950–51	11.9	13.2	2.1	2.3	17.56	17.11
1955–56	12.9	14.7	2.3	2.6	17.62	17.41
1960–61	13.3	15.3	2.5	2.8	18.51	18.32
1965–66	13.6	15.5	2.6	3.1	19.34	19.90
1970–71	14.0	16.6	3.1	3.8	22.17	23.04

1975–76	14.2	17.1	3.5	4.3	24.42	25.31
1980–81	14.0	17.3	3.9	5.0	27.66	28.84
1985–86	14.1	17.8	4.2	5.4	29.72	30.42
1990–91	14.3	18.6	4.8	6.3	33.58	34.03
1995–96	14.2	18.7	5.3	7.1	37.55	38.06
2000–01	14.1	18.6	5.5	7.6	38.85	40.85
2003-04*	14.1	19.1	5.5	7.7	39.11	40.30

* प्रोवीजनल

सिंचित क्षेत्र का वितरण

राज्यों में सिंचित क्षेत्र का वितरण काफी असमान हैं। कुल सिंचित क्षेत्र को कुल कृषित भूमि के रूप में देखने से स्पष्ट चित्र दिखाई देता है (चित्र 3.2)। आसाम राज्य में कुल कृषित भूमि का केवल 5.4 प्रतिशत ही सिंचित है जबकि पंजाब में 96.6 प्रतिशत कुल कृषित भूमि पर सिंचाई की जाती है। आठ राज्यों में कुल सिंचित क्षेत्र का अनुपात 40 प्रतिशत से अधिक है। पंजाब राज्य का इसमें प्रथम स्थान और इसका पड़ोसी राज्य हरियाणा दूसरे स्थान पर है। साथ ही उत्तर प्रदेश (69.5 प्रतिशत), बिहार (57. 9%), पश्चिम बंगाल (51.0%), और उत्तरी राज्य उत्तराखण्ड(43.6%) एवं जम्मू और कश्मीर (40.5 प्रतिशत) एवं में भी कुल सिंचित क्षेत्र 40प्रतिशत से अधिक है। इस पेटी से बाहर धुर दक्षिणी राज्य तमिलनाडु (46.6%) इस वर्ग में आता है। केन्द्र शासित प्रदेशों में भी आधे से अधिक कृषित भूमि पर सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध हैं। उत्तर के विशाल मैदानी क्षेत्र में सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार समतल मैदान, उपजाऊ गहरी मिट्टी, सदावाहिनी नदियों में प्रचुर जल की सुविढ़ग तथा अधोभौमिक जल के विशाल भंडार के कारण अधिक हु आ है। विकास के कारणों में कम वर्षा, इसकी अनिश्चितता और फसलों की अधिक खलीय आवश्यकता मुख्य हैं।

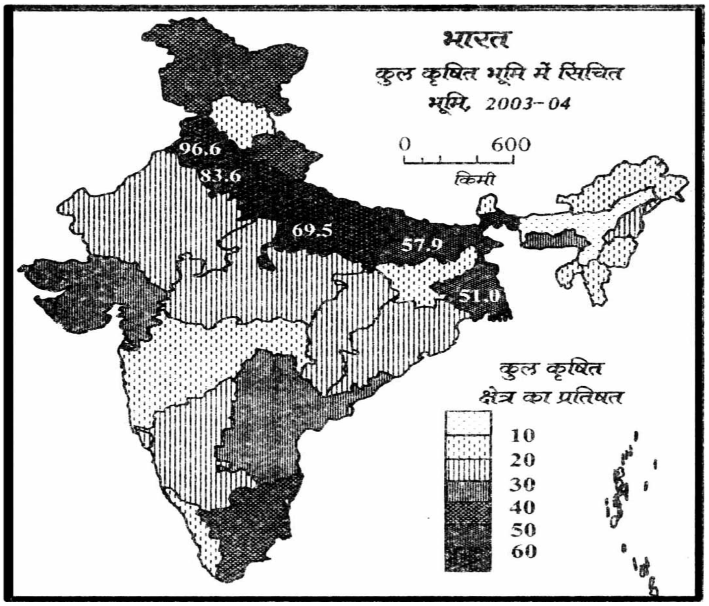

चित्र– 3. 2 : सिंचित भूमि

सिंचित क्षेत्र के मध्यम अनुपात (20 से 40 प्रतिशत) वाले राज्य एक लगातार पट्टी में फैले हैं। यह पट्टी पश्चिम में गुजरात और राजस्थान से प्रारम्भ होकर पूर्व में उड़ीसा तक फैली है। इसमें मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक सम्मिलित हैं। इन राज्यों में विशेषकर पश्चिमी राज्यों में कम वर्षा और उसकी अधिक अनिश्चितता के कारण वर्षा आधारित कृषि की जाती है। फलत : न केवल कृषि की उत्पादकता बहुत कम और अनिश्चित होती है बल्कि कृषित भूमि का अधिकतम उपयोग नही किया जा सकता। इसके लिए सिंचाई की आवश्यकता अधिक है किन्तु सिंचाई क्षमता का विकास कम हुआ है।

कम (20 प्रतिशत से कम) सिंचित क्षेत्र उत्तर –पूर्वी राज्यों में फैला है, जहां कुल सिंचित क्षेत्र आसाम में 54 प्रतिशत से लेकर मणिपुर तथा मिजोरम में 18.4 प्रतिशत तक है। यहाँ सिंचाई कम होने का मुख्य कारण पर्वतीय धरातल तथा अधिक वर्षा का होना है। झारखण्ड में भी कुल सिंचित भूमि केवल 10.3 प्रतिशत ही है। दूसरा कम सिंचित क्षेत्र महाराष्ट्र में है। यह दकन पठार का पश्चिमी घाट की वृष्टि छाया वाला क्षेत्र है, जहां वर्षा कम और परिवर्तनशीलता अधिक है। यहाँ कम वर्षा के कारण कम सतही जल ऊबड़– खाबड़ धरातल, छिछली मिट्टी तथा अधोभौमिक जल का सीमित भंडार और अधिक गहराई के कारण उपलब्ध जल संसाधनों का उपयोग कम ही हो पाया है। केरल में भी सिंचित क्षेत्र का अनुपात (14. 4 प्रतिशत) कम है।

राज्यों के अदा भी सिंचित क्षेत्रों के अनुपात में बहुत अधिक विभिन्नता मिलती है जैसे कि आन्ध्र प्रदेश में अधिकांश सिंचित क्षेत्र कृष्णा–गोदावरी डेल्टा तथा तटीय भागों में ही सीमित है। इसी तरह उडीसा में सिंचित क्षेत्र महामी डेल्टा में केन्द्रित है। अधिक गहन सिंचित क्षेत्र दो विस्तृत पेटी में फैले हैं। प्रथम पेटी पंजाब से लेकर पश्चिमी बिहार तक फैली है। यह पुराना सिंचित क्षेत्र है और स्वतंत्रता के बाद यहाँ की सिंचाई की सुविधाओं में काफी विस्तार किया गया है। जैसा कि चर्चा की जा चुकी है कि इस पेटी में अधिक सिंचाई का मुख्य कारण अधिक मांग और अनुकूल भौतिक सुविधायें हैं। इन राज्यों ने अपने सतही तथा अधोभौमिक जल संसाधनों का बड़े पैमाने पर दोहन कर लिया है तथा ये सिंचाई के लिए नहरों तथा नलकूपों (ट्युब वेल) पर निर्भर रहते हैं। दूसरी संघन सिंचित पेटी का विस्तार उड़ीसा में महानदी डेल्टा से लेकर तमिलनाडु में कावेरी डेल्टा तक पूर्वी घाट के सहारे है। जलोढ़ तटीय मैदान तथा सिंचाई के लिए उपलब्ध पर्याप्त सतही जल के कारण यहाँ का विकास काफी पहिले कर लिया गया था। अन्य राज्यों में सघन सिंचाई वाले क्षेत्र एकाकी हैं, जैसे, कश्मीर घाटी, ब्रह्मपुत्र घाटी, पश्चिम बंगाल में बीरभूमि जिला, दक्षिणी छत्तीसगढ़ बेसिन, मध्यप्रदेश में चम्बल बेसिन और बुन्देलखण्ड क्षेत्र आदि।

इसी तरह अल्प सिंचित क्षेत्र जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, सिक्किम तथा पूर्वोत्तर राज्य अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर. और मिजौरम के पहाड़ी तथा हिम से ढके भाग हैं। इन क्षेत्रों में सिंचाई के विकास में विषम धरातल, कृषि के लिए अनुपयुक्त भूमि तथा उच्च भागों में हिमावरण बाधक हैं। इसी तरह पूर्वी मध्यप्रदेश, पूर्वी महाराष्ट्र, दक्षिणी छत्तीसगढ़ तथा पश्चिमी उड़ीसा में भी सिंचाई का विकास बहुत कम हुआ है। सामान्यतया उन भागों में सिचाई का कम और बहुत कम विकास हो पाया हैं जहाँ सीमित सतही जल प्रवाह बहुत कम भंडार अथवा लवणीय अधोभौमिक जल, पहाड़ी तथा ऊबड–खाबड धरातल और अनुपजाऊ मिट्टियां पाई जाती है। देश का विस्तृत भूभाग इसी वर्ग में आता है जहाँ कृषि–भूमि की दक्षता तो कम है ही कृषि की उत्पादकता भी कम और अनिश्चित होती है।

घरेलू जल पूर्ति

सरकारी आकड़ों के अनुसार भारत में प्रति वर्ष 42 अरब घन मीटर पानी का उपयोग घरेलू कार्यों के लिए किया जाता है। मोटे तौर पर देश की जनसंख्या 1 अरब मानी जाय तो प्रति व्यक्ति प्रति दिन का औसत 115 लीटर पानी आता है जो संयुक्त राज्य अमेरिका के औसत (300 लीटर) से बहुत कम है। देश में ऐसे भी क्षेत्र हैं जहां प्रति व्यक्ति प्रति दिन 50 लीटर पानी नही मिल पाता। भारत की राष्ट्रीय जल नीति (1987) में सबसे अधिक महत्व पेयजल की पूर्ति को दिया गया है तथा इसके बाद सिंचाई, जलशक्ति, नौका परिवहन एवं औद्योगिक उपयोग और अन्य –उपयोगों को दिया गया है। इसके परिपालन में पेयजल की आपूर्ति की व्यवस्था और स्वच्छता –सुविधाओं का तेजी से विकास एवं प्रसार करने का प्रयास किया गया है। सन् 1991 में देश के लगभग. 62.7 प्रतिशत आवासों को स्वच्छ पीनेयाग्य पानी की सुविधा थी। यह अनुपात ग्रामीण क्षेत्रों में 559 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में 81.6 प्रतिशत था। आठवीं पंचवर्षीय योजना काल में सर 1993 – 94 में शहरी क्षेत्रों में पेयजल पूर्ति बढ़ाने के लिए त्वरित शहरी जलापूर्ति कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य 20 हजार से कम आबादी वाले नगरों तथा कस्बों में जलापूर्ति की सुविधा प्रदान करना था। 31 मार्च 2001 तक लगभग 601 योजनाओं को मंजूरी दी जा चुकी थी। भारत में बड़े शहरों में पीने के पानी की पूर्ति के लिए सिंचाई वाले जलाशयों और बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए दिल्ली को पानी टिहरी बांध से और चेन्नई के लिए पानी कृष्णा से नल –गंगा योजना के सहारे आता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में पीने तथा घरेलू उपयोग के लिए पानी अधोभौमिक जल स्रोतों से प्राप्त होता है। सन् 1972 में कुल 580 हजार राजस्व गाँवों में से लगभग 150 हजार गांव पेयजल हेतु समस्याप्रद गांव थे। नौवीं पंचवर्षीय योजना में देश के प्रत्येक बस्ती को पेयजल उपलब्ध कराने के लिए स्थाई पानी की सुविधाओं के विकास पर जोर दिया गया। एक जनवरी 2002 में 1,257,522 आवासों को जलपूर्ति की पूरी सुविधा और 147,241 आवासों को आशिक सुविधा दी जा चुकी थी। शेष 7,891 निवास स्थानों में स्वच्छ पेयजल का अभाव है। जल प्रदाय में 38 लाख हैंडपप तथा 11 लाख पाइप द्वारा जलपूर्ति की स्कीम काम कर रहीं थी। स्वतंत्र प्रतिवेदनों के अनुसार अभी भी आधे गांवों में पेयजल की समस्या है।

जल का औद्योगिक उपयोग (Industrial Use of Water)

औद्योगिक विकास की प्राथमिक आवश्यकता पर्याप्त जल की उपलब्धता है। द्वितीय जल कमीशन 1972 की रिपोर्ट में सिफारिश की गई है कि सम्पूर्ण देश में औद्योगिक उद्देश्य के लिए 50 अरब घन मीटर जल की आवश्यकता होगी। वर्तमान में लगभग 30 अरब घन मीटर जल का विभिन्न उद्योगों में उपयोग किया जाता है। यह कुल उपभोग का केवल 2 प्रतिशत है। नवीन अनुमान के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सन् 2025 में 120 अरब घन मीटर जल की आवश्यकता होगी। वास्तव में कृषि और उद्योगों के बीच पानी की आपूर्ति की प्रतिस्पर्धा निरंतर बढ़ रही है। अभी भी उद्योग जल के एक बड़े प्रदूषक बन गए हैं।

जल विद्युत की संभावना एवं विकास (Development and Potentiality of Hydro Electricity)

देश में जल विद्युत उत्पादन की विपुल सम्भावनाएं हैं। केन्द्रीय विद्युत अथॉरिटी ने 60 प्रतिशत लोड के आधार पर देश में जल विद्युत की सम्भावित क्षमता 84,000 मैगावाट आँकी है। इससे

प्रति वर्ष 450 अरब यूनिट बिजली पैदा की जा सकती है। सर्वाधिक सम्भावना उत्तरी तथा उत्तरपूर्वी क्षेत्रों में है। स्वतंत्रता के समय जल विद्युत की स्थापित क्षमता 1362 मेगावाट की थी तथा उत्पादन 508 मेगावाट था। यह क्षमता सन् 2000 – 01 में 25100 मेगावाट हो गई है जो सभी प्रकार की विद्युत उत्पादन की स्थापित क्षमता की 24.7 प्रतिशत है। जल विद्युत उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा सन् 1975 में राष्ट्रीय जल ऊर्जा निगम (National Hydroelectric Power Corporation) की स्थापना की गई।

भारत के भूजल क्षेत्रों को आर. ऐल. सिंह ने अपनी पुस्तक India : Regional Geography में आठ प्रदेशों में विभाजित किया है, जो निम्नलिखित हैं

4. **पूराकैम्ब्रीयन रवेदार शैलों का प्रदेश :** इसमें देश का लगभग आधा भाग सम्मिलित है, जो तमिलनाडू कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, दण्डकारण्य, बुन्देलखण्ड, अरावली आदि क्षेत्रों में विस्तृत है।
5. **पुराकैम्ब्रीयन अवसादी शैलों का प्रदेश :** यह क्षेत्र देश के कुडप्पा रख विंध्ययन बेसिन पर फैला है।

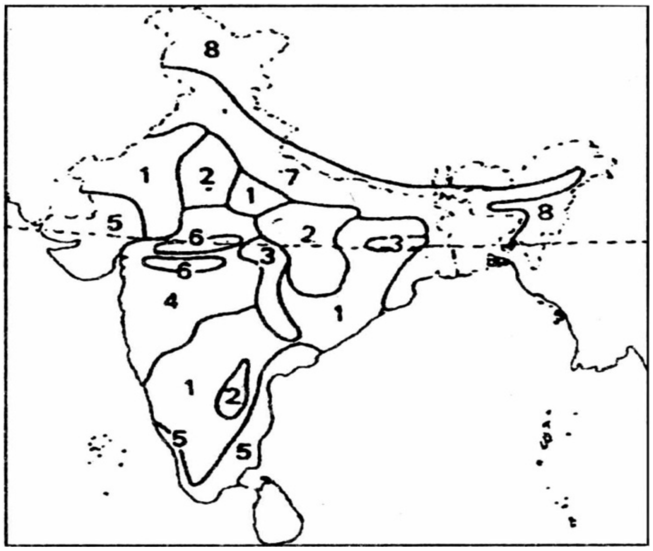

चित्र – 3.3 : भूगर्भिक जल के क्षेत्र (आर.एल.सिंह के अनुसार)

3. **गौंडवाना अवसादी शैलों का प्रदेश :** बाराकर एवं गोदावरी बेसिन में बालुकामय शैलों में स्थित इस प्रदेश में पर्याप्त जल मिलता है।
4. **दक्कन ट्रेप प्रदेश :** यह 1200 मीटर मोटी अप्रवेश्य स्तरों वाली बेसाल्ट की पट्टी है, जहाँ भूजल की कमी पायी जाती है।
5. **सीनोजोइक अवसादी शैलों का प्रदेश :** यह टर्शियरी कालीन पर्याप्त जल वाला क्षेत्र है, जो तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, केरल एवं गुजरात के तटीय भागों में स्थित है।
6. **सीनोजोइक भ्रंश बेसिन प्रदेश :** नर्मदा, ताप्ती व पूर्णा नदियों के भ्रंश बेसिन में स्थित कांप जमावों (80 से 160 मीटर गहरे) का पर्याप्त भूजल वाला क्षेत्र है।
7. **गंगा ब्रहमपुत्र जलोढ़ प्रदेश :** भूजल की दृष्टि से समृद्ध इस क्षेत्र में जलस्तर काफी ऊँचा है।
8. **हिमालय प्रदेश :** यह भूमिगत जल की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है, जिसका प्रमुख कारण इसकी जटिल संरचना है।

देश के कुल जल का केवल 1104 लाख हैक्टेयर मीटर या 46 प्रतिशत जल ही उपयोग में आता है, यह जल तीन क्षेत्रों से सिंचाई के लिए कृषि, घरेलू बस्तियों, जिसमें पशुधन भी शामिल है और उद्योगों आदि में काम आता है।

तालिका– 3.4 : जल की वार्षिक मांग के अनुसार भूजल का क्षेत्रवार व कुल अध्ययन

वर्ष	सिंचाई व दूसरे उपयोग लाख हैक्टेयर मी.(प्रतिशत)	शहर/उद्योग/गाँव (प्रतिशत)	कुल लाख हैक्टेयर मी.
1974	350(89.3)	30(10.7)	380
1985	360(66.7)	180(33.3)	540
2000	500(66.7)	250(33.3)	750
2005	770(73.3)	280(26.7)	1050

उपर्युक्त आकड़ों से ज्ञात होता है कि 1974 में 380 लाख हैक्टेयर मीटर जल से लेकर 1985 में 540 लाख हैक्टेयर मीटर तक जल की मात्रा बढ़ गयी है। सन् 2000 के लिए अपेक्षित भाग के आकड़ों के अनुसार 750 लाख हैक्टेयर मीटर है लेकिन अन्न, चारा, ईंधन की लकड़ी और औद्योगिक कच्चे माल का भूमि आधारित वस्तुओं की बढ़ी हुई विविध मांगें 2005 तक 10,000 लाख जनसंख्या को संम्भाल पा रही है। यह सोचकर इन वस्तुओं का पुन : निर्धारण किया गया है। पानी की इस प्रकार बढ़ती हुई मांग के कारण भारत के कुल जल संसाधनों का 1050 हैक्टेयर मीटर जल का उपयोग उद्योग, बिजली, शहरीकरण इत्यादि में होने लगा है।

बोध प्रश्न – 1

1. अपवाह प्रतिरूप किसे कहते हैं?

   ....

   ....

2. भारत को कितने नदी बेसिनों में बांटा गया है?

   ....

   ....

3. गंगा नदी तंत्र की प्रमुख नदियों का नाम लिखिए।

   ....

   ....

4. प्रायद्वीपीय अपवाह तंत्र की दो विशेषताएँ बताइये।

   ....

   ....

5. भारत में भूजल अतिदोहन के दो कारण बताइये।

   ....

   ....

3.6 राष्ट्रीय जल ग्रिड योजना (National Water Grid Scheme)

अन्र्तसंग्रहण जल स्थानान्तरण की राष्ट्रीययोजना का उद्देश्य देश की विभिन्न नदियों के जल स्रोतों का अधिकतम उपयोग करना है ताकि पानी की कमी वाले तथा सूखा प्रभावित क्षेत्रों को उपर्युक्त मात्रा में जल की पूर्ति की जा सके। हिमालय की नदियाँ वर्षाकाल में भारी मात्रा में जल को प्रवाहित करके सहमों में उडेलती हैं, जबकि प्रायद्वीपीय एवं मध्यवर्ती भारत की नदियाँ वर्ष के अधिकांश समय में जल की कमी से ग्रसित रहती हैं। ज्ञातव्य है कि गंगा नदी में उपलब्ध लगभग 420 लाख हैक्टेयर मीटर जल में से मात्र 125 लाख हैक्टेयर मीटर जल ही उपयोग में आता है, शेष स्वतन्त्र रूप से सागरों में प्रवाहित हो जाता है। इसी प्रकार ब्रहमपुत्र का लगभग 380 लाख हैक्टेयर मीटर जल समुद्रों में मिल जाता है। उपर्युक्त विषम परिस्थितियों को मध्यनजर रखते हुए भारत सरकार के सिंचाई जल मंत्रालय एवं ऊर्जा मंत्रालय ने राष्ट्रीय ग्रिड (National Water Grid)के नाम से एक योजना प्रस्तुत की है जिसके पूर्ण होने के उपरान्त देश में सूखे से प्रभावित एंव जल की कमी वाले क्षेत्रों को जलापूर्ति के साथ ही बाढ़ों की पुनरावृत्ति भी रूकेगी। 1972 में तैयार राष्ट्रीय ग्रिड, जिसमें के. एल. राव की मुख्य भूमिका थी, जिसमें निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं

1. गंगा–कावेरी संधि (Ganga–Cauvery Link) : 1260 किलोमीटर गंगा–कावेरी संधि में गंगा नदी को कावेरी नदी से जोड़ना सम्मिलित है, जिसमे गंगा नदी का जल सोन, नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा तथा पैनार नदियों के बेसिन से प्रवाहित होते हुए कावेरी बेसिन तक ले जाना है। इस प्रस्तावित कार्य–नीति के तहत् गंगा बेसिन का 259 मिलियन हैक्टेयर मीटर जल सिंचाई हेतु उपलब्ध हो सकेगा।
2. ब्रहमपुत्र–गंगा संधि (Brahmaputra–Ganga Link)।
3. नर्मदा से पश्चिमी राजस्थान एवं गुजरात के लिए नहर का निर्माण।
4. राजस्थान के अजमेर क्षेत्र को पानी की आपूर्ति हेतु चम्बल नदी से एक लिस्ट नहर का निर्माण।
5. महानदी से जल लेकर तटवर्ती क्षेत्रों में पहुँचाने के लिए एक संधि नहर निर्मित करना, जो कई अन्य नहरों को भी जोड़ेगी।

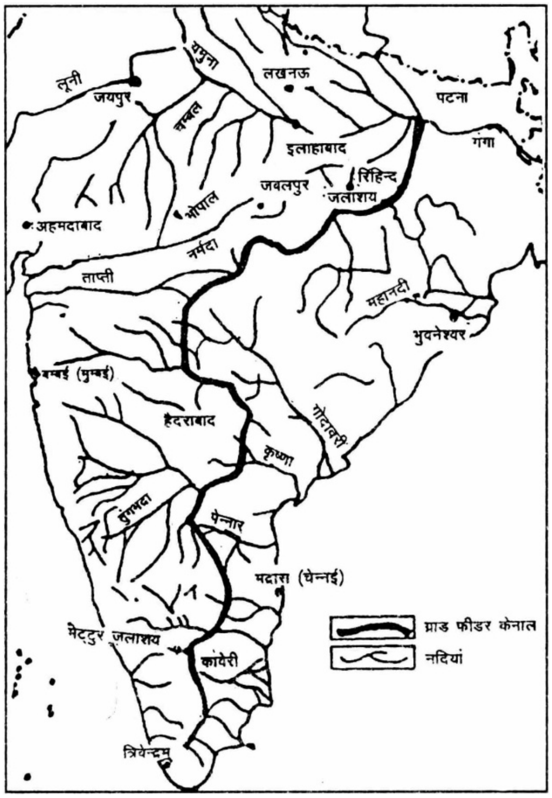

चित्र– 3.4 : गंगा कावेरी संधि

उपर्युक्त अन्तर्बेसिन जल स्थानान्तरण में गंगा–कावेरी संधि सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विस्तृत है, जिसका प्रमुख उद्देश्य गंगा के अतिरिक्त पानी को सिंचाई के रूप में उपयोग में लाना है, जिसके तहत् बिहार में पटना के समीपवर्ती क्षेत्र का जल तमिलनाडु में ले जाना प्रस्तावित है, जिस हेतु पटना के पास एक बैराज बनाकर गंगा का जल 50 क्यूसेक की दर से उठाने का कार्य प्रस्तावित है। इस जल का 176 भाग 300 दिन तक उत्तर प्रदेश तथा बिहार के दक्षिण क्षेत्रों को दिया जायेगा तथा शेष जल गंगा में भारी प्रवाह के दौरान 150 दिन तक पम्प करके राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा तमिलनाडु की शेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपयोग में लिया जायेगा।

राष्ट्रीय नदी ग्रिड पर लगभग 12500 करोड़ रुपये व्यय –होने का अनुमान है, जो 30 वर्षो में पूरी हो सकेगी। यद्यपि इस परियोजना से बाढ़ नियंत्रण को प्रत्यक्ष लाभ नहीं होगा, किन्तु इससे देश के 40 लाख हैक्टेयर क्षेत्र को सिंचाई सुविधाऐं प्राप्त होंगी, जो प्राचीनकाल से जल की कमी से प्रभावित रहा है। इसके अतिरिक्त प्रभावित भौगोलिक क्षेत्र को पेयजल उपलब्ध होगा व जलीय यातायात का विकास होगा। कई वर्षो से चले आ रहे नदी जल बँटवारे का भी हल निकल सकेगा अत: इस परियोजना के पूर्ण होने के उपरान्त वर्षो से प्यासी भूमि पर हरियाली का आवरण आने से विकास भी सन्तुलित होगा, अन्तत : राष्ट्रीय एकता को बल मिलेगा।

2. गारलैंड नहर (Garland Canal)

केप्टेन दस्तूर द्वारा 1977 में गारलैंड का प्रस्ताव किया गया, जिसमें देश के सम्पूर्ण अधिशेष जल को 21.9 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई के उपयोग में लाया जाना था। यह मुख्य रूप से दो

भागों में विभाजित है (1) प्रथम नहर 4200 किलोमीटर लम्बी एवं 300 मीटर चौड़ी है, जिसे हिमालय नहर नाम दिया है। यह सह तल से 335 मीटर से 457 मीटर के मध्य स्थित होगी। यह हिमालय के दक्षिण ढालों में स्थित होगी, जिसका विस्तार पश्चिम में रावी से पूर्व में ब्रहमपुत्र तक होगा। इसमें पानी का प्रमुख स्रोत हिमालय की नदियाँ होंगी। इस परियोजना द्‌वारा पश्चिम में 50 एवं पूर्व में 40 छोटी–बड़ी झीलें भी पोषित होंगी। इसकी संग्रहण क्षमता 61.7 मिलियन हैक्टेयर होगी। (2) दूसरी नहर दक्षिणी व मध्य गारलैण्ड नहर के नाम से 9300 किलोमीटर लम्बी तथा 300 मीटर चौड़ी होगी, जो समुद्र तल से 244 मीटर से 305 मीटर की ऊँचाई पर स्थित होगी। इस नहर के मध्य 49.7 मिलियन हैक्टेयर मीटर की संग्रहण क्षमता वाली 200 झीलें स्थित हैं। ये हिमालय रथ गारलैण्ड नहरें दिल्ली एवं पटना नामक दो स्थानों पर अन्तर्नियोजित होंगी। केप्टेन दखूर के अनुसार इस तन्त्र के विकसित होने पर अतिरिक्त जल द्‌वारा असिंचित 219 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र सिंचित होगा। इसके पूर्ण होने में 3 से 4 वर्ष का समय प्रस्तावित किया था एवं 16.8 मिलियन श्रमिक लगेंगे, जिस हेतु 24095 करोड़ रुपयों की आवश्यकता बतायी थी। केप्टेन दस्कूर का यह आकलन 1974 का है, जिसे दो समितियों द्‌वारा विश्लेषित किया जा चुका है। सर्वप्रथम 1979 में केन्द्रीय जल आयोग द्‌वारा किये गये विश्लेषण के उपरान्त बताया गया कि दलूर प्रस्ताव की लागत लगभग 12 मिलियन करोड़ रुपये होगी तथा इस योजना को क्रियान्वित किया जाना चाहिए। इसके लिए 1980 में एक राष्ट्रीय योजना भी बनाई गई, जिसमें अन्तर्बेसिन स्थानान्तरण की बात कही गई। इससे पूर्व आई. आई. टी., राज्य सरकार एवं केन्द्रीय जल आयोग के विशेषज्ञों एवं रुड़की विश्वविद्‌यालय के प्रोफेसरों द्‌वारा अध्ययन करके बताया गया है कि यह योजना तकनीकी दृष्टि से कमजोर तथा आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त है जबकि इस योजना के निर्माण के उपरान्त देश के असन्तुलित विकास को सन्तुलित दिशा मिलेगी व कमजोर पक्षों में सुधार होगा।

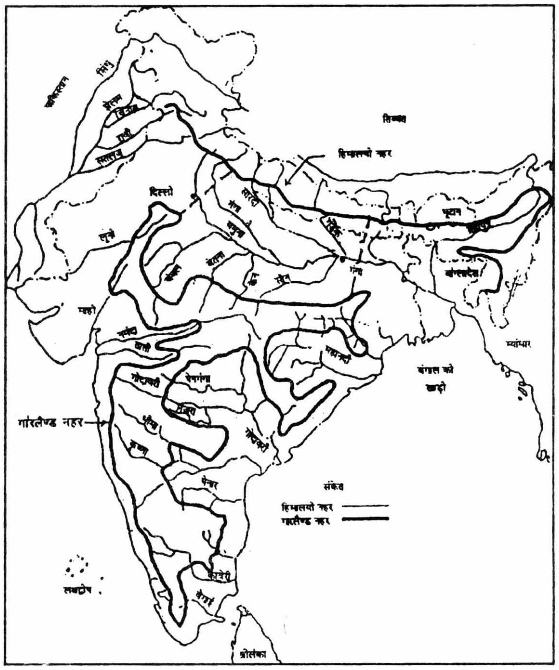

चित्र – 3.5 : गारलैण्ड नहर

नदी संगम योजना

भारत में प्रतिवर्ष लगभग 400 घन किलोमीटर जल वर्षा एवं हिमपात के रूप में भू -सतह को प्राप्त होता है, जिसमें से 1869 घन किलोमीटर जल ही नदियों में पहुँचता है तथा इसमें से भी 1179 घन किलोमीटर जल बिना उपयोग किये प्रवाहित हो जाता है। इस जल को सूखे वाले स्थानों में पहुँचाने के लिए नदियों को जोड़ने की जलस्वप्न योजना प्रारम्भ की गई है। इसका भौगोलिक विवरण निम्नांकित है

- **प्रस्ताव :** जल अधिकता वाले क्षेत्रों से सूखे क्षेत्रों में जल पहुँचाने के लिए 9600 किलोमीटर में 36 सम्पर्क चैनलों के द्वारा 37 नदियों को जोड़ना है जिसमें 5 – 6 करोड़ टन सीमेन्ट और 20 लाख टन इस्पात लगेगा व 32 बांध (हिमालय में 9 व प्रायद्वीप में 27) जुड़ेंगे।
- **उद्देश्य :** 2500 किलोमीटर लम्बी नहरों के जाल द्वारा 3.4 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई तथा 101 जिलों व पाँच महानगरों को कुल 173 घन किलोमीटर जल उपलब्ध कराया जायेगा।
- **लाभ :** देश के बाढ़ग्रस्त व सूखाप्रवण क्षेत्रों में जलीय संतुलन होने के साथ ही विभिन्न नदी सम्पर्को पर प्रतिवर्ष 34,000 मेगावाट बिजली का उत्पादन होगा तथा 3.7 करोड़ मानव वर्ष में रोजगार सृजित होगा।
- **लागत :** इस पर 560,000 करोड़ रुपये की लागत आयेगी जो विगत् 52 वर्षो में देशों में सिंचाई पर खर्च कुल लागत (58,000 करोड़) की 10 गुणी है। इसके लिए देश के वर्तमान सकल घरेलू उत्पादन का 2 प्रतिशत आगामी 10 वर्षों तक इस पर खर्च करना होगा।
- **समस्याओं का समाधान :** अन्तर्राज्यीय जलविवादो से मुक्ति मिलेगी। इस पर शुल्क लगाकर जलाधिक्य वाले राज्यों को राजस्व दिया जाना चाहिए। इससे सकल घरेलू उत्पाद में 4 प्रतिशत तक वृद्धि सम्भव है।
- **समस्याएँ :** पड़ोसी देशों (नेपाल, भूटान व बांग्लादेश) से सहमति लेना आवश्यक होगा। राज्य भी असहयोग कर सकते हैं। 5,60,000 करोड़ रुपए जुटाना आसान कार्य नहीं होगा। लागत बढ़ने से परियोजना का भविष्य संकट में आ सकता है। 4.5 लाख लोगों के विस्थापन की समस्या आयेगी तथा साथ ही 79292 हैक्टेयर वनावरण डूब क्षेत्र में आने से जैवविविधता ह्वास होगी, जिससे बड़ी पारिस्थितिकीय समस्या उत्पन्न होगी।

देश में जल संकट के समाधान के लिए 36 नदी सम्पर्कों का निर्माण करने वाली योजना को प्रारम्भ करते समय पूर्व प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इसे जलस्वप्न योजना का नाम दिया है। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष प्राप्त होने वाली 1869 घन किमी. सतही जलराशि का अधिकतम उपयोग सम्भव होगा। इसके लिए भारत को दो भौगोलिक भागों में विभाजित किया गया। इनका तुलनात्मक विवरण निम्नलिखित हैं

निर्माण कार्य	**हिमालयी नदी तंत्र**	**प्रायद्विपीय नदी तंत्र**
नहर की लम्बाई	6099 किमी.	4777 किमी (94 किमी'. सुरंग सहित)
सम्पर्क (Links)	19	17
बड़े बांध	9	27
मोड़ा जाने वाला जल	3298.3 घन किमी.	14,128.8 घन किमी

विद्युत उत्पादन	30,000 मेगावाट	4,000 मेगावाट
कुल लागत (वर्ष 2002 के मूल्य स्तर पर)	182929 करोड़	1,05,745 करोड़

***सम्पूर्ण परियोजना की कुल लागत में 2,69,326 करोड़ रुपए की विद्युत परियोजना लागत भी सम्मिलित है।**

3.7 अन्तर्राज्यीय नदी जल विवाद

नदियाँ अपने प्राकृतिक रूप में प्रवाहित होती हैं तथा किसी एक राजनीतिक इकाई से नियंत्रित न होकर भू–आकृतिक दशाओं के अनुसार बहती है। इनमें प्रवाहित जल जलग्रहण क्षेत्र के आकार तथा उच्चावच के अनुसार वितरित होता है। यदि कोई देश काफी विषम उच्चावच में अवस्थित है, जहाँ नदी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में होती है तो वहाँ जल की मात्रा तो पर्याप्त होगी, लेकिन उसका वितरण हिस्सा उसे उपलब्धता के अनुपात में न मिलकर आगे के अपवाह क्षेत्र में अवस्थित देश या राज्य के साथ एक निश्चित अनुपात में मिलेगा। आज जल को किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का हृदय माना जाता है, जिस पर सभी आर्थिक क्रियायें निर्भर करती हैं लेकिन निरन्तर बढ़ती मांग एवं घटती मात्रा एवं गुणवत्ता के कारण राष्ट्रीय रख अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नदी जल विवाद उत्पन्न हुए हैं। प्रमुख राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय नदी जल विवाद एवं समझौतों का भौगोलिक विवरण निम्नांकित हैं : –

1. कृष्णा नदी जल विवाद

यह विवाद तीन राज्यों कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र से जुड़ा हुआ है। इस विवाद का मुख्य सूत्र अलमाती बाँध से जुड़ा हुआ है, जो कि कर्नाटक के बीजापुर जिले में कृष्णा नदी पर बना हुआ है। इसका शिलान्यास तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने 1968 में किया था, जिसको बाद में केन्द्रीय जल आयोग ने बहुउद्देशीय परियोजना का रूप दिया, जिसकी ऊँचाई 528 मीटर करने का प्रावधान है। इस पर आन्ध्र प्रदेश ने आपत्ति की कि बाँध की ऊँचाई बढ़ाने से कृष्णा नदी में प्राकृतिक जल प्रवाह कम होगा, जिससे आन्ध्र प्रदेश की जुराला, री सैलम, नागार्जुन सागर आदि परियोजनाओं को जल नहीं मिल सकेगा। बाछावत न्याधीकरण द्वारा निर्धारित किये गये जल बँटवारे के अनुसार आन्ध्र प्रदेश को 811 टी. एम. सी. (Thousand Million Cubic ,T.M.C.) फुट पानी तथा कर्नाटक को 734 T.M.C.फीट पानी प्रयोग की अनुमति प्रदान की तथा महाराष्ट्र 656 T.M.C. फुट जल रोक सकेगा जबकि उत्तरी कृष्णा परियोजना के लिए 173 T.M.C. फुट पानी ही आवंटित किया गया है।

विवाद का मुद्दा कर्नाटक बाँध की ऊँचाई 528 मीटर तक करना चाहता है। इस पर आन्ध्र प्रदेश की आपत्ति है कि बाँध की ऊँचाई 524.45 मीटर होने पर कर्नाटक 227 T.M.C. फुट जल रोक सकेगा, जबकि उत्तरी कृष्णा परियोजना के लिए 173 T.M.C. फुट पानी ही आवंटित किया गया है।

आन्ध्र प्रदेश का कहना है कि कृष्णा नदी बेसिन में निर्मित परियोजनाओं जुराला, री सैलम, नागार्जुन सागर को पानी नहीं मिल पायेगा। यह मामला अभी सर्वोच्च न्यायालय में है।

2. कावेरी जल विवाद

दक्षिण की गंगा के रूप में सुविख्यात कावेरी का जल विवाद एक बार पुन: सुर्खियों में है, तमिलनाडु, कर्नाटक केन्द्र सरकार व सर्वोच्च न्यायालय के मध्य यह समस्या अपनी चरम अवस्था पर है। कावेरी नदी का उद्‌गम स्थल कर्नाटक राज्य (कुर्ग जिला) है, जहाँ से बहती हुई यह कर्नाटक तथा तमिलनाडु से होकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। नदी की कुल लम्बाई 802 किलोमीटर है। वर्तमान में केन्द्र सरकार व सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप 'पानी बँटवारे ' की यह समस्या यथावत है। 5 अक्टूबर, 2002 को कर्नाटक सरकार ने जहाँ उच्चतम न्यायालय के आदेश के बावजूद तमिलनाडु सरकार को पानी नहीं देने का फैसला किया, वहीं तमिलनाडु की मुख्यमंत्री सुश्री जे. जयललिता ने कर्नाटक सरकार के फैसले के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में पुन: अवमानना याचिका दायर की। 4 अक्टूबर, 2002 के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय व कर्नाटक को तमिलनाडु के लिए प्रतिदिन 9000 क्यूसेक पानी छोड़ने का आदेश दिया था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस आदेश के उपरान्त भी कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री एम्स. एम. कृष्णा की आद्‌यक्षता वाले मंत्रिमण्डल की बेठक में तमिलनाडु को पानी नहीं देने का फैसला किया, जिसका कर्नाटक सरकार की सर्वदलीय बैठक में एक मत से समर्थन किया गया। तदोपरान्त तमिलनाडु की मुख्यमंत्री सुश्री जे. जयललिता ने अनुच्छेद 365 व 356 के तहत कर्नाटक सरकार के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय में गुहार की। हालांकि कर्नाटक सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के वर्तमान कड़े रूप को देखते हुये तमिलनाडु के लिए 1000 क्यूसेक पानी छोड़ना आरम्भ कर दिया है, लेकिन फिर भी दोनों राज्यों के मध्य कावेरी जल विवाद का स्थाई समाधान नहीं हो पाया है।

कावेरी नदी जल विवाद का इतिहास

कावेरी के जल बँटवारे का विवाद कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल के मध्य चल रहा जटिल विवाद है। मुख्य रूप से वास्तविक विवाद कर्नाटक एवं तमिलनाडु राज्यों के मध्य 1889 में उस समय से चला रहा है, जबसे कर्नाटक ने कावेरी नदी पर बांध बनाने की योजना प्रस्तुत की। 1892 में मैसूर राज्य तथा मद्रास प्रेसीडेंसी के मध्य विवाद की उग्रता को देखते हुये मैसूर राज्य ने विवाद को भारत सरकार के सुपुर्द कर दिया। भारत सरकार द्‌वारा गठित एक सदस्यीय मध्यस्थता आयोग (न्यायाधीश ण्च. डी. ग्रिफिन, इलाहाबाद) के 12 मई,1919 के निर्णय से मद्रास प्रेसीडेंसी के द्‌वारा मानने से इंकार करने के साथ ही भारत सरकार का प्रथम प्रयास विफल रहा। समझौते का दूसरा प्रयास 13 अप्रैल, 1920 को आरम्भ हुआ, जिसे 18 फरवरी, 1924 से आशिक सफलता मिली। समझौते में दोनों राज्यों को एक –एक (कर्नाटक में कृष्णा सागर तथा तमिलनाडु में मैसूर बाँध) बनाने की अनुमति मिली। समझौता आगामी 50 वर्ष अथवा 1974 तक के लिए मान्य था, जिसके अनुसार कोई भी राज्य एक –दूसरे को बिना सहमति के कोई जलाशय / बांध नहीं बना सकते थे। कर्नाटक सरकार ने 1968 में ही तमिलनाडु के विरोध एक समझौते का उल्लंघन करते हुये कावेरी पर तीन जलाशयों के निर्माण की योजना प्रस्तुत की। योजना के विरोध में तमिलनाडु के किसान संघ ने उच्च न्यायालय में याचिका दायर की, जिसको 1971 में हुये समझौते के उपरान्त वापस ले लिया।

समझौते के उपरान्त सी. सी. पटेल की अध्यक्षता वाली समिति ने सितम्बर एवं दिसम्बर 1972 में दो प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जो दोनों राज्यों को रास नहीं आये। किसान संघ ने पुन: याचिका दायर की तथा 1979 तक विवाद जारी रहा। 1974 में अवधि समाप्ति के उपरान्त तीनों राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने 26 नवम्बर, 1974 को बैठक में 'कावेरी घाटी प्राधिकरण' के ऊपर अल्पकालिक

सहमति व्यक्त हो पाई जो आपसी विवाद के कारण आज पुन: विवाद में बदल गई। इस समय तक जल विवाद का मुद्दा राजनैतिक अखाड़े का सांड बन चुका था, जिसमें आँख मिचौली का खेल जारी रहा। 1886 में फिर तमिलनाडु के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय जल विवाद अधिनियम 1956 के तहत किये गये आग्रह पर सर्वोच्च न्यायालय ने 2 जून, 1990 को न्यायमूर्ति चित्तोष मुखर्जी की अध्यक्षता में बनी सदस्यीय कावेरी जल विवाद न्याधिकरण का गठन किया, जिसका उद्देश्य चारों राज्यों के म जल विवाद का स्थायी समाधान करना था। न्यायाधिकरण ने 25 जून, 1991 को अपना फैसला सुनाया, जिसके अनुसार

1. कर्नाटक तमिलनाडु को मैसूर जलाशय के लिए 205 टी. एम. सी. (Thousand Million Cubic) पानी मासिक एवं साप्ताहिक आधार पर देना होगा।
2. कर्नाटक अपने कावेरी बेसिन (11. 2 लाख है) का विस्तार न करे।
3. लेकिन कर्नाटक सरकार ने इसको एकपक्षीय मानते हुये कुछ समय उपरान्त मानने से इन्कार कर दिया।

इस पर सहमति बनाने के लिए केन्द्र सरकार ने चारों राज्यों की बैठक बुलाई जिसका कोई सुपरिणाम नहीं निकला। इस कारण जुलाई 1993 में तमिलनाडु की मुख्यमंत्री भूख हड़ताल पर बैठ गई और मामला उच्चतम न्यायालय में पहुँच गया। 1 जून, 1996 को इस समस्या के समाधान के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिंहा राव ने तीन सूत्रीय पैकैज घोषित किया।

1. तमिलनाडु को फसल बचाने के लिए 6 अरब घन फीट पानी छोड़ना।
2. विशेषज्ञ दल का गठन
3. जल संसाधन परिषद् की शीघ्र बैठक।

7 अगस्त, 1998 से सभी लस्से विचार–विमर्श के पश्चात् चारों राज्यों के मुख्यमंत्रियों के मध्य आम सहमाते तो नही हो पाई, परन्तु एक चार सूत्रीय समझौता हो गया। उक्त सहमति को औपचारिकता प्रदान करते हुये 11 अगस्त, 1998 से केन्द्र सरकार द्वारा कावेरी जल विवाद हल करने के लिए गठित न्यायाधिकरण के 25 जून, 1997 में अंतरिम आदेश में एवं अन्य सम्बन्धित आदेशों पर अमल के लिए अधिसूचना जारी कर दी (भारत सरकार का गजट 675(E), जिसके अन्तर्गत कावेरी नदी प्राधिकरण का गठन किया जायेगा, जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री तथा चारों राज्यों के मुख्यमंत्री इसके सदस्य होंगे। इसका मुख्यालय दिल्ली में होगा तथा यत्: कार्य करने के लिए स्वयं नियमावली बनायेगा तथा प्राधिकरण की सहायता तथा निर्णयों के अमल के; लिए एक निगरानी समिति का गठन किया जायेगा, जिसका अध्यक्ष केन्द्रीय जल संसाधन का सचिव होगा तथा चारों राज्यों के मुख्य सचिव समिति के सदस्य होंगे। ज्ञातव्य है कि केन्द्र सरकार व सर्वोच्च न्यायालय हस्तक्षेप के उपरान्त पानी की यह समस्या यथावत है। 5 अक्टूबर, 2002 से कर्नाटक सरकार ने जहाँ उच्चतम न्यायालय के आदेश के बावजूद तमिलनाडु को पानी नहीं देने का फैसला किया,' वहीं तमिलनाडु की मुख्यमंत्री सुश्री जे. जयललिता ने कर्नाटक फैसले के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में पुन : अवमानना याचिका दायर की। इस प्रकार यह समस्या वर्तमान में यथावत् बनी हुई है तथा समस्या के इतिहास तथा इसकी जटिलता को देखते हुये भविष्य में स्थाई समाधान की कम सम्भावनाएँ लगती हैं, क्योंकि कावेरी जल विवाद का अब

राजनीतिकरण हो चुका है। तमिलनाडु को यह विश्वास है कि कर्नाटक कावेरी का पानी लेकर तमिलनाडु को जान–बूझकर शुष्क बना देने की कुचेष्टा कर रहा है। दूसरी ओर कर्नाटक का पक्ष यह है कि कावेरी नदी का जल कर्नाटक के लिए है और यदि उसने तमिलनाडु को जल दिया तो स्वयं उसके यहाँ पानी की किल्लत हो जायेगी। इन परिस्थितियों में कोई सर्वमान्य हल निकलना कठिन कार्य लगता है।

उपर्युक्त विश्लेषण के उपरान्त यही उचित होगा कि विवाद का कोई मध्यम मार्ग खोजा जाए तथा दोनों राज्यों के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का सहृदय पालन किया जाये तो नैसर्गिक न्याय के अनुकूल होगा।

3. सतलज–रावी–व्यास विवाद

सतलज–रावी और व्यास नदियों के जल बँटवारे का विवाद मुख्यत: पंजाब और हरियाणा राज्यों के मध्य है। विभाजन के समय भारत और पाकिस्तान के मध्य सिंधु नदी के जल बँटवारे के लिए एक समझौता हुआ था। इसके तहत सिंधु, झेलम एवं चिनाव नदियों का पानी पाकिस्तान को तथा सतलज–रावी व व्यास का पानी भारत को मिलेगा। इसके लिए भारत ने पाकिस्तान को 110 करोड़ रुपयों का भुगतान भी किया था। यह विवाद पंजाब के बँटवारे के साथ ही पैदा हुआ। 1966 में हरियाणा ने अपने में पानी की मांग की तो यही से पंजाब और हरियाणा के मध्य विवाद पनपा। इसके लिए 1910 में एक समिति बनायी गयी, जिसके अन्तर्गत. हरियाणा को 37.8 लाख एकड़ फीट पानी देने की सिफारिश की। इसके तुरन्त बाद योजना आयोग ने हरियाणा को 37.4 लाख एकड़ फुट, पंजाब को 32.6 लाख एकड़ फुट तथा दिल्ली को 2 लाख एकड़ फुट पानी देने की बात कही, परन्तु फिर भी नहीं सुलझा।

1976 में पंजाब ने इस अवार्ड के खिलाफ तथा हरियाणा ने अवार्ड के समर्थन में उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर कर दी। दिसम्बर 1981 में एक नया समझौता हुआ, जिसमें इन दोनों राज्यों के अलावा राजस्थान को भी शामिल किया गया। इस समय पानी की उपलब्धता 171.1 लाख एकड़ फीट आंकी गयी।

राजीव लोंगोवाल, समझौता 1985 में हुआ, जिसके अनुसार पानी की पहले तय की गई मात्रा को बरकरार रखा गया। रावी –व्यास ट्रिब्यूनल (इराडी आयोग) 1986 के अनुसार, पंजाब को 50 लाख एकड़ फीट और हरियाणा को 38.30 लाख एकड़ फीट पानी देने की सिफारिश की, जबकि हरियाणा 56 लाख एकड़ फीट पानी की माँग कर रहा था। इराडी आयोग को अब उच्चतम न्यायालय में चुनौती भी नहीं दी जा सकती, क्योंकि अन्तर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम 1956 की धारा 11 के तहत ट्रिब्यूनल को सौंपे गये और उस पर ट्रिब्यूनल की सिफारिश से सम्बद्ध जल विवाद उच्चतम न्यायालय या किसी भी अदालत के दायरे में नहीं आते हैं।

लेकिन फिर भी विवाद यथावत् है। सतलज–यमुना लिंक नहर विवादों के कारण अभी तक पूर्ण नहीं हो पायी है और रावी–व्यास नदियों को हजारों एकड़ पानी पाकिस्तान जा रहा है। उधर लिंक नहर नहीं बन पाने के कारण दक्षिणी हरियाणा के किसानों की जमीन बंजड होती जा रही है।

4. यमुना जल विवाद

यह विवाद देश के पाँच राज्यों हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली और हिमाचल प्रदेश से जुड़ा हुआ है। सबसे पहले यमुना जल समझौता 1954 में उत्तर प्रदेश और हरियाणा के मध्य हुआ था, जिसमें यमुना जल का 77 प्रतिशत हिस्सा हरियाणा को तथा 23 प्रतिशत भाग उत्तर प्रदेश को निर्धारित किया गया। 20–25 वर्षों बाद हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान भी यमुना जल की मांग करने लगे।

12 मई, 1994 को तत्कालीन जल संसाधन मंत्री विद्याचरण शुक्ल ने इन पाँचों राज्यों के मध्य एक समझौता करवाया, जिसके तहत हीरयाणा को 47.82 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश को 33.65 प्रतिशत, राजस्थान को 9.34 प्रतिशत, दिल्ली को 6.24 प्रतिशत तथा हिमाचल प्रदेश को 3.15 प्रतिशत जल प्राप्त होगा। यह समझौता 2025 तक जारी रहेगा।

22 मार्च, 1995 को ऊपरी यमुना नदी बोर्ड का गठन किया गया। 12 मई, 1994 की धारा 7 (3) में यह प्रावधान है कि यति यमुना नदी में कभी जल की आपूर्ति हुई तो सबसे पहले दिल्ली को जलापूर्ति की जायेगी। इस धारा पर इन राज्यों में कई बार विवाद खड़ा हो चुका है।

5. सोन–रिहन्द जल विवाद

यह विवाद तीन राज्यों बिहार, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के मध्य है। इस विवाद के हल के लिए 1973 में बाणसागर समझौता हुआ था, जिसमें बिहार ने मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश पर समझौते के उल्लंघन का आरोप लगाया। इस समझौते के अनुसार रिहन्द नदी का पूरा पानी बिहार को आवंटित किया गया था, किन्तु केन्द्र सरकार का उपक्रम राष्ट्रीय तापीय विद्युत कॉपोरशन (N.T.P.C.) और उत्तर प्रदेश सरकार रिहन्द जलाशय से पानी का उपयोग कर रही है, जिससे बिहार को पर्याप्त पानी नहीं मिल पा रहा और किसानों की 22 लाख एकड़ भूमि पर फसलें सूख जाती हैं।

6. माही जल

माही जल के उपयोग हेतु राजस्थान और गुजरात के मध्य 1996 में राजस्थान एवं गुजरात के माही जल द्वारा सिंचित क्षेत्र, नर्मदा परियोजना पर अन्तरकण कर दिये जायेंगे, तब कड़ाना बांध के जल का एक भाग एवं बांसवाड़ा बांध (माही बजाज सागर) का जल राजस्थान में उपयोग हेतु छोड़ा जायेगा। गुजरात सरकार अब इस अनुबन्ध की पूर्ण क्रियान्विति में आनाकानी कर रही है। प्रकरण को सुलझाने हेतु राजस्थान सरकार के अनुरोध पर केन्द्रीय कृषि एवं सिंचाई मंत्री ने 24–01–1980 को दोनों राज्यों के मुख्यमंत्रियों की एक बैठक आयोजित की, तत्पश्चात् मसले के निराकरण के लिए मन्त्री एवं अधिकारी स्तर पर पारस्परिक एवं केन्द्रीय सरकार के तत्वाधान में अनेक बैठकें हुईं इस विषय में मुख्यमंत्री ने 16–08–1996 को गुजरात के मुख्यमंत्री को पत्र द्वारा प्रकरण को शीघ्र निपटाने का आग्रह किया है।

7. नर्मदा परियोजना

नर्मदा जल विवाद न्यायाधिकरण के अन्तिम आदेश तथा निर्णय के अनुसार, नर्मदा जल में राजस्थान का हिस्सा 0.50 एम. ए. एफ. है। यह जल सरदार सरोवर बांध गुजरात से नर्मदा मुख्य नहर, जिसकी लम्बाई गुजरात में 460 किमी है, जिसके द्वारा राजस्थान में लाना

प्रस्तावित है। इस जल से जालौर जिले की सांचौर तहसील के 74 ग्राम एवं बाड़मेर जिले की गुढ़ामालानी तहसील के 15 ग्राम का 1.35 लाख हैक्टेयर क्षेत्र लाभानित होगा तथा नहर के आस –पास के 124 ग्रामों में पेयजल की आपूर्ति होगी। परियोजना की अनुमानित लागत वर्ष 1989 – 90 के मूल्य सूचकांक पर 467.53 करोड़ रुपए है, जिसमें से राज़स्थान में किये जाने वाले कार्यो की लागत 187.39 करोड़ रुपये एवं गुजरात को देय हिस्सा राशि 280.14 करोड़ रुपये है। योजना आयोग ने इस परियोजना की राशि व्यय करने की अनुमति 23 –01–1996 को प्रदान कर दी है। गुजरात–राजस्थान सीमा पर जल की उपलब्धि नर्मदा मुख्य नहर से होगी। राजस्थान में परियोजना के निर्माण में 8 वर्ष लगने का अनुमान है। राजस्थान राज्य में मुख्य नहर की कुल 74 किलोमीटर लम्बाई में से प्रथम 30 किलोमीटर लम्बाई में मिट्टी खुदाई, पुल निर्माण, रेगुलेटर निर्माण आदि पक्के कार्यों के अतिरिक्त मुख्य नहर के 8 किलोमीटर से निकलने वाली वांक वितरिका पर मिट्टी खुदाई एवं पक्के कार्यो का निर्माण प्रगति पर है। मुख्य नहर के साथ प्रथम 30 किलोमीटर लम्बी सड़क –निर्माण का कार्य भी प्रगति पर है। जालौर एवं सांचौर स्थित आवासीय एवं गैर–आवासीय भवनों का निर्माण भी पूर्ण हो चुका है। सुकडी नदी पर साइफन निर्माण के कार्य को भी इस वित्तीय वर्ष में प्रारम्भ किया जाना प्रस्तावित है।

वर्ष 1995–96 के अन्त तक इस योजना पर कुल 7464 लाख रुपये व्यय हो चुके हैं, जिसमें गुजरात में निर्मित सरदार परियोजना तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित तंत्र (1) नर्मदा नियन्त्रण प्राधिकरण, (2) सरदार सरोवर निर्माण सलाहकार समिति के हिस्से की राशि सम्मिलित है। राज्य सरकार के कार्यों पर वर्ष 1996–97 में 13 करोड रुपये व्यय किये जाने का प्रावधान था।

8. रावी–व्यास विवाद

रावी–व्यास के अधिकांश जल के वितरण के लिए जनवरी 1955 तथा दिसम्बर 1981 में समझौते हुए हैं। इन समझौता के अनुसार रावी –व्यास नदियों के अधिशेष जल का सम्बन्धित राज्यों में बंटवारा किया गया है। इस जल के सम्बन्ध में निम्नलिखित अन्तर्राज्यीय विवाद चल रहे हैं

(अ) रोपड़ हरिके तथा फिरोजपुर के हैड वर्क्स को नियन्त्रण पंजाब पुनर्गठन एक्ट के अनुसार भाखड़ा व्यास मैनेजमेंट बोर्ड को स्थानान्तरित करने हेतु

पंजाब पुनर्गठन अधिनियम 1996 के प्रावधानों के अनुसार रोपड़ हरिके एवं फिरोजपुर के हैड वर्क्स का नियन्त्रण भाखड़ा व्यास मैनेजमेंट बौर्ड (बी.बी.एम.बी.) के पास होना चाहिए। अभी तक पंजाब सरकार ने हैड वर्क्स का नियन्त्रण उक्त बोर्ड को हस्तान्तरित नहीं किया है अत: केन्द्रीय सरकार द्वारा पंजाब सरकार को इस हेतु दिशा–निर्देश दिये जाने हैं। प्रकरण पर 29–30–7 –1992 एवं 6–8–1992 को केन्द्रीय जल संसाधन मन्त्री द्वारा पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान के मुख्यमंत्रियों की बैठक में विचार–विमर्श हुआ, जिसमें भी राजस्थान ने हैड –वर्क्स का नियन्त्रण बी .बी .एस. बी. को हस्तान्तीरत करने पर जोर दिया। इस बैठक के पश्चात केन्द्रीय जल संसाधन मन्त्री ने राज्य सरकार को इस विषय में निर्णय का प्रारूप प्रेषित किया, जिसके अनुसार बी बी.एम बी. के सदस्य के पद पर तीनों राज्यों को बारी–बारी से लगाना था, अत: इस व्यवस्था के कारण हैड वर्क्स का नियन्त्रण बी .बी .एस .बी. को स्थानान्तरित करने की आवश्यकता नहीं है। राज्य सरकार ने दिनांक 23–01–1993 को केन्द्रीय जल संसाधन मन्त्री को पत्र भेजा, जिसमें कहा गया कि हैड वर्क्स का नियन्त्रण बी .बी. एस. बी. को सौंपना पंजाब पुनर्गठन अधिनियम

1966 के अन्तर्गत निहित है, अत: इसमें बदलाव की कोई आवश्यकता नहीं है। राज्य सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में केन्द्र सरकार की अगली बैठक आयोजित करने के लिए अनुरोध किया जा रहा है।

(ब) पंजाब में रावी–व्यास नदियों पर विद्युत परियोजनाओं में राज्य का हिस्सा

10 मई, 1984 को हुए अनुबन्ध के अनुसार थीन, आनन्दपुर साहिब, मुकेरिया, शाहपुर, कण्डी तथा डी .सी. 11 परियोजनाओं से विद्युत उत्पादन में राजस्थान एवं हरियाणा के हिस्सों के विषय में केन्द्र सरकार को सर्वोच्च में प्रस्तुत नहीं किया है।

राजस्थान सरकार के बारम्बार अनुरोध पर केन्द्रीय संसाधन मन्त्री ने, राज्यों के मुख्यमंत्रियों की 29–30 / 7 / 1992 एवं 6 / 8 /1992 को बैठकें आयोजित कीं, तत्पश्चात् निर्णय का प्रारूप सम्बन्धित राज्य सरकारों को प्रेषित किया गया, जिसके अनुसार प्रकरण को उच्चतम न्यायालय में नहीं ले जाने का प्रस्ताव है। यह प्रस्ताव राज्य सरकार को मान्य नहीं था अत: 4 – 2 – 1993 को केन्द्रीय जल संसाधन मन्त्री को पत्र भेजा, जिसमें कहा गया कि हैड वर्क्स का नियन्त्रण बी .बी .एस. बी. को सौंपकर पंजाब पुनर्गठन अधिनियम 1966 के अन्तर्गत निहित है, अत: इसमें बदलाव की कोई आवश्यकता नहीं है। राज्य सरकार द्वारा। इस सम्बन्ध में केन्द्र सरकार को अगली बैठक आयोजित करने के लिए अनुरोध किया।

(स) व्याख्या एवं भागीदारी राज्यों में रावी–व्यास जल के बंटवारे का क्रियान्वयन

अधिशेष राव व्यास जल में 1981 के अनुबन्ध के अनुसार राजस्थान का हिस्सा 8.6 एम. ए .एफ., जो पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में वितरित किये जाने वाले कुल जल का 52.70 प्रतिशत है, किन्तु 198 मे हुए अनुबन्ध के अनुच्छेदों की गलत व्याख्या करके राज्यों को तदर्थ रूप में 49 प्रतिशत जल ही दिया जा रहा है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय जल संसाधन मंत्री ने पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान के मुख्यमंत्रियों की 29– 30/7/,1992 एवं 6/8/1992 की बैठकें आयोजित की, जिसके उपरान्त इस प्रकरण में लिये गये निर्णय का प्रारूप राज्य सरकार को प्रेषित किया, जो कि राज्य सरकार को स्वीकार्य है।

3.8 राष्ट्रीय जल नीति

राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद् द्वारा 1 अप्रैल, 2002 को आम सहमति से राष्ट्रीय जल नीति 2002 को स्वीकृति प्रदान की गई है, जिसमें जल संसाधनों के समग्र प्रबंधन और विकास के उद्देश्य से संस्थागत उपाय करने के साथ साथ नदी जल और नदी भूमि सम्बन्धी अतिरिक्त विवादों के समाधान के लिए 'नदी बेसिन संगठन' गठित करने पर बल दिया गया है। संशोधित जल नीति, 2002 जो 1987 की जल नीति का स्थान लेगी, इसमें सबके लिए पेयजल की व्यवस्था को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय जल विवाद को नई संशोधित नीति के दायरे से बाहर रखा गया है। नई नीति में जल के अधिकतम और पर्याप्त इस्तेमाल के लिए जल संसाधनों के विकास और प्रबन्धन के एकीकरण का दायित्व भी निर्धारित किया गया है। नई नीति के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में राज्यों से आग्रह भी किया गया है कि वे दो वर्ष में राष्ट्रीय जल नीति, 2002 के आधार पर अपने राज्य की जल नीति की कार्य योजना भी तैयार कर लें।

इस नीति में जल संसाधनों के उपयोग की प्राथमिकताएँ इस प्रकार तय की गई हैं

1. **प्रथम वरीयता** सभी नागरिकों के लिए पेयजल की उपलब्धता।
2. **द्वितीय वरीयता** सिंचाई के लिए जल व्यवस्था।
3. **तृतीय वरीयता** विद्युत उत्पादन हेतु जल कीं उपलब्धता।
4. **चौथी वरीयता** पारिस्थितिक सन्तुलन के लिए नदियों में एक निर्धारित सीमा तक निरन्तर जल प्रवाह बनाए रखना।
5. **पांचवीं वरीयता** उद्योगों तथा परिवहन के लिए जल का उपयोग।

पर्युक्त प्राथमिकताओं के बारे में नई जल नीति में यह भी प्रावधान रखा गया है कि राज्य अपनी प्राथमिकताओं के अनुरूप इसमें कही परिवर्तन कर सकते हैं।

राष्ट्रीय जल नीति के प्रमुख बिन्दु

जल को अतिविशिष्ट प्राकृतिक संसाधन, मानव की मूलभूत आवश्यकता तथा अमूल्य राष्ट्रीय निधि के रूढ़ में स्वीकार करते हुए जल संसाधन के नियोजन और विकास को सुनिश्चित करने के अहम् उद्देश्यों के साथ वर्ष 1987 में देश की 'राष्ट्रीय जल नीति' घोषित की गई, जिसे वर्ष 2002 में संशोधित किया गया है। नई नीति के अनुसार, जल को विभिन्न स्रोतों, क्षेत्रों अथवा राज्यों की सीमाओं में विभाजित न होने वाला संसाधन माना गया है, जी एक विशाल परिस्थिति की तन्त्र का एक भाग भी है। हमारी राष्ट्रीय जल नीति के प्रमुख बिन्दु एवं मार्गदर्शक सिद्धान्त निम्नलिखित हैं

1. देश में उपलब्ध जल संसाधनों के अधिकतम और उपयुक्त उपयोग को सुनिश्चित करने हेतु उपयुक्त प्रकार के संगठनों और इकाइयों को स्थापित करना।
2. जल संसाधन विकास के अन्तर्गत जल का चक्रीकरण तथा पुनप्रयोग एक आवश्यक पहलू समझा जाना और इसे प्राथमिकता प्रदान करना।
3. जल के भण्डार / बांधों तथा अन्य स्तृक्तुर्स की सुरक्षा व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरों पर समुचित संगठनात्मक प्रबन्ध किया जाना तथा एक निश्चित एवं निर्धारित अवधि में उनकी विशेषज्ञों के माध्यम से समीक्षा का प्रबन्ध किया जाना।
4. देश में उपलब्ध जल संसाधनों को राष्ट्रीय सन्दर्भों में विकसित करने, संरक्षित करने तथा इसके समुचित उपयोग और प्रबन्धन के लिए सभी आवश्यक कदम उठाने पर बल देना।
5. जल संसाधनों के विकास से सम्बन्धित परियोजनाओं का सम्बन्धित क्षेत्रों में वहाँ के मानव जीवन, मानव बस्तियों, मानव व्यवसाय के साथ –साथ आर्थिक एवं सामाजिक विकास आदि पर उनके पड़ने वाले प्रभावों रख पर्यावरण, पारिस्थितकी सन्तुलन तथा स्थानिक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखकर उन्हें अन्तिम रूप प्रदान करना।
6. भूमिगत जल का उपयोग इस तरह तथा इस सीमा तक सुनिश्चित किया जाना, जिसमें उसके रिचार्जिंग की अधिक से अधिक सम्भावनाएँ रहें, जिससे उसे अधिक से अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सके।
7. जल की गुणवत्ता तथा आर्थिक रूप से लाभ लागत विश्लेषण को भी ध्यान में रखते हुए भूमिगत जल संसाधनों का वैज्ञानिक रीति से तथा निश्चित अन्तराल पर आकलन किया जाना।

8. जल विकास की परियोजनाओं को विशेष रूप से जनजातीय क्षेत्रों, अनुसूचित जातियों तथा अन्य निर्बल वर्ग बहुल क्षेत्रों में लगाने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
9. जल संसाधनों के विकास से सम्बन्धित परियोजनाओं को बहु उद्देश्य परियोजनाओं के रूप में नियोजित और विकसित करने का प्रयास करना तथा पेयजल की व्यवस्था को प्राथमिकता देना।
10. देश के विविध क्षेत्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर जल की कमी वाले क्षेत्रों में दूसरे क्षेत्रों से जल अन्तरण करने' का समुचित प्रबन्ध करना।
11. देश के विभिन्न भागों में जल के उचित उपयोग को सुनिश्चित करने तथा जल के सीमित संसाधन सम्बन्धी जानकारी को सभी लोगों को प्रदान करने के लिए जन–जागरण अभियान चलाया जाना तथा जल संरक्षण की भावना को विकसित करने हेतु शिक्षा, कानून, पारितोषिक तथा दण्ड का सहारा लिया जाना।
12. देश में जल क्षेत्रों की पहचान कर उन्हें समुचित रूप से वर्गीकृत करके उनके आधार पर ही जल की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए क्षेत्र विशेष में आर्थिक गतिविधियाँ जैसे कृषि, उद्योग तथा शहरी विकास की योजनाएँ बनाया जाना और उन्हें क्रियान्वित किया जाना।
13. जल नीति में जल संसाधनों के नियोजन, विकास और उपयोग में प्राथमिकताएँ, पेयजल, सिंचाई, विद्युत उत्पादन, नदी जल– प्रवाह बनाए रखना तथा औद्योगिक व परिवहन आदि के क्रम में निर्धारण करना।
14. सतही तथा भूमिगत दोनों प्रकार के जल की गुणवत्ता की नियमित समीक्षा की व्यवस्था करना और तदनुसार इसकी गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु कार्यक्रमों को चरणबद्ध रूप से चलाया जाना।
15. देश में जल संसाधन विकास के लिए एक नियमित एवं सुव्यवस्थित दीर्घकालीन प्रशिक्षण व्यवस्था को अपनाया जाना।
16. बाढ़ सहायता पर नियमित रूप से किए जाने वाले भार को कम करने हेतु देश के विभिन्न भागों में प्रत्येक बाढ़ सम्भावित क्षेत्र के लिए बाड नियन्त्रण और प्रबन्धन के लिए 'मास्टर प्लान ' बनाने की आवश्यकता पर बल दिया जाना।

बोध प्रश्न– 2

1. राष्ट्रीय जल ग्रिड का विचार किसने दिया?

   ....

   ....

2. गारलैण्ड योजना क्या है?

   ....

   ....

3. कावेरी जल विवाद क्या है?

   ....

   ....

4. नदी संगम योजना की रूपरेखा बताइये।

....

....

5. भारत की जल नीति में किस क्षेत्र को प्राथमिकता दी गई है?

....

....

3.9 सारांश (Summary)

भारत में अपवाह तंत्र एवं जन संसाधन की भौगोलिक विवेचना इसकी उपलब्धता एवं स्वरूप के आधार पर की गयी है, जिसमें सतही जल का वितरण मुख्यत : नदी बेसिनों के रूप में किया गया है। भारत में विगत पाँच दशकों में जल संसाधन की स्थिति चिन्ताजनक हुई है। ऐसे में सतही एवं भूजल की उपलब्धता उपयोग एवं भविष्य का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि भारत की अधिकांश गतिविधियाँ प्रत्यक्षतः : जल संसाधन से जुड़ी है, जिनमें कृषि एवं पशुपालन प्रमुख हैं। हमारे देश में भविष्य में जल की उपलब्धता बनाये रखने में राष्ट्रीय जल ग्रिड एवं नदी संगम योजना की भी महती भूमिका होगी, जिस पर वर्तमान में कार्य प्रारम्भ किया जा चुका है।

3.10 शब्दावली (Glossary)

- **अपवाह तंत्र (Drainage System) :** किसी भी भौगोलिक प्रदेश में मुख्य नदी एवं उसकी सहायक नदियों का जाल अपवाह तंत्र कहलाता है।
- **अपवाह प्रतिरूप (Drainage Pattern) :** किसी भी क्षेत्र में प्रवाहित नदी तंत्रों का ज्यायमितीय विन्यास (Geometric Layout) या व्यवस्थापन (Arrangement) अपवाह प्रतिरूप कहलाता है।
- **भूजल (Ground Water) :** सतह से निस्पन्दन (Seepage) एवं अन्त :स्रवण (Infiltration) द्वारा जल का भूमिगत होकर जलभूतों (Aquifers) में जमा होने के बाद उसे भूजल कहते हैं।
- **राष्ट्रीय जल ग्रिड (National Water Grid) :** भारत की नदियों को जोड़ने के लिए के. एल. राव द्वारा बनायी गई योजना, जिसमें गंगा को कावेरी से जोड़ना प्रस्तावित था।

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Sing, Gopal (2001), Advanced Geography of India, Atma and Son’s, New Delhi.
2. गुर्जर, आर. के. (जै जाट. बी. सी. (2007), भारत का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
3. Gurjar, R.K. and Jat, B.C.(2008), Geography of Water Resources, Rawat Publication, Jaipur
4. तिवारी, आ. सी. (2008), भारत का भूगोल, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर

5. बंसल, एस. सी. (2001), भारत का भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
6. राष्ट्रीय जल नीति (2002), जल संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
7. भारत 2009 (2009), प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली

3.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. अपवाह प्रतिरूप किसी नदी तंत्र की नदियों का व्यवस्थान होता है।
2. 14
3. यमुना, घाघरा, गंडक, कोसी, सोन, केन, बेतवा।
4. प्रपाती है तथा सदावाही न होकर वर्षाकालीन अधिक है।
5. कृषिका अधिक भार एवं सतही जल की कमी।

बोध प्रश्न–2

1. के. एल. राव ने।'
2. केप्टेन दस्तूर ने दी थी, जिसमें हिमालयी नदियों को 4200 किमी. लम्बी मालाकार नहर बनाकर जोड़ना प्रस्तावित था।
3. कर्नाटक एवं तमिलनाडु के मध्य कावेरी जल बंटवारे का विवाद।
4. भारत की नदियों को 53 नदी सनम बनाकर जोड़ने की योजना है।
5. पेयजल को।

3.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत के जल संसाधनों का विस्तृत विवरण दीजिए।
2. भारत को प्रमुख नदी बेसिनों में विभाजित कीजिए तथा उनका वर्णन कीजिए।
3. राष्ट्रीय जल ग्रिड का सचित्र वर्णन कीजिए।
4. भारत के प्रमुख अन्तर्राज्यीय जल विवादों का विवरण दीजिए।
5. भारत की राष्टीय जल नीति बताइये।

इकाई 4: प्रमुख नदी घाटी पीरयोजनाऐं एवं जल संसाधनों का संरक्षण (Major River Valley Projects and Conservation of Water Resources)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 प्रमुख नदी घाटी पीरयोजनाऐं
4.2.1 दामोदर नदी घाटी पीरयोजना
4.2.2 चम्बल परियोजना
4.2.3 इन्दिरा गांधी नहर परियोजना
4.2.3.1 परियोजना के प्रभाव
4.3 जल संसाधनों का संरक्षण
4.3.1 बाढ़ और जल संरक्षण
4.3.2 राष्ट्रीय जल ग्रिड
4.4.2.1 गंगा–कावेरी लिंक
4.4.2.2 नर्मदा – लिंक
4.4.2.3 चम्बल लिंक
4.4.2.4 ब्रह्मपुत्र–गंगा लिंक
4.4.2.5 पश्चिमी घाट की नदियों को पूर्वी घाट की नदियों के साथ संयोजन
4.4.2.6 जल संरक्षण के अन्य उपाय
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 संदर्भ ग्रन्थ
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे –

- नदी घाटी परियोजनाओं से सिंचाई,
- कृषि, उद्योग एवं जल विद्युत का विकास,
- जल संसाधनों के प्रबन्धन एवं संरक्षण की राष्ट्रीय जल नीति,
- बाढ़ नियन्त्रण एवं उनके जल के अनुकूलतम–उपयोग के उपाय,
- राष्ट्रीय जल ग्रिड (National Water Grid) के उद्देश्य एवं कार्य योजना।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत को त्वरित सामाजिक आर्थिक विकास के लिए ऐसी नदी घाटी योजनाओं की आवश्यकता थी जिनसे सिंचाई, विद्युत, बाढ नियन्त्रण, मछली पालन, औद्योगिक विकास इत्यादि कई उद्देश्यों कीं एक साथ पूर्ति हो सके। इस दिशा में जल संसाधनों का वैज्ञानिक प्रबन्धन एक महत्वपूर्ण कदम था अत : संयुक्त राज्य अमेरिका की टैनेसी घाटी परियोजना के प्रतिरूप देश की प्रमुख नदी घाटियों में बहुउद्देश्यीय पारेयोजनाऐं स्थापित करने का निश्चय किया गया।

यह कार्य बहुत उल्लेखनीय था लेकिन घनाभाव तथा अन्य स्थानीय व्यवधानों से इस कार्य में आगे चलकर बाधाएँ आने लगी। परिणामस्वरूप इन परियोजनाओं पर कहीं पूरे तथा कहीं अधूरे कार्य हुए।

4.2 प्रमुख नदी घाटी परियोजनाऐं (Major River Valley Projects)

बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओं को प्रबन्ध एवं व्यवस्था के आधार पर दो भागों में रखा जाता है – (i) दामोदर घाटी, हीराकुण्ड, रिहन्द, भाखड़ा नांगल, कोसी आदि केन्द्र सरकार की महती नदी घाटी पीरयोजनाऐं हैं और (ii) केन्द्र सरकार की मदद से जिन परियोजनाओं को राज्य सरकार पूरा करती है वे राज्य सरकारों के अन्तर्गत आती है जैसे गाँधी नहर (राजस्थान), चंबल (मध्यप्रदेश – राजस्थान की संयुक्त), व्यास (पंजाब, हरियाणा–राजस्थान) नागार्जुन सागर (प्रदेश) आदि विशेष उल्लेखनीय है।

4.2.1 दामोदर घाटी परियोजना (D.V.C.)

यह भारत की महत्वपूर्ण बहुउद्देशीय परियोजना है। दामोदर नदी झारखण्ड राज्य के छोटा नागपुर पठार (पलामू जिला) की 610 मीटर ऊँची पहाड़ियों से निकलती है। यह नदी इस राज्य में 290 कि.मी. प्रवाहित होती हुई पश्चिम बंगाल राज्य में प्रवेश करती है। इस राज्य में यह 240 कि मी. की दूरी तय करती हुई कोलकाता से 50 कि मी. दक्षिण में हुगली नदी में मिल जाती है। इस नदी की ऊपरी घाटी झारखण्ड राज्य के पलामू रांची, सिंहभूम, हजारीबाग तथा संथाल परगना जिलों में तथा निचली घाटी पश्चिम बंगाल के वर्द्धमान, बांकुड़ा, हाकड़ा तथा मिदनापुर जिलों में विस्तृत है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ जमुनिया, कोनार, बोकारो तथा बराकर हैं। इस नदी की घाटी में वर्षा श्रृतु अत्याधिक वर्षा होती है जिसके कारण प्राय : भयंकर बाड़े आती हैं। इसलिए इन राज्यों में इसे बंगाल की शोक नदी (Sorrow of Bengal) भी कहते हैं। यह नदी बड़ी मात्रा में मृदा अपरदन भी करती है। बाढ़ से लगभग 18 हजार वर्ग कि .मी. क्षेत्र तबाह हो जाता है। नदी की बाढ़ से होने वाली अपार धन –जन की हानि को देखते हुए भारत सरकार ने सन् 1948 में दामोदर घाटी निगम (D.V.A) की स्थापना की। इस निगम के माध्यम से सरकार का मुख्य उद्देश्य एक ऐसी बहुउद्देषीय योजना का कार्यान्वयन करना था, जिससे झारखण्ड राज्य और पश्चिम बंगाल के दामोदर घाटी क्षेत्र का आर्थिक विकास हो सके तथा यहां के लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठ सके। दामोदर घाटी क्षेत्र खनिज सम्पदा की दृष्टि से भी बहुत धनी है। देश के कुल लोहा तथा

कोयला भण्डार का 90%' से अधिक, अभ्रक तथा क्रोमाइट भंडार का 70% से अधिक तथा मैंगनीज भण्डार का 10% से अधिक यहां संचित है। इन संसाधनों के उचित दोहन हेतु दामोदर घाटी योजना को संयुक्त राज्य अमेरिका की टैनेसी घाटी योजना (TAV) के आधार पर विकसित करने का निर्णय लिया गया। इस बहुउद्देशीय योजना के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार थे : –

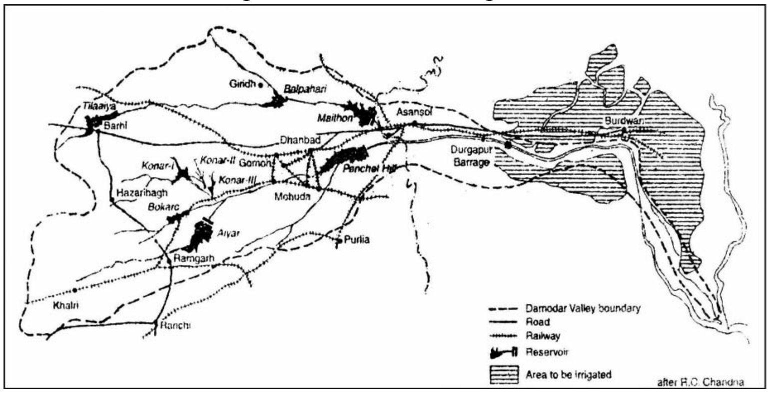

चित्र – 4.1: दामोदर घाटी परियोजना

1. दामोदर तथा उसकी सहायक नदियों पर बांध बनाकर जल विद्युत उत्पादित करना।
2. ताप विद्युत केन्द्रों को विकसित कर उसे जल विद्युत केन्द्रों से ग्रिड द्वारा जोड़ कर संगठित करना।
3. बाढ़ पर नियंत्रण करना।
4. भूमि अपरदन पर नियंत्रण करना।
5. सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण करना।
6. औद्योगिक तथा ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत आपूर्ति करना।
7. जल परिवहन की सुविधा प्रदान करना।
8. मत्स्य उद्योग को प्रोत्साहित करना।
9. वन क्षेत्रों में वृद्धि करना।
10. मलेरिया का नियंत्रण करना।
11. आमोद –प्रमोद की सुविधा बढ़ाना आदि।

इस परियोजना के अर्न्तगत दामोदर घाटी में आठ बांध एवं एक अवरोधक (barrage) बांध 'बनाने का प्रावधान किया गया। इन बांधों से जल विद्युत उत्पन्न करने के अतिरिक्त बोकारो, चन्द्रपुर तथा दुर्गापुर में तापीय विद्युत गृह स्थापित करने का भी निर्णय लिया गया। सिंचाई के साधनों को विकसित करने के लिए नहर–निर्माण का प्रावधान किया गया। आर्थिक एवं तकनीकी कारणों से इस परियोजना को पूरा करने के लिए दो चरणों में बांटा गया, जो कार्य पूरा हुआ उसका विवरण इस प्रकार है –

(i) **तिलैया बाँध (Tilaiya Dam) –** यह बाँध झारखण्ड राज्य के हजारीबाग जिले में दामोदर नदी की सहायक बराकर नदी के ऊपरी भाग में निर्मित किया गया है। इसका निर्माण सर 1953 में किया गया। यह कोडरमा रेलवे स्टेशन के दक्षिण में 22 कि .मी. दूरी पर है। इस बांध की ऊँचाई 33 मीटर तथा लम्बाई 320 मीटर है। इस बांध द्वारा निर्मित जलाशय में 395 लाख घन मीटर जल संचित किया जा सकता है। इस जल का उपयोग बिजली उत्पादन

तथा सिंचाई के लिए किया जाता है। इस बाँध के निकट एक जल विद्युत शक्ति गृह की स्थापना की गयी है। इसकी उत्पादन क्षमता 60 हजार किलोवाट है। यहाँ की बिजली कोडरमा और हजारीबाग की अभ्रक खानों को दी जाती है और तिलैया बाँध से लगभग 75, 000 हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(ii) **कोनार बाँध (Konar Dam) –** इस बाँध का निर्माण दामोदर की सहायक कोनार नदी पर सन् 1955 ई. में किया गया। इस बाद की लम्बाई 885 मीटर तथा ऊँचाई 48 मीटर है। इस बाँध द्वारा निर्मित जलाशय में 337 लाख घन मीटर जल संचित किया जा सकता है। इससे 40 हजार किलोवाट से अधिक बिजली पैदा की जाती है। ब्रोकारो नगर इस विद्युत का सबसे बड़ा उपभोक्ता है। इस बाँध से 40 हजार हेक्टेयर भूमि की सिंचाई भी होने लगी है।

(iii) **अय्यर बाँध (Aiyar Dam) –** यह बाँध दामोदर नदी पर बनाया गया है। इस बाँध के निकट एक जल विद्युत शक्ति गृह स्थापित किया गया है, जिसकी कुल विद्युत उत्पादन क्षमता 45 हजार किलोवाट है।

(iv) **बर्मो बाँध. (Burmo Dam)** – इस बाँध का निर्माण भी दामोदर नदी पर किया गया है।। इस बाँध पर जल विद्युत गृह तथा एक लाख किलोवाट की तापीय विद्युत गृह इकाइयों को स्थापित किया गया है।

(v) **पंचेत पहाड़ी बाँध (Panchet Hill Dam)** – यह बाँध मानभूम जिले में दामोदर नदी पर बनाया गया है। यह 2550 मीटर लम्बा तथा 40 मीटर ऊँचा है। इस बांध द्वारा निर्मित जलाशय में जल संग्रहण क्षमता 1497 लाख घन मीटर है। इस बांध के निकट 40 हजार किलोवाट क्षमता का जल विधुत गृह स्थापित किया गया है। इससे लगभग 3 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(vi) **बाल पहाड़ी बाँध (Ball Hill Dam) –** यह बाँध बराकर नदी पर बनाया गया है। यह गिरिडीह के दक्षिण–पूर्व में स्थित है। इस बाँध के निकट 20 हजार किलोवाट की क्षमता का एक जल विद्युत गृह स्थापित किया गया है।

(vii) **बोकारो बाँध (Bokaro Dam) –** इस बाँध का निर्माण बोकारो नदी पर किया गया है। इसके निकट ही एक विद्युत गृह भी स्थापित किया गया है।

(viii) **मैथान बाँध (Maithan Dam)** – यह बाँध सर 1958 ई. में झारखण्ड राज्य के धनबाद जिले में बराकर नदी पर बनाया गया है। यह बराकर और दामोदर नदी के संगम के निकट स्थित है जो आसनसोल से 25 किमी. उत्तर में पड़ता है। इस बाँध की लम्बाई 4357 मीटर तथा ऊँचाई 56 मीटर है। इस बाँध से निर्मित जलाशय में जल संग्रहण क्षमता 1357 लाख घन मीटर है। इसके जल से 1.5 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई होती है। बाँध के निकट 60 हजार किलोवाट क्षमता वाला एक जल विद्युत गृह भी बनाया गया है। यहां से विद्युत का वितरण सिन्द्री, चितरंजम आदि औद्योगिक क्षेत्रों को किया जाता है।

(ix) **दुर्गापुर अवरोधक (Durgapur Barrage) –** इसका निर्माण सर 1955 ई. में किया गया। यह अवरोधक दामोदर नदी पर दुर्गापुर के निकट बनाया गया है। इसकी लम्बाई 693 मीटर तथा ऊँचाई 17 मीटर है। इस अवरोधक पर निर्मित जलाशय से लगभग 4 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जायेगी। इसके दोनों तरफ 249.5 कि मी. लम्बी दो नहरें निकाली गयी हैं। इन नहरों से बर्द्धमान, हावड़ा, हु गली और बाकुड़ा जिलों में लगभग 417 हजार हेक्टेयर

भूमि की सिंचाई की जाती है। बायी तरफ की नहर का उपयोग आन्तरिक जल पीरवहन के लिए भी किया जाता है।

(x) **बोकारो तापीय विद्युत गृह (Bokaro Thermal Power Station) –** इस विद्युत गृह की स्थापना सन् 1955 ई. में की गयी है। यह विद्युत गृह हजारी बाग जिले में बोकारो नामक स्थान पर बनाया गया है। इसकी विद्युत क्षमता 150 मेगावाट है। सर 1967 में 75 मेगावाट विद्युत क्षमता की एक और इकाई की स्थापना की गयी है। इसके कारण इसकी क्षमता में और वृद्धि हो गयी है।

(xi) **चन्द्रपुरा तापीय विद्युत गृह (Chandrapur Thermal Power Station) –** यह विद्युत गृह भी हजारीबाग जिले में चन्द्रपुरा नामक स्थान पर स्थापित किया गया है। यह कोलकाता से 306 कि .मी. की दूरी पर है। यहाँ पर चार विद्युत इकाइयां लगाई गई हैं। प्रत्येक इकाई की विद्युत उत्पादन क्षमता 140 मेगावाट है '

(xii) **दुर्गापुर तापीय विद्युत गृह (Durgapur Thermal Power Station) –** यह विद्युत गृह बर्द्धमान जिले में ओंगारिया रेलवे स्टेशन के पास दुर्गापुर नामक स्थान पर स्थापित किया गया है। यह कोलकाता से 161 कि. मी, की दूरी पर है। यहाँ पर 290 मेगावाट क्षमता की चार इकाइयां संचालित हैं।

दामोदर घाटी परियोजना के क्रियान्वयन से दामोदर घाटी तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में निम्नांकित लाभ हुआ हुए हैं –

(1) दामोदर घाटी में प्राय : बाढ़ आती रहती थी। इस परियोजना के क्रियान्वयन से दामोदर और उसकी सहायक नदियों के बाढ़ को बड़ी सीमा तक नियंत्रित कर लिया गया है।

(2) दामोदर तथा उसकी सहायक नदियों पर बाँध बनाकर कृत्रिम जलाशय का निर्माण किया गया है। उस जल से दामोदर नदी घाटी के बहुत बड़े क्षेत्र (लगभग 4.2 लाख हेक्टेयर) में सिंचाई की सुविधायें प्रदान की गयी हैं। इससे फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुई है।

(3) नहरों को जल परिवहन के योग्य बनाया गया है। इसके कारण आन्तरिक भाग में जल परिवहन की सुविधायें सुलभ हुई हैं। कोलकाता तथा पश्चिमी बंगाल के कोयला क्षेत्रों के मध्य जल परिवहन किया जाता है इससे रानीगंज, झीरया, बोकारो तथा कर्णपुर आदि कोयला क्षेत्रों का विकास हुआ है।

(4) बांधों से निर्मित जलाशयों में मत्स्य पालन विकसित किया गया है।

(5) पर्यटन एवं मनोरंजन की सुविधायें भी विकसित हुई हैं।

(6) जल के उचित निष्कासन के परिणास्वरूप मलेरिया आदि रोगों का उन्मूलन हुआ है।

(7) दामोदर घाटी परियोजना की विद्युत उत्पादन की स्थापित क्षमता 1181 मेगावाट तथा 5. 15 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि को सिंचाई प्रदान करने की है। पूर्ण होने पर यह योजना झारखण्ड तथा पश्चिमी बंगाल के 24,235 वर्ग कि. मी. क्षेत्र में विस्तृत औद्योगिक क्षेत्र तथा पटना, गया, शाहाबाद (बिहार) एवं मेदिनापुर (पश्चिम बंगाल) जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों के सम्पूर्ण विकास में योग देगी।

(8) परियोजना के अन्य लाभों में (i) संग्रहण क्षेत्र में छोटे बाँध बनाकर अपरदन नियन्त्रण, (ii) नष्ट हुए वनों का पुनर्जनन, (iii) लाख उद्योग का विकास, (iv) मत्स्त पालन (aqua

culture) का विकास, (v) खनिज संसाधनों का दोहन तथा (vi) पर्यटन, कृषि तथा पशुपालन को प्रोत्साहन।

बोध प्रश्न –1

1. दामोदर घाटी परियोजना किस विदेशी परियोजना के नाम पर आधारित है?
....
....
2. दामोदर नदी का उद्गम स्त्रोत कहाँ से है?
....
....
3. दामोदर घाटी निगम (DVA) की स्थापना किस सन् में की गई?
....
....
4. तिलैया बाँध का निर्माण किस नदी पर हुआ है?
....
....
5. दामोदर घाटी की नहरों से जल परिवहन की सुविधा कहाँ उपलब्ध है?
....
....

4.2.2 चम्बल परियोजना (Chambal Project)

चम्बल नदी परियोजना मध्यप्रदेश तथा राजस्थान राज्यों की संयुक्त योजना है जिसे चम्बल नदी पर विकसित किया गया है। चम्बल राजस्थान एवं उत्तरी मध्यप्रदेश की एक महत्वपूर्ण नियतवाही नदी है जो मध्यप्रदेश में विंध्याचल पर्वत श्रेणी के उत्तरी ढालों (930 मीटर ऊँचाई) से निकल कर लगभग 320 कि .मी. उत्तर दिशा में बहकर इन्दौर तथा सीतामाऊ के निकट से होती हुई, मध्यप्रदेश में कुल 362 कि.मी. एक संकीर्ण एवं तीव्र ढाल वाली घाटी में बहती हुई चौरासीगढ़ (चित्रौडगढ़) के समीप कोटा में प्रवेश करती है। यहां तक नदी के तीव्र प्रवाह का लाभ उठाकर गांधी सागर, जवाहर सागर और कोटा बैराज बनाए गए हैं। यह नदी कोटा की सीमा में प्रवेश करने के बाद लगभग 60 कि.मी. तक संकरे एवं गहरे गार्ज में बहने के बाद मैदानी क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाती है।

परियोजना का प्रारूप – राज्य की सबसे बड़ी और नियतवाही चम्बल नदी पर यह बहुउद्देशीय परियोजना बाढ़ नियन्त्रण, जल विद्युत उत्पादन, पेयजल, सिंचाई, भूमि के कटाव को रोकने, मत्स्य पालन, वृक्षारोपण आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लगभग वर्ष 1950 के दशक में प्रारम्भ की गई। इसमें राजस्थान का 50% तक का हिस्सा है। यह परियोजना तीन चरणों में सम्पन्न हुई।

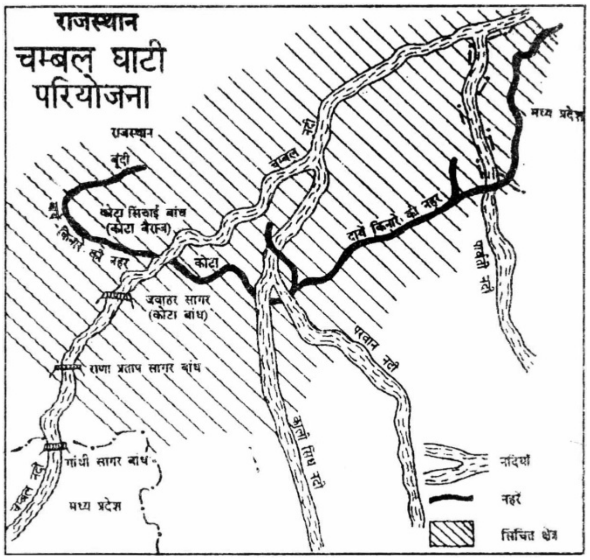

चित्र 4. 2 : चम्बल घाटी परियोजना

1. प्रथम चरण (I Stage)

(i) गाँधी सागर बाँध का 1959 में पूर्ण निर्माण

(ii) गाँधी सागर विद्युत गृह निर्माण– 115 हजार कि. वाट विद्युत क्षमता

(iii) कोटा सिंचाई बाँध का निर्माण 1960 में पूर्ण हुआ।

(iv) कोटा सिंचाई बाँध के दाँयी– बाँयी तरफ नहरों की व्यवस्था

2. द्वितीय चरण (II Stage)

(i) राणा प्रताप सागर बाँध का निर्माण

(ii) राणा प्रताप सागर विद्युत गृह का निर्माण

(iii) बाँध की भूमिगत टनल का निर्माण

3. तृतीय चरण (III Stage)

(i) जवाहर सागर बाँध का निर्माण

(ii) जवाहर सागर विद्युत गृह का निर्माण

प्रथम चरण (I Stage)

(i) **गाँधी सागर बाँध (Gandhi Sagar Dam)** – यह बाँध सन् 1959 में चम्बल नदी पर मध्य प्रदेश के मन्दसौर जिले में प्रसिद्ध चौरासीगढ किले से 8 किमी. नीचे मध्य प्रदेश एवं राजस्थान राज्यों की सीमा पर बनाया गया है। यह बाँध 514 मीटर लम्बा तथा 62 मीटर ऊँचा है –तथा इससे निर्मित जलाशय में 7700 लाख घन मीटर जल एकत्र किया जा सकता है। जल निकासी हेतु इस बाँध में 9 दरवाजे लगाये गये हैं। इस बाँध के दोनों किनारों से दो नहरें निकाली गयी है जिनसे लगभग 5 लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है। इस बाँध के निर्माण पर 1,400 करोड़ रूपये का परिव्यय हुआ है। बाँध के निकट ही 5 करोड़ रूपये की लागत से एक जल–विद्युत शक्ति गृह ' स्थापित किया गया है जिसमें 23,000 किलोवाट प्रति इकाई की क्षमता वाली 5 इकाइयाँ लगायी गयी है।

(ii) **कोटा अवरोधक (Kota Barrage)** – यह बाँध चम्बल नदी पर कोटा शहर से लगभग 1 किमी. उत्तर की ओर रावतभाटा के निकट नदी पर 438 मीटर लम्बा तथा 42 मीटर ऊँचा बनाया गया है। यह चम्बल नदी के जल प्रपातों की श्रृंखला का अन्तिम पड़ाव है। इसका प्रमुख उद्देश्य नदी के दाहिने एवं बाएँ किनारे से निकाली गयी नहरों की जल आपूर्ति करना है। इसके जलाशय में 11 लाख घन मीटर जल एकत्र किया जा सकता है। बाढ़ के जल की निकासी हेतु इस बाँध में 16 फाटक लगाये गये हैं। यह सर 1960 में बनकर तैयार हुआ है।

(iii) **नहरें (canals) –** कोटा अवरोधक बाँध के निकट से नदी के दोनों किनारों से नहरें निकाली गयी है जिनसे राजस्थान रण मध्य प्रदेश में सिंचाई की जाती है। बाएँ किनारे से निकाली गयी नहर लगभग 20 किमी. बहने के पश्चात् बूँदी तथा रूप्रेन दो शाखाओं में बँट जाती है जिसकी कुल लम्बाई 170 किमी. है जो सम्पूर्ण राजस्थान में स्थित है। इन नहरों से राजस्थान के बूँदी, कोटा, टोंक तथा सवाई माधोपुर जिलों में सिंचाई की जाती है। दाहिने किनारे से निकाली गयी नहर 364 किमी. की है तथा इससे राजस्थान एवं मध्य प्रदेश दोनों ही राज्यों को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होती है। अपने आरम्भिक स्थान से निकलकर यह नहर राजस्थान में 127 किमी. की लम्बाई में बहने के पश्चात् पार्वती नदी की पार करके मध्य प्रदेष में मुरैना जिले की श्योपुर तहसील के राधापुर गाँव में पहुँचती है जहाँ यह चम्बल नदी के समानान्तर बहती है तथा भिण्ड व मुरैना जिलों को सिंचाई की सुविधा प्रदान करती है। इस परियोजना के अन्तर्गत निर्मित. नहरों से कुल 5 लाख हैक्टेयर भूमि को सिंचाई प्राप्त हो रही है।

द्वितीय चरण (II Stage)

राणा प्रताप सागर बाँध (Rana Pratap Sagar dam) – परियोजना के द्वितीय चरण के अन्तर्गत राजस्थान राज्य में बूँदी एवं कोटा जिलों की सीमा पर गाँधी सागर बाँध से लगभग 56 किमी. उत्तर की ओर रावत भाटा नामक स्थान पर जहाँ चम्बल नदी पर्याप्त संकरी घाटी से होकर बहती है 1.2 किमी. लम्बा 54 मीटर ऊँचा राणा प्रताप सागर बाँध बनाया गया है। बाँध द्वारा निर्मित जलाशय में 2900 लाख घन मीटर जल एकत्र किया जा सकता है। इससे 1.2 लाख हैक्टेयर भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध है।

विद्युत उत्पादन हेतु मुख्य बाँध से 2. 5 किमी. ऊपर एक मिट्टी का बाँध बनाया गया है जो 5 किमी. लम्बा तथा 53 मीटर ऊँचा है। मुख्य बाँध के निकट एक विद्युत गृह स्थापित किया गया है जिसमे 43,000 किलोवाट प्रति इकाई की क्षमता वाली विद्युत उत्पादन इकाइयाँ लगायी गयी हैं।

तृतीय चरण (III Stage)

कोटा या जवाहर सागर बाँध (Kota or Jawahar Sagar Dam) – परियोजना के तृतीय या अन्तिम चरण के अन्तर्गत कोटा एवं बूँदी जिलों की सीमा पर राणा प्रताप सागर बाँध से 32 किमी. उत्तर–पूर्व की ओर कोटा शहर से 20 किमी. ऊपर चम्बल पर जवाहर सागर बाँध बनाया गया है जो 540 मीटर लम्बा तथा 25 मीटर की है। इस बाँध का प्रमुख उद्देश्य जल–विद्युत उत्पन्न करना है। यथार्थ में यह एक पिकअप बांध है जहाँ पहले दोनो बांधों गांधी सागर एंव राणा प्रताप सागर बाँध से छोड़े गये जल को एकत्र करके जल विद्युत का उत्पादन किया जाता है। बाँध के नीचे की ओर एक विद्युत शक्ति राह का निर्माण किया गया है जिसमें 33,000

किलोवाट प्रति इकाई की क्षमता वाली 3 इकाइयाँ लगायी गयी हैं जिनकी कुल विद्युत उत्पादन क्षमता 99,000 किलोवाट है।

परियोजना से लाभ (Benefits of Chambal Project)

(1) इस परियोजना से कोटा, बूँदी जिलों में 5.6 लाख हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि मे सिंचाई की सुविधाएं बढ़ी है।

(2) परियोजना के अन्तर्गत स्थापित किये गये विद्युत शक्ति गृहों से 386 मैगावाट विद्युत शक्ति का उत्पादन हो रहा है जिससे राजस्थान में कोटा, बूँदी, भरतपुर, सवाई माधोपुर, टोंक, अजमेर, पाली, भीलवाडा, सिरोही तथा उदयपुर जिलों तथा मध्य ' प्रदेश के मन्दसौर, इन्दौर, उज्जैन, ग्वालियर, नीमच तथा रतलाम जिलों में भी विभिन्न उद्योगों एंव नगरों को विद्युत आपूर्ति होती है। विद्युत की उपलब्धता के कारण साँभर झील के नमक, मकराना के संगमरमर, जयपुर और भीलवाड़ा के घीया पत्थर, उदयपुर की जस्ता खानों से हिन्दुस्तान जिंक स्मैल्टर लाखेरी तथा सवाई माधोपुर व निम्बाहेड़ा के सीमेंट उद्योग की विषेष प्रगति सम्भव हो सकी है।

(3) बाढ़ नियंत्रण एंव मृदा अपरदन तथा चम्बल के बीहड़ों का काया पलट भी इस परियोजना से सम्भव हुआ है।

(4) वृक्षारोपण एंव चारागाहों का विकास हुआ है।

(5) इस परियोजना से प्राप्त विद्युत से औद्योगिक विकास को गति मिली है। कोटा राजस्थान का प्रथम श्रेणी का औद्योगिक नगर बन गया है। श्रीराम फर्टिलाइजर्स एंव कैमीकल्स, श्रीराम रेयन्म, इन्स्ट्रूमेन्टेशन लिमिटेड, चम्बल फर्टिलाइजर्स जैसे बडे.उघोगों के अलावा मध्यम और लघु उद्योगों की स्थापना हुई है चित्तौड़गढ़, बूँदी, झालावाड़, भवानीमंडी, रामगंज मंडी और बास भी औद्योगिक विकास की ओर अग्रसर हैं।

(6) चम्बल सिंचित क्षेत्र में सिंचाई एंव नवीन कृषि तकनीक के कारण फसल प्रारूप में परिवर्तन होने लगा है। कृषि फसलों में ज्वार आदि के स्थान पर चावल और तिलहन के फसल क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई है। साथ ही गेहूँ और गन्ना के उत्पादन क्षेत्र में कई गुना वृद्धि हुई है। कृषि उपजों में विकास के कारण कृषि मण्डियों एंव व्यापारिक केन्द्रों का विकास हुआ है। बूँदी, कोटा, भवानी मण्डी, रामगंज मण्डी, केशोरायपाटन आदि मण्डियों का विकास इसी से सम्भव हुआ है।

(7) मत्स्य पालन के साथ –साथ चम्बल क्षेत्र अब पर्यटन का भी 'महत्वपूर्ण आधार बनने जा रहा है। यहाँ पर पैडल बोट, चप्पू बोट व पाल नौकायन पर्यटकों को उपलब्ध होंगे। पर्यटकों के लिए कोलकाता से घौलपुर तक जलयान सेवा शुरू करने की भी योजना है। इसे वाटर सफारी नाम दिया गया है। इससे लोगों को और अधिक रोजगार उपलब्ध होगा।

(8) कृषि उपज के कारण कई कृषि उपज मण्डियों का विकास हुआ है। बूँदी, भवानीमण्डी, रामगंज, कैशोरायपाटन, कोटा आदि मण्डियां इसी की देन है।

बोध प्रश्न - 1

1. गाँधी सागर बाँध कहाँ निर्मित है। इस बाँध को कितनी ऊँचाई पर बनाया गया है?

....

....

2. किस बाँध को पिक –अप बाँध भी कहा जाता है?

....

....

3. राणा प्रताप सागर बाँध किन दो जिलों की सीमा पर निर्मित है?

....

....

4. राजस्थान की कौन सी एक मात्र नदी दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर बहती है?

....

....

4.2.3 इंदिरा गाँधी नहर परियोजना (Indira Gandhi Canal Project)

इंदिरा गाँधी परियोजना पूर्व में राजस्थान नहर के नाम से जानी जाती थी। यह नहर विश्व की महत्वपूर्ण परियोजनाओं में से एक हैं जिसमें राजस्थान की मरूभूमि का लगातार कायाकल्प हो रहा है। इस नहर में सिंचाई हेतु पानी की उपलब्धता के अतिरिक्त बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर जैसे मरुनगरो, कस्बों तथा गाँवों को पेयजल की आपूर्ति भी होती है। इसके अतिरिक्त औधोगिक विकास, वृक्षारोपण, मृदा संरक्षण, पर्यटन विकास हेतु भी जल प्राप्त हो रहा हैं एशिया की सबसे बड़ी मानव निर्मित इस नहर परियोजना को 'मरुगंगा' और 'मरुस्थल की जीवन रेखा' के नाम से भी जाना जाता है। यह पीरयोजना अपने आकार, लम्बाई, जल प्रवाह क्षमता, सिंचित क्षेत्रफल, प्रयुक्त निर्माण सामग्री, संलग्र जनशक्ति और संभाव्य आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से राज्य की ही नहीं बल्कि विश्व की अनूठी परियोजना है। इंदिरा गाँधी नहर से लाभान्वित जिलों में गंगानगर हनुमानगढ़, बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर, चुरू तक जोधपुर सम्मिलित है। (चित्र 4.3)

योजना का प्रारूप – राजस्थान के भौगोलिक क्षेत्रफल के बहुत बड़े भाग में रेत का साम्राज्य है। जहाँ वनस्पति का पूर्णत : अभाव मिलता है। राज्य के पश्चिमी तथा उत्तरी –पश्चिमी भाग के 11 जिले अर्द्ध मरूस्थलीय अथवा मरूस्थली हैं। थार मरुस्थल की बेकार पड़ी भूमि को उर्वरा प्रदान करने के लिए तत्कालीन बीकानेर रियासत के मुख्य अभियंता कँवरसेन ने हिमालय के पानी को रेगिस्तान तक लाने की एक योजना का प्रारूप 1948 में भारत सरकार के समक्ष विचारार्थ रखा। यही योजना राजस्थान के लिए आधार बनी। 1955 में हुए अन्तर्राज्यीय जल समझौते के तुरंत बाद इस नहर का सर्वेक्षण प्रारम्भ किया गया। 1957 में परियोजना के प्रारूप को भारत सरकार व योजना आयोग की स्वीकृति के लिए भिजवाया गया। तदनुसार 31 मार्च, 1958 को तत्कालीन केन्द्रीय गृहमन्त्री श्री गोविन्द बल्लभ पंत ने इस महान परियोजना की आधारशिला रखी। इस प्रकार रेगिस्तान के बडे. भाग को हरा भरा बनाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। इस परियोजना का

निर्माण गंगानगर, हनुमानगढ, चुरू, बीकानेर, जेसलमेर, जोधपुर तथा बाड़मेर जिलों के 18.72 लाख हैक्टेयर कृषि योग्य क्षेत्र में सिंचाई हेतु पानी उपलब्ध कराने के लिए किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त मानव और पशुओं के लिए पेयजल की व्यवस्था, औद्योगिक विकास, पशुपालन, वृक्षारोपण को बढ़ावा देना, विद्युत उत्पादन, सड़क विकास, रेल विकास, पर्यटन विकास, मण्डी विकास, पशुचारा विकास, राष्ट्रीय शुष्क उद्यान आदि का विकास में भी निरन्तरता बनी हुई है।

उद्गम स्थल – इन्दिरा गाँधी नहर का उद्गम पंजाब में सतलज व्यास नदियों के संगम पर स्थित, हरिके बैराज से है यह नहर हरिके बैराज के बायीं ओर से निकाली गई है। जो 649 किमी लम्बी 38 मीटर चौड़ी तथा 6–7 मीटर गहरी है। यह नहर सम्पूर्ण रूप से पक्की बनाई गई है। राजस्थान में यह नहर हनुमानगढ़ जिले की टीब्बी तहसील में खरा गांव के निकट प्रवेश करती है। निकास स्थल पर मुख्य नहर के तल की चौड़ाई 40 मीटर है। इसमें बहने वाली जल की गहराई 6.4 मीटर तथा जल प्रवाह क्षमता 523 घन मीटर प्रति सैकण्ड है। इस नहर को रामगढ़ तक बढ़ाया गया है। बाड़मेर जिले के गडरारोड तक बढ़ाने का निर्णय किया जा चुका है।

राजस्थान नहर परियोजना के प्रमुख निर्माण कार्य निम्न हैं –

(क) राजस्थान फीडर (204 कि. मी.) का निर्माण।

(ख) राजस्थान मुख्य नहर का निर्माण।

(ग) इन्दिरा गांधी नहर की 9 शाखाओं, 21 उपशाखाओं तथा वितरक नहरों का निर्माण।

(घ) लिफ्ट नहरों के निर्माण की व्यवस्था (6 लिफ्ट नहरें)

(ङ) विधुतगृहों का निर्माण (2 विधुततगृह एंव 2 लघु विधुतगृहों का निर्माण)।

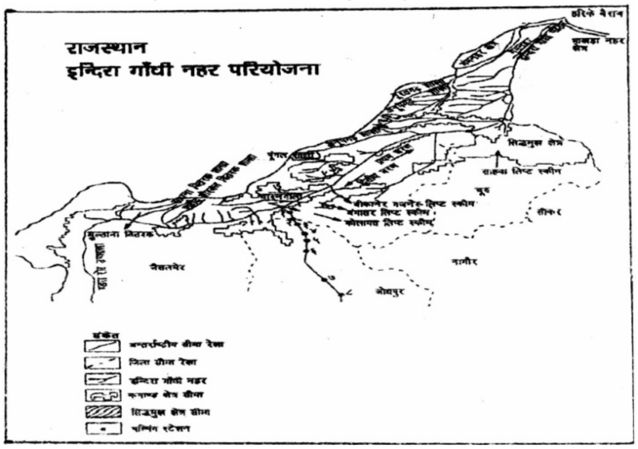

चित्र – 4. 3: इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना

(क) **राजस्थान फीडर (Rajasthan Feeder) –** पंजाब से व्यास एवं सतलज नदियों के संगम स्थल पर निर्मित हरिके बैराज से इन्दिरा गाँधी नहर को पानी की आपूर्ति करने हेतु 204 कि.मी. लम्बी 'यह राजस्थान फीडर बनाई गई है। इसका 167 किमी. भाग पंजाब, हरियाणा में है तथा शेष 37 किमी. राजस्थान सीमा में है। इसका कार्य प्रथम चरण में पूरा हो चुका है।

(ख) **राजस्थान मुख्य नहर (इन्दिरा गाँधी मुख्य नहर) (Indira Gandhi Main Canal) –** यह नहर राजस्थान फीडर से जुड़ने के बाद 445 कि.मी. लम्बी हैं जिनकी तली 38 मीटर और ऊपरी भाग 67 मीटर चौड़ा है। इस नहर पर प्रति सैकण्ड 523 क्यूबिक मीटर पानी बहता है। प्रथम चरण में 183 कि.मी. मुख्य नहर एवं 2945 कि.मी. वितरक नहरों का निर्माण हुआ

जबकि द्वितीय चरण में 256 कि.मी. मुख्य नहर एवं 5830 कि.मी. लम्बी वितरक नहरों का निर्माण हुआ है।

(ग) **शाखाओं एवं उपशाखाओं का निर्माण –** इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना विश्व की एक बड़ी परियोजना है जिसकी नहर प्रणाली की लम्बाई 9060 कि.मी. है एवं नहरों और नालियों की कुल लम्बाई 64,000 कि.मी. है। इसमें से 6978.99 कि.मी. लम्बी नहर प्रणाली व केवरस लिफ्ट का 12 लाख 38 हजार हैक्टेयर का कार्य पूर्ण हो चुका है।

(घ) **लिफ्ट नहरें (Lift Canals) -** ऊँचे, सुदूर, अगम्य भागों में पानी पहुंचाने के लिए 6 लिफ्ट सिचाई नहरों का निर्माण किया गया। प्रथम चरण में बीकानेर –लूणकरणसर नहर बनाई गई। शेष पाँच (1) नौहर –सहाबा, (2) बीकानेर –गजनेर, (3) कोलायत लिफ्ट सिस्टम, (4) फलौदी लिफ्ट सिस्टम, (5) पोकरण लिफ्ट सिस्टम के निर्माण कार्य भी हुए।

(ङ) इस परियोजना से सूरतगढ़ एवं अनूपगढ़ में 13 हजार कि वाट क्षमता के दो विधुत गृह बनाये गए है।

सागरमल गोपा एवं डीगा शाखा से भी जैसलमेर जिले में खुशहाली बढ़ेगी। लाठी क्रम के क्षेत्र में मोहनगढ़ के गाँव लीलवा तक 90 कि.मी. लम्बी शाखा से पानी पहुँचने पर जैसलमेर जिला भी सेवन घास का एक समृद्ध भण्डार बनेगा। यह नहर बाड़मेर जिले में गदरारोड़ तक बढ़ाई जा रही है जिससे वहाँ भी नवजीवन का संचार होगा। वर्तमान में इस नहर क्षेत्र में लगभग 1600 करोड़ रूपये का कृषि उत्पादन किया जा रहा है।

4.2.3.1 परियोजना के प्रभाव (Impacts of NGNP)

इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना विशाल मरुस्थल को समृद्धिशाली बनाने का साहसिक प्रयास है। इससे जलविहीन मरु क्षेत्र में पेयजल व सिंचाई के लिए हिमालय का पानी लोगों के घरों तथा खेतों तक पहुँच सका है। लगभग 4000 करोड़ रूपये लागत की इस परियोजना में राजस्थान फीडर सहित 649 कि.मी. लम्बी इन्दिरा गाँधी मुख्य नहर के अतिरिक्त 9 हजार कि.मी. लम्बी शाखाओं और 7 लिफ्ट नहरों का समावेश है। परियोजना का कुल सिंचित क्षेत्र 19.63 लाख हैक्टेयर है।

इन्दिरा गाँधी नहर से मरु जिलों अर्थात् गंगानगर, हनुमानगढ, चुरू, बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर व बाड़मेर के कृषि योग्य क्षेत्र में सिंचाई सुविधाओं का विस्तार हुआ है। इससे कृषि क्षेत्र एवं उत्पादन में वृद्धि हुई है। सिंचाई सुविधा के विस्तार से मरुस्थलीय क्षेत्र में फसल प्रारूप भी परिवर्तित हुआ है। परियोजना क्षेत्र में चना, गेंहू, सरसों, मूँगफली, कपास तथा फलों का उत्पादन अधिक होने लगा है। नहर क्षेत्र में कृषि विस्तार कार्यो के अन्तर्गत उर्वरकों की खपत में वृद्धि हुई है। दूसरी ओर कृषि विकास के अलावा नहर परियोजना क्षेत्र मे वृक्षारोपण को बढ़ावा मिला है। नहरों के द्वारा जल के वितरण से मरुस्थल में नमी की मात्रा बढ़ी है। बालुका का स्थिरीकरण हुआ है जिससे रेगिस्तान के प्रसार को रोकने में मदद मिली है। इन्दिरा गाँधी नहर के पानी से विद्युत उत्पादन भी किया जा रहा है। बीकानेर में पूंगल, बरसलसर व चारणवाला में जल विद्युत गृह से विद्युत उत्पादन हो रहा हैं। किन्तु अब इस परियोजना के नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई देने लगे है जैसे इन्दिरा गाँधी नहर क्षेत्र में सिंचाई सुविधाओं के विस्तार में पर्यावरण पर भी प्रभाव डाला है। प्रथम चरण के सिंचित क्षेत्र में भूमिगत जल का स्तर ऊपर उठने से लम्बे –चौड़े

क्षेत्र में खेत, झीलों रख दल– दल के रूप में परिवर्तित होने लगे हैं। पानी की अधिक आपूर्ति से नहरी क्षेत्र जल रिसाव से जलक्रान्ति (water logging) की समस्या से ग्रसित हैं। भूमि में जिप्सम के जमाव ने भी सेम की समस्या को बढ़ाया है परिणामस्वरूप जलमग्र भूमि में लवणता एवं खार की समस्या अत्यधिक गम्भीर हो चुकी है तथा एक तिहाई भूमि बंजर हो गई है। सेम के कारण ही हनुमानगढ, सूरतगढ, गंगानगर आदि क्षेत्र में सैकडों बीघा भूमि बेकार हो चुकी है।

सिंचाई सुविधा के विकास ने क्षेत्र में जैविक विविधता में भी परिवर्तन किया है। खेजडी, बबूल, फोग का स्थान इजरायली बबूल, यूकेलिप्टस और शीशम ने ले लिया है।

पशुओं के लिए पौष्टिक घास, सेवण, धामण आदि के स्थान पर फसलें बोई जाने लगी है। इस कारण पशुओं के लिए चारे की कमी महसूस होने लगी है।

इंन्दिरा गाँधी नहर क्षेत्र में बढ़ते मानवीय दबाव के कारण बहुमूल्य वनस्पतियाँ लुप्त होने लगी है

बोध प्रश्न – 3

1. इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना की आधारशिला कब और किसके द्वारा रखी गई?

   ....

   ....

2. इन्दिरा गाँधी नहर को जलापूर्ति कहाँ से होती है?

   ....

   ....

3. राजस्थान नहर को कितनी लम्बी, चौड़ी तथा गहरी बनाई गई है?

   ....

   ....

4. हिमालय के जल को रेगिस्तान तक लाने का प्रारूप किस मुख्य अभियन्ता ने सर्वप्रथम भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया?

   ....

   ....

5. राजस्थान नहर को अन्य किन नामों से भी जाना जाता है?

   ....

   ....

4.3 जल संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Water Resources)

देश में जल संसाधनों के विषम वितरण के कारण जल का अनुकूलतम उपयोग नहीं हो पा रहा है। भारत में वार्षिक वर्षा की मात्रा लगभग 4,000 लाख हैक्टेयर मीटर है। राष्ट्रीय कृषि आयोग के अनुसार आधारभूत वार्षिक जल संसाधन 18.50 लाख हैक्टेयर मीटर हैं, जिसमें से 1 350 लाख हैक्टेयर मीटर धरातल पर और 500 लाख हैक्टेयर मीटर भूमिगत जल का होता है। यदि जल

संरक्षण पर ध्यान दिया जाए तो धरातल के जल संसाधनों में 1850 लाख हक्टेयर मीटर की और भूमिगत ज़ल की मात्रा में 850 लाख हैक्टेयर मीटर जल की अतिरिक्त वृद्धि हो सकती है।

इसके अतिरिक्त उत्तरी पर्वतों के हिम के पिघलने से प्राप्त धरातलीय जल का प्रवाह 1050 लाख हैक्टेयर मीटर माना गया है! 700 लाख हैक्टेयर मीटर नदियों के रूप में और 350 लाख हैक्टेयर मीटर भूमिगत जल के रूप में किन्तु इस जल राशि का सारा उपयोग सिंचाई, सार्वजनिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों के लिए नहीं किया जाता है। कुल जल राशि के केवल 49 प्रतिशत भाग का उपयोग ही हो पाता है। स्पष्ट है कि सिंचाई के लिए उपयोग करने की काफी सम्भावनाएं है।

किन्तु जिस जल को सिंचाई के लिए व्यवहृत किया जाता है उसका भी पूरा उपयोग नहीं हो पाता क्यों कि नहरों से नालियों में और उसको खेतों तक पहुँचाने में जल की काफी मात्रा नष्ट हो जाती है। राष्ट्रीय कृषि आयोग के अनुसार कच्ची नालियों से जल पहुँचाने में लगभग 11300 क्यूसेक जल का नाश होता है और यदि नालियों को पक्का बना दिया जाये तो 60 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त भूमि की सिंचाई की जा सकती है। कच्ची नालियों का जल जो भूमि में सोख लिया जाता है उसे भी पम्पों द्वारा पुन: प्राप्त किया जा सकता है। एक हैक्टेयर भूमि की सिंचाई के लिए लगभग 75 मीटर जल की आवश्यकता होती है। यदि कुल सिंचित भूमि के आधे भाग पर ही नालियों को पक्का बना दिया जाये तो विपुल जल राशि का संरक्षण किया जा सकता है।

भूमिगत जल की उपलब्धता भी असपान रूप से वितरित है। कुल विभव का 16 प्रतिशत विशाल मैदानों वाले राज्यों में उपलब्ध है। उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश छत्तीसगढ़, राज्यों के पास पर्याप्त के पास जबकि शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रा में भूमिगत जल संसाधनों की किमी है। वर्षा की पिरिवर्तनशीलता के कारण इन क्षेत्रों में विशेष कर शीतकाल मे जल की काफी कमी रहती है फलस्वरूप भूमिगत जल का अधिक दोहन होता है जिससे भूमिगत जल स्तर और नीचे चला जाता है।

दूसरी ओर गंगा, ब्रह्मपुत्र तथा महानदी बेसिन बाढ़ों की पुनरावृत्ति से ग्रस्त है, जिससे प्रतिवर्ष जन–धन की अपार हानि होती है। देश के एक भाग में सूखा (draught) तो दूसरे भाग में बाढें आती है। इसलिए भारत सरकार ने देश के जल संसाधनों के अनुकूलतम प्रबन्धन एवं संरक्षण के लिए 'एक राष्ट्रीय जल नीति' भी बनाई है जिसके प्रमुख तत्व निम्नांकित हैं –

1. धरातलीय जल संसाधनों को जलीय इकाई (hydrological units) के आधार पर नियोजित करना।
2. वर्तमान तथा नई परियोजनाओं के चक्रीय (rotational) वितरण व्यवस्था तथा सिंचाई कार्यक्रमों का निर्माण करना।
3. जल संरक्षण के उचित उपायों को अपनाना अर्थात् वर्षा के अतिरिक्त जल को रोकने के लिए उपयुक्त स्थानों पर जलाशय, झीलें आदि का निर्माण।
4. ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल की पर्याप्त आपूर्ति पर जोर।
5. नहरी क्षेत्रों में जलसिक्ती (water logging), लवणता (salinity), भूमिगत जल का अतिदोहन तथा परियोजनाओं तथा बाढों के कारण विस्थापित परिवारों के पुनर्वास समस्याओं के हल के लिए नीतियाँ बताना।
6. प्रदूषण से जल संसाधनों की रहना एवं उत्पादन तकनीक की पुनर्रचना।

7. जल का पुनर्वितरण (redistribution) जिससे प्रादेषिक असन्तुलन को बनाए रखा जा सके।

4.3.1 बाढ़ (floods) और जल संरक्षण

देश के किसी न किसी भाग में बाढ़ों का अकस्मात आना एक प्राकृतिक विपदा है। उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल और असम तथा ब्रह्मपुत्र नदियाँ के बेसिनों में बाढ़ों के परिणाम प्रतिवर्ष मानव तथा पशुओं को भुगताने पड़ते हैं। इसी प्रकार दक्षिणी भारत में डेल्टाई क्षेत्रों तथा समुद्रतटीय भागों में भी बाढ़ें अभिशाप का रूप लेती हैं। बाढ़ों के फलस्वरूप करोड़ों रुपयों की वार्षिक हानि होती रही है। सर्वाधिक हानि उत्तरी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, असम में ब्रह्मपुत्र के पहाड़ी क्षेत्र, गुजरात, मध्यप्रदेश में नर्मदा नदी के अपवाह क्षेत्र, कर्नाटक के दक्षिणी जिले उड़ीसा आदि राज्यों में होती है। कुल हानि का 80% फसलों और 20% मकानों तथा का सार्वजनिक सम्पत्ति का होता है। सामान्यत: औसतन 74 लाख हेक्टेयर भूमि प्रभावित होती हैं जिसमें से 31 लाख हेक्टेयर तो कृषि भूमि ही होती हैं। लगभग 16 लाख व्यक्ति और 30,000 पशुधन प्रतिवर्ष बाढ़ की चपेट में आते हैं।

बाद के कारण (Causes of Floods)

उष्ण कटिबन्धीय देशों मैं भारत बाढ़ों के लिए प्रसिद्व हैं। ये बाढ़े प्राय: निम्न कारणों से आती है :–

(1) नदियों के ऊपरी भागों में भारी वर्षा का होना तथा अतिरिक्त जल का तेज प्रवाह से बहना।

(2) नदियों के तल में मिट्टी तथा अन्य अवसादों का जमते रहना, जिससे वे छिछली हो जाती है और जल उनके पाश्ववर्ती भागों में अनियन्त्रित होकर बाहर बहने लगता हैं।

(3) नदियों के उद्गम तथा पहाड़ी भागों में अनियमित रूप सें वृक्षों को नष्ट किया जाता है जिससे वर्षा का जल भूमि में सिक्त हुए बिना तेजी से ढालों की ओर बहकर बाढ़ की स्थिति उत्पन्न कर देना है।

(4) नदियों के किनारे की भूमि पर मानव का असीमित अतिक्रमण से वर्षा का जल बाढ़ों का रूप लें लेता है।

(5) तटीय भागों में चक्रवातों एवं भीषण तूफानों के कारण सामुद्रिक जल स्थल के भागों को आवृत्त कर लेता है।

(6) खेती तथा सिंचाई किये जाने वाले क्षेत्रों में अतिरिक्त जल की निकासी की अपर्याप्त व्यवस्था होना।

(7) नदियों के मार्गों में परिवर्तन तथा उनमें घुमाव के कारण बाढ़ें आती है। सिंचाई विभाग का ऐसा अनुमान है कि बाढ़ों द्वारा होने वाली हानि का 60% नदियों में आने वाली बाढों से और 40% अधिक वर्षा तथा चक्रवातों से होती है। सारे देश में बाढों से होने वाली हानि का 60% हिमालय की नदियों से होता है। प्रायद्वीपीय नदियों के बेसिनों मैं अधिकांश हानि तूफानों द्वारा होती है जबकि हिमालय के नदियों में 66% हानि बाढ़ द्वारा और 34% तूफानों से होती है। मध्यवर्ती भारत में सामान्यत हानि केवल बाढ़ों द्वारा होती है।

संक्षेप में जनसंख्या की वृद्धि के कारण भूमि का अधिकाधिक उपयोग कृषि के लिए किया जाना, भवन निर्माण, पारस्परिक रूप से निचले भागों, खादर भूमि, अथवा शुष्क तालाबों में खेती करना,

सड़कें व रेल मार्ग बनाते समय ढाल का ध्यान न रखना तथा अतिरिक्त जल को बाँधों के रूप में संग्रहित करने की पूर्ण व्यवस्था का अभाव आदि कारण सम्मिलित रूप से बाढों को जन्म देते है।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र (Flood Areas) – भारत को बाढ़ों की दृष्टि से चार भागों में विभक्त किया जाता हैं :

(1) **पूर्वी खण्ड (Eastern Zone)** यह क्षेत्र घाघरा नदी के पूर्व से लगाकर डिब्रूगढ़ तथा उससे भी आगे तक फैला है। पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तरी बिहार एवं पश्चिम बंगाल, मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश और असम इस खण्ड में सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रों में हिमालय से निकलने वाली नदियाँ बड़ी मात्रा में जल और भारी चिकनी मिट्टी बहाकर लाती है जो समतल धरातल तथा निचले भागों को जल –मग्र कर देती है। यमुना, गंगा, दामोदर, ब्रह्मपुत्र, दिहांग और लोहित नदियों में अत्यधिक बाढ़े आती है।

(2) **उत्तरी खण्ड (Northern Zone) :** इसके अन्तर्गत जम्मू –कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र सम्मिलित हैं। इस खण्ड की नदियाँ छोटी हैं। इनके मार्गों में भी अधिक परिवर्तन नहीं होते और न ही जल की मात्रा अधिक होती है। फिर भी झेलम, व्यास, रावी, चिनाव, सतलज, यमुना और सिन्धु में जब वर्षा ऋतु में बाढ़े आती हैं तो विनाश का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

(3) **दक्षिणी खण्ड (Southern Zone):** इसमें प्रायद्वीपीय भारत को सम्मिलित किया जाता है, जहाँ वर्षा की मात्रा कम होने से नदियों में जल अधिक नहीं होता तथा मिट्टी की मात्रा भी कम होती है। इनके मार्गों में भी कोई परिवर्तन नहीं पाया जाता है अत : बाढ़ें सामान्यत : प्रतिवर्ष न आकर लम्बे अन्तराल पर आती है लेकिन जब आती हैं, तो धन – जन तथा फसलों की, विशेषत : डेल्टाई क्षेत्रों में, बड़ी हानि पहुँचाती है। गोदावरी, कृष्णा, कावेरी और पेनार नदियाँ अपनी बाढ़ के लिए विख्यात है।

(4) **उड़ीसा खण्ड (Orissa Zone)** इस खण्ड में महानदी, ब्राह्मणी आदि नदियाँ अधिक जल बहाकर लाती हैं जिसको निकलने का मार्ग न मिलने से मुहानों पर तेज बाड़े आती है।

चित्र – 4.4 : बाढ़ों द्वारा प्रभावित क्षेत्र

बाढ़ों के जल का संरक्षण – बाढ़ों को रोक कर जल संरक्षण के लिए योजनाकाल में कई कार्य किये गये हैं। नीदयों के प्रवाह मार्ग अथवा ऊपरी भागों में बाँध या अवरोधक बनाना, नगरों की

सुरक्षा करना, गाँव को बाढ़ की सीमा से ऊँचा उठाना, बहाव प्रणाली में सुधार करना आदि प्रमुख कार्य हैं। सन् 1954 में राष्ट्रीय बाढ़ नियन्त्रण कार्यक्रम लागू किया गया तब से लाखों हैक्टेयर भूमि अर्थात–बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के 39% भाग को बचाया जा चुका है। इसी कड़ी में 12, 265 किलोमीटर लम्बे बाँध तथा 12, 809 किलोमीटर लम्बी बहाव नालियाँ बनायी गयी हैं। 304 नगरों और 5, 000 गाँव। को बाढ़ के स्तर से ऊँचा किया गया है। गंगा तथा ब्रह्मपुत्र नदियों को बाढ़ों पर नियन्त्रण करने के लिए गंगा बाढ़ नियन्त्रण आयोग तथा ब्रह्मपुत्र बाढ़ नियन्त्रण आयोग की स्थापना की गयी है। बाढ़ों सम्बन्धी भविष्यवाणी करने के लिए सम्बन्धित नदियों पर नजर रखने के लिए केन्द्रों की, स्थापना भी की गई है : –

गौहाटी – ब्रहमपुत्र एवं उसकी सहायकों तथा बरार नदी की बाढ़ों के लिए।

जलपाईगुड़ी – तिस्ता नदी।

वाशणमी, आजमाबाद – उत्तर प्रदेश में गंगा और सहायक नदियाँ।

भरूंच – नर्मदा नदी की बाढ़ों के लिए।

दिल्ली – यमुना नदी दिल्ली तक तथा साहिबी नदी।

हैदराबाद – गोदावरी एवं सहायक नदियाँ।

स्मरणीय है कि– “River uncontrolled are greatest engines of destruction, but controlled they are the greatest benefactors of mankind"

अनियन्त्रित नदियाँ महाविनाशक होती हैं, जबकि नियन्त्रित नदियाँ मानवता की महान हितकारक बन जाती है।

इसी प्रकार बाढ़ों को रोक कर जल संरक्षण के निम्न उपाय काम में लाये जा सकते है -

(1) मध्य भारत की नदियों की बाढ़ों को रोकने के लिए संग्रहण –तालाबों / बाँधों का निर्माण करना।

(2) नदियों के पार्श्ववर्ती भागों में फैलने वाले जल को रोकने के लिए किनारों पर तट बाँध बनाना

(3) नदियों के ऊपरी भागों में वर्षा जल तथा मिट्टी के क्षरण को रोकने के लिए वृक्षारोपण करना।

(4) बाढ़ों के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त कर भविष्यवाणियाँ करना।

4.3.2 राष्ट्रीय जल ग्रिड (National Water Grid)

देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है और कृषि मानसून पर, जो अगर अनियमित ही रहता है। जिससे कभी बाढ़ तो कभी सूखे (drought) की स्थितियां बन जाया करती हैं। इनसे निपटने 'के लिए तथा धरातलीय जल (surface water) का सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए वर्ष 2005 में हिमालय से निकलने वाली करीब 30 नदियों को जोड़ने को परियोजना, राष्ट्रीय जल संगठन (National Water Grid) पर काम शुरू हुआ। इस परियोजना के मुख्य उद्देश्य जैसे (i) अतिरिक्त जल को अभावग्रस्त क्षेत्रों तक पहुंचाकर पीने और सिंचाई के लिए जल उपलब्ध कराना। (ii) शुल्क क्षेत्रों में जब बाढ़ का जल व्यर्थ में बहकर समुद्र में चला जाय तो उसे रोककर वार्षिक जल पूर्ति में सन्तुलन लाना, (iii) अतिरिक्त बल का उपयोग प्राथमिकता के आधार पर शुष्क क्षेत्रों में करना जिससे कृषि के विकास से अतिरिक्त रोजगार प्राप्त हो सके; (iv) उत्तरी और दक्षिणी भारत के बीच नदियों द्वारा परिवहन का सीधा सर्म्पक नहीं है, क्योंकि, कोई भी नदी उत्तर से दक्षिण दिशा में नहीं बहती। संगठनों से ऐसी सुविधाएँ प्राप्त करना; (v) कोयला,

पतन, लोहा और अन्य भारी खनिज, लकडियों का परिवहन जल के द्वारा सस्ते में करना; (vi) अभी मध्य भारतीय क्षेत्रों में बहु त से भाग अगम्य है किन्तु प्राकृतिक संसाधनों (वनों, खनिजों में) धनी हैं। अत : जल संसाधनों के संगठन से उनके आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। लगभग 5 लाख 60 हजार करोड़ की लागत वाली इस परियोजना का पर्यावरणविदों ने विरोध कर दिया। केरल, बिहार, पश्चिमी बंगाल, छत्तीसगढ़, गोवा, पंजाब, असम जैसे राज्य भी इस पर सहमत नहीं हो सके। गत वर्ष सुप्रीम कोर्ट ने भी इस परियोजना को आगे बढ़ाने की जरूरत बताई थी लेकिन केन्द्र ने अब तक दृढ इच्छा शक्ति नहीं दर्शाई है। राष्ट्रीय जल – ग्रिड बडे पैमाने पर नदी जल के दिशा परिवर्तन की एक सम –बन्धित योजना है जो समय की जरूरत है। इस योजना के प्रमुख जल संगठन (water Grid) इस प्रकार बनाए गए है (चित्र 4. 5)।

1. सोन, नर्मदा, तापी, गोदावरी, कृष्णा तथा पेन्नर नदी बेसिनों को जोड़कर गंगा–कावेरी लिंक नहर बनाई जाए।
2. ब्रह्मपुत्र –गंगा लिंक नहर।
3. गुजरात तथा पश्चिमी राजस्थान होकर नर्मदा लिंक नहर।
4. चम्बल से मध्य राजस्थान तक चम्बल लिंक नहर।
5. पश्चिमी घाट की नदियों का पूर्वी घाट की नदियों से संयोजन

4.3.2.1 गंगा–कावेरी लिंक नहर (Ganga– Kaveri Link Canal)

यह नहर सोन, नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृशणा तथा पेन्नार नदी बेसिनों से होकर जायेगी। इसकी लम्बाई 2635 किमी. होगी। भारत सरकार के अनुरोध पर संयुक्त राष्ट्र संघ के एक दल ने गंगा–कावेरी लिंक नहर की योजना बनायी थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य गंगा बेसिन में आये दिन आने वाली बाढ़ से सुरक्षा प्रदान करना तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जल की उपलब्धता बढ़ाना है। इस दृष्टि से नहर बनाकर गंगा को कावेरी से जोड़ने की योजना निर्मित की गयी है। इस नहर से कई लाभ प्राप्त होंगे। इससे मानव के लिए आवश्यक जल उपलब्ध होगा। क्षेत्र में हरियाली का विकास होगा। पर्यावरण शुद्ध होगा। स्वच्छता आयेगी। जल विद्युत उत्पादन, सिंचाई, नौकायान की भी सुविधा उपलब्ध होगी। इससे बाढ़ नियन्त्रण भी होगा। इसके अतिरिक्त मानसून पर निर्भरता भी कम हो जायेगी।

चित्र 4.5 गंगा – कावेरी लिंक नहर.

इस नहर का उदगम स्थान पटना के पास होगा। वहाँ पर गंगा नदी पर एक बैराज का निर्माण किया जायेगा तथा पम्प के द्वारा गंगा के जल (लगभग 6000 क्यूसेक) को उठाकर नहर में छोड़ा जायेगा। गंगा नदी के जल को केवल वर्षा के मौसम में चार माह (जुलाई से अक्टूबर) तक ही स्थानान्तरित किया जायेगा। इस नहर से सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिए शाखायें निकाली जायेंगी। इससे बिहार, झारखण्ड. मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के जलाभाव क्षेत्र लाभान्वित होंगे। गंगा नदी में अत्यधिक जल प्रवाहित होने पर गुजरात राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु राज्यों के अति सूखाग्रस्त क्षेत्र को भी जल प्रदान किया जायेगा।

गंगा–कावेरी नहर को सोन एवं नर्मदा नदियों से होते हुए दक्षिण दिशा की ओर प्रवाहित किया जायेगा जो वेन गंगा, प्रानहिता, गोदावरी नदियों से होते हुए कृष्णा तथा पेन्नार नदियों को पार कर कावेरी नदी में मिल जायेगी। इस नहर के मार्ग में स्थित कई जलाशयों में भी जल संग्रह किया जायेगा तथा कई स्थानों पर पम्प की सहायता से जल को उठाकर दूसरे नदी में छोड़ा जायेगा। जलाशयों में संग्रहित जल को सूखे के मौसम में उपयोग में लाया जायेगा। देश में जल परिवहन के लिए 5000 कि.मी. लम्बा समुद्री तट, 5000– 6000 कि.मी. लम्बे नव्य मार्ग (nevigable) उपलब्ध हैं। गंगा–कावेरी नहर परियोजना से 300 कि.मी. अतिरिक्त जलमार्ग भीतरी भागों में परिवहन मार्ग के रूप में व्यवहृत किए जा सकेंगे,। इस योजना पर बहुत बड़ी। राशि के खर्च होने का अनुमान है। सर 1970 में 287500 लाख रूपये खर्च का अनुमान लगाया गया था। इस योजना के क्रियान्वयन लिए एक मजबूत प्रशासकीय निर्णय की आवश्यकता है। '

4.3.2.2 नर्मदा लिंक नहर (Narbada Link Canal)

यह नहर गुजरात के कच्छ तथा पश्चिमी राजस्थान में जायेगी। सरदार सरोवर योजना के अन्तर्गत इस का निर्माण करने का प्रस्ताव है। यह नहर नवगांव के पास नर्मदा नदी पर एक बाँध बनाकर निकाली जायेगी। इस नहर को गंगा– नहर से भी जल उपलब्ध कराया जायेगा।

4.3.2.3 चम्बल लिंक नहर (Chambal Link Canal)

यह नहर चम्बल नदी से मध्य राजस्थान की ओर जायेगी। आगे चलकर यह नहर लगभग 500. लम्बी होगी। इससे राजस्थान के मध्यवर्ती भाग को जल प्राप्त होगा।

4.3.2.4 ब्रह्मपुत्र –गंगा लिंक नहर (Brahmaputra– Ganga Link canal)

ब्रह्मपुत्र नदी पूवोत्तर भारत की सबसे बड़ी नदी है। इसमें वर्ष भर पर्याप्त मात्रा में जल प्रवाहित होता। इस जल का काफी अंश बिना उपयोग बेकार बहकर सह में चला जाता है। इस अतिरिक्त जल को निचली गंगा बेसिन की और मोड़कर शुष्क मौसम में उस क्षेत्र में सिंचाई के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। इस योजना के अन्तर्गत असम के धुवरी नामक पर ब्रह्मपुत्र नदी पर एक बैराज बनाया जायेगा। उस बैराज से जल मोड़ने के लिए नहर निकाली जायेगा। यह नहर फरक्का बांध तक आयेगी। इसकी कुल लम्बाई 320 किमी. होगा। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि इस नहर सें ब्रह्मपुत्र का लगभग 1150 क्यूसेक प्रवाहित किया जा सकेगा। यह नहर बांग्लादेश से होकर जायेगी। इसके लिए भारत और बांग्लादेश के बीच अन्तर्राष्ट्रीय समझौता किया जायेगा। इस योजना से बांग्लादेश को भी लाभ प्राप्त होगा। दोनों देशों को इससे

सिंचाई, नौकायान आदि की सुविधा होगी। अभी इस नहर योजना के लिए बांग्लादेश की सहमति नहीं प्राप्त हुई है। इसके निर्माण में काफी धन खर्च होने का भी अनुमान है अत : यह योजना अभी क्रियान्त्रित नहीं हो पा रही है।

4.3.2.5 पश्चिमी घाट की नदियों का पूर्वी घाट की नदियों से संयोजन

सह्याद्री पर्वत श्रेणियों से पश्चिम दिशा की और प्रवाहित होने वाली नदियां वर्ष के मौसम में भारी मात्रा में जल समुद्र की ओर ले जाती हैं। तीव्र ढाल होने के कारण इन नदियों का अधिकांश जल व्यर्थ समुद्र में चला जाता है। इस जल का उपयोग वृष्टि छाया प्रदेश (सहयाद्रि पर्वत श्रेणियों के पूरब का भाग) की ओर नहर बनाकर किया जा सकता है।इस तरह की योजना वस्तु पहले पेरियार नदी पर क्रियान्वित की जा चुकी है। पश्चिम दिशा में प्रवाहित पेरियार नदी के अतिरिक्त जल को एक बाघ बनाकर एकत्र किया जाता है तथा पुन : उसे एक सुरंग द्वारा (सह्याद्रि के पूरब के) सुखाग्रस्त क्षेत्र के आवश्यकता की पूर्ति हेतु लाया जाता है। इसी तरह की योजना पश्चिम दिशा की ओर बहने वाली सहयाद्रि की अन्य नदियों पर क्रियान्वित की, जा सकती है।

4.3.2.6 जल संरक्षण के अन्य उपाय

(i) **नदियों अथवा जलाशयों में मिट्टी के कटाव को रोकना (Desilting of River bed and Reservoirs) :** नदियों में जल के साथ –साथ मिट्टी –कंकड़ भी बहाकर चले आते हैं और उसके पेटे में जमकर उसके तल को ऊँचा कर देते हैं, जिससे न केवल बाढ़ का खतरा बढ़ जाता है वरन. नदियों में नावें चलाना 'भी सम्भव नहीं होता उत: नदियों को नव्य (navigable) या बनाऐ रखने के लिए तथा जल संरक्षण वे लिए उसके पेटे को नियमित रूप से ड्रैजरों द्वारा साफ किया जाना चाहिए और नदियों के किनारों को यथास्थान पक्का बनाना चाहिए। नदियों का –आन्तरिक जल मार्गो के रूप में विकास करना देश व हित में है।
नदियों को वर्ष भर जल मिलता रहे इसके लिए यह भी आवश्यक है कि उनके तद्गम स्थानों से कुछ नीचे जल –सग्रहालय बनाकर जल को रोका जाये, और उससे छोड़े गये जल की मात्रा में पूरा नियन्त्रण रखा जाये. जिससे बाढ़ वी समस्या भी हल होगी और रोके गये जल से उपयुक्त स्थिति पर जल –विद्युत उत्पादक यन्त्र भी लगाये जा सकेंगें।
अधिकांश नदियों के प्रवाह क्षेत्र मैदानी भागों से आरम्भ होते हैं. अत : जब इन पर संग्राहक / जलाशय बनाये जाते है तो जल के साथ –साथ इनमें मिट्टी भी जमती जाती है, जिससे इनकी जल भरण क्षमता (Storage Capacity) कम हो जाती है और यदि इन जलाशयों पर जल विद्युत – उत्पादन संयन्त्र स्थापित किये जायें तो वे जल के अभाव में बन्द हो जाते है अत : सबसे बडी समस्या इनमें मिट्टी भरने (Siltation) की है।

(ii) **पेयजल की पूर्ति करना (Supply of Drinking Water) :** देश में पीने के जल का बडा अभाव है। लगभग 90% गांवों में पीने को स्वच्छ जल उपलब्ध नहीं है। नगरों में भी जल अनिश्चित समय और कम मात्रा में मिलता है जबकि नदियों की अधिकांश जल –राशि व्यर्थ ही बह कर चली जाती है। कुछ क्षेत्रों में भूमिगत जल के बड़े स्रोत उपलब्ध है, विशेषत : गंगा – यमुना के मैदानों में नर्मदा, ताप्ती और पूर्णा नदी की घाटी में, कच्छ और भुज के बालू— स्तरों में; पूर्वी एवं पश्चिमी गोदावरी और कृष्णा जिलों में भूमिगत जल के अच्छे स्त्रोत

उपलब्ध हैं। इनके जल क उपयोग नलकूपों (Tube well) और पाताल– तोड़ कुओं (Artesian Wall) के रूप में किया जाना चाहिए।

(iii) **समुद्री जल का निर्लवर्णकरण (Desalination of Sea water)** समुद्री तटीय, क्षेत्रों के नमकीन जल को शुद्धीकरण कर उसे भी पीने योग्य बनाया जा सकता है। ऐसे प्रयास कच्छ और मुंबई के तटों पर किये गये हैं। समुद्र के जल का यदि निर्लवीकरण (Desalination) किया जाये तो उसमें नमक की मात्रा कम की जा सकती है और साफ किये जल का पुन : उपयोग (Re– use) सिंचाई करने तथा पीने और अन्न कार्यो में किया जा सकता है।

(iv) **जल प्रदूषण को रोकना (Prevention of Water Pollution) :** भारत में अब देशों को अपेक्षा नदियों में अथाह जल राशि भरी हुई है 'केवल दक्षिणी भारत की नदियों को छोडकर), जो तेजी के साथ बहती है। इनका जल भी स्वच्छ और पेय है केवल उन क्षेत्रों को छोड़कर जहाँ इनके किनारे'. धार्मिक स्थल अथवा औद्योगिक केन्द्र है निकटवर्ती औद्योगिक एवं व्यावसायिक नगरों का कूडा–करकट तथा औद्योगिक व्यर्थ पदार्थ (Effluents) इनके जल में मिलकर उसे दूषित एवं विषैला बना देते है जो न केवल पीने के योग्य होता है, वरन् सम्पूर्ण जल तथा वातावरण प्रदूषित हों जाता है तथा अनेक बीमारियों का कारण भी बनता है।

“Central Board for the prevention and Control of Water Pollution on the Status of Water Supply and Sewage Systems” ने 142 प्रथम श्रेणी के नगरों के बारे में पाया कि 80% से अधिक जल –प्रदूषण का कारण नगरों का गन्दा मलबा /कूड़ा करकट (servage) है; तथा 6 से 16% प्रदूषण उधयोगों द्वारा होता है। 43% जनसंख्या को इस गन्दगी से हटाने के लिए नालियों की सुविधा उपलब्ध है जबकि 57% बिना इस सुविधा के है। इन नगरों में प्रतिदिन 70, 067 लाख मीटर गन्दा पानी बहता है जिसमें से केवल 59% नालियों द्वारा बहाकर ले जाने की सुविधा है, जबकि शेष जल नदी नालों को दूषित करता है। अस्तु, जल प्रदूषण को रोककर उसका शुद्धीकरण कर उसका पुन उपयोग (re–use) करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए नगरों में जल शुद्धि संयन्त्र (Sewage Treatment Plants) स्थापित किये जाने है जिनमें पहले जल की शुद्धि की जाती है और फिर उसे नदी, नालों अथवा झीलों ' में डाला जाता है।

भारत में धरातल के जल (surface water) का उचित उपयोग करने के लिए केन्द्र में केन्द्रीय जल आयोग (Central Water Commission), बाढ़ नियन्त्रण बोर्ड (Flood Control board), केन्द्रीय जलशक्ति, सिचाई और नौका संचालन आयोग (Central Waterpower, irrigation, Navigation Commission) तथा सिंचाई के साधनों का सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए Command Area Development Programmes संचालित किये गये हैं। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत (i) सिंचाई की सम्भावित उपयोगिता का अधिक से अधिक विकास करने के लिए बहु – विषयी उपायों (multi– disciplinary Approach) का उपयोग करना, (ii) जल की प्रति इकाई या भूमि की प्रति इकाई पीछे जल की उपलब्धि का अधिकतम उपयोग करना।

4.4 सारांश (Summary)

भारत कृषि प्रधान देश है। देश की 70 से 75% जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। देष का एक बड़ा भाग मरुभूमि के अन्तर्गत आता है। देश में भूमि –मानव अनुपात अनुकूल है। किन्तु कई क्षेत्रों में जल के समुचित प्रबन्ध की कमी विकास में बहुत बड़ी बाधा है। दूसरी ओर आज भी कृषि मानसून का जुआ बनी हुई है। हरित क्रांति और कृषि की आधुनिकतम प्रौद्योगिकी का लाभ सिंचाई द्वारा ही संभव है। औद्योगिक विकास हेतु विद्युत की कमी भी एक प्रमुख समस्या है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सर्वप्रथम नदी जल परियोजना का प्रारूप तैयार कर देश में नदी घाटी बहुउद्देश्यीय परियोजना को मूर्तरूप दिया गया किन्तु अब ये योजनाएं छोटे स्तर की लगने लगी परिणामस्वरूप राष्ट्रीय जल ग्रिड बड़े पैमाने पर नदी जल के दिशा परिवर्तन की एक सम्बन्धित योजना बनाई गई है जो देश की नदियों को जोड़कर एक बेसिन से दूसरे बेसिन को जल की आपूर्ति की जाएगी। इससे जल का उचित संरक्षण तथा प्रबन्धन हो सकेगा। इस महत्री परियोजना को मूर्तरूप देने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति की परम आवश्यकता हैं।

4.5 शब्दावली (Glossary)

- **बांध (Dam):** नदी जलमार्ग के सम्मुख अथवा पार्श्व में उसके जल को रोकने, प्रवाह को नियंत्रित करने अथवा दिशा बदलने के लिए चौड़ी एवं ऊँची दीवाल
- **नदी बेसिन (River Basin) :** वह समस्त भू क्षेत्र (जलग्रहण क्षेत्र) जहाँ तक का जल किसी नदी तथा उसकी सहायक नदियों से होकर प्रवाहित होता है।
- **नदी घाटी (Valley)** लम्बी किन्तु संकरी द्रोणी जिसका ढाल मद तथा नियमित होता है प्राय: इनमें नदी का प्रवाह होता
- **मृदा अपरदन (Soil Erosion)**: किसी स्थान से होने वाला मिट्टी का कटाव तथा स्थानान्तरण। बहता जल और पवन मृदा अपरदन के प्रमुख भौतिक कारक है।

4.6 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. अल्का गौतम : भारत का वृहद भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007
2. बंसल एस. सी. : भारत का भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2004
3. चौहान पी. आर. भारत का वृहद भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2004
4. मामोरिया, सी. बी. आधुनिक भारत का वृहत भूगोल, साहित्य भवन, आगरा, 2007
5. राव, बी. पी. : भारत – एक भौगोलिक समीक्षा, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2002

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. दामोदर घाटी परियोजना संयुक्त राज्य अमरीका की टनैसी घाटी निगम (TAV) पर आधारित है।

2. दामोदर नदी झारखण्ड राज्य के छोटा नागपुर पठार की 610 मीटर ऊँची पहाड़ियों से निकलती है।
3. सन् 1948 में
4. दामोदर नदी की सहायक बराकर नदी पर
5. पश्चिमी बंगाल के कोयला क्षेत्रों के मध्य

बोध प्रश्न– 2

1. मध्यप्रदेश तथा राजस्थान राज्यों की सीमा पर 62 मीटर ऊँचाई पर बनाया गया है।
2. जवाहर सागर बांध को पिक अप बांध भी कहा जाता है।
3. बूंदी तथा कोटा जिलों की
4. चम्बल नदी

बोध प्रश्न– 3

1. 31 मार्च, 1958 को तत्कालीन केन्द्रीय गृहमंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत के द्वारा
2. राजस्थान फीडर
3. 649 कि.मी. लम्बी, 38 मीटर चौड़ी, 6 – 7 मीटर गहरी
4. बीकानेर रियासत के तत्कालीन मुख्य अभियन्ता कँवरसेन ने 1948 में
5. इन्दिरा गाँधी नहर, मरुगंगा और मरुस्थल की जीवन रेखा

4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. दामोदर घाटी परियोजना का सचित्र वर्णन कीजिए।
2. चम्बल परियोजना के तीनों चरण बताइए।
3. इन्दिरा गाँधी नहर राजस्थान में जल एवं मरु विकास प्रबन्धन में एक कारगर योजना है स्पष्ट कीजिए।

इकाई 5 : जलवायु (Climate)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 भारतीय जलवायु की विशेषताएँ
5.3 मानसून की उत्पत्ति सम्बन्धी संकल्पनाएँ
5.3.1 तापीय संकल्पना
5.3.2 स्पेट की संकल्पना
5.3.3 फ्लोन की संकल्पना
5.3.4 जेट स्ट्रीम की विचारधारा
5.3.5 मानसून की क्रियाविधि
5.4 वर्षा का वितरण प्रतिरूप – क्षेत्रीय एवं ऋतुगत
5.5 वर्षा की परिवर्तनशीलता
5.6 राजस्थान मरूस्थल होने के कारण'
5.6 थार्नथ्वेट के अनुसार जलवायु प्रदेश
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न।

5.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे :–

- भारत की जलवायु की दशायें,
- भारतीय मानूसन की उत्पत्ति,
- भारत में विभिन्न ऋतुओं की जानकारी,
- वर्षा का वितरण,
- जलवायु प्रदेशों की जानकारी,
- सूखा कारण एवं प्रबन्ध।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत को भौगोलिक विविधताओं में यहाँ की जलवायुविक दशायें प्रमुख हैं, कृषि–प्रधान देश की अर्थव्यवस्था बड़ी सीमा तक जलवायु पर निर्भर है। वनस्पति तथा मिट्टी के गुणों में पाई जाने वाली क्षेत्रीय विभिन्नता भी जलवायु के कारण है। यहाँ की जलवायु की मानसूनी जलवायु कहते है। जो दक्षिण पश्चिमी मानसून का हिस्सा है। वर्षा की मात्रा, ऋत्विक परविर्तन एवं अपनी विलक्षणता के कारण मानसून जलवायु विश्व के अन्य भागों की जलवायु से भिन्न है।

5.2 भारतीय जलवायु की विशेषताएँ (Characteristics of Indian Climate)

किसी भौगोलिक क्षेत्र की दैनिक वायुण्डलीय दशाओं को मौसम कहते हैं तथा मौसमी दशाओं के निर्माण में योगदान देने वाले तत्वों को मौसम के तत्व कहते हैं। इनमें तापमान, वायुदाब, आर्द्रता, पवन (वेग एवं दिशा) मेघावरण आदि प्रमुख हैं। इन तत्वों में प्राय: परिवर्तन होता रहता है। दूसरी ओर किसी क्षेत्र या प्रदेश की लम्बी अवधि की प्रचलित मौसमी दशाओं के औसत को जलवायु कहते हैं। भारत की जलवायु विभिन्न कारकों से नियंत्रित होती है तथा देश के पर्याप्त विस्तार या उच्चावच व प्रायद्वीपीय अवस्थिति के कारण जलवायु में काफी विविधता मिलती है। इसके उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक विशाल हिमालय अवस्थित है जिससे मध्य एशिया से आने वाली ठंडी पहनें रुक जाती हैं तथा देश में उष्ण कटिबंधीय जलवायु का प्रभाव होता है। दूसरी ओर ऊँची पर्वत श्रेणियाँ दक्षिणी पश्चिमी मानसूनी पवनों को रोककर वर्षा करने में सहायक होती हैं। इस प्रकार हिमालय पर्वत तंत्र तथा मानसूनी पवनें भारत को जलवायविक एकता प्रदान करते हैं। इस विशाल एकता में अनेक विविधता भी मिलती हैं।

जलवायु की विविधतायें पवनों, तापमान, वर्षा, आर्द्रता एवं शुष्कता के रूप में सागरीय निकटता एवं दूरी, सागर तल से ऊँचाई, पर्वतों से दूरी तथा सामान्य उच्चावच के कारण मिलती है। ग्रीष्मकाल में जम्मू –कश्मीर में तापमान लगभग 22^0 सेल्सियस रहता है जबकि पश्चिमी राजस्थान में 48^0– 50^0 सेल्सियस के मध्य रहता है। शीतकाल में कारगिल या द्रास में तापमान शून्य से 40^0 सेल्सियस नीचे चला जाता है दूसरी ओर चेन्नई में तापमान 20^0 से 22^0 सेल्सियस के आसपास रहता है। वर्षा की दृष्टि से भी काफी विविधता है। जैसलमेर की औसत वार्षिक वर्षा 12 सेमी है। जबकि मेघालय के मौसिन राम की औसत वार्षिक वर्षा 1187 सेमी है इस प्रकार जितनी वर्षा दस वर्षो में जैसलमेर में होती है उतनी वर्षा गारो की पहाड़ियों में स्थित तूरा नामक स्थान पर एक ही दिन में हो जाती है।

5.3 भारतीय मानसून की उत्पत्ति सम्बन्धी संकल्पनाएँ (Concepts related to Indian Monsoon)

भारतीय मानसून (Indian Monsoon): मानसून शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के 'मौसिम ' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है 'ऋतु या मौसम'। बुल्फ के अनुसार, "मौसम के अनुसार क्रम परिवर्तित करने वाली पवनें मानसून कहलाती हैं। डोबी के अनुसार, "मानसून दो परस्पर मौसम वाली जलवायु है तथा पवनों का उत्क्रमण मानसूनी जलवायु का मूल सिद्धान्त है।" इससे अधिक स्पष्ट करते हुए सिम्पसन ने कहा है कि, "मानसून पवनें वास्तव में व्यापारिक एवं पछुआ हवाओं के उत्तर व दक्षिणी की ओर स्थानान्तरण से उत्पन्न वायु की धाराएँ हैं।" मानसून की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक संकल्पनाएँ हैं, जिनमें निम्न महत्वपूर्ण हैं।

5.3.1 तापीय संकल्पना (Thermal Concept)

इस संकल्पना के अनुसार मानसून की उत्पत्ति जल एवं स्थल के विषम वितरण के कारण होती है तथा मानसूनी पवनें स्थलीय व सागरीय पवनों का ही वृहद् रूप है। ग्रीष्मकाल में अधिक सूर्यातप के कारण स्थलीय भाग पर न्यून वायुदाबु के केन्द्र बन जाते हैं, तभी सागरों की ओर से स्थल की ओर पवनें चलती हैं, जिन्हें ग्रीष्मकालीन मानसून कहते हैं, जबकि शीतकाल में यही पवनें स्थलीय भागों के ठण्डे होने के कारण पुन: सागरों की ओर प्रवाहित होने लगती है, जिसे शीतकालीन या लौटा हु आ मानसून कहते हैं।

21 मार्च को सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध में (कर्क रेखा पर) सीधी चमकता है, जिस कारण अधिकतम सूर्याताप प्राप्त होता है तथा एशिया में बैकाल झील तथा उत्तरी–पश्चिमी पाकिस्तान (पेशावर के पास) में, न्यून वायुदाब का केन्द्र बन जाता है। इसके विपरीत दक्षिणी हिन्द महासागर (मकर रेखा पर) एवं उ.प. आस्ट्रेलिया के समीप उच्च दाब के केन्द्र विकसित हो जाते हैं अत: महासागरों में स्थित उच्च केन्द्रों से स्थलीय निम्न दाब केन्द्रों की ओर पवनें अग्रसर होती हैं, जो आर्द्र होने के कारण वर्षा करती हैं। इसे ग्रीष्मकालीन मानसून कहते हैं। इसके विपरीत 23 सितम्बर के उपरान्त जब सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध की ओर जाता है तथा 22 दिसम्बर को मकर रेखा पर सीधा चमकने लगता है, तभी एशिया में बैकाल झील तथा उ.प. पाकिस्तान के समीप उच्च दाब केन्द्र बन जाते हैं। समीपवर्ती सागरीय भागों में निम्न दाब केन्द्र बनते है अत: पवनें स्थल से पुन: सागर की ओर चलती हैं। शुष्क होने के कारण वर्षा नहीं करती हैं, इसे शीतकालीन मानसून कहते हैं।

5.3.2 स्पेट की संकल्पना (Spate’s Concept)

ओ.एच.के.स्पेट ने मानसून की उत्पत्ति चक्रवातों के कारण मानी है। उनके अनुसार ये चक्रवात तीव्र वायु राशियों के एक स्थान पर संकेन्द्रण से बनते हैं। इनमें एक वायु राशि महाद्वीपीय उष्ण प्रदेशीय है, जिसकी प्रकृति शुष्क है तथा दूसरी वायुराशि मानसून वायुराशि महासागरों से आने वाली मानसूनी वायु राशि है। यह आर्द्र वायु राशि होती है तथा तीसरी वायुराशि महासागरों से आने वाली मानसूनी पवनों की है जो अधिक आर्द्रता एवं तापमान वाली है। इस प्रकार नवीन एवं पुरानी वायुराशियों के बीच में महाद्वीपीय उष्ण प्रदेशीय वायुराशि के आने से एक वाताग्र का निर्माण होता है व चक्रवात बन जाता है।

5.3.3 फ्लोन की संकल्पना (Flohn’s Concept)

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान फ्लोन ने पारम्परिक विचारों से अलग अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार मानसून पवनों की उत्पत्ति वायुदाब एवं पवन पेटियों के स्थानांतरण से होती है उनकी इस संकल्पना को गतिक संकल्पना (Dynamic Concept) कहा गया है। भूमध्य रेखीय क्षेत्र में दोनों गोलार्द्धों में व्यापारिक पवनें (उ. पू व द .पू .से) आकर मिलती हैं तथा ऊपर उठती हैं जिस कारण यह क्षेत्र निम्न दाब का केन्द्र बनता है। यहाँ पवनें मन्द गति से चलती हैं इतनी कि इनकी पहचान काफी मुश्किल होती है। इस क्षेत्र में चलने वाली पवनों को भूमध्यरेखीय पछुआ पवनें (Equatorial Westerlies) कहते हैं जो भूमध्यरेखा के दोनों ओर स्थित न्यून दाब की पेटी

में चलती हैं। इस पेटी को अंतरा उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (Inter Tropical Convergence Zone, ITCZ) कहते हैं। यह क्षेत्र दोनों गोलार्द्धों में उपोष्ण कटिबंधीय उच्च दाब की पेटी की ओर से प्रवाहित व्यापारिक पवनों के अभिसरण को निश्चित करती है, जो भूमध्यरेखीय न्यून दाब की पेटी की ओर चलती है। स्पष्ट है इस अभिसरण क्षेत्र तथा इसके दक्षिणी विस्तार को दक्षिणी अंतरा उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (Southern Inter Tropical Convergence Zone, SITCZ) कहते हैं।

इन दोनों के मध्य न्यून दाब की डोलड्रम पेटी अवस्थित है। जिसे भूमध्य रेखीय क्षेत्र की ओर आकर जब ऊपर उठती हैं तो न्यून दाब का क्षेत्र बन जाता है।

अतंरा उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र की अवस्थिति उत्तरायन एवं दक्षिणायन के समय बदलती रहती है अर्थात् जब सूर्य कर्क रेखा पर लम्बवत् होता है, तो इसका विस्तार 2^0 से 27^0 उत्तरी अक्षांशों में होता है तथा जब दक्षिणायन के समय सूर्य मकर रेखा पर लम्बवत् होता है, तो इसका विस्तार 8^0 से 17^0 दक्षिण अक्षांशों के मध्य होता है। अभिसरण क्षेत्र (ITCZ) के इस स्थानांतरण में पूर्वी एवं पश्चिमी गोलार्द्ध में सागरीय भाग अधिक होने के कारण 5^0 उत्तरी अक्षांश तक ही इसका विस्तार हो पाता है जबकि पूर्वी गोलार्द्ध में इसका स्थानांतरण 30^0 उत्तरी अक्षांश तक हो जाता है। मानसून पर इस अभिसरण क्षेत्र के अक्षांशीय विस्थापन का प्रभाव पड़ता है। यदि ऋतुओं के अनुसार वायुदाब की पेटियाँ नहीं खिसकती तो मानसूनी पवनों की उत्पत्ति भी नहीं होती।.इस प्रकार स्पष्ट है कि मानसून की उत्पत्ति ITCZ के उत्तरायण होने से विषुवतीय पछुआ पवनों के रूप में होती हैं, जो दक्षिणायन से दौरान धीरे–धीरे खत्म हो जाती है। आर. सी. तिवारी के अनुसार ITCZ एक वाताग्र क्षेत्र ही है जिसके मध्य अक्षांशो तक खिसकने के कारण ग्रीष्म कालीन मानसूनी वर्षा होती है।

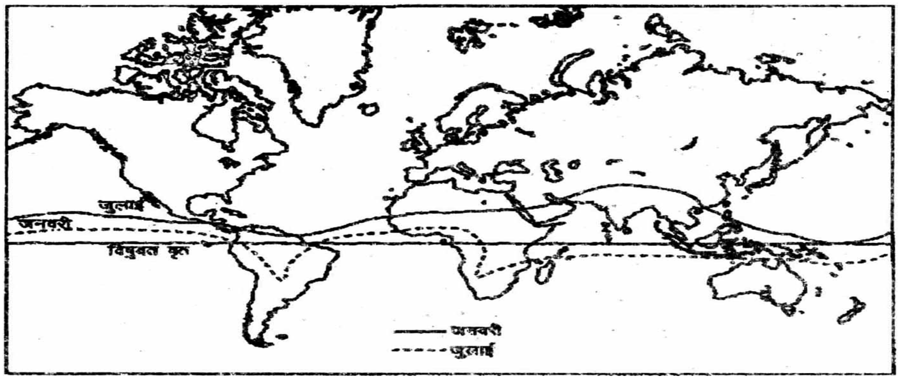

चित्र 5.1 : अंत: उष्णर्कांटेबन्धीय अभिसरण क्षेत्र

अतंरा उष्ण कटिबंधीय अभिसरण का उत्तर या दक्षिण में विस्तार वायुमण्डल के ऊपरी पवन संचरण से भी संबंधित होता है। ऊपरी पवन तंत्र जिसे जेट स्ट्रीम. कहते हैं, इसका शीतकाल में ध्रुवों से अधिक ठण्ड के कारण दक्षिणवर्ती विस्तार हो जाता है जबकि ग्रीष्म काल में तिब्बत के पठार तक ही सीमित रहती है। जिससे ITCZ का अधिक उत्तर तक विस्तार संभव होता है इसी प्रकार इसके विस्तार पर धरातलीय प्रभाव भी पडता है जैसे ITCZके उत्तर में विस्तार में पूर्वी से पश्चिम में अवस्थित हिमालय पर्वत श्रृंखला की प्रमुख भूमिका है, क्योंकि जेट स्ट्रीम के

भारत में विस्तार में हिमालय पर्वत नियंत्रक का कार्य करता है। जैट स्ट्रीम ध्रुवीय पवनो के अधिक प्रबल होने की स्थिति में ही हिमालय को पार कर पाती है।

5.3.4 जेट स्ट्रीम की विचारधारा (Jet Stream Concept)

मानसूनी पवन प्रवाह के बारे में विगत पाँच दशकों से लगातार शोध हो रहे है तथा नवीन विचारों का समावेश हो रहा है। इनमें जेट स्ट्रीम प्रमुख है। यह वायु का ऊपरी प्रवाह है, जो उतरी भारत के ऊपर क्षोभमण्डल में पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होता है। ये मध्य अक्षांशों में 7500 से 12000 मीटर तक की ऊंचाई में हजारों किमी प्रति घंटे की गति से चलने वाली पवनें हैं। इनकी चौड़ाई 100 किमी से 500 किमी के मध्य है। लेकिन सामान्यता इतना विस्तार हमेशा नही मिलता है। आमतौर पर ये एक पतली पट्टी के रूप में ही बहती है। इनकी गति 200 से 400 किलोमीटर प्रति घण्टे तक होता है। यद्यपि जैट स्ट्रीम के बारे में जानकारी द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमेरिकी बमवर्षक विमानों द्वारा जापानी द्वीपों के ऊपर लगी थी वर्तमान में इनकी। सहायता व्यापारिक एयर क्राफ्ट अपनी गति बढ़ाने में भी लेते हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप में जेट पवनें हिमालय के उत्तर और दक्षिण में इसके समानातर चलती हैं। प्रमुख जेट स्ट्रीम निम्नलिखित हैं–

1. **ध्रुवीय जेट स्ट्रीम–** इसे ध्रुवीय वाताग्र जेट स्ट्रीम भी कहते है क्योंकि यह शीतकाल में वाताग्रो से बनती है। इसका विस्तार 400 से 600 अक्षांशों में रहता है, लेकिन ये ग्रीष्मकाल में उच्च अक्षांशों तक सीमित रहती हैं। ये जेट प्रवाह शीत ध्रुवीय पूर्व (Cool polar eastelies) रख उष्ण पछुआ (Warm westerlies) के मध्य बने वाताग्र से सम्बद्ध रहती है। शीतकाल में इसका विस्तार 30^0 उत्तरी अक्षांशों तक रहता है। बंसत ऋतु आने पर इसका उत्तर की ओर क्रमिक प्रवास होने लगता है। ग्रीष्मकाल में इसकी स्थिति 50^0 उत्तरी अक्षांश तक सीमित हो जाती है
2. **पश्चिमी उपोष्ण कटिबंधीय जेट स्ट्रीम :** इसका विस्तार 25^0 अक्षांशों के आस–पास रहता है यह शीतकाल में स्थिर रहती है, जो 9 से 12 किमी की ऊँचाई में प्रवाहित होती है तथा शीतकाल में भूमध्यसागरीय पश्चिमी विक्षोभों को भारत लाने में सहायक होती है। लेकिन ग्रीष्मकाल आते ही यह क्षीण होकर ध्रुवों की और स्थानांतीरत हो जाती है। इसकी उत्पत्ति वाताग्रों से नहीं होती वरन् ये विषुवत् रेखीय क्षेत्र से ऊपरी वायुमण्डलीय पीरसंचरण का परिणाम होती है।
3. **भूमध्य रेखीय जेट स्ट्रीम :** यद्यपि भूमध्य रेखा के समीप कोरियोलिस प्रभाव नगण्य होता है। फलस्वरूप स्थिर प्रवाह पाया जाता हैं जिस कारण वायुमण्डल में पूर्ण विकसित पवन प्रवाह का अभाव रहता है। फिर भी यहाँ 25^0 उत्तरी अक्षांश के पास पूर्वी जेट स्ट्रीम बनती है।

जेट स्ट्रीम एवं भारतीय मानसून (Jet Stream and Indian Monsoon) : जेट स्ट्रीम नामक ऊपरी वायु परिसंचरण एवं जगह स्थिर न रहकर सूर्य के उत्तरायन एवं दक्षिणायन की स्थिति से प्रभावित होती है। सूर्य जब मकर रेखा पर लम्बवत् होता है, तो उष्ण कटिबंधीय पश्चिम जेट स्ट्रीम भी दक्षिण में स्थानांतरित हो जाती है। सामान्यतया सितम्बर–अक्टूबर में ये 30^0 उत्तरी

अक्षांशों के आस –पास रहती है लेकिन दिसम्बर में ये 20^0 उत्तरी अक्षांश (दक्षिण में) तक स्थानांतरित हो जाती है। यह स्थिति मार्च – अप्रैल तक एक सी रहती है तथा सूर्य जैसे ही उत्तरायन में होता है, मई जून आते ही ये पुन 30^0 उत्तरी अक्षांशों में खिसक जाती है। इस प्रकार भारतीय उपमहा द्वीप में मानसनू काल (जून से सितम्बर तक) में इनका प्रवाह नहीं होता है। वरन् अब ये उत्तर की ओर स्थानांतरित हो जाता है। इस प्रकार जेट पवनों के इस सामयिक या श्रत्विक स्थानांतरण का प्रभाव अंतरा उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (Inter Tropical Convergence) उत्तरायन रख दक्षिणायन पर पड़ता है तथा ITCZ उत्तर एवं दक्षिण में स्थानांतरण से मानसून् प्रभावित होता है। शीतकाल में जेट स्ट्रीम का विस्तार भारतीय मैदान तक हो जाता है तथा ग्रीष्मकाल में इसका उत्तर की ओर खिसकना उत्तरी ITCZ के उत्तरी फैलाव के लिए आवश्यक है। यहाँ तक विषुवतीय पछुआ (Equatorial Westerlies) मानसूनी पवनों के रूप में विस्तृत होती हैं। स्पष्ट है कि ITCZ के उत्तर में खिसकाव मानसून के लिए अनुकूल है, जो जेट स्ट्रीम की दक्षिणी सीमा पर निर्भर करता है। इसमें हिमालय रखे तिब्बत की भूमि भी महत्वपूर्ण है।

ग्रीष्मकाल में हिमालय पर्वत रख तिब्बत का पठार गर्भ हो जाने के कारण पूर्वी जेट स्ट्रीम का उद्भव होता है। इनका दोनों वृहद् भू –आकारों का विस्तार लगभग 45 लाख वर्ग किमी में है तथा औसत ऊँचाई लगभग 4000 मीटर है इस क्षेत्र के ग्रीष्मकाल में उच्च होने से क्षोभमण्डल के मध्य भाग में घड़ी की सुईयों की दिशा में (Clockwise) वायु परिसंचरण विकसित हो जाता है तथा दो पवन प्रवाह चलते है। एक दक्षिण में जो पूर्वी जेट स्ट्रीम के रूप में प्रवाहित होती है,, तथा दूसरी इसके विपरित दिशा में उत्तरी ध्रुव को ओर चलती है जो मध्य एशिया में पश्चिमी जेट स्टीम के रूप में चलती है। दूसरी और हिमालय पर्वत के अवरोध के कारण 'जेट स्ट्रीम 'का भारतीय मैदान की ओर विस्तार भी नियंत्रित होता है। कोटेश्वरम के इस विचार बताया कि तापीय प्रभाव से तिब्बत से ऊपर उठने वाली गर्म हवायें हिन्दमहासागर में विषुवत रेखा के निकट नीचे उतरती हैं ये ही हवायें दक्षिणी –पश्चिमी मानसून के रूप में भारत में पहुँचती है। हवाओं के इस चक्र की खोज हेडेले ने की थी जिनके गुम पर इसे हेडले चक्र (Hadley Cell) कहते हैं। कोटेश्वरम के डस विचार की पुष्टि मानेक्स (MONEX) ने भी की हैं।

5.3.5 मानसून की क्रियाविधि

वर्षा ऋतु की समयावधि में संपूर्ण देश में समरूपता नहीं मिलती है। मानसून विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न तिथियों को पहुँचता है। उत्तरी भारत में, वर्षा ऋतु जून से सितम्बर के मध्य मानी गई है। यह अवधि दक्षिण उत्तर की ओर तथा पूर्व से पश्चिम की ओर घटती जाती है। इस सम्पूर्ण अवधि में दक्षिण पश्चिमी मानसून का प्रभाव रहता है। जून सबसे गर्म महीना रहता है। जुलाई अगस्त में तापमान में गिरावट आती है। सितम्बर में वर्षा के कम होते ही एक बार तापमान फिर बढ़ता है। जून में उच्चतम तापमान के कारण ही न्यून वायुदाब का केन्द्र बन जाता है। फलस्वरूप आर्द्र पवनें इस क्षेत्र की ओर चलने लगती हैं व अचानक वर्षा प्रारंभ होती है, जिसे मानसून का प्रस्फोट कहते हैं। दक्षिण भारत के तटीय भागों में जून के प्रथम सप्ताह में प्रारम्भ

हो जाती है। केरल तट पर जून के प्रथम सप्ताह में मानसूनी पवनें वर्षा प्रारंभ कर देती हैं। मालाबार व कोंकगा तट पर 10–15 जून तक वर्षा प्रारंभ हो जाती है। यह वर्षा निश्चित एवं निर्धारित न होकर पूर्वी पवनों अथवा गर्त चक्रवातों से प्रभावित रहती है। इस आधार पर केन्ड्रयू ने' इन मानसूनी पवनों से प्राप्त वर्षा की प्रवृति को स्पन्दमान धाराऐं (Pulsating) कहा है। यह पश्चिमी घाट से पूर्व में कम प्रभावी होती है तथा यहाँ ढालों से उतरकर आगे चलने पर शुल्क होने के कारण वर्षा नहीं कर पाती फलस्वरूप पश्चिमी घाट का पूर्वी भाग वृष्टि छाया वाला क्षेत्र (Rain shadow Area) बन जाता है भारत मे दक्षिणी पश्चिमी मानसून दो शाखाओं के रूप में प्रवेश करता है ये निम्नलिखित है –

1. अरब सागरीय मानसून शाखा
2. बंगाल की खाड़ी मानसून शाखा

1. **अरब सागरीय मानसून शाखा :** इस शाखा के प्रभाव क्षेत्र में पश्चिम घाट के सहारे केरल, महाराष्ट्र गुजरात तथा कुछ भाग मध्य प्रदेश के सम्मिलित हैं। यह गुजरात पहुँचते –पहुँचते कमजोर पड़ जाती है। इस शाखा से सर्वप्रथम त्रिवेन्द्रम में होती है तत्पश्चात यह उत्तर में अग्रसर होती है तथा दस दिन बाद ही मुम्बई पहुँच जाती है जहाँ 187.5 सेमी वर्षा प्राप्त होती है जबकि यहाँ, केवल 160 किमी. दूर स्थित पुणे ये केवल 50 सेमी. वर्षा होती है, क्योंकि यह पवन विमुखी (Leeward) ढालों पर स्थित है। गुजरात तट 80 सेमी वर्षा कर ये पवनें पूर्व में मुड़कर मध्य प्रदेश में पहुँचती हैं। जहाँ

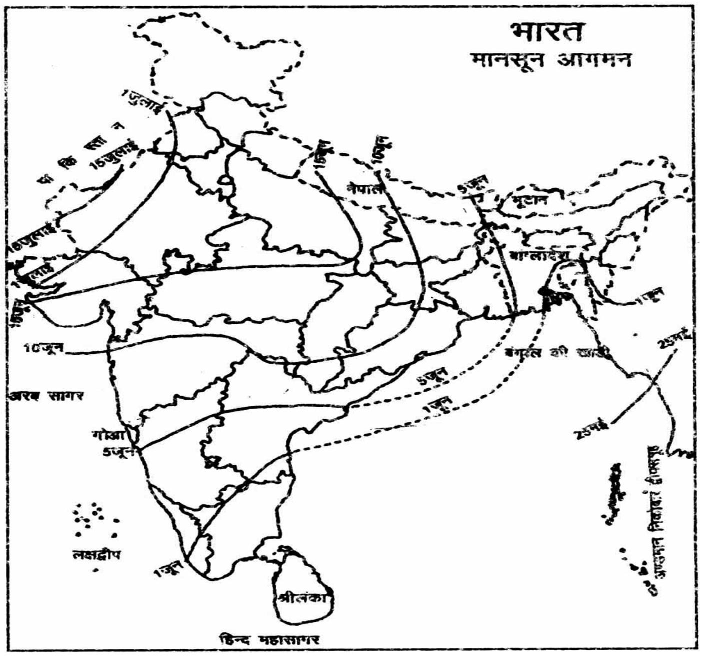

चित्र–5.2 : दक्षिणी पश्चिमी मानसून के आगमन को सामान्य तिथियाँ

75 से 80 सेमी. वर्षा करती हैं। ये गुजरात होती हुई राजस्थान में तथा मध्य प्रदेश से गंगा के मैदान में पहुँचती हैं। राजस्थान में अरावली के इन पवनों के समानातर अवस्थित होने तथा अन्य कोई धरातलीय अवरोधक नहीं होने के कारण वर्षा नहीं हो पाती है। यह शाखा आगे हरियाणा व हिमाचल तक पहुँचती है और गंगा के मैदान में यह बंगाल की खाड़ी की

शाखा से मिलती है। इसकी एक अन्य शाखा कच्छ एवं सौराष्ट्र तक जाती है तथा आगे राजस्थान में जाकर बिखरी अरावली श्रृंखला के कारण कुछ मात्रा में वर्षा करती है।

2. **बंगाल की खाड़ी की मानसून शाखा :** मानसून की यह शाखा बंगाल की खाड़ी से उत्तर की ओर चलती हुई म्यांमार तट रख बांग्लादेश में पहुँचती है। म्यांमार तट पर स्थित अराकान पहाड़ियों से मुड़कर इस प्रकार ये पवनें पश्चिमी बंगाल व बांग्लादेश में प्रवेश करती हैं। इसकी पुन: बंग्लादेश से उत्तर की ओर स्थित गारो–खासी–जयन्तिया श्रेणी इनके मार्ग में पाती है। यहीं मोसिनराम अवस्थित है। मॉसिन राम की विशिष्ट स्थलाकृति अवस्थिति के कारण यहाँ दुनिया की सर्वाधिक वर्षा होती है यहाँ कीपाकार आ घाटियाँ हैं जिनमें पवनें प्रवाह आकस्मिक रूप से उपर उठती हैं एवं भारी वर्षा होती है। यहाँ 1187 सेमी वार्षिक वर्षा होती है जबकि चेरापूँजी में 1142 सेमी. वार्षिक वर्षा होती थी। यह भी मॉसिन राम के पास ही स्थित है।

   हिमालय के प्रभाव तथा उत्तरी पश्चिमी भारत में न्यून दाब के कारण यह एक शाखा गंगा के मैदान से होते हुए पंजाब तक पहुँचती है। जबकि दूसरी शाखा ब्रह्मपुत्र घाटी की ओर मुडकर उत्तरी पूर्वी भारत में वर्षा करती है बंगाल की खाड़ी की शाखा से जून के पहले सप्ताह में असम में वर्षा होती है। हिमालय के अवरोध के कारण पश्चिम में मुडने वाली शाखा से बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश तथा पंजाब में वर्षा होती है। वर्षा की मात्रा पूर्व से पश्चिम की ओर घटती जाती है इस समय कोलकाता में औसतन 119 सेमी, पटना में 105 सेमी, इलाहाबाद में 76 सेमी आगरा मैनपुरी के पास 50–53 सेमी, दिल्ली में 56 सेमी, उत्तरी पूर्वी पंजाब में 46 सेमी वर्षा होती है। इसी प्रकार हिमालय पर्वतीय भागों में भी वर्षा पूर्व से पश्चिम की ओर घटती जाती है। दार्जिलिंग में 250–300 सेमी, अल्मोडा में 200 सेमी व शिमला में 150 सेमी वर्षा होती है। यह वर्षा लगातार न होकर –बीच बीच में रुक कर होती है।

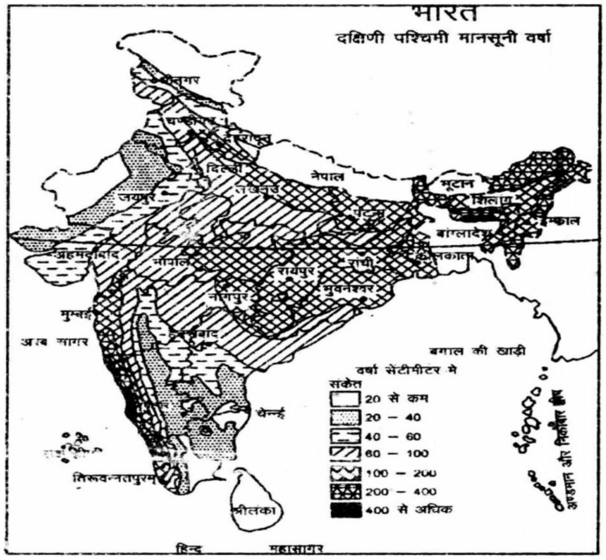

चित्र – 5.3 : दक्षिणी पश्चिम मानसून से वर्षा।

दक्षिण पश्चिमी मानसून की दोनों ही शाखाओं द्वारा उत्तरी पश्चिमी राजस्थान, पूर्वी तट विशेषकर तमिलनाडु तट पर पर्याप्त वर्षा नहीं होती है। उत्तरी पश्चिमी राजस्थान में दोनों

शाखाओं के आर्द्रता क्षीण हो जाती है। दूसरा मूल कारण थार के रेगिस्तान में बनने वाली तापीय विलोमता है। राजस्थान का मरूस्थल अरब सागर की शाखा के प्रभाव क्षेत्र में स्थित है। सामान्यत क्षोभमण्डल में ऊँचाई के साथ तापमान घटता है लेकिन इस रेगिस्तान में क्षोभमण्डल के निचले भाग में तापमान घटने की जगह बढता है। जिसका कारण धूल कणों की परत भी है। इस तापीय विलोमता के कारण यहाँ संवाहनीय क्रिया नहीं हो पाती जिससे आर्द्र मानसूनी पवनें ऊपर नहीं उठती फलस्वरूप बादल न बनने से वर्षा नही होती है। दूसरी ओर तमिलनाडु के तटीय प्रदेश बंगाल की खाडी की शाखा के समानांतर आने से वर्षा से वंचित रह जाता है।

मानसून का निवर्तन (Retreating of Monsoon)

मानसून के निवर्तन या पीछे हटने की अवधि मध्य सितम्बर से दिसम्बर तक मानी गई है। जब न्यून भार का क्षेत्र उत्तरी भारत से बंगाल की खाड़ी की ओर खिसकने लगता है। उत्तरी भारत में तापमान यकायक गिरने लगता है। ऐसा सूर्य के पृथ्वी के सन्दर्भ दक्षिणायन होने से होता है। जब सूर्य सितम्बर में भूमध्य रेखा पर तथा दिसम्बर में मकर रेखा पर लम्बवत् होता है तो समुद्र पर न्यून दाब का केन्द्र बन जाता है। इसे ही मानसून की वापसी या निवर्तन कहते है। यह प्रक्रिया आकस्मिक नहीं होती वरन् सर्वप्रथम उत्तरी भारत में वर्षा क्षीण होती है तथा शुष्क हवाएँ चलती हैं। प्रति चक्रवातीय दशाएँ बन जाती है। वायु प्रवाह की दिशा उत्तर –पश्चिम से पूर्व और दक्षिण हो जाती है तथा बंगाल की खाड़ी से होकर लौटती है। मानसून की वापसी उतरी पश्चिमी भारत से 15 सितम्बर से मध्यवर्ती भारत से 1 अक्टूबर से तथा दक्षिणी भारत से 1 से 15 दिसम्बर तक हो जाती है। इस दौरान आर्द्रता कम हो जाती है लेकिन दक्षिण भारत में कुछ स्थानों पर इस लौटते हुऐ मानसून से वर्षा भी होती है। लौटते समय ये पवनें बंगाल की खाड़ी से आर्द्रता ग्रहण करती है। जिससे नवम्बर से जनवरी तक तमिलनाडु तट पर वर्षा करती हैं। लौटते मानसून की अवधि में बंगाल की खाड़ी की जलीय सतह पर उष्ण कटिबंधीय चक्रवात बनते हैं। ये चक्रवात अनेक बार काफी विनाशक होते हैं, जो कृष्णा, कावेरी तथा गोदावरी डेल्टाओं को प्रभावित करते हैं।

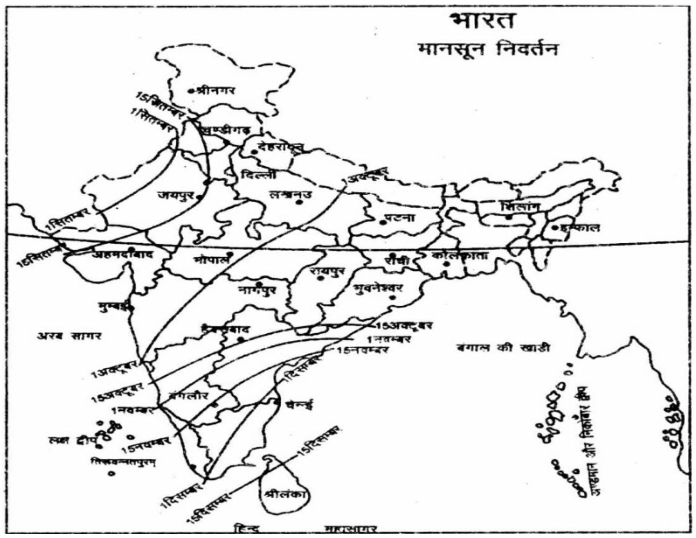

चित्र-5.4: मानसून निर्वतन की समानया तिथियां

बोध प्रश्न– 1

1. भारतीय जलवायु की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?

....

....

2. मानसून उत्पत्ति की शास्त्रीय विचारधारा क्या है?

....

....

3. जेट स्ट्रीम क्या है?

....

....

4. मानसून उत्पत्ति का गतिक सिद्धान्त किसने दिया?

....

....

5. भारतीय मानसून की प्रमुख शाखाएँ कौनसी हैं?

....

....

5.4 वर्षा का वितरण प्रतिरूप।

भारत में वार्षिक वर्षा का वितरण : भारत में वर्षा का वितरण सर्वत्र समान नहीं है। देश की औसत वार्षिक वर्षा 117 सेमी. है। इसमें एक ओर उत्तरी पूर्वी भागों एवं पश्चिमी घाट पर 200 सेमी. से अधिक वर्षा होती है, तो वहीं दूसरी ओर लद्दाख क्षेत्रों में 20 से 40 सेमी. के मध्य तथा पश्चिमी राजस्थान में 20 सेमी से कम वर्षा प्राप्त होती है। देश के 42.9 प्रतिशत भाग पर वर्षा 100 सेमी से कम होती है।आधे से अधिक भाग पर 100 से 200 सेंमी के बीच वर्षा होती है (तालिका– 5. 1) निम्नलिखित वर्षा प्रदेशों में विभाजित करते हैं –

तालिका 5–.1: भारत में वर्षा की मात्रा के अनुसार क्षेत्रफल का वर्गीकरण

औसत वार्षिक वर्षा (सेंमी. में)	प्राप्तकर्ता क्षेत्र (वर्ग कि मी.)	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
300 से अधिक	11084	3.36
200–200	85560	2.54
80–100	1679823	51.16
40–80	735254	22.39
20–40	183896	5.60
20 से कम	110231	3.37
कुल	32,83,236	100.00

स्रोत : राष्ट्रीय एटलस एवं थीमेटिक मानचित्र संगठन – सामाजिक आर्थिक एटलस, 2001

औसत वार्षिक वर्षा के वितरण के आधार पर देश को निम्नलिखित वर्षा प्रदेशों में विभाजित करते हैं –

1. अधिक वर्षा वाले प्रदेश (200 सेमी से अधिक वर्षा)
2. साधारण वर्षा वाले प्रदेश (100 से 200 सेमी वर्षा)
3. कम वर्षा वाले प्रदेश (60 से 100 सेमी वर्षा)
4. अल्प वर्षा वाले प्रदेश (60 सेमी से कम वर्षा)

1. **अधिक वर्षा वाले प्रदेश** : ये वे प्रदेश है जहाँ 200 सेमी से अधिक वार्षिक वर्षा प्राप्त होती है। इनमें पश्चिमी तट, कोंकण तट, मालाबार व दक्षिणी कनारा, पश्चिमी घाट, उत्तर पूर्व के उप हिमालय क्षेत्र (उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल) असम, मेघालय की गारो खासी व जयंतिया पहाड़ियों, नागालेंड, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मिजोरम व त्रिपुरा सम्मिलित है। इनमे कुछ भागों में तो 1000 सेमी से अधिक वर्षा होती है (चित्र – 5.5)

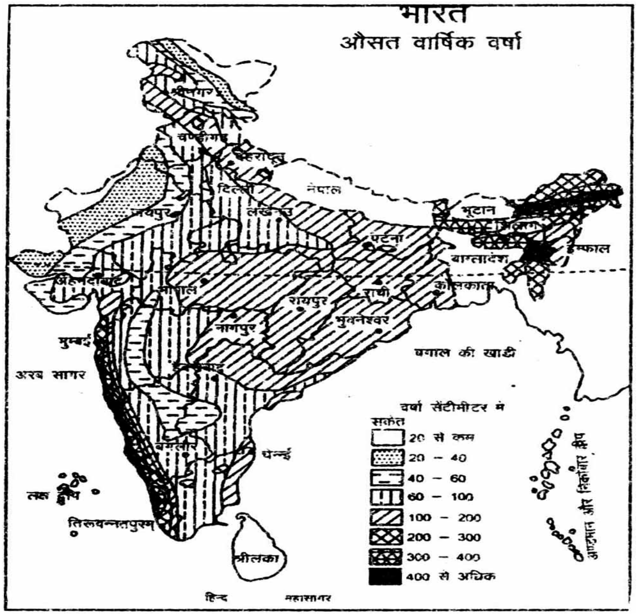

चित्र – 5.5 : भारत में औसत वार्षिक वर्षा

2. साधारण वर्षा वाले प्रदेश: इन प्रदेश में 100 सेमी से 200 सेमी के मध्य वार्षिक वर्षा होती है। इनमें गुजरात तट से दक्षिण की और कन्याकुमारी तक का पश्चिमी तट, पूर्वी महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़. उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, दक्षिण पश्चिमी बिहार, झारखण्ड, उत्तराखण्ड व उत्तरप्रदेश का –तराई क्षेत्र तथा हिमाचल प्रदेश एवं जम्मू कश्मीर सम्मिलित हैं।
3. कम वर्षा वाले प्रदेश : इसमें वे क्षेत्र सम्मिलित हैं जिनमें 60 से 100 सेमी वार्षिक वर्षा होती है। इनमें तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गजरात व पूर्वी राजस्थान तथा दक्षिणी पश्चिमी उत्तरप्रदेश सम्मिलित हैं।
4. अल्प वर्षा वाले प्रदेश इन प्रदेशों में वार्षिक वर्षा 60 सेमी, से कम होती है। इनमें पंजाब, हरियाणा, उत्तर पश्चिमी राजस्थान, कच्छ तथा काठियावाड, तमिलनाडु की रायलसीमा क्षेत्र

व जम्मू और कश्मीर का लद्दाख क्षेत्र सम्मिलित है।लद्दाख एवं पश्चिमी राजस्थान में 20 सेमी. मे भी कम वार्षिक वर्षा होती है।

वर्षा की प्रवणता: वर्षा के क्रमश : घटने को उसकी प्रवणता कह सकते हैं। भारत में वर्षा की प्रवणता उत्तर भारत में दक्षिण भारत के विपरीत है। उतरी भारत में वर्षा की मात्रा पूर्व दक्षिणपूर्व से उत्तर उत्तरपश्चिम 'की ओर घटती जाती है 1 इसके विपरीत दक्षिण भारत में सर्वाधिक वर्षा पश्चिम में होती है और पूर्व की ओर कम होती जाती है यद्यपि दक्षिणपूर्वी तट पर पुन : थोड़ी सी बढती है। दक्षिणी भारत में वर्षा ऋतु में दक्षिणपश्चिम से आने वाली अरब सागरीय मानसून हवाओं से वर्षा होती है जो पश्चिमी घाट के अवरोध के कारण इससे पश्चिम को भीषण वर्षा करती हैं, परन्तु घाट की पार कर ये नीचे उतरती है और इनसे मिलने वाली वर्षा कम हो जाती है। इसके विपरीत उत्तरी भारत में अधिकांश वर्षा बंगाल की खाड़ी की शाखा से होती है जो हिमालय की उपस्थिति के कारण उत्तरपश्चिम की ओर आगे बढ़ती है ओर दूरी बढ़ने के साथ इनसे मिलने वाली वर्षा की मात्रा कम होती जाती है।

वर्षा की ऋतुए: निर्विवाद रूप से देश की तीन –चौथाई वर्षा दक्षिणपश्चिम मानसून काल में प्राप्त होती है; परन्तु देश में कुछ ऐसे भाग भी हैं जहां अधिकतम वर्षा अन्य त्रतुओं में होती है। अधिकतम वर्षा के संकेन्द्र्ण के आधार पर देश में 5 प्रकार के प्रदेश है (चित्र– 5.6).

चित्र – 5.6. अधिकतम वर्षा की ऋतुएं

1. दक्षिण पश्चिम मानमून काल में अधिकतम वर्षा के क्षेत्र
2. वर्षा ऋतु तथा शरद ऋतु में अधिकतम वर्षा के क्षेत्र.
3. शरद तथा अन्तिम बंसत दो अधिक वर्ष काल वाले क्षेत्र,
4. शरद और आरम्भिक शीत ऋतु में अधिकतम वर्षा के क्षेत्र, तथा
5. शीत और बंसत में अधिकतम वर्षा के क्षेत्र।

5.5 वर्षा की परिवर्तनशीलता (Variability of Rainfall)

देश की वर्षा की सबसे बड़ी विशेषता इसकी परिवर्तनशीलता है। परिवर्तनशीलता का अर्थ हैं कि वास्तविक वर्षा की औसत वर्षा से कम अथवा अधिक होती है। इसी औसत से कम अधिक वर्षा

होने को वर्षा की परिवर्तनशीलता कहा जाता है। यह पाया गया हैं कि कम वर्षा वाले साल अधिक होते हैं। उनकी तुलना में अधिक वर्षा वाले साल कम होते हैं। इस परिवर्तनशीलता को प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। पूर्वी भारत और पश्चिमी तट के दक्षिणी हिस्से यह 15% से कम है। लगभग एक –तिहाई पूर्वी भाग में वर्षा की परिवर्तनशीलता 25 प्रतिशत से कम है (चित्र –5.6)। इसके विपरीत पंजाब, राजस्थान, पश्चिमी उत्तरप्रदेश और उत्तरपश्चिमी गुजरात में यह 35 से अधिक है। यहां तक कि पश्चिमी राजस्थान और कच्छ क्षेत्र में यह 50 प्रतिशत से भी अधिक है। परिवर्तनशीलता और वर्षा की मात्रा के मानचित्रों की तुलना से दो महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। एक, वर्षा की मात्रा घटने के साथ – साथ उसकी परिवर्तनशीलता बढ़ती जाती है। इस तरह उसकी विश्वसनीयता घटती जाती है अर्थात् वर्षा की मात्रा और उसकी परिवर्तनशीलता का विपरीत का सम्बन्ध है जैसे कानपुर में औसत वर्षा 85 सेमी और परिवर्तनशीलता 20 प्रतिशत है. परन्तु कोलकाता में औसत वर्षा 162 सेमी तथा परिवर्तनशीलता 11 प्रतिशत है। दूसरे. वर्षा की अवधि छोटी होने के साथ उसकी परिवर्तनशीलता बढ़ती जाती है। कम वर्षा होने पर भी अगर वह लम्बे समय में मिलती है तो वहां उस स्थान से परिवर्तनशीलता कम हो सकती है। सूरत में 100 सेमी. वर्षा 46.5 दिनों में होती है। दूसरी ओर कोयम्बटूर में 55 सेमी. वर्षा 43.9 दिनों में होती है अर्थात, सूरत में प्रतिदिन वर्षा (2.15 सेमी.) कोयम्बटूर (1.25 सेमी) की तुलना में काफी अधिक है। इस कारण अधिक वर्षा होते हुए भी सूरत में पीरवर्तनीशीलता (39%) कोयम्बूटर (14%) से काफी अधिक है।

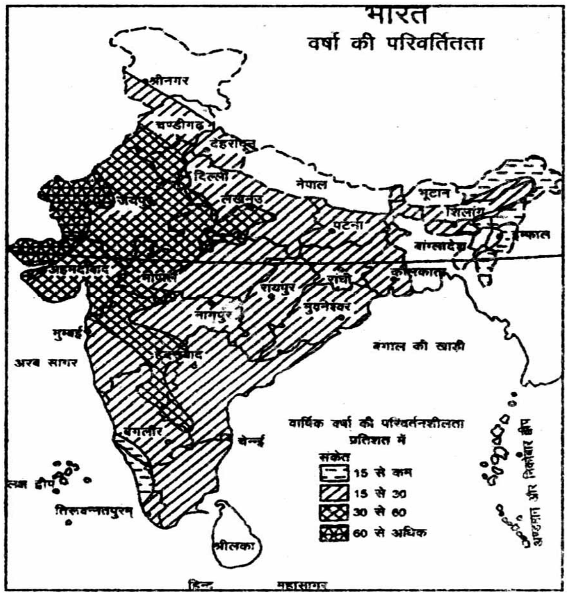

चित्र– 5.7 भारत में वर्षा की परिवर्तनशीलता

5.6 राजस्थान में मरुस्थल होने के कारण (Causes of Rajasthan Desert)

सूखा जल के अभाव का संचयी प्रभाव होता है, जिसका प्रभाव एक प्राकृतिक आपदा के रूप में कृषि, प्राकृतिक परिवेश तथा सम्बन्धित प्रक्रमों पर पड़ता है। इसकी प्रभावशीलता निरन्तर बढ़ती जाती है, तो अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वैज्ञानिक भाषा में सूखा किसी भी भू–भाग

में व्याप्त उस असामान्य मौसम की अवस्था को कहते हैं, जहाँ वर्षा की सम्भावना रही हो, पर वर्षा न हुई हो। दीर्घकाल तक शुष्कता में वृद्धि के कारण सूखे की स्थिति बनती है। सूखे की स्थिति में वर्षा की मात्रा, सामान्य औसत वार्षिक वर्षा से उसके विचलन तथा जल की मांग का गहरा सम्बन्ध होता है।

भारतीय मौसम विभाग (Indian Meteorological Department– IMD) के अनुसार सूखा उस दशा को कहते हैं, जब किसी भौगोलिक क्षेत्र में सामान्य वर्षा से वास्तविक वर्षा 75 प्रतिशत से कम होती है। भारतीय मौसम विभाग ने सूखे को दो रूपों में विभक्त किया है

(1) **प्रचण्ड सूखा (Severe Drought):** इस स्थिति में वर्षा का अभाव सामान्य वर्षा के 26–50 प्रतिशत से अधिक हो जाता है।

(2) **सामान्य सूखा (Normal Drought):** जब वर्षा का अभाव 50–25 प्रतिशत के मध्य, रहता है। सी. जी. बेटेज के अनुसार सूखे की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है, जब वार्षिक वर्षा सामान्य वार्षिक वर्षा की 75 प्रतिशत या इससे कम तथा मासिक वर्षा सामान्य मासिक वर्षा की 60 प्रतिशत या इससे कम होती है। जबकि जे. सी. होयट ने लिखा है कि सूखे की दशा उस समय उत्पन्न होती है, जब वार्षिक रख मासिक वर्षा सामान्य वर्षा के 85 प्रतिशत से कम होती है। सूखे की स्थिति में अपेक्षा के अनुरूप वर्षा न होने पर भूजल की सम्भाव्यता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

सूखा आने के कारण (Causes of drought)

सूखा एक प्राकृतिक आपदा है, जो भारत में प्रत्यक्ष रूप से यहाँ की जलवायुवीय दशाओं से अन्तर्सम्बद्ध है, लेकिन कुछ सीमा तक मानव भी इसके लिए उत्तरदायी है। मानव ने तीव्र औद्योगिक विकास के चलते अति वनोन्मूलन कर मानसून की अनुकूल दशाओं को प्रभावित किया है। सामान्यतः सूखे के निम्नांकित मुख्य कारण हैं

1. मानसून का देरी से आना तथा शीघ्र लौटना।
2. थार के रेगिस्तान में न्यून वायुदाब के अभाव के कारण कम वर्षा।
3. मानसून वर्षा में लम्बा अन्तराल।
4. अलनिनो एवं दक्षिणी दोलन (ENSO)
5. मानसून की दक्षिणी शाखा का जेट स्ट्रीम के कारण पुन : स्थापित होना।
6. अरब सागरीय जल पर सोमाली की ठण्डी धारा का प्रभाव।
7. तीव्र वनोन्मूलन।
8. मानसून का नूतन विक्षोभों (अनलिनो आदि) से प्रभावित होना।
9. परम्परागत फसल प्रारूप में परिवर्तन।
10. भूजल स्तर में गिरावट।
11. सतही जल स्रोतों में जल की कमी एवं गुणवत्ता ह्रास।
12. वर्षा जल का नियोजित ढंग से प्रबन्धन न होना।

सूखा के प्रभाव (Impacts of Drought)

सूखे के प्रकोप से सम्पूर्ण जीवमण्डल प्रभावित होता है, क्योंकिं पादप एवं जीव–जगत दोनों ही जल पर निर्भर रहते हैं। दीर्घकालिक सूखा किसी भी भौगोलिक प्रदेश को पारिस्थितिकीय, आर्थिक,

जनाकिकीय तथा राजनैतिक दृष्टि से प्रभावित करता है। सामान्यत: दीर्घकालिक सूखे के किसी भी प्राकृतिक प्रदेश में निम्नलिखित प्रभाव परिलक्षित होते हैं

1. जलाभाव की स्थिति को सहन न कर पाने के कारण अनेक जन्तुओं तथा पादपों की प्रजातियाँ नष्ट हो जाती हैं।
2. जीव –जन्तु अपने बचाव के लिए अन्यत्र स्थानों पर प्रवास कर जाते हैं, जिससे उस स्थान पर जन्तुओं की संख्या अधिक हो जाती है तथा पारिस्थितिकीय सन्तुलन बिगड़ जाता है।
3. भू –जल स्तर में कमी आ जाती है, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण कृषि तन्त्र पर पड़ता है।
4. सूखाग्रस्त क्षेत्र में चारे की कमी से कुछ जन्तु भूख से ग्रस्त होकर मर जाते हैं।
5. कृषि उत्पादन में कमी आने पर सम्बन्धित क्षेत्र पशु उत्पादन तथा औद्योगिक उत्पादन भी प्रभावित होते हैं तथा आर्थिक विकास अवरुद्ध होता है।
6. बेरोजगारी फैल जाती है।
7. स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

भारत में 16 प्रतिशत क्षेत्र सूखाग्रस्त है। देश के सूखा प्रभावित क्षेत्रों में उत्तरी–पश्चिमी मरूस्थलीय एवं अर्द्धमरूस्थलीय क्षेत्र, महाराष्ट्र, कर्नाटक व आन्ध्रप्रदेश के वृष्टिछाया प्रदेश जहाँ वार्षिक वर्षा काफी अनियमित रहती हे, मुख्य रूप से इसके अतिरिक्त वेगाई नदी के दक्षिण में तिरुनिवेल्लई, कोयम्बटूर, सौराष्ट्र, कच्छ, मिर्जापुर, पलापू पुरूलिया, कालाहांडी जिले भी सूखा प्रभावित हैं। भारतीय सिंचाई आयोग के अनुसार, कुल 77 जिले ऐसे हैं, जो सामान्य से 75 प्रतिशत कम वर्षा प्राप्त करते हैं, जिनके अन्तर्गत कुल कृषिगत भूमि का 34 प्रतिशत भाग सम्मिलित है। इनके अतिरिक्त 5 जिले ऐसे हैं जहाँ सूखे की आशंका सदैव बनी रहती है। भारत में निम्नलिखित क्षेत्र सूखाग्रस्त हैं

1. राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश। मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के भाग। इनमें पश्चिमी राजस्थान तथा कच्छ क्षेत्र सर्वाधिक सूखाग्रस्त क्षेत्र हैं।
2. मध्य महाराष्ट्र, आन्तरिक कर्नाटक, रायसीमा, दक्षिणी तेलंगाना तथा तमिलनाडु के कुछ भाग
3. उत्तरी पश्चिमी बिहार का कुछ भाग तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुछ भाग (मिर्जापुर आदि)।
4. पश्चिमी बंगाल से लगे उड़ीसा के कुछ भाग।

सूखे की सर्वाधिक बारम्बारता उत्तरी–पश्चिमी भाग में स्थित थार के रेगिस्तान में बनी रहती है, जिसका प्रसार मूलत : राजस्थान में है। राजस्थान में सूखे का मूल कारण थार के रेगिस्तान में बालूका कणों की अधिकता से तापीय विलोमता एवं अरावली पर्वत की अवस्थिति रहे हैं लेकिन समय के साथ मरुस्थल का विस्तार हुआ। वनोन्मूलन की दर में वृद्धि एवं बढ़ता जैविक दबाव, मानव एवं पशु संख्या भी इसके लिए उत्तरदायी कारण रहे हैं।

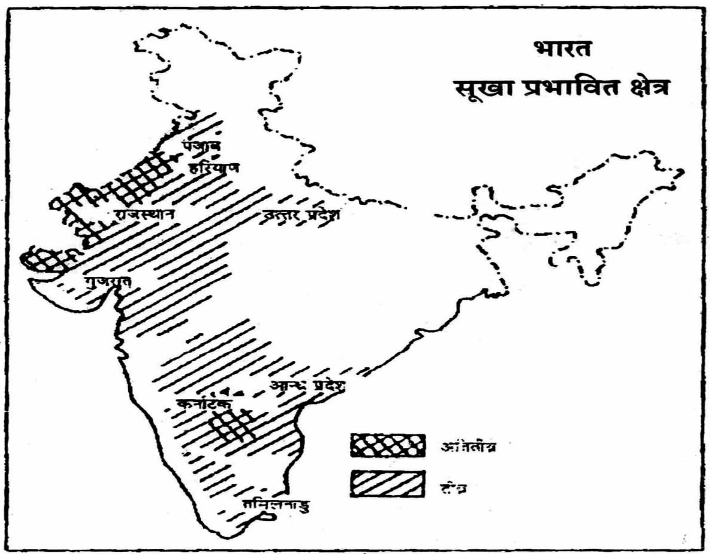

चित्र – 5.8 : भारत के सूखा प्रभावित क्षेत्र

राजस्थान में सूखे की बारम्बारता का मूल कारण यहाँ की प्राकृतिक दशायें रही हैं, जिनमें विशाल मरुस्थल, मानसूनी पवनों के लिए अवरोधी पर्वत का अभाव, नित्यवाही नदी एवं वृहद् जल भण्डारों का अभाव, नहरी तन्त्र का अभाव, मृदा की प्रकृति आदि मूल रहे हैं, जिस कारण राज्य में सूखे के परिणाम पूर्वोत्तर राज्यों में बाढ़ की स्थिति से भयंकर रहे है, राज्य में आर्थिक सामाजिक पर्यावरण का इतना अवनयन हो गया है कि गरीबी, कुपोषण, बेरोजगारी तथा भुखमरी आदि समस्यायें उभन्न हो रही हैं। भौगोलिक दृष्टि से यदि लगातार सूखा बना रहता है या स्थायी जल भण्डारों से जल का निरन्तर दोहन किया जाता है तो सूखा संचयी का रूप ले लेता है तथा यही स्थिति राजस्थान में बन गई जहाँ सूखे का मूल कारण सूखा (चक्रीय रूप) ही बन गया है। यहाँ के सन् 1899 के 'छप्पनिया का अकाल' तथा 1917 के अकाल सर्वविदित हैं जिनमें लाखों लोगों की जाने गयीं। छप्पनिया के अकाल में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का भक्षण करने लगा था। वर्तमान में अति वनोन्मूलन से वायुमण्डलीय नमी में कमी आयी। साथ ही अनियन्त्रित पशुचारण, भूजल के अतिदोहन तथा मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया के कारण सूखा प्रचण्ड रूप धारण करता जा रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में पूर्व के 100 वर्षों में लगभग 28 सूखे पड़े, जिनमें दो करोड़ लोग मारे गये तथा इससे पहले के 100 वर्षो में लगभग 4 करोड़ लोग मरे, जिसका प्रमुख कारण ब्रिटिश सरकारी नीतियों थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त देश में आये प्रचण्ड सूखों की बारम्बारता नहीं रही है।

राजस्थान के मरुस्थल की समस्या : राजस्थान के पश्चिमी भाग में अल्प वर्षा होती हैं, यद्यपि जलवाहक मानसून हवाएं इसके ऊपर से गुजरती हैं लेकिन इनसे बहुत कम वर्षा होती है। इस भाग में तापमान प्रवणता का परीक्षण किया गया है और देखा गया कि निचले क्षोभमंडल मे समुद्र तल से लगभग 1.5 किमी ऊपर तापमान में प्रतिलोमन होने लगता है अर्थात् ऊँचाई के साथ ताप कम न होकर बढ़ने लगता है। यह दशा नम हवाओं के ऊपर उठने और संघनित होने के प्रतिकूल हैं। वैज्ञानिकों ने इस ताप के प्रतिलोभन के कारणों को ढूढ़ने का प्रयास किया है।

यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि यह क्षेत्र प्राचीन काल से शुष्क नहीं रहा है। प्रागैतिहासिक प्रमाणों से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में तीन प्रमुख सभ्यताएं विकसित हुई थी – मोहन जोदड़ों, हडप्पा, भूरे

बर्तनों वाली सभ्यता का विकास नहीं हो पाता। रगमहल संस्कृति का पतन ईसवीं के आरम्भिक शताब्दियों में हुआ था। मरूस्थल की उत्पत्ति का काल अब से 400 से 1000 वर्ष पूर्व बैठता है। यही समय रंगमहल संस्कृति के पतल का काल भी बैठता है। जलवायु में यह परिवर्तन पूर्णत: स्थानीय है। वास्तव में रंगमहल सभ्यता के बाद अत्यधिक एवं अनुचित उपयोग के कारण इस भाग की मिट्टी की संरचना बहुत बिगड़ गई। जिस कारण भारी मात्रा में धूल की मात्रा ऊपर उठ कर ऊपरी वायुमंडल में धूलि के बादल के रूप में जमा हो गई।

सन् 1966 के ग्रीष्म काल में राजस्थान के ऊपर वायुयान से राजस्थान के ऊपरी वायुमंडल का निरीक्षण किया गया और पाया गया कि इस क्षेत्र में धूल के बादल का विस्तार कल्पना से अधिक है। इस धूलि के बादल का धरातल से शीर्ष अधिक धूलिकण ऊपर उठने की मैकनिज्म विवादास्पद है। इसका सम्बन्ध धूलि के उत्पत्ति से है। अगर धूलि की उतपत्ति स्थानीय है तो उसके 5 किमी ऊपर उठने के लिए काफी शक्तिशाली आरोही वायुधारा का होना आवश्यक है। अगर ऊपर उठने वाली ऐसी धारा उपस्थित है तो क्यों नहीं मानसून हवाएं ऊपर उठकर वर्षा करती? क्षेत्रीय परीक्षणों में यह पाया गया कि यह मरूस्थली क्षेत्र वायु के नीचे उतरने का क्षेत्र है। यह तभी संभव है जब तापमान ऊपर से नीचे की ओर घटे। यह देखा गया कि धूलि के बादल सूर्यातप की बड़ी मात्रा को वायुमंडल में लौटा देते हैं तथा इस धूलि बादल से नीचे की ऊष्मा की शीघ्रता से क्षति होती है। कुल मिलाकर तापमान कम होता है। फलत : हवाएँ नीचे अवतरित होती हैं और मानसून हवाएं ऊपर नहीं उठ पाती और यह भाग शुष्क रह जाता है।

5.7 थार्नथ्वेट के अनुसार जलवायु प्रदेश

प्रसिद्ध अमेरीकी जलवायुविद् सी. डन्ल्यू थार्नथ्वेट ने विश्व की जलवायु का प्रथम वर्गीकरण सन् 1931 में प्रस्तुत किया। जिसे सन् 1933 में व्यापक स्वरूप दिया इन्होंने अपने वर्गीकरण में वर्षा प्रभावित (T) तथा तापीय दक्षता सूचकों को आधार माना है। ये निम्नलिखित हैं –

1. **वर्षा प्रभाविता (Precipitation Effectiveness)** : इसमें कुल मासिक वर्षा को मासिक वाष्पीकरण से विभाजित करके वर्षण प्रभाविता अनुपात (P/E ratio) प्राप्त करते हैं तथा 12 महिनों का अनुपात P/E योग करके वर्षण प्रभावित सूची बनाते हैं। इस आधार पर थार्नथ्वेट ने विश्व स्तर पर निम्नांकित आर्द्रता प्रदेश निर्धारित किये थे–

संकेत	आर्द्रता प्रदेश	वनस्पति के प्रकार	वर्षण प्रभाविता सूचकांक
A	अधिक आर्द्र (Wet)	वर्षा वन	128 या ऊपर
B	आर्द्र (Humid)	वन	64– 127
C	उपार्द्र (Sub Humid)	घास क्षेत्र	32–63
D	अर्द्धशुष्क (Semi Arid)	स्टेपीज	16–31
E	शुष्क (Arid)	मरूस्थलीय	16 से कम

2. **तापीय दक्षता (Thermal Effeciency, T/E) :** इसमें कुल 12 महीनों की तापीय दक्षता के अनुपात का योग से तापीय दक्षता सूचकांक निकालते है। इस आधार पर निम्नांकित तापीय प्रदेश निर्धारित किए हैं।

प्रतीक	तापीय प्रदेश	तापीय दक्षता सूचकांक
A’	उष्ण कटिबंधीय (Tropical)	128 ऊपर
B’	समशीतोष्ण कटिबंधीय या मध्य तापीय (Mesothermal)	64–127
C'	शीतोष्ण कटिबंधीय या सूक्ष्म तापीय (Micro thermal)	32–63
D'	टैगा (Taiga)	16–31
E'	टुण्ड्रा (Tundra)	1–15
F’	पाला या हिमाच्छादित (Frost)	0

इस प्रकार थार्नथ्वेट महोदय ने उपर्युक्त सारणियों में संकेतों की सहायता से सम्पूर्ण के 32 जलवायु वर्ग बनाये थे इनमें कुछ छोटे अक्षरों का भी उपयोग किया गया था, जो निम्नलिखित है

r = वर्षभर वर्षण

s = ग्रीष्मकाल में वर्षा की कमी (ग्रीष्मकाल शुष्क)

w = शीतकाल शुष्क

d = वर्षभर शुष्कता

इस आधार भारत को निम्नलिखित जलवायु प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है –

1. **AA’r–उष्ण कटिबंधीय आर्द्र जलवायु** : इस प्रदेश में वर्ष भर तापमान ऊँचा रहता हे व आर्द्रता भी पर्याप्त रहती है। इसके विस्तार कोंकण, मालाबार तटीय क्षेत्र, गंगा का डेल्टा, मेघालय, असम का दक्षिणी, भाग, मिजोरम तथा त्रिपुरा में प्रत्येक मौसम में पर्याप्त वर्षा (r) होती है।
2. **BA'w–उष्ण कटिबंधीय आर्द्र जलवायु** इस प्रदेश में शीतकाल शुष्क रहता है तथा ग्रीष्मकाल में पर्याप्त वर्षा होती है। ऐसी जलवायु पश्चिमी घाट एवं पश्चिमी बंगाल में मिलती है। '

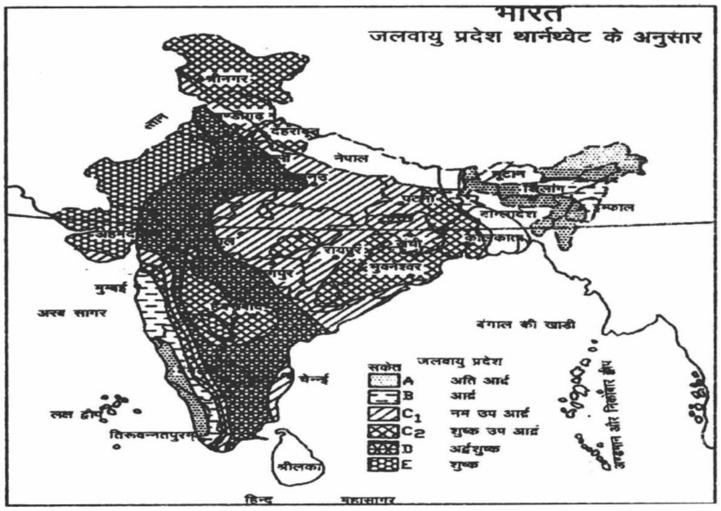

चित्र – 5.9 : थार्नथ्वेट पर आधारित भारत के जलवायु प्रदेश

3. **BB'w – मध्यतापीय या समशीतोष्ण कटिबंधीय आर्द्र जलवायु प्रदेश :** इसमें शीतकाल शुष्क रहता है तथा वर्षा ग्रीष्मकाल में होती है। इसका विस्तार असम, मेघालय मिजोरम व नागालैण्ड में है।

4. **CA'w– उष्ण कटिबंधीय उपार्द्र जलवायु प्रदेश इसमें उपार्द्र (Sub humid)** दशायें मिलती है तथा वर्षा ग्रीष्मकाल में होती है व शीतकाल शुष्क रहता है। यह देश का सबसे बड़ा जलवायु प्रदेश है। जिसमें उत्तरप्रदेश, दक्षिणी बिहार, झारखण्ड, द. एवं पूर्वी गुजरात, द.पू. राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश आदि सम्मिलित हैं।
5. **Ca'w–** यह भी उष्ण कटिबंधीय उपार्द्र जलवायु वर्ग का प्रदेश है लेकिन इसमें शीतकाल में वर्षा होती है इसका विस्तार तमिलनाडु के पूर्वी भागों पर है।
6. **CB'w– मध्य तापीय उपार्द्र जलवायु प्रदेश** –इसमें शीतकाल शुष्क तथा ग्रीष्म काल आर्द्र रहता है। इसका विस्तार गंगा के मैदान में है। वर्षा की पर्याप्ता के आधार पर घास प्रदशों में सम्मिलित करते हैं।
7. **DA'w– उष्ण कटिबंधीय अर्द्धशुष्क जलवायु प्रदेश**–इसमें शीत ऋतु शुष्क (w) एवं ग्रीष्म काल में वर्षा होती है। इसका विस्तार गुजरात के कच्छ प्रदेश एवं अरावली पर्वत सहित दोनों ओर के भाग सम्मिलित है जो राजस्थान में अवस्थित हैं।
8. **DB'w– मध्यतापीय अर्द्धशुष्क जलवायु प्रदेश–** इसका विस्तार उत्तरी पश्चिमी राजस्थान, पश्चिमी पंजाब, हरियाणा में है। जिसमें शीतकाल शुष्क व ग्रीषकाल में वर्षा होती है। यह स्टेपीज तुल्य जलवायु प्रदेश है।
9. **DB'd– मध्यतापीय या समशीतोष्ण अर्द्धशुष्क जलवायु प्रदेश–** इसमें प्रत्येक मौसम में वर्षा की कमी पायी जाती है अर्थात् शुष्कता बनी रहती है। दक्षिणी भारत में पश्चिमी घाट के पूर्वी भाग में स्थित वृष्टि छाया प्रदेश में ऐसी जलवायु पायी जाती है।
10. **D'– टैगा तुल्य जलवायु–** इसमे तापीय दक्षता सूचकांक काफी कम (16–31) होता है। हिमालय के निचले भागों में ऐसी जलवायु मिलती है, जहाँ अपेक्षाकृत लम्बी शीत ऋतु मिलती है व तापमान कम पाया जाता है।
11. **E'– टुण्ड्रा जलवायु प्रदेश–** इस प्रकार की जलवायु उन प्रदेशों में मिलती है जहाँ वर्षभर तापमान हिमांक से नीचे रहता है तथा शीतकाल में सदैव हिमपात होता है, भारत में उच्च हिमालय क्षेत्र व लद्दाख में ऐसी जलवायु मिलती है।
12. **ES'd– उष्ण कटिबंधीय मरूस्थलीय जलवायु :** इसमें प्रत्येक मौसम में वर्षा की कमी रहती है अर्थात शुष्कता बनी रहती है। इसका विस्तार पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तान में है।

बोध प्रश्न–2

1. भारत में अधिक वर्षा वाले क्षेत्र बताइये।
   ....
   ....
2. सूखा के प्रकार बताइये।
   ....
   ....
3. CWg का क्या अर्थ है?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

4. P/E, T/E से क्या तात्पर्य है?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

5. अल निनो क्या है?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

5.8 सारांश (Summary)

भारत की जलवायु यहाँ की भू– आकृतिक बनावट से प्रभावित है जिसके अनुसार ही वर्षा का भी वितरण होता है। मेघालय की कीपाकार पहाड़ियों अधिक वर्षा प्राप्त करती हैं तो राजस्थान की नीची एवं मानसूनी पवनों के समानान्तर स्थित अरावता पर्वतमाला वर्षा करने में सहायक नहीं हैं। यहाँ का कृषि तन्त्र पूर्णतया मानसून पर निर्भर करता है। इसलिए हमारे लिए भारतीय जलवायु के पर्याय मानसून की उत्पत्ति एवं क्रियाविधि का भौगोलिक अध्ययन वर्तमान में अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। भारत में मानसून का आंशिक विस्थापन होने पर भी सूखा की स्थिति बन जाती है। ऐसे में वर्षा कर वितरण एवं जलवायु प्रदेशों की जानकारी भी महत्वपूर्ण है।

5.9 शब्दावली (Glossary)

- **मानसून :** अरबी भाषा के मौसिम से बना शब्द जिसका अभिप्राय मौसम या ऋतु। भारतीय सन्दर्भ में मौसम के अनुसार क्रम परिवर्तित करने वाली पवनें मानसून कहलाती हैं।
- **मौसम एवं जलवायु :** दैनिक वायुमण्डलीय दशायें मौसम कहलाती हैं तथा मौसम की।, औसत दशाओं का लम्बी अवधि तक का योग जलवायु कहलाता है।
- **सूखा :** सूखा जल के अभाव की भौगोलिक स्थिति है, जब वर्षा औसत से काफी होती है।
- **अन्तरा उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र :** भूमध्य रेखा के दोनों ओर स्थित न्यून दाब की पेटी जहां व्यापारिक पवनें आकर मिलती है।
- **जेट स्ट्रीम :** ऊपरी वायुमण्डल में चलने वाली पवन व्यवस्था, जो ऋतुओं के अनुसार बदलती दिशाओं में चलती हैं।

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Das, P.K.: **The Monsoon**, N.B.T., New Delhi, 200
2. Chritch field, H.J.: **General Climatology,** Prentice hall, New Delhi, 2001
3. गुर्जर, आर. के. एवं जाट बी. सी. : **भारत का भूगोल,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर 2007
4. जाट, बी. सी. : **आपदा प्रबन्धन,** मंथन पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2007
5. गौतम पी. आर. : **भारत का वृहद भूगोल.** वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर, (2001)

6. Jat, B.C.: **Natural Hazards and Disaster Management**, MD Publication Pvt. New Delhi
7. शर्मा, श्रीकमल : **भारत का भूगोल**, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ का अकादमी, भोपाल, 2004

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. अनियमितता एवं विषमता
2. सूर्य के उत्तरायण के समय दक्षिण से उत्तर–पूर्व हिन्द महासागर से मानसून पवनें भारतीय उपमहाद्वीप की तरफ चलती हैं
3. यह वायु का ऊपरी प्रवाह है जो उत्तरी भारत के ऊपर क्षोभ मंडल में पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होता है।
4. फ्लोन ने।
5. अरब सागर एवं बंगाल कों खाड़ी।

बोध प्रश्न–2

1. असम, मेघालय, प. घाट, केरल
2. मौसमी सूखा, जलीय सूखा, पारिस्थितिकीय सूखा, मृदा जनित।
3. Cwg कोपेन द्वारा वर्गीकुत जलवायु प्रदेश (गंगा का मैदान) जहाँ वर्षा काल पूर्व तापमान ऊँचा रहता है।
4. वर्षा प्रभाविता एवं तापीय दक्षता।
5. प्रशान्त महासागर में पीरू तट के पास प्रवाहित गर्म जल की धारा जो दिसम्बर के अन्त में विकसित होती हैं।

5.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारतीय जलवायु की विशेषताएँ बताइये।
2. भारतीय मानसून की उत्पत्ति एवं क्रियाविधि की विस्तृत विवेचना कीजिए।
3. भारत में वर्षा का वितरण प्रारूप बताइये!
4. थार्नथ्वेट द्वारा निर्धारित सूचकों के अनुसार भारत को जलवायु प्रदेशों में विभाजित कीजिए।
5. भारतीय जलवायु के कृषि क्षेत्र पर प्रभावों का वर्णन कीजिए।

इकाई 6: प्राकृतिक वनस्पति एवं वन्य जीव(Natural Vegetation and Wild Life)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 वन

6.2.1 वनों का वितरण

6.2.2 वनों का वर्गीकरण

6.2.3 वनों के प्रकार

6.2.4 वन्य उपज और उनका उपयोग

6.2.5 भारतीय वनों की समस्याएँ

6.3 राष्ट्रीय वन नीति

6.4 वन संरक्षण और वन्य जीव

6.4.1 राष्ट्रीय वन आयोग

6.4.2 वानिकी अनुसंधान

6.4.3 वन्यजीव अनुसंधान

6.4.4 वानिकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण

6.4.5 वन्य जीव शिक्षा एवं प्रशिक्षण

6.4.6 समन्वित वन सुरक्षा योजना

6.4.7 राष्ट्रीय दलदली भूमि कार्यक्रम

6.4.8 राष्ट्रीय वानिकीकरण और पारिस्थितिकी विकास बोर्ड

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 संदर्भ ग्रंथ

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.9 अभ्यार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे : –

- भारत वर्ष में वनों का वितरण
- भारतीय वनों के प्रकार और उनका वर्गीकरण,
- भारतीय वनों की विभिन्न उपजें और उनका उपयोग,
- वनों के विकास से सम्बन्धित समस्याएं और उनका निराकरण,
- वन नीति और वनों का संरक्षण,
- वानिकी एवं वन्य जीव अनुसंधान व प्रशिक्षण की जानकारी।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

अनुकूल भौतिक दशाओं में स्वत : उगने वाली पादप –जाति (Floral species) प्राकृतिक वनस्पति कहलाती है। सभी प्रकार की प्रजातियों वाले पेड– पौधे, झाड़ियों और घास के समूह प्राकृतिक वनस्पति के अन्तर्गत सम्मिलित किए जाते हैं। विशिष्ट प्रजाति के वृक्ष और पौधे बनी का सीमा निर्धारण करते हैं। देश की आर्थिक समृद्धि को बढ़ाने के साथ –साथ पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए भी प्राकृतिक वनस्पति का यथोचित आवरण आवश्यक है। भारत के आक्षांशीय और देशान्तरीय विस्तार के कारण यहाँ पर उष्ण और शीतोष्ण कटिकधीय प्रदेशों की वनस्पति पाई –जाती है। वनस्पति के विकास को मृदा और जलवायु दशाएं सर्वाधिक प्रभावित करती हैं। चट्टानों की कोमलता, उनकी ढाल प्रवणता, खनिज पदार्थो की उपस्थिति, मृदा की परतें और उर्वरता वनस्पति के आकार –प्रकार और वृद्धि दर को नियंत्रित करते हैं।

6.2 वन (Forest)

वन में वृक्षों की प्रधानता होती है। वन में विशेष तरह के पेड–पौधों का सघन आवरण होता है। वन या जंगल (Forest) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के फोरिस (Foris) शब्द से हुई है, जिसका उपयोग घने वृक्षों वाले आकर्षक क्षेत्र के रूप में किया जाता है। वनों का मानव जीवन के लिए अत्यधिक महत्व है। वनों को राष्ट्रीय सम्पदा माना गया है। वनों का आवरण मानव सभ्यता को सुरक्षा कवच प्रदान करता है। भारतीय संस्कृति में वनों का महत्व सर्वविदित है। वन भारतीय साधकों और चिंतकों को एकांतवास प्रदान करते रहे हैं, जहाँ उन्होंने संसार के गूढ रहस्यों को समझा। भारत में वनों को देवतुल्य माना गया है। इन सबके विपरीत वर्तमान समय में द्रुतगति से किया गया वनों का विनाश चिंताजनक है। वनों को कमी का दुष्प्रभाव वर्षा के वितरण पर पड़ता है। वन कटने से भारतीय मानसून की अनिश्चितता बढ़ गई है। सूखा और बाढ़ देश की प्रगति में बाधक तत्व बनकर सामने आए हैं। 'तरू देवो भव' की अवधारणा को भुलाने का खामियाजा हमारी आने वाली पीढ़ी को भी चुकाना पड़ेगा।

भारत की प्राकृतिक वनस्पति, उच्च पर्वतीय भागों और अति शुष्क भागों को छोडकर, पूर्णत: वृक्षीय (arboreal) है। आरम्भ में जनजीवन इन्हीं जंगलों पर निर्भर था। बाद में जनसंख्या की वृद्धि के साथ वनों को तेजी रो साफ किया गया। वर्तमान में वन केवल उपभागों में ही बचे हैं जो भौतिक दशाओं के कारण कृषि करने लायक नहीं हैं। इण्डियन कौंसिल ऑफ फारेस्ट्री रिसर्च के अनुसार सन् 1999 मे वनो का विस्तार 6.37 लाख वर्ग किमी पर था। भूमि उपयोग के आकड़ों के अनुसार सन् 1998–99 में केवल 6.9 लाख वर्ग किमी. भूमि पर वनों का विस्तार था जो देश के प्रतिवेदित क्षेत्र का 22.5 प्रतिषत तथा कुल भौगोलिक क्षेत्र का 19.4 प्रतिशत है। यह अनुपात आदर्शी दशा से काफी कम है। सन्तुलित भूमि उपयोग की दृष्टि से एक–तिहाई (33%) भूमि पर वन होना चाहिए।

राष्ट्रीय सुदूर संवेदन एजेंसी (NRSA) हैदराबाद ने उपग्रह से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वन–आवरण के क्षेत्रफल की गणना की है। सन् 1981–83 की सूचना के अनुसार वन आवरण 640.8 हजार वर्ग किमी. पर था जो सन् 1996–98 में घटकर 637.3 हजार वर्ग किमी ही रह गया। इस तरह इन 15 वर्षो में 3.5 हजार वर्ग किमी. से वन साफ कर दिए गए।

देश की वन रिपोर्ट 2005 के अनुसार देश में कुल 677,088 किमी वन क्षेत्र हैं और यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 20.60 प्रतिशत है। इसमें से 54,569 किमी (1.66 प्रतिशत) अतिसघन वन, 3,32,647 किमी (10.12 प्रतिशत) औसत घने और 289872 किमी (8.82 प्रतिशत) खुले वन क्षेत्र हैं। इनमें 38,475 किमी (1.17 प्रतिशत) वन क्षेत्र बाद में जुड़ा है। इस वन रिपोर्ट के अनुसार राज्यों में वास्तविक वन क्षेत्र –तालिका 61 में प्रदर्शित है।

6.2.1 वनों का वितरण

वनों का वितरण देश की जलवायु, मिट्टियों, धरातल और ढाल प्रवणता से सर्वाधिक प्रभावित होता है। गगनचुम्बी हिमालय की चोटियों से गंगा के डेल्टाई क्षेत्र तक, नदी निर्मित उपजाऊ मैदानों से मरूभूमि तक, बीहड व बंजर भूमि से लेकर दलदली भूमि तक की धरातल, विषमता विद्यमान है। उष्ण–आर्द्र से लेकर शुष्क, आर्द्र–शुष्क तथा समशीतोष्ण तक की जलवायु विषमता देश में पाई जाती है। पर्वतीय, मरूस्थलीय, पठारी, कछारी, काली, पीली, भूरी व लाल विविध रंग–रूप वाली मिट्टियाँ देश में पाई जाती हैं। परिणामस्वरूप विविध प्रकार के वनों का वितरण देश में पाया जाता है। भारतीय वनों में लगभग 30 हजार पादप प्रजातियाँ पाई जाती हैं। पारिस्थितिक संतुलन एवं सतत प्रगतिशील पर्यावरण के लिए देश के 33 प्रतिशत क्षेत्र पर वनाच्छादन आवश्यक है।

तालिका व भारत के राज्यों में वन के अन्तर्गत प्रतिशत क्षेत्र

राज्य	**वन क्षेत्र**	**राज्य**	**वन क्षेत्र**	**राज्य**	**वन क्षेत्र**
अंडमान निकोबार	84.00	छत्तीसगढ़	41.7	प बंगाल	12.5
मिजोरम	82.9	केरल	40.0	जम्मू व कश्मीर	9.5
अरूणाचल प्रदेश	81.2	असम	35.3	चंड़ीगढ़	7.9
नागालैंड	80.5	उडीसा	31 .4	गुजरात	7.7
मणिपुर	75.8	झारखण्ड	28.4	दिल्ली	7.5
मेघालय	69.5	हिमाचल	25.8	बिहार	6.0
त्रिपुरा	67.4	मध्यप्रदेश	25.0	उत्तर प्रदेश	5.7
गोआ	56.6	कर्नाटक	19.3	दमन–दीव	5.4
सिक्किम	45.0	तमिलनाडू	16.5	पंजाब	4.8
उत्तरांचल	44.7	आध्रप्रदेश	16.2	राजस्थान	4.8
दादरानगर हवेली	44.6	महाराष्ट्र	15.4	हरियणा	3.9
भारत	20.6	**स्रोत–** वन्य स्थिति प्रतिवेदन, भारतीय वन सर्वेक्षण 2001			

देश के 25 राज्यों में वनों का कुल क्षेत्रफल में हिस्सा हरियाणा में 3.9 प्रतिशत और पंजाब में 4.8 प्रतिशत से लेकर अरुणाचल प्रदेश में 81.3 प्रतिशत और मिजोरम में 82.9 प्रतिशत तक है। देश का औसत 20.6 है। कुल 10 राज्यों में एक तिहाई से अधिक भूमि वनों के अन्तर्गत थी जिनमें से आठ हिमालयीन राज्य है। आसाम और मणिपुर, को छोडकर सभी पूर्वी राज्यों में वनों का काफी विस्तार है। प्रायद्वीपीय भारत में गोवा (56.6%), छत्तीसगढ़ (41.7%) और केरल (4०%) इस वर्ग मे आते हैं। इससे सुस्पष्ट है कि भारत का प्रमुख वन क्षेत्र हिमालय तथा उत्तरपूर्वी पर्वतीय एवं पहाड़ी भाग हैं। अन्यत्र अगम्य पहाड़ी राज्यों में ही वन पाए जाते हैं।

दूसरी ओर 10 राज्यों में एक –पचमांश भाग पर भी वन नही हैं। ये राज्य दो पेटियों में फैले है। सबसे महत्वपूर्ण पेटी उत्तरी विशाल मैदान की है जो राजस्थान (4.8%) से लेकर पश्चिमी बंगाल (12.5%) तक फैली है। इन्हीं से लगा गुजरात राज्य है। यहां के चार राज्यों – हरियाणा (3.9%), पंजाब (4.%), राजस्थान (4.8%) तथा गुजरात (7.7%) में 10 प्रतिशत से कम भूमि वन हैं। अल्प वनों की दूसरी पेटी महाराष्ट्र (15.4%), तमिलनाडु (16.5%) तथा कर्नाटक (19.3%) पर फैली है। जिन क्षेत्रों में वृक्षारोपण की तीव्र आवश्यकता है उनमें राजस्थान, गुजरात, सतलज –गंगा का मैदान, दकन पठार का वृष्टि छाया प्रदेश, उत्तरी मध्यप्रदेश, तटीय उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश और तमिलनाडु सम्मिलित हैं। दूसरी तरफ कुछ क्षेत्रों में वनों का आधिक्य है। उनमें जम्मू– कश्मीर, उत्तरांचल, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, त्रिपुरा की पहाड़ियाँ, छोटा नागपुर पठार, पश्चिमी घाट, सतपुड़ा पहाड़ियों, बघेलखण्ड, छत्तीसगढ़ का सीमान्त बेसिन, उड़ीसा की पहाड़ियाँ, दण्डाकारण्य, गोदावरी बेसिन, तमिलनाडु उच्च प्रदेश, कृष्णा बेसिन आदि मुख्य हैं। यहां वानिकी आधारित अर्थ व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए।

बोध प्रश्न – 1

1. प्राकृतिक वनस्पति क्या है?

   ....

   ....

2. कितनी भूमि पर वनाच्छादन अपेक्षित है?

   ....

   ....

3. भारत की कितनी भूमि वन आच्छादित है?

   ....

   ....

4. राष्ट्रीय औसत से कम वनाच्छादन वाले चार राज्यों के नाम लिखिए।

   ....

   ....

5. मिजोरम में वनों का विस्तार कितने प्रतिशत भूमि पर है?

   ....

   ....

6.2.2 वनों का वर्गीकरण (Classification of Forests)

वनों को सुरक्षा और संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से भारतीय वन उपनिवेश काल से ही तीन समूहों में विभाजित किये गये थे–

1. **सुरक्षित वन (Reserved Forests)–** जलवायु पर दीर्घकालिक प्रभाव डालने वाले वनों सुरक्षित वनों के अन्तर्गत समलित किया गया है। राजकीय सुरक्षा प्राप्त ये वन राष्ट्रीय सम्पदा मान लिए गए हैं। इन वनों में पशु चराना और लकड़ी काटना पूर्णतया प्रतिबंधित होता है। कुल वनों का 54 प्रतिशत क्षेत्र सुरक्षित वनों का है। राष्ट्रीय पार्क और अभयारण्य

इन्हीं वनों के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। केरल, तमिलनाडु और जम्मू कश्मीर में इन वनों का सर्वाधिक; 85–95 प्रतिशत विस्तार

2. **संरक्षित वन (Protected Forests')–**इन वनों में राजकीय देख रेख में स्थानीय–लोगों को लकड़ी काटने तथा पशु चराने की छूट दी जाती हैं। साथ ही इन वनों को नष्ट होने से बचाने के उपाय भी किये जाते हैं 'कुल वनों के 29 प्रतिशत क्षेत्र पर संरक्षित वनों का विस्तार है। राज्यों की दृष्टि से बिहार, झारखण्ड और हिमाचल प्रदेश में इन वनों का सर्वाधिक (80 प्रतिशत) क्षेत्र आता है।
3. **अवर्गीकृत वन (Unclassified Forests)–** इन वनों में स्थानीय निवासी अपनी मर्जी से लकड़ी काटने और पशुओं के चराने का काम करते हैं। राज्य द्वारा इन वनों का अभी वर्गीकृत नहीं किया गया अत: इनके सार्वजनिक उपयोग पर सरकारी नियन्त्रण होता, किन्तु सरकार इनके उपयोग के लिए शुल्क अवश्य वसूल करती है। कुल वनों के 16 प्रतिशत क्षेत्र पर इनका विस्तार है। गोवा. मेघालय और नागालैण्ड में इस प्रकार के वन सर्वाधिक हैं।

तालिका– 6.2 : भारत के वनों का प्रशासनिक वर्गीकरण

क़ सं.	वन वर्ग	क्षेत्र (लाख हैक्टेयर)	प्रतिशत
1.	सुरक्षित वन	406	54
2.	संरक्षित वन	215	29
3.	अवर्गीकृत वन	131	17
	कुल वन क्षेत्र	752	100

6.2.3 वनों के प्रकार (Types of Forests)

वनों की संरचना, संघटन और दशा में बहुत अधिक प्रादेशिक विभिन्नता पाई जाती है। यह विभिन्नता जलवायु भूगर्भिक सरंचना, धरातल मिट्टी, वन्य– जीव और वनों के उपयोग के – इतिहास की विभिन्नता के कारण पैदा हुई है। इनमे वनों में मोटा अन्तर प्रमुख रूप से जलवायु के कारण आता है। जलवायु में वर्षा की मात्रा तथा उसका ऋतुगत वितरण तथा तापमान की दशा सबसे प्रमुख कारक हैं। ताप के वितरण के आधार पर भारत का अधिकांश भाग उष्ण कटिबंध में आता है। केवल उतारी पर्वतीय क्षेत्र पर उपोष्ण तथा शीताष्ण कटिबंध की दुशाएं पाई जाती हैं। वर्षा एक ऋतु में होती है तथा ग्रीष्मकाल गर्म और शुष्क होती है। फलत: पतझड वाले वन मुख्य हैं। आधेक वर्षा वाले भाग में सदाबहार वन हैं। छोटे स्तर पर अन्तर शेष भौतिक कारकों द्वारा पैदा किया गया है।

वनों का शास्त्रीय वर्गीकरण सबसे पहिली बार एच. जी. चैम्पियन ने सन् 1936 में प्रस्तुत किया था। इन्होंने भारत के वनो को 116 प्रकारों मैं रखा था। चैम्पियन के बाद वनों के वर्गीकरण की समस्या का जी. एस. पुरी (1960) ने आलोचनात्मक अध्ययन किया है। पुरी ने वनो में जीवों द्वारा किये गये परिवर्तन पर जोर दिया है। इनका वर्गीकरण प्रमुखत : जलवायु की दशाओं तथा वनों के संघटन पर आधारित है। इस आधार पर वनों को 5 वृहद् समूहों और 14 प्रकारों में विभक्त किया सकता है।

I. उष्णार्द्र प्रकार (Tropical Wet Evergreen Forest)

1. उष्णार्द्र सदाबहार वन (Tropical Wet evergreen Forest)
2. उष्णार्द्र अर्ध सदाबहार वन (Tropical Wet Semievergreen Forest)
3. उष्ण कटिबंधीय आर्द्र पतझड़ वन (Tropical Moist Deciduous Forest)
4. तटीय एवं ज्वार प्रान्तीय वन (Littoral and Tidal Forest)

II. उष्ण शुष्क प्रकार के वन (Tropical Dry Forest)

5. उष्णकटिबन्धीय शुष्क पतझड़ वाले वन (Tropical Dry Deciduous Forest)
6. उष्ण कटिबंधीय शुष्क सदाबहार वन (Topical Dry Evergreen Forest)
7. उष्ण कटिबन्धीय कंटीले वन (Tropical Thorn Forest)

III. पर्वतीय उपोष्ण कटिकधीय प्रकार (Montane Sub– Tropical Types)

8. आर्द्र पहाड़ी वन (Wet Hill Forest)
9. उपोष्ण चीड़ के वन (Sub Tropical Pine Forest)
10. उपोष्ण शुष्क सदाबहार वन (Sub– Tropical Dry Evergreen Forest)

IV. पर्वतीय शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रकार (Montane Temperate Type)

11. तर शीतोष्ण कटिकधीय वन (Wet Temperate Forest)
12. आर्द्र शीतोष्ण कटिबन्धीय वन (Moist Temperate Forest)
13. हिमालयीन शुष्क शीतोष्ण कटिबन्धीय वन (Himalayan Dry Temperate Forest)

V. अल्पाइन प्रकार (Alpine Type)

14. अल्पाइन वन (Alpine Forest)

I. उष्णार्द्र प्रकार के वन

1. **उष्णार्द्र सदाबहार वन (Tropical Evergreen Forest) :** ये उष्ण कटिबंधीय वन के एक रूप हैं। ये वन उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहां वर्षा 300 से. मी. से अधिक होता है तथा शुष्क काल छोटा होता है एवं औसत वार्षिक तापमान 25^0 से 27^0 से.ग्रे. के बीच में होता है। ये मुख्य रूप से पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल पर, उपोष्ण कटिबंधीय हिमालय (तराई) प्रदेश के पूर्वी भाग, उत्तर पूर्वी भारत में अरुणाचल प्रदेश के दक्षिणी भाग, दक्षिणी नागालैंड तथा लुसाई, कछार, खासी जयन्तियां, गारो पहाड़ियों पर पाये जाते हैं (चित्र 6.1)। पश्चिमी घाट पर ये 450 से 1360 मीटर की ऊँचाई पर एवं आसाम में यह 1060 मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। ये सघन और सदाबहार रहते है। इसमे कई ऊँचाई के वन पाये जाते हैं। वृक्षों की ऊँचाई 45 मीटर से अधिक होती है। मुख्य वृक्ष रबर, महोगनी. एबोनी, चाप्लास, तुत्सर, बांस, ताड़ आदि हैं। इन वनों से इमारती लकड़ी के साथ तेल, वार्निश, चमड़ा रंगने के पदार्थ प्राप्त होते हैं।
2. **उष्णार्द्र अर्ध –सदाबहार वन (Tropical Semi–evergreen Forest) –** इन वनों का विस्तार सदाबहार वनों के समानान्तर आसाम घाटी, महानदी डेल्टा तथा पश्चिमी घाट क्षेत्र में है। यह प्रकार अत्यन्त सीमित क्षेत्रों पर फैला है। यहाँ वृक्ष उँचे होते हैं। इनमे कुछ पतझड़ वाली प्रजातियां भी पाई जाती हैं। वृक्षों के तने खुरदरे तथा छाल मोटी होती है। इनकी सघनता सदाबहार वन से कम होती है। यहाँ पाये जाने वाले वृक्षों में सागौन, शीशम, नाग

केशर, हल्दू बीजा साल, कुसुम, चेस्टनट आदि मुख्य हैं। इनमें से कुछ से बहुमूल्य इमारती लकड़ी मिलती है

3. **उष्ण कटिबंधीय आर्द्र पतझड़ वाले वन (Tropical Moist Forest) –** वर्षा घटने के साथ ही आर्द्र पतझड़ वाले. वनों के स्थान पर शुष्क पतझड़ वाले वन विकसित हो जाते हैं। यहां ग्रीष्म काल में अपनी पत्तियां गिरा देते है। इसलिये इन्हें पर्णपाती या पतझड़ वाले वन कहा जाता है। इन प्रदेशों में औसत वार्षिक वर्षा 150 से 200 सेमी तथा तापमान 26^0 से 30^0 से.ग्रे. के बीच में पाया जाता है। इनके पांच प्रमुख क्षेत्र है (i) शिवालिक के किनारे भामर और तराई क्षेत्र, (ii) पूर्वी प्रायद्वीपीय पठार के अधिकांश भाग, (iii) पूर्वी घाट का पूर्वी हिस्सा, (iv) पूर्वी सतपुड़ा, एवं (v) आसाम तथा मणिपुर। सभी वृक्ष पतझड प्रजाति के हैं। इन वनों मे साल और सागौन सर्वाधिक महत्वपूर्ण वृक्ष हे। मध्यप्रदेश के पठारी भाग तथा महाराष्ट्र का चन्द्रपुर जिला सागौन की लकड़ी के लिये प्रसिद्व है। यहां पाये जाने वाले अन्य वृक्षों में शीशम, चन्दन, साद कुसुम, बांस, पलास, हल्दू हर्र, बहेड़ा, आंवला, शहतूत, बांस और कत्था प्रमुख हैं।

चित्र – 6.1: भारत में वनों के प्रकार

4. **तटीय एवं ज्वार प्रान्तीय वन (Littoral and Tidal Forest) –** इस प्रकार के वन भारत के डेल्टा प्रदेशों एवं समुद्रतटीय प्रदेशों के दलदली भूमि पर पाये जाते हैं। ज्वार – भाटा के समय समुद्र का खारा जल फैल जाता है जिससे मिट्टी दलदली होती है। यहां पैदा होने वाली वनस्पति की जड़े सदैव पानी में डूबी रहती हैं। कुछ की जडें सांस लेने के लिये ऊपर निकल आती हैं। प्रमुख वृक्ष गोल, सुन्दरी, ताड़, नारियल एवं केवड़ा हैं। भारत में

विश्व के कुछ सर्वोत्तम कच्छ वनस्पति के क्षेत्र हैं। वन की दशा की 1999 की रिपोर्ट के अनुसार 4871 वर्ग कि मी. क्षेत्र पर इन कच्छ वनस्पति (मैंग्रून्स) का विस्तार है। इनके संरक्षण और प्रबंध के लिये 15 कच्छ वनस्पति के क्षेत्रों का चयन किया गया है। ये है : उत्तर अंडमान और निकोबार, सुन्दरवन (प. बंगाल), भीतर कड़िका (उडीसा), कोरिगा, गोदावरी डेल्टा और कृष्णा एस्चुरी (अंद्रप्रदेश), महानदी डेल्टा (उड़ीसा), पिटचावरम् तथा प्वांइट कलीमर (तमिलनाडु), गोवा, (गोवा), कच्छ की खाड़ी (गुजरात) , कुंदपुर (कर्नाटक), रत्नागिरि (महाराष्ट्र) और वेम्बानद (केरल)।

II. उष्ण कटिबंधीय शुष्क प्रकार के वन (Tropical Dry Forset)

5. उष्ण कटिबंधीय शुष्क पतझड़ वाले वन (Tropical Dry Deciduous Forest) –ये वन आर्द्र पतझड़ वाले वनों के बिगड़े रूप हैं। इनका विस्तार भारत के अधिकांश भागों में है। ये वन उन प्रदेशों में पाये जाते है, जहां वर्षा 150 से.मी. से कम होती है एवं शुष्क काल अपेक्षाकृत लम्बा होता है। शुष्कता को सहने के लिये यहां के वृक्ष शुष्क काल में अपनी पत्तियां गिरा देते हैं। पत्तियां गिराने की अवधि भिन्न –भिन्न वृक्षों के लिये भिन्न – भिन्न होती है। इन वनों में पाई जाने वाली वृक्षों की जातियां प्राकृतिक एवं मानवीय व्यवधानों को सहन करने की अधिक क्षमता नहीं रखतीं। ये वन एक अक्रमबद्ध उतर – दक्षिण फैली पेटी में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक पाये जाते हैं। इस पेटी में भी इनका विस्तृत फैलाव तमिलनाडु उच्चभूमि, पूर्वी घाट के दक्षिणी भाग, महाराष्ट्र पठार के दक्षिण पश्चिमी भाग, अरावली श्रेणी, मध्य भारत की उच्च भूमि पर अधिक है। इस वन में अलग – अलग ऊँचाई के वृक्ष पाए जाते हैं जिनकी ऊँचाई 20 मीटर तक होती है। यहाँ पाये जाने वाले वृक्षों में साल, सागौन, तेन्दू धाव, बीजासाल, चन्दन, शीशम, हर्रा, महुआ, खैर, अंजन, लारेल, अचार, आदि प्रमुख हैं।
6. उष्ण कटिबन्धीय शुष्क सदाबहारवन (Tropical Dry Evergreen Forest) – इस प्रकार का वन केवल तमिलनाडु के तटवर्ती भाग में रामनाथपुरम् के मैदान पर पाया जाता है। यहां उत्तरपूर्वी मानसून से लगभग 100 से.मी. वर्षा होती है। ये श्रीलंका में फैले शुष्क सदाबहार वनों से संबंधित हैं। यह मुख्यत : झाड़ी वन है। इनमें खिरनी, जामुन, कोक्को, रीठा, नीम, मचकुन्द, टोडीपाम, गमारी आदि वृक्ष पाये जाते हैं।
7. उष्ण कटिबन्धीय कंटीले वन (Tropical Thorn Forest) – ये वन उन भागों में पाये जाते है जहां पर वर्षा 50 से 100 से.मी. तक होती है। ये वन राजस्थान बागड़, गुजरात के गीर वन क्षेत्र, कर्नाटक पठार, तेलगाना पठार, महाराष्ट्र पठार के मध्य भाग, तमिलनाडु के मैदान मे काफी विस्तृत हैं। दक्षिण पश्चिमी हरियाणा तथा ऊपरी गंगा के मैदान मे भी ये पाये जाते हैं। वर्षा घटने के साथ ही इनके स्थान पर कंटीली झाड़ियां और घास मिलती हैं। वृक्ष छोटे और दूर –दूर होते हैं। बबूल सबसे प्रमुख वृक्ष है। खजूर प्रजाति की वनस्पति की बहुतायत होती है।

III. पर्वतीय उपोष्ण कटिबंधीय वन (Sub– Tropical Forests)

8. **आर्द्र पहाड़ी बन (Wet Hill Forest) –** ये वन उन क्षेत्रों में पाए जाते है जो समुद्र तल से 1000 से 2000 मीटर की उँचाई पर हैं। भारत में इनके दो क्षेत्र है – प्रायद्वीपीय भारत के उच्च भाग तथा हिमालय क्षेत्र। प्रायद्वीपीय भारत मे नीलगिरि और पालनी पहाड़ियों पर उपोष्ण पहाड़ी वन है। उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वनों की भांति सघन न होने के कारण इन्हें 'रुद्ध वृद्धि वन ' कहते हैं। पश्चिमी घाट, सतपुड़ा और मैकल श्रेणियां के ऊँचे भागों पर भी इसी प्रकार का वन पाया जाता हैं। पूर्वी हिमालय में इन वनों मे ओक, चेस्टनट ऐश तथा बर्च मुख्य वृक्ष हैं।
9. **उपोष्ण चीड़ वन (Sub–Tropical Pine Forest) –** इसका विस्तार हिमालय के ढालों पर 73^0 से 88^0 पूर्वी देशान्तर के बीच 900 से 1800 मीटर की ऊँचाई तक हैं। यह चीड़ का अमिश्रित वन है। चीड़ भवन, फर्नीचर तथा रेल्वे स्लीपर के लिए उपयोगी इमारती लकड़ी है। इससे रेजीन भी प्राप्त की जा सकती है।
10. **उपोष्ण शुष्क सदाबहार वन (Sub– Tropical Dry Evergreen Forest) –**उष्ण कटिबंधीय शुष्क सदाबहार वन की भांति इसका विस्तार भी अत्यन्त सीमित है। यह चेनाव घाटी मे पीर पंजाब और धौलागिर श्रेणियों पर पाए जाते हैं। पंजाब और हिमाचल प्रदेश की सीमा पर भी यह वन पाया जाता है। वर्षा 50 से 100 सेमी. तक होती है। इनमें जंगलो जैतून और कई प्रकार की झाड़िया पाई जाती हैं।

IV. पर्वतीय शीतोष्ण कटिबन्धीय वन (Temperate Forests)

ये वन प्रमुखत : हिमालय क्षेत्र में मिलते हैं। वर्षा और ऊँचाई के अन्तर के कारण इनके भी कई उप प्रकार हैं।

11. **तर शीतोष्ण कटिबंधीय वन (Wet Temperate Forest) –**हिमालय में सबसे अधिक फैला प्रकार है।पूर्वी हिमालय में पश्चिमी हिमालय की तुलना में अधिक वर्षा होती है। अस्तु यहां आर्द्र वन के स्थान पर तर वन पाए जाते हैं। ये सदाबहार वन 88^0 पूर्वी देशांतर से पूर्व 1800 मीटर से 2700 मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं। प्रमुख वृक्ष ओक, पोपलार, लारेल, मैपिक, बर्च, आल्डर है। यहां वृक्ष अपनी पत्तियां नहीं गिराते हैं। दक्षिण भारत में ये वन नीलगिरि, अन्नामलाई और पालनी पहाड़ियों पर 1500 मीटर से अधिक ऊँचाई पर पाए जाते हैं। यहां वृक्ष छोटे होते हैं।
12. **आर्द्र शीतोष्ण कटिकधीय वन (Moist Temperate Forest) –** ये वन प्रमुखत : 88^0 पूर्वी देशांतर से पश्चिम हिमालय क्षेत्र में 1500 से 3000 मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। यहां चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार वृक्षों के साथ शंकाकार वृक्ष भी पाये जाते हैं। यहाँ देवदार, मैपुल, खूस, वालनट, पापलर, देवदार, चेस्टनट, बर्च, ओक प्रमुख वृक्ष हैं। इनकी ऊँचाई 30 से 50 मीटर तक होती है।
13. **हिमालयीन शुष्क शीतोष्ण कटिबन्धीय वन (Himalayan Dry Temperate Forest)–** पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में आंतीरक श्रेणियों पर ये वन पाए जाते हैं। यहां वर्षा 100 से.मी. से कम होती है। ये पूर्णत : संकाकार वन हैं तथा यहां कंटीली झाड़ियां भी मिलती है। सिलगोजा, देवदार, ओक, मैपुल, ऐष, सेल्टिस, जैतून आदि मुख्य वनस्पतियां हैं 1

V. अल्पाइन वन (Alpine Forest)

ये वन पूर्वी हिमालय में 2700 मीटर और पश्चिमी हिमालय में 3000 मीटर से अधिक ऊँचाई पर मिलते हैं। इनकी ऊपर की ओर विस्तार हिमरेखा तक होता है। यह मुख्यरूप से सिल्वर, फर, जूनीपर, पाइन, बर्च आदि के झाड़ी वन है।

6.2.4 वन उपज और उनका उपयोग (Forest Products & theiruses)

भारतीय वनों में अनेक प्रकार की वाणिज्यिक महत्व वाली लकड़ियां मिलती हैं। इनमें चन्दन, बबूल, देवदार, साल, सागवान, चीड़, शीशम आदि टिकाऊ व मजबूत लकड़ी व्यापारिक दृष्टि से मूल्यवान होती है। गौर उपजों में लाख, गोंद, राल, गूगल, कत्था व चमड़ा रंगने का सामान उल्लेखनीय है।

1. **देवदार (Deodar) –** कठोर, पीले व भूरे रंग वाली सुगन्धित तथा टिकाऊ लकड़ी होती है। हिमाचल प्रदेश और कश्मीर में 1500– 2500 मीटर ऊँचाई पर मिलती है। इस सदाबहार पर्णपाती वृक्ष से सुगंधित तेल प्राप्त किया जाता है। भारतीय रेलवे द्वारा अनेक कार्यो में इस लकड़ी का उपयोग होता है।
2. **चीड़ –** हिमाचल प्रदेश, कश्मीर व उत्तर प्रदेश में 1000 से 2000 मीटर की ऊँचाई पर नुकीली पत्तियों वाले चीड़ के सदाबहार वृक्ष मिलते हैं। चीड़ की लकड़ी कठोर व तेलयुक्त होती है। इससे तारपीन तेल तथा बेरजा प्राप्त होता है। नाव बनाने, प्लाई बोर्ड और चाय की पेटियां बनाने में इसकी लकड़ी काम आती है।
3. **स्प्रूप (Spruce) –** कश्मीर और पश्चिमी हिमालय में 2000 से 3500 मीटर की ऊंचाई पर श्वेत रंग वाली कोमल स्प्रूस पाई जाती है। सस्ता फर्नीचर बनाने और मकानों की छतों के फर्स बनाने में इस लकड़ी का उपयोग किया जाता है।
4. **सफेद सनोवर (Silver Fir) –** पूर्वी हिमालय में चित्राल से नेपाल तक, पश्चिमी हिमालयमें कश्मीर से झेलम तक 2000 से 3000 मीटर की ऊँचाई पर सफेद रंग की मुलायम लकड़ी वाले 60 मीटर तक ऊँचे सनोवर के वृक्ष पाए जाते हैं। इस नर्म लकड़ी का उपयोग कागज की लुग्दी बनाने, तख्ती, दियासलाई और पैकिंग की पेटियां बनाने में किया जाता है।
5. **सागौन (Teak) –** महाराष्ट्र के उत्तरी कनारा, चन्द्रपुर व खानदेश जिलों में, मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले में, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़, नीलगिरी और पश्चिमी घाट पर मानसूनी सागवान मिलता है। इस लकड़ी का उपयोग इमारती सामान, फर्नीचर, रेल के डिब्बे तथा जहाज निर्माण में किया जाता है।
6. **शीशम (Sisoo Dalbergia) –** पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र के समतल भागों में भूरे रंग वाली कठोर व टिकाऊ शीशम के वृक्ष पाये जाते हैं। इसका उपयोग इमारतों, फर्नीचर, फर्स, रेल के डिब्बों, औजारों, बैलगाड़ी आदि के निर्माण में अधिक किया जाता है।
7. **साल (Shorea robusta) –** हिमालय के निम्न ढाल व तराई, हिमाचल प्रदेश, मेघालय, उत्तराखण्ड, झारखण्ड, छोटा नागपुर, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और उत्तरी तमिलनाडु में साल के

वन पाए जाते हैं। भूरे रंग वाली कठोर व टिकाऊ लकड़ी से वाहनों के ढांचे, चौखट, जलयान, स्लीपर, पुल, खम्बे और घरेलू सामान बनाने में उपयोग किया जाता है।

8. **सेमल (Semul) –** सफेद रंग की मुलायम लकड़ी वाले सेमल के वृक्ष असम, बिहार, झारखंड व तमिलनाडु में अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। इसकी कोमल लकड़ी का उपयोग खिलौनों, तख्ते व पेटियां बनाने में अधिक किया जाता है।
9. **चन्दन (Sandal wood) –** पीले, भूरे, लाल और श्वेत रंग की कठोर व सुगन्धित लकड़ी वाले चन्दन के वृक्ष दक्षिणी भारत में कर्नाटक और तमिलनाडु में अधिक पाए जाते हैं। चन्दन की महंगी लकड़ी की चोरी व तस्करी वहां की प्रमुख समस्या रही है। सजावटी समान, समिधा, अगरबत्ती और खुदाई की कारीगरी वाला सामान बनाने में इस लकड़ी का उपयोग किया जाता है।
10. **महुआ (Mahua) –** दक्षिणी –पूर्वी राजस्थान, मध्यप्रदेश, छोटा नागपुर का पठार, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, गुजरात में कठोर लकड़ी वाले महुआ के वृक्ष मिलते हैं। इसके फलों से तेल और देशी मदिरा तैयार की जाती है।
11. **हर्रा–बहेरा (Myrabolans) –** मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, बिहार, उड़ीसा, झारखण्ड के भागों में हर्ड –बहेड़ा के मानसूनी वन मिलते हैं। इसके फल दवाइयां बनाने और रंगने के पदार्थ तैयार करने में काम लिए जाते हैं।
12. **शहतूत (Mulberry) –** मुलायम और टिकाऊ लकड़ी वाले शहतूत के वृक्ष पूरे मानसूनी प्रदेश में मिलते है। इसकी लकड़ी से हॉकी, रैकिट, बल्ले आदि खेल का सामान बनाया जाता है। शहतूत के वृक्ष पर रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं।
13. **पलास –** दक्षिणी पूर्वी राजस्थान, छोटा नागपुर के इलाकों में ढाक के वृक्ष मिलते हैं। यह मानूसनी शुष्क प्रदेश का पौधा है। इसकी पत्तियों पर लाख के कीड़े पाले जाते हैं। इसकी पत्तियां पशुओं के चारे के रूप में भी काम ली जाती है।
14. **चपलास (Chaplas) –** उत्तरी –पूर्वी भारत में पाई जाने वाली टिकाऊ ओर मजबूत लकडी वाले चपलास के वृक्ष वर्ष भर हरे भरे रहते हैं। इसका उपयोग फर्नीचर और जहाज बनाने में किया जाता है।
15. **तलसुर (Telsur) –** प्रतिकुल जलवायु में भी तलसुर के वृक्ष उग सकते हैं। पश्चिमी बंगाल, अण्डमान द्वीप, केरल व महाराष्ट्र में तलसुर वृक्ष अधिक मिलते हैं। इसकी कठोर मजबूत व टिकाऊ लकड़ी का उपयोग वाहन, जहाज और पुलों के निर्माण में किया जाता है।
16. **रोजवुड (Rosewood) –** यह पश्चिमी घाट, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और केरल में अधिक पाया जाता है। वाहनों के ढांचे, पेटियां और फर्नीचर बनाने में इसकी लकड़ी का उपयोग किया जाता है।
17. **बबूल (Accacia) –** भारत में बबूल की 25 किस्में पाई जाती है। यह सभी प्रदेशों में मिलता है। उत्तरप्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडु के शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है।

तेलिया बबूल, कौड़िया बबूल और रामकांटा इसकी प्रमुख नस्लें है। इसकी छाल चमड़ा कमाने के काम आती है। बबूल से गोंद भी प्राप्त किया जाता है।

18. **चमड़ा रंगने वाले पदार्थ –** बबूल, टारवूड, मैनग्रोव आदि वृक्षों की छाल और जड़े तक हरड़, बहेडों और आँवला के फल सुखाकर उनसे चमड़ा रंगा जाता है।

19. **तेल प्रदान करने वाले पदार्थ –** तुंग वृक्ष से प्राप्त तेल चमड़ा नरम करने, वार्निश व वाटर –प्रुफ कपड़ा बनाने में –काम आता है। चन्दन के तेल का प्रयोग साबुन बनाने में किया जाता है। लेमन, खसखत, रोशा आदि घासों से भी सुगंधित तेल प्राप्त किया जाता है।

20. **लाख–** खटमल की जाति की कीड़ा पलास, कुसुम, खैर, पीपल, बरगद, बबूल, घोंट,, आदि वृक्षों की मुलायम टहनियों व पत्तों को चूसकर लाख प्रदान करते हैं।

21. **गोंद–** कीकर, बबूल, नीम, पीपल, खेजडा आदि वृक्षों से बहुपयोगी गोंद प्राप्त किया जाता है। यह खाने के काम भी आता है।

22. **राल व बेरजा –** चीड़ के पेड से राल प्राप्त की जाती है। इसी से तारपीन का तेल बनाया जाता है। अवशिष्ट पदार्थ बेरजा कहा जाता है। जो रंग रोगन के काम आता है।

23. **जड़ी –बूटिया–** भारतीय वनों में पाए जाने वाले पेड़ –पौधों के पत्ते, फल, फूल, बीज, छाल और जड़े विभिन्न प्रकार की औषधियां बनाने के काम आती हैं। त्रिफला, हरड़–बहेड़ा–आवलाद्ध को तो आयुर्वेद में महारसायन कहा गया है। कुचला, कुनेन, क्लोरोफार्म, क्रियोसोट, सिनकोना, सर्पगंधा, शंखपुष्पी, बैलेडोना आदि बहुपयोगी औषधियां वनों से प्राप्त होती हैं।

बोध प्रश्न – 2

1. वनों में मोटा अन्तर किस कारण होता है?

   ....

   ....

2. पुरी ने भारत के वनों को कितने वर्गों तथा प्रकारों में रखा है?

   ....

   ....

3. उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वन के क्षेत्रों के नाम बताइए।

   ....

   ....

4. किस प्रकार की जलवायु की दशा में आर्द्र पतझड़ वाले वन पाए जाते है?

   ....

   ....

5. दलदली वनों पांच क्षेत्रों के नाम बताइए।

   ....

   ....

6. चन्दन वृक्ष कहीं पाए जाते हैं?

   ....

	…………………………………………………………………………
7.	भारत में चीड़ के वन कहां पाए जाते है।
	…………………………………………………………………………
	…………………………………………………………………………

6.2.5 भारतीय–वनों की समस्याएं (Problesms of Indian Forests)

1. 1952 में घोषित वन नीति के अनुसार देश में 33%' भाग पर वन भूमि होनी चाहिए। यह पर्वतीय भागों में 65% तथा समतल भागों में 20% से 25% होनी चाहिए। परन्तु वर्तमान में यह देश के कुल क्षेत्र के 20.6% भाग पर ही है।
2. भारत में प्रति व्यक्ति 0.11 हेक्टेयर वन क्षेत्र है, जो विश्व औसत 1.08 हेक्टेयर से काफी कम है।
3. भारतीय वनों में मिश्रित वृक्ष प्रजातियां एक साथ मिलती हैं। जिसके कारण उनका समुचित आर्थिक दोहन नहीं हो पाता है।
4. देश के 40% से अधिक वन अगम्य पर्वतीय भागों में होने के कारण इनका सदुपयोग करना कठिन होता है।
5. भारतीय वनों का समुचित प्रबन्धन नहीं होने से उनका अपव्यय अधिक होता है। वन विभाग में प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव पाया जाता है। कई राज्यों में वन विभाग अविकसित है।
6. लकड़ी काटने के पुराने तौर तरीकों से वनों का अधिक नाश होता है। आदिवासी जनजातियों द्वारा झूमिंग कृषि पद्धति अपनाने से वनों का अधिक विनाश होता है।
7. वनों में प्रतिवर्ष आग लगने से बड़ी संख्या में वन विनाश होता है। पर्याप्त संख्या में वृक्ष लगाए जाने के अभाव से निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करना सम्भव नहीं है।
8. यथोचित यातायात की कमी के कारण वनों की सुरक्षा और उनके समुचित उपयोग को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है।
9. वन रक्षण, वनारोपण और वन शोषण में तालमेल और संतुलन का अभाव पाया जाता है। वनों को राष्ट्रीय सम्पदा मानकर उनके प्रति साकारात्मक दृष्टिकोण अपेक्षित है।
10. वनों से सम्बन्धित अपेक्षित अनुसन्धान नहीं होने के कारण बन सुधार एवं वन विस्तार से सम्बंधित कार्य योजनाएं पूर्णरूपेण क्रियान्वित नहीं की जा रही हैं।

6.3 राष्ट्रीय वन नीति (Nationl Forest Policy)

ब्रिटिश काल में 1984 में बनाई गई राष्ट्रीय वन नीति का मुख्य लक्ष्य वनों से अधिकाधिक राजस्व प्राप्त करने और वनों को सुरक्षा प्रदान करना था। तत्पश्चात सर 1952 में घोषित की गई वन नीति में 33% भूमि पर वनारोपण सुनिश्चित करना निर्धारित किया गया और वन महोत्सव मनाने शुरू किए गए। सन् 1988 में घोषित की गई वन नीति के अन्तर्गत (1) पर्यावरण संवर्धन, (2) पादप एवं प्राणीजात की सुरक्षा, (3) बुनियादी जरूरतें पूरी करने हेतु वनोपज प्राप्ति, (4) मृदा को संरक्षण प्रदान करना, (5) वृक्षारोपण और सामाजिक वानिकी विस्तार कार्यक्रम सम्मिलित

किए गए। इस नीति को कारगर बनाने बनाने के लिए अगस्त 1999 में 20 वर्षीय राष्ट्रीय वानिकी कार्य योजना प्रारम्भ की गई। इस योजना में वनों की कटाई पर अंकुश लगाना और 33% भूमि पर वन लगाना मुख्य प्राथमिकताएँ रखी गईं। साथ ही आदिवासी प्रदेशों में नष्ट हुए जंगलों में फिर से वृक्षारोपण को क्रियान्वित किया जाने का प्रावधान रखा गया। अगले 20 वर्षों में 'राष्ट्रीय वन्य कार्यक्रमों' को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए दीर्घकालिन वृहत रणनीति तैयार की गई। 33% भूमि पर वनों का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए ग्राम्य समूहों की मदद से 'संयुक्त वन प्रबन्धन' की संकल्पना को मूर्त रूप दिया गया। मूल राष्ट्रीय नीति के अन्तर्गत भारतीय वन निम्न वर्गों में विभाजित किए गए –

(1) **सुरक्षित वन (Reserved Forest) –** देश की भौगोलिक एवं जलवायु दशाओं के लिए आवश्यक वन सुरक्षित किए गए हैं। उपलब्ध वनों की संरक्षा के साथ –साथ वहां नवीन वृक्षारोपण के द्वारा वन संवर्धन किया जाता है।

(2) **राष्ट्रीय वन (National Forest) –** ये वन देश की सामान्य जरूरतों, उद्योगों, परिवहन एवं निर्माण कार्यो की पूर्ति के लिए आवश्यक माने गए हैं। इन वनों के अविवेकपूर्वक उपभोग पर रोक लगाई गई है।

(3) **ग्राम्य वन (Village Forests) –** ग्राम्य वनों का उद्देश्य गांवों और समीपवर्ती शहरों के लिए ईंधन की लकड़ी उपलब्ध कराना है। आवश्यकता पड़ने पर ग्राम्य वनों से पशुचारा भी उपलब्ध कराया जाता है।

6.4 वन संरक्षण और वन्यजीव (Forest Conservation & Wild Life)

वनों को विनाश से बचाने के लिए वन संरक्षण अधिनियम 1980 का संशोधन 1988 में करके अंधाधुंध वन विनाश तथा वन क्षेत्र का गैरवानिकी उपयोग दण्डनीय घोषित किया गया। पशुधन और जनसंख्या वृद्धि के बढ़ते दबाव में वनों का अतिक्रमण रोकने का प्रयास किया गया। वन सम्पदा के तीव्र विनाश को रोकने, पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखते, वनों के बचाव और विकास को सुनिश्चित करने के कतिपय उपायों पर विचार किया गया–

1. विद्यमान वनों में पुन : वनारोपण करना,
2. परती भूमि पर वनारोपण करना,
3. वन क्षेत्रों का सर्वेक्षण व सीमांकन करना,
4. वन क्षेत्रों में सुरक्षा दस्तों की मुस्तैदी,
5. वन क्षेत्रों में पशुचारण प्रतिबन्धित करना,
6. लकड़ी आपूर्ति के लिए डिपो बनाना,
7. वैकल्पिक ईंधन के उपयोग को प्रोत्साहन देना,
8. आदिवासियों के अधिकार निर्धारण व उनकी जरूरतें पूरी करना,
9. वनों में लगने वाली आग पर नियंत्रण रखना,
10. आरों व चीराखानों पर नियंत्रण रखना।

6.4.1 राष्ट्रीय वन आयोग (National Forest Commission) का गठन

सेवानिवृत मुख्य न्यायाधीश बी. एन.कृपाल की अध्यक्षता में फरवरी 2003 में राष्ट्रीय वन आयोग गठित किया गया। आयोग का कार्य वन और वन जीवन से जुडे कार्यो की समीक्षा करना और अपने सुझाव देना था। 28 मार्च, 2006 को आयोग ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें सभी राज्यों की अलग –अलग वन नीति बनाने की अनुशंसा की गई। वनों को वन्य – प्राणियों के रहने योग्य बनाए जाने पर बल दिया गया। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 और जैव विविधता अधिनियम, 2002 के क्रियन्वयन हेतु एजेंसी बनाने की बात कही गई।

6.4.2 वानिकी अनुसंधान (Forest Research)

वानिकी से जुडे सभी पहलुओं को सम्मिलित करते हुए वन अनुसंधान, शिक्षा, समन्वय, योजना के निष्पादन और वानिकी अनुसंधान रणनिति विकसित करने के लिए 'भारतीय वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद् वानिकी अनुसंधान की सर्वोच्च संस्था है। देहरादून, शिमला, रांची, जोरहाट, जबलपुर, जोधपुर, बंगलूर व कोयम्बटूर स्थित 8 अनुसंधान संस्थानों तथा इलाहाबाद, छिंदवाड़ा, हैदराबाद एवं आइजोल स्थित 4 केन्द्रों के नेटवर्क के माध्यम से ' भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् राष्ट्रीय स्तर पर अपने शोध कार्यो के लिए उल्लेखनीय स्थान बनाए हुए है।

6.4.3 वन्यजीव अनुसंधान (Wildlife Research)

लगातार बढ़ रहे मानव प्रेरित परिवर्तनों से वन्यजीव संसाधन खतरे में है। वन्यजीवों की मात्रा व गुणवत्ता दिनोदिन घट रही है। बढ़ती आबादी के कारण वन क्षेत्र संकुचन, अवैध शिकार, सूखा, बाढ़, आगजनी, रोग आदि वन्यजीवों के अस्तित्व को चुनौती दे रहे हैं। भारतीय वन्यजीव संस्थान ने विभिन्न जैव –भोगौलिक क्षेत्रों में शुरू की गई 128 अनुसंधान परियोजनाएं पूर्ण की हैं। इस समय संस्थान में 55 अन्य परियोजनाएं क्रियान्वित हैं।

6.4.4 वानिकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण

राष्ट्रीय वन नीति, 1988 एवं राष्ट्रीय वानिकी कार्यक्रम 1999 के अनुरूप प्रबन्धन और संरक्षण हेतु वानिकी शिक्षा व प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यकलाप पर्यावरण मंत्रालय के अनेक संस्थानों द्वारा किए जाते हैं, जिनमें इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वन अकादमी (IGNFA) देहरादून, वन शिक्षा निदेशालय (DFE) देहरादून, भारतीय वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद् (ICFIE) देहरादून, भारतीय वन प्रबन्धन प्लाईबुड उद्योग अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान, बैंगलूर आदि उल्लेखनीय हैं।

6.4.5 वन्यजीव शिक्षा एवं प्रशिक्षण

वन्यजीव शिक्षा व प्रशिक्षण का कार्य मुख्यतया स्वायत संस्था 'भारतीय वन्यजीव संस्थान' द्वारा देखा जाता है। यह संस्था सरकारी व गैर सरकारी कार्मिकों को अनुसंधान एवं प्रशिक्षण गतिविधियों के लिए प्रशिक्षित करता है और वन्यजीव संसाधनों के संरक्षण एवं प्रबन्धन सम्बन्धी विषयों पर सलाह देता है। यह संस्था वन्यजीव विज्ञान में दो वर्षीय एम.एमसी. डिग्री पाठ्यक्रम और वन्यजीव प्रबन्धन में 3 माह का प्रमाण–पत्र पाठ्यक्रम भी आयोजित करता है।

6.4.6 समन्वित वन सुरक्षा योजना

दसवीं पंचवर्षीय योजना में देश के सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए केन्द्रीय अनुदान से संचालित समन्वित वन सुरक्षा योजना लागू की गई है। वनों में लगने वाली आग की रोकथाम तथा वनों के विकास और प्रबन्धन की कार्ययोजनाएं इसमें लागू की गई हैं। पूर्वोत्तर और सिक्किम के वन क्षेत्रों के विकास एवं संवर्धन की समन्वित योजना भी क्रियान्वित की गई है।

6.4.7 राष्ट्रीय दलदली भूमि संरक्षण कार्यक्रम

देश में दलदली भूमि (wet land) संरक्षण व प्रबन्धन की कार्ययोजना लागू करने के लिए नीतिगत दिशा –निर्देश तैयार करने, गहन संरक्षण के उपाय करने, प्राथमिकता वाली कच्छ भूमि चिन्हित करने, अनुसंधान कार्यक्रम क्रियान्वयन पर निगरानी रखने हेतु सर 1987 में जल भूमि संरक्षण और प्रबन्धन की योजना प्रारम्भ की गई। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत दलदली भूमियों की संख्या सन् 2004 में 27, सन् 2005 में 71 और सन् 2008 में बढ़कर 103 हो गई। 2 फरवरी, 2007 को राष्ट्रीय जल भूमि संरक्षण : दृष्टिकोण एवं दिशा निर्देश' नामक पुस्तिका प्रकाशित कर सभी सम्बन्धित संस्थानों को उपलब्ध कराई गई। 36 जल भूमियों के प्रबन्धन की कार्य योजनाओं का अनुमोदन कर वित्तीय सहायता स्वीकृति की गई। नव अचिन्हित दलदली भूमियों हेतु दस अन्य प्रबन्धन कार्य योजनाएं हस्तगत की जा रही हैं। दलदली भूमियों के प्रति संवेदनशील और जागरूकता पैदा करने के लिए पर्यावरण मन्त्रालय द्वारा देश के विभिन्न भागों में अनेक क्षेत्रीय कार्यशालाएं आयोजित की गई हैं। भारत को 'अन्तर्रार्ष्ट्राय दलदली भूमि के निदेशक मंडल' में मनोनीत किया गया है।

6.4.8 राष्ट्रीय वानिकीकरण और पारिस्थितिकी विकास बोर्ड

अगस्त, 1992 में देश में वृक्षारोपण, पारिस्थितिकी संतुलन और पारिस्थितिकी विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु 'राष्ट्रीय वानिकिरण और पारिस्थितिकी विकास बोर्ड ' (National Aforestation and Ecology Development) गठित किया गया। विकसित वन क्षेत्रों, वनों की समीपवर्ती भूमियों, राष्ट्रीय पार्कों, अभयारण्यों के अतिरिक्त पश्चिमी हिमालय अरावली एवं पश्चिमी घाट के संवेदनशील क्षेत्रों के पुनरूजीवन व संवर्धन पर भी विशेष ध्यान रखा जा रहा है। दसवीं योजना में बायोफ्यूल, औषधीय पौधे और बांस लगाने पर बल दिया गया। पूर्वोत्तर राज्यों और उड़ीसा में 25 झूम पीरयोजनाएं स्वीकृत की गई। वर्ष 2007–08 में 50 क्रियान्वयन

उपक्रमों को 2.58 करोड़ रुपये की आर्थिक सहायता दी गई। पारिस्थितिकी विकास बल (EDF) के तहत बीकानेर, देहरादून, पिथोरागढ़ और सांबा में स्थित चार पारिस्थितिकी कार्यबल बटालियनों को वित्तीय सहायता दी जा रही है। असम में दो नई बटालियनों का अनुमोदन किया गया है। ये बटालियनें नर्सरी लगाने, वृक्ष लगाने और वन संरक्षण कार्यो को सम्पादित कर रही हैं।

बोध प्रश्न – 3

1. जीवों को संरक्षण प्रदान करने वाला अधिनियम है –
   (अ) पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986
   (ब) जैव विविधता अधिनियम, 2002
   (स) वन संरक्षण अधिनियम, 1980
   (द) राष्ट्रीय वन नीति, 1952
2. 20 वर्षीय राष्ट्रीय वानिकी कार्ययोजना प्रारम्भ की गई -
   (अ) अगस्त 1999 में
   (ब) अगस्त 1989 में
   (स) अगस्त 1979 में
   (द) अगस्त 1969 में
3. पारिस्थितिक विकास बल के चार केन्द्रों के नाम बताइए।
   ....
   ....
4. राष्ट्रीय वानिकीकरण और विकास बोर्ड का गठन कब और क्यों किया गया?
   ....
   ....
5. जलभूमि संरक्षण कार्यक्रम कब और क्यों प्रारम्भ किया गया?
   ....
   ....
6. पारिस्थितिकी कार्यबल बटालियनें क्या काम करती है?
   ....
   ....

6.5 सारांश (Summary)

प्राकृतिक वनस्पति सकल जैव जगत का मूल आधार है। भूमि उपयोग के आकड़ों के अनुसार सन् 1998–99 में केवल 69 लाख वर्ग किमी. भूमि पर वनों का विस्तार था जो देश के प्रतिवेदित क्षेत्र का 22.5 प्रतिशत तथा कुल भौगोलिक क्षेत्र का 19.4 प्रतिशत है। यह अनुपात आदर्श दशा से काफी कम है। सन्तुलित भूमि उपयोग की दृष्टि से एक–तिहाई (33%) भूमि पर वन होना चाहिए। राष्ट्रीय सुदूर संवेदन एजेंसी हैदराबाद ने उपग्रह से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वन–

आवरण के क्षेत्रफल की गणना की है। सन् 1981–83 की सूचना के अनुसार वन आवरण 640.8 हजार वर्ग किमी. पर था जो सन् 1996–98 में घटकर 637.3 हजार वर्ग किमी ही रह गया। इस तरह इन 15 वर्षो में 3.5 हजार वर्ग किमी. से वन साफ कर दिए गए। देश की वन रिपोर्ट 2005 के अनुसार देश में कुल 677,088 किमी बन क्षेत्र हैं और यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 20.60 प्रतिशत है।

देश के 25 राज्यों में वनों का कुल क्षेत्रफल में हिस्सा हरियाणा में 3.9 प्रतिशत और पंजाब में 4.8 प्रतिशत से लेकर अरुणाचल प्रदेश में 81.3 प्रतिशत और मिजोरम में 82.9 प्रतिशत तक है। गहन वनों की पेटी का विस्तार जम्मू–कश्मीर, उत्तरांचल, अरुणाचल प्रदेश मिजोरम, त्रिपुरा की पहाड़ियाँ, छोटा नागपुर पठार, पश्चिमी घाट, सतपुड़ा पहाड़ियाँ, बघेलखण्ड, छत्तीसगढ़ का सीमान्त बेसिन, उड़ीसा की पहाड़ियाँ, दण्डाकारण्य, गोदावरी बेसिन, तमिलनाडु उच्च प्रदेष, कृष्णा बेसिन आदि पर है।

देश में मुख्यरूप से उश्र्ण कटिबन्धीय वन पाए जाते हैं। जहां वर्षा अधिक होती है वहां आर्द्र वन पाए जाते हैं, परन्तु कम वर्षा वाले भागों पर शुष्क तथा पतझड़ वाले वन हैं। ऊँचे भागों में उपोष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्धीय वन हैं। ये बन विध्विध प्रकार के लघु एवं बड़ी वन उपजों के स्रोत हैं।

देश में वन क्षेत्रों की वृद्धि करने, उनकी उचित देखभाल करने, इन्हें विनाश से बचाने और भविष्य के लिए सुरक्षित रखने की कार्यवाही करने हेतु 1983 में गठित 'पर्यावरण योजना राष्ट्रीय समिति 'द्वारा उल्लेखनीय प्रयास किये गए है। राष्ट्रीय वन समिति की वन संरक्षण नीति के अन्तर्गत वनों के विकास हेतु भूमि सुरक्षित रखना, वनों के विनाश को रोकना वन आधारित उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराना, वन क्षेत्रों में परिवहन और संचार मार्गों के लिए भूमि उपलब्ध कराना और मनोरंजन वानिकी के विकास हेतु प्रयास किये गए हैं। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने भी वन विकास और उनके संरक्षण से सम्बन्धित कतिपय सुझाव दिए हैं, यथा–वन काटने पर नियंत्रण, वनपालों की नियुक्ति, निजी वनों का नियमन और नियंत्रण होना चाहिए। वर्तमान वनों का उचित प्रबन्धन हो तथा उनमें उचित सुधार और पुनर्स्थापना किया जाए। सामाजिक वानिकी का विकास किया जाए। राष्ट्रीय हित के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान वनों को संरक्षण प्रदान करते हुए उनकी वास्तविक वृद्धि को सुनिश्चित किया जाए।

6.6 शब्दावली (Glossary)

- वन – पैड़–पौधों का सघन आवरण
- प्राकृतिक वनस्पति – अनुकूल भौतिक दशाओं में स्वत: उगी पादप जाति।
- सदाबहार वन – वर्ष भर हरे भरे रहने वाले वन।
- सुरक्षित वन (Reserved Forest)– राज्य सुरक्षा प्राप्त वन
- वन संरक्षण. वनों को विनाश से बचाना
- पर्यावरण – भौतिक और जैविक लक्षणों का योग
- पारिस्थितिक – जीवजात के निवास से सम्बन्धित

6.7 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. चौहान, वी.एस : **भारत,** रस्तौगी पब्लिकेशन, 2008
2. नेगी, बी. एस. : **भारत का भूगोल,** केदारनाथ रामनाथ, 1999
3. मामोरिया, सी. बी : **भारत का वृहत् भूगोल,** साहित्य भवन, 2008
4. सिंह, जगदीश : **भारत का भूगोल,** ज्ञानोदय प्रकाशन, 1998
5. राव, बी.पी: **भारत–एक भौगोलिक समीक्षा**, वसुन्धरा प्रकाशन, 1998
6. प्रकाशन विभाग: **भारत 2009,** सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
7. शर्मा श्रीकमल, सम्पादक, **भारत का भूगोल**, मध्यप्रदेष हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 2004.

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

1. अनुकूल भौतिक दशाओं में स्वत: उगने वाली पादप–जाति (Floral species) प्राकृतिक वनस्पति कहलाती है।
2. देश की 33 प्रतिशत भूमि पर वनाच्छादन अपेक्षित है।
3. भारत की 20.6 प्रतिशत भूमि पर वन आच्छादित है।
4. हरियाणा (3.9 प्रतिशत), पंजाब (4.8 प्रतिशत), राजस्थान (4.7 प्रतिशत) और गुजरात (7.7 प्रतिशत)।
5. मिजोरम में 82.9 प्रतिशत भूमि पर वन हैं।

बोध प्रश्न – 2

6. वनों में मोटा अन्तर जलवायु के कारण है।
7. पुरी ने भारत के वनों को 5 वृहद् समूहों और 14 प्रकारों में विभक्त किया है।
8. ये मुख्य रूप से पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल पर तथा पश्चिमी घाट पर, उपोष्ण कटिबंधीय हिमालय (तराई) प्रदेश के पूर्वी भाग तथा उत्तर पूर्वी भारत में पाए जाते हैं।
9. इन प्रदेशों में औसत वार्षिक वर्षा 150 से 200 सेमी तथा तापमान 26^0 से 30^0 से.ग्रे. के बीच में पाया जाता है।
10. दलदली वनों पांच क्षेत्रों के नाम –उत्तर अंडमान और निकोबार, सुन्दरवन (प. बंगाल), भीतर कड़िका (उड़ीसा), कोरिंगा, गोदावरी डेल्टा और कृष्णा एस्चुरी (आंध्र प्रदेश)।
11. चन्दन वृक्ष दक्षिणी भारत में कर्नाटक और तमिलनाडु में अधिक पाए जाते हैं।
12. भारत में चीड़ के वन हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र में पाए जाते हैं।

बोध प्रश्न – 3

1. (ब) जैव विविधता अधिनियम, 2002
2. (अ) अगस्त, 1999 में
3. बीकानेर, देहरादून. पिथोरागढ़ और सांबा।

4. अगस्त. 1992 में देश में वृक्षारोपण वानिककिरण, पारिस्थितिकी संतुलन और पारिस्थितिकी विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु।
5. 1987 में, देश में दलदली भूमि के संरक्षण व प्रबन्धन हेतु दिशा निर्देश तैयार करने और तत्सम्बन्धी कार्यो के संचालन हेतु।
6. नर्सरी लगाने, वृक्ष लगाने और वनों को संरक्षण प्रदान करने का कार्य।

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत में वनों के प्रादेशिक वितरण की समीक्षा कीजिए तथा उनके असमान वितरण के कारणों का उल्लेख करिए।
2. भारतीय वनों को प्रकारों में विभक्त कीजिए तथा उनका वितरण बताइए।
3. भारत के वनों से प्राप्त होने वाली विविध प्रकार की उपजा तथा उनका उपयोग का विवरण दीजिए।
4. भारतीय वनों की मुख्य समस्याएं क्या हैं?
5. राष्ट्रीय वन नीति के बारे में आप क्या जानते हैं?
6. वन संरक्षण क्यों आवश्यक है? भारत में वन संरक्षण हेतु किये गए उपाय बताइए।
7. भारत में वानिकी एवं वन्य जीव अनुसंधान व प्रशिक्षण केन्द्रों की जानकारी दीजिए।
8. राष्ट्रीय वानिकीकरण और पारिस्थितिकी विकास बोर्ड के कार्यो का विवरण दीजिए।

इकाई 7: मिट्टी – वर्गीकरण, समस्याएँ एवं संरक्षण (Soils–Classification Problems and Conservation)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 भारतीय मिट्टी का वर्गीकरण एवं लक्षण
- 7.2.1 काँपीय मिट्टी
- 7.2.2 लाल मिट्टी
- 7.2.3 काली मिट्टी
- 7.2.4 लेटराइट मिट्टी
- 7.2.5 पर्वतीय मिट्टी
- 7.2.6 मरूस्थलीय मिट्टी
- 7.2.7 वन्य मिट्टी
- 7.2.8 अन्य मिट्टी

7.3 भारतीय मिट्टी की उर्वरता
7.4 भारतीय मिट्टी की समस्याएँ
- 7.4.1 मृदा अपरदन
- 7.4.2 लवणता, क्षारीयता एवं जलसिक्ती
- 7.4.3 मरूस्थलीकरण
- 7.4.4 मृदा अवक्षय

7.5 मृदा संरक्षण एवं 'प्रबन्धन
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे –

- मिट्टी का अर्थ व्यवस्था में महत्व,
- भारतीय मिट्टी के प्रमुख प्रकार एवं उनके वितरण तथा लक्षण,
- भारतीय मिट्टी की उर्वरता,
- भारतीय मिट्टी की समस्याएँ
- भारत में मृदा संरक्षण एवं प्रबन्धन के क्षेत्र में केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा प्रवर्तित उपायों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों की जानकारी।

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत –जैसे कृषि प्रधान देश के लिए मिट्टी सबसे प्रमुख संसाधन है। वस्तुत :, मिट्टी की उर्वरता ही फसल उत्पादकता तथा कृषि उत्पादन को व्यापकत : निर्धारित करती है। मानव की अन्य अनेक आर्थिक क्रियाएँ भी परोक्षत : मिट्टी से सम्बन्धित हैं। सिन्धु घाटी सहित प्रारम्भिक सभ्यताओं का विकास काँप मिट्टी वाली उर्वर नदी घाटियों में ही हुआ था।

मृदाजनन (pedogenesis) एक जटिल तथा निरन्तर क्रियाशील प्रक्रिया है। पैतृक शैलें, जलवायु, वनस्पति, भूमिगत जल, सुक्ष्मजीव आदि अनेक कारक मिट्टी की प्रकृति को निर्धारित करते हैं। पैतृक शैलें मिट्टी को आधारभूत खनिज व पौषक तत्व प्रदान करती हैं, जबकि जलवायु मिट्टी के निर्माण में रासायनिक एवं सूक्ष्म जैविक क्रियाओं को निर्धारित करती है। वनस्पति मिट्टी में ह्यूमस (humus) की मात्रा निर्धारित करने में सकारात्मक भूमिका निभाती है। वस्तुत :, मिट्टी, जलवायु एवं वनस्पति में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। स्थानीय उच्चावच तथा जलीय दशाएँ मिट्टी के गठन, pH मान आदि विशेषताओं को निर्धारित करती हैं। सूक्ष्मजीव अपक्षयित पदार्थ का वियोजन करते हैं।

जलवायु मृदाजनन के विभिन्न प्रक्रमों को सक्रिय बनाने में सबसे महत्वपूर्ण कारक है। भारत उष्ण तथा उपोष्ण कटिबन्ध मे स्थित है, अत : यहाँ लेटराइट मिट्टी का बनना एक प्रभावी प्रक्रम है। वर्षा ऋतु के दौरान मूसलाधार वर्षा प्रायद्वीपीय पठार की मिट्टी में उच्चस्तरीय निक्षालन क्रिया (leaching) को प्रेरित करती है। उत्तर–पश्चिम के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क प्रदेशों में वाष्पीकरण की उच्च दर मिट्टी में कोशिका क्रिया को प्रेरित करती है, जिससे मिट्टी की ऊपरी परतों में कैल्शियम एकत्रित हो जाता है।

देश के अधिकांश भाग (विशाल मैदान, तटीय क्षेत्र एवं दकन) में अकटिबन्धीय (azonal) मिट्टी मिलती हैं। जिनका निर्माण उनके स्थान पर नहीं हुआ है। ये मिट्टी बाह्यजात प्रक्रमा से निर्मित हुई हैं। काँप मिट्टी नदियों द्वारा लाए गए अपरदित तलछट से निर्मित हैं, जबकि दकन की लावा मिट्टी ज्वालामुखी शैलों के विखण्डन से बनी हैं।

7.2 मिट्टी का वर्गीकरण एवं लक्षण (Classification and Characteristics of Soils)

अनेक विद्वानों ने भारतीय मिट्टी के वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं, किन्तु इनमें से कोई –भी अन्तर्राष्ट्रीय मानकों को पूरा नहीं करता। स्कोकाल्सकाया (Z.J.Schokalskaya 1932) ने चट्टानों, जलवायु तथा वनस्पति के पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर 16 बड़े वर्गों में बाँटते हुए भारतीय मिट्टी के वर्गीकरण को एक नया आयाम दिया – (i) काँपीय मिट्टी, (ii) चरागाह मिट्टी (iii) प्रयरी मिट्टी, (iv) उष्ण तथा उपोष्ण कटिबन्धीय शुष्क स्टेपी मिट्टी, (v) सीरोजम, (vi) रेतीली अर्द्धमस्थ्यलीय सीरोजम, (vii) गहरी रेगुर, (viii) मध्यम हल्की रेगुर, (ix) लेटराइट (उच्च एवं निम्न), (x) लेटराइट, (xi) उपोष्ण कटिबन्धीय लाल, (xii) उष्ण कटिबन्धीय लाल, (xiii) भूरी, (xiv) दलदली, पीट, बांग (bog) व मक (muck), (xv) लवण मिट्टी (solonchak), एवं (xvi) क्षार मिट्टी (solonetz)।

वाडिया (D.N Wadia 1953) ने भारत की भूगर्भिक संरचना तथा प्रमुख मिट्टी वर्गों में घनिष्ठ सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में भारतीय मिट्टी को 6 वर्गों में रखा - (i) लाल मिट्टी, (ii) काली मिट्टी या रेगुर, (iii) लेटराइट, (iv) काँप मिट्टी, (v) क्षारीय मिट्टी, तथा (vi) हिमालय प्रदेश की पर्वतीय व वन मिट्टी।

राष्ट्रीय एटलस संगठन (NATMO, 1957) के एस.पी. चटर्जी व एम. एस. कृष्णन ने भारत का मृदा मानचित्र प्रकाशित किया, जिसमें मिट्टी के निम्नलिखित 6 प्रमुख समूह व 11 प्रकार की पहचान की गई –

1. काँप मिट्टी	(i) दोमट
	(ii) कैल्शियमी चीका
2. ट्रैप या लावा मिट्टी	(iii) काली चीका
	(iv) काली दोमट
3. आर्कियन एवं कैम्ब्रियन मिट्टी	(v) लाल दोमट
	(vi) रेतीली लाल
	(vii) लेटराइट
4. पर्वतीय मिट्टी	(viii) दोमट भस्मी
	(ix) उच्च अक्षांशीय
5. मरुस्थलीय मिट्टी	(x) रेतीली या मरूस्थलीय।,
6. तटवन मिट्टी	(xi) तटवर्ती मिट्टी

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद (ICAR) के रायचौधरी (S.P. Raychaudhary, 1958) ने जलवायु, वनस्पति एवं भूतत्व के आधार पर भारत का मृदा मानचित्र प्रकाशित किया, जिसमें मिट्टी के निम्नलिखित 7 प्रमुख वर्ग व 17 प्रकार प्रदर्शित किए गए –

1. काँप मिट्टी	(i) नदीय
	(ii) तटवर्ती
	(iii) पुरानी कांप
	(iv) खारी काँप (नदीय)
	(v) खारी काँप (तटवर्ती)
	(vi) कैल्शियमी काँप
2. पीट मिट्टी	(vii) पीट मिट्टी
3. लाल मिट्टी	(viii) लाल मिट्टी
	(ix) मिश्रित लाल एवं काली मिट्टी
	(x) लाल एवं पीली मिट्टी
4. लेराइट मिट्टी	(xi) लाल रख बजरीयुक्त मिट्टी
5. काली मिट्टी	(xii) लेटराइट तथा लेटराइटी मिट्टी
	(xiii) गहरी काली मिट्टी
	(xiv) मध्य काली मिट्टी

6. मरूस्थलीय मिट्टी (xv) मरूस्थलीय मिट्टी

7. पर्वतीय मिट्टी (xvi) वन्य पहाड़ी मिट्टी

(xvii) तराई की मिट्टी

उपर्युक्त प्रमुख मिट्टी में से काँपीय मिट्टी देश के लगभग 43. 4 प्रतिशत भूक्षेत्र पर, लाल मिट्टी 18. 6 प्रतिशत भूक्षेत्र पर, काली मिट्टी 15.2 प्रतिशत भू क्षेत्र पर, लेटराइट 3.7 प्रतिशत भूक्षेत्र पर तथा अन्य मिट्टी 17.9 प्रतिशत भू क्षेत्र पर विस्तृत हैं (चित्र 7. 1)।

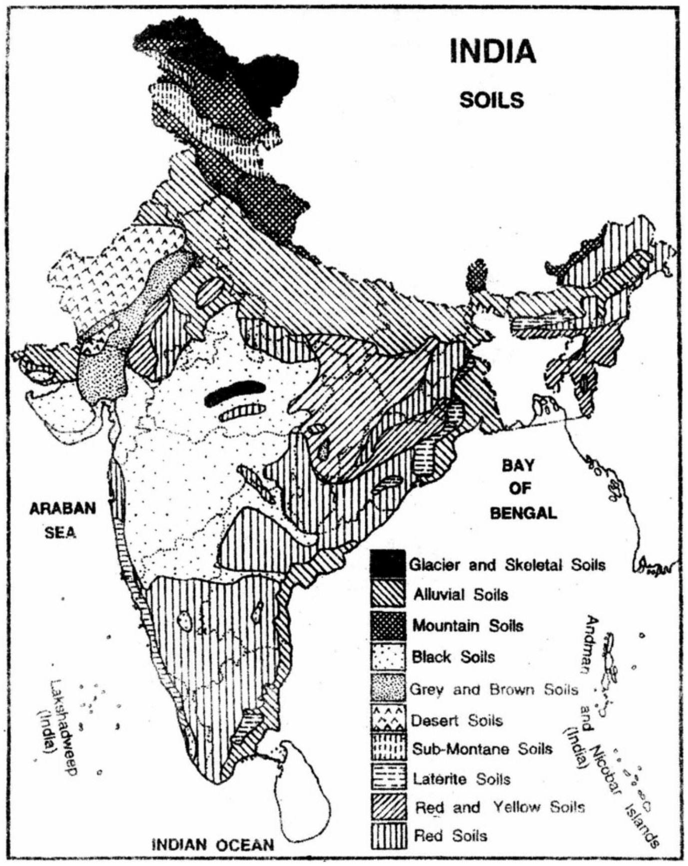

चित्र– 7.1: भारत में प्रमुख मिट्टियों का विवरण

7.2.1 काँपीय मिट्टी (Alluvial Soils)

काँपीय मिट्टी विशाल मैदानों, नर्मदा, ताप्ती, महानदी, गोदावरी, कृष्णा व कावेरी की घाटियों एवं केरल के तटवर्ती भागो में लगभग 15 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 43.4 प्रतिशत भू–क्षेत्र) पर विस्तृत हैं। ये मिट्टी मुख्यत: हिमालय से निकलने वाली नदियों द्वारा अपरदित तलछट से निर्मित हैं। ये हल्की पूरे से राख–जैसे भूरे रंग की हैं तथा गठन में रेतीली से दोमट प्रकार की हैं। इन मिट्टी की पीरच्छेदिका उच्चभूमि में अपीरपक तथा निम्नभूमि में पीरपक है।

बाढ़ के मैदान की नवीन काँप स्थानीय रूप से 'खादर ' तथा पुरानी काँप, जो अपरदन से अप्रभावित होती है, 'बांगर' कहलाती है। बांगर भूमि में कंकर तथा अशुद्ध कैल्शियम कार्बोनेट की ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं, जिन्हें 'कंकड़' कहते हैं। शुष्क क्षेत्रों में इन मिट्टी में लवण तथा क्षार के निक्षेप भी मिलते हैं, जिन्हें 'रेह' कहा जाता है। बाँगर के निर्माण में चीका का प्रमुख योग रहता

है; कहीं– कहीं दोमट या रेतीली दोमट मिलती है; बांगर मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए भारी मात्रा में उर्वरकों की आवश्यकता होती है।

कौपीय मिट्टी पोटाश, फॉस्फोरस अम्ल, चूना तथा जैविक पदार्थों में समृद्ध होती हैं, किन्तु इनमें नाइट्रोजन व ह्यूमस तत्वों की बहुत कमी होती है। ये मिट्टी चाँवल, जूट गन्ना, गेहूँ कपास, मक्का, तिलहन, फल, सब्जी अग्नि फसलों के लिए उपयुक्त हैं।

7.2.2 लाल मिट्टी (Red Soils)

लाल मिट्टी का विस्तार प्रायद्वीप पर लगभग 6.1 लाख वर्ग किमी (देश के 18.6 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर है। ये मिट्टी तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र. आन्ध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा एवं झारखण्ड में व्यापक क्षेत्रों में तथा पश्चिम बंगाल, दक्षिणी उत्तरप्रदेश एवं राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में पाई जाती हैं। इन मिट्टी का विकास आर्कियन ग्रेनाइट, नीस, कुड्डप्पा, विन्ध्यन तथा धारवाड़ शैलों की अवसादी शैलों के ऊपर हुआ है। इनका लाल रंग लोहे के ऑक्साइड की उपस्थिति के कारण है। इनका गठन बालू से चीका तक, प्रधानत : दोमट प्रकार का है। इनकी संरचना छिद्रयुक्त तथा भंगुर है, जिसमें कंकर, कार्बोनेट तथा कुछ घुलनशील लवण पाए जाते हैं। इन शैलों में सामान्यत : चूना, मैग्नीशियम, फॉस्फेट, नाइट्रोजन, पोटाश तथा लूमस ह्यूमस कमी रहती है। ये अत्यधिक निक्षालित (leached) मिट्टी हैं। उच्चभूमि में इनकी परत महीन होती है तथा ये बजरीयुक्त, बलुई, पथरीली एवं छिद्रयुक्त होती हैं। अपने गुणधर्म के कारण ये बाजरा–जैसी खाद्यान्न फसलों के लिए उपयुक्त होती हैं निम्नभूमि तथा घाटियों में ये समृद्ध, गहरी, उर्वर, गहरे रंग की होती है तथा कपास, गेहूँ दाल, तम्बाकू, ज्वार, अलसी, मोटे अनाज, आलू व फल की खेती के लिए उपयुक्त होती हैं।

7.2.3 काली मिट्टी (Blank Soils)

काली मिट्टी को स्थानीय रूप से 'रेगुर' या 'काली कपास की मिट्टी' तथा अन्तर्राष्ट्रीय रूप से 'उष्ण कटिबन्धीय चरनोजम' कहा जाता है। इन मिट्टी का विस्तार 5 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 15. 2 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर है। इनका विकास महाराष्ट्र, पश्चिमी मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं उत्तप्रदेश राज्यों में दकन लावा के अपक्षय से हुआ है। इस मिट्टी का रंग गहरे काले से हल्के काले तथा चेस्टनट तक है। इनकी संरचना सामान्यत: चीकामय, डलीयुक्त (cloddy) तथा कभी–कभी भुगुर होती है। ये मिट्टी सामान्यत : लोहा, चूना, कैल्शियम, पोटाश, एल्यूमिनियम तथा मैग्रीशियम कार्बोनेट से समृद्ध होती हैं किन्तु इनमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा जैविक पदार्थों की कमी होती है। इनमें देर तक नमी धारण करने की क्षमता होती है। भीगने पर ये कठोर हो जाती हैं तथा सूखने एवं हल चलाने पर इनमें गहरी दरारें उत्पन्न हो जाती हैं। इनमें उर्वरता अधिक होती है, अतएव ये जड़दार फसलों, जैसे – कपास, तूर, खट्टे फल. तम्बाकू, गन्ना, ज्वार, मोटे अनाज, अस्ली, अरण्डी, सफोला आदि की खेती के लिए उपयुक्त रहती हैं।

7.2.4 लेटराइट मिट्टी (Laterite Soils)

लेटराइट मिट्टी लगभग 1.26 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 3.7 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर विस्तृत हैं। ये मिट्टी सह्याद्रि, पूर्वी घाट, सतपुड़ा, विन्ध्याचल असम, मेघालय तथा राजमहल पहाड़ियों पर मिलती हैं। ये घाटियों में भी पाई जाती हैं।

लेटराइट मिट्टी का स्वरूप ईंट –जैसा होता है। भीगने पर ये कोमल तथा सूखने पर कठोर व डलीदार हो जाती हैं। ये उष्ण कटिबन्ध की प्रारूपिक मिट्टी हैं, जहाँ मौसमी वर्षा होती है। भीगने तथा सूखने पर इनका सिलिकामय पदार्थ निक्षालित हो जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार ग्रेनाइट का जल–विच्छेदन (hydrolysis) इन मिट्टी के निर्माण के लिए उत्तरदायी है। इनका लाल रंग लोहे के ऑक्साइड की उपस्थिति के कारण होता है। ये मिट्टी सामान्यत : लौह तथा एल्युमिनियम से समृद्ध होती हैं, किन्तु इनमें नाइट्रोजन, पोटाश, पोटेशियम, चूना तथा जैविक पदार्थ की कमी होती है। ये प्राय : अनुर्वर मिट्टी हैं, किन्तु उर्वरकों के प्रयोग से इनमें चावल, रांगी, गन्ना, काजू आदि विविध प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं।

7.2.5 पर्वतीय मिट्टी (Mountain Soils)

पर्वतीय मिट्टी हिमालय के ढाल एवं घाटियों में 2,100–3,000 मीटर ऊँचाई तक मिलती हैं। इनकी गहराई कम होती है तथा ये सामान्यत : अपरिपक्व होती हैं। गठन में ये गादयुक्त (silty) दोमट से दोमट तक, रंग में गहरी कत्थई तथा प्रतिक्रिया में हल्के से मध्यम अम्लीय होती हैं। ये मिट्टी वृक्षदार फसलों तथा आलू की खेती के लिए उपयोगी होती हैं।

7.2.6 मरूस्थलीय मिट्टी (Desert Soils)

मरूस्थलीय मिट्टी का विस्तार राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ, हरियाणा तथा दक्षिणी पंजाब के लगभग 1.42 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर है। ये मिट्टी बलुई से बजरीयुक्त (gravelly) होती हैं, जिनमें जैविक पदार्थ तथा नाइट्रोजन की कमी एवं कैल्शियम कार्बोनेट की भिन्न मात्रा पाई जाती है। इनमें घुलनशील लवणों का उच्च प्रतिशत मिलता है, किन्तु नमी की मात्रा कम होती है। ये मिट्टी सिंचाई की सहायता से खाद्यान्न तथा कपास की खेती के लिए उपयुक्त होती हैं। अन्यत्र इनमें केवल ज्वार, बाजरा तथा मोटे अनाज ही उत्पादित किए जाते हैं।

7.2.7 वन्य मिट्टी (Forest Soils)

ये मिट्टी हिमालय के शंकुधारी वन क्षेत्र में 3,000–3,100 मीटर ऊँचाई तक मिलती हैं, जहाँ भूमि पत्तियों आदि से ढँकी रहती है। इन मिट्टी का रग प्राय : गहरा होता है। इनमें जीवांश की प्रचुरता होती है, किन्तु पोटाश, फॉस्फोरस तथा चूने की कमी होती है। ये मिट्टी सह्याद्रि, पूर्वी घाट तथा उत्तरप्रदेश के तराई क्षेत्र में मिलती हैं। ये बागाती फसलों तथा फलोद्यानों के लिए आदर्श होती हैं।

7.2.8 अन्य मिट्टी (Other Soils)

(i) **लवणयुक्त एवं क्षारीय मिट्टी (Saline and Alkaline Soils)** : ये मिट्टी पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश तथा महाराष्ट्र के शुष्क भागों में लगभग 68,000 वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत हैं। केशिका–क्रिया (Capillary) से धरातल पर लवणों की परत बन जाती है। ऐसी मिट्टी पंजाब तथा उत्तरप्रदेश के नहर –सिंचित तथा उच्च जलस्तर वाले क्षेत्रों में विकसित हो गई हैं। ये अनुर्वर मिट्टी 'रेह', 'कल्लर ', 'ऊसर ', 'राथड', 'थूर', 'चोपन' आदि अनेक स्थानीय नामों से पुकारी जाती हैं। इन मिट्टी का पुनरुद्धार उचित अपवाह; चूना या जिप्सम के प्रयोग; बरसीम, चावल, गन्ना आदि लवण –प्रतिरोधी फसलें उगाकर किया जाता है। इन मिट्टी में चावल, गेहूँ, कपास, गन्ना, तम्बाकू आदि फसलें उत्पादित की जाती हैं।

(ii) **पीट एवं दलदली मिट्टी (Peaty and Marshy Soils)** : पीट मिट्टी वर्षा ऋतु में जलमग्र क्षेत्रों में पाई जाती हैं। ये मिट्टी, काली, भारी एवं अत्यधिक अम्लीय होती हैं। ये धान की खेती के लिए उपयुक्त होती हैं। ये मिट्टी अत्यधिक लवणीय तथा जैविक पदार्थों से समृद्ध होती हैं, किन्तु इनमें पोटाश व फॉस्फेट की कमी होती है। ये मिट्टी केरल में मिलती है।

दलदली मिट्टी जलसिक्ती (waterlogging) तथा मिट्टी की अवातनिक (unaerobic) दशाओं, लोहे की उपस्थिति एवं विभिन्न मात्रा में जैविक पदार्थों का प्रतिफल हैं। ये उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश, बिहार के तटवर्ती क्षेत्रों तथा उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा जिले में पाई जाती हैं।

(iii) **तराई की मिट्टी (Terai Soils):** ये मिट्टी एक संकरी पेटी में पश्चिमी हिमालय के पाद में मिलती हैं। इनका निर्माण शिवालिक पहाड़ियों से अपरदित पदार्थ के निक्षेपण से हुआ है। ये मिट्टी उर्वर हैं तथा इनमें वनों का विकास हुआ है।

7.3 भारतीय मिट्टी की उर्वरता (Fertility of Indian Soils)

भारत में गहन कृषि के रूप में भू–उपयोग तथा अनेक फसलों के उत्पादन के कारण मिट्टी की उर्वरता निरन्तर ह्रास हो रहा है। भारतीय मिट्टी यद्यपि विश्व की सर्वोत्तम मिट्टी मानी जाती हैं, तथापि इनकी उर्वरा शक्ति में व्यापक प्रादेशिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं (चित्र –7.2)। साथ ही, इनका उपजाऊपन अधिक समय तक नहीं चल सकता, जब तक कि उनके नष्ट होने वाले तत्वों का उनमें पुन : समावेश न किया जाए।

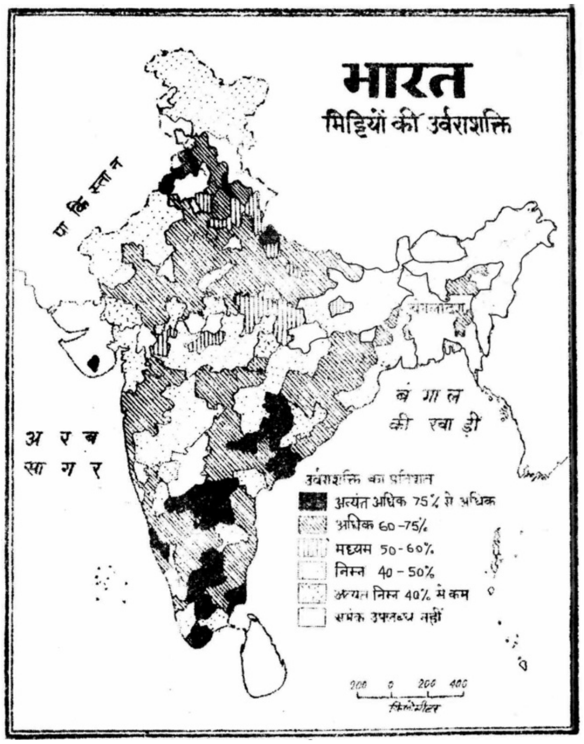

चित्र – 7. 2: भारतीय मिट्टी की उर्वरा शक्ति

उर्वरता मिट्टी का विशिष्ट गुण माना जाता है, क्योंकि इसके कारण ही धरातल पर वनस्पति का उद्भव एवं विकास सम्भव होता है। मिट्टी की उर्वरता जलवायु, मिट्टी की बनावट, उसमें जलग्रहण शक्ति, रासायनिक एवं जीवांश आदि तत्वों की मात्रा पर निर्भर करती है। उर्वरता सभी मिट्टी में समान रूप से नहीं पाई जाती। सामान्यत : नमी धारण करने वाली मिट्टी अधिक उपजाऊ होती हैं, लेकिन जिन मिट्टी में जल नीचे चला जाता है या जल्दी सूख जाता है, वे मिट्टी उपजाऊ नहीं होती। इकसी प्रकार बारीक कणों की मिट्टी उपजाऊ तथा कंकरीली व पथरीली या रेतीली मिट्टी अनुपजाऊ होती है। जिन मिट्टी में जीवावशेष सड़ते –गलते रहते हैं, वे मिट्टी भी उपजाऊ बन जाती है।

वनस्पति भोजन के रूप मिट्टी से में अनेक तत्व ग्रहण करती हैं। इनमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, गंधक, पोटाश, चूना, सोडियम आदि लवण तत्व महत्वपूर्ण हैं। भारतीय मिट्टी में इनमें से कुछ–ही तत्व, जैसे – फॉस्फोरस और पोटाश पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। नाइट्रोजन आदि तत्वों की बहु त कमी पाई जाती है। निरन्तर कृषि करते रहने से मिट्टी की उर्वरता में कमी होती जाती है। इसकी आंशिक पूर्ति उर्वरा शक्ति बढ़ाने वाली फसलों के चयन तथा वैज्ञानिक फसल–चक्र अपनाकर की जा सकती है। भिन्न –भिन्न किस्म के पौधे भिन्न– भिन्न उर्वरक तत्वों का उपयोग करते हैं। कुछ पौधे मिट्टी में उर्वरक तत्वों को मिलाते भी हैं. जैसे – अरहर, उड़द, मूंगफली आदि दलहनी फसल, हवा से नाइट्रोजन ग्रहण कर बैक्टीरिया द्वारा अपनी जड़ों में संचित करती हैं। फसलों को अदल –बदल कर बोना भी लाभदायक है। झकड़ा जड़ वाली फसलें ऊपर की परतों से तथा मूसला जड़ वाली फसलें नीचे की परतों से भोजन प्राप्त करती हैं। इन विधियों को अपनाने के बावजूद मिट्टी की उर्वरता शक्ति बढ़ाने के लिए खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करना पड़ता है।

खाद एवं उर्वरक मुख्यत : निम्नलिखित तीन प्रकार के होते है –

1. **कार्बनिक खाद :** इस खाद में हरी खाद, गोबर तथा कूड़े की खाद, कम्पोस्ट खाद, खली की खाद, हड्डी की खाद, मछली की खाद, रुधिर की खाद आदि सम्मिलित की जाती हैं –

   (i) **हरी खाद.** मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में हरी खाद का महत्व बहुत अधिक है। भारत में इस खाद का प्रयोग यद्यपि प्राचीन समय से हो रहा है, तथापि विस्तृत पैमाने पर नही। हरी खाद सनई, ढैंचा, मूंग, उड़द आदि फसलों के डंठल को सड़ाकर प्राप्त की जाती है। इससे नाइट्रोजन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। हरी खाद में 7 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.2 प्रतिशत फॉस्फेट तथा 0. 8 प्रतिशत पोटाश का अंश पाया जाता है। दक्षिणी राज्यों को छोडकर भारत के शेष राज्यों में इस खाद का प्रचलन अधिक नहीं हो सका है।

   (ii) **गोबर व कूड़े की खाद :** पशुओं के गोबर, मल–मूत्र तथा कूड़ा–करकट का उपयोग खाद बनाने के लिए किया जाता है। इन्हें मिट्टी के गड्ढे में डालकर सड़ा लिया जाता है। इस तरह की खाद में 0.5 से 1.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.4 से 0.8 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा 0.5 से 1.9 प्रतिशत पोटाश पाया जाता है। वर्तमान समय में गोबर से मीथेन गैस उत्पन्न कर शेष गोबर, मल–मूत्र कूड़ा–करकट का उपयोग उत्तम खाद बनाने के लिए किया जाता है।

   (iii) **कम्पोस्ट खाद:** यह खाद उचित विधि से गोबर, मल–मूत्र, कूड़ा –करकट आदि को सड़ा–गलाकर बनाई जाती है। इस खाद में 0.4 से 2.0 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.3 से 1.8 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा 0.7 से 15 प्रतिशत पोटाश पाया जाता है। भारत में कम्पोस्ट खाद बनाने का प्रचलन अधिक नही है।

   (iv) **खली की खाद** : यह खाद सरसों, तिल, अलसी, मूंगफली आदि की खली से प्राप्त होती है। इसमें पौधों के विकास के लिए आवश्यक सभी तत्व पाए जाते हैं। इसमें नाइट्रोजन 2.5 से 7.9 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.8 से 2.9 प्रतिशत तथा पोटाश 0.12 से 2.2 प्रतिशत पाया जाता है।

   (v) **भारत में तिलहन की पैदावार अधिक होती है**, किन्तु इसका बहुत बड़ा भाग निर्यात कर दिया जाता है। खली का निर्यात भी विदेशों को होता है। कृषि पैदावार बढ़ाने हेतु खली का प्रयोग खाद के रूप में करने के लिए यह आवश्यक है कि तिलहन का निर्यात कम का तेल का निर्यात बढ़ाया जाए।

   (vi) **हड्डी की खाद:** यह खाद पशुओं के मरने के बाद उनकी हड्डियों को मशीनों से पीसकर निर्मित की जाती है। हड्डियों के चूरे में फॉस्फोरस का अंश बहुत अधिक (20 से 3० प्रतिशत) पाया जाता है। फॉस्फोरस की कमी वाली मिट्टी के लिए यह बहुत उपयोगी है। भारत में इस खाद का उपयोग अधिक नहीं किया जाता।

   (vii) **मछली की खाद :** इस खाद का निर्माण मछलियों के अवशेषों से किया जाता है। दक्षिणी भारत में मालाबार तथा तमिलनाडु तट पर स्थित बहुत–से कारखानों में मछली का तेल निकालकर अवशेष मछलियों को सुखाकर खाद बना ली जाती है। मछली की खाद में 4 से 10 प्रतिशत नाइट्रोजन, 3 से 9 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा 0.3 से 15 प्रतिशत पोटाश प्राप्त होता है। भारत में इस खाद का प्रचलन बहुत कम है।

(viii) **रुधिर की खाद :** हमारे देश में अनेक बूचड़खाने हैं, जहाँ पर्याप्त मात्रा में रुधिर प्राप्त कर उसे सुखा लिया जाता है। इसका प्रयोग खाद के रूप में किया जाता है। इस खाद में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक (लगभग 10 प्रतिशत) पाई जाती है। भारत में इस खाद का भी प्रचलन बहुत कम है।

2. **अकार्बनिक उर्वरक** : ये अत्यन्त प्रभावशाली उर्वरक हैं। कार्बनिक खादों की तरह इनका उपयोग बहुत पहले मिट्टी में मिलाकर नहीं किया जाता, बल्कि फसल उगाते समय ही किया जाता है। अकार्बनिक उर्वरक निम्नलिखित प्रकार के होते है –

(i) **फॉस्फोरस उर्वरक :** इस उर्वरक से पौधों की कोशिकाओं की वृद्धि होती है। फॉस्फोरस की प्राप्ति कई तरह की चट्टानों में होती है, जो भारत के विभिन्न भागों में पाई जाती हैं। झारखण्ड के हजारीबाग तथा बिहार के मुंगेर व गया जिलों की अभ्रकयुक्त शैलों में फॉस्फोरस पाया जाता है। इसके अतिरिक्त राजस्थान के अरावली क्षेत्र (उदयपुर), मध्यप्रदेश के झाबुआ क्षेत्र तथा तिरूच्चिराप्पल्लि व मसूरी के निकट आग्नेय व परिवर्तित चट्टानों में भी फॉस्फोरस पाया जाता है। लोहा तथा इस्पात के कारखानों से निकलने वाले धातुमल (slag) में भी फॉस्फोरस अधिक मात्रा में मिलता है। इसमें 3 से 6 प्रतिशत फॉस्फोरस पाया जाता है। जमशेदपुर के इस्पात कारखाने में धातुमल से फॉस्फेट बनाई जाती है।

(ii) **कैल्शियम उर्वरक :** कैल्शियम पौधों की जड़ों की समुचित वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है। यह भूमि के अम्लीय अंश को भी कम करता है। यह उर्वरक चूने की चट्टानों से प्राप्त होता है। ये चट्टानें शाहाबाद (बिहार), कटनी व सतना (मध्यप्रदेश), जोधपुर व बूंदी (राजस्थान), खासी व जैन्तिया (मेघालय) आदि क्षेत्रों में पाई जाती हैं। डोलोमाइट चट्टानों में भी कैल्शियम मिलता है। ये चट्टानें उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश व झारखण्ड राज्यों में मिलती हैं।

(iii) **पोटेशियम उर्वरक :** पोटाश में सौर्यिक किरणों को अवशोषित करने की शक्ति होती है। इससे पौधों की पत्तियों का मुरझाना या नष्ट होना रुकता है। पोटाश की प्राप्ति पोटेशियम सल्फेट, पोटेशियम नाइट्रेट तथा पाटेशियम क्लोराइड आदि के रूप में होती है। इसके उपयोग से मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। सांभर झील (राजस्थान) के पास की रेह में 7 प्रतिशत से अधिक पोटाश पाया जाता है। इसके अतिरिक्त शिमला की पहाडियों, झारखण्ड व राजस्थान की शैलों में भी यह उर्वरक प्राप्त होता है। पोटेशियम सल्फेट में 48 से 52 प्रतिशत तथा पोटेशियम क्लोराइड में 50 से 60 प्रतिशत पोटाश प्राप्त होता है।

(iv) **नाइट्रोजन उर्वरक :** नाइट्रोजन से पौधों की वृद्धि के लिए प्रोटीन आदि पदार्थ प्राप्त होते हैं। यह तीन प्रकार के पदार्थों से प्राप्त की जाती है – सोडियम नाइट्रेट, पोटेशियम नाइट्रेट तथा अमोनियम सल्फेट। सोडियम नाइट्रेट चिली से प्राप्त किया जाता है। पोटेशियम नाइट्रेट तथा अमोनियम सल्फेट भारत के कई कारखानों मैं उत्पन्न किया जाता है। सिन्द्री एशिया का सबसे बड़ा नाइट्रोजन उर्वरक का कारखाना है। वर्तमान

समय में वायुमण्डल से नाइट्रोजन तत्व प्राप्त करने की नई तकनीक विकसित की गई है।

3. **जैव उर्वरक:** वर्तमान समय में जैव उर्वरक के अनुसन्धान तथा विकास की कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं। इनके अन्तर्गत नील–हरित शैवाल (blue– green algae) तथा राइजोबियम का उत्पादन किया जाता है। नील–हरित शैवाल का उत्पादन करने के लिए धान, गेहूँ, मक्के की पुआल, गन्ने की खोई, नारियल की जट और धान की भूसी–जैसे कैरियर पदार्थों का उपयोग किया जाता है। इस उर्वरक के प्रयोग से धान, दाल, तिलहन आदि फसलों का में उत्पादन बढ जाता है।

बोध प्रश्न–1

1. भारत में मिट्टी निर्माण पर कौन–कौन–से प्रमुख कारक प्रभाव डालते हैं?

....

....

2. भारत में मृदाजनन की दृष्टि से मुख्यत: कितने प्रकार की मिट्टी मिलती हैं तथा कौन–से क्षेत्रों में?

....

....

3. भारत में काँपीय मिट्टी का विस्तार कितने भूक्षेत्र पर हे?

....

....

4. काँपीय मिट्टी की क्या विशेषताएँ हैं?

....

....

5. भारत में लाल मिट्टी का विस्तार कितने भूक्षेत्र पर है?

....

....

6. लाल मिट्टी की क्या विशेषताएं हैं?

....

....

7. भारत में काली मिट्टी का विस्तार कितने भूक्षेत्र पर है?.

....

....

8. काली मिट्टी की क्या विशेषताएँ है?

....

....

9. भारत में लेटराइट मिट्टी का विस्तार कितने भूक्षेत्र पर है?

....

....

10. लेटराइट मिट्टी की क्या विशेषताएँ हैं?

....

....

11. भारतीय मिट्टी की उर्वरा शक्ति निरन्तर ह्रासोन्मुख क्यों है?

....

....

7.4 भारतीय मिट्टी की समस्याएँ (Problems of Indian Soils)

भारतीय मिट्टी अपरदन, जलसिक्ती, लवणता एवं क्षारीयता, मरूस्थलीकरण, अवक्षय आदि अनेक समस्याओं से ग्रसित हैं –

7.4.1 मृदा अपरदन (Soil Erosion)

मृदा निर्माण एक अत्यन्त धीमी सतत प्रक्रिया है, जिसमें हजारों वर्ष लाते हैं। मृदा अपरदन यद्यपि, प्राकृतिक प्रक्रम है तथापि दोषपूर्ण व अवैज्ञानिक कृषि पद्धतियों के कारण, तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों के विशेष रूप से, मिट्टी तथा ढीली परत होने से मृदा अपरदन की प्रक्रिया तीव्रतर हो जाती है। ग्लोवर (Glover) के अनुमान में देश का 80 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र मुदा अपरदन से ग्रसित है। एक अन्य अनुमान के अनुसार देश का 126.6 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रमृदा अपरदन 'प्रभावित है। प्रतिवर्ष वर्षा–जल से मिट्टी की 1/8 सेमी मोटी ऊपरी परत बह जाती है। राजस्थान इस समस्या से सर्वाधिक ग्रसित, जहाँ 199.02 लाख हैक्टेयर क्षेत्र मृदा अपरदन तथा 174.92 लाख हैक्टेयर क्षेत्र विनष्ट भूमि से प्रभावित है। मध्यप्रदेश (196.10 लाख हैक्टेयर), महाराष्ट्र (191.81 लाख हैक्टेयर), आन्ध्रप्रदेश (115.62 लाख हैक्टेयर), कर्नाटक (109.89 लाख हैक्टेयर), गुजरात (99.46 लाख हैक्टेयर) एवं उत्तरप्रदेश (71.10 लाख हैक्टेयर) क्रमश: अवरोही क्रम में मृदा अपरदन से प्रभावित अन्य राज्य हैं (चित्र 7.3)।

वस्तुतः, हिमालय, पश्चिमी घाट तथा प्रायद्वीपीय उच्चभूमि– जैसे तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में मृदा अपरदन ने विस्तृत क्षेत्र को बंजर भूमि (waste land) या उत्खात भूमि (bad land) में बदल दिया है। भूमि विघटन (land degradation) का व्यापक विस्तार भी बड़े राज्यों में दिखाई देता है, जिसमें राजस्थान (174.92 लाख हैक्टेयर) सर्वोपरि तथा (60.65 लाख हैक्टेयर) द्वितीय स्थान पर है। पश्चिम बंगाल (32.70 लाख हैक्टेयर), गुजरात (26.40 हैक्टेयर), हरियाणा (25. 11 लाख हैक्टेयर), बिहार एवं झारखण्ड (22.92 लाख हैक्टेयर), पंजाब (22.29 लाख हैक्टेयर), उड़ीसा (22.25 लाख हैक्टेयर) आदि अन्य प्रभावित राज्य अवरोही क्रम में सम्मिलित हैं। विनष्ट भुनी कृषियोग्य बंजर भूमि का प्रमुख घटक है। उत्साद भूमि के चार वृहद् क्षेत्रों की पहचान की गई है – (i) पंजाब में शिवालिक के दक्षिणी ढाल, (ii) चम्बल एवं उसकी सहायक नदियों के मध्यवर्ती व निचले मार्ग तथा चम्बल–यमुना दोआब, (iii) छोटा नागपुर पठार एवं राजमहल पहाड़ियों के कुछ भाग. तथा (iv) गुजरात में खम्भात की खाडी के पूर्व व उत्तर–पूर्व में स्थित क्षेत्र।

असम, मेघालय, त्रिपुरा, नागालैण्ड, मिजोरम, केरल, आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में स्थानान्तरी कृषि से निर्वनीकरण एवं मृदा अपरदन की समस्या काफी उग्र हुई है। एक अनुमान के अनुसार देश का 43.61 लाख हैक्टेयर क्षेत्र झूम कृषि के अन्तर्गत है, जहाँ लगभग 15 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र प्रतिवर्ष साफ कर दिया जाता है।

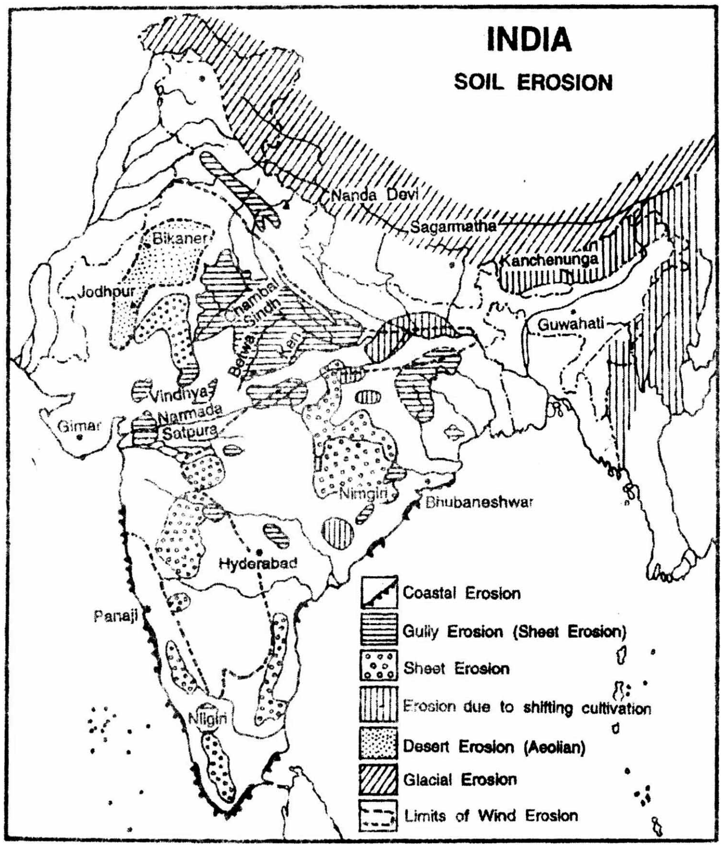

चित्र - 7.3 : भारत में मृदा अपरदन से प्रभावित क्षेत्र

लगभग 45 मिलियन हैक्टेयर भूमि पवन अपरदन से प्रभावित है, जो राजस्थान तथा पड़ौसी राज्यों तक ही सीमित नहीं है। एक अनुमान के अनुसार मरुस्थल के प्रति वर्ग किमी क्षेत्र से 80 लाख टन मिट्टी हटाई जा चुकी है।

7.4.2 लवणता, क्षारीयता एवं जलाक्रान्ति (Salinity, Alkalinity and waterlogging)

1991 में जल संसाधन मन्त्रालय द्वारा जलसिक्ती, क्षारीयता एवं लवणता की समस्या से ग्रस्त क्षेत्रों के पहचान के लिए गठित कार्यसमूह ने आकलन किया कि देश में 24.6 लाख हैक्टेयर, 30. 6 लाख हैक्टेयर तथा 2.4 लाख हैक्टेयर क्षेत्र क्रमश: जलसिक्ती, लवणता व क्षारीयता की समस्या से ग्रस्त हैं। ऐसे क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक तथा पूर्वी एवं पश्चिमी तटों के नहर –सिंचित क्षेत्रों में स्थित हैं। इनमें सिन्धु –गंगा का मैदान सर्वाधिक समस्यागस्त (25 लाख हैक्टेयर क्षेत्र प्रभावित) है। शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्र (10 लाख हैक्टेयर), गुजरात के तटीय क्षेत्र (7.4 लाख हैक्टेयर), डेल्टाई क्षेत्र (13.9 लाख

हैक्टेयर) तथा समुद्री जल से आप्लावित क्षेत्र (16 हजार हैक्टेयर) अन्य प्रभावित क्षेत्र हैं।लवणीय तथा क्षारीय प्रस्फुटन (efflorescences), जिनमें सोडियम, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम लवण होते हैं, केशिका –क्रिया द्वारा धरातल की सतह पर एक श्वेत परत के रूप में एकत्रित हो जाते हैं और मिट्टी को अनुर्वर बना देते है। जलसिक्ती एक अन्य समस्या है, जो नहर–सिंचित क्षेत्रों में दोषपूर्ण अपवाह, अत्यधिक वर्षा तथा जलस्तर के ऊपर उठने से उत्पन्न होती है (चित्र 7.4)।

7.4.3 मरूस्थलीकरण (Desertification)

भारत के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में मरूस्थलीकरण एक प्रमुख समस्या है। यहाँ मिट्टी में भूमिगर जल, जैविक पदार्थ तथा आर्द्रता का अभाव होता है। भारत में 12.13 प्रतिशत क्षेत्र शुष्क तथा 29.17 प्रतिशत क्षेत्र अर्द्धशुष्क वर्ग में रखा जाता है। निम्नलिखित तालिका 7.1 में राज्यवार शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों का वितरण दिया गया है –

तालिका 7. 1: भारत में शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों का वितरण (कुल भूक्षेत्र से प्रतिशत)

राज्य	शुष्क	अर्द्धशुष्क	राज्य	शुष्क	अर्द्धशुष्क
राजस्थान	57.42	36.67	कर्नाटक	4.27	72.60
गुजरात	33.72	47.50	जम्मू–कश्मीर	31.13	6.22
पंजाब	24.60	75.40	उत्तरप्रदेश	–	21.73
हरियाणा	29.32	59.77	मध्यप्रदेश	–	13.38
महाराष्ट्र	0.42	61.17	तमिलनाडु	–	65.54
आन्ध्रप्रदेश	7.18	44.66	**योग (औसत)**	**12.13**	**29.17**

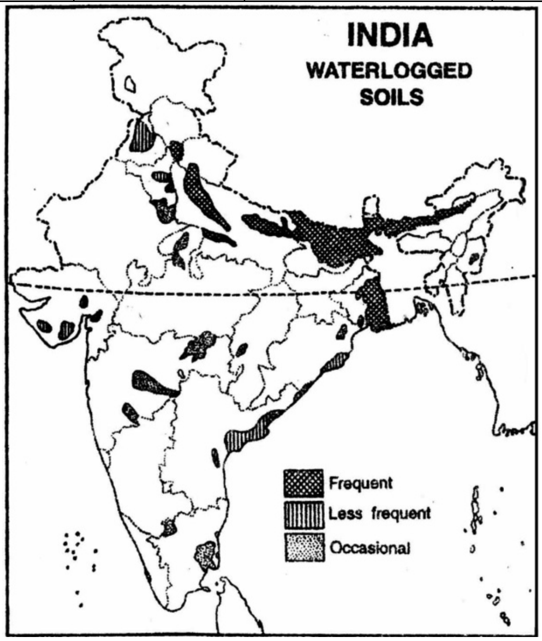

चित्र –7.4 : भारत में जलाक्रान्त मिट्टी प्रदेश

थार मरुस्थल का विस्तार राजस्थान के 16 जिलों में 3.17 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर है। यह मरुस्थल तेजी से दक्षिण –पश्चिमी पंजाब, हरियाणा तथा उत्तरप्रदेश के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की ओर

बढ़ रहा है। इस विस्तार के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं. जैसे – (i) तीव्र दर से बढ़ती हुई जनसंख्या का दबाव, (ii) अनियन्त्रित पशुचारण, (iii) निर्वनीकरण, (iv) जलवायवीय परिवर्तन, (v) जलस्तर का गिरना, (vi) सूखे की पुनरावृत्ति (vii) त्वरित अपरदन, (viii) लवणीयता, आदि।

राजस्थान के पड़ौसी राज्यों में मरुस्थल विस्तार के निम्नलिखित पारिस्थितिक दुष्प्रभाव परिलक्षित हुए है – (i) कृषि भूमि पर रेत का निक्षेपण, (ii) जल एवं पवन द्वारा त्वरित मृदा अपरदन, (iii) नदियों व झीलों में मिट्टी का निक्षेपण, (iv) जलस्तर में गिरावट तथा पेयजल स्रोतों का सूखना, (v) खाद्यान्न उत्पादन में कमी, (vi) बंजर भूमि क्षेत्र में वृद्धि, तथा (vii) सूखे की पुनरावृत्ति।

7.4.4 मृदा अवक्षय (Soil Depletion)

निरन्तर तीव्र दर से बढती हुई जनसंख्या के कारण उसके लिए भोजन उत्पादन की समस्या पैदा हो गई है। भारतीय मिट्टी शताब्दियों से सघन कृषि होते रहने के कारण चुक गई है। इनमें नाइट्रोजन. फॉस्फोरस तथा पौटाश की अत्यन्त कमी है। इससे उनकी उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। मिट्टी उर्वरता तथा उत्पादकता सुधारने के लिए कतिपय प्रमुख विधियाँ निम्नानुसार हैं - (i) जैविक पदार्थो (फसलों के अवशिष्ट भाग, खली की खाद, हरी खाद आदि) में वृद्धि, (ii) रासायनिक उर्वरकों द्वारा मिट्टी के पोषक तत्वों में वृद्धि, तथा (iii) शस्यावर्तन (crop rotation), भूमि को परती छोड़ना, मिश्रित कृषि, आदि।

बोध प्रश्न– 2

1. भारत में अनुमानतः: कितना भूक्षेत्र मृदा अपरदन से प्रभावित है?
   ....
   ....
2. भारत में उत्खात भूमि के कौन –से चार वृहद् भूक्षेत्रों की पहचान की गई है?
   ....
   ....
3. भारत में कितना भूक्षेत्र क्रमश: जलसिक्ती, लवणता व क्षारीयता की समस्या से ग्रसित है?
   ....
   ....
4. भारत में मरूस्थलीकरण के लिए उत्तरदायी कारक कौन –से हैं?
   ....
   ....
5. राजस्थान के पड़ौसी राज्यों में मरुस्थल विस्तार के क्या पारिस्थितिक दुष्प्रभाव परिलक्षित हुए हैं?
   ....
   ....

7.5 मृदा संरक्षण एवं प्रबन्धन (Soil Conservation and Management)।

मृदा संरक्षण एक चिन्तनीय विषय है, क्योंकि मिट्टी की अनियन्त्रित हानि से मानव के लिए गहन संकट पैदा हो गया है। मुदा संरक्षण में वे सब उपाय सम्मिलित हैं जो मिट्टी को अपरदन से बचाते है और इसकी उर्वरता बनाए रखते हैं। इन उपायों को व्यापक रूप से निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है –

1. **लघु उपाय :** लघु पैमाने पर स्थानीय या व्यक्गित सार पर किए जाने वाले उपाय सम्मिलित होते हैं, जैसे – (i) वृक्षारोपण, (ii) पट्टीदार कृषि (या पर्वतीय क्षेत्रों में समोच्चरेखा अथवा सोपानी कृषि), (iii) पत्तियों' की खाद, (iv) उर्वरकों तथा खादों के द्वारा मिट्टी को संसक्त बनाए रखना, (v) अवनालिकाओं को अवरुद्ध करना, (vi) अतिचारण तथा स्थानान्तरी कृषि पर रोक, (vii) शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षत्रों में पवन के वेग तथा अपरदन को रोकने के लि सुरक्षा पेटियों व पवन अवरोधों का निर्माण, (viii) घास तथा वृक्षारोपण द्वारा बालूकास्तूपों का स्थिरीकरण, (ix) एकान्तरी कृषि तकनीक अपनाना, (x) शुष्क कृषि को लोकप्रिय बनाना, तथा (xi) वैज्ञानिक शस्यावर्तन।
2. **बृहद् उपाय:** बृहद् उपायों में राज्य तथा केन्द्र सरकार द्वारा भूमि अपरदन रोकने तथा व्यापक पुनरुद्धार के लिए अपनाई गई योजनाएँ एवं परियोजनाएँ सम्मिलित हैं, जैसे – (i) अवनालिकाओ को अवरूद्ध करना, उनके आर –पार मेड (bund) निर्माण, धरातल समतलीकरण, व्यापक वृक्षारोपण आदि द्वारा बीहड़ों (ravines) तथा, उत्खात भूमि (bad land) का पुनरुद्धार, (ii) बड़े जलाशयों तथा बाँधों द्वारा अपवर्तन मार्गों (diversion channels)र का निर्माण (जिसके लिए बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है), बाढ़ नियन्त्रण तथा अतिरिक्त जल का भण्डारण एवं अपवर्तन, (iii) सड्कों, नहरों, नदी तटों के सहारे, मरुस्थलों, बीहड़ों एवं बंजर भूमि में वृक्षारोपण, (iv) स्थानान्तरी कृषि पर निषेध एवं झूमिया आदिवासी परिवारों का पुनर्वास, तथा (v) ऊसर मिट्टी का पुनरुद्धार।

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान मृदा संरक्षण कृषि विकास का प्रमुख आधार –स्तम्भ रहा है। केन्द्र सरकार ने अखिल भारतीय स्तर पर मृदा संरक्षण कार्यक्रमों को समन्वित करने के लिए एक केन्द्रीय मृदा संरक्षण बोर्ड की स्थापना 1953 में की। राज्य तथा केन्द्र सरकार द्वारा मिट्टी द्वारा जल के संरक्षण के लिए अनेक योजनाएँ क्रियान्वित की गई हैं। विभिन्न योजनाओं पर प्रथम योजनाकाल में 1.6 करोड़ रुपए, द्वितीय योजनाकाल में 20 करोड़ रुपए, तृतीय योजनाकाल में 78 करोड़ रुपए, चौथे योजनाकाल में 161 करोड़ रुपए, पाँचवें योजनाकाल में 215 करोड़ रुपए, छठे योजनाकाल में 450 करोड रुपए. सातवें योजनाकाल में 740 करोड़ रुपए, आठवें योजनाकाल में 958 करोड़ रुपए, तथा नौवें योजनाकाल में 1,150 करोड़ रुपए व्यय किए गए।

केन्द्र प्रवर्तित योजनाओं के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित रहे हैं – (i) बहु –उद्देश्यीय पीरयोजनाओं के अन्तर्गत निर्मित जलाशयों की तली में गाद के निक्षेरा को रोकना, (ii) गंगा बेसिन में बाढ़ नियन्त्रण, (iii) देश के उत्तर –पूर्वी एवं अन्य राज्यों में स्थानान्तरी कृषि अपनाने वाले आदिवासियों का पुनर्वास, तथा (iv) विनष्ट भूमि का सुधार एवं पुनरुद्धार। उपर्युक्त उद्देश्यों की

पूर्ति के लिए मृदा रख जल संरक्षण के समुचित उपाय अपनाए जा रहे हैं। बाढ़ नियन्त्रण के लिए विशेष रूप से समेकित, जलविभाजक प्रबन्धन किया जा रहा है। इन कार्यक्रमों. से सम्बन्धित क्षेत्रों का सामाजिक एवं आर्थिक विकास होगा।

विभिन्न उपायों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों का विवरण निम्नानुसार है –

1. केन्द्र प्रवर्तित योजनाओं में बाढ़प्रवण संग्रहण क्षेत्रों तथा विभिन्न नदी घाटियों के 776 जल विभाजकों की योजनाएँ सम्मिलित है।
2. बहु –उद्देश्यीय परियोजनाओं के अन्तर्गत निर्मित जलाशयों में गाद नियन्त्रण के लिए केन्द्र ने 17 राज्यों तथा दामोदर घाटी निगम के 27 जल –संग्रहण क्षेत्रों में योजनाएँ प्रवर्तित की हैं।
3. सातवीं योजना के दौरान गंगा बेसिन के 8 बाढ़प्रवण नदी क्षेत्रों में समेकित जलविभाजक प्रबन्धन योजनाएँ चालू की गईं।
4. केन्द्र ने मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान एवं गुजरात के दस्युग्रस्त क्षेत्रों में बीहड़ों के सुधार, अतिरिक्त सिंचाई द्वारा मिट्टी की उत्पादकता में वृद्धि तथा दस्यु संकट को दूर करने पर बल देते हुए बंजर भूमि विकास तथा भूमि उद्धार की विशेष योजनाएँ चालू की।
5. अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, असम, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैण्ड, उड़ीसा तथा आन्ध्रप्रदेश में स्थानान्तरी कृषि को रोकने तथा झूमिया कृषकों के पुनर्वास की विशेष योजनाएं चालू की गई हैं।
6. अखिल भारतीय मृदा भूमि उपयोग संगठन ने सुदूर संवेदी तकनीक की सहायता से चार प्रादेशिक एवं तीन उपकेन्द्रों में सर्वेक्षण कार्यक्रम आयोजित किए तथा तुरन्त नियोजन के लिए 3, 772 जल–विभाजकों को चिह्नित किया।
7. आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र में जलविभाजक विकास के लिए पायलट परियोजनाओं के क्रियान्वयन हेतु जलविभाजक विकास समिति का गठन किया गया। इन परियोजनाओं का उद्देश्य हिमालय के पारितन्त्र में सुधार एवं राज्यों के जलविभाजक क्षेत्रों में पर्यावरण की रक्षा करना है।
8. राष्ट्रीय भूमि उपायोग एवं संरक्षण बोर्ड देश के भूमि संसाधनों के विकास एवं प्रबन्धन में संलग्न है।
9. दामोदर घाटी निगम के अन्तर्गत हजारीबाग स्थित भूमि संरक्षण प्रशिक्षण केन्द्र के अतिरिक्त 8 प्रादेशिक शोध एवं प्रदर्शन केन्द्र देहरादून, चण्डीगढ़, कोटा, वलसाड, आगरा, बेलारी, ऊटकमण्ड तथा जोधपुर में स्थापित किए गए हैं।

बोध प्रश्न– 3

1. भारत में लघु पैमाने पर मृदा संरक्षण हेतु क्या उपाय अपनाए जा रहे हे?
....
....
2. भारत में वृहद पैमाने पर मृदा संरक्षण हेतु क्या उपाय अपनाए जा रहे हैं?
....
....

3. भारत मे मृदा संरक्षण हेतु केन्द्र प्रवर्तित योजनाओं के क्या प्रमुख उद्देश्य रहे हैं?

....

....

4. भारत में मृदा संरक्षण हेतु केन्द्र प्रवर्तित प्रमुख परियोजनाएँ कौन–सी है?

....

....

7.6 सारांश (Summary)

भारत–जैसे कृषिप्रधान देश के लिए मिट्टी सबसे प्रमुख संसाधन है। पैतृक शैलें, जलवायु, वनस्पति, भूमिगत जल, सूक्ष्मजीव आदि अनेक कारक मृदाजनन को प्रभावित करते हैं। भारत के अधिकांश भाग (विशाल मैदान, तटीय क्षेत्र एवं दकन) में अकटिबन्धीय मिट्टी मिलती हैं। ये मिट्टी बाह्यजात प्रक्रमों से निर्मित हुई हैं। काँप मिट्टी नदियों द्वारा लाए गए अपरदित तलछट से निर्मित हैं, जबकि दकन की लावा मिट्टी ज्वालामुखी शैलों के विखण्डन से बनी हैं।

अनेक विद्वानों ने भारतीय मिट्टी के वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं, किन्तु इनमें से कोई' –भी अन्तर्राष्ट्रीय मानकों को पूरा नहीं करता। मिट्टी की मौलिक व रासायनिक विशेषताओं, जलवायु, वनस्पति एवं भूतत्व के आधार पर काँपीय, लाल, काली और लेटराइट भारत के चार प्रमुख मिट्टी वर्ग हैं। काँपीय मिट्टी विशाल मैदानों, नर्मदा, ताप्ती, महानदी, गोदावरी, कृष्णा व कावेरी घाटियों तथा केरल के तटवर्ती भागों में लगभग 15 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 43.4 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर विस्तृत हैं। ये पोटाश, फॉस्फोरिक अम्ल, चूना तथा जैविक पदार्थों से समृद्ध हैं। लाल मिट्टी का विस्तार प्रायद्वीप पर लगभग 6.1 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 18.6 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर है। ये मिट्टी प्रमुखत : तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा व झारखण्ड एवं गौणत : पश्चिम बंगाल, दक्षिणी उत्तरप्रदेश व राजस्थान में मिलती हैं। इनमें कंकर, कार्बोनेट रख घुलनशील लगा गए जाते हैं। ये अत्यधिक निक्षालित मिट्टी हैं। काली मिट्टी का विस्तार लगभग 5 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 15.2 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर महाराष्ट्र, पश्चिमी मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं उत्तरप्रदेश राज्यों में है। ये मिट्टी लोहा, चूना, कैल्शियम, पोटाश, मेग्नीशियम कार्बोनेट आदि में समृद्ध हैं, किन्तु नाइट्रोजन फॉस्फोरस व जैविक पदार्थों में हीन होती हैं। लेटराइट मिट्टी लगभग 1.26 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 3.7 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर प्रमुखत : सह्याद्रि, पूर्वी घाट सतपुडा, विन्ध्याचल, असम, मेघालय व राजमहल पहाड़ियों पर विस्तृत हैं। ये सामान्यत : लौह तथा एल्युमिनियम से समृद्ध होती हैं। अन्य मिट्टी (पर्वतीय, मरूस्थलीय, वन्य, लवणीय एवं क्षारीय, पीट, दलदली आदि) देश के लगभग 17. 9 प्रतिशत भूक्षेत्र पर विस्तृत हैं।

भारतीय मिट्टी अपरदन, जलसिक्ती, लवणता एवं क्षारीयता, मरूस्थलीकरण, अवक्षय आदि अनेक समस्याओं से ग्रसित होने के कारण अपनी उर्वरा शक्ति में निरन्तर ह्रासोन्मुख हैं। देश का लगभग 126.6 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र अवरोही क्रम में राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, उत्तरप्रदेश आदि राज्यों में विभिन्न प्रकार के मृदा अपरदन से

प्रभावित है। देश में लगभग 24.6 लाख हैक्टेयर क्षेत्र जलसिक्ती, 30.6 लाख हैक्टेयर क्षेत्र लवणता तथा 2.4 लाभ हैक्टेयर क्षेत्र क्षारीयता की समस्या से ग्रसित है। ऐसे क्षेत्र पंजाब, हरियाणा. उत्तरप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक तथा पूर्वी एवं पश्चिमी तटों के नहर सिंचित क्षेत्रों में स्थित हैं। देश में लगभग 12.13 प्रतिशत क्षेत्र शुष्क तथा 29.17 प्रतिशत क्षेत्र अर्द्धशुष्क वर्ग में आता है, जहाँ मरूस्थलीकरण एक प्रमुख समस्या है।

मृदा संरक्षण हेतु देश में केन्द्र एवं राज्य स्तर पर अनेक उपाय, योजनाएँ एवं परियोजनाएँ प्रवर्तित की जा रही हैं। विभिन्न छोटी – बड़ी मृदा संरक्षण परियोजनाओं पर प्रथम योजनाकाल में 1.6 करोड़ रुपए व्यय किए गए थे, जो नौवें योजनाकाल में बढ़कर 1,150 करोड़ रुपए तक पहुँच गए।

7.7 शब्दावली (Glossary)

- **काली कपास मिट्टी (Black Cotton Soils) :** प्रायद्वीपीय भारत (दकन ट्रैप) के –पश्चिमी भाग में पाई जानी वाली काली मिट्टी, जिसकी उत्पत्ति लावा द्वारा निर्मित बेसाल्ट शैल से हुई है। इसे 'रेगुर' भी हैं। ये कपास उत्पादन के लिए विशेषोपयोगी हैं।
- **चीका (Clay) :** महीन कणों वाले शैलचूर्ण के जलीय निक्षेप से निर्मित मृदा, जिसका निर्माण प्राय : नदियों के किनारे, सागर, झील अथवा अन्य जलाशयों में होता है।
- **जलोढ मिट्टी (Alluvial Soils) :** किसी जलाशय या नदी के जल में मिश्रित असंगठित पदार्थ, जैसे – गाद, रेत, बजरी आदि के निक्षेप से निर्मित मिट्टी।
- **दोमट (Loam Soils) :** वह मिट्टी जिसमें बलुई मिट्टी और चिकनी मिट्टी का मिश्रण होता है।
- **रेह (Reh) :** क्षारीय मिट्टी।
- **सीरोजम (Sierozem)**शीतोष्ण कटिबन्धीय शुष्क एवं अर्द्धशुष्क प्रदेशों में विकसित होने वाली चूनाप्रधान धूसर मिट्टी।
- **खादर (Khadar) :** नदी के किनारे स्थित वह निचली भूमि जहाँ प्रतिवर्ष नदी की बाढ़ का जल पहुँच जाता है और नवीन जलोढ़ का जमाव होता रहता है।
- **बांगर (Bangar):** नदी द्वारा निर्मित अपेक्षाकृत ऊँचे पुरातन जलोढ़ मैदान, जहाँ नदी की बाढ़ का जल नहीं पहुँच पाता।
- **भाबर (Bhabar) :** भारत के उत्तरी विशाल मैदान के उत्तरी भाग में हिमालय की तलहटी में कंकड़ –पत्थर के निक्षेप से निर्मित संकरी पट्टी, जिसकी अधिकतम चौड़ाई 8 किमी है।
- **उत्खात भूमि (Bad Lands) :** अर्द्धशुष्क प्रदेशों में स्थित असमान धरातल वाली उच्चस्थ भूमि जिसपर आकस्मिक तीव्र वर्षा हो जाने से गहरी अवनालिकाएँ बन जाती हैं और सम्पूर्ण क्षेत्र ऊबड़ –खाबड़ हो जाता है।
- **गहन कृषि (Intensive Cultivation) :** एक ऐसी कृषि पद्धति जिसके अन्तर्गत सामान्यत : अधिक जनसंख्या वाले प्रदेशों में भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु उत्तम बीज, उर्वरक, उन्नत कृषि उपकरणों तथा सिंचाई के साधनों का प्रयोग कर एक –ही भूमि पर वर्ष में कई फसलें उत्पन्न की जाती हैं।

- **मृदा अपरदन (Soil Erosion) :** अपरदन कारकों द्वारा किसी स्थान से होने वाला मिट्टी का कटाव तथा स्थानान्तरण, जो यान्त्रिक अथवा रासायनिक किसी –भी प्रकार का हो सकता है।
- **मृदा संरक्षण (Soil Conservation) :** मृदा को अपरदन, अवक्षय, प्रदुषण आदि से बचाकर उसकी उर्वरा शक्ति को दीर्घकाल तक बनाए रखना।
- **निक्षालन (Leaching) :** मृदा में से घुलनशील लवणों का निष्कासन, जो विशेषत : आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में मृदा की ऊपरी परतों से नीचे की परतों में मृदा –जल के अन्त स्राव द्वारा होता है।

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. तिवारी, विजय कुमार : **भारत का भूगोल**, भाग प्रथम व द्वितीय, हिमालय पब्लिशिंग हॉऊस, मुम्बई, 1997
2. सिंह, जगदीश : **भारत – भौगोलिक आधार एवं आयाम**, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002
3. बंसल, सुरेश चन्द्र : **भारत का भूगोल,** मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2004
4. 'गौतम, अलका **: भारत का वृहद् भूगोल,** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007 (आंग्ल संस्करण भी उपलब्ध)
5. चौहान, पी. आर. एवं प्रसाद महातम : **भारत का वृहद् भूगोल,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2007
6. मिश्र, जे पी. : **भारत का भूगोल**, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007
7. शर्मा, श्रीकमल, सम्पादक **भारत का भूगोल,** मध्यप्रदेष हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 2004
8. Raychaudhary, S.P.: **Soils of India**, ICAR, New Delhi,1958
9. Rama Rao, H.S.V.: **Soil Consevation in India,** ICAR, New Delhi, 1962
10. Government of India: **The Gazetteer of India,** Vol. I– The Land, Publication Division, New Delhi, 1965
11. Govinda Rajan, S.V. and Gopala Rao, **Studies on Soils of India**, Vikas Publications, New Delhi, 1976
12. Sharma H.S. **Ravine Erosion in India,** Concept Publications, New Delhi, 1980

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. पैतृक शैलें, जलवायु, धरातलीय दशा, प्राकृतिक वनस्पति आदि।

2. (i)उत्तरी विशाल मैदान, तटीय क्षेत्र एवं दकन में अकटिबन्धीय मिट्टी, जो बाह्यजात प्रक्रमों से निर्मित हुई हैं, तथा (ii) दकन की लावा मिट्टी, जो ज्वालामुखी शैलों के विखण्डन से बनी हैं।
3. लगभग 15 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 43. 4 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर उत्तरी विशाल मैदान, नर्मदा, ताप्ती, महानदी, गोदावरी. कृष्णा, कावेरी घाटियों तथा केरल के तटवर्ती भागों में।
4. पोटाश, फॉस्फोरस अम्ल, चूना व जैविक पदार्थो में समृद्ध, किन्तु नाइट्रोजन व ह्यमस तत्वों में हीन। गठन रेतीला से दोमट रंग भूरा से राख –जैसा भूरा। चावल, गढ, गन्ना, गेहूँ, कपास, मक्का, तिलहन, फलोत्पादन आदि के लिए उपयुक्त।
5. प्रायद्वीप पर लगभग 6.1 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 18.6 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर प्रमुखत : तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा व झारखण्ड में एवं गौणत : पश्चिम बंगाल, दक्षिणी उत्तरप्रदेश व राजस्थान में।
6. चूना, मैग्नीशियम, फांस्फेट, नाइट्रोजन, पोटाश तथा ह्यमस की कमी। गठन बालू से चीका व दोमट, रंग लाल, अत्यधिक निक्षालिन। बाजरा –जैसी फसलों के लिए उपयुक्त।
7. लगभग 5 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 15.2 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर महाराष्ट्र, पश्चिमी मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं उत्तरप्रदेश राज्यों में।
8. लोहा, चूना, कैल्शियम, पोटाश, एल्युमिनियम व मैग्नीशियम कार्बोनेट से समृद्ध, किन्तु नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व जैविक पदार्थों में हीन। गठन चीकामय, डलीयुक्त, भुगुर। रंग गहरे से हल्का काला या चेस्टनट। नमी धारण करने की उच्च क्षमता। कपास, तूर, खट्टे फल, तम्बाकू, ज्वार, गन्ना, मोटे अनाज आदि के लिए उपयुक्त।
9. लगभग 1.26 लाख वर्ग किमी क्षेत्र (देश के 3.7 प्रतिशत भूक्षेत्र) पर सह्याद्रि, पूर्वी घट, सतपुड़ा, विन्ध्याचल, असम, मेघालय व राजमहल की पहाड़ियों पर।
10. लौह तथा एल्युमिनियम से समृद्ध, किन्तु नाइट्रोजन, पोटाश, पोटेशियम, चूना व जैविक पदार्थों में हीन। रंग लाल, भीगने पर कोमल तथा सूखने पर कठोर, अनुर्वर मिट्टी।
11. मुख्यत : चार कारणों से – (i) मृदा अपरदन, जलसिक्ती, लवणता व क्षारीयता, मरूस्थलीकरण तथा अवक्षय –जैसी समस्याओं से ग्रसित होने के कारण. (ii) गहन कृषि के रूप में भूमि के दीर्घकालीन उपयोग के कारण, (iii) अनेक फसलों के उत्पादन के कारण, तथा (iv) अवैज्ञानिक कृषि पद्धतियों के कारण।

बोध प्रश्न– 2

1. 0 से 126.6 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र। राजस्थान सर्वाधिक ग्रस्त – 199.02 लाख हैक्टेयर क्षेत्र प्रभावित। अवरोही क्रम में प्रभावित अन्य राज्य – मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, गुजरात व उत्तरप्रदेश।
2. (i)पंजाब में शिवालिक के दक्षिणी ढाल, (ii) चम्बल एवं उसकी सहायक नदियों के मध्यवर्ती व निचले मार्ग तथा चम्बल – यमुना दोआब, (iii) छोटा नागपुर पठार एवं राजमहल पहाड़ियों के कुछ भाग, तथा (iv) गुजरात में खम्भात की खाडी के पूर्व व उत्तर –पूर्व मे स्थित क्षेत्र।

3. जलसिक्ती से 2.46 मिलियन हैक्टेयर, लवणता से 3.06 मिलियन हैक्टेयर तथा क्षारीयता से 0.24 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र. प्रमुखत : पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात व कर्नाटक राज्यों में। सिन्धु –गंगा का मैदान सर्वाधिक समस्याग्रस्त (2.5 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र प्रभावित)।
4. (i) तीव्र दर से बढ़ती हुई जनसंख्या का दबाव, (ii) अनियन्त्रित पशुचारण, (iii) निर्वनीकरण, (iv) जलवायवीय परिवर्तन, (v) जलस्तर का गिरना, (vi) सूखे की पुनरावृत्ति (vii) त्वरित अपरदन, (viii) लवणीयता, आदि।
5. (i)कृषि भूमि पर रेत का निक्षेपण, (ii) जल एवं पवन द्वारा त्वीरत मृदा अपरदन, (iii) नदियों व झीलों में मिट्टी का निक्षेपण (iv) जलस्तर में गिरावट तथा पेयजल स्रोतों का सूखना, (v) खाद्यान्न उत्पादन में कमी, (vi) बंजर भूमि क्षेत्र में वृद्धि. तथा (vii) सूखे की पुनरावृत्ति।

बोध प्रश्न – 3

1- (i) वृक्षारोपण, (ii) पट्टीदार कृषि (या पर्वतीय क्षेत्रों में समोच्चरेखा अथवा सोपानी कृषि), (iii) पत्तियों की खाद, (iv) उर्वरकों तथा खादों के द्वारा मिट्टी को संसक्त बनाए रखना, (v) अवनालिकाओं को अवरुद्ध करना. (vi) अतिचारण तथा स्थानान्तरी कृषि पर रोक, (vii) शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पवन के वेग तथा अपरदन को रोकने के लिए सुरक्षा पेटियों व पवन अवरोधों का निर्माण, (viii) घास तथा वृक्षारोपण द्वारा बालूकास्तूपों का स्थिरीकरण, (ix) एकान्तरी कृषि तकनीक अपनाना, (x) शुष्क कृषि को लोकप्रिय बनाना, तथा (xi) वैज्ञानिक शस्यावर्तन।

2- (i) अवनालिकाओं को अवरूद्ध करना, उनके आर–पार मेड (bund) निर्माण. धरातल समतलीकरण, व्यापक वृक्षारोपण आदि द्वारा बीहड़ों (ravines) तथा उत्खात भूमि (bad lands) का पुनरुद्धार, (ii) बड़े जलाशयों तथा बाँधों द्वारा अपर्वतन मार्गों (diversion channels) का निर्माण (जिसके लिए बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है), बाढ़ नियन्त्रण तथा अतिरिक्त जल का भण्डारण रख अपवर्तन, (iii) सड़कों, नहरों, नदी तटों के सहारे, मरुस्थलों, बीहड़ों एवं बंजर भूमि में वृक्षारोपण, (iv) स्थानान्तरी कृषि पर निषेध एवं झूमिया आदिवासी परिवारों का पुनर्वास, तथा (v) ऊसर मिट्टी का पुनरुद्धार।

3- (i) बहु –उद्देश्य परियोजनाओं के अन्तर्गत निर्मित जलाशयों की तली में गाद के निक्षेप को रोकना, (ii) गंगा बेसिन में बाढ़ नियन्त्रण, (iii) देश के उत्तर –पूर्वी एवं अन्य राज्यों में स्थानान्तरी कृषि अपनाने वाले आदिवासियों का पुनर्वास, तथा (iv) विनष्ट भूमि का सुधार एवं पुनरुद्धार।

4- (i) बाढप्रवण संग्रहण क्षेत्रों तथा विभिन्न नदी घाटियों के 776 जलविभाजकों की योजनाएँ, (ii) बहु –उद्देश्य परियोजनाओं के अन्तर्गत निर्मित जलाशयों में गाद नियन्त्रण के लिए 17 राज्यों में योजनाएँ, (iii) सातवीं योजना के दौरान गंगा बेसिन के 8 बाढ़प्रवण नदी क्षेत्रों में समेकित जलविभाजक प्रबन्धन योजनाएं, (iv) मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान एवं गुजरात के दस्युग्रस्त क्षेत्रों में बीहड़ों के सुधार, अतिरिक्त सिंचाई द्वारा मिट्टी की उत्पादकता में वृद्धि तथा दस्यु संकट को दूर करने पर बल देते हुए बंजर भूमि विकास तथा भूमि उद्धार

की विशेष योजनाएँ, (v) अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, असम, मेघालय, मणिपुर. त्रिपुरा, नागालैण्ड, उड़ीसा तथा आन्ध्रप्रदेश में स्थानान्तरी कृषि को रोकने तथा झूमिया कृषकों के पुनर्वास की विशेष योजनाएँ, इत्यादि।

7.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारतीय मिट्टी का वर्गीकरण कीजिए। उनके वितरण तथा प्रमुख लक्षणों की विवेचना, कीजिए।
2. भारतीय मिट्टी की उर्वरता निरन्तर ह्रासोन्मुखी है।' कारण स्पष्ट कीजिए तथा निदान सुझाइए।
3. भारतीय मिट्टी की प्रमुख समस्याओं की विवेचना कीजिए। इनके संरक्षण एवं प्रबन्धन के उपाय सुझाइए।
4. भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत मृदा संरक्षण कार्यक्रमों की समीक्षा कीजिए।
5. भारत में मुदा संरक्षण हेतु केन्द्र प्रवर्तित योजनाओं के क्या प्रमुख उद्देश्य रहे हैं? कतिपय प्रमुख परियोजनाओं की विवेचना कीजिए।
6. निम्नलिखित विषयों पर सारगर्भित भौगोलिक टिप्पणियाँ लिखिए –
   (i) भारत में काँपीय मिट्टी का वितरण एवं उसके लक्षण।
   (ii) भारत में मिट्टी निर्माण पर प्रभाव डालने वाले कारक।
   (iii) भारत में मृदा अपरदन की समस्या एवं निदान।

इकाई 8 : खनिज संसाधन (Mineral Resources)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 खनिजों के प्रकार
8.3 देश की खनिज पेटिया
- 8.3.1 उत्तर –पूर्व प्रायद्वीपीय पठार
- 8.3.2 मध्य देशीय पेटी
- 8.3.3 दक्षिणी प्रायद्वीपीय पठार
- 8.3.4 दक्षिण–पश्चिमी प्रायद्वीपीय पठार
- 8.3.5 उत्तर – पश्चिमी क्षेत्र

8.4 खनिजोत्खनन
8.5 लौह अयस्क
- 8.5.1 लौह अयस्क के प्रकार
- 8.5.2 लौह अयस्क के क्षेत्रों का वितरण
- 8.5.3 लौह अयस्क का उत्पादन

8.6 मैंगनीज
- 8.6.1 मैंगनीज के भंडार एवं उत्पादन

8.7 खनन की समस्याएं
8.8 राष्ट्रीय खनिज नीति 2008
8.9 सारांश
8.10 शब्दावली
8.11 संदर्भ ग्रन्थ
8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे –

- भारत में पाए जाने वाले खनिजों के प्रकार,
- भारत की मुख्य खनिज मेंखलाए तथा पाए जाने वाले खनिज,
- देश में खनिज उत्पादन की प्रवृत्ति तथा वर्तमान स्थिति,
- लौह अयस्क तथा मैगनीज के भण्डार वितरण एवं उत्पादन,
- खनन उद्योग की समस्याएं,
- राष्ट्रीय खनिज नीति 2008।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्राचीन भारतीय इतिहास से ज्ञात होता है कि यहाँ के लोगों को खनिजों के विषय म पर्याप्त ज्ञान था तथा इनकी खुदाई का कार्य प्राचीन काल में भी होता था। भारत में खनिज संसाधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। भारत में युग की संरचनाओं में विभिन्न प्रकार के खनिज मिलते हैं। धारवाड़ क्रम की चट्टानों खनिजों की उपलब्धता की दृष्टि से सर्वाधिक महत्व है। इसमें धात्विक व अधात्विक खनिजों की अनेक किस्में पाई जाती है। धारवाड़ क्रम में काफी लम्बे समय बाद कुदप्पा क्रम की चट्टानों में भी अनेक खनिज पाये जाते हैं। ताम्बा, लोहा, कोबाल्ट, एस्बेस्टस, बेराईट तथा भवन निर्माण के पत्थर इन चट्टानों के प्रमुख खनिज हैं। विन्ध्यन युग की चट्टानों में हीरा, पाइराइट, चुना पत्थर, भवन निर्माण सामग्री, सजावटी पत्थर आदि पाये जाते हैं। इसी प्रकार गोण्डवाना शैल कोयला निक्षेप के लिए प्रसिद्ध हैं दक्कन ट्रेप में भवन निर्माण के लिए पत्थर, लोहा व एल्यूमिनियम युक्त चट्टानें पाई जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन चट्टानें खनिजों की दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न हैं।

भारत, अपनी विविधतापूर्ण भूगर्भिक संरचना के कारण विविध प्रकार के खनिज संसाधनों से सम्पन्न। भारी मात्रा में बहुमूल्य खनिज पूर्व –पुराजीवी काल या प्रीपैलाइजोइक काल में उत्भीत है और मुख्यत : प्रायद्वीपीय भारत की आग्नेय तथा कायांतरित चट्टानों से सम्बद्ध है। उत्तर भारत के विशाल जलोढ़ मैदानी भूभाग आर्थिक उपयोग के खनिजों से विहीन है। खनिज बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधन हैं जो सीमित एवं अनवीनीकृत हैं। उनसे अनेक आधारभूत उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थ मिलता हैं तथा विकास के प्रमुख संसाधन है। प्रचुर भण्डार के रूप में खनिजों की विस्तृत उपलब्धता ने भारत में खनिज क्षेत्र की रुचि और विकास को बहुत सहायक बना दिया है। देश अनेक धात्विक एवं गैर –धात्विक; खनिजों के विशाल संसाधनों से परिपूर्ण है। खनन' क्षैत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण भाग है। आजादी के बाद से मात्रा और मूल्य दोनों के सन्दर्भ मे, खनिज उत्पादन में अत्यन्त वृद्धि हुई है। भारत 86 खनिजों का उत्पादन करता है। जिनमें 4 ईधन, 10 धात्विक, 46 गैर –धात्विक, 3 परमाणु एवं 23 लघु खनिज शामिल है।

8.2 खनिजों के प्रकार (Types of Minerals)

खनिजों को मुख्यरूप से तीन समूहों में रखा जाता है – (अ) धात्विक खनिज, (ब) अधात्विक खनिज तथा (स) खनिज ईंधन (चित्र 8.1)। धात्विक खनिज भी (i) लौहस् (लौह अयस्क), (ii) लौह –मिश्र धातुएं (मैगनीज, क्रोमियम, कोबाल्ट, मालिब्देनम, निकेल, टंग्सटन, बेनेडियम, फेरोफास्फोरस आदि), (iii) अलौहस् धातुएं (बाक्साइट, ताँबा, सीसा, टिन, जस्ता आदि),

बहुमूल्य धातुएं (सोना, चाँदी, प्लेटिनम आदि), तथा (v) परमाणु खनिज (यूरेनियम, थोरियम) उप –समूहों में रखे जाते हैं। अधात्विक खनिज भी कई प्रकार के हैं – (1) उर्वरक खनिज (नाइट्रेट, फास्फेट तथा पोटाश), (ii) मणि (हीरा, पन्ना, लाल, मरकत, ओपल, एकामेरीन, एमेथिस्ट आदि) तथा (iii)भूद्रव्य (जिप्सम, नमक, गंधक, अभ्रक, टाल्क, मृत्तिका, चूना पत्थर आदि)। ईंधन खनिजों में पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस तथा कोयला आते हैं।

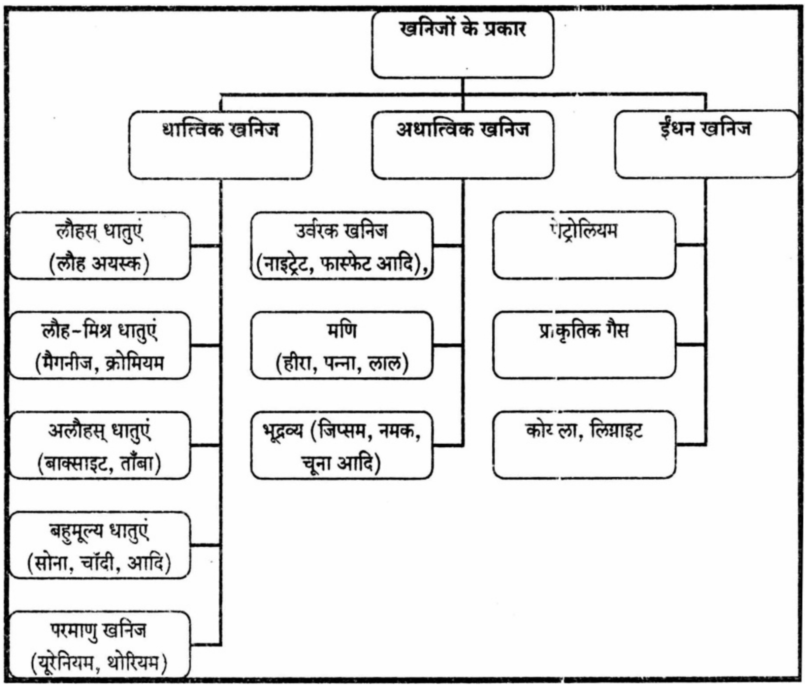

चित्र – 8.1 : खनिजों का वर्गीकरण

8.3 खनिज पेटियाँ (Mineral belts)

देश में खनिजों का प्रादेशिक वितरण बहुत असमान है। इसका कारण यह है कि खनिज कुछ ही शैल– समूहों में संचित हैं और ये शैल –समूह देश के कुछ ही भागों में पाई जाती हैं जैसे कि पेट्रोलियम टर्शियरी शैली में पाया जाता है। अधिकांश खनिज प्राचीन शैल–समूहों में संचित हैं। उदाहरण के लिए लौह अयस्क एवं मैंगनीज प्री –कैम्बियन कल्प की धारवाड. शैल –समूहों में पाए जाते हैं। इसी तरह ताँबा, सीसा और जस्ता की शिराएं धारवाड़ शैल समूह के अरावली सिरीज में पाई जाती हैं। अधिकांश धात्विक खनिज धारवाड़ और कडप्पा शैल समूहों में पाए जाते है। चूना, डोलोमाइट, जिप्सम, कैल्शियम सल्फेट फंडप्पा और ऊपरी विन्ध्यनयुगीन शैलसमूहों में पाए जाते हैं। देश में कोयले के प्रमुख भंडार गोडवाना युगीन शैलों में संचित 'है। इनमें से टर्सियरी शैलों को छोड़ कर अधिकांश शैलसमूह प्रायद्वीपीय भारत में पाए जाते हैं। इसी कारण खनिजों के भंडार की दृष्टि से प्रायद्वीपीय भारत सबसे महत्वपूर्ण है। प्रायद्वीपीय भारत में भी खनिजों की पाँच प्रमुख पेटियां है :

8.3.1 उत्तर–पूर्वी प्रायद्वीपीय पठार

यह पेटी छोटानागपुर पठार, उड़ीसा पठार और पूर्वी आन्ध्र पठार पर फैली है। इस मेखला में उद्योगों में लगने वाले विविध खनिजों के प्रचुर भंडार हैं। इनमें लौह अयस्क, मैंगनीज, अभ्रक, बाक्साइट, चूना और डोलोमाइट के बडे. भंडार विस्तृत क्षेत्र पर फैले हैं। यहां तांबा, थोरियम, यूरेनियम, क्रोमियम, सिलीमेनाइट तथा फास्फेट के भी संचय। दामोदर घाटी तथा छत्तीसगढ़ के

कोयला क्षेत्र इसी पेटी मैं आते हैं। इनके आधार पर यहाँ भारी उद्योगों की स्थापना हो सकी है। देश के लोहा–इस्पात के अधिकांश कारखाने तथा ऐलुमिनियम के कारखानें यहाँ स्थापित हैं।

8.3.2 मध्य देशीय पेटी

यह पेटी छत्तीसगढ़, पूर्वी मध्यप्रदेश, पश्चिमी महाराष्ट्र और उत्तरी आन्ध्रप्रदेश में फैली हुई है। पेटी में लौह अयस्क, मैंगनीज, बाक्साइट, चूना, डोलोमाइट, अभ्रक, तांबा और कोयले के भंडार हैं। इन खनिजों पर उद्योग इस पेटी में स्थापित किए गए हैं।

8.3.3 दक्षिणी प्रायद्वीपीय पठार

यह पेटी कर्नाटक पठार तथा समीपस्थ तमिलनाडु पठार पर फैली है तथा यह क्षेत्र कई खनिजों विशेषकर लोह अयस्क, मैगनीज और बाक्साइट तथा कई अधात्विक खनिजों में सम्पन्न है किन्तु कोयला जैसे शक्ति ' साधन के अभाव के कारण इस पेटी में भारी उद्योगों का विकास नहीं हो पाया है। देश की सोने की चार खाने इसी भाग में हैं।

8.3.4 दक्षिण –पश्चिमी प्रायद्वीपीय पठार

यह पेटी पश्चिमी कर्नाटक, गोवा तथा केरल में फैली है। यहाँ लौह अयस्क, बाक्साइट,, मैगनीज और चूना पत्थर के साथ इलीमेनाइट,जिरकॉन, मोनेन्त्राइट रेत आदि के भी भंडार हैं।।

8.3.5 उत्तर –पश्चिमी क्षेत्र।

यह पेटी गुजरात की खंभात की खाड़ी से लेकर राजस्थान मे अरावली श्रेणी तक फैली है। पेटी के प्रमुख संसाधन पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस हैं। इनके साथ ही इस पेटी में कई अधात्विक खनिजों के भंडार हैं और यहाँ से तांबा, चाँदी, सीसा और जस्ता का उत्खन्न होता है।

इन पेटियों के बाहर उत्तरपूर्व में आसाम घाटी और भारतीय निमग्रतट भी खनिजों के भंडार की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इन भागों मे ईंधन खनिज विशेषकर पैट्रोलियम और लिग्नाइट के संचय हैं।

8.4 खनिजोत्पादन (Production of Minerals)

भारत में खनिज खोदने और उनसे वस्तुएं बनाने का काम प्राचीन काल से किया जा रहा है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में रेल मार्गों के निर्माण के साथ इस उद्योग के विकास को प्रेरणा मिली। सर 1947 तक देश में उत्पन्न किए जाने वाले अधिकतर खनिज निर्यात के लिए उत्पादित किए जाते थे। स्वतंत्रता के बाद देश मैं कई नए उद्योगों की स्थापना हुई और पूर्व स्थापित उद्योगों का विकास हुआ। फलत: खनिजों और शक्ति के संसाधनों की मांग एवं उत्पादन दोनों बढे। इस अवधि में नए खनिजों की खोज कीं गई। परिणामस्वरूप देश में खाद गए सभी खनिजों का कुल मूल्य सन् 1951 मैं रुपए 89.2 करोड़ से बढ़कर सन् 2005 – 2006 में रुपए 756.99 अरब (सन् 2008 – 2009 में 1159.8 अरब रुपए) हो गया। इस प्रकार पचास वर्षो में उत्पादित खनिजों का मूल्य 849 गुना बढ़ा है। इतनी तीव्र वृद्धि खोदे गए खनिजों की मात्रा एवं उनके मूल्य में वृद्धि दोनों के कारण हुई है।

तालिका– 8.1 : भारत में खनिजों का भण्डार एवं उत्पादन

खनिज	भंडार 2005 (लाख टनों में)	उत्पादन 2005 - 06 (हजार टनों में)
ईंधन खनिज		
कोयला	2130955	407222
लिग्नाइट	341680	30049
पेट्रोलियम	170000	32204
प्रकृतिक गैस	692 BCM	31223MCM
धात्विक खनिज		
बक्साइट	32898	12335.2
क्रोमाइट	2130.6	3422.9
ताँबा अयस्क	13944	2642.7
सोना	3902	3050 Kg
लौह अयस्क	252498.7	154436
मैंगनीज	2785.7	2003.5
सीसा–जस्ता	5225.8	4795.1
चाँदी	10213 tones	27950 Kg
टिन सांन्द्र	865.5	98736 Kg
अधात्विक खनिज		
डोलोमाइट	75331	4428.1
बाइराइट्स	742	1189.8
जिप्सम	12368.8	3137.1
चूना	1753289	170378
मैग्रेसाइट	3378.8	351.5
निकल	1887	
कैओलिन	10680	1096.6
फास्फोराइट	1470	1373
स्टीऐराइट	अनुपलब्ध	627
अभ्रक	3.7	1259

स्त्रोत इंडियन ब्यूरो ऑफ माइन्स

खनिज समूहों में ईंधन खनिजों (कोयला, लिग्राइट, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस) का सन् 2005 – 06 में कुल खनिजों के मूल्य में 81. 2 प्रतिशत (सन् 2008 – 2009 में 62. 25 प्रतिशत) से अधिक हिस्सा है। इनके साथ धात्विक खनिजों का 15. 17 प्रतिशत (सन् 2008 – 2009 में 25. 17 प्रतिशत) रहा। लोहसू खनिजों में लोह अयस्क, क्रोमाइट, तांबा, सोना, जस्ता, मैंगनीज और

बाक्साइट महत्वपूर्ण हैं। अलोहस समूह में चूना, फास्फोराइट, डोलोमाइट, केवलिन, जिप्सम और मैग्रेसाइट मुख्य हैं। एकाकी खनिजों में कोयला (42.7%), पेट्रोलियम (23.7%) और प्राकृतिक गैस (11.9%) तीन बड़े खनिज हैं। इनके अलावा लौह अयस्क (11. 5%), चूना (2.51%), लिग्राइट (2.84%) और क्रोमाइट (1.29%) प्रत्येक का हिस्सा कुल मूल्य में एक प्रतिशत से अधिक है। देश में कुल लगभग 86 खनिज खोदे जाते हैं। महत्वपूर्ण खनिजों का उत्पादन ताड़िका 8.1 में अंकित है।

खनिजों के उत्पादन में भी काफी क्षेत्रीय विभिन्नता है। सर 2008– 09 में सभी उत्पादित खनिजों का स्व रु.1159.8 अरब है। इसमें सर्वाधिक हिस्सा अपतटीय क्षेत्र का 19.36 प्रतिशत है। राज्यों में उड़ीसा (14.70%) राज्य खनिजोत्सनन में देश में प्रथम स्थान पर है। इसके बाद छत्तीसगढ़ (11.61%), झारखंड (8.64%), मध्यप्रदेश (7. 83%) आन्धप्रदेश (6.46%), गुजरात (5.09%) और कर्नाटक (5.00%) का हिस्सा देश के कुल खनिजों के मूल्य 5 प्रतिशत से अधिक है। ये राज्य मिलकर देश के सभी खनिजों के कुल मूल्य का आधे से अधिक (59.33) मूल्य का खनिज उत्पन्न करते हैं। महाराष्ट्र (4.39%) गोवा (3.35%), आसाम (3.14%) और पश्चिम बंगाल (3.11%) चार राज्य मिलकर देश का 14% खनिज उत्पन्न करते हैं। उत्तरप्रदेश,, राजस्थान, तमिलनाडु, और बिहार प्रत्येक का हिस्सा 1 से 2 प्रतिशत के बीच है। इस प्रकार खनिज अर्थव्यवस्था की दृष्टि से केवल 11 राज्य ही महत्वपूर्ण हैं।

खनिजों की कुछ निश्चित विशेषताएँ होती है। यह क्षेत्र में असमान रूप से वितरित होते हैं। खनिजों की गुणवत्ता और मात्रा के बीच प्रतिलोमी सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् अधिक गुणवत्ता वाले खनिज कम गुणवत्ता वाले खनिजों की तुलना में कम मात्रा में पाए जाते हैं। तीसरी प्रमुख विशेषता यह है कि ये सभी खनिज समय के साथ समाप्त हो जाते हैं। भूगर्भिक दृष्टि से इन्हें बनने में लम्बा समय लगता है और आवश्यकता के समय इनका तुरन्त पुनर्भरण नहीं किया जा सकता। अत : इन्हें संरक्षित किया जाना चाहिए और इनका दुरुपयोग नहीं होना चाहिए, क्योंकि इन्हें दुबारा उत्पन्न नहीं किया जा सकता।

बोध प्रश्न– 1

1. भारत में किस क्रम की शैलों में सर्वाधिक खनिज मिलते हैं?

   ....

   ....

2. धात्विक समूह के खनिजों के उपसमूहों के नाम लिखिए।

   ....

   ....

3. जीवाश्मीय ईंधन खनिज कौन से हैं?

   ....

   ....

4. भारत की कौनसी खनिज पट्टी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है?

   ....

   ....

5. देश में धात्विक खनिजों का मूल्य कुल उत्पादित खनिजों के मूल्य का का कितना हे?

....

....

6. राज्यों में सबसे बड़ा खनिज उत्पादक राज्य कौन सा है?

....

....

8.5 लौह अयस्क (Irone Ore)

आधुनिक युग के आर्थिक विकास की आधारशिला लोहा ही है। भारी मशीनरी, रेल, मोटर, ट्रेक्टर, हवाई जहाज, पोत आदि लोहे के ही बनाए जाते हैं। लोहे की अनुपस्थिति में संसार के समस्त उद्योग – धन्धे बन्द हो सकते हैं। ऐलुमिनियम को छोडकर लोहा संसार की शैलों में सबसे अधिक पाया जाने वाला खनिज है। इसे इच्छित आकृति में ढाला जा सकता है। यह अत्यन्त सस्ती और उपयोगी धातु है। लोहा शुद्ध अवस्था में प्राप्त नहीं होता है। लौह –युक्त शैलों में गन्धक, फॉस्फोरेस आदि के कारण अशुद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं अत: खनिज शोधन तथा उसके परिवहन के साधनों की आवश्यकता होती है।

भारत लौह अयस्क में बहुत सम्पन्न है। यहाँ के लौह अयस्क में लौहांश 60 से 66 प्रतिशत तक होता है जो उत्तम कोटि का माना जाता है। ऐसा अनुमान है कि विश्व के संचित भण्डारों का एक –चौथाई भाग भारत में स्थित है। भारत में हेमेटाइट किस्म का लौहा 75 प्रतिशत व मैग्नेटाइट किस्म का लौहा 25 प्रतिशत निकाला जाता है। वर्ष 2007 – 08 के दौरान 1544. 4 लाख टन लौह – अयस्क का उत्खनन किया गया। इसका 94 प्रतिशत उड़ीसा, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, गोवा तथा झारखण्ड से प्राप्त हुआ। शेष 6 प्रतिशत उत्पादन आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान में हुआ। वर्ष 2007 – 08 में धात्विक खनिजों मैं लौह –अयस्क का योगदान 18495 करोड़ रुपये अथवा 76.9 प्रतिशत था।

8.5.1 लौह अयस्क के प्रकार

धातु की मात्रा के आधार पर लौह अयस्क चार प्रकार का होता है.

1. **मैग्नेटाइट (Magnetite) :** इसे 'काला लोहा' भी कहते है। इसमें ऑक्सीजन तथा लोहे का अंश होने के कारण लोहे का रंग काला होता है। इसमें 70% से अधिकतम लोहा धातु प्राप्त होती है। यह उत्तम किस्म का लोहा माना जाता है। भारत में यह तमिलनाडू राज्य में तिरूचिरापल्ली व सेलम जिलों तथा कर्नाटक में पाया जाता है।
2. **हेमेटाइट (Haematite) :** "हेमेटाइट' अयस्क ऑक्सीजन लोहे के मिलने से बनती है अत: इसे लोहे का ऑक्साइड (Iron– Oxide) भी कहते हैं। इसमें धातु की मात्रा 50 से 70 प्रतिशत तक होती है। भारत में अधिकांश लोहा इसी किस्म का है। यह झारखण्ड, बिहार, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश में अधिक पाया जाता है। इसके कुछ निक्षेप कर्नाटक और महाराष्ट्र में भी हैं।

3. **लिमोनाइट (Limonite) :** इसे हाइड्रेटेड आयरन ऑक्साइड (Hydrated Iron Oxide) भी कहते हैं। यह ऑक्सीजन, जल तथा लोहे के मिश्रण से बनता है, जिसके कारण इस कच्ची धातु का रंग पीला होता है। इसमें 50% तक लोहा धातु पायी जाती है। यह प्राय : कम गहरी पर्तदार शैल में मिलता है। इसकी खुदाई बहुत आसान तथा सस्ती पड़ती है। भारत में पश्चिमी बंगाल में इसके निक्षेप पाये जाते हैं।
4. **साइडेराइट (Siderite) :** इसे आयरन कार्बोनेट (Iron Carbonate) भी कहते हैं। लोहे तथा कार्बन के मिश्रण से निर्मित होने के कारण इसका रंग भूरा होता है। इसमें लोहे का अंश 20 से 30% होता है। यह सबसे निम्न कोटि का लोहा है। लोहा भू –गर्भ से कच्ची धातु के रूप में मिलता है, जिसमें मिट्टी की मात्रा व अन्य अशुद्धियाँ अधिक होती हैं। इसे पिघलाकर शुद्ध करने से कच्चा लोहा (Pig Iron) बनता है। इसे अन्य धातुओं के मिश्रण से मुलायम एवं कड़ा इस्पात बनाया जाता है। इस्पात की विभिन्न किस्में भिन्न –भिन्न कामों में लायी जाती हैं।?

भारत में उत्तम कोटि के लौह अयस्क के विशाल भंडार है। अधिकाश भंडार हेमेटाइट और मेग्रेटाइट किस्म के अयस्क का है। इनके अलावा लिमोनाइट तथा साइडेराइट अयस्क के भी संचय हैं। हेमेटाइट अयस्क का उपलब्ध अनुमानित भंडार 14. 63 अरब टन और मैग्रेटाइट का 10.62 अरब टन है। हेमेटाइट अयस्क प्रमुखत : धारवाड़ शैल समूह में संचित है जिनका प्रमुख क्षेत्र प्रायद्वीपीय भाग है (चित्र 8.1)। उत्तम कोटि का हैमेटाइट अयस्क के निक्षेप केवल कुछ भागों में ही पाए –खाते है, जिनमें छत्तीसगढ़ का बैलाडीला क्षेत्र, कर्नाटक का बेल्लारी– हास्पेट क्षेत्र तथा झारखण्ड–उड़ीसा का सिंहभूमि–सुन्दरगढ़ क्षेत्र प्रमुख है। मैग्रेटाइट किस्म का अयस्क कर्नाटक, गोवा, केरल, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडू तथा राजस्थान और झारखण्ड में संचित हे। उल्लेखनीय है कि झारखण्ड और उड़ीसा के लौह अयस्क के भंडार आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रहे हैं तथा देश में लोहा तथा इस्पात कारखानों की स्थिति–निर्धारण पर इनका निर्णायक प्रभाव पड़ा है। उल्लेखनीय है लौह अयस्क की उपलब्धता तथा कोयले की सुविधा के कारण देश के छः बड़े लोहा– इस्पात कारखाने उत्तरपूर्वी प्रायद्वीपीय पठारी क्षेत्र में स्थापित किए गए हैं ।

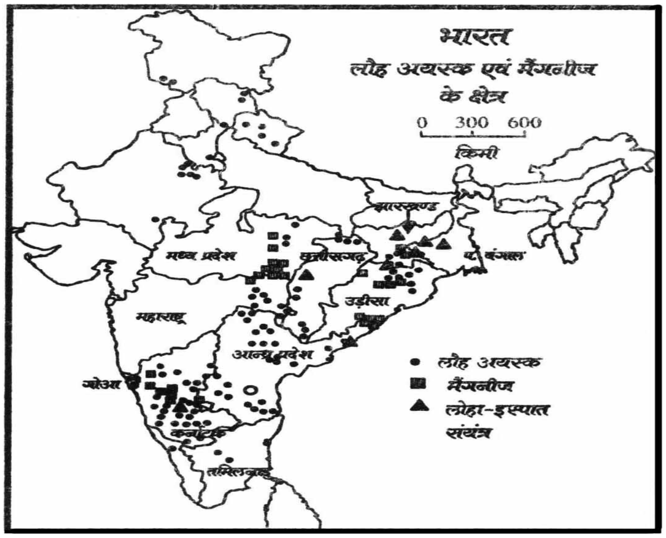

चित्र– 8.2 : भारत में लौह अयस्क तथा मैगनीज के क्षेत्र

8.5.2 लौह अयस्क के क्षेत्रों का वितरण

लौह अयस्क के संचय प्रायद्वीपीय भारत में स्थित हैं। राज्यवार उल्लेखनीय क्षेत्र निम्नानुसार हैं।

1. **उड़ीसा:** इस राज्य में उत्तम श्रेणी का लौह अयस्क अधिक है जिसकी मात्रा भारत के कुल भण्डार का 34 प्रतिशत है। भारत के कुल उत्पादन का 32. 3 प्रतिशत लौह अयस्क यहाँ उत्पादित होता है। इस तरह लौह अयस्क के उत्पादन में यह प्रथम स्थान पर है। मुख्य लौह अयस्क के क्षेत्र झारखण्ड के तारतम्य में जिला मयूरभंज है यहाँ गुस्मृहिसानी, सलाईयान तथा बादाम पहाड़ मुख्य क्षेत्र है। मयूरभंज जिले के उत्तर में गुरुमहिसानी, खारकोई नदी के उद्‌गम स्थल के समीप सुलेपात पहाड़ियां तथा दक्षिण में बादाम पहाड़ स्थित है। सुलेपात में शुद्ध धातु का अंश 67 प्रतिशत मयूरभंज में 63 तथा बादाम पहाड में 56 से 58 प्रतिशत पाया जाता है। सुन्दरगढ़ जिले का बोनाइगढ़ मुख्य उत्पादक क्षेत्र हैं, जहाँ बासाना, कंडाधार पहाड़, कोटूरा,
   मालनगटोली क्षेत्रों में लोहा निकाला जाता है। क्योंझर जिले के बासपानी, ठकूरानी, कुरुबन्द व किरूबुरु खाने भी प्रमुख है। इनमें किरूबुरु यन्त्रीकृत खान है। इसके अतिरिक्त कोरापुट (अमरकोट), कटक (तमका पहाड़ी देतारी), धेत्कानाल, गंजम, सम्बलपुर आदि उड़ीसा के अन्य लौह अयस्क उत्पादन जिले है। उड़ीसा में उत्पादित लोहा सघन, कठोर तथा भूरे रंग का उत्तम श्रेणी का हैमेटाइट है जिसका सर्वाधिक उपयोग भारत मैं राउरकेला, जमशेदपुर, दुर्गापुर, बोकारो लोह इस्पात उद्‌योगों में किया जाता है।
2. **कर्नाटक** : यह राज्य भारत में 74 प्रतिशत हैमेटाइट व 11 प्रतिशत मैगनेटाइट लौह अयस्क का उत्पादन करता है। यहां देश का 21 प्रतिशत अयस्क का भण्डार संचित है। मुख्य उत्पादित क्षेत्र हास्पेट है जो बेलारी 'में स्थित है जहाँ उत्तम श्रेणी का हैमेटाइट अयस्क पाया जाता है। हास्पेट क्षेत्र में कुल भण्डार लगभग 127 करोड़ टन अनुमानित हैं जिसमें 60 से 70 प्रतिशत लौह अयस्क का अंश है। चिकमंगलूर कर्नाटक का दूसरा मुख्य लौह उत्पादक जिला है, जहाँ बाबाबूदन की पहाड़ियों स्थित कैमनगुण्डी क्षेत्र एवं कुद्रमुख प्रमुख हैं। बाबावृद्‌न की पहाड़ियों का अयस्क भद्रावर्ती के कारखाने में उपयोग किया जाता है। चिंकमंगशू में अधिकतर अयस्क क्वार्टज मैग्नेटाइट श्रेणी का है। कुप्रग्मुख लौह अयस्क उत्पादन क्षेत्र का विकास मुख्य रूप से ईरान को निर्यात करने के लिए किया गया है।
3. **छत्तीसगढ़** : भारत. में लौह अयस्क उत्पादन में इस राज्य का तीसरा स्थान है। जहां उत्तम श्रेणी का हेंमेटाड्ट लोहा अधिक पाया जाता है। भारत के कुल उत्पादन का लगभग 16.0 प्रतिशत लौह अयस्क यहाँ उत्पादित होता है। छत्तीसगढ़ में उत्पादित अयस्क में 59 से 69 प्रतिशत लौह धातु पायी जाती है। बैलाडीला एवं रावघाट यहाँ के प्रमुख लौह उत्पादक क्षेत्र हैं जो बस्तर जिले में है। बैलाडीला –का अनुमानित भंडार 127 करोड़ टन है। इस क्षेत्र में खनन कार्य राष्टीय खनन विकास निगम द्‌वारा होता है जिसका अधिकांश भाग जापान को निर्यात पर दिया जाता है। बैलाडीला की लौह अयस्क की खान एशिया की सबसे बड़ी यन्त्रीकृत खान है। बस्तर के बाद दुर्ग मुख्य उत्पादक है जहाँ की डल्ली राजहरा पहाड़ियों में पर्याप्त भण्डार हैं। यहाँ से भिलाई स्टील प्लान्ट को अयस्क मिलता है।

4. **गोवा**: गोवा में लौह अयस्क के पर्याप्त भण्डार हैं। यहाँ लौह अयस्क के भण्डार तथा उत्पादन में अधिकतम अंश लेटराइट, लिमोनाइट तथा सिडेराइट प्रकार का है। गोवा का उत्तरी भाग मुख्य लौह अयस्क उत्पादक क्षेत्र है. जहाँ बिचोलिम, सनगाव, सतारी आदि प्रमुख उत्पादन क्षेत्र है। गोवा में लौह अयस्क उत्पादन के लिए उपलब्ध सुविधाओं में (1) लौह अयस्क के पर्याप्त भण्डार, (2) खनन कार्य खुली खदानों में मशीनों द्वारा किया जाता है, (3) सस्ते परिवहन के साधन जिनमें नदी जल मार्ग तथा विद्युत संचलित रस्सी मार्ग (Rope Way) तथा (4) मार्गगोवा बन्दरगाह द्वारा विश्व के अन्य देशों को निर्यात की सुविधा है।
5. **झारखण्ड :** इस राज्य में भारत के कुल उत्पादित लौह अयस्क के 11.3 प्रतिशत भाग का उत्पादन होता है। मुख्य उत्पादक क्षेत्र उड़ीसा के समीपवर्ती क्षेत्र में इस राज्य के दक्षिण पूर्व मैं स्थित सिंहभूमि जिले में हैं जहाँ भारत मैं सर्वप्रथम लौह अयस्क का खनन किया गया था। नोटूबूरू, नोआमण्डी, पंसीराबुरु, गुआ, सासगंडा आदि सिंहभूमि जिले के मुख्य उत्पादक क्षेत्र हैं जहाँ अधिकतर हैमेटाइट किस्म का अयस्क निकाला जाता है। यहाँ लौह अयस्क की 45 किमी. लम्बी पहाड़ी है, जिसका विस्तार उत्तरी उड़ीसा तक है। झारखण्ड से बर्नपुर और जमशेदपुर के लोहा–इस्पात कारखानों को अयस्क को पूर्ति होती
6. **अन्य राज्य** : लौह अयस्क के भण्डार महाराष्ट्र के चन्द्रपुर, रत्नगिरी और भंडारा जिले में, आंद्रप्रदेश के करीमनगर, वारागल, कुर्नूल, कडप्पा और अनन्तपुर जिलों में स्थित हैं। तमिलनाडू के सेलम की तीर्थ मलाई पहाड़ियों तथा नीलगिरी जिले में लौह अयस्क का उत्खनन होता है।

8.5.3 लौह अयस्क का उत्पादन

लौह अयस्क का उत्खनन उन्नीसवीं सदी से ही प्रारंभ हो चुका था परन्तु उत्पादन में तीव्र वृद्धि स्वतंत्रता के बाद हुई। देश में सन् 1948 में केवल 23 लाख टन लौह अयस्क का उत्पादन हुआ। सर 1971 में अयस्क का उत्पादन 337 लाख टन हो गया। इसका कारण सार्वजनिक क्षेत्र के तीन नए लोहा–इस्पात के कारखानों की स्थापना थी। बाद मैं पुन: नए कारखानों की स्थापना और पुरानों की क्षमता बढ़ाने के कारण अयस्क की माँग काफी बढ़ी और इसका उत्पादन सन् 1990 – 91 में 549 लाख टन तथा सन् 2000 – 01 में 792 लाख टन हो गया। पुन : उत्पादन बढ़ कर सन् 2005 – 06 में 1544.4 लाख रू हो गया। इस प्रकार –इस अवधि में लौह अयस्क के उत्पादन में 67 गुना से अधिक वृद्धि हुई है। वर्तमान –में भारत विश्व का लगभग 9 प्रतिशत लौह अयस्क उत्पादित करता है। इस प्रकार लौह अयस्क उत्पादकों में भारत का विश्व में चौथा स्थान है।

सन् 2005 – 06 में उड़ीसा (32.3%) राज्य देश का एक –तिहाई से अधिक अयस्क उत्पादित करके प्रथम स्थान पर आ गया है और प्रथम स्थान पर रहने वाला गोवा (15.4%) चौथे स्थान पर आ गया है। कर्नाटक का लौह अयस्क –उत्पादकों में द्वितीय (21.8%). छत्तीसगढ़ तीसरे (16.0%) तथा झारखंड (11.3%) पाचवें स्थान पर है (तालिका 8.2)।

तालिका – 8. 2: भारत में लौह अयस्क का उत्पाद

राज्य	2001-02	2002 - 03	2003 –04	2004 –5	2005–6
छत्तीसगढ़	18660	19781	23361	23118	24750
गोवा	14784	17889	20246	22672	23744
झारखण्ड	13068	13702	14682	16719	17425
कर्नाटक	22595	24797	31635	37962	17435
उड़ीसा	16602	22077	31288	41750	49880
अन्य	517	826	1626	3721	4958
भारत	**86226**	**99072**	**122838**	**145942**	**154436**

स्रोत : भारतीय खान ब्यूरो, नागपुर।

एक अनुमान के अनुसार भारत से होने वाले सभी खनिजों के निर्यात मूल्य
60 प्रतिशत योगदान केवल लौह अयस्क का है। विश्व में कुल निर्यात मैं भारत का अंश 8.2 प्रतिशत है जिससे 2006 – 07 मैं लगभग 17656 करोड़ रुपये प्राप्त हुए तथा लगभग 914 लाख टन अयस्क निर्यात किया गया। भारत में लौह अयस्क का निर्यात चीन, जापान,, ईरान, रोमानिया, पौलेण्ड, इटली, चैकोस्लावाकिया, यूगोस्तोवाकिया तथा जर्मनी देशों को किया जाता है लेकिन कुल निर्यात सर्वाधिक लौह अयस्क चीन अकेला मंगवाता है। इसके बाद जापान का मुख्य स्थान है।

बोध प्रश्न – 2

1. लौह अयस्क कितने प्रकार का होता है? नाम लिखिए।
   ....
   ....
2. लौह अयस्क के चार मुख्य उत्पादक राज्य कौन सा हैं?
   ....
   ....
3. उड़ीसा में लौह अयस्क उत्पादक का सबसे प्रमुख जिला कौन सा है?
   ....
   ....
4. भद्रावती के लोहा इस्पात कारखाने को लौह अयस्क कहाँ से मिलता है।
   ....
   ....
5. भारत लौह अयस्क का सर्वाधिक निर्यात किस देश को करता है
   ....
   ....

8.6 मैंगनीज (Manganese)

मैंगनीज एक ऐसा खनिज है जिसका उपयोग मजबूत एवं कठोर इस्पात की चादर से लेकर चीनी गिट्टी के बर्तन तक के निर्माण तक किया जाता है। युद्धक टैंक, बिजली के सामान, ब्लीचिंग पाउडर, कांच, दवाइयाँ, सोने के आभूषण वार्निश, रसायन, सूखी बैटरी, टाईल्स, मोटरगाडियां, वायुयान, रेल के डिब्बे, प्लास्टिक, पोटेशियम, आक्सीजन, क्लोरिन गैस, खाद आदि के निर्माण में इसका उपयोग किया जाता है अत: मैंगनीज एक बहुत उपयोगी खनिज है लेकिन वर्तमान मे मैंगनीज के कुल उत्पादन का लगभग 95 प्रतिशत भाग का उपयोग केवल धातु निर्माण मे किया जाता है। मैंगनीज के मिश्रण से बना हुआ लोहा–इस्पात कठोर एवं मजबूत होता है इसलिए लोहा–इस्पात निर्माण में मैगनीज के मिश्रण करके टर्बाइन –ब्लेड्स तथा सीसा से सम्मिश्रण करके जलयानों के प्रोलरों आदि का निर्माण किया जाता है।

8.6.1 मैंगनीज के भण्डार एवं उत्पादन (Reserve and Production of Manganese)

भारत में मैंगनीज के भण्डार लगभग 16.7 करोड़ टन है जिसका लगभग 90 प्रतिशत भाग धारवाड में संचित है। भण्डार की दृष्टि से भारत का विश्व में दूसरा तथा उत्पादन की दृष्टि से पांचवा स्थान है। भारत में पाए जाने वाले मैगनीज में लगभग 40 प्रतिशत लोहाश का पाया जाता है, जो साइलोमैलीन, ब्रोनाइट, पारोलुसाइट क्रिस्टोमेलीन अयस्क के रूप में होता हे। भारत में निकलने वाला मैंगनीज उत्तम श्रेणी का है जिसका अधिकांश भाग निर्यात का दिया जाता है। भारत विश्व मैं उत्पादित कुल मैंगनीज का लगभग 20 प्रतिशत उत्पादित कर पाँचवें स्थान पर है। उत्पादन एवं भण्डार की दृष्टि से महाराष्ट्र में नागपुर तथा भण्डार, मध्यप्रदेश में बालाघाट तथा छिंदवाड़ा महत्वपूर्ण हैं। उत्पादन में उड़ीसा राज्य प्रथम स्थान पर है। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान आदि राज्यों में भी मैंगनीज का उत्पादन महत्वपूर्ण है। देश मैं वर्ष 2007 – 08 में मैंगनीज अयस्क –के कुल उत्पादन में उड़ीसा का हिस्सा 30 प्रतिशत. महाराष्ट्र का 25 प्रतिशत, मध्यप्रदेश का 15 प्रतिशत, कर्नाटक का 20 प्रतिशत तथा आन्ध्रप्रदेश का 5 प्रतिशत हैं (तालिका– 8.3) शेष योगदान संयुक्त –रूप से गोवा और झारखण्ड का है।

तालिका–8.3 :भारत में राज्यवार मैंगनीज उत्पादन की प्रवृत्ती

राज्य	भंडार 1990		उत्पादन 1969		उत्पादन 2000 - 01		उत्पादन 2007 - 08	
	लाख टन	प्रतिशत	हजार टन	प्रतिशत	हजार टन	प्रतिशत	हजार टन	प्रतिशत
भारत	1350	100–0	1490	100–0	1556	100–0	2550.5	100.0
उड़ीसा	349	25.8	462	31.0	516	33.2	765.2	30.0
महाराष्ट्र	154	11.4	156	10.5	361	23.2	637.6	25.0
कर्नाटक	478	35.4	313	21.0	219	14.1	510.1	20.0
मध्यप्रदेश	181	13.4	184	12.3	320	20.6	382.7	15.0
आन्ध्रप्रदेश	71	5.3	143	9.6	130	8.0	127.5	5.0

स्रोत : इण्डियन मिनरल्स इयरबुक्स 1971,1992 एवं 2008

1. **उड़ीसा:** यह राज्य में मैंगनीज के कुल भण्डार का 12 प्रतिशत तथा उत्पादन का 30 प्रतिशत मैंगनीज उत्पादन करके उत्पादन की दृष्टि से प्रथम स्थान पर है। उड़ीसा का सुन्दरगढ़

मैंगनीज के उत्पादन तथा – श्रेणी दोनों में महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त क्योंझर, कालाहांडी, कोरापुट, बेलनगिरी, संबलपुर, क्योंझर, फूलबांस, आदि जिलों में मैंगनीज का उत्पादन –किया जाता है।

2. **महाराष्ट्र:** देश मैं मैंगनीज के उत्पादन में यह राज्य दूसरे स्थान पर है लेकिन यहाँ उत्पादित मैंगनीज ज्यादातर उच्च कोटि का है। भारत के कुल मैंगनीज का 25 प्रतिशत यहाँ उत्पादित होता है। नागपुर, भण्डार, रत्नगिरी यहाँ के मुख्य उत्पादक
3. **कर्नाटक** : भारत में उत्पादित कुल मैंगनीज का 20 प्रतिशत उत्पादित करके उत्पादन की दृष्टि से यह देश में तीसरे स्थान पर है। कर्नाटक का बेलारी जिला मैंगनीज उत्पादन में प्रमुख है। इसके अतिरिक्त उत्तरी कनड़, शिमोगा, चित्रदूर्ग, तुमकर, धारवाड़, बेलगांव, चिकमंषलूर, बीजापुर आदि जिलों में मैंगनीज का उत्पादन किया है।
4. **मध्यप्रदेश :** भारत के मध्यवर्ती क्षेत्र में महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राज आदि राज्यों में मैंगनीज की एक पट्टी फैली है जिसका विस्तार मध्यप्रदेश के बालाघाट और छिंदवाडा जिलों में है। पहाड़ी जो 10 किमी लम्बी है, जहाँ मैंगनीज एक 15 मीटर मोटी परत के रूप में पाया जाता है। मध्यप्रदेश, बालाघाट इस राज्य में उत्पादन तथा भण्डार में महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त सिवनी निमाड, देवास, धार, माण्डला, झाबुआl, जबलपुर में भी मैंगनीज का भण्डार पाया जाता है। भारत के कुल उत्पादन का 15 प्रतिशत मैंगनीज उत्पादित कर मध्यप्रदेश, चौथे स्थान पर है लेकिन मैंगनीज के भण्डार की दृष्टि मे भारत में इसका प्रथम स्थान है।
5. **आन्ध्रप्रदेश :** भारत में मैंगनीज का 5 प्रतिशत उत्पादन यहाँ होता है। जिसमें श्रीकाकुलम तथा विशाखापट्टनम जिलों का प्रमुख स्थान है। कुड़प्पा, विजयनगरम् गुंतूर जिलों में भी मैंगनीज का उत्पादन किया जाता है। आन्ध्रप्रदेश मे मैंगनीज उत्पादन में श्रीकाकुलम जिले का महत्वपूर्ण स्थान है, जहाँ मुख्य मैंगनीज उत्पादक क्षेत्र 480 मीटर लम्बाई तथा 50 मीटर चौड़ाई में विस्तृत है।
6. **राजस्थान :** यहां उत्पादित मैंगनीज मध्यम श्रेणी का है जिसका अधिकतम उत्पादन बांसवाड़ा जिले में होता है, इसके अतिरिक्त उदयपूर, डूंगरपुर, सिरोही जिला में भी मैंगनीज का उत्पादन किया जाता है।
7. **झारखण्ड :** सिंहभूमि जिला प्रमुख मैंगनीज उत्पादक है। इसके अतिरिक्त गुमला, रांची आदि में मैंगनीज का खनन किया जाता है।

उत्पादन

भारत में मैंगनीज का उत्पादन स्थिर नहीं रहा है। कभी बढ़ जाता है तथा कभी घट भी जाता है। सर्वाधिक मैंगनीज का उत्पादन 1955 – 56 में 19.66 लाख टन हुआ था। 2007 – 2008 में उत्पादन केवल 25. 5 लाख टन रहा है, जिसका अनुमानित मूल्य लगभग 1098.30 करोड़ रुपये आंका गया है

वर्तमान समय में भारत में मैंगनीज की मांग वर्ष प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। इसी कारण कुल उत्पादित मैंगनीज का लगभग 6० प्रतिशत भाग भारत में ही उपयोग में आ जाता है तथा शेष का

निर्यात कर दिया जाता है। विश्व के कुल मैंगनीज निर्यात में भारत का अंश मात्र एक प्रतिशत है, जो कच्चे मैंगनीज के रूप में निर्यात किया जाता हैं। इसके कारण बहुत कम विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। जापान, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, बैल्लियम, फ्रांस, चेक गणराज्य, पौलेण्ड आदि प्रमुख देश है, जो भारत से मैंगनीज आयात करते हैं लेकिन सर्वाधिक निर्यात जापान को किया जाता है जो कुल निर्यात का 52.7 प्रतिशत है। वर्तमान में भारत को मैंगनीज निर्यात में ब्राजील गैबन, घाना आदि देशों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है।

बोध प्रश्न–3

1. 'उड़ीसा राज्य के प्रमुख मैंगनीज उत्पादक क्षेत्र कौन से है?

   ....

   ....

2. बालाघाट व छिंदवाड़ा मैंगनीज उत्पादक क्षेत्र किस राज्य में है?

   ....

   ....

3. भारत में कौन सा राज्य सर्वाधिक मैंगनीज का उत्पादक है?

   ....

   ....

8.7 खनन की समस्यायें (Problems of Mining)

भारत जैसे विशाल देश के लिये उपलब्ध विविध खनिजों के खनन उद्योग अधिक उन्नत दशा में नहीं है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :–

1. यहां 'स्वतन्त्रता से पूर्व खनिजों का शोषण निर्यात के लिये होता था।
2. खनन कार्य व्यवस्थित रूप से नहीं होता। ऊपरी भाग में खुदाई करके खानें अप्रयुक्त छोड़ दी जाती है। इससे वे अनार्थिक सिद्ध होती है।
3. आन्तरिक जलमार्ग विकसित न होने के' कारण खनिजों का परिवहन स्थल मार्गों (रेल व सड़कों) द्वारा होता है अत: वे महंगे पड़ते हैं।
4. नये क्षेत्रों में खनिजों का उचित सर्वेक्षण नहीं हुआ है। उड़ीसा, असम, छत्तीसगढ़ व मध्यप्रदेश के दुर्गम भागों मैं महत्वपूर्ण खनिजों का पर्याप्त सर्वेक्षण भी नहीं हुआ है।
5. खनिजों का शोषण उपयोग, विक्रय, स्वामित्व सम्बन्धी कठिनाइयों के अतिरिक्त तकनीकी ज्ञान, पूंजी एवं श्रम सम्बन्धी समस्यायें भी रहती है।
6. खनिजों का अविवेकपूर्ण शोषण एक प्रकार से 'लुटेरी अर्थव्यवस्था' (Robber Economy) है। खनिज क्षयशील संसाधन होते हैं। एक बार समाप्त होने पर उनके पुनर्निर्माण में लाखों वर्ष लगते हैं।

8.8 राष्ट्रीय खनिज नीति, 2008

नई राष्ट्रीय खनिज नीति, 2008 सरकार द्वारा अनुमोदित की गई थी और इसे संसद के पटल पर रखा गया था। नई राष्ट्रीय खनिज नीति, नीति सम्बन्धी उपायों जैसे अगले चरण की खनिज रियायतों के लिए सुनिश्चित अधिकार, खनिज रियायतों की अंतरणीयता और रियायतों के आवंटन में पारदर्शिता घोषित करती है ताकि देरी, जिन्हें भारत में खनन क्षेत्र में निवेश और प्रौद्योगिकी प्रवाह में बाधाओं के रूप में देखा जाता है, को कम किया जा सके। खनन नीति देश में औद्योगिक विकास के लिए देश के प्राकृतिक खनिज संसाधनों के इष्टतम उपयोग और इसके साथ–साथ देश के पिछड़े और जनजातीय क्षेत्रों के लिए सतत् ढांचा भी विकसित करना चाहता है।
नई राष्ट्रीय खनिज नीति, 2008 में नीति सम्बन्धी पहलों और हांडा समिति की सिफारिशों के आधार पर सरकार ने खान और खनिज विकास और विनिमयबद्ध अधिनियम, 1957 और उसके तहत बनाए गए नियमों में संशोधन के लिए प्रस्ताव शुरु किया है जिसे केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के सम्बन्धित मंत्रालयों / विभागों से परामर्श के पश्चात संसद में अनुमोदन हेतु ले जाया जाएगा। मंत्रालय ने जी.एस.आई. के केन्द्रीय कार्यक्रम बोर्ड को दुरुस्त करने सहित राष्ट्रीय खनिज नीति के आधार पर बहु त सी गैर –विधयी कार्यवाही भी शुरु की है।
नई नीति यह निर्धारित करती है कि खनिज समृद्ध राज्यों के युक्तियुक्त राजकोषीय हितों के संरक्षण करने के उद्देश्य से खनिजों से राजस्व को युक्तियुक्त बनाया जाएगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि राज्यों की भूमि से निकाले गए खनिजों के मूल्य का उचित हिस्सा खनिज वाले राज्यों को प्राप्त हो सके। इस दिशा में खान मंत्रालय ने सभी गैर–ईंधन और गैर –कोयला प्रमुख खनिजों की रायल्टी की दरों और डैडरेन्ट के संशोधन पर विचार करने के लिए एक अध्ययन दल की स्थापना की है। अध्ययन दल की सिफारिशों के अनुसार और केन्द्रीय सरकार की सम्बन्धित विभागों की सहमति प्राप्त करके पश्चात् रायल्टी दरों और डेडरेन्ट के संशोधन के लिए प्रस्ताव सरकार के विचाराधीन है।

8.9 सारांश (Summary)

वृहद आकार और भूगर्भिक विविधता के कारण भारत में औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण खनिजों के प्रचुर भंडार हैं। यहाँ उत्तम कोटि के लौह अयस्क के साथ ही मैंगनीज, क्रोमाइट, टिटेनियम जैसे मिश्रधातु, गालक (चूना, डोलमोइट, जिप्सम आदि) खनिज तथा उच्चतापसह खनिज उपलब्ध हैं। यहाँ अलौहसू धात्विक खनिजों, विशेष रूप सें तांबा, सीसा, जस्ता, टिन, ग्रैफाइट, टंग्सन और पारा की कमी हैं। यदपि बाक्साइट और अभ्रक का पर्याप्त भंडार है, परन्तु सल्फर, पोटाश और रॉक फास्फेट जैसे खनिज देश में कम हैं। देश में खनिजों का प्रादेशिक वितरण बहु त असमान है। इसका कारण यह है कि खनिज कुछ ही शैल–समूहों में संचित हैं और ये शैल–समूह देश के कुछ ही भागों में पाई जाती हैं। अधिकाँश खनिज प्राचीन शैल–समूहों में संचित हैं। उदाहरण के लिए लौह अयस्क रण मैंगनीज प्री–कैम्बियन कल्प की धारवाड़ शैल–समूहों में पाए जाते हैं। इसी तरह ताँबा, सीसा और जस्ता की शिराएं धारवाड़ शैल समूहों के अरावली सिरीज में पाई जाती हैं। अधिकांश धात्विक खनिज धारवाड़ और कडप्पा शैल समूहों में पाए जाते हैं। चूना, डोलोमाइट, जिप्सम, कैल्शियम सल्फेट कडप्पा और ऊपरी विन्ध्यनयुगीन शैलसमूहों में पाए जाते हैं। इसी

कारण खनिजों के भंडार की दृष्टि से प्रायद्वीपीय भारत सबसे महत्वपूर्ण है। प्रायद्वीपीय भारत में भी खनिजों की पाँच प्रमुख पेटिया है।

धात्विक खनिजों में लौह अयस्क तथा मैंगनीज प्रमुख हैं। उड़ीसा, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, गोवा और झारखण्ड लौह अयस्क के बड़े उत्पादक है। इसी तरह मैंगनीज का उत्पादन उड़ीसा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश में केन्द्रित है।

8.10 शब्दावली (Glossary)

- **धात्विक खनिज** – वह खनिज जिसमें कोई न कोई धातु पाई जाती हो, जैसे लौह अयस्क, ताँबा, सोना आदि।
- **अधात्कि खनिज –** जिस खनिज में कोई धातु न पाई जाती हो, जैसे नाइट्रेट, चूना आदि।
- **लौहस खनिज –** वह धात्विक खनिज जिसमें लोहा धातु पाई जाती हो, जैसे लौह अयस्क।
- **अलौहस खनिज –** वह धात्विक खनिज जिसमें लोहा धातु न होकर अन्य कोई धातु पाई जाती हो, जैसे सोना, चांदी, तांबा आदि।
- **खनन** – भूगर्भ से खनिज निकालने की प्रक्रिया को खनन कहते हैं।
- **भंडार** – जहाँ कोई वांच्छित गुणवत्ता वाला खनिज पर्याप्त मात्रा में पाया जाता हो।

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. गुर्जर एवं जाट. **भारत का भूगोल,** पंचशील प्रकाशन. जयपुर, 2008
2. चौहान एवं गौतम : **भारत का भूगोल**, रस्तौगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2006–07
3. चौहान एव प्रसाद. **भारत का वृहद् भूगोल**, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2005
4. Khullar : **India : A comprehensive Geography** , Kalyani Publisher, Ludhiana, 2006
5. Gopal Singh : **A Geography of India**, Atma Ram & Sons, New Delhi, 2004
6. Wadia : **Geology of India,** Macmillan & Co. Ltd. London, 1957
7. NCERT : **भारत : लोग और अर्थ व्यवस्था**, 2007
8. मामोरिया: **भारत का वृहत भूगोल** सहित्य भवन पाब्लिकेशन्स, आगरा, 2001
9. प्रतिवेदन : **भारतीय खान ब्यूरो,** 2005–08
10. शर्मा, श्रीकमल (सम्पादक) **भारत का भूगोल**, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2004

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध भन – 1

1. धारवाड़
2. ये है – लोहस, लौह –मिश्र, अलौहस, बहुमूल्य धातुएँ एवं परमाणु खनिज।
3. पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस एवं कोयला।
4. उत्तर पूर्वी प्रायद्वीपीय पठार्
5. सन् 2008–09 में 25.17 प्रतिशत

6. उड़ीसा

बोध प्रश्न – 2

1. मैगनेटाइट, हेमेटाइट, लिमोनाइट व साइडेराइट।
2. उडीसा कर्नाटक, छत्तीसगढ़ एवं गोवा।
3. मयूभंज
4. बाबाबूदन की पहड़ियों से।
5. चीन

बोध प्रश्न – 3

1. सुंदरगढ़, क्योंझर, कालाहांडी, कोरापुट आदि।
2. 2 मध्यप्रदेश।
3. उडीसा।

8.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत की खनिज पेटियों के खनिज सम्पदा का विवरण दीजिए।
2. खनिज संसाधनों के वर्गीकरण को संक्षिप्त मे समझाइए तथा लौह अयस्क के वितरण एवं उत्पादन की समीक्षा कीजिए।
3. भारत की खनिज नीति 2008 के मुख्य बिन्दुओं का वर्णन कीजिए।
4. भारत में लौह –अयस्क की महत्ता तथा उत्पादन का अनुरक्षण कीजिए।
5. भारत में मैगनीज खनिज का वितरण एवं उत्पादन का विवरण प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 9 : ऊर्जा संसाधन (Energy Resources)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 ऊर्जा संसाधनों का वर्गीकरण

9.3 परम्परागत ऊर्जा संसाधन

9.3.1 कोयला

9.3.2 पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस

9.4 गैर–परम्परागत ऊर्जा संसाधन

9.4.1 सौर ऊर्जा

9.4.2 ज्वारीय ऊर्जा

9.4.3 भूतापीय ऊर्जा

9.4.4 पवन ऊर्जा

9.4.5 बायो गैस

9.5 अणु शक्ति ऊर्जा

9.6 ऊर्जा संकट, संरक्षण एवं भावी सम्भावनायें

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे –

- देश में उपलब्ध विभिन्न ऊर्जा स्रोत, कोयला–भण्डार, वितरण एवं उत्पादन,
- पेट्रोलियम भण्डार, वितरण एवं उत्पादन,
- अपारम्परिक ऊर्जा संसाधनों का विकास एवं सम्भावना
- ऊर्जा संकट तथा भविष्य में ऊर्जा की सम्भावनायें।

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों की अधिकाधिक खोज एवं उपयोग पर बल दिया गया, लेकिन तीन दशक आत्मनिर्भरता नहीं मिली। वर्ष 1980 के बाद मुख्यत: गैर–पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के विकास पर बल दिया गया तथा इसके लिए अलग से सरकारी मंत्रालय स्थापित किया गया। भारत में कोयला तो पर्याप्त है लेकिन पेट्रोलियम की मांग का आज भी आधे से अधिक आयात करते हैं। वर्तमान में भारत में गैर –पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का

विकास तेजी से हो है। साथ ही परमाणु ऊर्जा का भी विकास किया जा रहा है। जलीय विद्युत का भी त्वरित विकास हो रहा है, जिनके चलते हमारी ऊर्जा की मांग पूरी हो सकती है लेकिन इसके लिए गैर–पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का विकास अनिवार्यतः : करना होगा।

9.2 ऊर्जा संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Energy Resources)

प्रकृति के पारिस्थितिकीय सन्तुलन में ऊर्जा की मुख्य भूमिका रहती है, जो प्राकृतिक परिवेश के जैविक तथा अजैविक घटकों के मध्य अन्तक्रिया बनाये रखती है। पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से ऊर्जा का मूल स्रोत सूर्य है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा द्वारा विभिन्न पोषण स्तरों में ऊर्जा का प्रवाह होता है तथा स्वानियामक प्रकृति बनी रहती है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा के उपयोग द्वारा पोषण स्तर एक स्वपोषी (प्राथमिक उत्पादक) पादप विकसित होकर भविष्य में ऊर्जा के विभिन्न रूप। में परिवर्तित होते है। उदाहरण के लिए कार्बोनीफेरस काल की प्राकृतिक वनस्पति ही आज हमें कोयले के रूप में मिलती है।

वर्तमान में पृथ्वी पर हमें ऊर्जा विभिन्न रूपों में मिलती है जिसमें कहीं खनिज संसाधनों (कोयला, पेट्रोलियम प्राकृतिक गैस) से तो कहीं भौतिक क्रियाओं (ज्वारभाटा, पवन, सौर ऊर्जा) आदि से मिलती है। इस मनुष्य अपने प्रौद्योगिक ज्ञान द्वारा विभिन्न रूपों में विकसित कर उत्पादित करता है। इस प्रकार के स्रोतों के आधार पर पृथ्वी पर निम्नलिखित रूपों में ऊर्जा की प्राप्ति होती है।

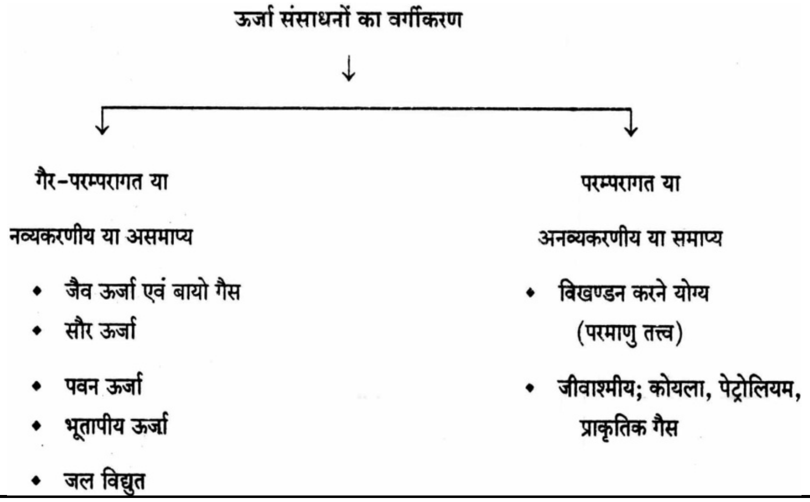

9.3 परम्परागत ऊर्जा संसाधन (Conventional Energy Resources)

9.3.1 कोयला (Coal)

विश्व में आधुनिक औद्योगिकरण के विकास का मुख्य आधार कोयला रहा है। वर्तमान में भी कोयला किसी देश के आर्थिक विकास का आधार माना जाता है। कोयले का सर्वाधिक उपयोग विद्युत उत्पादन में, भाष्प निर्माण में, ताप् प्राप्ति तथा धातुओं को पिघलाने में किया जाता है।

वर्तमान में इससे अनेकों वस्तुएँ बनाई जाती हैं जैसे कि श्रृंगार की वस्तुओं, नायलोन, डेकरान, वाटरपूफ, कागज, बटन, अमोनिया आदि वस्तुओं का निर्माण भी इसी से किया जाता है। भारत भी एक ऐसा देश है जहाँ कोयले का उपयोग प्राचीन समय से किया जाता रहा है। वर्तमान में भारत में 67 प्रतिशत बिजली का उत्पादन कोयले से किया जाता है।

कोयला के प्रकार (Types of coal)

कोयला का निर्माण प्रमुखतया लकड़ी के भूगर्भ में दबने तथा उसके रूप परिवर्तन से होता है इसलिए लकड़ी से पूर्णतया उत्तम श्रेणी का कोयला बनने तक कोयला विभिन्न रूपों में बदलता रहता है। लकड़ी पर दबाव बढ़ने के साथ –साथ उसमें उष्मा की वृद्धि होती रहती है। इसी कारण कोयला को कार्बन वाष्प तथा ज्वलनशील द्रव के आधार पर निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जाता

1. **पीट (Peat) :** लकड़ी से कोयला बनने की प्रारम्भिक अवस्था पीट है। पीट पर अधिक दबाव रख उष्मा के कारण लिग्नाइट कोयला का निर्माण होता है इसमें कार्बन की मात्रा 29 प्रतिशत तथा जलवाष्प 35 प्रतिशत से अधिक होती है तथा इसका रंग पूरा होता है।
2. **बिटूमिनस कोयला (Bituminus coal) :** विश्व में सर्वाधिक भण्डार बिटुमिनस के पाए जाते है। उत्पादन तथा औद्योगिक क्रियाओं में भी सर्वाधिक उपयोग लगभग 80 प्रतिशत बिटुमिनस का होता है। यह काले रंग का चमकदार कोयला है जो जलते समय कम धुआँ देता है। जलने के बाद राख की मात्रा भी कम होती है। इसमें 40 से 80 प्रतिशत कार्बन, 11 प्रतिशत से कम नमी, 15 से 40 प्रतिशत वाष्पशील द्रव पाया जाता है। बिटुमिनस को सबबिटुमिनस, (कार्बन की मात्रा कम) बिटुमिमस तथा सेमी बिटुमिनस उप विभागों में बाटां गया है जिसका आधार कार्बन की मात्रा है।
3. **एन्थ्रेसाइट कोयला (Anthracite Coal) :** इसमें कार्बन सम्पन्नता 95 प्रतिशत है। यह कोयला जलते समय धुँआ नहीं देता है।

कोयला उत्पादन एवं भण्डार (Coal Production and Reserve)

भारत कोयला उत्पादन तथा इसके भण्डार की दृष्टि से विश्व में प्रमुख स्थान रखता है। कोयला उत्पादन में चीन तथा अमेरिका के बाद तीसरा स्थान है तथा यह विश्व के कुल उत्पादन का 7.3 प्रतिशत कोयला उत्पादित करता है। इसके वितरित भण्डार की दृष्टि से विश्व का चौथा प्रमुख देश है। भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग द्वारा किए गए नवीनतम सर्वेक्षण के बाद कोयले की गहराई तथा इसकी परतों की मोटाई के अनुसार अलग –अलग अनुमान है। भारतीय भूगर्भीय सर्वेक्षण विभाग के अनुसार 1 जनवरी 2004 को देश में धरातल से 1200 मीटर की गहराई तक सुरक्षित कोयले का भण्डार 245.7 अरब टन है। एक अनुमान के अनुसार भारत में कुल कोयला भण्डार में से 18972.36 करोड़ टन गोंड़वाना कोयला तथा 405.35 करोड़ टन टरशियरी कोयला है। राज्य अंद्राप्रदेश अरुणाचल प्रदेश

तालिका–9.1: भारत में कोयला भण्डारों का वितरण–2006

राज्य	प्रमाणित	सांकेतिक	समांकित	कुल
आंध्र प्रदेश	8091	6092	2514	16697
अरुणाचल प्रदेश	31	4	19	90

असम	279	27	34	340
बिहार	0	0	160	160
छत्तीसगढ़	8771	26419	4355	39545
झारखण्ड	35409	30107	6348	71864
मध्य प्रदेश	7513	5233	2914	18660
महाराष्ट्र	4653	2156	1605	8414
मेघालय	117	41	301	459
नगालैण्ड	4	1	15	20
उडीसा	14614	31239	15135	60988
उत्तर प्रदेश	766	296	0	1062
पश्चिमी बंगाल	11383	11523	4488	27394
कुल	**91631**	**116174**	**37888**	**245693**

स्त्रोत भारत 2007, पृ. 254–55

कोयला का वितरण – भारत मैं कोयला का वितरण असमान है। उदाहरण वे; लिए 86 प्रतिशत कोयले का भण्डार केवल झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ राज्यों मैं अवस्थित है। 12 प्रतिशत भारत के उड़ीसा, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश में तथा शेष असम मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड तथा जम्मू कश्मीर में है।

भारत में पायी जाने वाले कोयलें का 98 प्रतिशत भाग गोंडवाना युगीन बिटुमिनस कोयला तथा केवल 2 प्रतिशत कोयला टरशियरी काल का है। भारत के कोयला उत्पादक क्षेत्रों को गोंडवाना तथा टर्शियरी दो भा मे विभाजित किया गया है। इसमें निम्नलिखित क्षेत्र प्रमुख हैं।

गोण्डवाना कोयला उत्पादक क्षेत्र

1. **गोदावरी नदी घाटी कोयला क्षेत्र** –इसका विस्तार गोदावरी नदी घाटी में आन्ध्र प्रदेश के आदिलाबाद, पश्चिमी गोदावरी, करीम नगर, खम्माम तथा वारंगल जिलों में है, जहां भारत के कुल उत्पादक का 7.5 प्रतिशत कोयला प्राप्त होता है। आदिलाबाद जिले का तन्दूर क्षेत्र जो गोदावरी तथा तहर नदियों के मध्यवर्ती भाग में' लगभग 250 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है मुख्य उत्पादक क्षेत्र है। वर्धा नदी के पश्चिम में स्थित सस्ती तथा अन्नागाँव इस जिले के अन्य कोयला उत्पादक क्षेत्र हैं। खम्माम जिले का सिंगरेनी क्षेत्र, येलेन्दू कोठागुडेम, तातापल्ली, वारंगल जिले के करलापल्ली अन्य महत्वपूर्ण कोयला उत्पादक क्षेत्र हैं।

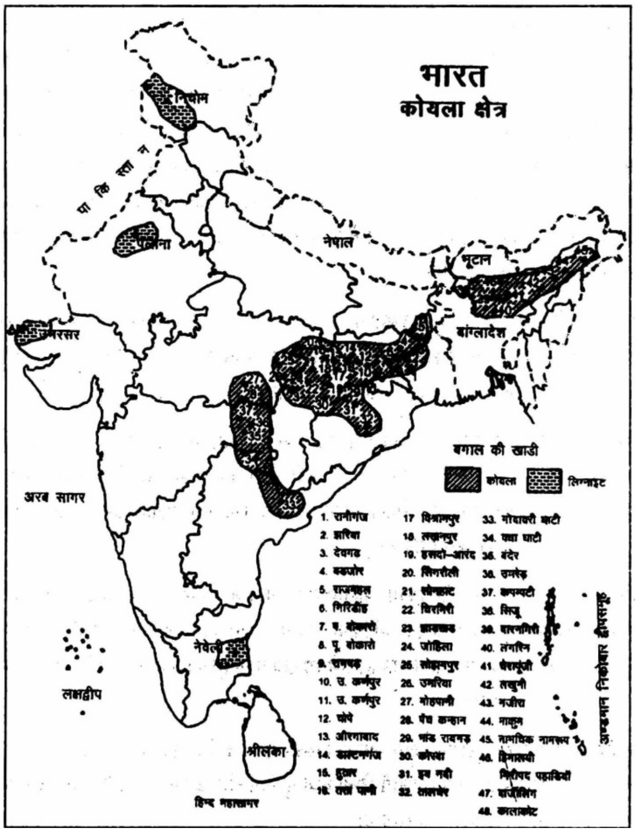

चित्र– 9. 1 : भारत के कोयला उत्पादक क्षेत्र

2. **महानदी घाटी कोयला उत्पादक क्षेत्र** –यह क्षेत्र मुख्य रूप से उड़ीसा राज्य में विस्तृत है , जिसका विस्तार उड़ीसा के धनकनल, सम्बलपुर, सुन्दरगढ़ जिलों में पाया जाता है। यह क्षेत्र भारत के कुल कोयला भण्डार का 2 प्रतिशत तथा उत्पादन का 6 प्रतिशत भाग उत्पादित करता है। उड़ीसा का धनकनाल जिला रानीगंज तथा झरिया के बाद तीसरा मुख्य –कोयला उत्पादक है जहाँ तलचर क्षेत्र प्रमुख है। यह क्षेत्र लगभग 518 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है। जहाँ 8 मीटर मोटाई तक की कोयले की परतें पायी जाती है। रामपुर –हिमगिरी कोयला उत्पादक क्षेत्र सम्बलपुर–सुन्दरगढ जिलों में विस्तृत है जहाँ लगभग 150 करोड़ टन कोयला के भण्डार है।
3. **दामोदर नदी घाटी कोयला क्षेत्र** –यह भारत का प्रमुख कोयला उत्पादक तथा सर्वाधिक भण्डार वाला क्षेत्र जिस पर सम्पूर्ण भारत की औद्योगिक क्रियाए निर्भर हैं। इस क्षेत्र को निम्नांकित उपभागों में विभाजित किया गया है।
   (i) **मुख्य दामोदर नदी घाटी कोयला क्षेत्र** –इसका विस्तार भारत के झारखण्ड तथा पश्चिम बंगाल राज्यों में है जहाँ से भारत का लगभग 50 प्रतिशत कोयला उत्पादित होता है। पश्चिम बंगाल में रानीगंज मुख्य कोयला उत्पादक क्षेत्र है जिसका विस्तार बर्दमान, पुरूलिया तथा बाकुँडा जिलों में है। रानीगंज कोयला क्षेत्र में ही भारत में सर्वप्रथम 1774 में कोयला उत्पादन शुरू हुआ। रानीगंज क्षेत्र 1092 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है, जहाँ लगभग 9508 करोड़ टन कोयले का भण्डार अवस्थित है। यह भारत का सबसे बड़ा

कोयला उत्पादक क्षेत्र है, जहाँ से भारत का लगभग 25 प्रतिशत कोयला उत्पादित होता है। इस क्षेत्र मे कोयले की परतें 16 मीटर तक मोटी है जिनमें घिसेरगढ, भूसिक, सैनटोरिया, पोनी आती, लेकदीह मुख्य परतें हैं। धनबाद, हजारीबाग जिले झारखण्ड के प्रमुख उत्पादक है। झारखण्ड में मुख्य कोयला उत्पादक क्षेत्र रानीगंज से 48 किमी. पश्चिम में स्थित झरिया है जो 436 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है। इस क्षेत्र में देश का 90 प्रतिशत कोकिंग कोयले का भण्डार है। कुल भण्डार लगभग 1860 करोड़ टन है। धनबाद जिले का झरिया क्षेत्र अकेला झारखण्ड का 50 प्रतिशत कोयला उत्पादित करता है। यहाँ उत्तम किस्म का बिटुमिन्स कोयला है जिसकी लगभग 20 मीटर मोटी परतें पायी जाती है। चन्द्रपुरा धनबाद का एक छोटा उत्पादक क्षेत्र है जहां घटिया किस्म का कोयला मिलता है।

हजारी बाग जिला झारखण्ड का दूसरा प्रमुख कोयला उत्पादक जिला है जहाँ गिरीडिह, बोकारो, करनपुरा व रामगढ़ प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है। गिरीडीह क्षेत्र में यहाँ उत्तम श्रेणी का स्टीम कोक मिलता है जिसका कुल भण्डार 7.3 करोड़ टन है। यह क्षेत्र गिरीडीह नगर के दक्षिण पश्चिम में अवस्थित है।

बोकारो क्षेत्र बोकारो नदी घाटी में विस्तृत है जो झरिया से 3 किमी. पश्चिम में अवस्थित है। 674 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत यह प्रदेश पूर्वी तथा पश्चिमी बोकारो क्षेत्रों में विभाजित है। इस क्षेत्र में 30 मीटर मोटी कोयले की परतें पायी जाती हैं। अधिकांश उत्पादित कोयले का उपयोग राउरकेला तथा बोकारो इस्पात कारखानों मैं होता हे। यहां कुल भण्डार लगभग 1004 करोड टन है।

करनपुरा क्षेत्र बोकारो क्षेत्र के तीन किमी. पश्चिम में स्थित है जो रानीगंज तथा झरिया के बाद कोयला उत्पादन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 1500 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत यह प्रवेश उत्तरी तथा दक्षिणी करनपुरा में विभाजित है जहाँ 1260 करोड़ टन कोयला के भण्डार है। रामगर क्षेत्र करनपुर। कोयला क्षेत्र के पश्चिम में स्थित है जहां लगभग 103 करोड़ कोयले के भण्डार है।

(ii) **उत्तरी दामोदर नदी घाटी कोयला क्षेत्र–**इसका विस्तार मुख्य दामोदर नदी घाटी के उत्तरी भाग में स्थित राजमहल पहाड़ियों (झारखण्ड) में है। जहाँ सहजोरी जैन्ती तथा कुन्दित छोटे उत्पादक क्षेत्र है। यह प्रदेश झारखण्ड राज्य के पूर्वी भाग त था पश्चिम बंगाल में विस्तृत है।

(iii) **पश्चिमी एवं उत्तर–**पश्चिमी दामोदर नदी घाटी कोयला क्षेत्र–मुख्य दामोदर नदी घाटी के उत्तर–पश्चिम एवं पश्चिमी भाग में विस्तृत इस क्षेत्र का विस्तार झारखण्ड राज्य के पलामू जिले के ओरंगा, डाल्टनगंज, हुतार क्षेत्रों मैं पाया जाता है। डाल्टनगंज मुख्य क्षेत्र है, जो 80 वर्ग किमी. क्षेत्र विस्तृत है।

4. **सोन नदी घाटी कोयला क्षेत्र –**इस क्षेत्र का विस्तार मध्य प्रदेश राज्य में है जहाँ शहडोल तथा सीधी जिलों में विस्तृत सिंगरोली क्षेत्र मुख्य कोयला उत्पादक है। यहां 3 से 5 मीटर मोटी कोयले की परत के रूप में लगभग 830 करोड़ टन के भण्डार है जो लगभग 300 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है। शहडोल जिले का दूसरा मुख्य कोयला उत्पादक क्षेत्र सोहागपुर है। जो कटनी बिलासपुर रेल मार्ग पर अवस्थित होने के कारण परिवहन सुविधा

से जुड़ा हुआ है। उमरिया इस प्रदेश का तीसरा मुख्य कोयला उत्पादक क्षेत्र है। इस क्षेत्र में उत्पादित कोयले में राख तथा जलवाष्प की अधिकता के कारण इसका अधिकतर उपयोग कोयले की वाष्प तथा गैस बनाने में किया जाता है।

5. **वर्धा घाटी कोयला क्षेत्र–**इसका विस्तार महाराष्ट्र में है जहां भारत के कुल कोयला भण्डार का 3 प्रतिशत कोयला है। मुख्य उत्पादक क्षेत्र चन्द्रपुर जिले के घुधुरू, बरीरा में स्थित है जहाँ 50 करोड़ टन कोयले के भण्डार है। इसके अतिरिक्त यवतमाल जिले का बल्लारपुर क्षेत्र, नागपुर का काम्पटी क्षेत्र अन्य मुख्य कोयला उत्पादक क्षेत्र है।
6. **सतपुड़ा कोयला उत्पादक क्षेत्र–**इस क्षेत्र का विस्तार मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र के समीपवर्ती क्षेत्र में दोनों राज्यों में पाया जाता है। नरसिंहपुरा जिले में महपानी क्षेत्र, छिन्दवाड़ा जिले के कान्हन तथा पेंच घाटी क्षेत्र तथा बेतूल जिले के पाथरखेड़ा में कोयले के पर्याप्त भण्डार अवस्थित हैं लेकिन इस क्षेत्र में अधिकतर कोयला मध्यम तथा निम्म श्रेणी का है।
7. **छत्तीसगढ़ कोयला क्षेत्र –**इस राज्य के उत्तरी भाग में मुख्य कोयला उत्पादक क्षेत्र स्थित है जिसमें रामकोला तातापानी कोयला उत्पादक क्षेत्र महत्वपूर्ण है। यह लगभग 2000 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है लेकिन यहाँ अधिकतर कोयला निम्न श्रेणी का है। छत्तीसगढ़ के बिलासपुर के समीप स्थित कोरबा क्षेत्र जहाँ लगभग 36.5 करोड़ टन कोयले के भण्डार अवस्थित है। अधिकतर कोयला उत्तम श्रेणी का है, जिसका उपयोग भिलाई लोह इस्पात कारखाने में होता है।

सरगुजा जिले के विश्रामपुर क्षेत्र में लगभग 1 करोड़ टन कोयले का भण्डार है जहाँ 2 मीटर से 60 मीटर मोटी कोयले की परत स्थित है। इसके अतिरिक्त इस जिले के झिलमिली, झगडखण्ड, खरसिया, सोवहर तथा कोरियागढ़ में भी कोयले के भण्डार पाए जाते है। रामपुर हिगिर, चिरमिरी -कुरीसिया, लखनपुर आदि इस राज्य के अन्य महत्वपूर्ण कोयला उत्पादक क्षेत्र है।

ये सभी कोयला उत्पादक क्षेत्र गोंडवाना चट्टानों से सम्बंधित है जहाँ भारत के कुल कोयला भण्डार का 98 प्रतिशत तथा कुल उत्पादन का 99 प्रतिशत भाग उत्पादित होता है। सम्पूर्ण गोंडावाना युगीन कोयले के भण्डार लगभग 90650 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है, जहाँ अधिकतर बिटुमिनस कोयला पाया जाता है। जिसमें 55 प्रतिशत कार्बन, 15 से 20 प्रतिशत राख, कम वाष्प तथा गंधक एवं फास्फोरस की मात्रा मिश्रित रूप से पायी जाती है।

टर्शियरी युगीन कोयला उत्पादक क्षेत्र –भारत में लगभग 225 करोड़ टन कोयला के भण्डार टर्शियरी कालीन चट्टानों में अवस्थित है, जो भारत के कुल कोयला भण्डार का 2 प्रतिशत है। इसमें अधिकतम भण्डार प्रायद्वीपीय भाग में स्थित है जिसका उत्पादन अभी तक तीव्र गति से नहीं हुआ है। इसके मुख्य उत्पादक राज्य निम्नांकित है : –

पश्चिम बंगाल –इस राज्य के उत्तरी भाग में स्थित दार्जिलिग जिला मुख्य उत्पादक है जहाँ पनकाबाडी क्षेत्र में टरशियरी कालीन कोयला का उत्पादन किया जा रहा है।

अरुणाचल प्रदेश–इस राज्य की डफला पहाड़ियों में स्थित डिंगराक क्षेत्र मुख्य उत्पादक है।

असम–लखीमपुर, शिवसागर जिले जो राज्य के उपरी क्षेत्र में स्थित है कोयला उत्पादन करते है। नागापर्वत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र में कोयला के भण्डार है, जहाँ माकूम मुख्य क्षेत्र है। इस क्षेत्र में 6 से 18 मीटर मोटी कोयले की परतें पायी जाती है तथा कुल भण्डार 100 करोड़ टन है जिसका

अधिकांश भाग नामदाग–लीडो क्षेत्र में स्थित है। डिसाई, जाँजी, नाजीरा, नायचिक असम के अन्य कोयला उत्पादक क्षेत्र है।

मेघालय–इस राज्य में कोयला उत्पादक क्षेत्र गारो पहाड़ी है जो 52 वर्ग किमी. विस्तृत है। यहाँ 15.6 करोड़ टन कोयला के भण्डार है। हरीगाँव, सीजू दौजशिरी, रोंगरेजगिरी, उम्बले मुख्य उत्पादन क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त खासी पहाड़ी क्षेत्र में याहों, बेर, लरकर, चेरापूंजी, जयंतियाँ पहाड़ी क्षेत्र में लकादोंग अन्य कोयला उत्पादक क्षेत्र है।

लिग्नाइट कोयला क्षेत्र –गोडवांना तथा टर्शियरी कालीन कोयला की अपेक्षा यह एक घटिया श्रेणी का कोयला है। जिसके उत्पादन राज्य निम्न हैं –

तमिलनाडु–यह राज्य भारत में लिग्नाइट कोयला के उत्पादन में अपना प्रमुख स्थान रखता है जहाँ नेवेली महत्वपूर्ण कोयला उत्पादक क्षेत्र है। नेवेली क्षेत्र का विस्तार तमिलनाडु के वेल्लोर तिरूवनालोर जिलों में लगभग 256 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है। यह क्षेत्र चेन्नई से 216 किमी. दूर है। इस क्षेत्र में 52 मीटर की गहराई पर 20 मीटर मोटी परतें के रूप में लिग्नाइट कोयला पाया जाता है। निम्न श्रेणी का होते हुए भी नेवेली –लिग्नाइट कोयला का महत्व अधिक है क्योंकि भारत के दक्षिणी भाग में कोयला की कमी थी इस भर्ती पूर्ति इन भण्डारों से हो जाती है। इस क्षेत्र में औद्योगिक विकास नेवेली लिग्नाइट कोयला क्षेत्र की प्राप्ति के बाद ही अधिक हुआ है।

राजस्थान–इस राज्य में लिग्नाइट कोयला के भण्डार मुख्य रूप से बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर, नागौर तथा बाड़मेर जिलों में पाए जाते है। बीकानेर के पलाना, खारी, चान्नेरी गंगा सरोवर, मढ़ मुख्य कोयला उत्पादक क्षेत्र है।

जम्मू कश्मीर–इस राज्य में लिग्नाइट के भण्डार चिनाब नदी के क्षेत्रों में पाए जाते है। चिनाब नदी के पश्चिम में स्थित कालाकोर, महोगला, चटक, मटेका में नदी के पूर्वी भाग में स्थित लड्डा क्षेत्र तथा धनसाल–स्यालकोट मुख्य क्षेत्र है जहाँ कोयला पाया जाता है। कोयला उत्पादन में पुँछ, थिरपुर, रियासी तथा उद्यमपुर जिले मुख्य स्थान रखते हैं। इस राज्य में लिग्नाइट मुख्य रूप से कारेवां चट्टानों के साथ मिलता है। जम्मू कश्मीर के रियासी जिले में एन्थ्रेसाइट कोयले के जमाव भी पाए जाते है।

इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के शोहरतगढ़ तथा खाजावाली क्षेत्र में भी लिग्नाइट कोयले के जमाव पाए जाते है जो तराई क्षेत्र में स्थित है।

तालिका– 9. 2 : भारत मे कोयले का उत्पादन

उत्पादित वर्ष	उत्पादन (मिलियन टन में)
1950–51	32.8
1960–61	55.7
1970–71	76.3
1980–81	118.0
1990–91	225.1
2001–02	322.6
2002–03	341.6
2003–04	361.1

स्रोत: भारत 2006 पृ: 255

वर्ष 1774 में रानीगंज में कोयले की प्राप्ति के बाद भारत में कोयले का यथावत उत्पादन प्रारम्भ हुआ लेकिन उत्पादन में वास्तविक वृद्धि 1950 – 51 के बाद हुई। 1940 –41 में उत्पादन 251 लाख टन से बढ़कर 2003 - 04 में 361 मिलियन टन हो गया है। वर्तमान में कोयला उत्पादन कार्य अधिकतर सार्वजनिक क्षेत्र में हो रहा है केवल टिस्को, इस्को, डी. बी. सी खाने ही निजी क्षेत्र में है जहाँ उत्पादन निजी क्षेत्र में हो रहा है। भारत में कोल इण्डिया कम्पनी द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में कोकिंग कोयले का उत्पादन ' किया जा रहा है। इसके विपरित लिग्नाइट कोयला का उत्पादन नेवेली लिग्नाइट कोपोरेशन तथा गुजरात मिनरल डवलपमेण्ट कापोरेशन द्वारा किया जा रहा है। लिग्नाइट कोयला के उत्पादन में भी तीव्र वृद्धि हुई है। 1970 – 71 में केवल 33.9 लाख टन से बढ़कर 2000 - 01 में 219 लाख टन हो गया है। भारत में उत्पादित कोयला का अधिकतम उपयोग उद्योगों, रेल परिवहन तथा ऊर्जा उत्पादन में हो जाता हैं। 1950–51 में जहाँ 36.4 प्रतिशत उत्पादित कोयला भारत में रेल परिवहन में तथा केवल 7.9 प्रतिशत विद्युत उत्पादन में होता था। 2003 - 04 में यह बदलकर विद्युत में लगभग 76 तथा रेल परिवहन में मात्र 0.31 प्रतिशत रह गया।

विश्व व्यापार–भारत अपने उत्पादित कोयला का कुछ भाग विदेशों में निर्यात भी करता है। मुख्य निर्यातक देशों भारत के पड़ोसी देश म्यांमार, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, सिंगापुर, नेपाल, भूटान , मारीशस, आदि हैं। विश्व में कोयला व्यापार में भारत का हिस्सा केवल 0.5 प्रतिशत है।।

भारत कोयला के साथ–साथ कोक कोयला का आयात भी करता है क्योंकि भारत में उत्पादित कोयले में 20 से 30 प्रतिशत तक राख की मात्रा पायी जाती है जिसके कारण इसका उपयोग करने से पहले इसमें कोक कोयला मिलाया जाता है। 2000 - 01 में भारत ने 361 करोड़ रुपये के कोक कोयले का आयात किया अत: भारत कोयला का निर्यात करने के साथ –साथ कोक कोयला का आयात भी करता है।

भारत में कोयला का पर्याप्त भण्डार होते हुए भी वर्तमान में इसके उत्पादन में कई समस्याएँ भी है जैसे कोयला भण्डारों का असमान वितरण, उत्तम श्रेणी के कोयला का अभाव, यातायात के साधनों का अभाव, कोयला खनन में नवीन तकनीकी सुविधाओं का अभाव, मानवीय श्रम की अधिकता, खानों का छोटा आकार, कभी –कभी आग का लगना आदि हैं। जिसके कारण पर्याप्त भण्डार होते हुए भी मांग के अनुसार उत्पादन नहीं होता है।

9.3.2 पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस (Petroleum and Natural Gas)

खनिज तेल उपयोगिता की दृष्टि से विश्व में एक महत्वपूर्ण है उपयोग विभिन्न परिवहन के साधनों के संचालन में, कृषि तथा उद्योगों में प्रमुखता से तथा साबुन, इत्र, सुगन्धित तेल श्रृंगार के सामान आदि में भी खनिज तेल का उपयोग किया जाने लगा है। खनिज तेल चट्टानों से प्राप्त होता है जो हाइड्रो कार्बन योगिकों के मिश्रण से निर्मित होता है। खनिज तेल अवसादी चट्टानों से प्राप्त होता है जिसमें हाइड्रोजन एवं कार्बन तत्वों का मिश्रण है जिसके कारण यह एक तीव्र प्रज्जवलनशील खनिज है। खनिज तेल का सम्बन्ध टर्शियरी कालीन जलज चट्टानें से माना जाता है। इस युग में विविध वनस्पति तथा सागरीय जीव जन्तुओं के नीचे दब जाने तथा दबाव व उष्मा के कारण ये पदार्थ कालान्तर में खनिज तेल में परिवर्तित हो गए। सर्वप्रथम तेल कुएं खोद

कर निकाला गया तेल अनुपयोगी होता है जिसमें अनेक अशुद्धियाँ रहती हैं। खनिज तेल को शोधन शालाओं में शुद्ध करने के लिए उसमें से इथर, बेंजीन, गैसोलीन, मिट्टी का तोल, चिमनी का तेल, मोम आदि सह उत्पादकों को पेट्रोल से अलग किया जाता है। सह उत्पाद भी मुख्य परिष्कृत तेल के समान अन्य उपयोगों में महत्वपूर्ण हैं।

भारत में पेट्रोलियम निकालने का प्रथम प्रयास वर्ष 1860 में असम के डिगबोई क्षेत्र में किया गया लेकिन यहाँ यातायात के साधनों की कमी के कारण पहले उत्पादन कार्य नगण्य था। खनिज तेल का उत्पादन विधिवत् रूप से वर्ष 1890 से प्रारम्भ किया गया। इस क्षेत्र में प्रारम्भ में तेल उत्पादन कार्य का संचालन असम तेल कम्पनी द्वारा किया गया जिसकी स्थापना वर्ष 1899 में की गयी। असम में ही सुरमा घाटी में वर्ष 1915 में बर्मा तेल कम्पनी ने तेल के सर्वेक्षण तथा खोज का कार्य प्रारम्भ किया। वर्ष 1921 में असम आयल कम्पनी को बर्मा तेल कम्पनी के अधिकार में दे दिया। इसके बाद दोनों ने सम्मिलित रूप डिगबोई, माकूम, सुरमा घाटी क्षेत्रों में तेल उत्पादन कार्य का संचालन किया। असम में ही वर्ष 1938 में नहर कटिया में खनिज तेल के भण्डारों की जानकारी प्राप्त हुई लेकिन यहाँ उत्पादन कार्य स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वर्ष 1953 में प्रारम्भ हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के 'बाद पश्चिम बंगाल के सुन्दर वन क्षेत्र में तेल का सर्वेक्षण कार्य स्टैण्डर्ड वेमयूम ऑयल कम्पनी द्वारा किया गया। लेकिन भारत में खनिज तेल की खोज तथा उत्पादन का वास्तविक कार्य सन् 1955 में तेल एवं प्राकृतिक गैस निदेशालय की स्थापना के बाद हुआ जिसका सन् 1956 में नाम परिवर्तित कर तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग (Oil and Natural Gas Commision,ONGC) कर दिया गया।

वर्तमान में भारत में तेल उत्पादन एवं खोज का कार्य तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग (ONGC) तथा ऑईल इण्डिया लि. (OIL,Oil India Limited) के निर्देशन में हो रहा है। भारत सरकार ने 4 फरवरी 2003 से विभिन्न कम्पनियों के सहयोग से जिसमें इंगलैण्ड की केयर्न एनर्जी कम्पनी भी सम्मिलित है, नये क्षेत्रों में तेल सर्वेक्षण कार्य बड़े स्तर पर प्रारम्भ किया है। राजस्थान के बाड़मेर जिले में भी इसी सन्दर्भ में तेल की प्राप्ति हुई है। भारत में खनिज तेल उत्पादन मुख्य रूप से टरशियरी यूगीन चट्टानों से प्राप्त होता है। इनका विस्तार गुजरात, असम में प्रमुखतया तथा राजस्थान के पश्चिमी रेगिस्तानी क्षेत्र बाड़मेर, जैसलमेर में इनका विस्तार है।

भारत के तेल उत्पादक क्षेत्र निम्नलिखित हैं : –

असम –भारत में सर्वप्रथम खनिज तेल की खोज तथा उत्पादन इसी राज्य में प्रारम्भ हुआ। डिगबोई में सर्वप्रथम तेल उत्पादन का कार्य प्रारम्भ किया गया। निम्नांकित क्षेत्र मुख्य तेल उत्पादक प्रदेश है।

डिगबोई क्षेत्र – असम राज्य के लखीमपुर जिले की नागा पहाड़ियों में स्थित टीपम पहाड़ियों के पूर्वी भाग में यह क्षेत्र स्थित है जहाँ भारत में सर्वप्रथम खनिज तेल का उत्पादन किया गया। इस क्षेत्र में लगभग 800 कुएँ हैं, जहाँ 300 से 1200 मीटर की गहराई से तेल निकाला जाता है। यहाँ लगभग 13 वर्ग किमी. क्षेत्र में तेल उत्पादन हो रहा है। ऑयल इण्डिया लिमिटेड इस क्षेत्र के बप्पापांग, हसांपांग, डिगबोई, पानीटाले क्षेत्र में स्थित कुँओं में उत्पादन कार्य कर रही है जो डिगबोई तेल शोधन शाला में साफ किया जाता है ।

सुरमा घाटी –बदरपुर, मसीमपुर, पथरिया इस प्रदेश के मुख्य तेल उत्पादक क्षेत्र है, जहाँ लगभग 60 कुओं से तेल उत्पादन हो रहा है। इस क्षेत्र में प्राप्त तेल मध्यम श्रेणी का है जो अधिक

गहराई से निकाला जाता है। इसी कारण वर्तमान में यहाँ केवल 20 हजार टन तेल का ही उत्पादन हो रहा है।

नहरकटिया क्षेत्र –डिगबोई तेल उत्पादक क्षेत्र के दक्षिण–पश्चिम में लगभग 40 किमी. दूर दहीहांग नदी तट के समीप यह क्षेत्र स्थित है, जहाँ वर्ष 1953 से खनिज तेल उत्पादन हो रहा है। तेल के साथ–साथ इस क्षेत्र से प्राकृतिक गैस का उत्पादन भी किया ज रहा है। ऑयल इण्डिया कम्पनी द्वारा इस क्षेत्र में तेल उत्पादन किया जाता है। लगभग 60 कुएं है ऐसे जिनमें 4000 से 5000 मीटर की गहराई से तेल निकाला जाता है। बरोनी तथा नूनमती तेल शोधन शालाओं में इस तेल को साफ किया जाता है।

हुगरीजन–मोरेन क्षेत्र –इस क्षेत्र में तेल के 22 कुएं है जहाँ उत्पादन किया जा रहा है। यह प्रदेश नहरकटिया के दक्षिण –पश्चिम में 40 किमी. दूर स्थित हे।

रुद्र सागर –लखवा क्षेत्र –इस क्षेत्र में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग द्वारा खोज एवं उत्पादन कार्य किया जा रहा है जहाँ लगभग 50 करोड़ टन तेल के भण्डार है। यह क्षेत्र शिवसागर जिले में स्थित है। तेल की प्राप्ति 400 मीटर की गहराई से हो रही है।

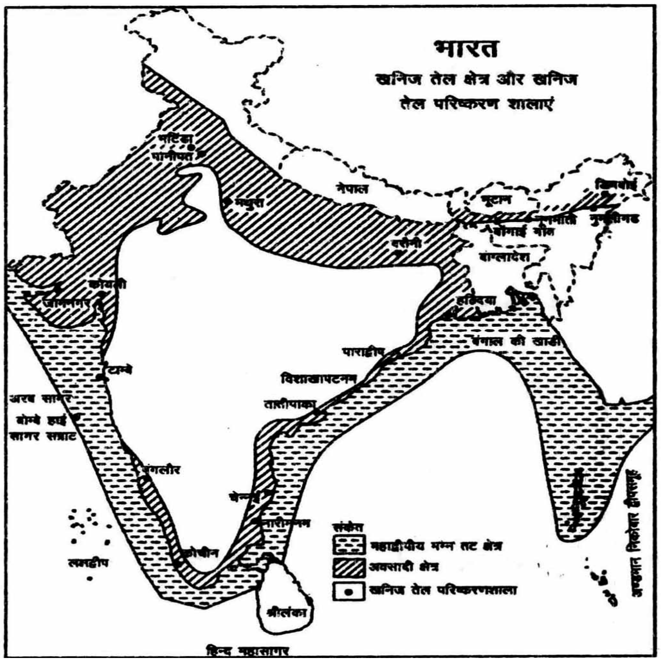

चित्र – 9. 2: भारत के खनिज तेल क्षेत्र एवं तेलशोधन शालाएँ

गुजरात–इस राज्य में तेल उत्पादक पेटी सूरत से राजकोट तक 15360 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है जहाँ सर्वेक्षण एवं खोज कार्य के द्वारा किया जा रहा है। नवीन खोजों के अनुसार इस राज्य के कच्छ क्षेत्र में भी तेल के नवीन भण्डारों की जानकारी हुई है। इस राज्य में निम्न क्षेत्र मुख्य तेल उत्पादक है : –

अकंलेश्वर क्षेत्र–गुजरात के भडौंच जिले में स्थित यह क्षेत्र बडौदरा से 45 किमी. दक्षिण में नर्मदा नदी के तट पर स्थित है। इस क्षेत्र में 1100 से 1200 मीटर गहराई से प्रतिवर्ष लगभग 30 लाख टन तेल का उत्पादन किया जाता है। यहाँ उत्पादित तेल में मिट्टी के तेल तथा गैसोलिन की मात्रा

पायी जाती है। यहाँ भडौंच तेल उत्पादक क्षेत्र वसुंधरा (Fountain of Prosperism) के नाम से प्रसिद्ध है।

लूनेज क्षेत्र–गुजरात में अरब सागर के तटीय क्षेत्र में स्थित खम्भात की खाड़ी के ऊपरी उत्तरी भाग में स्थित लुनेज क्षेत्र में 62 तेल कुएं हैं जहाँ से 15 लाख टन वार्षिक तेल उत्पादन हो रहा है।

कलोल क्षेत्र–यह क्षेत्र अहमदाबाद के पश्चिम में नवागाँव, कोसम्बा, मेहसावा, कोधाना, बकरोल, सानन्द, बचराजी, काडी वासना आदि छोटे तेल उत्पादक क्षेत्रों में विस्तृत हैं।

इसके अतिरिक्त गुजरात के बडौदा, भडौंच, सूरत, खेड़ा, अहमदाबाद आदि जिलों में छोटे क्षेत्रों में भी तेल उत्पादन किया जा रहा है। गुजरात असम के बराबर 50 लाख टन तेल उत्पादन प्रतिवर्ष कर रहा है।

गुजरात तथा असम के तेल उत्पादक क्षेत्र मैदानी भाग में स्थित है इसके अतिरिक्त भारत में मुख्य तेल उत्पादक क्षेत्र समुद्र तट के अपतटीय क्षेत्र में भी स्थित है जो निम्नांकित है –

आलियाबेट क्षेत्र–गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में भावनगर से 45 किमी. पूर्व में अरब सागर अपतटीय क्षेत्र में स्थित इस प्रदेश में रूस की सहायता से सर्वेक्षण एवं खोज कार्य किया गया था यहाँ वर्तमान में तेल उत्पादन हो रहा है।

मुम्बई हाई –महाराष्ट्र राज्य के अरब सागर के तटीय क्षेत्र में महाद्वीपीय मग्न तट पर मुम्बई से लगभग 176 किमी. उत्तर –पश्चिम मुम्बई हाई तेल उत्पादक क्षेत्र स्थित है। इस क्षेत्र में तेल प्राप्ति सागर सम्राट नामक जलयान द्वारा वर्ष 1975 में हुई, जहां वर्ष 1976 से उत्पादन हो रहा है। इस क्षेत्र में 2500 वर्ग किमी. क्षेत्र में तेल उत्पादन चट्टानें विस्तृत हैं जो 80 मीटर तक की गहराई में पायी जाती है। जिनका निर्माण मायर्ग़ोसेन युग में हुआ। ये चूनेदार 'चट्टानें हैं। वर्तमान में इस क्षेत्र से 200 लाख टन तेल का उत्पादन प्रतिवर्ष किया जा रहा है। इसलिए तेल उत्पादन में इस क्षेत्र का भारत में प्रथम स्थान है। नवीन सर्वेक्षण कार्य क्रम में मुम्बई हाई क्षेत्र में नवीन तेल उत्पादक क्षेत्रों का पता चला है जहां भविष्य में उत्पादन होने लगेगा। एक अनुमान के अनुसार मुम्बई हाई में 378000 लाख घन मीटर गैस तथा 5110 लाख टन खनिज तेल के भण्डार अवस्थित है।

बसीन क्षेत्र–यह तेल उत्पादक क्षेत्र अरब सागर में मुम्बई हाई के दक्षिण में है जो एक नवीन तेल क्षेत्र है यहाँ उत्पादक कार्य शुरू कर दिया गया है। इस क्षेत्र में 1900 मीटर की गहराई तक अगाध–तेल भण्डार प्राप्त हुए है। गुजरात में खम्भात खाड़ी के बेसिन तटीय क्षेत्र में 1986 में नवीन तेल भण्डारों का पता लगाया गया है। इस क्षेत्र में 1110 लाख टन तेल के भण्डार अवस्थित है। इस क्षेत्र में प्राप्त तेल उत्तम श्रेणी का है। कावेरी नदी का बेसिन क्षेत्र तथा गोदावरी नदी बेसिन में भी नवीन खोजों से पर्याप्त तेल तथा गैस के भण्डारों का पता चला है।

राजस्थान–यहाँ सन 1999 में पहली बार राजस्थान के बाड़मेर में गुढा के पास मग्गा की ढाणी के धोरों के नीचे 1910 मीटर की गहराई पर तेल भण्डार मिला। इसका नाम **'सरस्वती आयल फील्ड** ' रखा गया। इसी क्रम में सन् 2002 में बाड़मेर के कोसलू व साढाझुण्ड में 1400 मीटर की गहराई पर तेल भण्डार मिला। फरवरी, 2003 में गुढामलाजी के नगर गाँव में 1241 मीटर की गहराई पर तेल भण्डार मिला लेकिन 18 जनवरी, 2004 को बाड़मेर के ही बायतू कवास ब्लाक (एन. बी– 1) में केवल 900 मीटर की गहराई पर ही उच्च गुणवत्ता वाला तेल मिला। इस प्रकार

वायतू कवास ब्लाक भारत के विगत 25 वर्षो में मिले तेल भण्डारों में शामिल हो गया है। यहाँ 450 से 1150 मिलियन बैरल तेल के भण्डार हैं। इसका नाम बदलकर 10 फरवरी, 2004 को 'मंगला 1 ' कर दिया गया है। अगले वर्ष तक यहाँ व्यावसायिक उत्पादन शुरू हो जायेगा। राज्य में इंगलैण्ड की केयर्न एनर्जी लि. सहित अनेक कम्पनियाँ तेल खोजने में लगी हैं।

भारत में तेल के भण्डार–प्राचीन तथा नवीन भूगर्भिक सर्वेक्षण के अनुसार वर्तमान समय में भारत में खनिज तेल के कुल भण्डार 620 करोड़ टन है जिसमें से 500 लाख टन असम में (ब्रिटिश भूगर्भिकवेताओं के अनुसार) 500 लाख टन गुजरात में (तेल एवं प्राकृतिक गैस अयोग) है। सर्वाधिक भण्डार मुम्बई में है जो लगभग 1250 लाख टन है। गंगा नदी के उत्पादित क्षेत्र में विस्तृत अवसादी चट्टानों नवीन तेल भण्डार मिलने की सम्भावना है। भारत में 1990 से पश्चिमी तटीय क्षेत्र में नीलम, मुक्ता, पन्ना तथा मुम्बई हाई में एल - II एल - III क्षेत्रों में तेल उत्पादन के विकास कार्य को तीव्र गति से संचालित किया जा रहा है। नवीन तेल भण्डारों का खोज, सर्वेक्षण कार्य तथा उत्पादन का काम ऑयल इण्डिया लिमिटेड तथा तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग दोनों राष्ट्रीय कम्पनियाँ कर रही है।

भारत में तेल का उत्पादन तथा आयात – भारत में प्रारम्भिक समय से ही तेल का उत्पादन उपयोग की तुलना में बहुत कम हुआ है जिसके कारण भारत अपनी आवश्यकता का अधिकांश तेल विदेशों से आयात करता रहा है। 1950 – 51 में तेल का उत्पादन 26 लाख टन, 1991 में 330 लाख टन तथा 2002 - 03 में भी केवल 330.1 लाख टन हुआ 1997 – 98 के बाद भारत में तेल उत्पादन में लगभग स्थिरता आ गयी है जो लगभग 320 से 330 लाख टन के मध्य रहा है। उत्पादन के विपरित तेल की मांग 1960 – 61 में 75 लाख टन थी जो 1980 – 81 में 162 लाख टन, 1990 – 91 में 6334 लाख टन तथा 2001 - 02 में बढ़कर 1070.3 लाख टन हो गया जिसमें से 320.3 लाख टन का घरेलू उत्पादन तथा 750 लाख टन तेल का आयात किया गया अर्थात् वर्तमान समय में भारत अपनी माँग का 70 प्रतिशत खनिज तेल विदेशों से आयात करता है। भारत खनिज तेल के आयात पर प्रतिवर्ष लगभग 80 हजार करोड. रुपये खर्च करता है। भारत में 2002 - 03 में पेट्रोलियम की खपत 76 लाख टन हुई। भारत के कुल आयात मूल्य में से 31 प्रतिशत मूल्य खनिज तेल का है। भारत में खनिज तेल की आयात मात्रा के बढ़ने के साथ –साथ विश्व में खनिज तेल का मूल्य भी तीव्र गति से बढ़कर वृद्धि 1971 में अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में खनिज तेल की कीमत 1.68 डॉलर प्रति बैरल थी जो वर्तमान में बढ़कर लगभग 35 डॉलर प्रति बैरल हो गई है अर्थात् 197। से 2003 के मध्य खनिज तेल का स्व 20 गुना अधिक हो गया है। भारत सऊदी अरब, कुवैत, इरान, वेनेजुएला, संयुक्त अरब अमीरात, मैक्सिको, लीबिया, नाइजीरिया, इण्डोनेशिया, रूस आदि देशों से खनिज तेल का आयात करता है।

तालिका– 9. 3 : भारत में खनिज तेल का उत्पादन

वर्ष	**खनिज तेल का उत्पादन (लाख टन में)**	**आयात (लाख टन में)**	**कुल भार (लाख टन में)**
1980–81	149.0	162	311
1990–91	330.0	294	624
1997–98	338.6	540.2	798
1999–00	319.5	578.0	971.0

2001–02	320-3	852.7	1008.0
2002–03	330.1	747.5	1071.6

भारत में 2001 - 02 में खनिज तेल का कुल आयात 852 लाख टन हुआ जिसमें से भारतीय तेल निगम द्वारा 450 लाख टन तथा रिलायंस पैट्रोलियम द्वारा 270 लाख टन तेल का आयात किया।

तालिका – 9.4 : भारत में क्षेत्रवार पेट्रोलियम का उत्पादन, 2006 - 07

क्षेत्र	1980		2000–01		2006–07	
	लाख टन	प्रतिशत	लाख टन	प्रतिशत	लाख टन	प्रतिशत
भारत	94	100	324.3	100	339.8	100.0
आसाम–नागालैण्ड	10.6	11.2	52.0	16.4	44	12.9
गुजरात	38.1	40.6	58.2	17.6	62.1	18.3
मुम्बई हाई	45.3	48.2	206.4	63.6	226.6	66.7
तमिलनाडू	–	–	4.4	1.3	3.5	1.0
आन्ध्रप्रदेश	–	–	2.6	0.8	2.5	0.7
अरुणाचल प्रदेश	–	–	0.8	0.3	1.1	0.3

स्रोत : भारत सरकार, पेट्रोलियम मंत्रालय की वेव साइट pet.stat.pdf,2007

भारत में 2006 – 07 में 339.8 लाख टन तेल का उत्पादन हुआ। प्रादेशिक वितरणानुसार देश के कुल उत्पादन का 66.7 प्रतिशत मुम्बई हाई, 18.3 प्रतिशत गुजरात, 12.9 प्रतिशत असम, 1.0 प्रतिशत तमिलनाडु तथा 0.3 प्रतिशत अरुणाचल प्रदेश में हुआ।

प्राकृतिक गैस (Natural Gas)

भारत में तेल भण्डारों के साथ ही प्राकृतिक गैस के भण्डार भी पाए जाते है। भारत में अनुमानित कुल पेट्रोलियम भण्डार 5110 लाख टन है जिसमें से सर्वाधिक 3240 लाख टन अकेले मुम्बई हाई क्षेत्र में है। असम में 990 तथा गुजरात में 880 लाख टन तेल के सुरक्षित भण्डार अवस्थित है। प्राकृतिक गैस के भण्डारों के सन्दर्भ में किए गए भूगर्भिक सर्वे क्षण कार्यक्रम के अनुसार सन् 2001 में भारत में प्राकृतिक गैस के कुल भण्डार 638 अरब घन मीटर अनुमानित किए गए है वर्तमान में घरेलू ईधन, रासायनिक उर्वरकों के निर्माण, विद्युत उत्पादन भी भारत में निरंतर बढ़ता जा रहा है। वर्ष 1973 – 74 में प्राकृतिक गैस का उत्पादन 1.8 अरब घन मीटर, वर्ष 1978 – 79 में 2.2, वर्ष 1990 – 91 में 18.0 अरब घन मीटर रहा है।

वर्ष 2000 - 01 में 29.5 तथा वर्ष 2001 - 02 में 30.2 अरब घन मीटर उत्पादन हुआ। प्राकृतिक गैस के परिवहन, शोधन वितरण तथा वितरण की व्यवस्था के लिए भारतीय सरकार ने 1984 में भारतीय गैस प्राधिकरण लिमिटेड की स्थापना की गयी। भारतीय गैस प्राधिकरण लिमिटेड (Gas Authority of India Ltd–GAIL) ने गैस के परिवहन के लिए लगभग 4200 किमी. लम्बी पाइप लाइन बिछा रखी है जिसके द्वारा विद्युत उत्पादन तथा उर्वरक निर्माण के गैस की पूर्ति की जाती है। बीजापुर, बागोड़िया, गाँधार (गुजरात), लकवा (असम), ऊसर (महाराष्ट्र) तथा औरेया (उत्तरप्रदेश) में रसोई गैस उत्पादन संयन्त्रों का संचालन करता है। प्राकृतिक गैस के परिवहन के लिए पाइप लाइन मुम्बई हाई से हजीरा, झाबुआ, बीजापुर, औरेया, जगदीशपुर,

शाहजहांपुर, आवला, बबराला तक विस्तृत है। जिसकी कुल लम्बाई 1700 किमी. है। इस मुख्य पाइप लाइन की एक उपशाखा राजस्थान में अन्ता तथा सवाईमाधोपुर तक भी जाती है। मुख्य गैस पाइप लाइन को हजीरा –बीजापुर –जगदीशपुर (HBJ) नाम से जाना जाती है।

भारतीय गैस प्राधिकरण लिमिटेड (GAIL) ने 1246 किमी. लम्बी LPG पाइप लाइन का निर्माण कार्य चल रहा है जो कांधला – जामनगर (गुजरात से) दिल्ली होते हुए लोनी तक जाएगी। दूसरी मुख्य लाइन 600 किमी. लम्बी है जो विजाग से सिकन्दराबाद तक जाती है। 710 किमी. लम्बी पाइप लाइन का निर्माण कार्य दक्षिण भारत में मंगलौर–मैसूर–कोयम्बटूर के मध्य चल रहा है। खनिज तेल का परिवहन भी अधिकतर उत्पादन क्षेत्र से तेल शोधन शालाओं तक पाइप लाइन के द्वारा ही होता है। भारत में सर्वप्रथम तेल पाइप लाइन का निर्माण नहरकटिया से बरौनी तक किया गया जो नूनमाटी में होकर जाती है जिसकी कुल लम्बाई 1152 किमी है। गुजरात तेल उत्पादक क्षेत्रों को पाइप लाइनों के द्वारा कोयलयी तेल शोधन से जोड़ दिया गया है। मुम्बई हाई में उत्पादित खनिज तेल को मुम्बई तक लाने के लिए 210 किमी. लम्बी पाइप लाइन का निर्माण किया गया है। कच्छ की खाड़ी में स्थित सलाया तेल उत्पादक क्षेत्र सें तेल को मथुरा तेल शेधन शाला में पाइप लाइन द्वारा लाया जाता है जिसकी लम्बाई 1075 किमी. है।

भारत में स्थित मुख्य तेल शोधन शालाएँ–भारत में 17 तेल शोधन शालाएँ है जिनकी स्थापना स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की गयी। डिगबोई अकेली शोधन शाला है, जिसका निर्माण स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व किया गया। वर्तमान में भारत में 15 शोधन शालाएँ सार्वजनिक क्षेत्र में, 1 निजी क्षेत्र में तथा एक संयुक्त क्षेत्र में है। सभी तेल शोधनशालाओं की क्षमता 1166.7 लाख टन है।

1. **डिगबोई** –इस तेल शोधन शाला की स्थापना असम में 1893 में की गयी जहाँ 1901 से उत्पादन कार्य किया जा रहा है। यह शोधन शाला भारतीय तेल निगम (Indian Oil Corporation)के अधिकार में संचालित है।
2. **ट्राम्बे–**इसकी स्थापना 1954 में न्यूयार्क की एस्सो (Esso) कम्पनी के निर्देशन में की गयी जिसे 1976 में भारत सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया जिसका संचालन वर्तमान में हिन्दुस्तान पेट्रोलियम (Hindustan Petroleum Corporation Limited) द्वारा किया जा रहा है। ट्राम्बे में दूसरी तेल शोधन शाला की स्थापना 1955 में लन्दन की बर्मा शैल कम्पनी द्वारा की गयी जिस 1978 में भारत सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया। वर्तमान में इसका संचालन भारत पेट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड द्वारा किया जा रहा हैं।
3. **विशाखापट्टनम–**इसकी स्थापना 1957 में विदेशी कम्पनी कालटेम्स द्वारा की गयी जिसे 1976 में भारत सरकार ने लेकर हिन्दुस्तान पेरट्रोलियम के निर्देशन में संचालित किया गया।
4. **नूनमाटी–**इसकी स्थापना 1962 में रूमानिया सरकार की सहायता से गुवहाटी के समीप की गयी जिसका संचालन इण्डियन ऑयल निगम द्वारा किया जा रहा है।
5. **बरौनी–** 1964 में सोवियत रूस सहायता से स्थापित यह शोधन शाला झारखण्ड में स्थित है जिसका संचालन इण्डियन ऑयल निगम द्वारा किया जा रहा है।

6. **कोचीन–**इसकी स्थापना 1966 में की गयी जो CRL के द्वारा संचालित की जा रही है। यह एक संयुक्त क्षेत्र में संचालित शोधन शाला है जिसमें 25 प्रतिशत शेयर फिलिप्स पेट्रोलियम कम्पनी (U.S.A) तथा 75 प्रतिशत शेयर HPCL एवं बिड़ला कारपोरेशन के हैं।
7. **कोयली–**इसकी स्थापना 1965 में गुजरात के अंकलेश्वर कलोल तेल उत्पादक क्षेत्रों के मध्य बडौदरा के समीप की गयी। इसका संचालन इण्डियन ऑयल निगम द्वारा किया जा रहा है।
8. **चेन्नई–**इसकी स्थापना चेन्नई के निकट 1969 में तेनाली नामक स्थान पर की गयी। इनके अतिरिक्त कोलकाता के निकट हल्दिया में हल्दिया तेल शोधन शाला, असम के गुवहाटी में बोगंईगाँव, मथुरा, हरियाणा में करनाल, कर्नाटक में मंगलोर, गुजरात के जामनगर (भारत की सबसे बड़ी तेल शोधन शाला), पंजाब में भटिंडा मुख्य तथा तमिलनाडु के मालाबार, असम के नुमालीगढ़ छोटी तेल शोधन शालाएँ है। हाल ही में ONGC ने आन्ध्र प्रदेश के तातापानी क्षेत्र में छोटी तेल शोधन शाला की स्थापना की है जहाँ उत्पादन कार्य प्रारम्भ हो गया है।

विद्युत ऊर्जा (Electronic Energy)

भारत एक ऐसा देश है जहाँ ऊर्जा की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए व्यापारिक तथा अव्यापारिक सभी स्त्रोतों का उपयोग किया जाता है अर्थात लकड़ी, वनस्पति, गोबर के कण्डे, कोयला, तेल, जलविद्युत, अणुशक्ति, गैस, भूतापीय शक्ति, खाद शक्ति तथा सौर वाल्टेज शक्ति आदि से ऊर्जा प्राप्त की जा रही है।

विद्युत शक्ति का उपयोग भारत में ही नहीं वरन् विश्व के सभी देशों में औद्योगिक संस्थानों, कृषि तथा घरेलू उपयोग में हो रहा है। वर्तमान समय में विद्युत उत्पादन क्षमता को किसी देश के आर्थिक विकास का प्रमुख आधार माना जाता है।

तालिका – 9. 5: विभिन्न शक्ति स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा की मात्रा (प्रतिशत में)

वर्ष	तापीय विद्युत	जल विद्युत	अणु शक्ति	अन्य
1950–51	**75**	**8**	**–**	**14**
1978–79	55	42.5	2.5	–
1983–84	61.8	35.7	2.5	–
1994–95	71.60	25.66	2.74	–
2000–01	81.7	14.90	–	–
2003–2004	79	16	3.0	2.31
2004–2005	69.05	25.94	2.85	–

Source: Times of India July 21, 2005

भारत में विद्युत शक्ति के मुख्य स्त्रोत कोयला, तेल तथा जल हैं। वर्तमान समय में गैर परम्परागत स्त्रोतों आणविक, सौर, ज्वार शक्ति, गोबर गैस, भू –तापीय आदि ऊर्जा स्रोतों के विकास पर प्रमुख ध्यान दिया जा रहा है। यही कारण है कि जहाँ भारत प्राचीन में कोयला द्वारा उत्पादित तापीय विद्युत शक्ति पर पूर्णतया निर्भर था वहीं अब धीरे – धीरे जलविद्युत तथा

आणविक शक्ति के उत्पादन में वृद्धि हो रही है लेकिन फिर भी सर्वाधिक अंश अभी भी तापीय शक्ति से ही प्राप्त होता है।

भारत में विद्युत उत्पादन क्षमता में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तीव्र गति से वृद्धि हुई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत में 4700 मेगावाट विद्युत उत्पादन हुआ जो 1970 – 71 में 14709. 1990 – 91 में 66100 से बढ़कर वर्तमान में 116135 मेगावाट हो गयी है अर्थात् स्वतन्त्रता से अब तक विद्युत उत्पादन लगभग 60 गुना बढ़ गया है। विद्युत उत्पादन क्षमता के साथ –साथ विद्युत उत्पादन में भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तीव्र गति से विकास हुआ है।

तालिका – 9. 5: भारत में विद्युत उत्पादन क्षमता (मेगावाट में)

वर्ष	ताप विद्युत	जल विद्युत	अणु शक्ति	कुल विद्युत उत्पादन
1950–51	600	1100	–	1700
1960–61	2960	2700	–	5660
1970–71	7906	6363	420	14709
1980–81	17563	11791	860	30214
1990–91	46800	18800	1500	66100
2001–02	74429	262201	2720	66100
2004–2005	80201	30135	3310	104917

***इनमें 2488 मेगावाट पवन ऊर्जा भी सम्मिलित है ।**

Source: India 2005 & Times of India, July 21, 2005

तालिका– 9. 6: भारत में विद्युत उत्पादन (दस लाख किलोवाट प्रति घण्टे में)

उत्पादित वर्ष	ताप विद्युत	जल विद्युत	अणु शक्ति	कुल उत्पादन
1950–51	26	25	–	51
1960–61	91	78	–	169
1970–71	282	252	24	558
1980–81	613	465	30	1108
1990–91	1865	717	61	2643
2000–01	4081	745	169	4996
2001–02	4220	740	190	5153

तालिका– 9.5 के अनुसार भारत में 1950 – 51 में कुल विद्युत उत्पादन केवल 510 करोड़ किलोवाट प्रति घण्टा था जो वर्तमान में. बढ़कर 5153 करोड़ किलोवाट प्रति घण्टे होने लगा है। विद्युत उत्पादन में जहाँ - 1950 – 51 में जल विद्युत तथा ताप विद्युत का उत्पादन अनुपात लगभग समान था वह वर्तमान में बदलकर तीन चौथाई से अधिक (82 प्रतिशत) विद्युत उत्पादन तापीय विद्युत से जिसका उत्पादन कोयला तथा तेल से किया जाता है। भारत में जहाँ विद्युत उत्पादन 1951 की अपेक्षा वर्तमान में लगभग पचास गुना बढ़ गया है लेकिन उत्पादक के साथ–साथ मांग में होने वाली तीव्र वृद्धि के कारण विद्युत की अभी भी बहुत कमी है।

भारत में प्रारम्भिक समय से ही विद्युत की मांग एवं पूर्ति के मध्य भारी अन्तर रहा है जो वर्तमान समय तक भी यथावत स्थिति में बना हुआ है। भारत में विद्युत उत्पादन की विभिन्न

इकाइयाँ जो सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं के अन्तर्गत संचालित है सभी केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण (Central Electricity Authority) की देख–रेख में चल रही है तथा इन इकाइयों के विकास एवं विद्युत उत्पादन में वृद्धि सम्बन्धी सभी योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्दित करवाने का दायित्व इस संगठन का है।

भारत में विद्युत उत्पादन में प्रादेशिक विभिन्नता भी पायी जाती है। उदाहरणार्थ उत्तरी क्षेत्र में 11000 मेगावाट, पश्चिम में 11906, दक्षिण में 9415, पूर्वी में 5763, उत्तरी–पूर्वी 597 मेगावाट का उत्पादन होता है। पिछले कुछ वर्षो में देखा जाये तो उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में विद्धुत उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई है। इसके विपरीत देश के अन्य क्षेत्रों में केवल 3 से 4 प्रतिशत उत्पादन बढ़ा है। भारत में अभी तक जल विद्युत उत्पादन की सम्भावित क्षमता का मात्र 20 प्रतिशत भाग विकसित किया गया है। वर्तमान में जल विद्युत उत्पादन बढ़ाने की सम्भावना अधिक है इसलिए भारत में जल विद्युत के बडे तथा छोटे–छोटे जल विद्युत केन्द्रों की स्थापना करके कुल उत्पादन में इसका प्रतिशत बढ़ाना चाहिए।

प्रादेशिक विभिन्नता के साथ –साथ भारत में एक राज्य से दूसरे राज्य में भी विद्युत उत्पादन में अन्तर पाया जाता है। भारत में राज्य की दृष्टि से विध्युत उत्पादन में प्रथम स्थान महाराष्ट्र का है। जहाँ 28560 मिलियन किलोवाट प्रति घण्टा उत्पादन हो रहा है। इसके बाद उत्तर प्रदेश और उत्तरांचल, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात का विद्युत उत्पादन में प्रमुख स्थान है। जहाँ 13000 – 14000 मिालियन किलोवाट घण्टे से अधिक उत्पादन हो रहा है। भारत में जम्मू–कश्मीर, मणीपुर,, नगालैण्ड, त्रिपुरा, सिक्किम, राजस्थान आदि राज्य ऐसे हैं जहाँ विद्युत उत्पादन 1000 मिलियन किलोवाट प्रति घण्टे से कम रहा है तथा प्राय: विद्युत संकट बना रहता है।

बोध प्रश्न– 1

1. ऊर्जा के पारम्परिक स्रोतों के नाम लिखिए।

   ....

   ....

2. भारत में किस युग की शैलों में सर्वाधिक कोयला पाया जाता है?

   ....

   ....

3. कोयले का सर्वाधिक भण्डार किस नदी घाटी में स्थित है?

   ....

   ....

4. भारत के पेट्रोलियम का सबसे बड़ा उत्पादक क्षेत्र कौन सा है?

   ....

   ....

5. डिगबोर्ड क्षेत्र कहाँ स्थित है?

   ....

   ....

6. भारत की सबसे प्रमुख तेल की पाइप लाइन का नाम बताइए

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

9.4 गैर –परम्परागत ऊर्जा संसाधन

परम्परागत दृष्टि से विद्युत उत्पादन में केवल जल विद्युत, कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस का ही उपयोग किया जाता था लेकिन 1970 के बाद गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों जिन्हें नव्यकरणीय ऊर्जा स्रोत भी कहा जा सकता है के ऊपर अधिक बल दिया जाने लगा है जिनका मुख्य कारण परम्परागत ऊर्जा स्रोतों (कोयला, तेल, प्राकृतिक गैस) की सीमित मात्रा तथा अनव्यकरणीय होने के कारण अधिक बल दिया गया।

ज्वारीय बायो गैस, बायोमास, सौर, पवन, स्तापीय तथा लघु पन बिजली विद्युत उत्पादन परियोजनाएँ मुख्य गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोत हैं जिन पर विशेष बल दिया जा रहा है। ये स्रोत एक बार उपयोग में आने के बाद इनको पुन: उपयोग में लाया जा सकता है तथा पर्यावरणीय दृष्टि से भी ये ऊर्जा स्रोत अनुकूल है। गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोत नवीकरण योग्य तथा अक्षय संसाधन होने के कारण वर्तमान में प्रत्येक देश के विकास पर सर्वाधिक बल दे रहा है। एक अनुमान के अनुसार भारत 2012 तक लगभग 10,000 मेगावाट विद्युत उत्पादन गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों से उत्पादित करने लगेगा।

देश के मुख्य गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत निम्नलिखित हैं : –

9.4.1 सौर ऊर्जा (Solar Energy)

सूर्यातप प्राप्ति की दृष्टि से भारत के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र के अतिरिक्त सम्पूर्ण क्षेत्र में वर्ष के कुछ महिनों को छोडकर वर्षभर सूर्य का प्रकाश दिनभर प्राप्त होता रहता है। जिसके कारण भारत में सौर ऊर्जा की पर्याप्त सम्भावनाएं उपलब्ध हैं। सौर ऊर्जा द्वारा खाना पकाने, पानी गर्म करने, बिजली उत्पादन, समुद्री पानी के खारेपन को कम करने, कोल्ड स्टोरेज, प्रशीतन, सौरपम्प, सौर फोटो वोल्टिक सैल, सौर चुल्हा आदि में उपयोग किया जाता हैं। भारत ने जर्मनी के सहयोग से 10 किलोवाट सौर शक्ति उत्पादक संयन्त्र की संयुक्त रूप से स्थापना की गयी है। दूर –दराज में मुख्य क्षेत्र से दूर स्थित प्रदेशों में सौर ऊर्जा द्वारा ही विद्युत सप्लाई की जा सकती है, जैसे जम्मू–कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में है। भारत में 2002 तक लगभग 500 मेगावाट विद्युत का उत्पादन सौर ऊर्जा से हो रहा था तथा यह अवस्था 65 लाख वर्ग मीटर संग्राहक क्षेत्र पर एक पूर्ण सुव्यवस्थित अवस्था के रूप में विकसित हो गयी है। खाना बनाने के लिए विश्व की सबसे बड़ी सोलर कुकिंग सिस्टम मांउट आबू में स्थापित है जिससे 10,000 लोगों का भोजन तैयार होता है।

9.4.2 ज्वारीय शक्ति (Tidel Energy)

समुद्र तटीय क्षेत्र में सूर्य तथा चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के द्वारा आने वाले ज्वार–भाटा के द्वारा उत्पादित ऊर्जा ज्वारीय ऊर्जा कहलाती है। भारत में खम्भात की खाड़ी, कच्छ की खाड़ी तथा गंगा नदी जहाँ तटीय क्षेत्र में गिरती है. वहाँ ज्वारीय लहरों के द्वारा ऊर्जा उत्पादन की अधिकतम सम्भावनाएं है इन क्षेत्रों में ज्वारीय लहरों की ऊँचाई 8–1० मीटर तक रहती है। भारत में तटीय

क्षेत्र में ज्वारीय ऊर्जा उत्पादन के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के सहयोग से एक विस्तृत परियोजना के संचालन की योजना तैयार की जा रही है। पश्चिमी तटीय क्षेत्र में एक ज्वारीय ऊर्जा संयन्त्र की स्थापना केरल के तटीय क्षेत्र में स्थित विझिंगम स्थान पर की जा रही है। भारत के तटीय क्षेत्र में ज्वारीय ऊर्जा उत्पादन की सम्भावना पर्याप्त है लेकिन आर्थिक साधनों की कमी एक मुख्य समस्या है। खम्भात की खाड़ी तथा कच्छ की खाड़ी में आने वाली ज्वारीय लहरों के द्वारा प्रतिदिन लगभग 7000 से 8000 मेगावाट विद्युत उत्पादन की सम्भावना व्यक्त की गयी है लेकिन आर्थिक समस्याओं के कारण इसकी क्रियान्वित नहीं हो पायी है।

9.4.3 भू–तापीय ऊर्जा (Geothermal Energy)

पृथ्वी के आन्तरिक क्षेत्र से निकलने वाले गर्म जल स्रोतों तथा जलाशयों में उत्पादित ऊर्जा जो भूमि के आन्तरिक तापमान पर निर्भर है कि भूतापीय ऊर्जा कहते हैं। भारत में भू–तापीय ऊर्जा स्रोत उत्तरी–पश्चिमी हिमाचल के पर्वतीय क्षेत्र में जम्मू कश्मीर के पूगा, हिमाचल में पार्वती नदी की घाटी (मणिकर्ण) तथा दक्षिण समुन्द्र तटीय क्षेत्र के पश्चिमी तट पर एवं छत्तीसगढ़ राज्य के तातापानी में भू–तापीय ऊर्जा उत्पादन के लिए विधुत संयन्त्रों का निर्माण किया जा रहा है।

9.4.4 पवन ऊर्जा (Wind Energy)

पवन ऊर्जा उत्पादन में भारत का विश्व में पाँचवाँ स्थान है। जर्मनी, अमेरिका, डेनमार्क, स्पेन आदि भारत से अधिक पवन ऊर्जा उत्पादित कर रहे हैं। भारत में पवन ऊर्जा उत्पादन की सम्भावना 2488 मेगावाट है तमिलनाडु भारत का अग्रणी राज्य है। जहाँ पवन कर्वा का सर्वाधिक उत्पादन होता है। महाराष्ट्र केरल, गुजरात, उड़ीसा आदि राज्यों में भी पवन ऊर्जा उत्पादन हो रहा है।

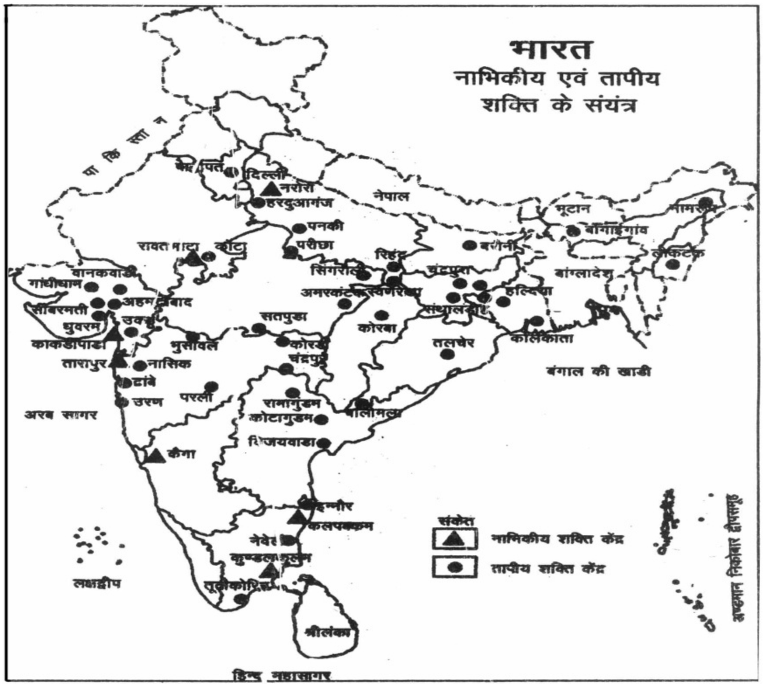

चित्र-9.3: भारत के नाभिकीय एवं तापीय शक्ति के संयंत्र

9.4.5 बायो गैस (Bio Gas)

वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या के साथ -साथ घरेलू ईंधन की खपत के कारण ईंधन सम्बन्धी साधन की किमी तथा साथ–साथ पर्यावरणीय प्रदूषण की बढ़ती दर को कम करने के कारण बायो गैस का उपयोग प्रतिवर्ष तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है। भारत में 1981–82 से प्रारम्भ हुई बायोगैस के वर्तमान में कुल संयन्त्र 30 लाख है।

बायोमास ऊर्जा (Bio Mass energy)–वन, कृषि आदि के अपशिष्टों से उत्पन्न उर्जा को बायोमास ऊर्जा कहते है। भारत में कृषि अपशिष्टता को अधिकता के कारण लगभग 19500 मेगावाट बायोमास ऊर्जा उत्पादन की सम्भावना है जिसमें से केवल 513.43 मेगावाट ऊर्जा का उत्पादन ही वर्तमान समय में हो रहा है।

9.5 अणु शक्ति ऊर्जा (Atomic Energy)

भारत में वर्ष 1969 से पहले केवल जल एवं तापीय विद्युत शक्ति का ही उत्पादन किया जाता था। सर्वप्रथम वर्ष 1969 में भारत में अणु शक्ति उत्पादन कार्य का क्रियान्वयन किया गया। वर्तमान समय में भारत में अणु विद्युत संयन्त्रों की संख्या 15 है जो देश के सात स्थानों पर स्थापित हैं इनमें तारापुर (महाराष्ट्र) में 3, रावतभाटा (राजस्थान) में 4, कलपक्कम व कुडन कुलम (तमिलनाडु) में 2, नरौरा (उत्तर प्रदेश) में 2, केगा (कर्नाटक) में 2 तथा काकरापार (गुजरात) में 2 संयंत्र हैं।

राजस्थान में रावतभाटा अणु शक्ति केन्द्र पर नई यूनिट की स्थापना की गयी है जिसमें विद्युत उत्पादन प्रारम्भ हो गया है। कर्नाटक के कैगा में भी एक अणु विद्युत उत्पादन संयन्त्र की स्थापना की गयी है। जिसे बढ़ाकर भारत विद्युत कादन संकट से निजात पाया जा सकता है।

वर्ष 1969 में प्रारम्भ परमाणु विद्युत की उत्पादन क्षमता वर्ष 1994 तक बढ़कर 1720 मेगावाट हो गयी। इसके बाद काकरापार की द्वितीय इकाई तथा केगा संयंत्र के शुरू होने के कारण वर्ष 2005 तक उत्पादन क्षमता 3310 मेगावाट हो गयी। यह क्षमता सर 2008 तक 6710 मेगावाट तथा सर 2020 तक 20,000 मेगावाट हो जायेगी। परमाणु विद्युत उत्पादन क्षमता के विपरित परमाणु ऊर्जा का उत्पादन वर्ष 1970–71 में 240 करोड़ किलोवाट घण्टे से बढ़कर वर्ष 1992 – 93 में 680 करोड़ किलोवाट प्रति घण्टा हो गयी। वर्ष 2003–04 तक परमाणु विद्युत का उत्पादन 17.72 अरब यूनिट होने लगा है। भारत में परमाणु विद्युत उत्पादन को बढ़ाकर वर्ष 2005 के अन्त तक 7000 मेगावाट करने का लक्ष्य रखा गया है। भारत में परमाणु ऊर्जा का उत्पादन मुख्यत: निम्नलिखित केन्द्रों पर ही निर्भर है –

1. **तारापुर परमाणु विद्युत सयन्त्र (महाराष्ट्र) –**भारत का यह प्रथम परमाणु विद्युत गृह है जिसकी स्थापना 1 अप्रेल 1969 को अमेरिका के सहयोग से महाराष्ट्र के थाणे जिले के तारापुर स्थान पर स्थापित किया गया। परमाणु विद्युत उत्पादन की दो इकाईयों द्वारा उत्पादन हो रहा है जिसमें प्रत्येक इकाई की उत्पादन क्षमता 160 मेगावाट है।
2. **रावतभाटा परमाणु विद्युत संयन्त्र (राजस्थान)** – कनाडा के सहयोग से राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जिले में रावत भाटा (राणा प्रताप सागर के समीप) नामक स्थान पर कोटा शहर के समीप स्थापित किया गया है। प्रारम्भ में यहाँ दो इकाइयों की स्थापना की गयी थी

जिनकी उत्पादन क्षमता कुल 300 मेगावाट थी। वर्तमान में इसकी तीसरी–चौथी तथा पाँचवी इकाई से भी उत्पादक होने लगा है।

3. **कलपक्कम परमाणु विधुत संयन्त्र (तमिलनाडु) –** चेन्नई के समीप कलपक्कम में स्थापित इस सयन्त्र में वर्ष 1981 से उत्पादन हो रहा है। चेन्नई के इस संयन्त्र में सर्वप्रथम भारत द्वारा स्व निर्मित गुरू जल रिएक्टर का प्रयोग किया गया।
4. **नरौरा परमाणु विद्युत संयन्त्र (उत्तर प्रदेश) –**यह भारत का सबसे बड़ा परमाणु विद्युत गृह है जिसकी स्थापना उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले के नरोरा नामक स्थान पर की गयी है। यह देहली से 125 किमी. दूर स्थित है। इस संयन्त्र में प्रारम्भ में 220–220 मेगावाट विद्युत उत्पादन की दो इकाइयों की स्थापना की गयी जिनसे वर्ष 1989 से उत्पादन हो रहा है।

तालिका–9.7: भारत में परमाणु ऊर्जा

वर्तमान क्षमता (मेगावाट)			**निर्माणाधीन संयंत्र क्षमता मेगावाट**		
स्थान	**संयंत्रों की संख्या**	**कुलक्षमता**	**संयंत्रों की संख्या**	**क्षमता**	**पूर्ण होनेकी तिथि**
तारापुर	3	860	1	540	जुलाई 2006
राजस्थान (रावतभाटा)	4	740	2	2x220	मई 2007 नवम्बर 2007
कल्पक्कम	2	390			
नरौरा	2	440			
काकरा पाट	2	440	2	2x220	दिस. 2006, जून 2007
कैगा	2	440	2	2x1000	2007,2008
कुण्डलकुलम	–	–			
कुल	**15**	**3310**	**7**		

5. **काकरापार परमाणु विद्युत सयन्त्र (गुजरात) –** इस सयन्त्र की स्थापना सूरत जिले में काकरापार नामक स्थान पर की गयी है जहाँ प्रारम्भ में दो इकाईयों की स्थापना की गयी थी जिनकी उत्पादन क्षमता 440 मेगावाट है। इसके अतिरिक्त कर्नाटक में कैगा परमाणु विद्युत सयन्त्र की स्थापना की गयी है। तमिलनाडु के कुडनकुलम स्थान पर एक नवीन परमाणु विद्युत संयन्त्र की स्थापना की गयी है जहाँ उत्पादन प्रारम्भ हो गया है।

भारत में परमाणु विद्युत संयंत्रों में यूरेनियम तथा भारी पानी का उपयोग किया जाता है। यूरेनियम के अलावा वर्तमान में थोरियम का भी उपयोग किया जाने लगा है। अनियम झारखण्ड राज्य के सिंहभूमि जिले में जाद्यडा में तथा थोरियम करेल के अलवाय में पायी जाती है। भारी पानी की पूर्ति के लिए भारत में पंजाब के नागल, महाराष्ट्र के ट्राम्बे, गुजरात के बड़ौदरा तथा हजीरा में, उड़ीसा के तालचर, तमिलनाडु के तूतीकोरन, राजस्थान के रावत भाटा तथा आन्धप्रदेश के मानुगूरू स्थान पर भारी पानी निर्माण सयन्त्र की स्थापना की गयी है।

9.6 ऊर्जा संकट, संरक्षण एवं भावी सम्भावनायें (Energy Crises, Conservation and Potentiality)

ऊर्जा का उपयोग वर्तमान विकास के युग में प्रगति का परिचायक बन गया है। अत : ऊर्जा के अधिकतम उपयोग की प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप ऊर्जा सकट उत्पन्न हुआ है। विकास का आधार ऊर्जा उपभोग को माना जा रहा है। जिस देश में जितनी अधिक ऊर्जा की खपत होती है, उसे उतना ही अधिक विकसित माना जाता है। विश्व में सर्वाधिक ऊर्जा की खपत संयुक्त राज्य अमेरिका में होती है। यहाँ विश्व की 33 प्रतिशत ऊर्जा की खपत होती है, जबकि भारत में केवल 1.5 प्रतिशत ऊर्जा का उपयोग होता है। संसार में सबसे कम ऊर्जा की खपत नेपाल, बांग्लादेश तथा अफ्रीकी देशों में है। संसार में कुल ऊर्जा का 62 प्रतिशत जीवाश्मीय ईंधन का योगदान है। पेट्रोलियम उत्पाद तीव्र गति से घटते जा रहे हैं। बढ़ती उपभोग दर के आधार पर अगले 30 वर्षों में पेट्रोलियम समाप्त हो जायेगा। कोयला आगामी 100 वर्षों में तथा प्राकृतिक गैस 50 वर्षो में समाप्त हो जायेंगे। जल शक्ति कुल ऊर्जा का 20 प्रतिशत योग देती है। उद्योग परिवहन तथा घरेलू उपयोग में ऊर्जा की बढ़ती मांग ने ऊर्जा संकट को बड़ाया है। विगत 25 वर्षो में विश्व – स्तर पर ईंधन का उपभोग दुगुना, तेल एवं प्राकृतिक गैस का उपभोग चौगुना बढ़ गया है। विश्व संसाधन संस्थान (The World Resources Institute) की वर्ष 1992–93 की रिपोर्ट के अनुसार विश्व में विगत दो दशकों में. ऊर्जा की खपत में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई। विश्व ऊर्जा खपत में कोयले का 31 प्रतिशत, तेल का 41 प्रतिशत, गैस का 23 प्रति तथा आणविक व जल विद्युत का 5 प्रतिशत योगदान पाया गया है।

तालिका – 9.9 : भारत में कोयले का आवंटन

(मिलियन टन में)

वर्ष	बिजली	इस्पात	रेल	सीमेन्ट	उर्वरक	अन्य	कुल
1999–2000	224.74	21.40	0.01	9.50	3.37	47.41	306.43
2000–2001	239.51	22.87	0.01	10.03	3.14	39.78	315.34

स्त्रोत: भारत, 2002, पृ.529

पृथ्वी पर ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत सूर्य है, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल ऊर्जा, जैव ऊर्जा, भूगर्भीय ताप ऊर्जा आदि ऊर्जा के गैर परम्पगात स्रोत हैं। बढ़ती ऊर्जा की मांग को मद्देनजर रखते हुए ऊर्जा के नये विकल्प स्रोतों की खोज के साथ ही ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोतों का विकास किया जाये तो वर्तमान विश्व की आवश्यकता है। वर्ष पर्यन्त सौर किरणें प्राप्त करने वाले स्थान पर सौर ऊर्जा का विकास किया जाये। सौर ऊर्जा मानव के हाथ में अक्षय ऊर्जा का स्रोत है। सौर ऊर्जा के समरूप ही वायु द्वारा भी ऊर्जा प्राप्त की जाती है। इस प्रकार इन विकल्पों का विकास करके ऊर्जा संकट से निजात पा सकते हैं।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त ऊर्जा के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल की है। देश में 1950 ई. में मात्र 1713 मेगावाट ऊर्जा का उत्पादन होता था, जो बढ़कर वर्ष 1995–96 में 83287.96 मेगावाट हो गया, लेकिन बढ़ती मांग की तुलना में उत्पादन कम होने से ऊर्जा संकट उत्पन्न हुआ है। वर्तमान समय में भारत में विभिन्न स्रोतों से हो रहे ऊर्जा उत्पादन का विवरण निम्न है

तालिका– 9.9 : भारत में ऊर्जा के विभिन्न स्रोत एवं क्षमता

स्त्रोत	अनुमानित	क्षमता (2000–2001)
पारम्परिक स्त्रोत		
1. तापीय उर्जा (गैस तथा डीजल सहित)	71906.42	मेगावाट (72.14%)
2. जल उर्जा (पन बिजली)	25219.55	मेगावाट (25. 19%)
3. आणविक उर्जा	2758.00	मेगावाट (2.67%)
	कुल 1,01,153.60	मेगावाट(100%)
गैर– परम्परागत स्त्रोत		
1. बायोगैस संयंत्र (संख्या)		32 लाख
2. सामुदायिक गैस संयंत्र		1628 मेगावाट
3. सोर कुकर		5.08 लाख
4. सौर ताप ऊर्जा प्रणाली वर्ग मीटर (क्षेत्र)		550 लाख वर्गमीटर
5. सौर संयंत्र		60,000
6. पवन ऊर्जा		1340 मेगावाट
7. लघु विद्‌युत ऊर्जा		1361 मेगावाट
8. ऊर्जा पार्क		189 (संख्या)
9. पवन पम्प		714 (संख्या)
10. सौर–फोटावोल्टिक प्रणाली		73 मेगावाट

ऊर्जा की बढती मांग को प्रबन्धित करने के लिए ऊर्जा के नवीन विकल्पों की खोज तथा अनुसंधान के साथ ही गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का विकास किया जाना चाहिए। इसे मद्देनजर रखते हुए सन् 1982 में गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत विभाग की स्थापना की गई।

वन विनाश (Deforestation)

वनोन्मूलन किसी भी देश की आर्थिक स्थिति, जीवनस्तर व पर्यावरण के भविष्य के लिए एक भीषण विनाश का द्‌योतक है। सन् 1900 में भारत में वन क्षेत्र 7000 मिलियन हैक्टेयर था जो वर्ष 1975 में घटकर 2890 मिलियन हैक्टेयर तथा वर्तमान समय में (1996) 752.3 लाख हैक्टेयर रह गया है, जो कुल क्षेत्रफल का 19.47 प्रतिशत है। एक समय था जब पृथ्वी पर अत्यधिक वनों का विस्तार था, जब मनुष्य घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करता था, लेकिन सभ्यता की दौड़ आरम्भ होने के साथ ही वनों का क्षेत्र भी घटना आरम्भ हो गया।

बोध प्रश्न–2

1. गैर परम्परागत ऊर्जा के स्रोत नव्यकरणीय क्यों कहे जाते हैं?

   ....

   ....

2. भारत में सबसे बड़ी सोलर कुकिंग सिस्टम कहाँ स्थित है?

   ....

   ....

3. भारत में पवन ऊर्जा उत्पादन में कौन सा राज्य सबसे आगे है?

....

....

4. अपारम्परिक ऊर्जा के स्रोतों में सर्वाधिक विकास किसका हुआ है?

....

....

5. भारत का पहिला आणविक संयंत्र कब और कहाँ स्थापित किया गया?

....

....

9.7 सारांश (Summary)

भारत में ऊर्जा की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही है जबकि पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के भण्डार निश्चित मात्रा में है। इनकी निर्माण प्रक्रिया भी लम्बी है। इस कारण इनका चक्रीय उपयोग भी सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में भारत में गैर–परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का विकास कर भावी ऊर्जा संकट से बचा जा सकता है। भारत के भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से यहाँ विभिन्न गैर – परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के विकास की असीम सम्भावनाएँ है जिनमें सौर ऊर्जा, जैव ईंधन, बायो गैस, पवन ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, जल विद्युत आदि प्रमुख है।

9.8 शब्दावली (Glossary)

- **पारम्परिक ऊर्जा स्रोत :** जिन्हें हम लम्बे समय से पारम्परिक रूप से उपयोग करते आ रहे हैं तथा निकट भविष्य में उनका नव्यकरण सम्भव नहीं है।
- **नव्यकरणीय ऊर्जा संसाधन :** ऐसे ऊर्जा स्रोत जिनका निकट भविष्य में नव्यकरण कर सकते हैं या फिर उसकी मात्रा असीम है, जैसे सौर ऊर्जा।
- **भूतापीय ऊर्जा :** भू–गर्भिक गर्म जल स्रोतों से उत्पन्न ऊर्जा।
- **मिलियन :** दस लाख।

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. भारत 2009 (2009) : **प्रकाशन विभाग,** भारत सरकार, नई दिल्ली।
2. भूगोल और आप (2009) : **आइरिस पब्लिकेशन्स**, नई दिल्ली।
3. गुर्जर, आर. के. एवं जाट. बी. सी. (2007) : **भारत का भूगोल**, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
4. गुर्जर, आर. के. एवं जाट. बी. सी. (2009) : **संसाधन भूगोल**, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
5. शर्मा, श्रीकमल, सम्पा. (2004) : **भारत का भूगोल**, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
6. जाट बी. सी. (2008) : **ऊर्जा संसाधनों का प्रबन्धन**, अंकित पब्लिकेशन्स, जयपुर।
7. Johnson R. (1992): **India: Resources and Development**, A.H. Publishers, New Delhi.

8. Tirtha, R.(2003) : **Geography of India**, RawatPublication, Jaipur.

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न– 1

1. पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस तथा कोयला।
2. गोडवाना युगीन चट्टानों में संचित है।
3. दामोदर नदी घाटी में।
4. मुम्बई हाई क्षेत्र।
5. हजीरा–बीजीपुर – जगदीयापुर पाइप लाइन।

बोध प्रश्न – 2

1. इसलिटे कि इनकी आपूर्ति अक्षुण्य होती है।
2. राजस्थान के माउण्ट आबू में, जिससे 10,000 लोगों का भोजन तैयार किया जाता है।
3. पवन ऊर्जा के विकास में तमिलनाडू सबसे आगे है।
4. गैरपरम्परागत ऊर्जा के स्रोतों में सर्वाधिक विकास पवन ऊर्जा का हुआ है।
5. सन् 1969 में तारापुर, महाराष्ट्र में स्थापित किया गया।

9.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत में कोयला के भण्डार, वितरण एवं उत्पादन का विवरण दीजिए।
2. भारत में पेट्रोलियम उत्पादक क्षेत्रों, वितरण एवं उत्पादन का वर्णन कीजिए।
3. भारत में अपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों की सम्भावना एवं विकास पर एक भौगोलिक लेख लिखिए।
4. ऊर्जा संकट को स्पष्ट करते हुए इसे दूर करने में नव्यकरणीय ऊर्जा संसाधनों की भूमिका बताइये।

इकाई10 : जनसंख्या एवं अधिवास (Population and Settlements)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 जनसंख्या वितरण एवं घनत्व
10.2.1 जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक
10.2.2 जनसंख्या घनत्व का प्रतिरूप जनसंख्या–वृद्धि
10.3 जनसंख्या वृद्धि
10.3.1 जनसंख्या वृद्धि का इतिहास
10.3.2 जनसंख्या वृद्धि का क्षेत्रीय प्रतिरूप
10.3.3 जनसंख्या वृद्धि के नियामक
10.4 जनसंख्या समस्याएँ
10.5 राष्ट्रीय जनसंख्या नीतियाँ
10.5.1 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 1976
10.5.2 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000
10.5.3 जनसंख्या नीति –एक मूल्यांकन
10.6 ग्रामीण अधिवास प्रतिरूप
10.7 नगरीकरण प्रक्रिया
10.7.1 भारत में नगरीकरण
10.7.2 नगरीकरण का क्षेत्रीय प्रतिरूप
10.7.3 देश के दसलक्षी नगर तथा उसका विवरण
10.7.4 नगरीकरण से उत्पन्न समस्याएं
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप समझ सकेंगे –

- भारत में जनसंख्या का आकार, वितरण एवं घनत्व,
- जनसंख्या वृद्धि की प्रकृति,
- जनसंख्या समस्याएँ व नीतियाँ,
- ग्रामीण अधिवासों के प्रतिरूप,
- नगरीयकरण की प्रक्रिया एवं प्रतिरूप,

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी देश के आर्थिक विकास का प्रतिमान उस देश की जनसंख्या होती है। मानव ही प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके देश के आर्थिक विकास को गति प्रदान करता है। संसाधनों के उपयोग से सामाजिक आर्थिक विकास का स्वरूप निर्धारित होता है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्तिr के लिए प्राकृतिक व सांस्कृतिक वातावरण का उपयोग करता है। भूमि, जल, मिट्टी, खनिज, शक्ति संसाधन, वनस्पति, जीव जन्तु आदि का उपयोग करके वह कृषि, पशुपालन, उद्योग, व्यापार, परिवहन आदि को संभव बनाता है और सांस्कृतिक विकास करता है। इसलिए किसी भी देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिए जनसंख्या के वितरण, घनत्व, वृद्धि, अधिवास एवं समस्याओं का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

10.2 जनसंख्या का वितरण एवं घनत्व (Population Distribution and Density)

जनसंख्या के आकार की दृष्टि से भारत का विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 102.7 करोड़ है। यह विश्व की कुल जनसंख्या (6.14 अरब) की 16.7 प्रतिशत तथा एशिया महाद्वीप की कुल जनसंख्या की एक –चौथाई (27. 6%) से अधिक है। देश का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का केवल 2.34 प्रतिशत है। इस तरह विश्व की 16.7 प्रतिशत जनसंख्या केवल 2.34 प्रतिशत भूभाग पर निवास करता है। भारत की जनसंख्या यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका की कुल जनसंख्या के बराबर है। इसी प्रकार भारत की जनसंख्या अफ्रीका महाद्वीप से दुगनी, ब्रिटेन से सात गुनी एवं आस्ट्रेलिया से 44 गुनी है। जनसंख्या का यह वृहद आकार देश के अर्थतंत्र पर काफी अधिक दबाव डालता है तथा प्रति व्यक्ति आय एवं जीवनस्तर को काफी न्यून कर दिया है। तथापि विशाल जनसंख्या – आधार के कारण देश में एक प्रबल आर्थिक एवं राजनैतिक शक्ति के रूप में विकसित होने की क्षमता विद्यमान है।

भारत में भी जनसंख्या का वितरण असमान है। मैदानी भाग सघन बसे हुए हैं। हरी ओर उच्च पर्वतीय भाग, वन क्षेत्र, मरूस्थली एवं दलदल भाग विरल बसे हुए हैं। विभिन्न राज्यों में नदी–निर्मित मैदानी भागों, खनिज उत्खन्न के क्षेत्रों, औद्योगिक –व्यापारिक केन्द्रों, तटीय भागों एवं नगरों में जनसंख्या का संकेन्द्रण अधिक हुआ है। जनसंख्या के असमान वितरण का प्रमाण यह है कि देश की लगभग 10 प्रतिशत जनसंख्या सिर्फ 1.2 प्रतिशत भूमि पर रहती है। लगभग आधी जनसंख्या (48.4 प्रतिशत) केवल 18.4 प्रतिशत भूमि पर केन्द्रित है । दूसरी ओर देश की 31.2 प्रतिशत भूमि 12.8 प्रतिशत जनसंख्या और 64.4 प्रतिशत भूमि पर केवल 39.1 प्रतिशत जनसंख्या ही निवास करती है।

राज्यवार जनसंख्या का वितरण (Starewise Population Distribution)

राज्यवार जनसंख्या सिक्किम में 5.4 लाख से लेकर के उत्तरप्रदेश में 16.6 करोड़ है (तालिका, 10.1) जनसंख्या की दृष्टि से उत्तरप्रदेश (16.6 करोड़) देश में प्रथम स्थान पर है, जबकि क्षेत्रफल (7. 26%) में पाचवें स्थान पर है। उत्तरप्रदेश की जनसंख्या ब्राजील की जनसंख्या (17.

2 करोड़) के लगभग बराबर है। भारत को छोडकर विश्व में केवल 4 देशों की जनसंख्या उत्तरप्रदेश राज्य की जनसंख्या से अधिक है। ये देश हैं चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, इण्डोनेशिया एवं ब्राजील। महाराष्ट्र (9.67 करोड़) का जनसंख्या में दूसरा एवं क्षेत्रफल में तीसरा स्थान है। इस राज्य में देश की 9.4 प्रतिशत जनसंख्या 9.36 प्रतिशत क्षेत्र पर निवास करती है अर्थात् इस राज्य में जनसंख्या एवं क्षेत्रफल का संतुलन है। इसी प्रकार का संतुलन कर्नाटक, झारखंड, असम, त्रिपुरा, आदि में भी है।

देश के 11 राज्यों में एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में जनसंख्या उनके क्षेत्रफल की तुलना में अधिक है अत : इन क्षेत्रों में जनसंख्या का दबाव संसाधनों पर अधिक है। शेष राज्यों में क्षेत्रफल की तुलना में जनसंख्या अपेक्षाकृत कम है। बिहार का देश में जनसंख्या (8.3 करोड़) में तीसरा स्थान एवं क्षेत्रफल में ग्यारहवाँ है। बिहार की जनसंख्या जर्मनी की जनसंख्या (8.2 करोड़) के बराबर है। बिहार के बाद जनसंख्या में पश्चिम बंगाल आता है जहाँ 7.81 प्रतिशत जनसंख्या 2. 7 प्रतिशत भूमि पर रहती है। राजस्थान क्षेत्रफल (10.4%) में प्रथम स्थान पर है, जबकि जनसंख्या (5.5%) में आठवें क्रम पर है। राजस्थान की जनसंख्या दक्षिण अफ्रीका की जनसंख्या से अधिक है तथा इटली की जनसंख्या के लगभग बराबर है। इसी प्रकार जम्मू एवं कश्मीर क्षेत्रफल (6.76%) में छठवें स्थान पर है, जबकि यहाँ देश की केवल एक प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। यही स्थिति अरुणाचल प्रदेश की भी है, जहाँ 2.55 प्रतिशत भूभाग पर केवल 0.11 प्रतिशत जनसंख्या रहती है (तालिका 10.1)।

मध्यप्रदेश क्षेत्रफल (9. 37%) में देश का दूसरा बड़ा राज्य है, जबकि जनसंख्या (5.88%) में सातवें क्रम पर है। मध्यप्रदेश की जनसंख्या यूनाईटड किंगडम की जनसंख्या (6 करोड़) के बराबर है। देश के 17 राज्य ऐसे हैं वहाँ जनसंख्या की अपेक्षा क्षेत्रफल अधिक है। इनमें से अधिकांश राज्य दक्षिण भारत एवं उत्तर –पूर्वी भारत में स्थित हैं। भारत में जनसंख्या वितरण के कुछ प्रमुख तथ्य अग्रांकित है –

1. देश की एक –चौथाई (25.68%) जनसंख्या दो राज्यों – उत्तरप्रदेश एवं महाराष्ट्र में निवास करती है।
2. देश के चार समस्याग्रस्त राज्यों (BIMARU) –बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं उतरप्रदेश में देश की एक –तिहाई जनसंख्या (35. 6०7०) से अधिक जनसंख्या निवास करती है।
3. देश की कुल जनसंख्या का आधा भाग (48.8%) पाँच राज्यों में है तथा शेष 21 राज्यों में आधी जनसंख्या (51.2%) निवास करती है।
4. सतलज –गंगा का मैदान, मलाबार तट तथा पश्चिम बंगाल सघनतम बसे हुए क्षेत्र हैं।

10.2.1 जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Population Distribution)

भारत मे, जनसंख्या के वितरण पर अनेक कारकों का प्रभाव हैं। देश की दो –तिहाई (72.2 प्रतिशत) जनसंख्या गाँवों में रहती है और आधे से अधिक (58. 4 प्रतिशत) क्रियाशील जनसंख्या कृषि में लगी है। इस कारण कृषि को प्रभावित करने वाली भौतिक दशाएं ही जनसंख्या के वितरण को भी प्रभावित करती हैं। इन दशाओं में समतल भूमि, उपजाऊ मिट्टी, समुचित वर्षा अथवा सिंचाई – जल की उपलब्धता, उपयुक्त तापीय दशाएं मुख्य हैं। इसी कारण नदी –निक्षेपित और

समुद्रतटीय उपजाऊ मैदानों में सघन जनसंख्या रहती है। दूसरी ओर पर्वतीय एवं मरूस्थलीय भागों में धरातलीय एवं जलवायु की प्रतिकूलता के कारण जनसंख्या विरल है। स्वतंत्रता के बाद देश में बड़ी तेजी से आर्थिक विकास हुआ है। यहाँ तक कि कृषि का आधुनिकीकरण किया गया है जिसे हरितक्रान्ति के नाम से जाना जाता है।

तालिका– 10.1 : भारत में राज्यवार जनसख्या एवं क्षेत्रफल, 2001

क्र. सं.	राज्य	जनसंख्या		क्षेत्र	घनत्व (प्रति	% वृद्धि दर
		(हज़ार में)	(%)	(%)	वर्ग कि.मी.)	(1991–2001)
1	उत्तरप्रदेश	16,60,53	16.17	7.16	689	25.80
2	महाराष्ट्र	9,67,52	9.42	9.36	314	22.57
3	बिहार	8,28,79	8.07	2.86	880	28.43
4	पश्चिम बंगाल	8,02,21	7.81	2.70	904	17.84
5	आंध्र प्रदेश	7,57,28	7.37	8.37	275	13.86
6	तमिलनाडु	6,21,11	6.05	3.95	478	11.19
7	मध्य प्रदेश	6,03,85	5.88	9.37	196	24.34
8	राजस्थान	5,64,73	5.50	10.41	165	28.33
9	कर्नाटक	5,27,34	5.14	5.83	275	17.25
10	गुजरात	5,05,97	4.93	5.96	258	22.48
11	उड़ीसा	3,67,07	3.57	4.74	236	15.94
12	केरल	3,18,39	3.10	1.18	819	9.42
13	झारखंड	2,69,09	2.62	2.42	338	23.19
14	असम	2,66,38	2.59	2.39	340	18.85
15	पंजाब	2,42,89	2.37	1.53	482	19.76
16	हरियाणा	2,10,83	2.05	1.34	477	28.06
17	छत्तीसगढ़	2,07,96	0.03	4.11	154	18.06
18	जम्मू–कश्मीर	1,00,70	0.98	6.76	99	29.04
19	उत्तराखंड	84,80	0.59	1.63	159	19.20
20	हिमाचल प्रदेश	60,77	0.59	1.69	109	17.53
21	त्रिपुरा	60,77	0.31	1.69	109	17.53
22	मणिपुर	23,89	0.23	0.32	304	15.74
23	मेघालय	23,06	0.22	0.68	107	30.02
24	नागालैंड	19,89	0.19	0.68	103	29.94
25	गोवा	13,44	0.13	0.50	120	64.41
26	अरुणाचल प्रदेश	10,91	0.11	0.11	363	14.89

27	मिजोरम	8,91	0.09	2.55	13	26.21
28	सिक्किम	5,40	0.05	0.64	42	29.18
केंद्र शक्ति प्रदेश						
1	अण्डमान–निकोबार	3,56	0.03	0.25	43	26.94
2	चंडीगढ़	9,01	0.09	अल्प	7,903	40.33
3	दादर नगर हवेली	2,20	0.02	0.01	449	59.2
4	दमन एवं दीव	1,58	0.02	अल्प	1.411	55.59
5	दिल्ली	13,783	1.34	0.05	9,283	46.31
6	लक्षदीप	61	0.01	अल्प	1,894	17.19
7	पण्डुचेरी	9,74	0.09	0.01	2,029	20.56
भारत		**1,02,70,15**	**100.00**	**100.00**	**324**	**21.34**

स्रोत : सेंसस आफ इण्डिया 2001 – प्राइमरी सेंसस अबस्ट्रेक्ट

नाम से जाना जाता है।इससे कम अनुकूल क्षेत्रों में भी खेती का विकास सम्भव हुआ इसका भी प्रभाव जनसंख्या के वितरण पर पडा है। औद्योगिक विकास एवं खनिजों एवं इंधनों के उत्खन्न की वृद्धि के परिणामत: खनिज पेटियों का विकास हुआ है। देश के अन्य भागों में भी औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण नगरों एवं महानगरों में जनसंख्या का केन्द्रीकरण बहुत ही तेजी से बढ़ा। इस प्रकार जनसंख्या वितरण को अनेक कारकों ने एक साथ मिलकर प्रभावित किया है। इन्हें तीन समूहों में रखा जाता है : –भौतिक दशाएं; आर्थिक –सामाजिक –सांस्कृतिक विकास तथा जनांककीय कारक।

1. **भौतिक कारक (Physical Factors)**

भौगोलिक कारकों में धरातल का स्वरूप, अपवाह, जलवायु, मिट्टी तथा स्थानिक सम्बन्ध प्रमुख हैं।

(i) **धरातल का स्वरूप –** समतल मैदानी धरातल पर कृषि, उद्योग, पीरवहन एवं अन्य आर्थिक क्रियाओं का अत्यधिक विकास होने से मानव निवास के अनुकूल होते हैं। फलरूप जनसंख्या का सर्वाधिक जमाव मिलता है, जबकि उबड़–खाबड़ विषम धरातल युक्त पहाड़ी व पर्वतीय धरातल में कृषि भूमि की कमी, परिवहन में बाधा आदि के कारण कम आबादी मिलती है।

(ii) **जलवायु –** मानव बसाव को प्रभावित करने में जलवायु प्रधान कारक है। अत्यधिक उष्ण, अति आर्द्र एवं अत्यधिक ठण्डी जलवायु वाले क्षेत्र मानव निवास के प्रतिकूल होते हैं अत: भारत के हिमालय प्रदेश एवं मरूस्थल में जनसंख्या कम पायी जाती है। इसके विपरीत उत्तर –मध्य भारत एवं दक्षिणी भारत के पूर्व –पश्चिम तटीय भागों में सघन जनसंख्या मिलती है।

(iii) **जल संसाधन : –** जल मानव की प्राथमिक आवश्यकता है। विभिन्न क्रियाओं के लिए जल की उपलब्धता के आधार पर जनसंख्या वितरण पाया जाता है। वर्षा के आधार पर उत्तरी भारत में पूर्व से पश्चिम की ओर जनसंख्या कम होती जाती है। पश्चिमी राजस्थान में न्यून वर्षा के कारण जनसंख्या कम पायी जाती है। नदियों से जरूर प्राप्ति के कारण ही प्राचीन काल से ही नदी घाटियाँ सघन जनसंख्या का केन्द्र रही है।

(iv) **मिट्टी : –** भूमि उपयोग तथा कृषि की उत्पादकता का सीधा सम्बन्ध मिट्टी से है। गहरी एवं उपजाऊ मिट्टियाँ जनसंख्या को आकर्षित करती है। इसी कारण नाड़ियों के मैदान एवं डेल्टाई भाग तथा समुद्रतटीय सघन बसे हुए हैं। भारत के उत्तरी विशाल मैदान तथा तटवर्ती मैदानों में सघन जनसंख्या होने का एक प्रमुख कारण भी है। दूसरी ओर कम गहरी एवं अनुपजाऊ पर्वतीय एवं पठारी मिट्टियाँ कृषि एवं अन्य आर्थिक क्रियाकलापों के लिए अनुपयुक्त होती हैं। इस कारण ऐसे क्षेत्रों में जनसंख्या सघन नही है। उदाहरण के लिए हिमाचल, उत्तराखण्ड एवं कश्मीर तथा प्रायद्वीपीय पठार का विस्तृत भूभाग।

(v) **स्थानिक सम्बन्ध एवं पारगम्यता: –** किसी क्षेत्र की अन्य क्षेत्रों के तथा पीरवहन मार्गों के संदर्भ में सापेक्षिक स्थिति भी जनसंख्या वितरण को प्रभावित करती है। केन्द्रीय स्थिति एवं परिवहन की दृष्टि से विकसित क्षेत्र सघन होते हैं, जैसे सतलज – गंगा के मैदान में स्थित राज्य सघन हैं। जल यातायात की सुविधा के कारण समुद्रतटीय स्थिति लोगों को आकर्षित करती है। दूसरी ओर दुर्गम एवं पहुँच से दूर स्थित क्षेत्र विरल बसे होते हैं, जैसे –कश्मीर, उत्तरा–पूर्व राज्य एवं अण्डमान द्वीप समूह। जंगली क्षेत्र भी कम पारगम्यता के कारण विरल जनसंख्या के क्षेत्र हैं।

संक्षेप में केवल एक भौतिक कारक से किसी क्षेत्र में जनसंख्या के वितरण निर्धारित नहीं होता बल्कि सभी भौतिक तत्व सम्मिलित रूप से प्रभावी एवं निर्धारक होते हैं।

2. आर्थिक–सामाजिक कारक (Socio - Economic Factors)

विभिन्न आर्थिक कार्यो की भरण –पोषण की क्षमता अलग – अलग होती है जिसका सीधा प्रभाव जनसंख्या के घनत्व पर पड़ता है। आर्थिक कारकों में कृषि –विकास, खनिज उत्खन्न, उद्योगों का विकास, परिवहन के साधनों का विस्तार, तकनीकी विकास जैसे कारक जनसंख्या वितरण को प्रभावित करते हैं।

(i) **कृषि:** –आरंभ में जनसंख्या उन क्षेत्रों में निवास करती थी जहाँ भोजन की आपूर्ति के लिए कृषि की संभावनाएँ अधिक थी । इसी कारण मैदानी भाग सघन बसे हुए हैं। विभिन्न क्षेत्रों में भूमि की उत्पादन–क्षमता अलग–अलग होती है अत: अधिक उपजाऊ एवं कृषि की दृष्टि से विकसित क्षेत्रों में जनसंख्या सघन परन्तु परम्परागत कृषि के क्षेत्रों में विरल होती है। कृषि– उत्पादकता और जनसंख्या के घनत्व का सीधा सम्बन्ध है। अधिक उपजाऊ क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व होता ही है साथ ही इन भागों में कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए उपाय किए जाते है।

(ii) **खनिज एवं उद्योग: –**आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था के आधार खनिज एवं शक्ति के साधन है। साथ ही इन आर्थिक क्रियाओं में कृषि की तुलना में बहुत कम भूमि पर बड़ी जनसंख्या को भोजन देने की क्षमता होती है। इस कारण खनिज क्षेत्रों में भी जनसंख्या सघन होती जाती है। औद्योगिक विकास के साथ खनिजों एवं शक्ति के साधनों का महत्व बढ़ गया। परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में जनसंख्या का जमाव होता गया है। छोटा नागपुर पठार, छत्तीसगढ़, आसाम की घाटी आदि खनिजों की दृष्टि से सम्पन्न हैं अत: ये क्षेत्र सघन होते जा रहे हैं। अधिकांश खनिज क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना के कारण भी जनसंख्या सघन हुई है। झारखंड, पश्चिमी बंगाल एवं उड़ीसा के सीमा पर स्थित औद्योगिक

वृत्त में जनसंख्या का वितरण सघन है जबकि चार –पांच दशक पूर्व यह विरल जनसंख्या के क्षेत्र थे। भारत के सभी औद्योगिक केन्द्र सघन बसे हुए हैं।

(iii) **परिवहन के साधन: –** मैदानी भागों में परिवहन मार्गो का सघन जाल विभिन्न मानवीय क्रियाओं को सुगम बना देते हैं। फलस्वरूप जनसंख्या जमाव बढ़ता जाता है। उत्तर के मैदान में सघन जनसंख्या का एक कारण परिवहन की सुगमता है। थार मरूस्थल, हिमालय प्रदेश एवं पूर्वोत्तर राज्यों में कम जनसंख्या का कारण परिवहन साधनों की अल्पता है।

(iv) **सामाजिक कारक: –** जनसंख्या के वितरण में सामाजिक व सांस्कृतिक कारकों का भी योगदान रहता है। भारत में पर्वतीय एवं आदिवासी क्षेत्रों के व्यक्तियों में अलगाववादी प्रवृत्ति नहीं होने तथा जन्म भूमि के प्रति प्रेम उनको स्थानान्तरित नहीं होने देता। किसी स्थान विशेष पर धार्मिक कारणों से भी जनसंख्या बढ़ती जाती है।

3. जनांककयि कारक

देश में जनसंख्या वितरण पर जन्मदर, मृत्युदर एवं प्रवास का प्रभाव पड़ता है जैसे कि उत्तरी भारत के चार राज्यों – उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश में जन्म दर अधिक (प्रति हजार 30 से अधिक) तथा मृत्यु दर कम (प्रति हजार 11 से कम) के कारण जनसंख्या की तीव्र वृद्धि हो रही है। इसके कारण उत्तर भारतीय राज्य सघन होते जा रहे हैं। अत: ये राज्य सघन से सघनता होते जा रहे हैं। इसी तरह औद्योगिक और –नगरीय क्षेत्रों में इतना तीव्र आकर्षण होता है कि भारी संख्या में प्रवासी उनकी और आकर्षित होते हैं। इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप सभी औद्योगिक और नगरीय क्षेत्रों में सघनतम जनसंख्या का जमाव पाया जाता है। इन क्षेत्रों में तीव्रतर गति से बढ़ता जनसंख्या का घनत्व प्रवास का ही परिणाम होता है।

10.2.2 जनसंख्या के घनत्व का प्रतिरूप (Patterns of Population Density)

धरातल पर जनसंख्या का आकार एवं उस क्षेत्र के क्षेत्रफल का अनुपात जनसंख्या घनत्व कहलाता है। भारत में वर्ष 2001 के अनुसार जनसंख्या घनत्व 324 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी है जबकि वर्ष 1901 में 77 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. था। राज्यानुसार सर्वाधिक घनत्व प. बंगाल का 904 तथा केन्द्रशासित प्रदेश में दिल्ली का 9294 है। सबसे कम घनत्व अरूणाचल प्रदेश राज्य का है जहाँ 13 व्यक्ति– प्रति वर्ग किमी निवास करते हैं। जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से भारत में निम्न चार प्रतिरूप मिलते हैं ।(चित्र 10.1)।

(i) **उच्च घनत्व के क्षेत्र:** – इसमें पं. बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, केरल, राज्य तथा दिल्ली, पाण्डीचेरी, चण्डीगढ़, लक्षद्वीप, दमन व दीव शामिल हैं। यहाँ जनसंख्या घनत्व 500 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। दक्षिणी भारत में कुछ विशेष क्षेत्र जैसे मालाबार तट, तमिलनाडू के उच्च भाग, महानदी, गोदावरी रच कावेरी नदियों के डेल्टा सघन आबाद है, जहाँ जनसंख्या घनत्व 500 व्यक्तियों से अधिक मिलता है। समतल उपजाऊ मैदान, उर्वर कांप मिट्टियाँ, पेयजल व सिचाई की पर्याप्त सुविधा तथा औद्योगिक विकास के कारण उच्च घनत्व पाया जाता है।

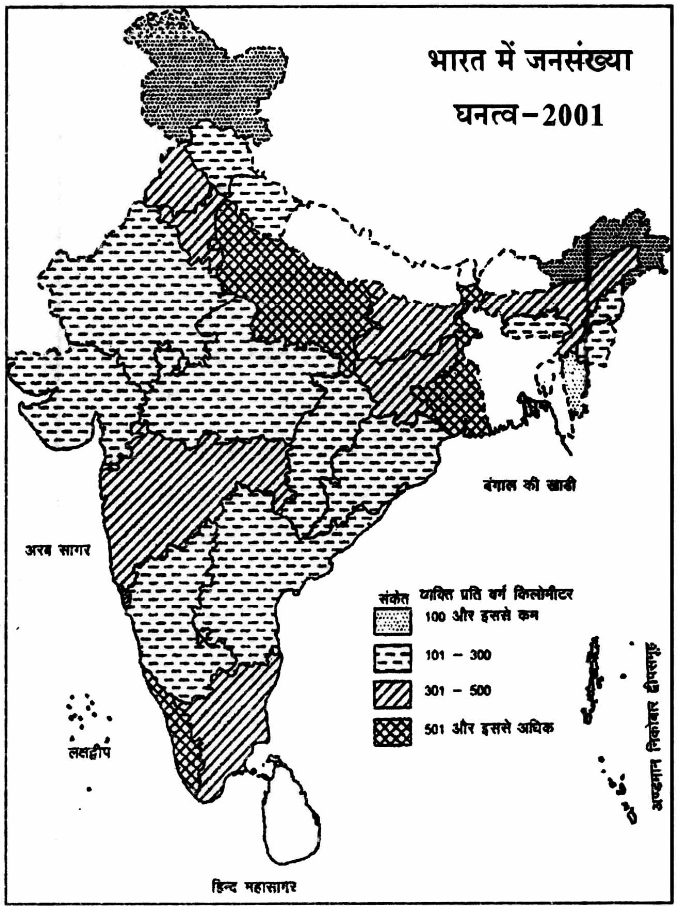

चित्र - 10.1 : भारत में जनसंख्या घनत्व - 2001

(ii)**मध्यम घनत्व के क्षेत्र** – इसमें 300 से 500 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी जनघनत्व वाले भाग शामिल है। इसमें तमिलनाडू गोवा, महाराष्ट्र, झारखण्ड, असम, त्रिपुरा, हरियाणा एवं पंजाब राज्य सम्मिलित हैं! इसके अलावा दादर व नगर हवेली में भी मध्यम घनत्व (449) पाया जाता है। महाराष्ट्र, तमिलनाडू पंजाब व हरियाणा राज्यों में सिचाई सुविधाओं के कारण कृषि का विकास एवं औद्योगिकरण के फलस्वरूप नगरीय जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है।

(iii) **सामान्य घनन्व के क्षेत्र –** इस प्रतिरूप में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल मेघालय, नागालैण्ड, मणिपुर आदि सजते में मिलता है जहाँ प्रति वर्ग किमी 100 से 300, व्यक्ति जनघनत्व मिलता है। हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, मेघालय, नागालैण्ड व मणिपुर राज्यों में धरातलीय विषमता के कारण जनसंख्या का सामान्य वितरण पाया जाता है । राजस्थान, मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ राज्यों मे जलवायु की विभिन्नता के साथ विभिन्न प्रकार का धरातल भी जनसंख्या को नियंत्रित करता है। हरित क्रान्ति के पश्चात् कृषि विकास एवं लघु उद्योग के विकास के कारण जनघनत्व में वृद्धि हुई है।

(iv) **निम्न घनत्व के क्षेत्र –** इस क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व 100 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी से भी कम पाया जाता है। इस वर्ग में जम्मू कश्मीर, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, सिक्किम एवं अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह को शामिल किया जाता हैं। कुछ विशिष्ट प्रदेश जहाँ भौगोलिक प्रतिकूलता के कारण जनसंख्या कम पायी जाती है, इसके अन्तर्गत आते हैं। जैसे थार मरूस्थल एवं कच्छ का रन इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। धरातलीय विषमता के साथ –साथ जलवायु प्रतिकूलता के कारण इन भागों में जनसंख्या घनत्व कम पाया जाता है।

10.3 जनसंख्या की वृद्धि (Population Growth)

मोरलैण्ड के अनुसार 16वीं शताब्दी के अन्त में भारत की जनसंख्या 10 करोड़ थी। सन् 1750 में 13 करोड़ और सन् 1850 में 15 करोड़ का अनुमान है, परन्तु यह अनुमान विश्वसनीय नहीं माने जाते। भारत में प्रथम बार सर 1872 में जनगणना हुई जिसके अनुसार जनसंख्या 25 करोड़ थी। इसके बाद प्रत्येक 10 वर्ष बाद जनगणना की जाती रही। सन् 1901 से 2001 तक जनसंख्या वृद्धि तालिका 10.2 में अंकित है।

तालिका – 10.2: भारत की जनसंख्या एवं वृद्धि दर –1901–2001

वर्ष	जनसंख्या (करोड़)	वृद्धि (करोड़)	%वृद्धि/ ह्रास	%वार्षिक वृद्धि दर	जन्म दर प्रतिहजार	मृत्यु दर प्रति हजार
1901	238.4	——	——			
1911	252.1	1.4	5.75	0.56	49	43
1921	251.3	–0.1	–0.31	–0.03	48	47
1931	279	2.8	11	1.04	46	36
1941	318.7	4.0	14.22	1.33	45	31
1951	361.1	4.2	13.31	1.25	40	27
1961	439.2	7.8	21.51	1.96	42	23
1971	548.2	10.9	24.8	2.22	37	15
1981	683.3	13.5	24.66	2.20	34	12
1991	846.3	16.3	23.45	2.14	31	11
2001	1027.0	18.1	21.34	1.93	26	9

10.3.1 जनसंख्या वृद्धि का इतिहास (History of Population Grants)

भारत में जनसंख्या वृद्धि का इतिहास विविधता युक्त रहा है। 20वीं शदी की सम्पूर्ण जनसंख्या वृद्धि दर के आधार पर इस अवधि को चार भागों में बांटा जा सकता है –

1. स्थिर जनसंख्या की अवधि (1921 के पूर्व),
2. नियमित जनसंख्या वृद्धि की अवधि (1921–1951),
3. तीव्र जनसंख्या वृद्धि की अवधि (1951–1971), एवं
4. वृद्धि दर घटने की अवधि (1971–2001)

(i) **स्थिर जनसंख्या की अवधि (Period of stagmant Population) :** – सन् 1901 से 1921 के मध्य की अवधि में भारत में जनसंख्या वृद्धि अत्यन्त मन्द रही (चित्र 10.2)। सन् 1901 में देश की जनसंख्या 23.8 करोड थी जो सन 1911 में 25.2 करोड़ हो गयी। सन 1911 से 1921 के दशक में जनसंख्या की वृद्धि नकारात्मक थी। इस दौरान महामारी, भीषण अकाल, अन्नाभाव के कारण मृत्यु दर बहुत ऊँची (47 प्रति हजार से अधिक) रही। 1911 से 1921 के दशक में प्लैग एवं इन्फ्लूएंजा के प्रभाव से जनसंख्या बढ़ने के बजाय घट गयी।

(ii) **नियमित बढ़ती जनसंख्या वृद्धि की अवधि (Period of Steady Increasing Population):** – सन् 1921 में भारत की जनसंख्या 25.13 करोड थी, जो बढ़कर सन् 1951 में 36.10 करोड़ हुई अर्थात इन 30 वर्षो की अवधि में 11 करोड़ जनसंख्या बढ़ी। कृषि विकास के साथ–साथ चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के कारण मृत्युदर कम होने और जन्म दर पूर्ववत रहने से जनसंख्या में वृद्धि होती रही। इन तीस वर्षो में 34 लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष की वृद्धि रही जो जनसंख्या की मन्द वृद्धि का द्योतक है।

(iii) **तीव्र जनसंख्या वृद्धि की अवधि (1951–1971) :** –सन् 1951 से 1971 के मध्य देश की जनसंख्या डेढ़ गुनी हो गई। वर्ष 1951 में यह 36.11 करोड़ थी जो सन् 1971 में 54.82 करोड़ हो गई। वास्तव में वर्ष 1951 के बाद जनसंख्या में अप्रत्याषित वृद्धि होने लगी। इस कारण भारतीय जनसंख्या के इतिहास में वर्ष 1951 को महत्वपूर्ण माना जाता है। इस अवधि में औसत वार्षिक वृद्धि दर सन् 1951 में 1.25 प्रतिशत से बढ़ कर सर 1971 में 2.22 प्रतिशत हो गयी।

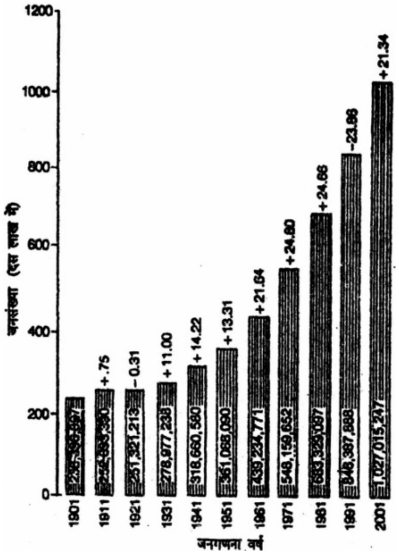

चित्र– 10.2 : भारत की जनसंख्या एवं वृद्धि दर – 1901 –2001

100 वर्षो में सर्वाधिक दशक वृद्धि दर (24.8%) वर्ष 1961–71 के दशक में थी। सन् 1947 में देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनाई गई। कृषि तथा औद्योगिक विकास हुआ। हरित क्रान्ति आई और खाद्य उत्पादन में भारी वृद्धि हुई। स्वास्थ्य सुविधाओं में विस्तार होने से बीमारियों पर नियंत्रण कर लिया गया। पीरवहन के विकास से खाद्यान एवं स्वास्थ्य सुविधाएँ पहुँचाना संभव हुआ परिणाम स्वरूप मृत्यु दर सन् 1951 में 27 प्रति हजार से घटकर सन् 1971 में 15 प्रति

हजार हो गई। इसी अवधि में जन्मदर 40 प्रति हजार से घटकर 37 प्रति हजार हुई । इस प्रकार मृत्यु दर की तुलना में जन्म दर मंद गति से घटी। इसीलिए इसे जन्मता– प्रेरित वृद्धि (Fertility induced growth) कहा जाता हे।

(iv) **वृद्धि दर घटने का काल (1971 के बाद):–** यहाँ उल्लेखनीय है कि सन् 1971 के बाद भी जनसंख्या वृद्धि दर काफी अधिक है परन्तु यह क्रमशः कम हो रही है । जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर सन् 1961–71 में 2.22 प्रतिशत से घटकर सन् 1991–2001 में 1.93 हो गई है। इस प्रकार सन् 1971 के बाद भारत के जनांकिकी के इतिहास में एक नए युग की शुरुआत हुई है। इस काल में जन्म दर सन 1971 में 37 प्रीत हजार से तेजी से घटकर सर 2002 में 25 प्रति हजार और मृत्युदर 15 प्रति हजार से घटकर 81 प्रति हजार हो गई। इस प्रकार नैसर्गिक वृद्धि दर घट कर अब 16.9 प्रति हजार हो गई है। सन् 1975 से जनसंख्या की वृद्धि दर को कम करने के प्रभावी प्रयास किए गए। जन्मदर पर नियंत्रण के लिए देश व्यापी परिवार कल्याण कार्य क्रम प्रारंभ किए गए जिसका सकारात्मक प्रभाव घटते जन्मदर के रूप में सामने आया है। इसके साथ ही विकास से प्रभावित होकर लोगों का छोटे परिवार की ओर झुकाव बढ रहा है। इसके कारण भी जन्मदर घटी है। सन् 1971 में वृद्धि दर 24.80 प्रतिशत थी जो सन् 1981 में थोड़ी कम (24.66%) हुई और सन् 1991 में घटकर 23.85 प्रतिशत' हो गई। सन् 2001 में पुन: घटकर 21.34 प्रतिशत रह गई है। देश के विकास की दृष्टि से यह अनुकूल परिवर्तन है। आगामी वर्षो में वृद्धि दर में और भी कमी होने का अनुमान है।

10.3.2 जनसंख्या वृद्धि का क्षेत्रीय प्रतिरूप (Regional Pattern of population Growth)

वर्ष 1991 से 2001 के दशक में जनसंख्या की औसत वृद्धि दर 21.34 प्रतिशत रही। राज्यानुसार जनसंख्या की औसत वृद्धि दर में बहुत विभिन्नता रही ।सर्वाधिक वृद्धि नागालैण्ड में 64.41 प्रतिशत तथा सबसे कम वृद्धि केरल मे 9.4 प्रतिशत रही ।इस दश वर्षीय वृद्धि को राज्यों के आधार पर पाँच भागों में रखा गया है (चित्र 10.3)

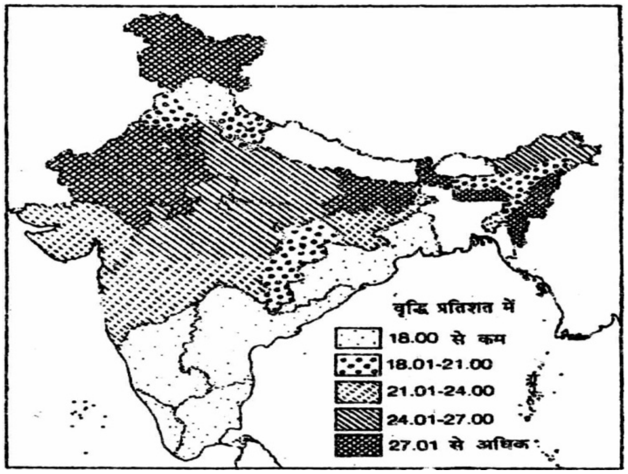

चित्र– 10.3 : भारत में जनसंख्या वृद्धि 1991–2001

(i) **अत्यधिक वृद्धि वाले क्षेत्र** – इसमें वे राज्य सम्मिलित है जिनकी जनसंख्या वृद्धि 27 प्रतिशत से अधिक है। इसमें नागालैण्ड (64.41), सिक्किम (32.98), मणिपुर (30.02), मेघालय (29.94) जम्मू कश्मीर (29.04), मिजोरम (29.18), बिहार (28.49), राजस्थान (28.33) एवं हरियाणा (28.06) राज्य आते हैं। केन्द्र शासित प्रदेश दिल्ली, चण्डीगढ़, दादर नगर हवेली, दमन व दीव आदि में भी जनसंख्या वृद्धि दर अत्यधिक रही है।

(ii) **अधिक वृद्धि वाले क्षेत्र.** – गत दशक में 24 से 27 प्रतिशत जनसंख्या वृद्धि वाले राज्य इसके अन्तर्गत आते हैं। अरूणाचल प्रदेश (26.21), उत्तर प्रदेश (25.8) एवं मध्यप्रदेश (24.34) इसमें आते हैं।

(iii) **मध्यम वृद्धि वाले क्षेत्र –** इसके अन्तर्गत तीन राज्य सम्मिलित किये गये हैं जहाँ वृद्धि दर 21 से 24 प्रतिशत रही है। झारखण्ड (23.19), महाराष्ट्र (22.57) एवं गुजरात (22.48) इसमें आते हैं।

इन राज्यों में राष्ट्रीय औसत (21.34 प्रतिशत) से अधिक जनसंख्या वृद्धि दूर रही हैं

(iv) **सामान्य वृद्धि वाले क्षेत्र** – देश के चार राज्य इसमें सम्मिलित हैं जहाँ जनसंख्या वृद्धि दर 18 से 21 प्रतिशत हुई है। इसमें पंजाब (19.76), उत्तराखण्ड (19.2), असम (18.85) एवं छत्तीसगढ़ (18.06) राज्य सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि दर राष्ट्रीय औसत से कम होने के कारण सामान्य वृद्धि का क्षेत्र है।

(v) **अल्पवृद्धि वाले क्षेत्र** – इस प्रतिरूप में 18 प्रतिशत से कम वृद्धि वाले राज्य शामिल किये गये हैं, जो अधिकतर दक्षिणी भारत के हैं। (चित्र 10.3) प. बंगाल (17.84), कर्नाटक (17.25), तमिलनाडू (11.19), केरल (9.42), आन्ध्र प्रदेश (13.86), उड़ीसा (15.94), गोवा (14.89), त्रिपुरा (15.74) एवं हिमाचल प्रदेश (17.53) राज्य इसके अन्तर्गत आते हैं जहाँ गत दशक में जनसंख्या वृद्धि देश के औसत से बहुत कम रही है।

10.3.3 जनसंख्या वृद्धि के नियामक

(i) **जन्म दर तथा जन्मता :**– वर्ष 1901 से 1911 के दशक में भारत में जन्मदर 49.2 प्रति हजार थी, जो वर्ष 1931– 41 के दशक में घटकर 45.2 प्रति हजार तथा वर्ष 1961–71 में यह दर 41.1 रही। सर 1981 में इस दर में और भी कमी आई। परिवार नियोजन कार्यक्रमों के फलस्वरूप भारत में जन्म दर में काफी कमी आयी। वर्ष 1961 में एक बार पुन : वृद्धि के बाद निरन्तर कमी होती गयी। सर 1991 में जन्मदर 30.9 प्रति हजार थी, जो 2001 में 26 पर आ गयी। इस प्रकार गत 100 वर्षो में जन्म दर लगभग आधी हो गयी हैं। देश में स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रसार, साक्षरता का विकास आदि कारणों से जन्म दर में कमी आयी है। वर्ष 2001 में सर्वाधिक जन्मदर वाला राज्य उत्तरप्रदेश (46.0 प्रति हजार) तथा सबसे कम जन्म दर वाला राज्य गोवा (10 प्रति हजार) रहा है।

(ii) **मृत्यु–दर तथा मर्त्यता :** – भारत में जनसंख्या वृद्धि का सबसे महत्वपूर्ण कारक मृत्यु दर में कमी होना रहा है। गत 100 वर्षो में मृत्यु दर 42.6 से घटकर 8.5 प्रति हजार रह गयी है। इसी साल जन्म दर 26 बच्चे प्रति हजार रहा। इस तरह जन्म और मृत्यु दरों का अन्तर 17 हो गया है। इसे नैसर्गिक वृद्धि (natural increase) कहते हैं। भारत में मृर्त्यता दर कम होने

का प्रमुख कारण विभिन्न बीमारियों पर नियंत्रण होना एवं स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि होना तथा भोजन की उपलब्धता है। ग्रामीण क्षेत्रों में जन्म दर व मृत्यु दर दोनों ही अधिक है। राज्यों की दृष्टि से बिहार, असम, मध्य प्रदेश, उड़ीसा आदि राज्यों में मृत्यु दर अधिक है।

बोध प्रश्न–1

1. भारत में जनसंख्या का सर्वाधिक संकेन्द्रण कहाँ हुआ है?

   ....

   ....

2. भारत का सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य व जनसंख्या कितनी है?

   ....

   ....

3. भारत में सर्वाधिक एवं सब से कम जनसंख्या घनत्व कहाँ है?

   ....

   ....

4. दक्षिणी भारत के कौन से क्षेत्र सघन जनघनत्व वाले है?

   ....

   ....

5. भारत में प्रथम बार जनगणना कब हुई तथा उस समय भारत की जनसंख्या कितनी थी?

   ....

   ....

6. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के क्या कारण है?

   ....

   ....

7. वर्ष 1991 से 2001 के दशक में जनसंख्या की सर्वाधिक वृद्धि एवं न्यूनतम वृद्धि वाले राज्य कौनसी हैं?

   ....

   ....

10.4 जनसंख्या की समस्याएँ (population Problems)

जब किसी क्षेत्र में उपलब्ध कुल संसाधनों की तुलना में जनसंख्या अधिक या अभाव होता है, तो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। उच्च औसत जीवन स्तर, औचित्यपूर्ण संसाधनों का विकास एवं सन्तुलित जनसंख्या संरचना अनुकूलतम जनसंख्या के द्योतक हैं। भारत में निहित संसाधनों की अपेक्षा जनसंख्या की अधिकता है। फलस्वरूप यहाँ जनाधिक्य के कारण निम्न समस्याएँ उत्पन्न हो गयी है।

(i) **जनसंख्या की तीव्र वृद्धि : –** भारत में जनसंख्या सम्बन्धी सबसे बड़ी समस्या उसकी तीव्र वृद्धि है। वर्तमान वृद्धिदर (2.1 प्रतिशत) से प्रत्येक 35 वर्ष में जनसंख्या का भार दो गुना हो जायेगा अर्थात् प्रतिवर्ष दो करोड़ से अधिक व्यक्ति बढ़ जाते हैं। इनके लिए भोजन जुटाने के लिए एक करोड़ एकड़ भूमि अतिरिक्त प्रतिवर्ष चाहिए जो प्राप्त करना संभव नहीं है। इस प्रकार प्रत्येक दशाब्दी के बाद बढ़ी हुई जनसंख्या पर भी वृद्धि हो जाती है जो कि जनसंख्या विस्फोट की समस्या उत्पन्न हो गयी है।

(ii) **बेरोजगारी : –** तीव्र जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ रोजगार के अवसर धीमी गति से बढ़ने के कारण भारत में बेरोजगारी की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गयी है। देश की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, जहाँ मशीनीकरण के कारण बेरोजगारी बढ़ गयी है। भारत की अर्थव्यवस्था के द्वितीयक व तृतीयक व्यवसायों में कुशल–अकुशल एवं शिक्षित–अशिक्षित व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर सीमित है। फलस्वरूप बेरोजगारी एवं निर्धनता तीव्र गति से बढ़ रही है। बढ़ती जनसंख्या का एक अन्य आयाम रोजगार की कमी है। सभी प्रकार के रोजगारों की वृद्धि दर वर्तमान में केवल 1.0 प्रतिशत है। कुल रोजगार लगभग 39.7 करोड़ हैं जबकि क्रियाशील आयु–समूह में लगभग 57 करोड़ से अधिक लोग हैं। पिछली आधी शताब्दी में सकल राष्ट्रीय उत्पादन लगभग 7.6 गुना बढ़ा है, परन्तु प्रति व्यक्ति आय केवल 2.8 गुनी ही बढ पाई। प्रति व्यक्ति आय में मद वृद्धि जनसंख्या की वृद्धि के कारण है। प्रति व्यक्ति मासिक आय 839 रु. है। परिणाम है विस्तृत निर्धनता। (सन् 1999–2000 में) एक –चौथाई से अधिक (26.1 प्रतिशत) जनसंख्या गरीब है। महत्वपूर्ण है कि विभिन्न कार्यक्रमों के कारण गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वालों का कुल जनसंख्या में अनुपात तेजी से घटा है फिर भी 26 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे रह रहे।

तीव्र जनसंख्या वृद्धि का दुष्प्रभाव जनसंख्या की संरचना पर पड़ता है। देश की 37.3 प्रतिशत जनसंख्या किशोर (14 साल से कम उम्र की) है जबकि विश्व की 30 प्रतिशत और विकसित देशों की केवल 18 प्रतिशत जनसंख्या इस आयु –समूह में है। इसके दो प्रमुख प्रतिफल होते हैं – बच्चों के लालन–पालन, स्वास्थ और शिक्षा के प्रबन्ध का बहुत अधिक भार और दूसरे क्रियाशील श्रमशक्ति पर अत्यधिक निर्भरता। वैसे ही भारत बच्चों के विकास के लिए विकसित देशों की तुलना में बहुत कम खर्च कर पाता है तथापि यह व्यय ही उसकी अर्थव्यवस्था के लिए बहुत अधिक है। यहाँ क्रियाशील आयुवर्ग के प्रति 1000 व्यक्ति पर 794 व्यक्ति निर्भर थे। यह बहुत अधिक निर्भरता है।

(iii) **निम्न जीवन स्तर एवं कुपोषण : –** जनाधिक्य के कारण भारत में जहाँ एक ओर रोजगार के अवसर कम हैं तो श्री ओर आश्रित जनसंख्या का अनुपात अधिक होने से शिक्षा, चिकित्सा एवं अन्य सुविधाओं पर अधिक भार पड़ रहा है। पोषण युक्त सन्तुलित आहार की कमी से कुपोषण की समस्या देश के लिए गंभीर चुनौती है। आर्थिक सुविधाओं की कमी व अज्ञानता के कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं बनी हुई है।

(iv) **आवासीय समस्याएँ –** भारत मे तीव्र गीत से बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए स्वच्छ व उपयुक्त आवास की बहुत बड़ी समस्या बन गयी है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी एवं बेरोजगारी के कारण आवास बनाने में असमर्थ होते हैं।! ग्रामीण लोग रोजगार के लिए शहरों की ओर प्रयास कर रहे और शहर में उच्च किराया व महंगी भूमि के कारण कच्ची बत्तियां बनाकर रहते हैं।

परिणाम स्वरूप मलिन बस्तियाँ देश के नगरीय पर्यावरण की गंभीर समस्या बन गयी है। रोजगार की तलाश में ग्रामीणों का जनसमूह बेतहाशा नगरों की ओर भागता है। शायद इस आशा में कि नगरों में रोजगार के अच्छे अवसर तथा अच्छी जिन्दगी मिलेगी। परन्तु अधिकांश प्रवासियों को तंग मलिन बस्तियों में रहने के लिए मजबूर होना पड़ता है। सन् 2001 में देश में 4 करोड़ लोग मलिन बस्तियों में रह रहे थे। मलिन बस्तियों के विस्फोट का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि देश की राजधानी दिल्ली के चारों और 700 से अधिक झुग्गी झोंपड़ियां है। इन बस्तियों में मूलभूत सुविधाएं तक नही होती हैं। तेजी से बढ़ती जनसंख्या को आवास मिलन एक विकट समस्या है। देश के रेलवे स्टेशन इसका जीते –जागते चित्र है।

(v) **कृषि भूमि पर बढता भार एवं खादयानों की कमी : –** भारत में कृषि भूमि पर जनसंख्या भार बढ़ता जा रहा है। गत 50 वर्षो में भारत की जनसंख्या में इतनी वृद्धि हुई है कि अब प्रति व्यक्ति कृषि भूमि पहले की तुलना में आधी रह गमी है अर्थात। पहले की तुलना में अब कृषि भूमि को अधिक मनुष्यों का भरण पोषण करना पर रहा है। जनसंख्या के दबाव का सही चित्र ग्रामीण जनसंख्या का कृषित भूमि पर दबाव के माध्यम से देखा जा सकता है। सर 2001 में भारत में शुद्ध कृषित भूमि के प्रति वर्ग किमी 519 ग्रामीण व्यक्ति थे अर्थात् प्रति ग्रामीण के पीछे सिर्फ 0. 193 हेक्टर भूमि आती है। देश में खाद्यान्नों का सन् 1999–2000 में प्रति हेक्टर औसत उत्पादन 1704 किलोग्राम है। इस तरह प्रति व्यक्ति उपलब्ध 0.193 हेक्टर से केवल 329 किग्रा खाद्यान्न उत्पन्न हो सकता है।

(vi) **शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ : –** भारत में निरक्षर जनसंख्या अधिक होने के कारण रूढ़िवादिता एवं अन्धविश्वास का बोल बाला है। निरक्षरता का प्रभाव परिवार नियोजन एवं स्वास्थ्य पर पड़ता है। यद्यपि देश में सामाजिक सेवाओं में स्वतंत्रता के बाद आशातीत वृद्धि हुई है। फिर भी इन पर बहुत अधिक दबाव है। जैसे कि प्रति अस्पताल और डिस्पेंसरी के पीछे 26.4 हजार लोग हैं। सबको प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य होते हुए भी बच्चे रहित कुल जनसंख्या का केवल 65.4 प्रतिशत ही साक्षर हो पाया है। आधी से थोड़ी अधिक (54.2%) महिलाएं साक्षर हैं। इसका मतलब है कि देश सम्पूर्ण साक्षरता से अभी काफी दूर है। अल्पायु (0–6 वर्ष) वालों के बड़े होने पर यह समस्या और गम्भीर ही होनी है। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अभी भी (सन् 1999–2000 में) प्राथमिक शिक्षा आयुवर्ग के 5 प्रतिशत और मिडिल शिक्षा आयुवर्ग के 41 प्रतिशत बच्चे –बच्चियाँ स्कूलों में प्रवेश नहीं लिए हैं।

10.5 जनसंख्या नितियाँ (Population Policies)

यह सर्वमान्य सत्य है कि जनसंख्या वृद्धि की तीव्र दर ने मानव जीवन के सामाजिक – आर्थिक विकास के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है। गत चार दशकों से हुए जनसंख्या विस्फोट ने भारत द्वारा प्राप्त आर्थिक विकास को अर्थहीन –सा बना दिया है। फलस्वरूप एक सरल व स्पष्ट जनसंख्या नीति' की आवश्यकता प्रबल हुई। जनसंख्या नीति से तात्पर्य यह है कि व्यक्तियों के स्वास्थ्य, जीवन प्रत्याशा, शिक्षा, संरचना आदि में सुधार लाते हुए जनसंख्या की मात्रा को राष्ट्रीय संसाधनों के अनुकूल नियमित करना है।

जनसंख्या नीति आज विकास कार्यक्रमों का स्वीकार्य अंग बन चुकी है। भारत ही पहला ऐसा देश है, जहाँ परिवार नियोजन के लिए एक जनसंख्या नीति विकसित की थी। आज विश्व के अनेक विकासशील देशों ने जनसंख्या नीति को अपनाया। विभिन्न विद्वानों ने जनसंख्या नीति के निम्न उद्देश्य सीमांकित किये हैं –

(i) जन्म दर पर नियंत्रण प्राप्त करना,

(ii) मृत्यु दर में कमी लाना,

(iii) जनसंख्या बुद्धि का नियोजन

(iv) जनसंख्या के भौगौलिक वितरण में संतुलन स्थापित करना,

(v) जनसंख्या की संरचना में सुधार कर आर्थिक विकास करना।

भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रति जागरूकता का सूत्रपात 1920 में हुआ जब प्रथम परिवार नियोजन क्लिनिक खोला गया। परन्तु प्रथम पंचवर्षीय योजना अवधि (1951–56) में पहली बार जनसंख्या दबाव की ओर नियोजकों का ध्यान गया और जनसंख्या में कमी करने के लिए नीति निर्धारण करने की बात कही गयी। द्वितीय योजना में (1956–61) मैं जन्म दर कम करने के लिए दीर्घकालीन एवं सक्रिय कार्यक्रम बनाने पर बल दिया गया। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना तक जनसंख्या, आर्थिक विकास व सामाजिक परिवर्तन की द्रष्टि से सीमितपरिवार को ही विकास का आधार माना गया। पंचम पंचवर्षीय योजना (1974–79) में परिवार नियोजन को आवश्यक राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप ने स्वीकार कर अप्रैल 1976 में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति बनायी गयी

10.5.1 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 1976

स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्रालय की अनुशंसा पर भारत की संसद ने 16 अप्रैल, 1976 को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की गयी। इस नीति में निम्न उद्देश्यों की अनुशंसा की गयी –

(i) जन्म दर को छठी योजना तक 35 प्रति हजार से 25 प्रति हजार तक लाना।

(ii) जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर को 1985 तक 2.2 प्रतिशत से घटाकर 1.7 करना।

(iii) विवाह की आयु लड़कों की 21 वर्ष एवं लड़कियों की 18 वर्ष की गयी।।

(iv) परिवार नियोजन कार्यक्रम हेतु अधिक धनराशि का आवंटन एवं इसे जन के रूप में विकसित करना।

(v) महिला साक्षरता के विकास एवं शिक्षा प्रणाली में जनसंख्या शिक्षा के समावेश पर। बल दिया गया।

(vi) केन्द्रीय मंत्रीमण्डल द्वारा परिवार नियोजन की प्रगति की वार्षिक समीक्षा करना।

(vii) परिवार नियोजन को अपनाने वाले लोगों को प्रोत्साहन तथा अनुषंगी लाभ प्रदान करना।

(viii) परिवार नियोजन कार्यक्रम में अच्छा कार्य करने वाले राज्यों के लिए राष्ट्रीय सहायता संसाधन से 8 प्रतिशत धनराशि सुरक्षित की गयी।

(ix) ग्रामीणोन्मुखी नवीन बहुआयामी अभिप्रेरक नीति (multi– media motivational stratergy) को विकास किया जाये।

(x) अनिवार्य नसबन्दी विधान बनाने का प्रावधान रखा गया।

आपातकाल (1975–77) के दौरान अनिवार्य बन्ध्याकरण का जनता द्वारा भारी विरोध हुआ। 1977 में नयी सरकार ने परिवार नियोजन को परिवार कल्याण कार्यक्रम नाम दिया। छठी पंचवर्षीय योजना में परिवार कल्याण कार्यक्रम स्वैच्छिक व प्रेरणा प्रधान रखा। 1981 की जनगणना के निष्कर्षो को देखते हुये सरकार ने देश की जनसंख्या नीति पर पुनजविचार करते हुए निम्न उद्देश्य निर्धारित किये–

(i) विशुद्ध प्रजनन दर को 1996 तक 1.67 प्रति स्त्री से 1 प्रति स्त्री तक लाना।

(ii) देश के परिवार की औसत आकार 4.2 बच्चों से घटाकर 2.3 बच्चों तक लाना।

(iii) जनसंख्या वृद्धि दर को घटाकर 1.2 प्रतिशत तक लाना।

(iv) छोटे परिवार के सिद्धान्त को जनता में प्रोत्साहित करना।

(v) स्कूल शिक्षा से उच्च शिक्षा तक जनसंख्या शिक्षा को लागू करना।

(vi) पोष्टिक आहार एवं शिशु पालन को प्राथमिकता।

(vii) ग्रामीण –नगरीय प्रवाह की स्पष्ट व समुचित नीति का निर्धारण।

(viii) जन स्वास्थ्य एवं संचार की व्यापक योजना।

(ix) महिलाओं में मृत्यु क्रम, अस्वस्थता व साताजिक स्तर में सुधार लाना।।

(x) जनसंख्या नियंत्रण में गैर सरकारी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90) काल में 42 प्रतिशत व्यक्तियों को परिवार नियोजन के तरीकों को अपनाने के लिए प्रेरित करने का उद्देश्य रखा गया ताकि जन्म दर को 29.1 प्रति हजार जनसंख्या तक लाया ला सके। इस जनसंख्या नीति के निम्न उद्देश्य थे ।

(i) शिशु मृत्यु दर में कमी लाना एवं जीवन प्रत्याशा में वृद्धि करना।

(ii) जनसंख्या शिक्षा को अधिक से अधिक प्रोत्साहित करना।

(iii) ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना।

(iv) परिवार नियोजन सेवाओं तथा उनकी दक्षता पर विशेष ध्यान देना।

(v) आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों को छोटा परिवार रखने हेतु प्रेरित करना।

भारत में 8वीं व 9वीं पंचवर्षीय योजना काल में देश की जनसंख्या नीति में अनेक संशोधन किये गये। 1990 की जन्म दर 29.9 प्रति हजार को 1997 तक 26 प्रति हजार लाने का मुख्य उद्देश्य रखा गया। इसके अलावा निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये थे –

(i) परिवार कल्याण कार्यक्रमों को एक जन आन्दोलन का रूप देने के लिए प्रचार माध्यमों जैसे – रेडियों. दूरदर्शन, सिनेमा, समाचार पत्र आदि के प्रयोग पर बल।

(ii) राज्यों को केन्द्र द्वारा दी गयी सहायता का 8 प्रतिशत परिवार कल्याण कार्यक्रमों पर व्यय करना।

(iii) माता व शिशुओं क स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों को महत्व देना।

(iv) महिलाओं को औपचारिक एवं अनौपचारिक माध्यमों द्वारा शिक्षा देना।

(v) शिशु मृत्यु दर में कमी करने के कार्यक्रमों को सुदृढ़ करना।

10.5.2 नयी राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 (New National Population Policy 2000)

15 फरवरी, 2000 को भारत सरकार ने नयी जनसंख्या नीति की घोषणा की गयी जिसमें जनसंख्या वृद्धि को स्थिर करना एवं जनकल्याण को मुख्य ध्येय बनाया गया। इस नीति की यह मुख्य विशेषता है कि सरकार पूर्णत : ऐच्छिक परिवार नियोजन के प्रति कटिबद्ध रहेगी तथा जनता को यह छूट प्रदान करेगी कि वे स्वेच्छा से परिवार नियोजन की विधियों को अपनाये। नयी जनसंख्या नीति के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है –

(i) जनसंख्या आकार को 2010 तक 110.7 करोड़ तक स्थिर रखना।

(ii) क्षेत्र विशेष में जनसंख्या नियंत्रण के विशेष कार्यक्रमों का प्रावधान।

(iii) शिशु स्वास्थ्य सेवाओं, पूर्ति तथा संरचना की विभिन्न अपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति।

(iv) गैर सरकारी संस्थाओं तथा ग्राम पंचायतों कीं गर्भ निरोधक दवाइयों रख यंत्रों की बिक्री के प्रोत्साहन में भागीदारी।

(v) मानवीय छाँट (choices) के साथ प्रजनन नियमितता व गर्भ निरोधक सेवाओं एवं परामर्श को सर्वव्यापी बनाने पर बल।

(vi) परिवार कल्याण कार्यक्रम को लोकाविमुख बनाया जाए।

10.5.3 जनसंख्या नीति : एक मूल्यांकन (Population Policy An Evaluation)

भारत को एक सरल, वैज्ञानिक व सुदृढ़ जनसंख्या नीति की आवश्यकता है, परन्तु दुर्भाग्य से भारत सरकार ऐसी किसी नीति को बनाने में आज तक सफल नहीं हो सकी। जनसंख्या को बिना साक्षर बनाये और उनके जीवन स्तर को बिना सुधारे जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना असंभव है जैसा कि बी. आर. सेन ने कहा है," भारत में जनसंख्या समस्या को कभी सही ढंग से समझा ही नहीं गया है।" विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में जनसंख्या वृद्धि को रोकने के जो विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये वे सभी इस मान्यता पर आधारित थे कि यदि गर्भ निरोधकों की पूर्ति और उनके उपयोग की लोकप्रियता को बढ़ावा दिया जाये तो जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित किया जा सकता है। भारत सरकार की यह मान्यता गलत सिद्ध हुई। भारत की जनसंख्या नितियों में यौन अनुपात के निरन्तर घटने, शिशु मर्त्यता की दर ऊँची होना, महिलाओं व बालिकाओं में साक्षरता दर की कमी, महिलाओं के रोजगार व प्रशिक्षण आदि समस्याओं को लेकर सरकार सदैव उदासीन रही है।

भारत की जनसंख्या नीति का एकमात्र उद्देश्य जन्म दर को घटाने तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि देश के सामाजिक, आर्थिक तथा जनाविकसित व्यवस्था को सुधारना भी एक तार्किक आवश्यकता है अत : जनसंख्या वृद्धि को स्थिर करना, स्त्री व पुरुषों के लिए रोजगार: के अवसरों में वृद्धि करना, अर्थव्यवस्था की विविधीकरण करना, यौन अनुपात को सन्तुलित करना, साक्षरता एवं सामाजिक स्तर को ऊँचा करना आदि तथ्यों को ध्यान में रख कर ही एक सम्पूर्ण राष्ट्रीय जनसंख्या नीति बनाने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न– 2

.1 जनसंख्या विस्फोट से क्या अभिप्राय है?

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

2. गाँव से शहरों की ओर प्रवास ने किस समस्या को जन्म दिया है?

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

3. जनसंख्या नीति से तात्पर्य क्या है?

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

4. भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रति जागरूकता का सूत्रपात कब हुआ?

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

.5 भारत में सर्वप्रथम राष्ट्रीय जनसंख्या नीति कब बनायी गयी?

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

.6नयी राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 का मुख्य लक्ष्य क्या है?

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

10.6 ग्रामीण अधिवास प्रतिरूप (Rural Settlement Patterns)

मानव निवास के लिए चाहे झौपड़ी या छप्पर हो या मिट्टी व लकड़ी के घर हो या ईंट व चूने का मकान हो या सीमेन्ट–कंकरीट– लोहा से बनी ईमारत हो, मानव अधिवास कहलाता है। जिन अधिवासों के व्यक्ति कृषि, पशुपालन, शिकार, वनकाटना, खान खोदना, मछली पकडना, वनों से कन्द–मूल–फल एकत्रित करना आदि प्राथमिक क्रियाएं करते हैं, ग्रामीण अधिवास कहलाते हैं। भारत में ग्रामीण अधिवासों के विकास का वर्तमान स्वरूप एक लम्बे कालक्रम का परिणाम है जिनका प्रारम्भ भोजन संग्रह पर निर्भर था।

अधिवासों के प्रतिरूप उनकी आकृति के अनुसार निश्चित होते हैं जो कि घरों और मार्गों की स्थिति क्रम एवं व्यवस्था पर निर्भर करते हैं। ग्रामीण अधिवासों की संरचना स्थानिक भौतिक धरातल, सामाजिक, आर्थिक एवं ऐतिहासिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होती है। इसी कारण मकानों के बीच की दूरी एवं सड्कों का विन्यास का एक रूप बन जाता है अत : प्राकृतिक व सांस्कृतिक तत्वों के प्रभाव के द्वारा विभिन्न गृहों के निर्माण से निर्मित सामान्य स्वरूप को अधिवासों का प्रतिरूप कहा जाता है। भारत में पाये जाने वाले ग्रामीण अधिवासों के प्रतिरूप निम्नानुसार हैं –

(i) **रेखीय प्रतिरूप (Linear Pattern) : –** किसी सड़क, रेलमार्ग, नदी, नहर आदि के किनारे –किनारे बसे हुये मकानों के अधिवास रेखीय प्रतिरूप बनाते हैं (चित्र 10.4)। अथवा नहर

के दोनों किनारों के सहारे रेखा की भाँति मकानों का विस्तार होता है तथा मकानों के द्वार सड़क अथवा नहर की ओर होते हैं। इस प्रकार के अधिवास निम्न गंगा मैदान में नदियों के किनारे, हिमालय क्षेत्र की शिवालिक पहाड़ियों विशेषकर दून घाटी में, उडीसा के सह तटीय मैदान, आन्ध्रप्रदेश के पूर्वी भाग एवं तमिलनाडू के रामनाथपुरम, मदुराई एवं थंजवुर जिलों में मिलते हैं।

(ii) **वृत्ताकार प्रतिरूप (Circular Pattern)** किसी झील, तालाब, वटवृक्ष या सार्वजनिक स्थल के चारों ओर आवास के निर्माण से बने अप्रिवास वृत्ताकार या गोलाकार प्रतिरूप के होते हैं। प्राचीन समय में सुरक्षा की दृष्टि से ग्राम मुखिया के मकान के चारों ओर अन्य लोगों के आवास बना लेने से इस प्रतिरूप का विकास हु आ। इस प्रकार के अधिवास मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एवं ट्रांसयमुना क्षेत्र में पाये जाते हैं। राजस्थान में अनेक गांवों में गढ़ (किला) के चारों ओर मकानों के निर्माण करने से वृत्ताकार प्रतिरूपों का विकास हु आ है।

(iii) **चौकपट्टी प्रतिरूप (Checker Board Pattern). –** मैदानी प्रदेशों में दो मार्गों के क्रासिंग पर अधिवास बसने लगते हैं. तो उस अधिवास की गलिया मार्गों के साथ मेल खाती हु ई आयताकार प्रतिरूप में परस्पर समानान्तर होती हैं। इसमें सड़कें एक दूसरे को समकोण पर काटती है। इस प्रकार का प्रतिरूप चौकपट्टी कहलाता है। उत्तरी भारत में गंगा–यमुना दोआब के ऊपरी भाग में ऐसे गाँव पाये जाते है।

(iv) **आयताकार प्रतिरूप (Rectangular Pattern) –** भारत में अधिकांश गाँव आयताकार प्रतिरूप में पाये जाते हैं। इसका कारण खेतों का आकार प्राय: आयताकार होने से बैलगाड़ी या पैदल मार्ग इनका अनुसरण करते हैं। ऐसे अधिवासों में मार्ग सीधे उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम होते हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार एवं मध्यप्रदेश में मैदानी भागों में आयताकार प्रतिरूप के अधिवास पाये जाते हैं।

(v) **अरीय त्रिज्या प्रतिरूप (Radial Pattern) : –** किसी चबूतरे का वट वृक्ष के चारों ओर कई ओर से मार्ग आकर मिलने से इस प्रकार का प्रतिरूप बनता है। (चित्र 10.4) भारत के गांवों का यह सामान्य प्रतिरूप है। यहाँ –चौराहों, त्रिज्याकार मार्गो पर मकान बनते हु ये चले जाते हैं जिससे मकानों के सामने से मार्ग जाते है, और पीठ की ओर भी रास्ते हो सकते हैं। इस प्रकार के गाँव के मार्ग सीधे ही दूसरे गांवों से मिले होते हैं। ऊपरी गंगा मैदान, तमिलनाडू बिहार, मध्यप्रदेश, पंजाब एवं राजस्थान में इस प्रकार का प्रतिरूप लगभग सभी भागों में मिलते हैं।

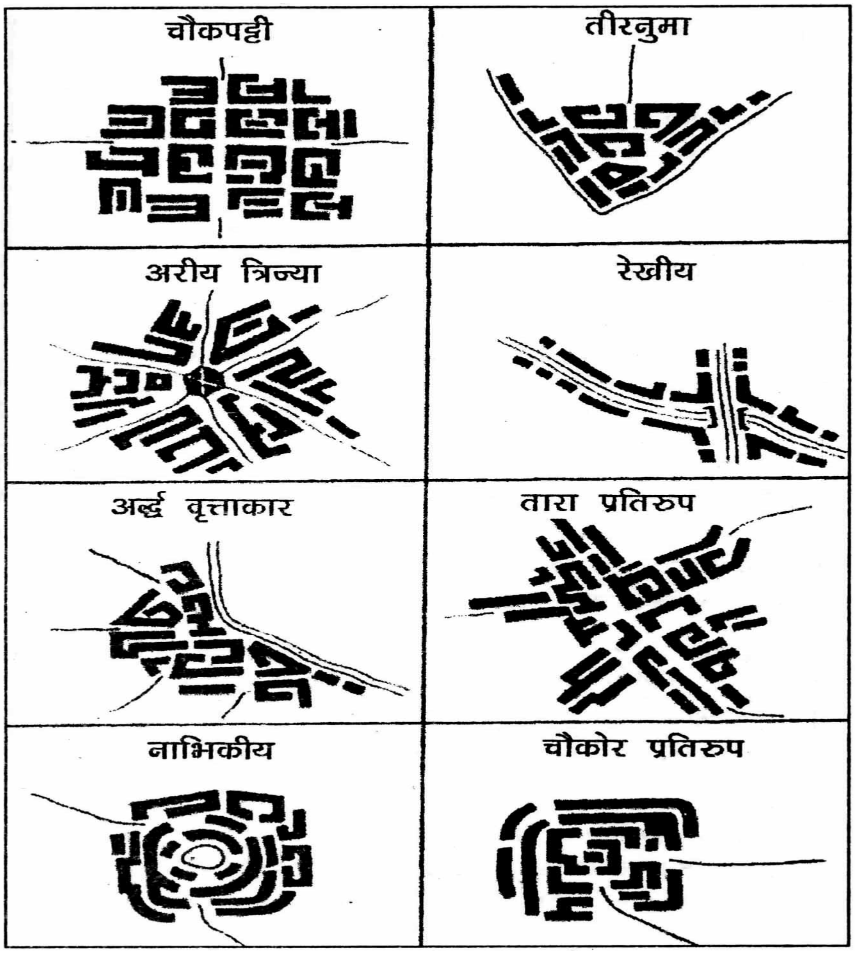

चित्र – 10.4 : भारत में ग्रामीण अधिकवास प्रतिरूप

(vi) **त्रिभुजाकार प्रतिरूप (Triangular Pattern) –** जब कोई सड़क या नदी या नहर दूसरी सड़क या नदी या नहर से आकर मिलती हैं तो दोनों के किनारे आवास बनने से त्रिभुज की दो भुजायें बन जाती है और त्रिभुज के आधार की तरफ खुली भूमि पर आवास फैलते जाते हैं। जहाँ पर दो नदियों, नहरों या यातायात मार्ग एक दूसरे से आकर मिलते हैं और व्यक्ति दोनों के मध्य ही बसते चले जाते हैं। इस प्रकार के त्रिभुजाकार प्रतिरूप के गाँव पंजाब, हरियाणा में मिलते हैं।

(vii) **तीर प्रतिरूप (Arrow Pattern) –** किसी अन्तरीप के सिरे या नदी के नुकीले मोड़ पर इस प्रकार के गाँव बसे होते हैं। भारत में उडीसा के चिल्का झील के किनारे, दक्षिणा भारत में कन्याकुमारी, खम्भात की खाड़ी में गोध, कुंडा व गोपनाथ गाँव, बिहार में बूढ़ी गंडक नदी के मोड़ों पर मझोल, सिवारी, आहों आदि इसी प्रतिरूप के गाँव हैं।

(viii) **नाभिकीय प्रतिरूप (Nebular Pattern) : –** जब गाँव के मध्य कोई सार्वजनिक स्थल या मुखिया का घर हो और वहां से चारों ओर वृत्ताकार रूप में बाहर की ओर मार्ग जाते हों तो वहां मार्ग के दोनों ओर आवास बनते जाते हैं। इस प्रकार का गांव नाभिकीय

प्रतिरूप का होता है। भारत में गंगा–यमुना नदियों के मैदानी भाग में इस प्रकार के प्रतिरूप के अधिवास मिलते है ।

(ix) **तारा प्रतिरूप (Star Pattern) : –** इस प्रकार के गाँव प्रारम्भ में अरीय प्रतिरूप में विकसित होते हैं और बाद में बाहर की ओर जाने वाले मार्गों पर फैलते जाते हैं। इससे तारा प्रतिरूप का विकास होता है (चित्र 10.4) । उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश में इस प्रकार के प्रतिरूप के गाँव पाये जाते हैं।

(x) **अनियमित प्रतिरूप (irregular Pattern) : –** जब किसी गाँव में मार्गों के निर्माण के पूर्व ही अपनी सुविधानुसार स्थान पर मकान बनते जाते हैं तथा मार्गों व गलियों का निर्माण बाद में होता है, तो ऐसे गाँव की आकृति अनियमित रूप में हो जाती है बिहार में इस प्रकार के प्रतिरूप बड़ी संख्या में मिलते हैं।

(xi) **पंखा प्रतिरूप (Fan Pattern) : –** गाँव मे किसी आकर्षण स्थान पर मकान बनते जाते हैं और मकानों की पंक्तियाँ उस आकर्षण स्थान पर आकर मिलने से पंखेनुमा अधिवास का प्रतिरूप बन जाता है। डेल्टाई व पर्वतीय भागों में इस प्रकार के प्रतिरूप मिलते हैं। भारत में गोदावरी, कृष्णा, महानदी के डेल्टा तथा हिमालय के पाद प्रदेश में जहाँ काँप पंखे मिलते हैं, वहाँ इस प्रकार के गाँव पाये जाते हैं।

(xii) **सीडी प्रतिरूप (Terrace Pattern) : –** इस प्रकार के गाँव पर्वतीय भागों में मिलते हैं जहाँ पर्वतीय ढालों पर: सीढ़ीदार खेतों के समानान्तर बस्ती बस जाती है। कई स्तरों पर बने हुये मकानों की पंक्तियाँ सीढ़ियों जैसी होती है। भारत में हिमालय पर्वतीय प्रदेश एवं पश्चिमी घाट के ढालों पर मिलते हैं।

(xiii) **शूस्ट्रिंग प्रतिरूप (Shoe– String Pattern) : –** किसी नदी के बन्ध या समुद्र तटीय कटक पर बसे हुये गाँव जिनमें कटक शिखर पर बनी हुई सड़क के किसी ओर मकान बने होते हैं। ऐसे अधिवास को फ्रिंच व ट्रिवार्था ने शुस्ट्रिंग प्रतिरूप की संज्ञा प्रदान की है।

तालिका – 10.3 : भारत में नगरीकरण (1901–2001)

वर्ष	नगरीय जनसंख्या (करोड़ व्यक्ति)	दशकीय वृद्धि (% में)	कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या %
1901	258.5	–	10.8
1911	259.4	0.35	10.3
1921	28.8	8.22	11.2
1931	334.5	19.14	11.9
1941	441.5	31.97	13.9
1951	624.0	41.38	17.9
1961	789.3	26.41	18.0
1971	1090.9	38.23	19.9
1981	1597.0	46.02	23.2
1991	2171.8	36.19	25.7

2001	2861.1	31.40	27.8

(xiv) **चौकोर प्रतिरूप (Block Pattern) :** – इस प्रकार के गाँव पश्चिमी राजस्थान, हरियाणा व गुजरात मे मिलते हैं। गांव के बाहर चारदीवारी एवं मध्य में खुली आयताकार खाली भूमि होती है। मकान ऊँचे –ऊँचे बने होते हैं, ताकि रेत, चोरी व डाकुओं से सुरक्षा हो सके।

(xv) **मधु –छत्ता प्रतिरूप (Bee–hive Pattern) :** – आदिवासी जनजातियों के लोग गुम्बदनुमा झोंपड़ियाँ बनाते हैं जिनकी आकृति मधु छत्ते जैसी होती हैं। दक्षिणी भारत में टोड़ा जनजातियों द्वारा निर्मित आवास इसी प्रतिरूप के हैं।

10.7 नगरीकरण प्रक्रिया (Process of Urbanisation)

नगरों की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि एवं नगरों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि आधुनिक समय की जनसंख्या की महत्वपूर्ण विशेषता है। नगरीय जनसंख्या एवं उसके अनुपात में वृद्धि होना नगरीयकरण कहलाता है। नगरीयकरण का शाब्दिक अर्थ है नगरीय हो जाना।

ई .ई. बर्गेल के अनुसार – "ग्रामों के नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तित होने की प्रक्रिया को नगरीयकरण कहते हैं।"

बी.एन.घोष ने लिखा है – "नगरीयकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें गाँव कस्बों में और कस्बे नगरों में परिवर्तित होते जाते हैं।"

ट्रिवार्था के शब्दों में – "नगरीयकरण वह चक्रीय प्रक्रिया है जिससे होकर कोई राष्ट्र खेतिहर से औद्योगिक समाज में बदलता है।"

ग्रिफिथ टेलर के अनुसार – "गाँवों से नगरों को जनसंख्या का स्थानान्तरण ही नगरीयकरण कहलाता है।"

के, डेविस के अनुसार – "कुल जनसंख्या में नगरीय बस्तियों में रहने वाली जनसंख्या के अनुपात या इस अनुपात में वृद्धि को नगरीयकरण कहते हैं।"

इस प्रकार उपरोक्त विद्वानों की परिभाषाओं से नगरीयकरण की निम्न विशेषताएं प्रकट होती हैं–

(i) कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या का अधिक अनुपात

(ii) ग्रामों का कस्बों व कस्बों का नगरों में परिवर्तित होना

(iii) नगरों की संख्या व उनके आकार में वृद्धि

(iv) प्राथमिक कार्यो की अपेक्षा द्वितीयक व तृतीयक कार्यो में जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि होना

(v) ग्रामीण जनसंख्या का नगरीय क्षेत्रों की ओ प्रवासित होना

(vi) नगरीय जनसंख्या में ग्रामीण जनसंख्या की अपेक्षा अत्यधिक वृद्धि होना।

चांदना व बोस (1978) के अनुसार भारत में ग्रामों से नगरों की ओर प्रवास के कारण महानगरों की जनसंख्या मे तीव्र गति से वृद्धि हो रही है, जबकि छोटे नगरों की जनसंख्या स्थिर प्राय: है।

10.7.1 भारत में नगरीकरण

भारत में नगरीयकरण का इतिहास बहुत प्राचीन है। यहाँ ईसा से 2500 वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी मे अनेक नगर थे। कृषि का निर्वाहक स्वरूप होना, उद्योगों का स्थानीयकरण व परिवहन का कम विकास तथा ग्रामों से नगरों की ओर स्थानान्तरण के कम होने से प्रारम्भ में नगरीयकरण बहुत

धीमी गति से हुआ। 1901 में देश की 48 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या 20,000 से कम आबादी वाले नगरों में निवास करती थी, जो 1991 में ऐसे नगरों में रहने वाली जनसंख्या 10 प्रतिशत रह गयी अर्थात् स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में नगरीयकरण तीव्र गति से हुआ। 2वीं सदी में भारत में नगरीयकरण की प्रवृत्ति को तीन काल खण्डों में बांटकर अध्ययन किया जा सकता है –

(i) **मन्द नगरीकरण का काल (Slow Urbanisation) : –** सन् 1901 से 1931 के 30 वर्षो के दौरान देश में प्राकृतिक आपदाओं एवं महामारियों के प्रभाव के कारण नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर बहुत धीमी रही। सन् 1901 में नगरीय जनसंख्या 258.5 लाख थी, जो सर 1931 में केवल 334. 5 लाख हो गयी अर्थात् 30 वर्षो में भारत की नगरीय जनसंख्या मे 1.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई (चित्र 10.5)।

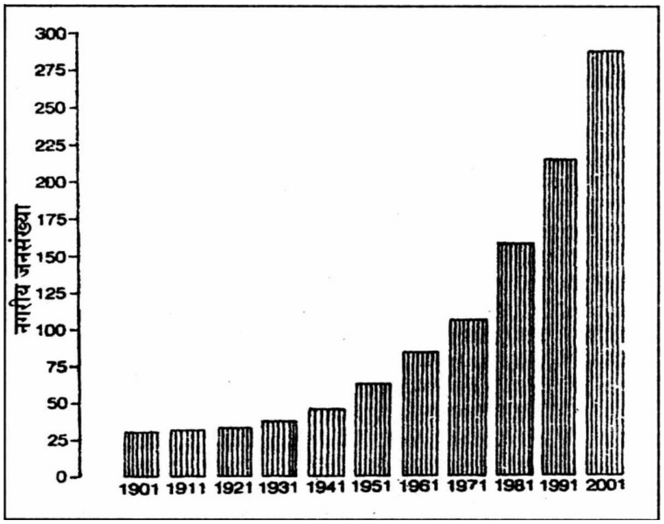

चित्र – 10.5 : भारत में नगरीयकरण – 1901–2001

(ii) **मध्यम नगरीकरण का काल (Moderate Urbanisation Period):** – सन् 1931 में नगरीय जनसंख्या 334.5 लाख से बढ़कर सन् 1961 में 789.3 लाख हो गयी अर्थात् इन 30 वर्षो में नगरीय जनसंख्या 4.5 करोड़ बढ़ी। औद्योगिक विकास के प्रयास, प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा, भारत –पाक विभाजन से विस्थापितों का भारत के नगरों में बसना आदि दृष्टिकोणों से भारत की नगरीय जनसंख्या में डेढ़ गुनी वृद्धि हुई। इस मध्यम वृद्धि का प्रमुख कारण सर 1931 से 1947 तक राजनीतिक अस्थिरता का रहना है।

(iii) **तीव्र नगरीकरण का काल (Rapid Urbanisation Period) : –** सन् 1961 से 2001 तक नगरीय जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई सन् 1961 में 789.3 लाख से बढ़कर 2001 में 2861.1 लाख हो गयी। (तालिका– 10.3) इस प्रकार 1901 से 1961 के 60 वर्षो में नगरीय जनसंख्या 53.1 मिलियन बढ़ी जबकि 1961 से 2001 के 40 वर्षो में 206.6 मिलियन बढ़ गयी। ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर प्रवास, तीव्र औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास, नये –नये नगरों का निर्माण, वर्तमान नगरों के आकार में भारी वृद्धि आदि कारणों से नगरीयकरण तीव्र गति से बढ़ा।

भारत की कुल जनसंख्या का 27.8 प्रतिशत भाग नगरीय जनसंख्या है। देश की नगरीय जनसंख्या का लगभग 52 प्रतिशत भाग केवल पाँच राज्यों महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडू प. बंगाल एवं आन्ध्र प्रदेश में रहता है। नगरीय जनसंख्या के वितरण में अत्यधिक क्षेत्रीय असमानता पायी जाती है। दक्षिणी भारत में नगरीयकरण का स्तर काफी ऊँचा है। नगरीयकरण के आधार पर भारत को निम्न चार वर्ग में रखा जा सकता है –

(i) **उच्च नगरीकृत क्षेत्र (High Urbanised Regions): –** कुल जनसंख्या का 40 प्रतिशत या इससे अधिक नगरीय जनसंख्या वाले क्षेत्र इसमें शामिल किये गये हैं (चित्र 10.6) इस वर्ग में दिल्ली (93%), चण्डीगढ़ (89.8%), पाण्डीचेरी (66.6%) एवं लक्षद्वीप (44.5%) केन्द्र शासित प्रदेश तथा गोवा (49.8%), मिजोरम (49.5%), तमिलनाडू (43.8%) एवं महाराष्ट्र (42.4%) राज्य सम्मिलित किये गये है। इन क्षेत्रों में रोजगार के अवसर, नगरों का विस्तार, गांवों से नगरों की ओर अत्यधिक प्रवास आदि कारणों से उच्च नगरीयकरण पाया जाता है।

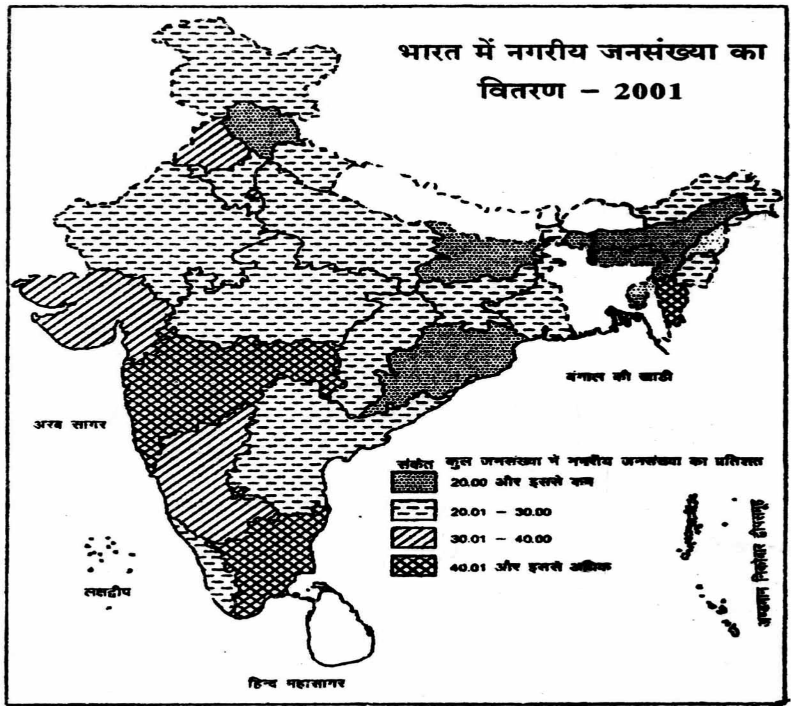

चित्र – 10.6 : भारत में नगरीय जनसंख्या का वितरण – 2001

(ii) **मध्यम नगरीयकृत क्षेत्र (Medium Urbanised Regions) –** कुल नगरीय जनसंख्या का 30 से 40 प्रतिशत भाग वाले राज्यों को इस वर्ग में शामिल किया गया है। इसमें गुजरात (37.4%), कर्नाटक (34%), पंजाब (33.9%), दमन और दीव (36.2%), अण्डमान व निकोबार द्वीप (32.6%) आदि प्रदेश सम्मिलित हैं।

(iii) **निम्न नगरीयकृत क्षेत्र (Low Urbanised Regions) : –** जिन राज्यों में नगरीय जनसंख्या 20 से 30 प्रतिशत पायी जाती है, उन्हें इस वर्ग में रखा गया है। प.बंगाल (28%), केरल (25.9%), जम्मू व कश्मीर (24.9%), मणिपुर (23.8%), राजस्थान

(23.4%), झारखण्ड (22. 2%), मध्य प्रदेश (26.5%), आन्ध्र प्रदेश (27.3%), हरियाणा (28.9%), उत्तराखण्ड (25.7%), अरूणाचल प्रदेश (20.8%) तथा छत्तीसगढ़ (20.1%) राज्य शामिल हैं। भारत के लगभग आधे भाग में नगरीयकरण का स्तर निम्न पाया जाता है (मानचित्र 10.6) ।

(iv) **अति निम्न नगरीयकृत क्षेत्र (Very Low Urbanised Regions) –** कुल जनसंख्या में से 20 प्रतिशत से कम नगरीय जनसंख्या वाले प्रदेश इसके अन्तर्गत आते हैं। मेघालय (19.6%), त्रिपुरा (17.7%), नागालैण्ड (17.2%), उड़ीसा (15%), असम (12.9%), सिक्किम (11.1%), बिहार (10.5%) एवं हिमाचल प्रदेश (9.8%) राज्य इसमें सम्मिलित ।

10.7.3 दसलक्षी नगर तथा उनका वितरण (Million Cities and Their Distribution)

भारत में सन् 1901 में कोलकाता एवं सन् 1911 में मुम्बई दसलक्षी नगर थे। सन् 1951 के पश्चात् 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। सन् 1951 में कोलकाता (46.7 लाख), ग्रेटर मुम्बई (29.7 लाख), चैन्नई (15.4 लाख), दिल्ली (14.4 लाख) तथा हैदराबाद (11.3 लाख) देश के केवल 5 महानगर ऐसे थे जिनकी जनसंख्या दस लाख से अधिक थी। सन् 1961 की जनगणना में दसलखी नगरों की संख्या बढ़कर 7 हो गयी। इस श्रेणी में दो महानगर बंगलौर एवं अहमदाबाद और जुड़ गये। सन् 1971 की जनगणना में इन महानगरों की संख्या बढ़कर 9 हो गयी। कानपुर तथा पुणे नगर इस श्रेणी में शामिल हो गये। सन् 1981 में लखनऊ, नागपुर एवं जयपुर महानगर भी इसमें सम्मिलित हो गये और दसलक्षी नगरों की संख्या 12 हो गयी। इसमें कोलकाता (91.94 लाख) प्रथम स्थान पर तथा लखनऊ (10. 07 लाख) 12वें स्थान पर था।

सन् 1991 की जनगणना में भारत में दसलक्षी नगरों की संख्या बढ़कर 23 हो गयी। इसमें सूरत (15.17 लाख), कोचीन (11.39 लाख), कोयम्बटूर (11.3 लाख), बडोदरा (11.15 लाख), इन्दौर (11.04 लाख), पटना (10.98 लाख), मदुरै (10.93 लाख), भोपाल (10.63 लाख), विशाखापटनम (10.52 लाख), वाराणसी (10.26 लाख) और लुधियाना (10.12 लाख)' नगर इस श्रेणी में शामिल हो गये। सन् 1991 में ग्रेटर मुम्बई (125,7 लाख) प्रथम स्थान पर आ गया और कोलकाता (109 लाख) खिसककर दूसरे स्थान पर आ गया।

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश के दसलक्षी नगरों की संख्या 35 हो गयी। आगरा, मेरठ, नासिक. जमशेदपुर, जबलपुर, आसनसोल, धनबाद, फरीदाबाद, इलाहबाद, विजयवाड़ा, अमृतसर, राजकोट आदि महानगर इस श्रेणी में शामिल हो गये। दसलक्षी नगरों में देश की कुल नगरीय जनसंख्या का 37 प्रतिशत भाग निवास करता है। इन नगरों की सर्वाधिक संख्या उत्तर प्रदेश राज्य में है ।

10.7.4 नगरीकरण से उत्पन्न समस्याएं (Problems due to Urabanisation)

भारत जैसे विकासशील देश में नगरीयकरण में तीव्रता से वृद्धि हो रही है। आधुनिक सुख सुविधाओं एवं रोजगार की दृष्टि से व्यक्ति नगरों के केन्द्र में आकर रहना चाहते हैं जिससे केन्द्र में व्यावसायिक प्रतिष्ठान विकसित होकर आवासीय क्षेत्रों को बाहर की ओर स्थानान्तरित कर देते

हैं। नगरीय सीमाओं में वृद्धि के बावजूद हृदय स्थल (core) कमजोर होता जाता है तथा नगरीय जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि से निम्न समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं –

(i) **आवासीय समस्याएं : –** नगरों की जनसंख्या वृद्धि से आवासीय स्थलों की कमी होती जा रही है। औद्योगिक नगरों की स्थिति सबसे अधिक भयावह हो गयी है जहां ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले मजदूरों के कारण गन्दी बस्तियों का तेजी से विकास हो रहा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार मुम्बई महानगर के 10 प्रतिशत लोग गन्दी बस्तियों में रहते हैं। दिल्ली, कोलकाता, बंगलोर, कानपुर, जयपुर आदि महानगरों में गन्दी बस्तियां जहां तहां उभर आयी है जिनमें आवश्यक सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं हो रही।

(ii) **नगरीय सुविधाओं में कमी : –** नगरों के जनसंख्या घनत्व में वृद्धि के कारण आवश्यक सुविधाएं (जल, आवागमन, विद्युत, शौचालय आदि) कम पड़ने लगती है। वर्तमान में भारत के नगरों में पेयजल की गंभीर समस्या है। नदियों के किनारे वाले नगरों का अपशिष्ट नदियों में मिलने के साथ प्रदूषित हो रहा है तथा रोग फैलने की आशंका बनी रहती है। नगरों के आकार में वृद्धि होने से यातायात बाधित होता है और दुर्घटनाएँ बढ़ती जा रही है। अत्यधिक उपभोग से विद्युत संकट बना रहता है। बड़े नगरों में व्यक्तियों को स्नानागार व पृथक शौचालय की सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं।

(iii) **प्रदूषण सम्बन्धी समस्याएँ : –** कारखानों की चिमनियों से उगलता धुआं, परिवहन के साधनों से निकलती विषैली गैसें, औद्योगिक एवं घरेलू अपशिष्ट आदि कारणों से नगरीय क्षेत्रों में प्रदूषण की भीषण समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, पेड पौधों की कमी एवं भूमि के अभाव में विभिन्न प्रकार के प्रदूषण में योगदान दिया है। वायु प्रदूषण जल प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण में कई गुना वृद्धि हो रही हैं। प्रसिद्ध पर्यावरणविद् आशीष कोठारी के अनुसार दिल्ली में वायु प्रदूषण गत दशक में 75 प्रतिशत बढ़ गया है। उत्तर भारत की प्रमुख नदियों गंगा व यमुना का बल पीने योग्य नहीं रहा है।

(iv) **स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी समस्याएँ : –** नगरीय क्षेत्रों में बढ़ती जनसंख्या, प्रदूषण में वृद्धि, नगरीय कुडा–करकट एवं गन्दगी के कारण रोगों की आवृति बढ़ रही है। जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में चिकित्सा सुविधाएं कम पड़ रही है। फलस्वरूप महंगी चिकित्सा आम व्यक्ति के पहुँच के बाहर हो जाती है।

(v) **दैनिक उपभोग की वस्तुओं का अभाव –** नगरीय केन्द्रों को प्रतिदिन उपभोग में आने वाली सब्जी, फल, दुग्ध, खाद्यान्न आदि समीपवर्ती ग्रामीण क्षेत्र से आपूर्ति होती है। नगरीय जनसंख्या मे वृद्धि होने से इन पदार्थों की माँग अधिक व पूर्ति कम होती जा रही है। फलस्वरूप दैनिक उपभोग की ये वस्तुएं अत्यधिक महंगी और आम व्यक्ति से दूर होती जा रही हैं।

(vi) **नगरीय अपशिष्ट पदार्थों की समस्या :** – नगरों में औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं घरेलू कार्यो में भारी मात्रा में गन्दा जल, कूड़ा करकट, मल–मूत्र आदि के निस्तारण की नियोजित व्यवस्था नहीं होने से अनेक समस्याओं का कारण बन गये है। प्रतिदिन अरबों टन कचरा व मल– मूत्र नगरों के जनस्वास्थ्य एवं सौन्दर्यकरण में तो बाधक हैं ही, परन्तु प्रदूषण में भी वृद्धि कर रहे हैं। इससे नगरीय क्षेत्रों में अनेक बीमारियाँ जन्म ले लेती हैं।

बोध प्रश्न– 3

1. ग्रामीण अधिवास से क्या अभिप्राय है?

………

………

2. तीर प्रतिरूप के अधिवासों का विकास कहाँ होता है?

………

………

3. पर्वतीय भागों में ग्रामीण अधिवास किस प्रतिरूप के होते है?

………

………

4. नगरीयकरण को परिभाषित कीजिये ।

………

………

5. भारत में किस अवधि में नगरीयकरण तीव्र गति से हुआ?

………

………

6. नगरीयकरण से कौनसी समस्याएं उत्पन्न हो गयी है?

………

………

7. 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में नगरीय जनसंख्या कितनी है?

………

……

10.8 सारांश (Summary)

किसी भी देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिए जनसंख्या वितरण, घनत्व, वृद्धि, अधिवास एवं समस्याओं का अध्ययन महत्वपूर्ण होता है। सन 2001 की जनगणना के अनुसार देश की जनसंख्या 102.7 करोड़ है । जनसंख्या की सर्वाधिक सघनता (4 प्रतिशत) उत्तरी मैदान में मिलती है जबकि पूर्वोत्तर पर्वतीय भाग, थार मरूस्थल एवं प्रायद्वीपीय वृष्टि छाया प्रदेश में जनसंख्या कम पायी जाती हैं । जनसंख्या के असमान वितरण में धरातल, जलवायु, जलसंसाधन, खनिज संसाधन, परिवहन के साधन, कृषि उत्पादकता, औद्योगिकरण एवं राजनीतिक कारकों का प्रभाव पड़ता है ।

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। सर्वाधिक घनत्व प. बंगाल में 9०4 तथा न्यूनतम अरूणाचल प्रदेश में 13 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी है। सर 1901 में भारत की जनसंख्या 23.83 करोड़ थी, जो सन् 1921 तक 25.13 करोड़ तक ही पहुंची अर्थात् महामारियों एवं भीषण अकाल के कारण जनसंख्या वृद्धि दर अत्यन्त मन्द रही।

सन् 1921 से 1951 की 30 वर्षीय अवधि में जनसंख्या 36.10 करोड़ तक एवं सन् 2001 तक के 50 वर्षो में 102.7 करोड़ हो गयी। गत 50 वर्षो में जनसंख्या में तीव्र गीत से वृद्धि हुई। पूर्वोत्तर राज्यों, जम्मू कश्मीर, बिहार, राजस्थान एवं हरियाणा में जनसंख्या वृद्धि उच्च दर से (27 प्रतिशत से अधिक), उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश एवं अरूणाचल प्रदेश में मध्यम (24 से 27 प्रतिशत) वृद्धि एवं दक्षिणी भारत के अधिकांश राज्यों कर्नाटक, तमिलनाडू केरल, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, गोआ तथा त्रिपुरा व हिमाचल प्रदेश में अल्प वृद्धि हुई है।

भारत में जनाधिक्य के कारण जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि निम्न जीवन स्तर, कुपोषण, बेरोजगारी, कृषि पर बढ़ता भार, खाद्यानों की कमी, आवास की समस्या, शिक्षा व स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में जनसंख्या नीतियों एवं कार्ययोजनाओं पर कार्य करते हुए परिवार नियोजन पर बल दिया जा रहा है ताकि बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण किया जा सके। इस संदर्भ में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 1976 एवं जनसंख्या नीति 2000 एक सराहनीय कदम है।

भारत में ग्रामीण अधिवासों का विकास एक लम्बे इतिहास का परिणाम है। यहाँ रेखीय, चौकपट्टी, आयताकार, त्रिभुजाकार, तीरनुमा, तारा, नाभिकीय, अरीयत्रिज्या, सीढ़ीनुमा, चौकोर, मधु छत्ता आदि प्रतिरूपों में ग्रामीण अधिवास मिलते हैं। देश में सन 1901 से 1931 तक मन्द गति से, सन 1931 से 1961 तक मध्यम गति से और सन 1961 से 2001 तक तीव्र गति से नगरीकरण की प्रक्रिया रही। फलस्वरूप तीव्र नगरीयकरण के कारण आवासीय समस्या, नगरीय सुविधाओं में कमी, प्रदूषण, अपशिष्ट पदार्थों का निस्तारण, स्वास्थ्य व चिकित्सा सुविधाओं में कमी आदि समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं।

10.9 शब्दावली (Glossary)

- **केन्द्रीकरण :** किसी स्थान विशेष पर अधिक जमाव होना।
- **घनत्व :** प्रतिवर्ग इकाई क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या।
- **महामारी :** किसी रोग के विस्तृत क्षेत्र में प्रभाव से अकाल मृत्यु एवं मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ना।
- **जन्मदर :** एक नियत समयावधि में प्रति 1000 व्यक्तियों पर जन्म लेने वाले बच्चों की संख्या।
- **मृत्युदर :** एक नियत समयावधि में प्रति 1000 व्यक्तियों पर मृत होने वाले व्यक्तियों की संख्या।
- **कुपोषण :** शरीर को आवश्यक न्यूनतम कैलोरी प्राप्त नहीं होना।
- **जनसंख्या विस्फोट :** जनसंख्या में भयावह वृद्धि होना।
- **जनसंख्या नीति :** जनसंख्या को राष्ट्रीय संसाधनों के अनुकूल नियमित करने की योजना।
- **परिवार नियोजन :** जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए छोटे परिवार की संकल्पना।
- **जीवन प्रत्याशा :** पूर्ण रूप से स्वस्थ जीवन जीने की क्षमता को बनाये रखना।
- **अधिवास प्रतिरूप :** धरातल पर बसे अधिवास में मकानों की स्थिति से बना स्वरूप।
- **प्रवास :** जनसंख्या का एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण होना।

10.10 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Book)

1. सुरेश कुमार बंसल : **भारत का वृहद भूगोल,** मिनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 20081
2. चौहान एवं प्रसाद : **भारत का वृहद भूगोल**, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2005
3. अलका गौतम : **भारत का भूगोल**, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ, 2005
4. श्रीकमल शर्मा (सम्पा.) : **भारत का भूगोल**, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 2004.
5. Ranjit Tirtha : **Geography of India**, Rawat Publication, New Delhi, 2005

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न– 1

1. उत्तर के मैदानी भाग में।
2. उत्तर प्रदेश, 16.6 करोड़।
3. सर्वाधिक घनत्व प. बंगाल का (1904) और न्यूनतम अरूणाचल प्रदेश का (13)
4. मालाबार तट, तमिलनाडु के उच्च भाग, महानदी, गोदावरी व कावेरी के डेल्टाई प्रदेश
5. 1872 में ,उस समय जनसंख्या 25 करोड़ थी।
6. मृत्यु दर में कमी, महामारियों पर नियंत्रण, कृषि व औद्योगिक विकास से जीविकोपार्जन के साधनों में वृद्धि, यातायात के साधनों का विकास एवं आवश्यक सेवाओं में सुधार के कारण।
7. सर्वाधिक वृद्धि नागालैण्ड में (64.41 प्रतिशत) व न्यूनतम केरल में (9.4 प्रतिशत)।

बोध प्रश्न– 2

1. जनसंख्या में भयावह वृद्धि को जनसंख्या विस्फोट की संज्ञा दी है।
2. गन्दी बस्तियों की समस्या
3. जनसंख्या की मात्रा को राष्ट्रीय संसाधनों के अनुकूल करने की योजना
4. 1920 में जब परिवार नियोजन क्लिनिक खोला गया
5. 16 अप्रैल, 1976 में।
6. जनसंख्या वृद्धि को स्थिर करना एवं जनकल्याण

बोध प्रश्न– 3

1. जिन अधिवासों के अधिकांश व्यक्ति प्राथमिक व्यवसाय में संलग्न हो, ग्रामीण अधिवास कहलाते हैं।
2. किसी अन्तरीप के सिरे या नदी के नुकीले मोड़ पर।
3. सीढ़ीनुमा प्रतिरूप के।
4. नगरीय जनसंख्या एवं उसके अनुपात में वृद्धि होना नगरीयकरण कहलाता है।
5. 1961 से 2001 तक
6. नगरीयकरण से गन्दी बस्तियों का विकास, प्रदूषण, नगरीय सुविधाओं में कमी, अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण की समस्या एवं स्वास्थ्य व शिक्षा सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न हो गयी है।

7. 27.8 प्रतिशत।

10.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत में असमान जनसंख्या के वितरण के कारणों कीं समीक्षा करते हुए जनसंख्या घनत्व के प्रतिरूप को समझाइये।
2. भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृति का विवेचन कीजिये।
3. भारत में जनसंख्या समस्याओं का विवेचन कीजिये।
4. जनसंख्या नीति से क्या तात्पर्य है? भारत में जनसंख्या नीतियों का मूल्यांकन कीजिये।
5. ग्रामीण अधिवासों के विभिन्न प्रतिरूपों की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
6. भारत में नगरीयकरण की प्रकृति की विवेचना करते हुए इसके क्षेत्रीय प्रतिरूप को समझाइये।
7. भारत में गारीयकरण के विकास का वर्णन करते हुए इससे उत्पन्न समस्याओं का विवेचन कीजिए।
8. भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अपनायी गयी जनसंख्या नीति का उल्लेख करते हुए इनकी समीक्षा कीजिये।

इकाई 11: कृषि (Agriculture)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 भारत में भूमि उपयोग
11.2.1 वन
11.2.2 निरा कृषित भूमि
11.2.3 शस्य गहनता
11.3 शस्य प्रतिरूप
11.3.1 गेहूँ
11.3.2 चावल
11.3.3 गन्ना
11.3.4 कहवा
11.3.5 चाय
11.3.6 तिलहन फसलें
11.4 शस्य संयोजन एवं कृषि प्रदेश
11.5 फसलों का उत्पादन
11.6 हरितक्रान्ति
11.6.1 कृषि नीति
11.6.2 हरितक्रान्ति की उपलब्धियां
11.6.3 हरित क्रांति एवं असमानताएँ
11.7 शुष्क कृषि
11.8 खाद्य सुरक्षा
11.8.1 देश को स्थिति
11.8.2 राज्यवार स्थिति
11.8.3 कुल खाद्यान्नों की स्थिति
11.8.4 मूल्य के रूप में खाद्य की उपलब्धता
11.8.5 खाद्य आधिक्य एवं कमी के क्षेत्र
11.9 सारांश
11.10 शब्दावली
11.11 संदर्भ ग्रन्थ
11.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप भारत की कृषि के सम्बन्ध में समझ सकेंगे : –

- भारत में कृषीय भूमि उपयोग का वितरण,
- शस्य संयोजन प्रदेश एवं कृषि प्रदेश,
- हरितक्रान्ति तथा उसकी उपलब्धियाँ,
- कृषि की शुष्क दशाएँ एवं क्षेत्र,
- कृषि की शुष्क दषाएं एवं क्षेत्र।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में कृषि विकास की दिशा में निरन्तर वृद्धि हो रही है, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में क्रान्तियाँ लायी गई ताकि फसल विशेष का अच्छा विकास किया जा सके। इन सबके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव रहे है। इनमें हरित क्रान्ति प्रमुख है जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध खाद्य आपूर्ति एवं खाद्य सुरक्षा से है। इस अध्याय में इनके साथ ही प्रमुख खाद्य, पेय एवं तिलहन फसलों के उत्पादन एवं वितरण सम्बन्धी विवरण भी सम्मिलित किया गया है। इन सभी की जलवायविक दशाओं एवं उत्पादन पर प्रभाव का विवरण भी सम्मिलित कर जानकारी को महत्वपूर्ण बनाया गया है।

11.2 भूमि उपयोग (Land Utilization)

भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्र 32 करोड़ 88 लाख हैक्टेयर है, जिसमें से 30.54 करोड़ हैक्टेयर भूमि के आकड़े उपलब्ध हैं। वर्तमान में उपयोग योग्य भूमि का प्रतिशत बढ़ रहा है। कुल भूमि के 47.48 प्रतिशत भाग पर कृषि कार्य किया जाता है, जिसका क्षेत्रफल 14.5 करोड़ हैक्टेयर है जो विश्व की कुल कृषित भूमि का 12 प्रतिशत है। इस भूमि के क्षेत्रफल में लगभग 4 करोड़ हैक्टेयर भूमि बंजर तथा परती के रूप में है।

भारत की उपयोग योग्य भूमि को निम्नलिखित भागों गे बाँट सकते हैं :

1. वर्तमान मैं वन क्षेत्रफल लगभग 6.40 करोड़ हेक्टेयर है जो कुल क्षेत्रफल का 20.64 प्रतिशत है लेकिन पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि से यह 33 प्रतिशत होना चाहिए।
2. कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि, जिसमें बसाव, नहर, सड़क, उद्योग आदि स्थित होते हैं, यह बढकर 2.36 करोड़ हेक्टेयर हो चुका है जो कुल उपलब्ध भूमि का 7.7 प्रतिशत है।
3. अकृषित भूमि, जिसमें चारागाह तथा कृषि योग्य बंजर भूमि शामिल होती है जो लगभग 1.11 करोड़ हेक्टेयर पर विस्तृत है ।
4. परती भूमि वह भूमि जिसमें वर्तमान में कृषि नहीं की जाती है, यह लगभग 2.47 करोड़ हैक्टेयर है।
5. कृषि बंजर भूमि वह भूमि जिसे कृषि योग्य बनाया जा सकता है। यह लगभग 1.64 करोड़ हेक्टेयर है।
6. कृषि भूमि कुल उपलब्ध. भूमि का 47.48 प्रतिशत है। इस भूमि में वृद्धि जारी है, सबसे अधिक कृषित भूमि महाराष्ट्र में स्थित है, उसके उपरान्त उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश का स्थान आता है। उत्तर: प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान में अन्य प्रकार की भूमि को कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित किया गया है।

भारत में गाँव के स्तर से देश के स्तर तक भूमि को उपयोग के वर्गों तथा उपवर्गो में बांटा जाता है। ये आँकडे स्वतंत्रता के बाद से उपलब्ध हैं। भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 32.87 करोड़ हेक्टर है। इसमें से 92.8 प्रतिशत भूमि के उपयोग संबंधी ऑकडे उपलब्ध हैं (तालिका 11.1)। भारत के भूमि उपयोग में कृषीय उपयोग प्रधान है। वर्तमान समय मे लगभग 14.08 करोड़ हैक्टेयर (46.0%) निरा कृषित भूमि है। यह अनुपात सन् 1950 – 51 में लगभग 38.8 प्रतिशत ही था। इसके साथ ही लगभग 2.6 करोड़ हेक्टर (8.5%) भूमि पड़ती है जिस पर पिछले पांच सालों में कभी न कभी खेती की गई थी। इस प्रकार देश के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र में से 54.5 प्रतिशत कृषित भूमि है। कृषित भूमि की दृष्टि से भारत संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद विश्व का दूसरा बड़ा देश है। भारत में सर्वाधिक पशु संख्या होते हुए भी केवल 3.4 प्रतिशत भूमि ही चारागाहों के अर्न्तगत है। लगभग 13.8 प्रतिशत भूमि भौतिक कारणों से कृषि हेतु उपलब्ध नही है। देश में केवल 4.3 प्रतिशत भूमि ऐसी है जिस पर भविष्य में कृषि का विस्तार किया जा सकता है।

तलिका – 11.1 : भारत में भूमि उपयोग का बदलता प्रतिरूप (क्षेत्र लाख हेक्टर में)

क्रम	भूमि उपयोग के वर्ग	1950-51		2003-04		% Chandge
		क्षेत्र'	प्रतिशत*	क्षेत्र	प्रतिशत*	1950-2004
अ.	भोगोलिक क्षेत्र	3287.3		3287.26		
ब	प्रतिवेदित क्षेत्र	2843.2	92.9	3058.43	99.9	7.6
1	वन	404.4	13.2	697	22.8	72.2
2	ऊसर एवं गैरमुमकिन भूमि	475.2	15.5	422.18	13.8	-11.2
(i)	गैरकृषीय उपयोगों की भूमि	93.6	3.1			
(ii)	ऊसर तथा कृषि के अयोग्य भूमि	381.6	12.5			
3	कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि	494.5	16.2	270.0	8.8	-45.4
(ख)	स्थायी चरागाह	66.8	2.2	104.55	3.4	56.5
(ii)	विविध वृक्षों के अंतर्गत भूमि	198.3	6.5	33.69	1.1	-83.0
(iii)	कृषियोग बेकार भूमि	229.4	7.5	131.76	4.3	-42.6
4	पड़ती भूमि	281.2	9.2	260.43	8.5	-7.4
(i)	पुरानी पड़ती भूमि	174.4	5.7	112.38	3.7	-35.6
(ii)	वर्तमान पड़ती भूमि	106.8	3.5	148.05	4.8	38.6
5	निरा बोया गया क्षेत्र	1187.5	38.8	1408.83	46.0	18.6
6	कुल बोया गया क्षेत्र	1318.9		1906.44		44.5
7	दुफ़सली क्षेत्र	131.4		497.61		278.78
	शस्य गहनता		111.1		135.3	
	निरा सिंचित क्षेत्र	208.5	17.6	768.2	54.53	268.4
	कुल सिंचित क्षेत्र	225.6	17.1	985.3	51.68	336.7

*सभी वर्षो में प्रतिशत की गणना प्रतिवेदित क्षेत्र 3060 लाख हेक्टर मानकर किया गया है।

स्रोत. डाइरैक्टरेट ऑफ इकोनामिक्स एण्ड स्टेटिस्टिक्स–एग्रिकल्चरल स्टेटिस्टिक्स ऐट ए 2007

इस वर्गीकरण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भूमि उपयोगी में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है,कुछ परिवर्तन तो त्रुटिपूर्ण गणना के कारण हो सकता है, किन्तु अन्य परिवर्तन भूमि उपयोग बदलने के कारण है।

11.2.1 वन (Forests)

भारत के लगभग 22.8 प्रतिशत (697 हजार वर्ग किमी) भूमि पर वनों का विस्तार है, जबकि तंत्र को संतुलित रखने के लिए यह अनुपात लगभग एक तिहाई होना चाहिये। इस दृष्टि से यह प्रतिशत काफी कम है। देश में वनों का विस्तार बडा असमान है। पर्वतीय क्षेत्र– हिमालय, विध्यांचल, सतपुड़ा, पूर्वी तथा पश्चिमी घाट तथा आंतरिक ऊँचे पठारी क्षेत्र एवं तराई क्षेत्रों में वनों का विस्तार आधिक है। परन्तु मैदानी क्षेत्र लगभग वन–विहीन है। उदाहरण के लिए पूर्वी राज्य अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, नागालैंड तथा मेघालय; उत्तरी राज्य उत्तरांचल एवं जम्मू–काश्मीर तथा प्रायद्वीपीय भाग में छत्तीसगढ़ राज्य में 40 प्रतिशत से अधिक भूभाग पर वन हैं। इसी तरह अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (96.1%) तथा दादरा–नगर हवेली (40.8%) में काफी विस्तृत क्षेत्र पर वन फैले हैं। इसके विपरीत हरियाणा (1.0%),चण्डीगढ़ (4.1%), पंजाब (6.1%), बिहार (6.6%), उत्तरप्रदेश (6.9%), राजस्थान (7.8%) तथा गुजरात (9.8%) ऐसे राज्य हैं जहाँ वनों का विस्तार 10 प्रतिशत से कम भूमि पर है।

11.2.2 निरा कृषित भूमि (Net Sown Area)

देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र फल का लगभग 46.1 प्रतिशत भाग शुद्ध बोया गया क्षेत्र है। इस बोये गये क्षेत्रफल के 35.3 प्रतिशत भाग पर एक से अधिक बार कृषि की जाती है। स्वतंत्रता के बाद कृषि क्षेत्र में तेजी से वृद्धि हुई है। सन् 1950–51 में शुद्ध बोया गया क्षेत्र 11.87 करोड़ हेक्टर था जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का 38.8 प्रतिशत ही था।

देश के विभिन्न राज्यों में कृषित क्षेत्र में काफी अन्तर है। कुल भौगोलिक क्षेत्र में शुद्ध बोये गये क्षेत्र का अनुपात अरुणाचल प्रदेश में 3.0 प्रतिशत से लेकर हरियाणा में 80.8 प्रतिशत तथा पंजाब में 84.3 प्रतिशत से है (चित्र 11.1)। देश के नौ राज्यों – अरुणाचल प्रदेश (3.2%) मिजोरम, मेघालय, मणिपुर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड,सिक्किम, नागालैण्ड एवं जम्मू–कश्मीर (19.8%) में कुल क्षेत्र के एक –पचमांश से कम भूमि पर कृषि की जाती है। अन्य आठ राज्यों–झारखण्ड (22. 2%), त्रिपुरा, छत्तीसगढ़, आसाम, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा और गोवा मैं 20 से 40 प्रतिशत भूमि कृषि के अर्न्तगत है। इसके विपरीत छः राज्यों – मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक, केरल और महाराष्ट्र में 40 से 60 प्रतिशत तथा बिहार, पश्चिम बंगाल, उत्तरप्रदेश, हरियाणा तथा पंजाब में 60 प्रतिशत से अधिक भूमि पर खेती की जाती है। प्रादेशिक स्तर पर सतलज –गंगा के मैदान, गुजरात के मैदान, काठियावाड़ का पठार, महाराष्ट्र पठार तथा बंगाल ,बेसिन में अधिकांश भूमि पर कृषि की जाती है। यहाँ अधिक कृषित क्षेत्र होने के मुख्य कारणों में समतल भूमि तथा उर्वर मिट्टी, अनुकूल जलवायु, पर्याप्त सिंचाई की सुविधायें तथा जनसंख्या का

अत्यधिक दबाव प्रमुख हैं। इसके विपरीत पर्वतीय तथा पहाड़ी, शुष्क, कम उपजाऊ मिट्टी वाले क्षेत्रों में कृषित क्षेत्र का अनुपात कम और बहुत कम है, क्योंकि ये दशायें कृषि के अनुकूल नहीं हैं। ऊबड़ –खाबड़ भूमि पर न केवल खेत बनाना कठिन होता है बल्कि उसे बचा रखना भी मुश्किल है। तेज ढाल के कारण मिट्टी का कटाव तेज होता है और नमी की कमी होती है। आवागमन के मार्ग बनाना और सिंचाई के साधन विकसित करना दुष्कर एवं महँगा होता है। फलत: विषम धरातल वाले क्षेत्रों में कृषि की उत्पादकता बहुत कम होती है। यही कारण है कि जम्मू–कश्मीर से लेकर मिजोरम तक के सभी पर्वतीय राज्यों में निरा कृषित भूमि बहुत कम है। तथापि कुछ व्यापारिक फसलें, जैसे चाय, कहवा, सेव जैसे फल ढालू भूमि मैं ही पैदा किए जाते हैं, क्योंकि इनकी जड़ों के नीचे पानी नहीं रुकना चाहिए। सूखे क्षेत्रों में सिंचाई की व्यवस्था आवश्यक होती है।

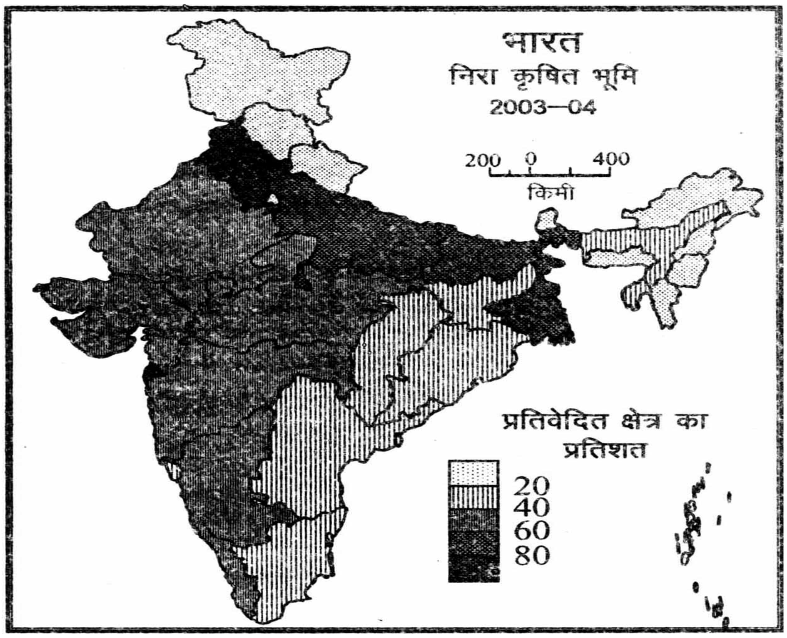

चित्र – 11.1 : भारत में निरा कृषित भूमि का प्रादेशिक वितरण

11.2.3 शस्य गहनता

कृषित भूमि बढ़ाने के दो तरीके हो सकते हैं : एक नवीन भूमि पर खेती का विस्तार करके और दूसरे वर्तमान खेती वाली भूमि पर एक से अधिक बार खेती करके। इस दूसरी विधि को शस्य गहना कहा जाता है। अब तक कृषि के लिए उपयुक्त सभी भूमि को कृषि के अर्न्तगत लाया जा चुका है। इस कारण नवीन क्षेत्र पर कृषि के विस्तार की सम्भावनाएं बहुत कम हैं। अस्तु कृषित भूमि बढ़ाने का एकमात्र तरीका कृषित भूमि की गहनता बढ़ाना ही है। शस्य गहनता का अर्थ किसी एक कृषि वर्ष में एक सें अधिक फसलें पैदा करना है। कुल कृषित भूमि को शुद्ध बोए गए क्षेत्र के प्रतिशत को शस्य गहनता का सूचक माना जाता है। जैसे कि सन 1950 – 51 में भारत में कुल कृषित भूमि 13.19 करोड़ हेक्टर तथा शुद्ध बोया गया क्षेत्र 11.88 करोड हैक्टर था। अस्तु शस्य गहनता (13.19 ÷ 11.88) 100 = 111.0 होती है।

जनसंख्या के बढ़ते दबाव तथा कृषिगत वस्तुओं की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए जहाँ कृषि का नए क्षेत्र पर विस्तार किया गया वहीं कृषित भूमि पर एक से अधिक बार खेती की जाने लगी। सिंचाई की सुविधा के विस्तार तथा उत्पादकतावर्धक अन्य निवेशों के बढ़ते प्रयोग के द्वारा ऐसा सम्भव हुआ। परिणामत : एक से अधिक बार बोई जाने वाली भूमि सन 1950 – 51 में 1315 लाख हैक्टेयर से बढ कर सन् 2003 – 04 में 497.6 लाख हेक्टर हो गई है। इस तरह दुफसली क्षेत्र में इस अवधि में लगभग चार गुनी से थोड़ी कम (278.4 प्रतिशत) वृद्धि हुई। वर्ष 2003 – 04 में शस्य गहनता सूचकांक मणिपुर तथा मिजोरम में 100 तथा सिक्किम में 109 लेकर पंजाब में 186.9 के मध्य है। पंजाब के बाद हरियाणा (180.8), हिमाचल प्रदेश (174.6), पश्चिम बंगाल (175.8), उत्तराखण्ड (168.3) अरुणाचल (160.3) और उत्तर प्रदेश (153.4) का स्थान है। असम, बिहार, जम्मू – कश्मीर तथा उड़ीसा में भी यह देश के औसत से (135.3) अधिक है (चित्र 11.2)।

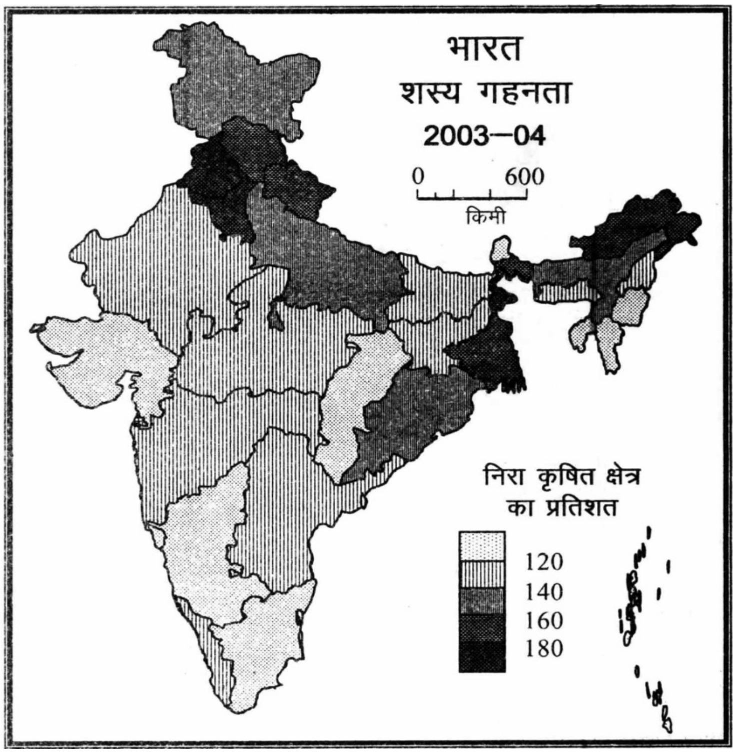

चित्र – 11.2 : भारत के शस्य गहनता, 2003 – 04

सामान्यतया जहाँ वर्षा पर्याप्त होती है अथवा सिंचाई की सुविधा है, भूमि समतल है और मिट्टी उपजाऊ है साथ ही जनसंख्या का दबाव अधिक है वहाँ ही शस्य गहनता अधिक है। इन्ही कारणों से उत्तरी विशाल मैदान, तटीय मैदान तथा डेल्टा प्रदेशों मैं ही शस्य गहनता अधिक और बहुत अधिक है। दूसरी ओर शुष्क, अर्द्ध शुष्क तथा अल्पार्द्र क्षेत्रों के असिंचित भागों, पहाड़ी तथा विषम धरातलीय क्षेत्रों तथा नमी सुरक्षित न रख पाने वाली मिट्टियों के क्षेत्रों में शस्य गहनता कम और बहुत कम है। इन्ही कारणों से प्रायद्वीपीय राज्यों में कृषि गहनता कम और उत्तरपूर्वी आधे राज्यों में बहुत कम है। यह तमिलनाडु में 113, कर्नाटक में 116, आन्ध्रप्रदेश में 122, महाराष्ट्र में 127, गुजरात में 118 तथा मध्यप्रदेश में 132 ही है। शस्य गहनता का

प्रमुख निर्धारक तत्व सिंचाई है। जैसे कि, पंजाब में 966 प्रतिशत कृषित भूमि सिंचित है। इसलिए कृषि गहनता भी अधिक है। हिमाचल प्रदेश इसका अपवाद है जहाँ ग्रीष्म और शीत दोनों ऋतुओं मैं वर्षा होती है। फलत : बिना सिंचाई के कृषि गहनता अधिक है। मिट्टी की अधिक जल धारण करने की क्षमता और उर्वरता भी कृषि गहनता बढ़ाने में सहायक हैं। जनसंख्या का अधिक दबाव भी कृषि गहनता को प्रभावित करता है तथा आधुनिक अधिक उपज देने वाली फसलों ने भी कृषि गहनता को बढ़ाने में सहायता की है।

11.3 शस्य –प्रतिरूप (Cropping Pattern)

फसलों का वितरण मुख्यरूप से जलवायु की दशाओं से प्रभावित होता है। प्राकृतिक वनस्पति की तरह फसलें भी अपनी वृद्धि के लिए ताप, जल और सूर्य प्रकाश पर निर्भर रहती हैं। किन्तु जलवायु की आदर्श दशायें अलग – अलग फसलों के लिए भिन्न –भिन्न होती हैं। साथ ही भारत देश में जलवायु की दशाओं में बहुत अधिक क्षेत्रीय अन्तर है। यही क्षेत्रीय अन्तर फसलों का चुनाव तथा उनके उत्पादन का काल –रबी अथवा खरीफ – निश्चित करता है। फसलों के चुनाव पर अन्य कारक जैसे, धरातल के स्वरूप तथा मिट्टी के गुण भी प्रभाव डालते हैं। भारत में जलवायु तथा मिट्टी की विभिन्नताओं के कारण देश के अलग अलग भागों में विभिन्न प्रकार की फसलें पैदा होती हैं। उदाहरण के लिए जहाँ उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में चावल पैदा होता है वही देश के शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में गेहूँ पैदा किया जाता है। वास्तव में भारत की स्थिति ऐसी है कि यहाँ ग्रीष्म ऋतु में उष्ण कटिबंधीय फसलें तथा शनि ऋतु में शीतोष्ण कटिबंधीय फसलें पैदा की जाती हैं। इन भौतिक कारकों के अलावा सामाजिक, आर्थिक तथा संस्थागत कारक भी फसलों के वितरण को नियंत्रित करते है। इनमें खेतों का आकार एवं भूमि – स्वामित्व, संस्थागत सुविधायें, प्रौद्योगिकी का विकास, सरकारी नीतियाँ तथा किसानों की क्षमता तथा सामर्थ्य प्रमुख हैं।
तालिका - 11.2: भारत में फसलों का बदलता प्रतिरूप, 1950 – 51 से 2005 – 06
(क्षेत्रफल लाख हेक्टर में, उत्पादन लाख टन में)

फसल	**1950–51**		**2005–06**		**% परिवर्तन**	
	क्षेत्रफल	**उत्पादन**	**क्षेत्रफल**	**उत्पादन**	**क्षेत्रफल**	**उत्पादन**
चावल	308.1	205.8	436.6	917.9	41.7	346.0
गेहूं	97.5	64.6	264.8	693.5	171.6	973.5
ज्वार	155.7	55	86.7	76.3	–44.3	38.7
बाजरा	90	26	95.8	76.8	6.4	195.4
मक्का	31.6	17.1	75.9	147.1	140.2	760.2
सभी अनाज	**782.3**	**424.1**	**992.1**	**1952.2**	**26.8**	**360.3**
चना	75.7	36.5	69.3	56	–8.5	53.4
तुअर	21.8	17.2	35.8	27.4	64.2	59.3
सभी दालें	**190.9**	**84.1**	**223.9**	**133.8**	**17.3**	**59.1**
सभी खद्यान्न	**973.2**	**508.3**	**1216**	**2086**	**24.9**	**310.4**
मूँगफली	44.9	34.8	58	49.8	29.2	43.1
राई–सारसो	20.7	7.6	72.8	81.3	251.7	969.7

समस्त तिलहन	**107.3**	**51.6**	**278.6**	**279.8**	**159.6**	**442.2**
गन्ना	17.1	570.5	42	2811.7	145.6	392.8
कपास	58.8	30.4	86.8	185	47.6	508.6
जूट @	5.7	33.1	9	108.4	57.9	227.5

*उत्पादन 170 किग्रा वाले लाख बेल्स में; @ उत्पादन 180 किग्रा वाले लाख बेल्स में

स्रोत : डाइरेक्टरेट ऑफ इकोनामिक्स एण्ड स्टैटिस्टिक्स –एग्रिकल्चरल स्टैटिस्टिक्स ऐट ए ग्लांस 2007

भारत में जलवायु की दशायें ऐसी हैं कि वर्ष भर कृषि होती रहती है। भारत में कृषि के तीन मौसम (seasons) पाये जाते हैं। ये खरीफ, रबी और जायद हैं। दक्षिण –पश्चिमी मानसून मौसम को खरीफ का मौसम कहते हैं। इस मौसम की फसलों के लिए अधिक ताप तथा अधिक आर्द्रता की आवश्यकता होती है। मुख्य खरीफ फसलों में चावल, मक्का, ज्वार, तुअर, मूंग, उड़द, कपास, जूट, मूंगफली सोयाबीन आदि हैं। शीतकाल के मौसम को रबी का मौसम कहते हैं। इस मौसम की प्रमुख फसलों में गेहूं, जौ, ज्वार, राई, सरसों, अज्जी, मसूर और चना हैं। जायद ग्रीष्मकाल की फसलों का मौसम है। ऐसी फसलों का उत्पादन अधिक तापमान और सिंचाई की सहायता से होता है। इस मौसम की प्रमुख फसलों में चावल, मक्का, साग – सब्जियाँ. मसाले तथा फल हैं। भारत में उष्ण और शीतोष्ण दोनों तरह की फसलें पैदा होती हैं। मौसम के अलावा इन फसलों के संकेन्द्रण में तकनीकी कारण भी प्रभाव डालते हैं, जिससे इन फसलों का विस्तार गैर –परम्परागत क्षेत्रों में होने लगा है। जैसे कि पंजाब में कम वर्षा तथा कम तापमान होता है। अस्तु जलवायु की दृष्टि से यहाँ चावल की बड़े पैमाने की कृषि नही होनी चाहिए, परन्तु चावल के उन्नत बीजों तथा सिंचाई की सुविधा के कारण ऐसा सम्भव हुआ है।

11.3.1 गेहूँ (Wheat)

गेहूँ उत्पादन की दृष्टि से भारत विश्व मे चीन के बाद दूसरा स्थान है। भारत में गेहूँ उत्पादन एवं उत्पादक क्षेत्रफल की दृष्टि से खाद्यान्न फसलों में चावल के बाद द्वितीय स्थान है। यहाँ गेहूँ का उत्पादन शीतकाल में उत्तर –पश्चिम क्षेत्र में अधिकतर किया जाता है। देश में उपलब्ध कुल कृषि भूमि के 19.4 प्रतिशत तथा खाद्यान्न उत्पादन कुल भूमि' के 22 प्रतिशत भाग पर गेहूँ का उत्पादन किया जाता है। खाद्यान्न की दृष्टि से उत्पादित सभी फसलों के उत्पादन में गेहूँ का योगदान 34.9 प्रतिशत है। इस दृष्टि से भारत में गेहूँ एक मुख्य फसल है, जिसके उत्पादन पर भारत की लगभग 30 प्रतिशत जनसंख्या का जीवन निर्भर करता है।

भारत में गेहूँ उत्पादन का वितरण – भारत में गेहूँ उत्पादन की दृष्टि से सतलज – यमुना एवं ऊपरी गंगा का मैदानी भाग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। पर्याप्त जल उपजाऊ एवं समतल भूमि के कारण इस क्षेत्र में देश का दो –तिहाई गेहूँ उत्पादित किया जाता है (तालिका – 11.3)।

उत्तर प्रदेश–यह राज्य भारत के कुल गेहूँ उत्पादन का 35 प्रतिशत भाग उत्पादित करके अपना प्रथम स्थान रखता है। प्रमुख गेहूँ उत्पादक क्षेत्र गंगा–यमुना एवं घाघरा नदियों के उपजाऊ मैदानी क्षेत्र है जहाँ प्रतिवर्ष नदियों द्वारा लाई गई उपजाऊ जलोढ मिट्टी पायी जाती है। कुल कृषि, भूमि

के 32 प्रतिशत भाग पर केवल गेहूँ की फसल उगायी जाती है, जहाँ प्रतिहेक्टयर 2627 किग्रा. गेहूँ का उत्पादन होता हैं। इस राज्य के पर्वतीय एवं पठारी क्षेत्र के अतिरिक्त सम्पूर्ण राज्य में गेहूँ का उत्पादन होता है ।

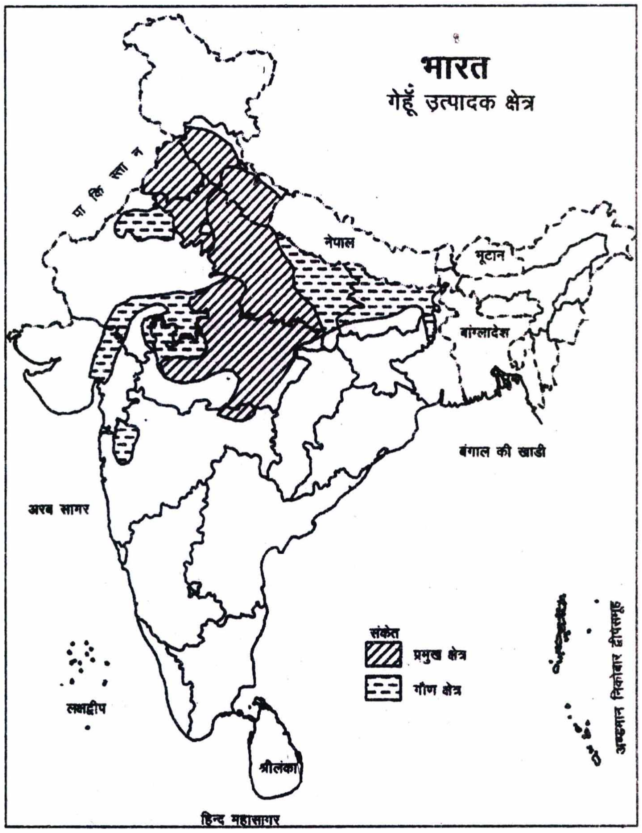

चित्र–11.3 : भारत के गेहूँ उत्पादक क्षेत्र

पंजाब–इस राज्य में गेहूँ का प्रति हेक्टेयर उत्पादन (4179 किग्रा) भारत में सर्वाधिक है। कम भूमि पर गेहूँ की फसल बोने के बाद भी उत्पादन की अधिकता के कारण यह राज्य भारत का दूसरा मुख्य गेहूँ उत्पादन राज्य है। भारत के कुल गेहूँ उत्पादन का लगभग 21 प्रतिशत गेहूँ इसी राज्य में उत्पादित होता है जबकि कुल गेहूँ उत्पादन भूमिका गेहूँ 12.5 प्रतिशत इस राज्य में है। लेकिन प्रति हैक्टेयर उत्पादन 4179 किग्रा. है। रासायनिक उर्वरकों का अधिकतम उपयोग, उन्नत बीज, नहरों द्वारा सिंचाई की सुविधा एवं उपजाऊ मिट्टी के कारण प्रति हेक्टेयर उत्पादन अधिक होता है।

हरियाणा–पंजाब के समान आधुनिक कृषि यन्त्रों का अधिकतम उपयोग, रासायनिक उर्वरकों का उपयोग, उपजाऊ मिट्टी एवं नहरी सिंचाई सुविधा के कारण प्रति हैक्टेयर उत्पादन 3844 किग्रा. है। इस राज्य की कुल भूमि के 6.17 प्रतिशत भाग पर गेहूँ का उत्पादन किया जाता है। भारत में गेहूँ उत्पादन में इस राज्य का तीसरा स्थान है।

तालिका–11.3 : गेहूँ के अन्तर्गत भूमि उत्पादन, उत्पादकता 2005–06

राज्य	**क्षेत्रफल**		**उत्पादन**		**उपज**
	लाख हेक्टे.	**प्रतिशत**	**लाख टन**	**प्रतिशत**	**किग्रा. /हेक्टे.**

उत्तर प्रदेश	91 .6	34.6	240.7	34.7	2627
पंजाब	34.7	13.1	144.9	20.9	4179
हरियाणा	23	8.7	88.6	12.8	3844
मध्यप्रदेश	36.9	13.9	59.6	8.6	1613
राजस्थान	21.2	8.0	58.7	8.5	2762
बिहार	20	7.6	32.4	4.7	1617
गुजरात	9.2	3.5	24.7	3.6	2700
महाराष्ट्र	9.3	3.5	13	1.9	1393
प. बंगाल	3.7	1.4	7.7	1.1	2109
हिमाचल प्रदेश	3.6	1.4	6.8	1.0	1894
उत्तराखण्ड	4	1.5	6.5	0.9	1633
जम्मू–काश्मीर	2.5	0.9	4.4	0.6	1790
भारत	264.8	100.0	693.5	100.0	2619

स्रोत : डाइरेक्टरेट ऑफ इकोनामिक्स एण्ड स्टेटिस्टिक्स–एग्रिकल्चरल स्टेटिस्टिक्स ऐट ए ग्लेन्स

मध्य प्रदेश – भारत के कुल गेहूँ उत्पादक का 8.6 प्रतिशत भाग उत्पादित कर यह राज्य चौथे स्थान पर है। उत्पादित भूमि की दृष्टि से भारत में इसका दूसरा स्थान है। लेकिन कम उपजाऊ भूमि, उर्वरकों का कम उपयोग, सिंचाई सुविधाओं के अभाव के कारण राज्य का प्रति हैक्टेयर गेहूँ उत्पादन 1613 किग्रा. ही है।

राजस्थान–इस राज्य के उत्तरी–पूर्वी एवं दक्षिणी सीमावर्ती क्षेत्रों में गेहूँ का उत्पादन किया जाता है। श्रीगंगानगर मुख्य गेहूँ उत्पादक जिला है। जहाँ राज्य के कुल उत्पादन का 17 प्रतिशत से अधिक भाग का उत्पादन किया जाता है। जयपुर, कोटा, भरतपुर, अलवर अन्य गेहूँ उत्पादक जिले हैं।

बिहार –गंगा नदी का मध्यवर्ती मैदानी भाग इन राज्यों में विस्तृत है जहाँ उपजाऊ भूमि एवं सिंचाई सुविधाओं की अनुकूल परिस्थितियाँ पायी जाती है। मुंगेर, सारन, भोजपुर रोहतास, बेगुसराय यहाँ के प्रमुख गेहूँ उत्पादक जिले हैं।

अन्य गेहूँ उत्पादक राज्य–पश्चिम बंगाल (मुर्शीदाबाद, नादिया, वीरभूमि, वर्धमान, दीनाजपुर) हिमाचल प्रदेश (कागंडा, मण्डी, शिमला), महाराष्ट्र, गुजरात अन्य मुख्य गेहूँ उत्पादक राज्य हैं।

भारत में गेहूँ का उत्पादन 1950 – 51 में केवल 97.40 लाख हेक्टेयर भूमि पर ही होता था जो बढकर वर्तमान में 275 लाख हेक्टेयर भूमि पर किया जाने लगा है। इस अवधि में गेहूँ का उत्पादन भी 65 लाख टन से बढकर 2003 – 04 में 72.1 मिलियन टन हो गया है। भारत में गेहूँ उत्पादन एवं उत्पादन क्षेत्र के साथ –साथ प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी बढ़ा है। वर्ष 1970 – 71 में 1307 किग्रा. से बढ़कर वर्तमान में 2707 किगा. प्रति हैक्टेयर हो गया है। इस प्रकार भारत में गेहूँ उत्पादन में हरित क्रान्ति के बाद तीव्र वृद्धि हुई है।

हरित क्रान्ति के बाद भारत में उन्नत बीज, रासायनिक खाद के उपयोग के कारण आज भारत गेहूँ उत्पादन में लगभग आत्मनिर्भर हो गया है। पहले भारत अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए

गेहूँ आयात करता था लेकिन वर्तमान में भारत गेहूँ उत्पादन का आधिक्य पड़ौसी देशों में निर्यात भी करने लगा है। अफगानिस्तान, कोरिया, बांग्लादेश आदि देशों में भारत गेहूँ का निर्यात करता है।

11.3.2 चावल (Rice)

चावल एक मुख्य खाद्यान्न फसल है तथा देश की तीन–चौथाई जनसंख्या का भोजन है। चावल का पौधा भारत से विश्व के अन्य देशों मिश्र, यूरोप तथा एशियाई देशों में ले जाया गया। भारत में चावल का उत्पादक कुल कृषि भूमि के 25 प्रतिशत तथा कुल खाद्यान्न उत्पादन के 33.3 प्रतिशत भू – भाग पर चावल का उत्पादन किया जाता है।

चावल उत्पादन क्षेत्र पर मानसून का भी प्रभाव पड़ता है जिसके कारण चावल उत्पादन क्षेत्र घटता बढ़ता रहता है। मानसूनी वर्षा की स्थिति सही रहने पर चावल उत्पादन क्षेत्र भी बढ़ जाता है। भारत विश्व में चावल उत्पादन में द्वितीय स्थान (चीन प्रथम) है। भारत में कुल खाद्यान्न उत्पादन में चावल का प्रथम स्थान है जो वर्तमान में लगभग 43 प्रतिशत है। विश्व उत्पादन की दृष्टि से भारत का विश्व में चावल के कुल उत्पादन में 22.9 तथा कुल क्षेत्र में 29.4 प्रतिशत हिस्सा भारत का है। प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम होने के कारण क्षेत्रफल अधिक होते हुए भी उत्पादन में द्वितीय स्थान है।

चावल की विभिन्न फसलों के प्रकार

भारत में चावल उत्पादन क्षेत्र एवं मौसम के अनुसार अलग – अलग बोया जाता है। चावल उत्पादक क्षेत्र के अनुसार भारतीय चावल की फसलों को दो भागों में विभाजित किया जाता है –

(i) **मैदानी चावल–**नदियों द्वारा निर्मित मैदानी भाग समुद्र तटीय मैदानी क्षेत्र आदि समतल क्षेत्र में उत्पादित चावल मैदानी चावल कहलाता है।

(ii) **पहाड़ी एवं पठारी चावल–**पर्वतीय एवं पठारी क्षेत्र में सीढ़ीनुमा खेत बनाकर चावल का उत्पादन करने को पहाड़ी चावल कहते हैं। मौसम के अनुसार भी भारत में चावल की वर्ष में तीन फसलों का उत्पादन किया जाता है, ये निम्नलिखित हैं : –

(iii) **अमन या अगहनी (Aman)–**भारत में शीतकाल में उत्पादित चावल की फसल को शीतकालीन या अमन के नाम से जाना जाता है। मानसून के प्रारम्भिक समय जुलाई – अगस्त में अमन फसल को बोया जाता है तथा अक्टूबर –दिसम्बर के मध्य इसे काटा जाता है। भारत में चावल का सर्वाधिक उत्पादन (कुल उत्पादन का 87 प्रतिशत) इसी समय किया जाता है जो उत्तम किस्म के होता है।

(iv) **आस (Aus)–**इसे कुवांरी या शरदकालीन भी कहते हैं, जिसका उत्पादन समय मई –जून से सितम्बर – अक्टूबर के मध्य रहता है अर्थात् यह एक वर्षाकालीन चावल की फसल है।

(v) **बोरो (Boro)–**चावल की इस फसल का उत्पादन नवम्बर –दिसम्बर से मार्च –अप्रैल के मध्य किया जाता है। इस फसल की कटाई ग्रीष्मकाल में होने के कारण इसे ग्रीष्मकालीन चावल की फसल के नाम से भी जाना जाता है। लेकिन भारत में बोरो का उत्पादन केवल कुल चावल उत्पादक क्षेत्र के एक प्रतिशत (उत्पादन की तीन प्रतिशत) भाग पर ही किया जाता है।

हरित क्रान्ति के बाद भारत में चावल उत्पादन के क्षेत्र में तथा उत्पादन में वृद्धि के लिए अनेक प्रयास किए गए है जिसके कारण चावल का प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी बढ़ा है। भारतीय कृषि

अनुसंधान परिषद उत्पादकता बढ़ाने के लिए नवीन तकनीकियों के प्रयोग, उन्नत बीज, खाद आदि के उपयोग पर अधिक ध्यान दे रहा है। वर्ष 1950 – 57 में भारत में चावल की प्रति हेक्टेयर उपज केवल 668 किग्रा. थी जो वर्ष 1970 – 71 में 1723 किग्रा. तथा वर्ष 2003 – 04 में यह बढ़कर 2051 किग्रा. हो गयी है लेकिन विश्व के अन्य देशों की दृष्टि से भारत में चावल का प्रति हैक्टेयर उपज काफी कम है, जैसे जापान में सर्वाधिक 6436, संयुक्त राज्य अमेरिका, 4770, चीन 3600, रूस – 2630, इण्डोनेशिया, 4530, वियतनाम 4146 किग्रा है। भारत के विभिन्न राज्यों में भी प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में अन्तर पाया जाता है। सर्वाधिक तमिलनाडु में 3443 पंजाब में 3229 तथा हरियाणा मैं 2778 किग्रा. है भारत में प्रति हेक्टेयर उत्पादकता कम होने का प्रमुख कारण– आधुनिक कृषि यन्त्र तथा तकनीकी सुविधाओं का अभाव, भूमि की निम्न उत्पादकता, उन्नत बीजों का कम उपयोग, सिंचाई सुविधाओं का अभाव तथा विभिन्न रोगों का फसल पर प्रकोप आदि है।

भारत में चावल उत्पादक क्षेत्र – भारत में चावल का उत्पादन उन क्षेत्रों में किया जाता है जहाँ पर्याप्त वर्षा होती है, सिंचाई की सुविधा है तथा नदियों द्वारा लायी उपजाऊ जलोढ मिट्टी पायी जाती है। सह तटीय क्षेत्र, गंगा नदी बेसिन तथा उत्तर –पश्चिमी नहरी क्षेत्र में सर्वाधिक चावल उत्पादित किया जाता है (तालिका– 11.4)।

1. **पश्चिम बंगाल –** भारत के कुल चावल उत्पादन का 15.8 प्रतिशत चावल उत्पादित कर यह राज्य प्रथम स्थान पर है। कुल क्षेत्र के 77 प्रतिशत भाग पर इस राज्य में चावल का उत्पादन किया जाता है। वर्तमान (वर्ष 2005 – 06) में 145.1 लाख टन प्रतिवर्ष चावल का उत्पादन हो रहा है। पर्याप्त वर्षा, नदियों द्वारा लायी गयी उपजाऊ जलोढ मिट्टी, उन्नत बीज, नहरों द्वारा सिंचाई की सुविधा, उपयुक्त जलवायु (वर्षभर) आदि कारकों की अनुकूल दशाओं के कारण इस राज्य में चावल की वर्षभर में तीन फसलें अमन (78 प्रतिशत) आस (20 प्रतिशत) बोरो (2 प्रतिशत) का उत्पादन किया जाता है।
2. **आन्ध्र प्रदेश –**चावल उत्पादन में इस राज्य का भारत में दूसरा स्थान हो गया है। इस राज्य की कुल भूमि के 24 प्रतिशत भाग पर चावल का उत्पादन किया जाता है। प्रमुखता समुद्र तटीय क्षेत्र एवं कृष्णा– गोदावरी नदियों की घाटियों में चावल का उत्पादन किया जाता है। कुरनूल, नेल्लौर, चिहन, कुडप्पा, कृष्णा, गुंटूर, गोदावरी, अनन्तपुर, निजामाबाद, करीम नगर मुख्य चावल उत्पादक जिले हैं। वर्तमान में औसतन 117 लाख टन चावल प्रति वर्ष उत्पादित होता है। सिंचाई की पर्याप्त सुविधा तथा उपजाऊ भूमि एवं उन्नत बीजों के प्रयोग के कारण प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी अधिक होता है।
3. **उत्तर प्रदेश–**चावल उत्पादक क्षेत्र की दृष्टि से यह राज्य द्वितीय स्थान पर है, लेकिन प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम होने के कारण चावल उत्थान में भारत में इसका तीसरा स्थान है, जहाँ देश के कुल उत्पादन का 12.1 प्रतिशत चावल उत्पादित किया जाता है। राज्य की कुल कृषि भूमि के 22 प्रतिशत भाग पर चावल उत्पादित किया जाता है। चावल उत्पादक क्षेत्र तराई क्षेत्र रख पूर्वी मैदानी भाग में स्थित है। जहाँ नदियों द्वारा उपजाऊ मिट्टी एवं सिंचाई के लिए जल की पर्याप्त सुविधा है।

4. **पंजाब–**कर्नाटक के बाद प्रति हेक्टेयर चावल की उपज दर में इस राज्य का दूसरा स्थान है जहाँ 3858 किग्रा प्रति हेक्टेयर चावल उत्पादित होता है। चावल उत्पादन में पंजाब का चौथा स्थान है, जहाँ देश का 11.10 प्रतिशत उत्पादन होता है। रासायनिक खाद का अधिकतम प्रयोग, नहरों द्वारा सिंचाई उन्नत बीज, अनुकूल जलवायु आदि के कारण इस राज्य में उन्नत किस्म के चावल का उत्पादन किया जाता है।
5. **उड़ीसा–** भारत के कुल चावल उत्पादक क्षेत्र के 10 प्रतिशत भाग पर कुल चावल उत्पादन, का 7.5 प्रतिशत भाग उत्पादित करता है। राज्य की 67 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि पर चावल का उत्पादन किया जाता है। बालासोर, कटक, सम्बलपुर, पूरी, कोरापुट, गजाम, धनकनाल, मयूरभंज, कालाहांडी, मुख्य चावल उत्पादक जिले हैं। चावल अनुसंधान संस्थान, कटक में है।

तालिका–11.4 : चावल के अन्तर्गत भूमि, उत्पादन, उत्पादकता, 2005–06

राज्य	क्षेत्रफल		उत्पादन		उपज
	लाख हेक्टे.	प्रतिशत	लाख टन	प्रतिशत	किग्रा. / हेक्टे.
प. बंगाल	57.8	13.2	145.1	15.8	2509
आन्धप्रदेश	39.8	9.1	1147	12.7	2939
उत्तरप्रदेश	55.8	12.8	111.3	12.1	1996
पंजाब	26.4	6.0	101.9	11.1	3858
उड़ीसा	44.8	10.3	68.6	7.5	1531
कर्नाटक	14.9	3.4	57.4	6.3	3868
तमिलनाडू	20.5	4.7	52.2	5.7	2546
छत्तीसगढ़	37.5	8.6	50.1	5.5	1337
आसाम	24.2	5.5	35.5	3.9	1468
बिहार	32.5	7.4	35.0	3.8	1075
हरियाणा	10.5	2.4	32.1	3.5	3051
महाराष्ट्र	15.2	3.5	27.0	2.9	1779
मध्यप्रदेश	16.6	3.8	16.6	1.8	999
झारखण्ड	13.5	3.1	15.6	1.7	1150
गुजरात	6.7	1.5	13.0	1.4	1949
केरल	2.8	0.6	6.3	0.7	2284
अन्य	17.1	3.9	33.2	3.6	
भारत	436.6	100.0	917.9	100.0	2102

6. **कर्नाटक–**शिमोगा, दक्षिणी खण्ड, मैसूर, माण्डया उत्तर खण्ड आदि जिलों में उत्पादन किया जाता है। इस राज्य का चावल उत्पादक क्षेत्र तुगंभद्रा, बेगाई तथा कावेरी नदियों की घाटियों में स्थित है।

7. **तमिलनाडु** –चावल उत्पादन में भारत में यह सातवां प्रमुख राज्य है। कुल उत्पादक क्षेत्र कम होते हुए भी प्रति हेक्टेयर उपज अधिक होने के कारण (2546 किग्रा. प्रति हेक्टेयर) चावल का उत्पादन लगभग 52.2 लाख टन प्रतिवर्ष होता है। राज्य कुल भूमि के 38 प्रतिशत भाग पर चावल का उत्पादन किया जाता है। इस राज्य का थजांवुर जिला कुल उत्पादन का एक चौथाई चावल उत्पादित करता है। यह जिला कावेरी नदी के उपजाऊ डेल्टाई क्षेत्र में स्थित है। थजांबुर, चिंठालपुर, द. अर्काट, उ. अर्काट, मदुराई, तिरूचिरापल्ली, रामनाथपुरम, नीलगिरी मुख्य चावल उत्पादक जिले हैं।

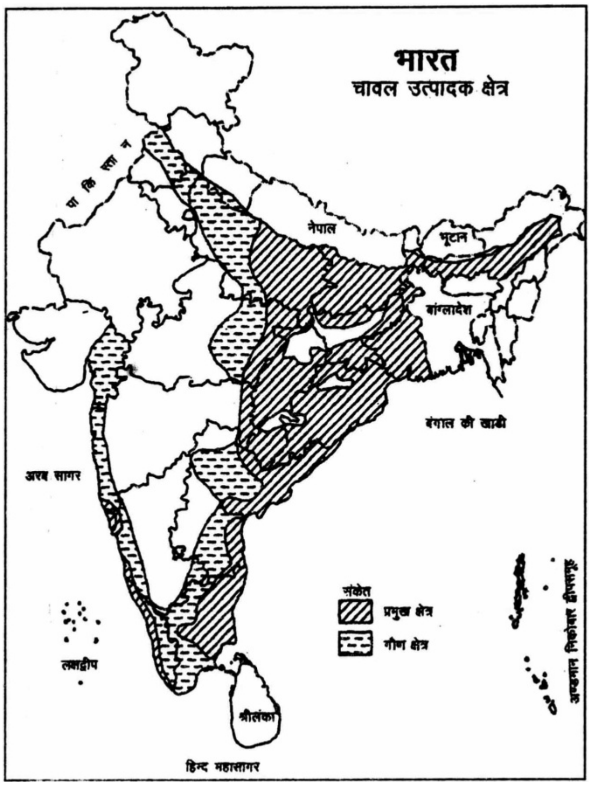

चित्र–11.4 : भारत के चावल उत्पादक क्षेत्र

8. **छत्तीसगढ–** बिलासपुर, दूर्ग, बस्तर, दांतेवाडा, रायगढ, रायपुर, राजनन्दगाँव आदि जिलों में चावल का उत्पादन किया जाता है। चावल उत्पादन की दृष्टि से राज्य का दक्षिणी क्षेत्र मुख्य हैं।
9. **असम–**कुल कृषि योग्य भूमि के तीन –चौथाई भाग पर चावल उत्पादित किया जाता है। पर्वतीय एवं पठारी क्षेत्र अधिक होने के कारण समतल कृषि क्षेत्र की कमी है । जिसके कारण सीढ़ीदार खेत बनाकर चावल क़ा उत्पादन किया जाता है। सुरमा नदी घाटी क्षेत्र में समतल मैदानी एवं उपजाऊ भूमि है जहाँ अधिकतर क्षेत्र में चावल का उत्पादन किया जाता है। गोलपाडा, नंदगाँव, कामरूप, शिवसागर, गोपालसागर, दर्रांग मुख्य चावल उत्पादक जिले हैं।
10. **बिहार**–तमिलनाडु के बाद चावल उत्पादन में यह राज्य मुख्य है, जिसकी कुल कृषि भूमि के 63 प्रतिशत भाग पर शरदकालीन एवं शीतकालीन चावल उत्पादित किया जाता है। पर्याप्त मानसूनी वर्षा, नदियों द्वारा लायी गयी जलोढ मिट्टी, सस्ते एवं पर्याप्त श्रमिक आदि के

कारण चावल का अधिकतम उत्पादन किया जाता है। भारत के कुल उत्पादन का 8 प्रतिशत चावल उत्पादित करता है। गया, मुगेंर, सहरसा, पुर्णिया, मुजफ्फरपुर, भागलपुर मुख्य चावल उत्पादन जिले है।

11. **महाराष्ट्र–**इस राज्य के पश्चिमी घाट के ढालयुक्त क्षेत्र एवं समुद्रतटीय क्षेत्र में स्थित भण्डारा, चन्द्रपुर, नासिक, कोल्हापुर, थाना, कोलाबा, रत्नागिरी, कनारा आदि जिलों में चावल उत्पादित किया जाता हैं।
12. **मध्य प्रदेश –**चावल उत्पादक क्षेत्र अधिक होते लग. भी प्रति हैक्टेयर उत्पादन कम होने के कारण यह राज्य भारत के कुल उत्पादन का 1.8 प्रतिशत चावल उत्पादित करता है। उन्नत बीजों के उपयोग के कारण अब प्रति हैक्टेयर उत्पादन धीरे – धीरे बढ़ रहा है। होशगांबाद, बालाघाट, डिंडोरी, मांडला, जबलपुर, सिओनी, देवास मुख्य चावल उत्पादक जिले हैं।
13. **झारखण्ड**–पलामू गिरीडिह, देवगढ, साहिबंगज, रांची, सिंहभूमि मुख्य उत्पादक जिले हैं।
14. **केरल–**पश्चिम बंगाल के समान इस राज्य में भी चावल की वर्षभर में तीन फसलें उपजायी जाती है। पालघाट, त्रिचूर, मालापुरम, अलेम्पी, एर्नाकुलम मुख्य उत्पादक जिले हैं।

इनके अतिरिक्त गुजरात के बालसाड, खेड़ा, पंचमहल, सूरत, अहमदाबाद, जिले, जम्मू–कश्मीर के अनन्तनाग –बाराकुला जिले, राजस्थान के गंगानगर, बांसवाडा, डूगंरपुर आदि जिले प्रमुख चावल उत्पादक क्षेत्र हैं।

11.3.3 गन्ना (Sugarcance)

भारत को गन्ना की जन्मस्थली होने का गौरव प्राप्त है। भारत से ही गन्ने की फसल का विकास विश्व के अन्य देशों में हुआ है। गन्ना **सैकरम आफिसीनेर**म नामक वनस्पति का वंशज माना जाता है। गन्ना भारत की मुख्य व्यापारिक फसल है जिसमें नकदी फसलों की दृष्टि से सर्वाधिक मूल्य प्राप्त होता है।

भारत गन्ना उत्पादन में विश्व में ब्राजील के बाद दूसरा (22.8 प्रतिशत) तथा उत्पादन क्षेत्र की दृष्टि से प्रथम स्थान पर है लेकिन हाल ही कुछ वर्षो में भारत में गन्ने के प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि के कारण भारत गन्ना उत्पादक में भी अच्छा विकास किया है। विश्व के कुल गन्ना उत्पादक क्षेत्र का 21 प्रतिशत भाग पर विश्व में उत्पादन का 22.8 प्रतिशत भारत द्वारा उत्पादित किया जाता है। देश में गन्ना की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता (71 टन) अन्य मुख्य देशों से बहुत कम है।

भारत में गन्ने का सर्वाधिक उत्पादन क्षेत्र उत्तरी भारत में था लेकिन वर्तमान में इसका अधिकतम विस्तार दक्षिण क्षेत्र में हो रहा है। क्योंकि समुद्र तटीय जलवायु गन्ना उत्पादन के लिए अनुकूल है। जहाँ प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी अधिकतम होता है। इसकी मांग भी उत्तरी भारत के गन्ना से अधिक प्राप्त होती है। भारत में गन्ने की सर्वाधिक उत्पादकता तमिलनाडु में 113.41 टन प्रति हैक्टेयर है जबकि सबसे कम मध्य प्रदेश में केवल 31 टन ही होती है। जलवायु की अनुकूल परीस्थितियों के कारण ही भारत में वर्तमान में गन्ने के सर्वाधिक उत्पादक राज्य दक्षिणी भारत में स्थित है, जहाँ तीव्र गति से उत्पादन क्षेत्र में विस्तार हो रहा है।

गन्ना उत्पादन एवं उत्पादन क्षेत्र दोनों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तीव्र गति से विकास हुआ है। 1950 – 51 से वर्तमान तक उत्पादक क्षेत्र जहाँ 17.0 लाख हैक्टेयर से 43.00 लाख हैक्टेयर हो

गया है वही उत्पादक भी इस अवधि में 904.9 लाख टन से बढकर 2992 लाख टन होने लगा है। इसी अवधि में उन्नत बीज, रासायनिक खाद एवं नवीन तकनीकी के उपयोग के कारण प्रति हैक्टेयर उत्पादकता भी 46 टन से बढकर 71 टन हो गया है।

तालिका– 11. 5: भारत में गन्ने का उत्पादन एवं उत्पादक क्षेत्र

वर्ष	**उत्पादन (लाख टन में)**	**उत्पादक क्षेत्र (लाख हेक्टेयर में)**
1950–51	704.9	17.07
1960–61	1089.7	24.15
1970–71	1263.7	26.15
1980–81	1542.5	26.70
1990–91	2410.0	37.00
2001–02	298.4	44.00
2002–03	281.6	44.00
2003–04	236.2	40.00

उत्तर प्रदेश–यह राज्य गन्ना उत्पादन एवं उत्पादन क्षेत्र दोनों की दृष्टि से भारत में प्रथम स्थान पर है। प्रति हैक्टेयर उत्पादकता कम होने के कारण भारत के कुल गन्ना उत्पादक क्षेत्र का आधा भाग रखते हुए भी केवल 44.6 प्रतिशत गन्ने का ही उत्पादन करता है। उत्तर प्रदेश के लगभग सम्पूर्ण क्षेत्र में थोड़ा –बहुत गन्ने का उत्पादन होता है लेकिन उत्तम जलवायु, उपजाऊ मिट्टी एवं पर्याप्त आर्द्रता के कारण मुजफ्फरनगर, मेरठ, बिजनौर, सहारनपुर, मुरादाबाद, गोरखपुर, खीरी, देवरिया जिलों का गन्ना उत्पादन में प्रमुख स्थान है ।

उत्तर प्रदेश के गन्ना उत्पादक क्षेत्र को चार भागों में विभाजित कर अध्ययन किया जाता है –

(i) गंगा–यमुना दोआब क्षेत्र, (ii) रूहेलखण्ड क्षेत्र, (iii) तराई क्षेत्र, (iv) उत्तर प्रदेश का मध्यवर्ती एवं पूर्वी भाग

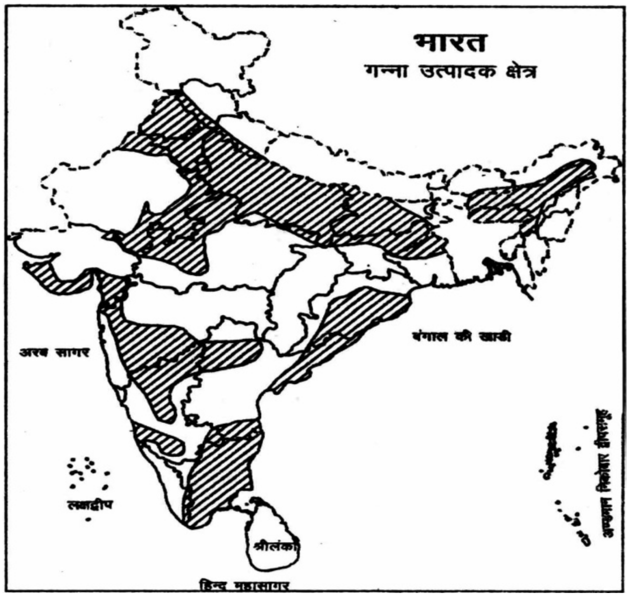

चित्र–11.5 : भारत के गन्ना उत्पादक क्षेत्र

महाराष्ट्र –यह राज्य भारत के कुल गन्ना उत्पादन का 13.8 प्रतिशत भाग उत्पादित कर देश में दूसरे स्थान पर है। प्रति हेक्टेयर उत्पादकता अधिक (78 टन–देश में तीसरे स्थान) होने के कारण उत्पादन क्षेत्र 12 प्रतिशत से कम होते हुए भी उत्पादन अधिक होता है। गन्ना उत्पादक क्षेत्र पश्चिमी घाट के पूर्ववर्ती क्षेत्र में स्थित लावायुक्त काली मिट्टी में स्थित है अहमदनगर, कोल्हापुर, सांगली, पूणे, सोलापुर, नासिक, सतारा औरंगाबाद, उस्मानाबाद आदि प्रमुख गन्ना उत्पादक जिले है ।

तालिका–11.6 : भारत के प्रमुख राज्यों में गन्ना का क्षेत्र एवं उत्पादन (2005–06)

राज्य	क्षेत्रफल		उत्पादन		उपज
	लाख हेक्टे.	प्रतिशत	लाख टन	प्रतिशत	किग्रा/हेक्ट
उत्तरप्रदेश	21.6	51.43	1254.7	44.62	58201
महाराष्ट्र	5	11.9	388.5	13.82	77551
तमिलनाडू	3.4	8.1	351.1	12.49	104671
कर्नाटक	2.2	5.24	182.7	6.5	83411
आंध्र प्रदेश	2.3	5.48	176.6	6.28	76765
गुजरात	2	4.76	145.8	5.19	74010
हरियाणा	1.3	3.1	81.8	2.91	64409
उत्तराखण्ड	1	2.38	61.3	2.18	60733
पंजाब	0.8	1.9	48.6	1.73	57857
बिहार	1	2.38	43.4	1.54	42822
मध्यप्रदेश	0.6	1.43	24.3	0.86	43694
भारत	**42**	**100**	**2811.7**	**100**	**66928**

स्त्रोत: आर्थिक एवं सांख्यकी संचालनालय नई दिल्ली – एग्रिकल्चरल स्टेटिस्टिक्स ऐट ए ग्लांस।

कर्नाटक– भारत के कुल गन्ना उत्पादन का 6.5 प्रतिशत उत्पादित करता है। तटीय क्षेत्र में उपजाऊ मिट्टी, अनुकूल समुद्री जलवायु के कारण गन्ना की उत्पादकता इस राज्य में भी अधिक है। बेलगाँव, बेलारी, माण्डया, कोलार, मैसूर, तुमकूर, रायचूर मुख्य गन्ना उत्पादक जिले हैं।

तमिलनाडु– इस राज्य में गन्ना उत्पादन क्षेत्र कम होते हुए भी प्रति हैक्टेयर उत्पादकता अधिकतम (भारत में सर्वाधिक 105 टन) होने के कारण यह राज्य भारत का 12.5 प्रतिशत गन्ना उत्पादित कर तीसरा प्रमुख गन्ना उत्पादक राज्य है। कोयम्बटूर, उ. एवं प. अर्काट, सलेम, तिरूचिरापल्ली, मदुराई प्रमुख गन्ना उत्पादक जिले हैं। कोयम्बटूर में राष्ट्रीय गन्ना अनुसंधान संस्थान स्थित है, इस राज्य में समुद्रतटीय जलवायु का गन्ना उत्पादन पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है।

आन्ध्र प्रदेश– इस राज्य के गन्ना उत्पादक जिले तटीय क्षेत्र तथा कृष्ण –गोदावरी नदियों के डेल्टाई क्षेत्र में स्थित है। गोदावरी, विशाखापट्टनम, निजामाबाद, कृष्णा, गुन्टूर प्रमुख गन्ना उत्पादक जिले हैं।

पंजाब– इस राज्य के उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व तक गन्ना उत्पादन क्षेत्र एक पट्टी के रूप में विस्तृत है। इसके गुरूदासपुर, जालन्धर. संगरूर, रोपड, पटियाला अमृतसर, फिरोजपुर, लुधियाना जिलों में उत्पादन होता है।

हरियाणा– जिन्द, सोनीपत, अम्बाला, करनाल, रोहतक, हिसार, गुड़गाँव गन्ना उत्पादक जिले हैं।

बिहार– मुख्य गन्ना उत्पादक क्षेत्र तराई के समीपवर्ती क्षेत्र से उत्तर –पूर्वी भाग में स्थित है। चम्पारन, गया, सारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा पटना गन्ना उत्पादक जिले है।

इनके अलावा गुजरात में भावनगर, जूनागढ़, राजकोट, जामनगर, सूरत, अमरेली जिले, राजस्थान में मूंदी, उदयपुर, श्रीगंगानगर, चित्तोड़गढ़ जिले तथा मध्य प्रदेश में मुरैना, ग्वालियर, शिवपुरी में भी गन्ना की कृषि उल्लेखनीय है।

11.3.4 कॉफी (Coffee)

चाय के समान कहवा भी एक पेय पदार्थ है जिसे सर्वप्रथम 17 वीं शताब्दी में कर्नाटक में लगाया गया। बाबाबूदन नामक मुस्लीम फकीर द्वारा इसका पौधा लाकर कर्नाटक में एक पहाड़ी पर लगाया गया। वर्तमान में यह पहाड़ी बाबाबूदन पहाड़ी के नाम से जानी जाती है। भारत विश्व के कुल उत्पादित कहवा का 3.2 प्रतिशत भाग उत्पादित करता है जिसका दो तिहाई भाग विश्व के अन्य देशों में निर्यात कर दिया जाता है। भारत में उत्पादित कुल कहवा में लगभग आधा (48%) अरेबिक कहवा होता है। रोबस्टा और लाइबेरिका कहवा भी पैदा किए जाते हैं।

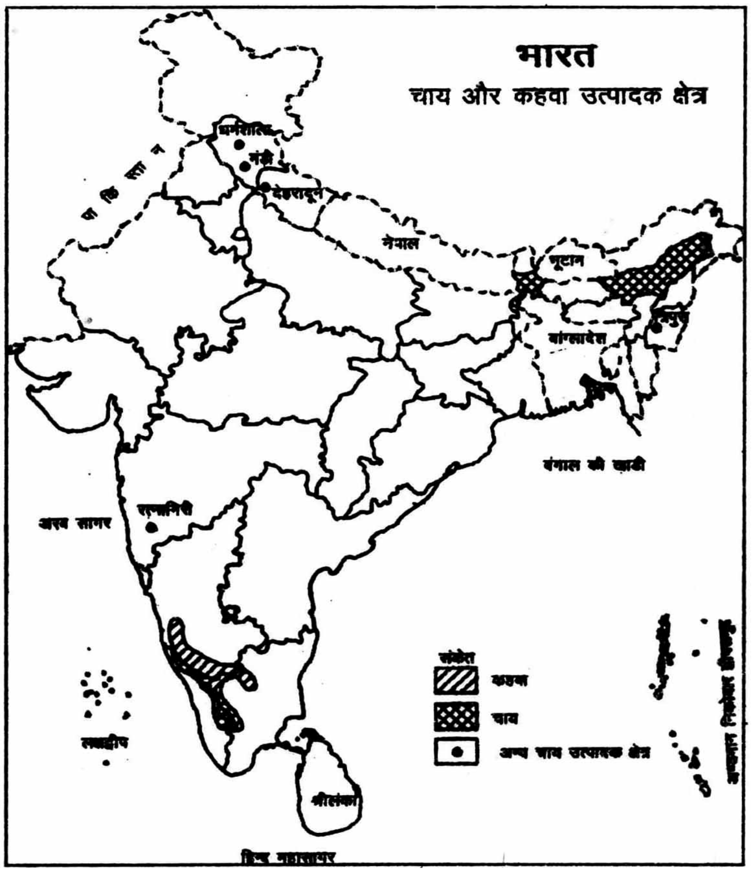

चित्र–11.6 : भारत के चाय एवं कहवा उत्पादक क्षेत्र

तालिका–11.7 : कहवा उत्पादन के प्रमुख राज्य

राज्य	उत्पादन क्षेत्र	उत्पादन	प्रति हैक्टेयर उत्पादन (किग्रा.में)
कर्नाटक	2 लाख हैक्टेयर	2.14 लाख टन	980
केरल	60 हजार हैक्टेयर	63 हजार टन	850
तमिलनाडु	35 हजार हैक्टेयर	22 हजार टन	700

कहवा उत्पादक राज्यों कर्नाटक केरल तथा तमिलनाडु का प्रमुख स्थान है।

कर्नाटक – कहवा उत्पादन में इस राज्य को भारत में लगभग एकाधिकार प्राप्त है जो कुल उत्पादन का 68 प्रतिशत भाग उत्पादित करता है। इस राज्य के दक्षिणी तथा दक्षिणी –पश्चिमी क्षेत्र में स्थित जिलों में कहवा के सघन बागान स्थित है। मुख्य कहवा उत्पादक जिले चिकमंगलूर, शिमोगा, हासन, केडामू माण्डया मैसूर है।

केरल– कोजीकोड, कन्नूर, मल्लापुरम पालघाट आदि जिलों से इस राज्य का सम्पूर्ण कहवा उत्पादित होता है। भारत के कुल उत्पादन का 20 प्रतिशत कहवा उत्पादित करता है।

तमिलनाडु – इस राज्य में सर्वाधिक कहवा का उत्पादन नीलगिरी जिले की नीलगिरी पहाड़ियों पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त मदूरे, तिरूनलवेली, कोयम्बटूर, सेलम, कन्याकुमारी, पेरियार, रामनाथपुरम अन्य कहवा उत्पादन जिले हैं।

महाराष्ट्र में सतारा, रत्नागिरी, कोल्हापुर, साँगली जिलों में आन्ध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम जिले में भी कहवा का उत्पादन हाल ही में प्रारम्भ किया गया है।

कहवा का निर्यात– भारत कुल उत्पादित कहवा का 25 प्रतिशत भाग का स्वयं उपयोग के लिए तथा 75 प्रतिशत कहवा विदेशों में निर्यात करता है। वर्ष 1950–57 में भारत से 20 लाख किग्रा. निर्यात किया गया। यह मात्रा 2001–02 में बढकर 2130 लाख किग्रा. हो गयी है जिसके निर्यात से 1004 करोड़ रुपये प्राप्त हु ए यह निर्यात रुस, कनाडा, ब्रिटेन, स्वीडन, नार्वे, पौलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, इराक आदि देशों में किया जाता है।

11.3.5 चाय (Tea)

चाय एक सामान्य पेय पदार्थ है जिससे स्फूर्तिदायक थीन या टेनिक अम्ल (Theine or Tannic Acid) मिलता है। यह केमिलिया वनस्पति परिवार का सदाबहार पौधा है जिसका उद्भव 16वीं शताब्दी में चीन के चांग जियांग (यांग्टीसी) घाटी से माना गया है। जहाँ से 1840 में लार्ड विलियम बेंटिक द्वारा चीन से लाकर भारत के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में लगाया गया। वर्तमान में भारत चाय उत्पादन की दृष्टि से विश्व में प्रथम तथा निर्यात की दृष्टि से द्वितीय (श्रीलंका प्रथम) स्थान रखता है। भारत के विदेशी व्यापार में 15 प्रतिशत भाग चाय का है। विश्व उत्पादन का 30 प्रतिशत भाग उत्पादित करने के साथ –साथ भारत में लगभग 25 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त है। नकदी फसलों के निर्यात की दृष्टि से चाय का भारत में प्रथम स्थान है।

चाय का उत्पादन, उपयोग एवं निर्यात तीनों पर भारतीय मानसूनी जलवायु का भी प्रभाव पडता है। भारत में चाय रोपण विधि 'द्वारा उत्पादित की जाती है। सर्वप्रथम क्यारियों में पौध तैयार की जाती है। पौध को अक्टूबर –नवम्बर में बागानों में लगाया जाता है। अप्रैल तक पौधों से चाय की

पत्तियाँ तैयार हो जाती हैं। एक पौधा 10 से 15 वर्ष तक चलता है। तथा एक वर्ष में तीन बार चाय की पत्तियाँ प्राप्त होती है।

भारत में चाय उत्पादन क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित किया गया है –

(i) **उत्तरी –पूर्वी क्षेत्र** – असम, पश्चिम बंगाल।

(ii) **उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र**–हिमाचल प्रदेश, उत्तरप्रदेश, उत्तराखण्ड

(iii) **दक्षिणी क्षेत्र**–तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक।

तालिका– 11.8 : चाय उत्पादन राज्य

राज्य	क्षेत्र (लाख हैक्टेयर में)	उत्पादन (2001 में) (हजार टन में)
असम	220.00	457
पश्चिम बंगाल	110.00	186
तमिलनाडु	50.00	102
केरल	38.00	71
भारत	438.00	848.00

असम – चाय उत्पादन का 52 प्रतिशत क्षेत्र रखकर भारत की कुल उत्पादित चाय का 54 प्रतिशत भाग का उत्पादन करता है। यहाँ ब्रह्मपुत्र एवं सुरमा नदी की घाटी मुख्य चाय उत्पादन क्षेत्र हैं। शिवसागर, कछार, लखीपुर, दरांग, नवगाँव, कामरूप, गोलपाडा, सिलचर मुख्य चाय उत्पादक जिले है।

पश्चिम बंगाल – भारत में उत्पादित चाय का 22 प्रतिशत भाग उत्पादित कर यह राज्य चाय उत्पादन में दूसरा स्थान रखता है। दार्जिलिंग मुख्य चाय उत्पादक जिला है। यहाँ 1800 मीटर की ऊँचाई तक चाय उत्पादन किया जाता है। पुरूलिया, जलपाइगुडी, कुचबिहार अन्य चाय उत्पादक जिले हैं।

तमिलनाडु – इस राज्य में चाय का उत्पादन नीलगिरी तथा अन्नामलाई पहाड़ी क्षेत्र में किया जाता है। भौगोलिक दशाओं की अनुकूलता के कारण यहाँ उत्तम किस्म की चाय का उत्पादन होता है। यहाँ की चाय यूरोपीय देशों में निर्यात की जाती है। नीलगिरी, अन्नामलाई, मदुराई. कन्याकुमारी, कोयम्बटूर, तिरूनवेली मुख्य चाय उत्पादक जिले हैं।

केरल – कोटटायम, क्यूलोन ,त्रिवेंद्रम, त्रिचूर, पालघाट, कोजीकोड, कन्नानोर, मालाबार, वायनाड, पालक्काड जिले प्रमुख चाय उत्पादक क्षेत्र हैं।

कर्नाटक के कुर्ग, शिमोगा. कादूर, मैसूर, हसन जिले, **हिमाचल प्रदेश** के काँगडा, मण्डी जिले, **उत्तरांचल** के देहरादून, अल्मोडा, चम्पावत, गढवाल जिले, **झारखण्ड** के राँची, हजारीबाग जिले, **बिहार** के पूर्णिया तथा **महाराष्ट्र** के रत्नागिरी, सतारा, सांगली आदि जिलों में भी चाय का उत्पादन होता हैं। इनके अतिरिक्त उत्तरी–पूर्वी राज्यों–मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैण्ड की पहाड़ियों पर भी थोड़ा बहुत चाय का उत्पादन किया जाता है।

भारत में चाय उत्पादन के साथ –साथ प्रति हैक्टेयर उत्पादन में भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तीव्र गति से वृद्धि हुई है। विश्व के अन्य देशों के विपरीत भारत में उत्पादकता अधिकतम है। वर्तमान में भारत में चाय की औसत 1885 किग्रा. प्रति हैक्टेयर है लेकिन तमिलनाडु में

अधिकतम 1932 किग्रा. है। जबकि बिहार में निम्नतम 50 किग्रा. ही है। उत्पादन एवं उत्पादकता के साथ – साथ चाय का उपयोग भी इस अवधि में 362 ग्राम प्रति व्यक्ति से बढ़कर 680 ग्राम प्रति व्यक्ति वार्षिक हो गया है।

तालिका – 11. 9 : चाय का उत्पादन, खपत एवं व्यापार

(मात्रा : मिलियन किग्रा मूल्य करोड़ रु:)

वर्ष	उत्पादन	निर्यात		घरेलू खपत
	मात्रा	मात्रा	मूल्य	
1997–98	835.6	211.3	20003.2	597
1998–99	855.2	205.9	2191.8	615
1999–2000	836.8	188.9	1796.3	633
2000–01	848.4	203.6	1889.8	653
2001–02	847.4*	190.0	1695.8	673
2002–03	80.00	184.4	1665.1	693
2003–04	80.00	183.1	1636.9	714

स्त्रोत: वाणिज्यिक तथा उद्योग मंत्रालय

चाय का विश्व व्यापार – भारत विश्व में चाय निर्यातक देशों में श्रीलंका के बाद दूसरा स्थान रखता है। ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, इटली, फ़्रांस, पौलेण्ड, जर्मनी, उत्तरी अमेरिकी देश, जापान, पश्चिम एशियाई देश, नार्वे, सूडान. आदि भारतीय चाय के मुख्य ग्राहक हैं लेकिन कुल निर्यात चाय का 60 प्रतिशत अकेले इग्लैण्ड को किया जाता है। 1950–51 में भारत से 1.95 लाख टन चाय (79.87 करोड़ रुपये) का निर्यात किया गया जो बढकर 2001 में 204 लाख टन (1890 करोड़ रुपये) हो गया हैं।

11.3.6 तिलहन (Oilseeds)

भारत के कुल 278.6 लाख हेक्टेयर (2005–06) कृषित क्षेत्र पर प्रमुख नौ तिलहन फसलों का विस्तार है। देष का लगभग 13.6 प्रतिशत कृषित क्षेत्र तिलहन। के अंर्तगत है। सर 1950–51 में इन फसलों के अंर्तगत 107 लाख हेक्टेयर भूमि थी। इन वर्षो में उत्पादन 51.6 लाख टन से बढ़कर 279 लाख टन हो गया है। तिलहनों में मूंगफली, सोयाबीन, राई एवं सरसों, अरण्डी, तिल, अलसी, आदि प्रमुख है।

तालिका – 11.10 : नौ प्रमुख तिलहनों के अन्तर्गत भूमि, उत्पादन, उत्पादकता – 2005–06

राज्य	क्षेत्रफल		उत्पादन		उपज
	लाख हेक्टे.	प्रतिशत	लाख टन	प्रतिशत	किग्रा./ हेक्टे
राजस्थान	52.6	18.9	59.6	21.3	1134
मध्यप्रदेश	56.7	20.4	57.2	20.4	1009
गुजरात	30.3	10.9	46.8	16.7	1544
महाराष्ट्र	36.5	13.1	33.7	12.0	925

आन्ध्रप्रदेश	29.2	10.5	20.4	7.3	698
कर्नाटक	28.6	10.3	17.2	6.1	600
तमिलनाडू	7.1	2.5	11.5	4.1	1624
उत्तरप्रदेश	10.7	3.8	10.7	3.8	993
हरियाणा	7.3	2.6	8.3	3.0	1124
प. बंगाल	6.4	2.3	6.1	2.2	952
उड़ीसा	3.3	1.2	1.9	0.7	565
बिहार	1.4	0.5	1.4	0.5	982
आसाम	2.4	0.9	1.1	0.4	465
भारत	**278.6**	**100.0**	**279.8**	**100.0**	**1004**

स्रोत : आर्थिक एवं सांख्यकी संचालनालय नई दिल्ली – एग्रिकल्चरल स्टेटिस्टिक्स ऐट ए ग्लांस, 2007

मूंगफली (Groundnut)

भारत मूंगफली के उत्पादन में विश्व में दूसरा बड़ा देश है। इसका प्रमुख उपयोग तेल में किया जाता है। साबुन बनाने तथा वनस्पति घी बनाने में भी उपयोग होता है। इससे बनी खली का उपयोग पशुओं के लिए चारा रूप में होता है। मूंगफली का उपयोग कई रूपों में किया जाता है। इससे खेत की उर्वरता में वृद्धि होती है।

भौगौलिक दशायें – मूंगफली उष्ण कटिबंधीय पौधा है। इसे ऊंचे तापमान (20^0–30^0से ग्रे) की आवश्यकता होती है। यह मुख्यरूप से उन क्षेत्रों में पैदा की जाती है जहाँ औसत वार्षिक वर्षा 50 से 90 सेमी होती है। सूखा तथा पाला से इसको नुकसान होता हे। इसके लिए हल्की दोमट एवं बुलाई मिट्टी उपयुक्त रहती है। दक्षिण की काली तभी लाल मिट्टी भी उपयुक्त मानी जाती है। कम वर्षा के क्षेत्रों में सिंचाई आवष्यक होती है। यह खरीफ की फसल है।

उत्पादक क्षेत्र : – भारत में मूंगफली की कृषि दक्षिण एवं पश्चिम भारत में की जाती है। देश की आधी से अधिक (53.7 प्रतिषत) मूँगफली पश्चिमी तीन राज्यों – गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान में उत्पन्न की जाती है। इन राज्यों में देश के कुल मूंगफली के क्षेत्र का केवल 40.1 प्रतिशत है। दक्षिण भारत के तीन राज्यों – आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं महाराष्ट्र में मूंगफली के कुल क्षेत्रफल का 52.5 प्रतिशत है और इन राज्यों से देश की 39.3 प्रतिशत मूंगफली उत्पन्न को जाती है। अन्य राज्यों में मध्यप्रदेश, उड़ीसा और उत्तरप्रदेश मुख्य हैं(तालिका 11.11)।

तालिका – 11.11: भारत के प्रमुख राज्यों में मूंगफली का क्षेत्र एवं। उत्पादन 2005–06

राज्य	क्षेत्रफल		उत्पादन	
	लाख हेक्टे	%	लाख टन	%
गुजरात	19.5	28.93	33.9	42.43
आन्ध्रप्रदेश	18.8	27.89	13.7	17.15
तमिलनाडु	6.2	9.2	11	13.77
कर्नाटक	10.4	15.43	6.7	8.39

राजस्थान	3.2	4.75	4.9	6.13
महाराष्ट्र	4.3	6.38	4.1	5.13
मध्यप्रदेश	2.1	3.12	2.3	2.88
उड़ीसा	0.9	1.34	1.1	1.38
उत्तरप्रदेश	1.1	1.63	0.9	1.13
भारत	**67.4**	**100**	**79.9**	**100**

स्रोत : आर्थिक एवं सांख्यकी संचालनालय नई दिल्ली– एग्रिकल्चरल स्टेटिस्टिक्स ऐट ए ग्लांस, 2007

गुजरात – यह देश का प्रथम (42.4%) प्रमुख मूंगफली उत्पादक राज्य हैं। यहाँ जूनागढ़, राजकोट, अमरेली, साबरकांठा एवं पंचमहल जिलों से मूंगफली का उत्पादन होता है।

आन्ध्रप्रदेश: – भारत में मूंगफली उत्पादक राज्यों में यह दूसरे स्थान पर है। यह देश की 17.5. 7% मूंगफली उत्पन्न करता है; प्रमुख उत्पादक जिले चित्तूर, करनूल, अनन्तपुर हैं।

तमिलनाडु : – तमिलनाडु राज्य का मूँगफली के उत्पादन में देश में तीसरा स्थान (13.8%) है। यहाँ मूंगफली की उपजदर (1632 किग्रा प्रति हेक्टेयर) सर्वाधिक है। प्रमुख मूंगफली उत्पादक जिले उत्तरी तथा दक्षिणी अर्काट, सेलम, तिरूचिरापल्ली एवं कोयम्बटूर है।

कर्नाटक : – इस राज्य का मूंगफली उत्पादन में देश में चौथा स्थान (8.4%) है। धारवाड़, गुलबर्गा, बेल्लारी, टुमकुर. रायचूर तथा कोलार प्रमुख मूंगफली उत्पादक जिले हैं।

राजस्थान : – राजस्थान के कुल उत्पादन का दो –तिहाई राज्य के पूर्वी भाग में स्थित जयपुर, चित्तौड़गढ़, सवाईमाधोपुर, भीलवाड़ा तथा टोंक जिलों से प्राप्त होता है।

महाराष्ट्र : – शोलापुर, कोल्हापुर, जलगाँव, सतारा व धूलिया प्रमुख मूंगफली उत्पादक जिले हैं।
अन्य मूंगफली उत्पादक राज्यों में मध्यप्रदेश (खरगोन, धार, मंदसौर) तथा उत्तरप्रदेश (एटा, मैनपुरी बदायूं सीतापुर, हरदोई) हैं।

सोयाबीन (Soyabean)

भारत में तिलहनों में सोयाबीन का प्रथम स्थान है। यह नगदी फसल है और इसका विस्तार बड़ी तेजी से हुआ है। इसके मुख्य कारण मूंगफली जैसी फसलों की तुलना में उपज दर का अधिक होना, छोटा उत्पादन काल फलतः उसी भूमि पर दूसरी फसल सम्भव होना, फलीदार फसल (leguminous crop) होना जिससे मिट्टी की उर्वराशक्ति में वृद्धि, अपेक्षया कम उपजाऊ भूमि में पैदा होना और औद्योगिक कच्चा माल होना हैं। इन गुणों के कारण ज्वार, कपास और मूंगफली की जगह सोयाबीन की खेती का विस्तार हुआ है। इसीलिए सन् 2005–00 में देश के कुल तिलहन उत्पादन में सोयाबीन का योगदान 29.6 प्रतिशत है। इसका विविध रूपों में प्रयोग किया जाता है। यह एक महत्वपूर्ण औद्योगिक कच्चा माल है जिससे कई खाद्य वस्तुएं बनाई जाती हैं। इनमें तेल मुख्य है। बचा भाग खली के रूप में पशुओं को खिलाया जाता है।

भौगोलिक दशायें एवं उत्पादन – सोयाबीन उपोष्ण कटिबंध की फसल है। इसीलिए तापमान कम नहीं होना चाहिये। इसे 200 से 300 से ग्रे. के मध्य तापमान की आवश्यकता रहती है। प्रारंभ में अधिक वर्षा लाभदायक होती है। लगभग 100 से 150 सेमी वार्षिक वर्षा उचित रहती है। कम वर्षा होने पर सिंचाई करना पड़ती है। देश में ऐसी दशाएं खरीफ ऋतु में होती हैं। इसके लिए गहरी

काली मिट्टी अच्छी होती है। भूमि सामान्य ढाल वाली होना चाहिये, क्योंकि स्थिर पानी इसकी जड़ों को नुकसान पहुंचाता है।

देश में सोयाबीन का सन् 2005–06 में कुल उत्पादन 82.7 लाख टन था। मध्यप्रदेश सबसे बड़ा सोयाबीन उत्पादक राज्य है। सोयाबीन का प्रचार –प्रसार इस राज्य से ही प्रारंभ हुआ था। राज्य के सभी भागों में सोयाबीन पैदा किया जाता है, किन्तु पश्चिमी मध्यप्रदेश विशेषकर मालवा पठार प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ इन्दौर, देवास, रायसेन, सागर, विदिशा, राजगढ़, सीहोर, धार इत्यादि जिले महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। सन् 2005–06 में इस राज्य में 45 लाख टन सोयाबीन पैदा गया जो देश के कुल उत्पादन का 54.4 प्रतिशत था। महाराष्ट्र (25.3 लाख टन) देश का दूसरा बड़ा सोयाबीन उत्पादक राज्य है। (8.6 लाख टन, 10.4 प्रतिशत) तथा आन्ध्र प्रदेश का उत्पादन भी उल्लेखनीय हैं।।

राई एवं सरसों (Mustard)

राई एवं सरसों भी तेल देने वाली फसल है। ये रबी मौसम की फसल है। भारत में उत्पादन में सोयाबीन और मूंगफली के बाद तीसरा स्थान है । राई –सरसों का सफलता पूर्वक उत्पादन उन भागों में किया जाता है जहाँ तापमान 200 से 250 से ग्रे. तक और वार्षिक वर्षा 35–100 सेमी तक होती हो। कुहरा –पाला, अधिक जल इसको नुकसान पहुंचाता, है। इसके लिए नमी धारण करने वाली दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। यह अच्छी जल निकास वाली समतल भूमि पर बोया जाता है। राई एवं सरसों का उत्पादन प्रमुखत : उत्तरी राज्यों में होता है। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, पश्चिमी कमल तथा हरियाणा प्रमुख राई सरसों उत्पादक राज्य है । इस पॉच राज्यों में देश के कुल राई –सरसों के क्षेत्र का 81 प्रतिशत है तथा ये देश का 84.1, प्रतिशत राई –सरसों का उत्पादन करते है । अन्य उत्पादक राज्यो मे असम, गुजरात, बिहार, जम्मू – कश्मीर और पंजाब हैं।

भारत में लगभग 42 (2000–01) लाख टन राई राव सरसों का उत्पादन होता है। **राजस्थान** देश का प्रथम उत्पादक राज्य है जो देश का एक –तिहाई (31.2%) राई एवं सरसों का उत्पादन करता है। यहाँ के दक्षिणपूर्वी ज़िलो में राई सरसो की कृषि की जाती है। **उत्तरप्रदेश** दूसरा उत्पादक (20.3%) राज्य है। यहाँ मिर्जापुर, कानपुर, इटावा. फैजाबाद, सीतापुर एवं सहारनपुर जिलों में इनकी खेती होती है। **मध्यप्रदेश** के मुरैना, भिण्ड, ग्वालियर, दतिया जिलें **पश्चिम बंगाल** के मालदा, नादिया, मुर्षिदाबाद, बिहार के शाहाबाद, चंपारन, पूर्णिया जिले **गुजरात** का मेहसाना, **जम्मू–कश्मीर** में अनंतनाग, पंजाब में अमृतसर, भटिंडा, फिरोजपुर, गुरूदासपुर उल्लेखनीय राई सरसों उत्पादक जिले हैं।

अन्य तिलहन फसलों में अरण्डी का भारत में चौथा स्थान है। सन् 2000–01 में देश में 8.6 लाख टन अरण्डी का उत्पादन हुआ था। प्रमुख उत्पादक राज्य गुजरात है जो देश के कुल अरण्डी उत्पादन का लगभग 73.8 प्रतिशत भाग का उत्पादन करता है। तिल देश की पाँचवी तिलहन फसल है। देश में तिल का सन् 2000–01 में 5.9 लाख टन उत्पादन हुआ था। प्रमुख उत्पादक राज्य गुजरात, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र हैं। अलसी का देश में 1.9 लाखटन उत्पादन होता है। प्रमुख उत्पादक राज्य मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और बिहार हैं।

11.4 फसल संयोजन एवं कृषि प्रादेशीकरण (crop Combinations and Agricultural Regionalization)

कृषि प्रदेशों का निर्धारण कृषि दशाओं, फसल उत्पादन की समरूपता तथा उत्पादन विधि एवं भूमि उपयोग के आधार पर किया जाता है। भारत में भौगोलिक विभिन्नता के कारण कृषिगत फसलों कृषि उत्पादन विधियों में विविधता पायी जाती है। जिसके कारण अलग– अलग विद्वानों ने भारत के कृषि प्रदेशों का विभाजन किया है। कृषि प्रदेशों के सीमांकन में विद्वानों ने कृषि की समरूपता, विविध फसल, फसल संयोजन, फसलों एवं पशुओं का साहचर्य, कृषि उत्पादन विधि, श्रम, पूजा, का उपयोग, उत्पादित कृषिगत फसलों का उपयोग, कृषि संयन्त्र तथा आवास सम्बन्धी दशाओं आदि को ध्यान मे रखकर किया जाता है।

रन्धावा ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक "Agricultural and Animal Husbandry in India" प्रादेशिक भिन्नता, फसल उत्पादन विशेषता एवं पशुपालन के आधार पर भारत को पाँच कृषि प्रदेशों में विभाजित किया है –

1. शीतोष्ण हिमालय कृषि प्रदेश
   (अ)पूर्वी हिमालय कृषि प्रदेश
   (ब) पश्चिमी हिमालय कृषि प्रदेश
2. उत्तरी शुष्क गेहूँ उत्पादन कृषि प्रदेश
3. पूर्वी चावल उत्पादक कृषि प्रदेश
4. दक्षिणी मोटे अनाज उत्पादक कृषि प्रदेश
5. पश्चिमी समुद्र तटीय कृषि प्रदेश

कुमारी पी. सेन गुप्ता के अनुसार कृषि प्रदेश

पी. सेन गुप्ता ने अपनी पुस्तक Economic Regionalisation of India में सर्वप्रथम भारत को क्रमबद्ध कृषि प्रदेशों में विभाजित किया। सर्वप्रथम जलवायु के आधार पर भारत को चार कृषि पेटियों में इसके बाद धरातलीय विविधता एवं जलवायु को आधार मानकर 11 उप कृषि प्रदेशों में तथा फ्सल साहचर्यता की विविधता के आधार पर 60 लघु उप कृषि प्रदेशों में विभाजित किया है।

(1) **हिमालय कटिबंधीय कृषि प्रदेश–** इसके अन्तर्गत उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र सम्मिलित किया है, जहाँ 100 से 250 सेमी. वर्षा होती है। इसे दो उप भागों में विभाजित किया है –

(अ) पश्चिमी हिमालय प्रदेश –

(i) कश्मीर हिमालय जहाँ मुख्य रूप से गेहूँ–चावल, मक्का का उत्पादन किया जाता है।

(ii) कश्मीर घाटी प्रदेश।

(ब) पूर्वी हिमालय प्रदेश – इसे (i) दार्जिलिंग, सिक्किम हिमालय तथा (ii) अरूणाचल में विभाजित किया गया है। इस क्षेत्र में चावल, चाय, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि फसलों का उत्पादन किया जाता है।

2. **आर्द्र कृषि प्रदेश–** इसका विस्तार पश्चिम बंगाल, मेघालय, झारखण्ड, उत्तरी –पूर्वी राज्यों में पाया जाता है जहाँ 100 से 250 सेमी. वार्षिक वर्षा होती है। काँप मिट्टी रख तटीय मैदानी भाग के कारण इस प्रदेश में विविध फसलों का उत्पादन किया जाता है।

चावल, चाय, जूट, रबर, नारियल, विविध मसाले इस प्रदेश की प्रमुख फसलें हैं।

फसल संयोजकता के आधार पर इसे निम्न उप प्रदेशों में विभाजित किया गया है –

(अ) नदी घाटी एवं डेल्टाई उप कृषि प्रदेश – गंगा एवं महानदी डेल्टा से ब्रह्मपुत्र नदी घाटी तक इसका विस्तार पाया जाता है। इस प्रदेश को (i) ऊपरी ब्रह्मपुत्र घाटी (ii) निम्न ब्रह्मपुत्र घाटी (iii) जलपाइगुडी क्षेत्र (iv) भागीरथी नदी घाटी डेल्टा एवं माल्दा प्रदेश (v) गंगा नदी डेल्टा का पश्चिमी क्षेत्र तथा (vi) उड़ीसा तट में विभाजित किया गया ।

(ब) उ. पू प्रायद्वीपीय पठारी कुषि प्रदेश – इस उप प्रदेश में चावल मक्का, ज्वार– बाजरा, चना, तिलहन, गेहूँ आदि फसलों का उत्पादन किया जाता है। इसे निम्नांकित लघु प्रदेशों में विभाजित किया जाता है –

(i) छोटा नागपुर, उत्तरी उड़ीसा का पठारी क्षेत्र।

(ii) ऊपरी महानदी घाटी क्षेत्र।

(iii) दक्षिणी उड़ीसा की पहाडियाँ, बस्तर पठार तथा वेनगंगा बेसिन ।

(iv) मध्यवर्ती मध्य प्रदेश क्षेत्र ।

(स) पूर्वी पहाड़ी एवं पठारी प्रदेश – पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्र होने के कारण इस प्रदेश में आदिवासियों द्वारा स्थानान्तरित कृषि की जाती है। चावल, जूट, गन्ना, चाय, आलू यहाँ की प्रमुख फसलें हैं। इसे निम्न लघु क्षेत्रों में बाँटा गया है –

(i) मणिपुर – मिजो क्षेत्र

(ii) गारो पहाड़ी क्षेत्र।

(iii) नागालैण्ड, उत्तरी कछार तथा मिकिर पहाड़ी क्षेत्र।

(iv) कछार घाटी क्षेत्र

(v) खासी, जयन्तिया पहाड़ी क्षेत्र।

(द) पश्चिमी समुद्र तटीय कृषि प्रदेश – इस क्षेत्र में उच्च तापमान एवं तीव्र वर्षा कारण चाय, कहवा, रबड़ नारियल, गर्म मसालों का उत्पादन किया जाता है। इसे निम्न लघु क्षेत्रों में बाँटा गया है–

(i) खम्भात तटीय क्षेत्र

(ii) उत्तरी कोकंण तटीय क्षेत्र

(iii) दंक्षिणी कोंकण तट

(iv) कर्नाटक का तटीय क्षेत्र

(v) उत्तरी मालाबार तट

(vi) दक्षिणी मालाबार तट

3. **उपार्द्र कृषि प्रदेश –** इस प्रदेश 75 से 100 सेमी. औसत वार्षिक वर्षा के साथ साथ नहरों द्वारा सिंचाई भी की जाती है। गन्ना, गेहूँ चावल, जूट, मक्का, ज्वार, मूंगफली, कपास,

तिलहन, तम्बाकू यहाँ की प्रमुख फसलें हैं। इस प्रदेश के लगभग 71 प्रतिशत भाग पर कृषि फसलों का उत्पादन किया जाता है।

इसे दो मुख्य उप भागों में बाँटा गया है –

(अ) ऊपरी तथा मध्य गंगा का मैदान – नदियों द्वारा लायी उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी, पर्याप्त वर्षा, नहरों द्वारा सिंचाई तथा उत्तम जलवायु के कारण इस क्षेत्र में सघन कृषि फसलें उत्पादित की जाती है। गेहूँ चावल, गन्ना यहाँ की प्रमुख फसलें है।

इस प्रदेश को निम्न लघु प्रदेशों में विभाजित किया गया है –

(i) ऊपरी गंगा यमुना दोआब

(ii) निम्न गंगा यमुना दोआब

(iii) रूहेलखण्ड मैदानी क्षेत्र

(iv) ऊपरी गंगा नदी का तराई क्षेत्र

(v) पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार का चम्पारन क्षेत्र

(vi) उत्तर प्रदेश का तराई क्षेत्र तथा बिहार का उत्तरी मैदानी क्षेत्र

(vii) गंगा नदी का दक्षिणी मैदानी भाग

(viii) अवध का मैदान

(ब) उपार्द्र प्रायद्वीपीय पठार– इस क्षेत्र मे वर्षा की मात्रा के अनुसार ज्वार–बाजरा, गेहूँ कपास, चना, तिलहन, मूंगफली, गन्ना आदि फसलों का उत्पादन किया जाता है। कपास, गेहूँ गन्ना फसलों की इस प्रदेश में प्रधानता पायी जाती है।

इसे निम्न लघु प्रदेशों में विभाजित किया गया है–

(i) मालवा पठार तथा राजस्थान का समीपवर्ती क्षेत्र

(ii) ताप्ती नदी की घाटी

(iii) द. पू महाराष्ट्र पठार

(iv) उत्तरी तेलगांना पठार

(v) द. तेलगांना पठार एवं कर्नाटक पठार

(vi) बुन्देलखण्ड का उत्तरी भाग

(vii) दक्षिणी बुन्देलखण्ड क्षेत्र

(viii) ताप्ती नदी घाटी का ऊपरी भाग तथा वर्धा नदी की घाटी

(ix) तमिलनाडु पठारी क्षेत्र

(x) दक्षिणी मालनाद तथा मेदान क्षेत्र।

(स) उपार्द्र समुद्र तटीय प्रदेश– तटीय स्थिति होने के कारण इस प्रदेश में चावल, ज्वार, बाजरा, तिलहन, दालें आदि फसलों का उत्पादन किया जाता है। इस क्षेत्र में उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी की प्रधानता पायी जाती है। इसे निम्न लघु क्षेत्रों में विभाजित किया गया है–

(i) आन्ध्र प्रदेश का उत्तरी तटीय क्षेत्र

(ii) कृष्णा–गोदावरी नदियों का डेल्टाई क्षेत्र

(iii) आन्ध्र–प्रदेश का दक्षिणी तटीय क्षेत्र

(iv) तमिलनाडु का उत्तरी तट–जिसका विस्तार तजावूंर से चिग्लेपुट तक है।

(v) तमिलनाडु का द. पू. तटीय क्षेत्र

(vi) गुजरात तटीय क्षेत्र।

4. **शुष्क कृषि प्रदेश–** इस कृषि प्रदेश में वर्षा का औसत 50 सेमी. से भी कम पाया जाता है। इसलिए यहाँ शुष्क जलवायु में उत्पादित फसलें बोयी जाती हैं। इसे दो उप भागों में विभाजित किया गया है–

(अ) शुष्क उत्तरी –पश्चिमी प्रदेश – वर्षा की कमी के कारण इस क्षेत्र में जहाँ सिंचाई सुविधाएँ है फसलों का उत्पादन किया जाता है। गेहूँ कपास, चना, ज्वार –बाजरा, तिलहन यहाँ की मुख्य फसलें।

इसे निम्न लघु प्रदेशों में विभाजित किया गया है –

(i) थार मरूस्थलीय क्षेत्र

(ii) राजस्थान, दिल्ली उ. पू. उत्तर प्रदेश

(iii) पंजाब का उत्तरी मैदानी क्षेत्र

(iv) अरावली पहाड़ी क्षेत्र

(v) कच्छ प्रायद्वीप तथा सौराष्ट्र प्रदेश

(ब) शुष्क प्रायद्वीपीय कृषि प्रदेश– वृष्टि छाया क्षेत्र में आने के कारण इस प्रदेश में वर्षा का औसत निम्न है। इसलिए यहाँ ज्वार –बाजरा शुष्क फसलों का उत्पादन होता है। सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्रों में गेहूँ कपास, मूंगफली, तिलहनों का उत्पादन किया जाता है।

इस प्रदेश को निम्न लघु क्षेत्रों में विभाजित किया गया है –

(i) ताप्ती –नर्मदा नदी घाटी दोआब क्षेत्र

(ii) ऊपरी गोदावरी नदी घाटी क्षेत्र

(iii) ऊपरी भीमा –कृष्णा नदी घाटी क्षेत्र

(iv) तुगंभद्रा नदी घाटी क्षेत्र

(v) रॉयलसीमा पठारी क्षेत्र।

जसवीर सिंह के अनुसार भारत के कृषि प्रदेश

जसबीर सिंह ने भारत को तरह कृषि प्रदेशों में विभक्त किया है। इस वर्गीकरण में अनुभाविक, गुणात्मक तथा साख्यिकीय विधियों को समाहित किया गया है। भारत के कृषि –प्रदेश निर्धारण में विरिल सी (1936) द्वारा सुझाये गये 5 मापदण्डों को अपनाया है। सिंह द्वारा निर्धारित किये गये तेरह कृषि प्रदेश (चित्र 11.7) निम्न हैं –

(1) **तर चावल कृषि (Wet Paddy farming) –** तर चावल कृषि प्रदेश भारत के पूर्वी भागों में स्थित है। ये क्षेत्र मिजो–मणिपुर पहाड़ी क्षेत्र, त्रिपुरा के मैदान, मेघालय पठार एवं आसाम का पहाड़ी और घाटी क्षेत्र, पश्चिमी बंगाल का मैदान और बेसिन क्षेत्र, बालासोर मैदान, महानदी डेल्टा और बेसिन क्षेत्र, गढजात की पहाड़ियां, रांची पठार, चतरापुर का मैदान, उड़ीसा का पूर्वी घाट क्षेत्र एवं आन्ध्रप्रदेश का उत्तरी तटीय मैदान में फैले हुए हैं। इन क्षेत्रों में अधिक वर्षा के कारण तर चावल पैदा किया जाता है। लगभग 70 प्रतिशत कृषित भूमि पर चावल होता है। यहाँ सिंचाई का प्रयोग कम होता है। इन भागों में ट्रेक्टर, लोहे के हल आदि आधुनिक यंत्रों

का प्रयोग कम ही होता है। किसान अभी भी कृषि के लिए पशु शक्ति पर निर्भर हैं। इन क्षेत्रों में उत्पादकता मध्यम है।

(2) **चावल प्रधान मोटे खाद्यान्न कृषि (Paddy Dominance with Coarse Foodgrain Farming) –** इस कृषि प्रदेश में चावल के साथ –साथ मोटे अनाज भी पैदा किये जाते हैं। यह प्रदेश तर –चावल कृषि प्रदेश से लगा हुआ है। वर्षा की मात्रा कम होने तथा समतल भूमि न होने के कारण मोटे अनाज पैदा होते हैं। इस कृषि प्रदेश का विस्तार उत्तर –पूर्वी हिमालय, बिहार का मैदान, हजारीबाग पठार, बघेलखण्ड पठार, छत्तीसगढ़ बेसिन, सतपुड़ा श्रेणी का पूर्वी भाग, दण्डकारण्य, चांदा का मैदान,गोदावरी बेसिन, आन्ध्रप्रदेश का पूर्वीघाट क्षेत्र, गोदावरी –कृष्णा डेल्टा, आन्ध्रप्रदेश का दक्षिणी तटीय मैदान, कोंकण और पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल पर है। यहाँ उत्तम प्रकार के खाद्यान्न लगभग आधी कृषित भूमि पर तथा मोटे अनाज एक चौथाई भूमि पर बोये जाते हैं। अधिकांश कृषि पशुओं पर निर्भर है। सिंचाई का प्रयोग कम किया जाता है। लोहे के हल की जगह अभी भी लकड़ी के हलों का प्रयोग किया जाता है। कृषि की उत्पादकता उच्च भागों में कम किन्तु तटीय मैदानों में अधिक है ।

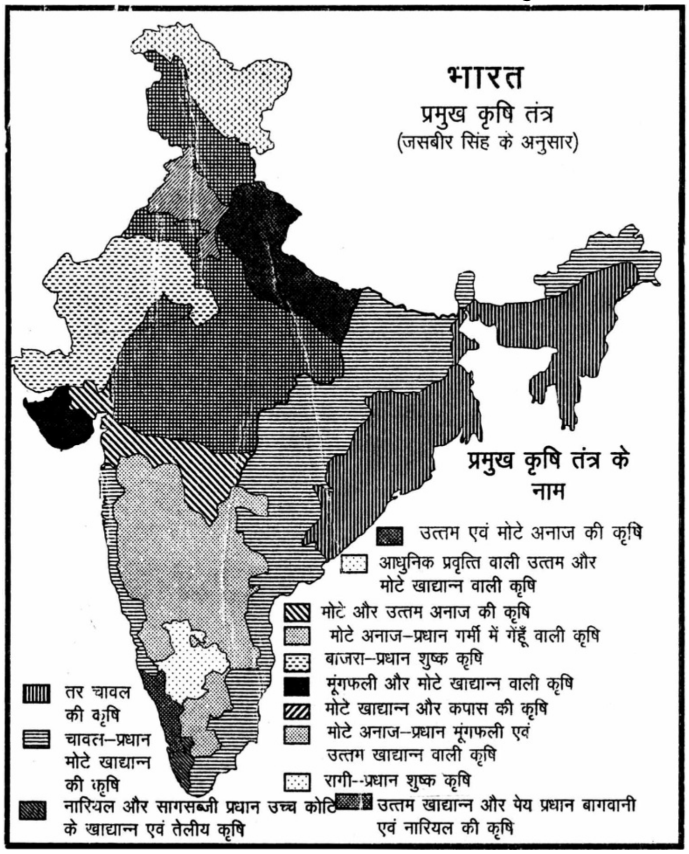

चित्र – 11.7 : जसबीर सिंह के अनुसार भारत के कृषि प्रदेश.

(3) **नारियल और सागसब्जी प्रधान तथा उच्च कोटि के खाद्यान्न एवं तेलीय कृषि (Cocount and Horticuture Dominonce with fine Foodgrains and Oilericulture Farming)–** यह कृषि प्रदेश केरल राज्य में पाया जाता हैं,। इस राज्य के दक्षिणी मैदानी भाग और दक्षिण की पहाड़ी क्षेत्रों पर इसका विस्तार है। इस कृषि प्रदेश में नारियल, साग –

सब्जी, चावल तथा वाली फसलों का उत्पादन होता है। कृषि में यंत्रों का प्रयोग कम होता है! ट्रैक्टर का उपयोग नही होता है। सिंचाई का अनुपात मध्यम अर्थात् लगभग एक तिहाई कृषित भूमि पर सिंचाई की जाती है। कृषित भूमि पर किसानों का दबाव अधिक है। कृषि की उत्पादकता काफी अधिक है।

(4) **उत्तम खाद्यान और पेय प्रधान तथा बागवानी नारियल कृषि (Fine Foodgrains and Beverages Dominance with Horticulture and Coconut Farming)** – यह कृषि–प्रदेश पश्चिमी घाट के सहारे दक्षिणी भारत में केरल राज्य पर फैला है। इसका विस्तार उत्तरी केरल के पहाड़ी क्षेत्र, उत्तरी केरल का मैदानी भाग और पश्चिमी घाट का दक्षिणी भाग पर है। इस प्रदेश में चावल जैसे खाद्यान्न, चाय –काफी आदि पेय फसलें, बागवानी (साग – सब्जी, फल) तथा नारियल पैदा किये जाते हैं। सिंचाई तथा कृषि यंत्रों का प्रयोग कम किया जाता है किन्तु कृषकों का अनुपात यहां अधिक है। कृषि उत्पादकता अधिक से बहुत अधिक है।

(5) **उत्तम और मोटे खाद्यान्न की कृषि (Fine and Coarse Foodgraing Farming),** यह कृषि प्रदेश उत्तराखण्ड, पश्चिमी और पूर्वी उत्तरप्रदेश के मैदान तथा उच्च भूमि पर फैला हुआ है। इन क्षेत्रों के लगभग आधे कृषित भूमि पर उच्चकोटि के खाद्यान्न तथा एक –तिहाई भूमि पर मोटे अनाज पैदा होते हैं। लगभग एक तिहाई से अधिक कृषित भूमि पर सिंचाई की सुविधायें विकसित हैं। कृषकों की संख्या का अनुपात बहुत अधिक है। यहां के कृषक लकड़ी के हल की तुलना में आधुनिक लोहे के हलों का प्रयोग कृषि में अधिक करते हैं। किन्तु ट्रेक्टरों का उपयोग पूर्वी तथा पहाड़ी क्षेत्रों में कम होता है। नदियों के दोआब, सिंचित क्षेत्र तथा उर्वरक एल्युवियम मिट्टी के कारण उत्पादकता मैदानी भागों में अधिक है किन्तु उच्च भागों में यह मध्यम है।

(6) **आधुनिक प्रवृत्ति वाली उत्तम और मोटे खाद्यान्न वाली कृषि (Fine and Coarse Foodgrains Farming Tending Towards Modernization)** – पंजाब और हरियाणा राज्यों के मैदानी भागों में आधुनिक प्रवृत्ति वाली कृषि पायी जाती है। यहाँ का लगभग आधे से अधिक क्षेत्र उच्चकोटि के खाद्यान्नों के अन्तर्गत है जबकि एक –तिहाई भाग पर मोटे अनाज पैदा किये जाते हैं। यहां अधिकांश भाग निरा फसल क्षेत्र है। सिंचाई की सुविधायें अधिक विकसित हैं तथा आधुनिक कृषि यंत्रों का सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है। फलस्वरूप यहाँ कृषि की उत्पादकता अन्य राज्यों की तुलना में काफी अधिक है ।

(7) **मोटे और उत्तम खाद्यात्र वाली कृषि (Coarse and Fine Foodgrains Farming)** – यह कृषि प्रदेश दक्षिणी कश्मीर हिमालय, हिमाचल प्रदेश हिमालय, हरियाणा मैदान का पश्चिमी, दक्षिण –पश्चिमी और दक्षिणी भाग, राजस्थान बांगड़ का उत्तरी भाग, चम्बल बेसिन, अरावली श्रेणी, पूर्वी राजस्थान की उच्चभूमि, मालवा पठार, भिण्ड मुरैना पठार, विंध्यन कगारी प्रदेश एवं सतपुड़ा श्रेणी के मध्य भाग पर फैला है। कम वर्षा एवं उच्च भूमि के फलस्वरूप मोटे अनाज वाली कृषि की प्रधानता है। सिंचित और उपजाऊ भाग पर उत्तम खाद्यान्न वाली कृषि की जाती है। यहां पशुपालन कृषि के समान ही महत्वपूर्ण है। सिंचाई की सुविधाओं का विकास कम हुआ है। कृषि में आधुनिक यंत्रों का प्रयोग कम ही होता है। इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता बहुत कम तथा मध्यम है।

(8) **गर्मी में गेहूँ वाली मोटे अनाज प्रधान कृषि क्षेत्र (Millets Dominance with Wheat Farming in Summer)–** यह कृषि प्रदेश उत्तरी कश्मीर हिमालय क्षेत्र पर फैला है। यहां कृषि के प्रतिकूल दशायें हैं। इसीलिए मोटे अनाज उत्पन्न किये जाते हैं। गर्मी की ऋतु में गेहूँ उत्पन्न होता है। कृषि के साथ –साथ भेड़ तथा अन्य पशु पाले जाते हैं। पर्वतीय भाग होने के कारण कृषित भूमि बहुत ही कम है। सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार इस प्रदेश में कम ही हुआ है। इसी तरह से कृषि के उपयोग में आने वाले यंत्रों का प्रयोग बहुत ही कम होता है। पहाड़ी भू– भाग तथा भूमि की उर्वराशक्ति कम होने के फलस्वरूप कृषि उत्पादिकता बहुत ही कम है।

(9) **बाजरा प्रधान शुष्क कृषि (Bajra Dominance with Dry Farming) –** इस कृषि क्षेत्र का विस्तार मरूस्थली, राजस्थान बांगड़, कच्छ प्रायद्वीप और गुजरात मैदान के एकदम उत्तरी भाग पर है। भारत के पश्चिमी भाग में स्थित होने के कारण मानसूनी हवाओं से बहुत ही कम वर्षा होती है। फलत : शुष्क कृषि होती है। बाजरा प्रमुख फसल है। कुल कृषित भूमि के लगभग दो–तिहाई भाग पर मोटे अनाज पैदा किये जाते हैं। कृषि के अलावा पशुपालन भी मुख्य है। कृषि में सिंचाई का प्रयोग कम ही होता है। रेतीली मिट्टी के कारण कृषि योग्य भूमि कम पायी जाती है। कृषि का आधुनीकरण कम हुआ है। रेतीली मिट्टी, पानी की कमी, तथा आधुनिक कृषि विधियों के उपयोग की कमी के कारण कृषि उत्पादकता मध्यम है।

(10) **मूंगफली और मोटे खाद्यान वाली कृषि (Groundnut and Coarse Foodgrains Forming) –** इस कृषि क्षेत्र का विस्तार गुजरात के कच्छ प्रायद्वीप पर है। यहां आधे से अधिक कृषित क्षेत्र पर तिलहन फसलें पैदा होती हैं। उनमें मूंगफली प्रमुख है। अन्य फसलों में मोटे अनाज पैदा किये जाते हैं। फसलों के साथ पशुपालन होता है। वर्षा यहां कम होती है, इसीलिए सिंचाई का विकास किया गया है। फिर भी सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार कम ही है। कृषि के उपयोग में आने वाले कृषि यंत्रों का प्रयोग कम होता है। कृषि उत्पादकता मध्यम है।

(11) **मोटे खाद्यान्न और कपास की कृषि (Coarse Foodgrains and Cotton Forming) –** यह कृषि प्रदेश गुजरात के उत्तरी मैदान, ताप्ती बेसिन, नर्मदा घाटी, महाराष्ट्र का पूर्वी क्षेत्र और सतपुड़ा श्रेणी के पश्चिमी भाग पर फैला है। लगभग आधे भाग पर मोटे अनाज उत्पन्न होते हैं। कृषित भूमि के लगभग एक –तिहाई भाग पर औद्योगिक फसलें पैदा की जाती हैं। उनमें कपास प्रमुख है। सिंचाई, कृषि मशीनों आदि का उपयोग कम किया जाता है। कृषि के साथ –साथ पशुपालन भी होता है। सिंचाई की कमी असमतल धरातल, तथा उर्वरक भूमि की कमी के कारण कृषि की उत्पादकता कम है।

(12) **मोटे अनाज प्रधान मूंगफली एवं उत्तम कोटि के खाद्यान्न वाली कृषि (Coarse Foodgrains Dominance with Groundnut and Fine Foodgrains Forming) –** यह कृषि प्रदेश भारत में पश्चिमी घाट के पूर्वी ढालों पर महाराष्ट्र के पश्चिमी पठार कर्नाटक के कम ऊँचाई वाले पठार, तेलंगाना पठार, कृष्णा बेसिन, तमिलनाडु की उच्च भूमि और कावेरी बेसिन पर फैला है। इस क्षेत्र के अधिकांश भाग पर मोटे अनाज पैदा किये जाते हैं। उत्तम तथा उच्चकोटि के अनाजों का क्षेत्र कम है। मोटे अनाजों के अलावा तिलहन भी इस क्षेत्र की प्रमुख फसल है। कृषि के साथ –साथ पशुपालन भी होता है। इस कृषि प्रदेश में

सिंचाई के साधनों का विस्तार कम ही हुआ है। कृषि की विधियां परम्परागत हैं फिर भी लोहे के हलों का प्रयोग बढ़ा है। ट्रेक्टरों का अधिक उपयोग नहीं हो रहा है। कृषि की उत्पादकता बहुत कम है।

(13) **रागी प्रधान शुष्क कृषि (Ragi Dominance with Dry farming) –** इस कृषि प्रदेश का विस्तार कर्नाटक के उच्च पठारी भाग पर है। यहां अधिक क्षेत्र मोटे अनाज पैदा किये जाते है। उनमें रागी प्रमुख है। कुछ क्षेत्र तिहन तथा पतले अनाज वाली फसलों के अन्तर्गत है। वर्षा की कमी के कारण शुष्क कृषि की जाती है। कृषि के साथ ही पशुपालन भी मुख्य है। गाय भैंसे, बेकरियां भेड़े पाली जाती है। सिंचाई का विस्तार बहुत कम हुआ है। अभी भी लकड़ी के हल प्रचलन में है। ट्रेक्टर का प्रयोग कम ही होता है। यहाँ कृषि की उत्पादकता मध्यम प्रकार की है।

बोधप्रश्न– 1

1. सर्वाधिक निराकृषित भूमि का प्रतिशत किस राज्य में है?

   ....

   ....

2. शस्य गहनता का सूचक क्या है ?

   ....

   ....

3. देश की सबसे प्रमुख अनाज फसल कौनसी हे?

   ....

   ....

4. उत्तर प्रदेश के गन्ना उत्पादक क्षेत्र कौन से हैं?

   ....

   ....

5. चाय उत्पादक क्षेत्र कौन से हैं?

   ....

   ....

6. तिलहन उत्पादक प्रथम दो राज्य कौन से हे?

   ....

   ....

7. पी.सेन. गुप्ता ने कृषि प्रदेश बनाने के लिए कौन से आधार लिया है?

   ....

   ....

11.5 फसलों का उत्पादन (Production of Crops)

भारत में खाद्यानों का उत्पादन सन् 1950–51 में 5.08 करोड़ टन से बढ़कर सन् 2000–01 मे 19.59 करोड़ टन तथा सन् 2005–06में 20.86 करोड टन हो गया है। खाद्यानों में से अनाज तथा मोटे अनाजों का उत्पादन काफी तेजी से बढ़ा है। यह सन् 1950–51 में यह 4.24 करोड़ टन था जो सन् 2005–06 में 19.52 करोड टन हो गया है। अनाजों के उत्पादन मे यह वृद्धि उर्वरक, सिंचाई एवं उन्नत बीजों के प्रयोग के फलस्वरूप हुई है। किन्तु दलहनों के उत्पादन में मंद वृद्धि हुई है। इसी समय में दालों का उत्पादन 84.7 लाख से बढ़कर 133.8 लाख टन हो पाया है। अखाद्य फसलों में कपास, जूट तथा तिलहन फसलों का उत्पादन में वृद्धि मद गति से हुई है। किन्तु तिलहनों का उत्पादन काफी तेजी से बढा है। समस्त तिलहनों का उत्पादन सन् 1950–51 में 51.5 लाख टन था जो सन् 2005–06 में बढकर 279.8 लाख टन हो गया है। इसी तरह से कपास का उत्पादन सन् 1950–51 में 30 लाख गाठों से बढ़कर सन् 2005–06 में 185 लाख गाँठें हो गयी हैं। रोपण कृषि की फसलों का उत्पादन भी बढान है। उदाहरण के लिए चाय का उत्पादन सन् 1950–51 में 278.2 हजार टन से बढ़कर सन् 2000–01 में 848 हजार टन हो गया है। इसी तरह से कहवा का उत्पादन 301 हजार टन से बढ़कर 630 हजार टन हो गया है।

तालिका 11.12 : प्रधान अनाजों के अर्न्तगत भूमि, उत्पादन, उत्पादकता की प्रवृत्ति, 1970–2003

(क्षेत्र लाख हेक्टेयर, उत्पादन लाख टन, उपज किग्रा/हेक्टर)

वर्ष	चावल			गेहूँ			कुल खाद्यान		
	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज
1950–51	308.1	205.8	668	97.5	64.6	663	973.2	508.2	522
1960–61	341.3	345.8	1013	129.3	110.0	851	1155.8	820.2	710
1970–7	375.9	422.2	1123	182.4	238.3	1307	1243.2	1084.2	872
1980–81	401.5	563.3	1336	228.2	363.1	1630	1266.7	1259.9	1023
1990–91	426.9	742.9	1740	241.7	551.4	2281	1278.4	1763.9	1380
2000–01	447.1	849.8	1901	257.3	696.8	2708	1227.8	2128.5	1734
2005–06	436.6	917.9	2102	264.8	693.5	2619	1216.0	2086.0	1715

स्रोत : डाइरेक्टरेट ऑफ इकोनामिक्स एण्ड स्टेटिस्टिक्स–एग्रिकल्चरल स्टेटिस्टिक्स ऐट ए ग्लांस 2007

किन्तु दलहन का उत्पादन में वृद्धि मंदगति से हुई है। इसी समय में दालों का उत्पादन 84.7 लाख से बढ़कर 111 लाख टन हो पाया है **(तालिका 11.13)।**

तालिका 11.13 : प्रधान दालों के अर्न्तगत भूमि, उत्पादन, उत्पादकता की प्रवृत्ति, 1950–2003

(क्षेत्र लाख हेक्टेयर, उत्पादन लाख टन, उपज किग्रा/ हेक्टेयर)

वर्ष	चना			तुअर			कुल दालें		
	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज
1950–51	75.7	36.5	482	21.8	17.2	788	190.9	84.1	441

1960–61	92.8	6.26	674	24.3	20.7	849	235.6	127.0	539
1970–71	78.4	5.20	663	26.6	18.8	709	225.4	118.2	524
1980–81	65.8	4.30	657	28.4	19.6	689	224.6	106.3	473
190–91	75.2	5.36	712	35.9	24.1	673	246.6	142.6	578
2000–01	51.9	3.86	744	36.3	22.5	618	203.5	110.8	544
2005–06	69.3	56.0	808	35.8	27.4	765	223.9	133.9	598

स्रोत : डाइरेक्टरेट ऑफ इकोनामिक्स एण्ड स्टेटिस्टिक्स–एग्रिकल्चरल स्टेटिस्टिक्स ऐट ए ग्लांस 2007

देश के सभी राज्य खाद्यान्न उत्पादन में समान रूप से योगदान नहीं करते। खाद्यान्न के उत्पादन में अग्रणी राज्य उत्तरप्रदेश, पंजाब, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, मध्यप्रदेश तथा हरियाणा हैं (तालिका – 11.14)। प्रथम पांच राज्य मिलकर देश के कुल खाद्यान्न का आधे से अधिक उत्पन्न करते हैं। कृषित भूमि के वितरण की असमानता के साथ उत्पाद्य में भी समुचित अन्तर है। राज्यों में उत्पादन का वही अनुपात नही है जो कि कृषित भूमि का है। उदाहरण के लिए पंजाब तथा हरियाणा में देश की केवल 5.20% तथा 3.51% कृषित भूमि है लेकिन इनका खाद्यान्न का उत्पादन क्रमश : 12.07% तथा 6.23% है। इसके विपरीत देश की कृषित भूमि में राजस्थान का हिस्सा 10.24% है, परन्तु उत्पादन में केवल 5.49% ही।ऐसे महाराष्ट्र देश की 10. 49% कृषित भूमि से 5.49% खाद्यान्न उत्पादन करता है। निम्नलिखित आकड़े उपरोक्त तथ्य को स्पष्ट करते हैं।

तालिका– 11.14 : भारत के प्रमुख राज्यों में कुल खाद्यान्नों के अन्तर्गत क्षेत्र एवं उत्पादन, 2005–06.

(क्षेत्रफल लाख हेक्टेयर, उत्पादन लाख टन)

राज्य	क्षेत्रफल	देश के कुल क्षेत्रफल का%	उत्पादन	देश के कुल उत्पादन का%	कुल उत्पादन का समुच्चयी %
उत्तरप्रदेश	196.4	16.15	404.1	19.37	19.37
पंजाब	63.2	5.20	251.8	12.07	31.44
आन्ध्रप्रदेश	71.7	5.90	169.5	8.13	39.57
पश्चिम बंगाल	64.4	5.30	156.1	7.48	47.05
कर्नाटक	76	6.25	134.9	6.47	53.52
मध्यप्रदेश	116.8	9.61	132.0	6.33	59.85
हरियाणा	42.7	3.51	130.0	6.23	66.08
महाराष्ट्र	127.5	10.49	120.9	5.80	71.87
राजस्थान	124.5	10.24	114.5	5.49	77.36
बिहार	65.5	5.39	85.9	4.12	81.48
उड़ीसा	54.6	4.49	73.6	3.35	85.01
गुजरात	39.7	3.26	61.5	2.95	87.96
तमिलनाडु	33.2	2.73	61.3	2.94	90.90
छत्तीसगढ़	51.5	4.24	57.1	2.74	93.63

आसाम	26	2.14	36.8	1.76	95.40
झारखण्ड	19.3	1.59	20.7	0.99	96.39
उत्तरांचल	10.3	0.85	15.9	0.76	97.15
अन्य	32.7	2.69	59.4	2.85	
भारत	1216	100.00	2086.0	100.00	100.00

स्त्रोत : डाइरेक्टरेट ऑफ इकोनामिक्स एण्ड स्टेटिस्टिक्स–एग्रिकल्चरल स्टेटिस्टिक्स ए ग्लांस 2007

11.6 भारत में हरितक्रान्ति (Green Revolution in India)

भारत में नवीनतम र्हरेतक्रान्ति का आरम्भ बीसवीं शताब्दी के छठवें दशक मे हुआ। यह विपुल उत्पादन देने वाली बीजों के उपयोग के साथ प्रारम्भ हुआ। उस समय देश में स्वतंत्रता के बाद से सबसे खराब आर्थिक स्थिति थी। प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम हो गई थी। देश खाद्यान्नों के आयात के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका पर बहुत ही निर्भर हो गया था, जिसके लिए उसे राजनयिक कीमत चुकानी पडती थी। ऐसी दशा में भारत को खाद्य वस्तुओं के उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का प्रयास करने के अलावा कोई और चारा नहीं रहा। खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने का केवल एक ही विकल्प रह जाता था कि भूमि की उत्पादकता बढ़ाई जाय। इस पृष्ठभूमि में भारत में हरित क्रांति का शुभारंभ किया।

हरित क्रांति वास्तव में कृषिगत नए निवेशों एवं कृषि की नवीन विधा के पैकेज का नाम है। इस पुलिंदे का केन्द्रीय तत्व था **"करामाती बीज"**। इस प्रकार के बीज के कई गुण थे। नए बीज मेक्सिको और फिलीपाइन्स से लाए गए और उनका उपयोग तेजी से बढ़ाया गया। इनकी बहुत अधिक उपज देने की क्षमता के कारण ही इन्हें करामाती/ चमत्कारी बीज (miracle seed) कहा गया। इन बीजों में फसलों के अच्छे गुणों का सम्मिश्रण किया गया था। इस चमत्कारी बीज से अधिकतम लाभ लेने के इसके साथ अन्य निवेशों का उपयोग भी बढ़ा। सिंचाई की सुविधाओं में विस्तार हुआ। साथ ही उर्वरकों, रोगाणुनाशक एवं खरपतवारनाशक दवाइयों तथा ट्रेक्टर जैसे उपकरणों के उपयोग का प्रसार हुआ। इस क्रांति का दूसरा अंग है नवीन कृषि की विधियों का पैकेज। ये दोनों अंग मिलकर ही "विपुल उत्पादन की तकनीक (High Yielding Technology) के नाम से जाने जाते हैं।

इस पैकेज प्रोग्राम के द्वारा खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त हो सकती है। इसके समर्थकों का दावा था कि उत्पादन बढ़ने के साल देश की तमाम गरीबी, बेरोजगारी, असमान वितरण जैसी समस्याएँ अपने आप ही हल हो जाएगी। एक अध्ययन में तो यहाँ तक कहा गया कि सिंचित क्षेत्र में इस तकनीक के उपयोग से प्रति हेक्टर 10 टन तक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

11.6.1 कृषि नीति (Agricultural Strategy)

कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने का प्रयास द्वितीय पंचवर्षीय योजना के उत्तरार्द्ध में ही आरंभ हो गया था। फोर्ड फाउंडेशन की विशेषज्ञ समिति की 'चुनें हुए क्षेत्रों के विकास' पर ध्यान देने की अनुशंसा पर भारत सरकार ने सन् 1960 में 'गहन क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम' (IADP) चलाया गया। सन् 1965 तक यह कार्यक्रम देश के 114 जिले। में फैलाया गया। इसे 'गहन क्षेत्रीय

कृषि कार्यक्रम (IAAP) कहा गया। इन जिलों में उर्वरक, साख और बाजार की सुविधाएं बढ़ाई गईं। इसी बीच मेक्सिको में नारमन बोलग तथा साथियों द्वारा गेहूं कीं उन्नत किस्में विकसित की गईं जिनकी उपज क्षमता काफी अधिक थी। उधर फिलीपाइन्स में चावल की विपुल उत्पादन देने वाले बीज तैयार किए गए। इन विपुल उत्पादक बीजों से अधिक से अधिक लाभ सिंचाई, उर्वरक, रोगनाशक एवं कीटनाशक दवाइयों के प्रयोग से ही प्राप्त हो पाता था। ये सुविधाएं एवं निवेशों की पूर्ति सीमित थी। अस्तु इनके उपयोग के लिए एक रणनीति आवश्यक हो गई।

कृषि में क्रांति लाने के लिए सन् 1965 में एक विशेष कृषि नीति अपनाई गई। इसको चयनात्मक नीति कहा गया। इस नीति के अनुसार हरितक्रांति की तकनीकी एवं विधियों के उपयोग के लिए ऐसे क्षेत्र चुने गए जहाँ सिंचाई जैसी सुविधाएँ पहिले से ही उपलब्ध थी। इन क्षेत्रों में भी नवीन सुविधाओं के लिए प्रगतिशील कृषकों को ही चुना गया। इस दृष्टि से अच्छी भूमि वाले सुविधा—सम्पन्न क्षेत्रों एवं कृषकों का चुनाव किया गया। कृषकों को सुविधाएं देने के लिए गहन कृषि –जिला कार्यक्रम (Intensive Agricultural District Programme) चलाया गया जिसके तहत कृषकों को आवश्यक सुविधाएँ जैसे - साख, बीज, उर्वरक, कीटनाशक एवं उपकरणों की सुविधाएं सुलभ कराई गईं। प्रारंभ में इनसे काफी लाभ हुआ। परन्तु 1971 के बाद लाभ की मात्रा घटी। –इसके तीन कारण थे नवीन तकनीक का कम उपजाऊ क्षेत्रों पर प्रसार, निवेशों की कमी तथा उनके गुणों में अवनति।

11.6.2 हरितक्रान्ति की उपलब्धियां (Achievement of Green Revolution)

हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप देश मे खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ा तथा वह इसमें आत्मनिर्भरता हो गया तथा आयात पर निर्भरता घटी। यह सब बढ़े हुए अत्पादकतावर्धक निवेशों के उपयोग द्वारा सम्भव हुआ।

उत्पादन में तीव्र वृद्धि – हीरतक्रान्ति की सबसे प्रमुख उपलब्धि फसलों के उत्पादन में आशातीत वृद्धि का होना है। उदाहरण के लिए देश में सन् 1965–66 में 72 करोड़ टन कुल खाद्यान्नों का उत्पादन हुआ था जो बढ़कर सन् 1970–71 में 10.8 करोड़ टन तथा सर 2005–06 में 20.86 करोड़ टन हो गया। इस तरह यह 189.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। सर्वाधिक वृद्धि (212.9 प्रतिशत) अन्नों के उत्पादन में हुई। अनाजों का कुल उत्पादन सर 1965–66 में 6.24 करोड़ टन था जो सन् 2005–06 में 19.52 करोड करोड़ टन पहुँच गया। यह तीन गुनी वृद्धि है। इसके विपरीत दालों का उत्पादन 99 लाख टन से बढ़कर 133.4 लाख टन हो पाया। यह 34.6 प्रतिशत की वृद्धि है। इस अवधि में तिलहनों का उत्पादन चार गुना से अधिक हो। सन, 1965–66 में नौ प्रमुख तिलहनों का उत्पादन 64 लाख था जो सन् 2005–06 में 279.8 लाख टन तक पहुँच गया।

विभिन्न फसलों के उत्पादन की वृद्धि में स्थानिक एवं कालिक अन्तर रहा है। खाद्यान्नों में गेहूँ का उत्पादन सबसे तीव्र गति से बढ़ा है। इसका उत्पादन सन् 1965–66 में 103.9 लाख टन से बढ़कर सर 2005–06 में 693.5 लाख टन हो गया। यह 567 प्रतिशत की वृद्धि है। इसकी तुलना में प्रथम क्रम की फसल चावल का उत्पादन अपेक्षया मद गति (200.1%) से बढ़ा। यह सर 1965–66 में 306 लाख टन से बढ़ कर सन 2005–06 में 917.9 लाख टन हुआ। इनकी तुलना

में मोटे अनाजों का उत्पादन स्थिर अथवा वृद्धि अति मद रही है। इसी तरह दालों का उत्पादन भी उतनी तेजी से (34.6%) नहीं बढ़ा।

आरंभिक वर्षो में तिलहन को भी हरितक्रान्ति से लाभ नही पंहुचा था और सभी तिलहनों का उत्पादन सन् 1965–66 में 121 लाख टन से घट कर सन् 1970–80 में 89 लाख टन हो गया। तिलहनों का उत्पादन बढ़ाकर आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्य से छठवीं योजना के अन्तिम वर्षो और सातवीं योजना काल में कई उपाय किए गए। जैसे कि सर 1985–86 में राष्ट्रीय तिलहन विकास प्रोजेक्ट (NODP). मई 1986 में तिलहन पर टेक्नोलॉजीज मिशन (TMO) और सन् 1987–88 में तिलहन उत्पादन केन्द्रित प्रोजेक्ट (OPTP) आरम्भ किए गए। इनके मूल्य निर्धारण पर भी ध्यान दिया गया। फलत : नौ प्रमुख तिलहनों का उत्पादन सर 1965– 66 में 64 लाख टन से बढ़ कर सन् 2005–06 में 279.8 लाख टन हो गया। इस तरह सर 1965–66 से सन् 2005–06 के मध्य इनका उत्पादन 337.2 प्रतिशत बढ़ गया। खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ने के कारण इनके आयत्त में काफी कमी आई। सर 1965 में कुल 103 लाख खाद्यान्नों का आयात हुआ था जो घट कर सन् 1983–84 में 24 लाख टन और सन् 2003–04 में 34 हजार टन ही रह गया है।

तालिका – 11.15: भारत में हरित क्रान्ति के बाद प्रमुख फसलों के उत्पादन, क्षेत्रफल एवं उपज दर में हुए परिवर्तन, 1965–66 तथा 2005–06

मद/वर्ष	गेहूं	चावल	मक्का	ज्वार	बाजरा	अनाज	दालें	तिलहन
उत्पादन (लाख टन)								
1965–66	103.9	305.9	48.2	75.8	37.5	624	99.4	64
2005–6	693.5	917.9	147.1	72.4	76.8	1952.2	133.8	279.8
% वृद्धि	567.5	200.1	205.2	–4.5	104.8	212.9	34.6	337.2
क्षेत्रफल (लाख हेक्टर)								
1965–66	125.7	354.7	48	176.8	199.7	923.9	227.2	152.5
2005–6	264.8	436.6	75.9	86.7	95.8	992.1	223.9	278.6
% वृद्धि	110.7	23.1	58.1	–51.0	–52.0	7.4	–1.5	82.7
उपज दर (कि.ग्रा./हेक्टर)								
1965–66	827	862	1005	429	314	675	438	419
2005–6	2619	2102	1938	888	802	1968	598	1104
% वृद्धि	216.7	143.9	92.8	105.1	155.4	191.6	36.5	163.5

स्रोत : आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय, भारत सरकार - एग्रिकल्चरल स्टेटिस्टिक्स ऐट ए ग्लांस 2007.

उपज दर में वृद्धि – फसलों के उत्पादन में तीव्र वृद्धि मूलत : उनकी उपज बढ़ने के कारण हुई है। जैसे कि गेहूँ की प्रति हेक्टर उपज सन् 1965 –66 में 827 कि.ग्रा. से बढ़ कर सन 2005 –06 में 2619 कि ग्रा. हो गई। यह वृद्धि तीन गुनी से भी अधिक है। ज्वार और बाजरा की उपज दरों में भी वृद्धि हुई। चावल की उपज दर इस अवधि में 862 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर से बढ़कर 2102 कि ग्रा. हुई। यह वृद्धि (143. 9%) गेहूँ की उपज दर की वृद्धि (216. 7%) की आधी है। अनाजों के

विपरीत दालों की उपज में वृद्धि बहुत कम (36. 5%) है। यह सन 1965 –66 में 438 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर से बढ़कर सर 2005-06 में केवल 598 कि.ग्रा. हुई। इसकी तुलना में तिलहनों की उपज दर सन् 1965–66 में 419 कि.ग्रा. से बढ़कर सन 2005-06 में 1104 कि.ग्रा. हो गयी। इस तरह फसलों की उत्पादकता का बढना हरितक्रांति की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

बढ़ता निवेश –उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए उपजवर्धक तकनीक एवं निवेश बढ़ाए गए। जैसे कि हीरतक्रांन्ति के आधार ही विपुल उत्पादन देने वाले उन्नत बीजों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल सन 1970–71 में 153.8 लाख हैक्टर था, जिसमें गेहूँ 64.8 लाख हेक्टेयर (35.5%), चावल 55. 9 लाख हेक्टर (14. 9%), ज्वार 8 लाख हेक्टर (4. 6%), बाजरा 20.5 लाख हेक्टर (15.9%), मक्का 4.6 लाख हेक्टर (7. 9%) था। इन पांच प्रमुख खाद्यान्नों के अंतर्गत कुल केवल 16.7 प्रतिशत पर ही उन्नत बीजों का प्रयोग हुआ था। इन फसलों के उन्नत बीजो के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल बढ़कर सन् 1994–95 में 71 लाख हेक्टर होने का अनुमान है। इस तरह इन फसलों की आधे से अधिक (71.0%) भूमि उन्नत बीजों के अन्तर्गत है।

सिंचाई – इस अवधि में सिंचाई में काफी वृद्धि हुई। कुल सिंचित क्षेत्रफल सन 1950 – 51 मे 226 लाख हेक्टर से बढ़कर सन् 1960 –61 में 28–0 लाख हैक्टर (कुल कृषित भूमि का 18.3%), –सन् 1970–71 में 382 लाख हेक्टर (23%), तथा सन् 2003–04 में 7.7 करोड़ हेक्टर हो गया है जो कुल कृषित भूमि का 40.3 प्रतिशत है। इस प्रकार 1960–2003–04 के बीच ढाई गुनी से अधिक वृद्धि हुई।

उर्वरक एवं कीटनाशक— उन्नत बीजों के अधिकतम लाभ के लिए रासायनिक उर्वरकों का उपयोग बढ़ा। सन् 1965–66 में कुल 7.6 लाख टन उर्वरकों का उपयोग किया गया था। इस तरह प्रति हेक्टर 5.05 कि. ग्रा. का औसत था। यह मात्रा बढ़कर सन् 2005–06 में 203.40 लाख टन हो गई। इस प्रकार कुल कृषित भूमि के प्रति हेक्टर उर्वरकों का उपभोग 5.05 कि.ग्रा से बढ़कर 104.5 कि. ग्रा. हो गया। स्वतंत्रता के वाद देश में उर्वरकों का उत्पादन भी तेजी से बढ़ा। उन्नत बीज, 'सिंचाई तथा उर्वरकों, के बढ़ते उपयोग के साथ कृषि की आधुनिक विधि का भी प्रचलन बडा है। कीटनाशक, रोगनाशक तथा खरपतवारनाशक रसायनों का उपयोग बढ़ा।

11.6.3 हरित क्रांति एवं असमानताएँ (Inequalities in Green Revolution)

हरित क्रांति का खाद्यात्र उत्पादन बढ़ाने में सराहनीय योगदान रहा है। परन्तु इस क्रांति से उत्पादन वृद्धि के साथ साथ इससें विषमताएँ भी काफी बढ़ी है। यह पाया गया है कि यह क्रांति फसल–विशेष, क्षेत्र–विशेष और व्यक्ति –विशेष के लिए ही उपयोगी रही है। इसका तात्पर्य है कि उससे न तो सभी फसलों को लाभ पहुँचा है और: न ही देश के सभी भाग तथा सभी स्तर के व्यक्ति इससे लाभान्वित हुए हैं।

फसलों पर असमान प्रभाव – अगर तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो कहा जा सकता है कि एक समूह के रूप में खाद्यान्नों के उत्पादन की वृद्धि दर में हरितक्रांति के कारण कोई क्रांति नहीं आई। उदाहरण के लिए खाद्यानों के उत्पादन में सन् 1949–50 से 1964–65 (पुरा हरितक्रांति काल) वार्षिक वृद्धि दर 2.82 प्रतिशत थी, परन्तु हीरतक्रांति काल (सन् 1967–68 से 1995–96) तक में यह वृद्धि दर 2.38 प्रतिशत ही रही। केवल गेहूँ और नौ प्रमुख तिलहनों के उत्पादन की वृद्धि दर हीरतक्रांति काल में पुरा– हरितक्रांति काल से अधिक रही। इन दोनों फसलों की वार्षिक

वृद्धि दर पुरा–हीरतक्रांति में क्रमश : 3.98 प्रतिशत और 3.12 प्रतिशत थी जो हरितक्रांति काल में बढ़कर क्रमश 4.11 प्रतिशत और 3.17 प्रतिशत हो गई। अन्य सभी प्रमुख फसलों के उत्पादन की वृद्धि की गति हरितक्रांति काल में कम हुई है। इसके विपरीत लगभग सभी फसलों की उत्पादकता पूर्व काल की तुलना में हीरतक्रांति काल में तेजी से बढ़ी है।

यद्यपि सिंचाई और उर्वरकों जैसे निवेशों का उपयोग अन्य फसलों के लिए भी हुआ है, परन्तु उन्नत बीज केवल चावल, गेहूँ ज्वार, बाजरा और मक्का के लिए उपलब्ध हैं। अन्य अनाज, दलहन और तिलहन इस क्रांति से बहुत कम प्रभावित रहे। फलत : इनका उत्पादन बहुत मंद गति से बढ़ पाया है। अनाजों में भी सर्वाधिक लाभान्वित होने वाला गेहूँ रहा। उसकी तुलना में चावल को कम लाभ हुआ तथा अन्य अनाज तो बहुत कम प्रभावित हुए हरित क्रांति मूलत : "गेहूँ – क्रांति" होकर रह गई। यहाँ तक कि गेहूँ के अंतर्गत भूमि भी अपेक्षया तेजी से बढ़ी। सन् 1965 – 66 में गेहूँ के अंतर्गत कुछ कृषित भूमि का 8.1 प्रतिशत था। वह 2000–01 में 13.7 प्रतिशत हो गया। चावल की असफलता के क्षेत्र प्रधानत : वे हैं जहां अनियंत्रित वर्षा ऋतु में इसकी खेती की जाती है। इसके विपरीत दक्षिण भारत में शुष्क ऋतु में सिंचाई की मदद से उन्नत बीजों का बड़े पैमाने पर उपयोग होता है। चावल के उन्नत बीजों के उपयोग में भी सर्वाधिक सफलता भी पश्चिमी उत्तरप्रदेश से हरियाणा में फैले अर्धशुष्क जलोढ़ मैदान में मिली है जहां पर्याप्त सूर्य का प्रकाश, अनुकूल तापमान, न्यून आर्द्रता, फलत : कम कीट एवं रोगों को विकास तथा समय पर सिंचाई द्वारा समुचित जल देने का प्रबंध है। इस कारण इन राज्यों में अधिकांश चावल उन्नत बीजों वाला होता है। इसी तरह तमिलनाडु में, जहां यह शुष्क काल (दिसम्बर से मई) में बोया जाने लगा है, 82.5 प्रतिशत और आन्ध्र में 80.6 प्रतिशत चावल उन्नत बीजों से पैदा किया जाता है। इसके विपरीत उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, आसाम, मध्यप्रदेश और केरल चावल की भूमि उन्नत बीजों के अंतर्गत कम भूमि है। चावल के अंतर्गत क्षेत्रफल बहुत मंद गति से बढ़ा।

क्षेत्रीय विषमता – इस क्रांति का लाभ देश के सभी भागों को समान रूप से नहीं मिला। सन् 1970 के दशक में किये गये अध्ययनों से स्पष्ट था कि इस तकनीक से केवल उत्तर पश्चिमी भारत विशेषकर पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश ही लाभान्वित हो पाये थे।– इसके बाद यह तकनीक अन्य भागों में भी फैली। तथापि इससे हुई उत्पादकता में वृद्धि कुछ भागों में ही सकेन्द्रित है। भल्ला और त्यागी के सन् 1962–65 से 1980–83 तक की अवधि में कृषि उत्पादकता में हुये परिवर्तन को जिलेवार अध्ययन (1989 पृ. 58–116) से स्पष्ट है कि इस अवधि में कृषि उत्पादकता में अधिक वृद्धि पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और जम्मू कश्मीर हुई हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि –

1. अधिक सुविधा सम्पन्न सिंचित क्षेत्र में हरितक्रांति आई।
2. ये भाग स्वाभाविक रूप से अधिक उपजाऊ हैं।
3. इन्ही जिलों मे उपजवर्धक निवेशों का उपयोग भी बढ़ा।
4. सन् 1980 के दशक के आरम्भ तक मध्य और पूर्वी भारत पर इसका अल्प प्रभाव रहा।

हरितक्रांति के असमान प्रभाव के कारण देश के कुल खाद्यान्नों के उत्पादन में विभिन्न क्षेत्रों के में काफी अन्तर आ गया है। केवल उत्तरी क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा, और उत्तर प्रदेश–उत्तराखण्ड) का हिस्सा सन् 1960–62 के औसत 25.2 प्रतिशत से बढ़कर सन् 2005—06 में 38.43

प्रतिशत हो गया है। इसके विपरीत पूर्वी राज्यों (उड़ीसा, बिहार –झारखण्ड, आसाम और पश्चिम बंगाल) का हिस्सा इसी अवधि में 23.2 प्रतिशत से घट कर 17.88 प्रतिशत, राजस्थान और मध्यप्रदेश –छत्तीसगढ का 17.9 प्रतिशत से 14.56 प्रतिशत; पश्चिमी राज्यों (महाराष्ट्र और गुजरात) का 11.3 प्रतिशत से 8.75 प्रतिशत और दक्षिणी राज्यों (आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल) का 21.5 प्रतिशत से 14.9 प्रतिशत रह गया है। हरितक्रांति काल पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध कालों में देश के विभिन्न क्षेत्रों में खाद्यान्नों उत्पादन में हुई वृद्धि का विश्लेषण करने वाले नवीन अध्ययनों (सावन्त एवं अचुतन, 1995 पृ. ए–2 से ए 13 तक) से स्पष्ट है कि मध्य क्षेत्र और पूर्वी क्षेत्र के राज्यों में पूर्वार्द्ध कौर तुलना में उत्तरार्द्ध काल में तेजी से वृद्धि हुई है। इसका कारण है कि बाद की अवधि में चावल, तिलहन और दालों की उत्पादकता में काफी सुधार हुआ है। साथ ही इन क्षेत्रों में सिंचाई में काफी विस्तार हुआ जिससे नवीन निवेश एवं तकनीक का उपयोग उत्तरार्द्ध काल में काफी बढ़ा है तथापि उत्तर पश्चिमी भारत अब भी सबसे आगे है लेकिन दक्षिण के राज्यों और पश्चिमी दोनों राज्यों में उत्तरार्द्ध काल में भी सुधार नहीं हुआ है। उल्लेखनीय है कि दक्षिणी राज्यों में खाद्यान्नों के विपरीत अखाद्यान्नों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

छोटे किसानों को अल्प लाभ – चुनिन्दा कृषि नीति के कारण सभी वर्ग के किसानों को लाभ नहीं मिल पाया। इस नीति के अनुसार अधिक से अधिक सुविधाएं प्रगतिशील किसानों को दी गईं। इससे उत्पादन काफी तेजी से बढ़ा। साथ ही यह भी महसूस किया गया कि खाद्य–समस्या को तब तक हल नहीं किया जा सकता जब तक इस नीति की सुविधा कम सुविधा वाले क्षेत्रों और कम सम्पन्न किसानों को न दी जाये। परन्तु इस उर्वरक –उन्नत वीज प्रधान नीति के प्रसार में कई समस्याएँ थीं। वास्तव में इसका छोटे किसानों द्वारा उपयोग कर पाना संभव नहीं था। इस पैकेज प्रोग्राम के निवेशों के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है और सामान्यतया बड़े और मझोले किसान ही उतना व्यय कर सकते हैं। उनकी बचत अधिक होती है और उनकी साख भी अधिक होती है। वे अधिक जोखिम भी उठा सकते हैं। लघु एवं सीमान्त किसानों की बचत सीमित होती है। इनकी साख भी नहीं होती तथा इनकी मनोवृत्ति भी बहुत संकुचित हो जाती है। इन कारणों से भी सीमान्त और छोटे किसान इनका उपयोग नहीं कर सके। उनकी समस्याओं को दूर करने के लिए "लघु किसान विकास एजेन्सी" (SMFA) तथा सूखे क्षेत्रों के लिए "सूखोन्दुख विकास एजेंसी" की स्थापना की गई। इनका भी अधिकतर लाभ बड़े किसानों को मिला। सीलिंग से बचने के लिए वे छद्म रूप में छोटे किसान बन बैठे हैं।

11.7 शुष्क क्षेत्र कृषि (Dry Land Farming)

शुष्क भूमि ऐसा शुष्क एवं अर्द्धशुष्क भौगोलिक क्षेत्र होता है, जहाँ मौसमी जल का अभाव होता है। शुष्क क्षेत्रों में अल्पकालिक वर्षा होती है, जिसमें स्थानिक तौर पर परिवर्तनशीलता पाई जाती है। कृषि भूगोल में वर्षापोषित (Rainfed) कृषि के सन्दर्भ में शुष्क कृषि का अध्ययन किया जाता है, क्योंकि वर्षापोषित भूमि ही शुष्क भूमि के रूप में उपलब्ध रहती है। भारतीय कृषि का 67 प्रतिशत भाग वर्षापोषित क्षेत्रों के अन्तर्गत है, जिसमें 44 प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादित किये जाते हैं, जो देश की 40 प्रतिशत जनसंख्या का भरण –पोषण करते हैं। देश का दो –तिहाई पशुधन भी इसी प्रदेश में विचरण करता है। इन क्षेत्रों में सीमान्त एवं छोटे किसान मिलते हैं, जिनके द्वारा

परम्परागत तकनीकी का ही उपयोग किया जाता है। ये क्षेत्र शुष्क एवं अर्द्धशुष्क जलवायु क्षेत्रों में स्थित हैं, जिनका विस्तार दक्षिणी –पश्चिमी उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, कर्नाटक आदि में है, जहाँ वर्षा 500 से 750 मिली मीटर तक होती है। यहाँ की प्रमुख फसलें ज्वार, बाजरा, जौ, चना, गेहूँ तिलहन तथा कपास हैं। शुष्क कृषि नवीन कृषि व्यवस्थाओं व बदलती मानव परिस्थितियों के परिवेश में नवीन तकनीकी वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाली नई पद्धति कही जा सकती है। इस प्रकार शुष्क कृषि पद्धति को विभिन्न भूगोलवेत्ताओं ने निम्न रूप में परिभाषित किया है

भौगोलिक पारिभाषिक शब्दकोश (भारत) के अनुसार, "अर्द्धशुष्क प्रदेशों में की जाने वाली कृषि, जिसके अन्तर्गत उपलब्ध सीमित नमी को संचित करके बिना सिंचाई के ही फसलें उत्पादित की जाती हैं। वर्षा की कमी के कारण मिट्टी की नमी को बनाये रखने तथा उसे बढ़ाने का निरन्तर प्रयास किया जाता है। इसके लिए गहरी जुताई की जाती है और वाष्पीकरण को रोकने का प्रयत्न किया जाता है। इसके अन्तर्गत अल्प नमी तथा कम समय में उत्पन्न होने वाली फसलें बोई जाती हैं। इस प्रकार की खेती विशेष रूप से भूमध्यसागरीय प्रदेशों तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलम्बिया पठार पर की जाती है। "ऑक्सफोर्ड एज्यूकेशनल डिक्शनरी के अनुसार, "शुष्क कृषि में मृदाओं को इस प्रकार तैयार किया जाता है कि अर्द्धशुष्क प्रदेशों में जो कुछ वर्षा प्राप्त होती है, उसे अपने में जज़्ब कर लें, जो संचित होकर पौधों की जड़ों को प्राप्त हो सके।"

शुष्क कृषि पद्धति नवीन न होकर प्राचीनकाल से होती आ रही कृषि कला है। प्राचीनकाल में सभी भाग कृषि के लिए अनुकूल नहीं रहे हैं लेकिन घुमक्कड़ जातियों की पछड़ी जनजातियों ने सदैव शुष्क भागों में कृषि कार्य किया है। वर्तमान समय में जबकि जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, खाद्यान्नों की मांग भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, इसलिए शुष्क कृषि को वैज्ञानिक स्तर पर विकसित करना अति आवश्यक प्रतीत हो गया है। वैज्ञानिक विकास में नवीन बीजों तथा इस प्रकार की किस्मों को बोई जाये, जो भिन्न तथा प्रतिकूल वातावरण में भी विकसित हो सकें। उक्त दृष्टि से नवीन कृषि वे ही शेष हैं, जहाँ वर्षा का अभाव रहता है अत: इन क्षेत्रों को शुष्क कृषि के अन्तर्गत लेकर इनका सघन उपयोग ही शुष्क कृषि का प्रमुख उद्देश्य है।

शुष्क कृषि पद्धति अपने – आप में एक विशिष्ट प्रकार की पद्धति है, जो इस बात को दर्शाती है कि इसके लिए एक विशेष वातावरण व विशेष प्रकार के पौधे विकसित किये जायें, जो जलाभाव की स्थिति में भी अपना अस्तित्व बनाये रख सकें। इस प्रकार स्पष्ट है कि

1. शुष्क क्षेत्रों में इस प्रकार की फसलें बोई जायें, जिनको कम पानी की आवश्यकता हो।
2. पूर्ण रूप से वर्षापोषित (Rainfed) कृषि व्यवस्था वाले क्षेत्रों को सीमांकित किया जाये। उपर्युक्त तथ्यों के मद्देनजर कृषि विकास किया जाये तो वह अपने –आप में वैज्ञानिक तकनीकी दृष्टिकोण होगा।

इस प्रकार दूसरे तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए वर्षापोषित या सीमान्त वर्षापोषित क्षेत्रों का पता लगाना है। इस हेतु किसी क्षेत्र की औसत वर्षा की मात्रा ज्ञात करके मृदा की विशेषताओं के आधार पर इनमें विद्यमान नमी की मात्रा ज्ञात करना आवश्यक होगा। उक्त कार्य को एक भूगोलवेत्ता प्रयुक्त भौतिक दशाओं के आधार पर आसानी से कर सकता है अत: भूगोलवेत्ता कृषि शास्त्री के साथ मिल– जुलकर प्रयास करके इसे और अधिक वैज्ञानिक रूप दे सकता है। शुष्क

क्षेत्रों में वर्षा ही मात्र जल स्रोत होता है, जो पूर्ण रूप से मानसून की प्राथमिकता पर निर्भर करती है।

शुष्क कृषि पद्धतियाँ (Dry Farming Method) शुष्क कृषि पद्धति को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने के लिए उस क्षेत्र की भौगोलिक दशाओं के मद्देनजर कृषि विकास किया जाता है, जिसके निम्न प्रमुख आधार होते हैं :

(1) पानी के हास को रोकना।

(2) मृदाओं में नमी बनाये रखने के उपाय विकसित करना।

उपर्युक्त तथ्यों के व्यवस्थित प्रबन्ध हेतु वर्षापोषित व शुष्क क्षेत्रों में निम्न शुष्क कृषि पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं

(1) **जलग्रहण आधारित विकास (Watershed Based Development)** जलग्रहण क्षेत्र शुष्क कृषि के लिए उपयुक्त समझे जाते है, क्योंकि यहाँ पर पर्याप्त मात्रा में नमी होती है। जलग्रहण क्षेत्रों में सम्पूर्ण संसाधनों का प्रबन्धन भौतिक एवं जैविक नियन्त्रण द्वारा करके नमी संरक्षित की जाती है। चेक डेम व अवनलिका नियन्त्रण द्वारा जल संरक्षण किया जाता है जबकि भूमि उपयोग नियोजन हेतु फसल उत्पादन, शुष्क बागवानी, वृक्ष कृषि तथा चारा उत्पादन की गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाता हे। इस कार्यक्रम का विकास सातवीं पंचवर्षीय योजना से ही आरम्भ हो चुका है लेकिन इसकी सफलता जनसहभागिता क्षेत्रों के लिए राष्ट्रीय जलग्रहण विकास कार्यक्रम (NWDPRA) महत्वपूर्ण: कार्य कर रहा हैं अत : जलग्रहण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित गतिविधियों के सफल क्रियान्वयन के उपरान्त शुष्क एवं वर्षापोषित क्षेत्रों में शुष्क कृषि को मूर्त रूप दिया जा सकता है। इनके द्वारा नमी संरक्षण के साथ–साथ मृदा संरक्षण एवं जैवसंहति (Biomass) को भी बढ़ावा मिलता हैं, जो इस कृषि का एक आवश्यक अंग है। जलग्रहण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न भौतिक संरचनाएँ विकसित करके जल वितरण को सन्तुलित किया जाता है जिससे शुष्क कृषि विकास हेतु लम्बी अवधि तक वर्षा न होने पर भी नमी संरक्षित रहती है :

(2) **लघु खेतों का यन्त्रीकरण (Mechanisation of Small Farms)** शुष्क क्षेत्रों में समयानुसार फसलें बोना कठिन कार्य है। विभिन्न प्रदेशों में सुधरे उपकरणों का उपयोग भी अति महत्वपूर्ण है। नूतन वर्षो में कई प्रकार के उपकरणों का विकास हुआ है, जिनका उपयोग फसलें बोने, उर्वरक डालने आदि के लिए किया जाता है। विभिन्न प्रकार की फसलों को निकालने के लिए विभिन्न तरह के उपकरण विकसित किये जा रहे है । इस प्रकार के उपकरण सस्ते भी होने चाहिए –ताकि प्रत्येक स्तर का किसान इन्हें अपना सके।

(3) **शस्य वैविध्यकरण (Crop Diversification)** शुष्क भूमि की कृषि व्यवस्था में दलहन, दालें और तिलहन की फसलें महत्वपूर्ण होती हैं तथापि उत्पादन बढाने व उच्च आय प्राप्त करने हेतु फसलों में विविधिकरण आवश्यक है, जिनको कृषि बागवानी (Agri Horticulture), कृषि –वनीकरण (Agri– Silviculture) तथा वन चरागाह (Silivipasture) के रूप में विकसित किया जा सकता है। यह व्यवस्था विभिन्न प्रकार की भू – क्षमता के अनुसार अपनाई जाती है। वर्षापोषित क्षेत्र अनेक प्रकार के औषधीय (Medicinal), मादक (Aromatic) तथा रंगाई वाले (Dye) पौधों की कृषि हेतु भी अच्छे ताखे (Niches) होते हैं अत : शुष्क कृषि की नवीन पद्धति के रूप में कृषि वैविध्य–करण की तकनीकों को अपनाया जाना आवश्यक है।

(4) **जल संरक्षण (Water Conservation)** शुष्क भूमि में पानी का एकमात्र स्रोत वर्षा जल होता है अत : वर्षा काल में खेतों को इस प्रकार तैयार किया जाए कि वर्षा से प्राप्त जल एक निश्चित सीमा तक संचित हो सके, ताकि नमी ह्रास न हो। वर्षापोषित एवं शुष्क क्षेत्रों में वर्षा के उपरान्त व शीतकाल में फसलें मृदा से नमी प्राप्त करती हैं, अत : इन फसलों के स्वभावानुसार नमी संरक्षण आवश्यक है। इस हेतु कुछ संरक्षण पद्धतियों को प्रभावकारी ढंग से अपनाया जाये, जिनके द्वारा मिट्टियाँ अधिकाधिक मात्रा में पानी को अपने में समा कर सकें व वाष्पीकृत न होने दें। इनके लिए खेतों की गहरी जुताई की जाये व खेतों में ढाल इस प्रकार हो कि वर्षा जल संग्रहीत होकर समा सके। समोच्च कृषि, मेडबन्दी तथा वानस्पतिक चारदीवारी (Live Fencing) आदि गतिविधियों को अपनाया जाना चाहिए।

(5) **कृषि भू –पद्धतियाँ (Agricultural Field System)** शुष्क भूमि में कृषि में प्रयुक्त व्यवस्थाओं पर आधारित अन्य व्यवस्थाएँ विकसित हो जाती हैं, जिनके विकास में ग्रामीण परिवेश का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस प्रकार विकसित कृषि पद्धतियों में काश्तकारी व्यवस्था, भू –स्वामित्व तथा जोत व्यवस्था (Land Holding) महत्वपूर्ण है, जिनके आधार पर निम्न पद्धतियाँ उपयोगी सिद्ध हुई हैं

1. परती भूमि (Fallow Land)
2. शस्यावर्तन (Crop Rotation)

यदि उपर्युक्त व्यवस्थाओं को कृषक स्वयं अपनाये तो भू –उपयोग क्रमबद्ध व निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत होता है जबकि काश्तकारी व्यवस्था में अत्यधिक दोहन होता है।

भूमि की उर्वरता एवं नमी संरक्षण हेतु फसल चक्र या शस्यावर्तन आवश्यक है। शस्यावर्तन मे उथली जड़ों वाली फसलों के बाद गहरी जड़ों वाली फसलें उगाई जानी चाहिए, ताकि पोषक तत्वों की मात्रा संतुलित रह सके। अधिक पोषक तत्व चाहने वाली फसलों के बाद अपेक्षाकृत कम पोषक तत्व चाहने वाली फसलें बोनी चाहिए। फसलों का चुनाव भी भूमि की उर्वरा शक्ति को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। कम उपजाऊ भूमि में बाजरा, मूँग, जौ, चना जैसी कम पोषक तत्त्वों को चाहने वाली फसलें बोई जानी चाहिए। अधिक पानी चाहने वाली फसलों के बाद कम पानी चाहने वाली फसलें उगानी चाहिए, जिससे भूमि में पानी की मात्रा संचरित होने से वायु संचार तथा जीवाणुओं की क्रियाओं में वाली बाधाओं से भी बचा जा सकता है। फसल चक्र में सम्मिलित होने वाली फसलें एक ही वनस्पतिक कुल की नहीं होनी चाहिए। फलीदार फसलों के बाद बिना फलीदार फसलें बोनी चाहिए। फलीदार फसलों की जड़ों की गाँठों में राइजोबियम जैसे नाइट्रोजन का कुछ भाग स्वयं उपयोग करते हैं, शेष भाग भूमि में ही छोड़ देते हैं, अत : फसल चक्र में फसलों का समावेश ऐसा हो कि सिंचाई सुविधा, श्रम, कृषि यन्त्र, उर्वरक, बीज आदि जो भी कृषक के पास उपलब्ध हों, उनका सर्वोत्तम उपयोग हो सके।

(6) **साधारण जल संचयन (Simple Water Conserving System)** साधारण जल संचयन की व्यवस्था जलग्रहण आधारित गतिविधि है, जो विभिन्न प्रकार की भू – आकृतिक विशेषताओं में अपनाई जाती है। इस विधि द्वारा प्रवाहित जल का संकेन्द्रण (Concentration of Running Water) किया जाता है। वर्षा जल को जलग्रहण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित विभिन्न गतिविधियों द्वारा रोका जाता है. जिनमें किनारा स्थिरीकरण व पुन :

वनीकरण की गतिविधियाँ महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार संचित नमी की मात्रा. मैदानों की अपेक्षा ढाला में कम पाई जाती है। ढालू भागों पर सीढ़ीनुमा भू–आकार निर्मित कर लिये जाते हैं. जिनका निर्माण पत्थरों द्वारा दीवार बनाकर किया जाता है ताकि वे पोषणीय बन सके। इस प्रकार जगह –जगह सीढ़ियों का निर्माण करके पानी रोका जाता है। इन सीढ़ीनुमा खेतों में पानी गहराई तक संचित होता है, जिससे लम्बे समय तक शुष्क की कृषि की अनुकूल दशाएँ बनी रहती हैं।

शुष्क रेगिस्तानी क्षेत्रों में नमी संरक्षण हेतु खडीन (Khadeen) नामक संरचना का विकास किया जा रहा है। इसमें तालाब के ओर पाल बांध दी जाती है जिससे उसमें पानी संचित होता रहता है तथा वर्षा काल के उपरान्त इसमें फसलें उगाई जाती हैं। यहाँ तक की वर्तमान समय में तो रबी की फसल भी ली जाने लगी हैं अत: यह शुष्क कृषि में परम्परागत ज्ञान आधारित नवोन्मेष (innovation) है। पहाड़ी क्षेत्रों मे स्थित जलग्रहण बेसिनों मैं भूजल का संचयन किया जाता है। इनमें मेड़बन्दी करके खेतों में पानी एकत्रित कर लिया जाता है । इस प्रकार कभी–कभी तो 100 से 150 सेमी. गहराई तक संतृप्त हो जाती है। इसको एक प्रकार से प्रवाहित जल कृषि भी कहते हैं, जिसमें प्रवाहित जल से नमी का संचय करके कृषि कार्य किया जाता है।

(7) **पशुपालन कृषि को महत्व देना (emphasis of livestock farming)**पशुपालन कृषि शुष्क कृषि के किसानों का मुख्य सहारा है, जो सूखा सम्भाव्य एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में भी मिलती है। इन क्षेत्रों में चारा उत्पादन में कमी के कारण पशुत्पादों में भी न्यूनता पायी जाती है। अकृषि भूमि पर वनीय चरागाह (silvipasture) विकसित किये जाने चाहिए, जहाँ पर फसलोत्पादन न्यून रहता है। वहाँ इस प्रकार की गतिविधियों को विकसित किया जाना चाहिए ताकि पशुत्पादों में वृद्धि हो सके। इस दिशा में राष्ट्रीय कृषि तकनीकी परियोजना (NATP) को नवीं योजना के अन्तर्गत सम्मिलित करके प्रगतिशील प्रयास किये गये हैं तथा कई वर्षापोषित क्षेत्रों को चिह्नित कर उपर्युक्त गतिविधि के अन्तर्गत लिया गया है। इस सन्दर्भ में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली भी सराहनीय प्रयास कर रहा है।

शुष्क कृषि पद्धतियों के विकास हेतु कुछ मुख्य रणनीतियाँ अपनाई जानी चाहिए, जिनसे शुष्क कृषि की उत्पादकता बढ़ सके। इनमें (1) ऋतु उपरान्त कृषि, (2) ढाल के विपरीत खेत जोतना, (3) शीघ्र आने वाले पौधों को अपनाना, (4) समस्याग्रस्त मिट्टियों में नमी संरक्षण की उपयुक्त पद्धति अपनाना, (5) नियत मोसम मैं बोई जाने वाली फसलों का उपयुक्त चुनाव, (6) समयानुसार खरपतवार नियन्त्रण, (7) सुधरे पौधों की किस्मों का चयन, (8) विभाग की अनुशंसानुसार यसायनिक उर्वरकों का उपयोग करना आदि प्रमुख हैं। उपर्युक्त पद्धतियाँ शुष्क कृषि को अधिक वैज्ञानिक बनाने में सहयोग करती हैं।

शुष्क क्षेत्रों में सिंचित क्षेत्रों की अपेक्षा फसलोत्पादन कम होता है। मुख्य रूप से किसानों को सचेत करके नमी संरक्षण की विधियों तथा शस्य वैज्ञानिक विधियों शुष्क कृषि की समस्याओं के समाधान में उपयोग में लाना चाहिए। ये विधियाँ निम्न हैं

I. नमी संरक्षण की विधियों (methods of moisture conservation)

1. **अपवाह को कम करके मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ाना –** न्यून ढालयुक्त जमीन को समतल करके वर्षा की समान मात्रा वितरित की जाये, जिससे मिट्टी में अधिक जल का

अवशोषण हो सके व प्रवाह–धीमा होने से मिट्टी अपरदन भी कम हो। खेतों में मेड़बन्दी की जानी चाहिए। मिट्टी में नमी संरक्षण हेतु रबी की फसल काटने के तुरन्त बाद गहरी जुताई करनी चाहिए तथा जैविक खाद का उपयोग करना भी नमी संचय में सहायता करता है।

2. **वाष्पीकरण द्वारा नमी की हानि को कम करना –** शुष्क क्षेत्रों में उच्च तापमान के कारण तीव्र वाष्पीकरण होता है, जिससे मिट्टी में व्यास नमी का हास होता है। परिणामस्वरूप वर्षारहित समय में पौधे नमी के अभाव में सूखने लगते हैं अत: संचित नमी की मात्रा को वाष्पीकरण से तथा अनुपयुक्त क्षेत्रों द्वारा होने वाली नमी के ह्रास को रोका जाए। वाष्पीकरण की मात्रा घटाने के लिए फसलों के अवशिष्ट अंश, पत्तियाँ, सूखी घासें, गोबर की खाद, कम्पास्ट खाद, लकड़ी का बुरादा व पॉलीथिन की चादरों पतवार के रूप में भू–सतह पर वितरित की जाये।
3. **वाष्पोत्सर्जन दर कम करना –** शुष्क कृषि का ऋणात्मक पक्ष वाष्पोत्सर्जन है, जिसे वाष्पोत्सर्जन विरोधी पदार्थ उपयोग कर कम किया जा सकता है। ये पदार्थ वे रसायन होते हैं, जिनका छिड़काव पौधों की सतह पर करने से वाष्पोत्सर्जन दर कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त रेगिस्तानी पारिस्थितिकीय स्वभाव वाले पेड़–पौधों का रोपण किया जाना चाहिए।
4. **जल संचय बढ़ाना –** शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में न्यून वर्षा व सिंचाई सुविधाएँ न होने के कारण सम्पूर्ण भाग पर कृषि – क्रिया नहीं की जाती है। यहां पर जल को संचित करने की विधियाँ अधिक कारगर सिद्ध होती हैं। खेतों के एक भाग पर कृषि – कार्य व शेष में जल संचय कर सकते हैं, परन्तु खेत का संचित जलीय भाग फसल क्षेत्र में प्रवाहित कर दिया जाता है। मेड़ एवं नालियां निर्मित करके खेतों में फसल उत्पादित की जा सकती है।

II. शस्य वैज्ञानिक विधियाँ (agronomic methods)

यद्यपि शुष्क कृषि का मूल आधार नमी संरक्षण है, किन्तु शस्य वैज्ञानिक विधियाँ भी अति महत्वपूर्ण हैं, जिनके द्वारा मिट्टी में संचित नमी का अधिकतम उपयोग सम्भव है। फसलोत्पादन में वृद्धि हेतु उक्त फसल की सही किस्मों का चुनाव करते हुए उनकी समयानुसार उचित ढंग से बुवाई करते हैं। साथ ही खरपतवार नियन्त्रण करके फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति भी बनाए रखनी चाहिए। वर्षापोषित खेती में रबी की फसलों में सभी उर्वरक फसल बोने के समय उचित मात्रा में डालें। फसलों की बुवाई समय पर की जानी चाहिए। यहाँ बीज दर 10 से 15 प्रतिशत अधिक, लेकिन पौधों की संख्या सिंचित भूमि में रोपित पौधों की अपेक्षा 10 से 15 प्रतिशत अधिक, लेकिन पौधों की संख्या सिंचित भूमि में रोपित पौधों की अपेक्षा 10 – 15 प्रतिशत कम होनी चाहिए। शुष्क कृषि में नमी की सीमित मात्रा होने के कारण कम समय में पकने वाली फसलें बोनी चाहिए । उदाहरणार्थ चावल की आ. सी. 19 किस्म 60 दिन में व बाजरा की आर. एच. बी. 30 किस्म 75 – 80 दिन में पक जाती है, जो सामान्य फसलों की तुलना में नमी की कम मात्रा का उपयोग करती है।

शुष्क कृषि की सफलता हेतु निम्न शस्य वैज्ञानिक विधियाँ अपनाई जानी चाहिए

1. **फसलों का चयन :** शुष्क कृषि में इस प्रकार की फसलें बोई जायें, जो सूखा काल में नमी की कमी को सहन करने में अनको अनुकूल कर, जैसे ज्वार, बाजरा, मोठ, मूँग, चीला,

अरहर, तारामीरा, कुसुम आदि फसलें सूखा सहन करने वाली हैं। अत: इनका चयन किया जाये।

2. **किस्मों का चयन:** सूखा सहने वाली फसल विशेष के चयन के उपरान्त उपयुक्त किस्म का भी चयन करना होता है, जो कम समय में पककर तैयार हो व अधिक फसलोत्पादन देवें।
3. **खेत की जुताई :** शुष्क कृषि में रबी की फसलें संचित नमी पर पोषित होती हैं अत: इस हेतु वर्षा काल से पूर्व ही भूमि की जुताई अच्छी तरह एवं गहराई तक करें ताकि वर्षाकाल में मिट्टी अधिक नमी को समा कर सके। ग्रीष्मकाल में दो – तीन बुवाई करने पर रबी की फ्ललों के लिए आवश्यक मात्रा में नमी संचित हो जाएगी।
4. **बुवाई :** शुष्क क्षेत्रों में कृषि की सफल बुवाई विधि – बीज दर आदि पर आधारित होता है। सफल की समयानुकूल वृद्धि उसकी बुवाई विधि पर निर्भर करती है। उपयुक्त समय पर बुवाई न करने पर फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ ज्वार – बाजरा की बुवाई वर्षा होते ही आरम्भ कर देनी चाहिए। बीज सामान्य से 10 – 15 प्रतिशत अधिक डालना चाहिए, क्योंकि शुष्क क्षेत्रों में कम अंकुरण की समस्या रहती है।
5. **पौधों की संख्या एवं रक्षण :** सिंचित क्षेत्रों की अपेक्षा शुष्क क्षेत्रों में पौधों की संख्या 10 – 15 प्रतिशत कम ही रखें। यदि सूखे की मात्रा अधिक हो तो इसे 20 से 40 प्रतिशत कम रखना चाहिए। बुवाई से पूर्व बीजोपचार किया जाना आवश्यक है। बीजों की बुवाई के दौरान गहराई का ध्यान रखें। शुष्क क्षेत्रों में खाद उर्वरकों के उपयोग से पौधों की जड़ों का अच्छा विकास होता है, जिससे जड़ें भूमि की गहराई तक जाकर नमी प्राप्त कर सकें। प्रत्येक ती। वर्ष में एक बार जैविक खादों का उपयोग करें। उर्वरकों का उपयोग फसलों के आधार पर करना चाहिए।
6. **खरपतवार नियन्त्रण:** खरपतवार नियन्त्रण न होने से नमी का ह्रास तीव्र हो जाता है व फसलें पकने से पूर्व ही नष्ट हो जाती हैं अत: उपयुक्त फसल चक्र अपनाते हुए खरपतवार नियन्त्रण किया जाना चाहिए, जिसके लिए समयानुसार निराई – गुडाई भी आवश्यक है।

11.8 खाद्य सुरक्षा (Food Security)

न केवल भारत में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में खाद्य सुरक्षा पर चिन्ता जताई जा रही है। इसका कारण है कि जिस गति से जनसंख्या बढ़ रही है उस गति से खाद्यान्नों का उत्पादन नही बढ़ रहा है। सन् 1980 के दशक से संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से विष्व स्तर पर खाद्य सुरक्षा की समस्या पर विचार–विमर्श हो रहा है। विश्व खाद्य संगठन (1987) का मानना है कि सभी व्यक्तियों को सदैव आहार / भोजन की भौतिक एवं आर्थिक सुलभता ही खाद्य सुरक्षा है। सन् 1996 में विश्व बैंक ने स्पष्ट किया कि सभी को सक्रिय एवं स्वसय जीवन के लिए आवश्यक भोजन की सदैव सुलभता ही खाद्य सुरक्षा है। इन दोनों परिभाषाओं मैं खाद्यपदार्थो की भौतिक उपलब्धि तथा लोगों की उन्हें प्राप्त करने की सामर्थ्य ही खाद्य सुरक्षा निर्धारित करते हैं। खाद्य पदार्थों की उपलब्धता स्थानीय उत्पादन अथवा आयात पर निर्भर होती है तथा व्यक्ति की उन्हें प्राप्त करने की सामर्थ्य उसके स्वयं के उत्पादन अथक उन्हें क्रय करने की क्षमता पर निर्भर होती है। यह क्रय शक्ति खाद्य वस्तुओं की कीमत, उत्पादन तथा परिवार की आय पर निर्भर होती है।

सन् 1996 में खाध सुरक्षा की अवधारणा को अधिक विस्तार से रखा गया। इसमें तीन बातों पर जोर दिया गया। एक, वांच्छित खाद्य वस्तु की पर्याप्त मात्रा में भौतिक उपलब्धि; दूसरे, क्रय शक्ति द्वारा आर्थिक सुलभता तथा तीसरे, आपूर्ति में स्थिरता। बाद में इस अवधारणा को विस्तारित कर जीवनयापन की सुरक्षा के रूप में प्रस्तुत किया गया जिसमें संतुलित आहार के साथ सुरक्षित पेय जल, पर्यावरणीय सफाई, प्राथमिक षिक्षा तथा मूलभूत स्वास्थ्य सुविधाओं को सम्मिलित किग्रा गया। चुग तथा साथियों (1997) ने स्पष्ट किया कि खाद्य सुरक्षा परिवार के संसाधनो, कृषीय तथा गैर–कृषीय उत्पादन, पारिवरिक आय, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत उपभोग तथा व्यक्तिगत पोषण पर निर्भर होता है। इस तरह यह एक विस्तृत अवधारणा है जिसके विश्लेषण के लिए विविध प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता होती है। यहाँ देश में उत्पन किए जाने वाले खाद्यान्नों के आधार पर ही खाद्य सुरक्षा की चर्चा की गई है। जनसंख्या वर्ष 2001 की हैं, अस्तु उसी वर्ष के खाद्यान्न उत्पादन को आधार माना गया है।

भारत में भोजन का प्रमुख स्रोत कृषि है। देश में कुल कृषित भूमि के दो–तिहाई (119.8 करोड़ हेक्टर, 62 प्रतिशत, 2000–01) भाग खाद्यान्नों के अंतर्गत है। इसमे से केवल 10 प्रतिशत भाग ही दालों के अर्न्तगत है। इनसे सन् 2000–01 मैं 18.52 करोड़ टन अनाज और 1.07 करोड़ टन दालें पैदा हुई। देश की तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण सवाल उठता रहा है कि क्या देश में जनसंख्या के भरणपोषण के लिए पर्याप्त खाद्यान्नों का उत्पादन होता है? देश में खाद्यान्नों की मांग का अनुमान लगाया जा सकता है।

11.8.1 देश के स्थिति

एक औसत 60 कि.ग्रा. के व्यक्ति के लिए 60 ग्राम प्रोर्टीन और 2550 किलो कैलोरी प्रति दिन प्राप्त करने के लिए 268 ग्राम चावल, 137 ग्राम गेहूँ, 76 ग्राम दालें, 76 ग्राम मोटे अनाज आदि की आवश्यकता होती है। देश की कुल जनसंख्या सन् 2001 में 102.7 करोड़ व्यक्ति है। इस आधार पर देश में खाद्यान्न की मांग एवं उपलब्धि निम्नानुसार है :

तालिका– 11.16 : भारत में खाद्यानों की मांग एवं खाद्यान्न उत्पादन (लाख टन में)

अनाज	मांग	उत्पादन	कमी/आधिक्य
गेहूँ	1004.42	848.71	-155.71
मोटे अनाज	376.91	687.63	+310.72
दालें	209.51	301.84	+92.33
कुल	209.51	106.65	-102.86
मांग	1800.35	1944.83	+144.48

इस तरह अगर कुल मांग (180035 हजार टन) तथा कुल उत्पादन (194483 हजार टन) को एक साथ देखा जाय तो देश में आवश्यकता से (14448 हजार टन) अधिक खद्यान्नों का उत्पादन होता है। पुन :अगर अनाज एवं दालों को अलग – अलग करके देखें तो स्थिति निम्नानुसार बनती है :

अनाज : मांग 159084 हजार टन, उत्पादन 183818 हजार टन = आधिक्य 24734 हजार टन।

दालें : मांग 20951 हजार टन, उत्पादन 10665 = कमी 10286 हजार टन अर्थात् लगभग 2.5 करोड़ टन अन्न का आधिक्य है, परन्तु 1.03 करोड़ टन दालों की कमी है।

11.8.2 राज्यवार स्थिति

देश की भाँति राज्यों की मांग का अनुमान लगाया जा सकता है और मांग तथा उत्पादन की तुलना करके कमी / आधिक्य का भी अनुमान लगाया जा सकता है। देश की भाँति विभिन्न राज्यों में खद्यान की अधिकता की स्थिति नही है। यह निम्न तालिका सें स्पष्ट है:

अनाज की स्थिति

निम्न तालिका से स्पष्ट है कि 14 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में अनाज का उत्पादन मांग से अधिक हुआ। फलत : इन राज्यों में अनाज का आधिक्य है। ये राज्य तीन भागों में फैले हैं

अनाज के आधिक्य वाले राज्य

1. उत्तर – पश्चिमी विशाल मैदान के राज्य – पंजाब (21518 हजार टन), उत्तर प्रदेश, (14429), हरियाणा (9912), हिमाचल प्रदेश (500), राजस्थान (560) तथा उत्तराखण्ड (392 हजार टन में)।
2. दक्षिणी राज्य - आन्ध्र प्रदेश (1945), कर्नाटक (1811), छत्तीसगढ़ (211).
3. उत्तरपूर्वी राज्य – पश्चिम बंगाल (1169), अरुणाचल प्रदेश (28), त्रिपुरा (23), सिक्किम (14), मणिपुर (8)।

अनाज की कमी वाले राज्य

1. जम्मू–काश्मीर (460), चंडीगढ (140), दिल्ली (2095),
2. मध्यप्रदेश (2507), झारखण्ड (2252), बिहार (1410), उड़ीसा (914).
3. गोवा (61), गुजरात (4347), महाराष्ट्र (6546), दादरा (13), दामन (21)
4. केरल (4177), तमिलनाडु (1043), पांडुचेरी (89), लक्षद्वीप (9)
5. आसाम (22), मेघालय (157),मिजोरम (18), नागालैण्ड (44), अण्डमान (25)

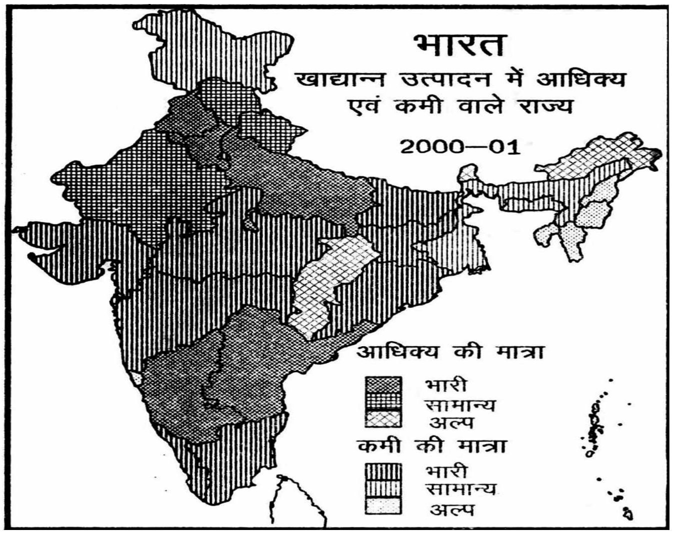

चित्र– 11.8 : भारत में खाद्यान्न उत्पादन की कमी एवं आधिक्य

दालों की स्थिति।

दालों की स्थिति काफी खराब है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कि देश में दालों की कुल मांग 20951 हजार टन है, परन्तु उत्पादन केवल 10286 हजार टन है। फलत : 10286 हजार टन दालों की देश में कमी है। जैसा कि, तालिका से स्पष्ट है कि केवल मध्यप्रदेश को छोड़कर सभी राज्यों में दालों का उत्पादन मांग की तुलना मे, कम और बहुत कम होता है, अर्थात् सभी राज्यों मे दालों की कमी हैं।

11.8.3 कुल खाघान्नों की स्थिति

अनाज और दालें दोनों मिला कर देखने पर स्थिति अनाज के समान दिखाई देती है। कुल 11 राज्यों हैं खाद्यान्नों का आधिक्य तथा शेष 24 राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में इनकी कमी है। इन राज्यों को तीन प्रकारों में रखा जा सकता है :

खाद्यान्न आधिक्य वाले राज्य

1. भारी मात्रा में (1000 हजार टन से अधिक) आधिक्य वाले राज्य – पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश।
2. सामान्य (100 से 1000 हजार टन) आधिक्य वाले राज्य–हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा राजस्थान।
3. अल्प (100 हजार टन से कम) आधिक्य वाले राज्य–अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम और छत्तीसगढ़।

खाद्यान्नों की कमी वाले राज्य

1. **भारी** (1000 हजार टन से अधिक) कमी वाले राज्य–महाराष्ट्र, गुजरात, केरल, झारखण्ड, बिहार, दिल्ली, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश और उड़ीसा।
2. **मध्यम** (100 से 1000 हजार टन तक) कमी वाले राज्य–पाण्डुचेरी, चण्डीगढ़, आसाम, पश्चिम बंगाल, मेघालय और जम्मू–कश्मीर।
3. **अल्प** (100 हजार टन से कम) कमी वाले राज्य–गोवा, नागालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा, मिजोरम, अण्डमान–निकोबार, दामन दीव, दादरा नगर हवेली और लक्षद्वीप।

विचारणीय प्रश्न

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस गणना में केवल खाद्यान्नों के उत्पादन पर ही विचार किया गया है और अखाद्य फसलों के उत्पादन की अवहेलना हुई है। देश में कुल कृषित भूमि के एक–तिहाई (37.2 प्रतिशत) भाग पर इन अखाद्य फ़सलों की खेती की जाती है। भले ही इन फसलों का सीधे भोजन के रूप में उपयोग न होता हो, परन्तु ये किसानों की आय बढ़ा कर उनकी क्रय शक्ति बढ़ाती हैं। इस तरह परोक्षरूप से भूमि की वहन–क्षमता को बढ़ाती हैं। इस लिए खाद्यान्नों के आधिक्य और कमी के क्षेत्रों के पहचान करते समय इन पर भी विचार किया जाना चाहिए। इसी तरह खाद्य पदार्थो की मांग जनसंख्या के आयु, लिंग, व्यवसाय, आदि के अनुसार अलग–अलग होती है। अस्तु मांग की गणना करते समय इन पर भी विचार किया जाना चाहिए। उपरोक्त गणना में इन दोनों पर ध्यान नही दिया गया है।

11.8.4 मूल्य के रूप में खाद्य की उपगधता

उपर्युक्त दोषों को दूर करने के लिए कई तरीके उपयोग किए जाते हैं, जैसे – खाद्यान्न समतुल्य उत्पादन, कृषि की वहन क्षमता, कैलोरीज के रूप में उत्पादन, मूल्य के रूप में फसलों के उत्पादन का आकलन कर खाद्य आपूर्ति की गणना करना आदि। ऐसा ही एक कार्य नूर मोहम्मद (2002) का है जिसमें मूल्य विधि का उपयोग किया गया है। यह कार्य भारत में खाद्य सुरक्षा का प्रादेशिक प्रतिरूप लेख के रूप में प्रकाशित है। उन्होंने वर्ष 1994–05,1995–96 तथा 1996–97 के सभी फसलों के जिलेवार औसत उत्पादन लेकर प्रत्येक जिले में उत्पादित फसलों का प्रति हेक्टर मूल्य निकाल लिया। उत्पादित फसल की कुछ मात्रा बीज रखने, ढोने तथा अन्य रूपों में नष्ट होने के कारण उपभोग के लिए उपलब्ध नही हो पाती। यह मात्रा, कुल उत्पादन की 16.8 प्रतिशत अनुमानित (चक्रवर्ती 1970) है। इस तरह उत्पादन का गुणांक (100–16.8=83.2, अर्थात्) 0.832 आता है। जिले के कुल उत्पादन के मूल्य को इस गुणांक से गुणा करके निरा उपलब्ध मात्रा ज्ञात की गई। यह मूल्य खाद्य पदार्थ के क्रय की सामर्थ्य का द्योतक है। कृषि की उत्पादकता मापने के लिए भी इस मूल्य का उपयोग किया जा सकता है।

उत्पादन की उपलब्धता के साथ ही उसी अवधि में खाद्यान्नों की मांग का भी अनुमान लगाने पर ही कमी और अधिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके लिए सन 1994 से 1997 तक की जिलेवार अनुमानित औसत जनसंख्या का उपयोग किया गया है। यह इस लिए कि कृषीय उत्पादन के आकड़े भी इन्ही वर्षो के औसत हैं। जनसंख्या की मांग उसकी आयु, लिंग, व्यवसाय, शारीरिक आकार, आय, संस्कृति के अनुसार अलग – अलग होती है। इस विभिन्नता को दूर करने के लिए जनसंख्या को उपभोग इकाई में बदला जाता है। अनुमान (चक्रवर्ती 1970) है कि एक व्यक्ति 0.773 उपभोग इकाई के बराबर होता है। इस कारण मांग की गणना के लिए प्रत्येक जिले की औसत जनसंख्या को 0.773 गुणांक से गुणा करके जनसंख्या को उपभोग इकाई में बदला गया है। देश में उपभोग इकाई के रूप में व्यक्त जनसंख्या के वितरण का प्रतिरूप निम्नानुसार है :

तालिका–11.17 : भारत में कुल उपभोग इकाइयों का वितरण प्रतिरूप, 1994–97

वर्ग	**उपभोग इकाई की सीमा**	**जिलों की संख्या**	**कुल जिलों का प्रतिशत**
बहुत अधिक	20,00,000 से अधिक	146	34.27
अधिक	15,00,000 से 20,00,000 तक	77	18.07
माध्यम	10,00,000 से 15,00,000 तक	87	20.42
कम	10,00,000 से कम	116	27.24
कुल		**426**	**100.00**

स्रोत: नूरमोहम्मद (2002) पृ. 15

11.8.5 खाद्य आधिक्य एवं कमी के क्षेत्र

प्रत्येक जिले की फसलों के निरा मूल्य को उस जिले की उपभोग इकाई (भारित जनसंख्या) से भाग देकर प्रति व्यक्ति उपलब्ध मूल्य की गणना की गई। नूर मोहम्मद ने अनुमान लगाया है कि वर्तमान कीमत के स्तर पर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष रुपए 1150 जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त

हैं। इस आधार पर जिन जिलों में प्रति व्यक्ति औसत मूल्य रुपए 1150 से अधिक हैं ऊनेह आधिक्य वाले तथा जिनमें इनसे कम है वे कमी वाले जिले कहे जा सकते हैं। इन वृहद् वर्गों को पुन : दो–दो वर्गों मे बांटा जा सकता है :

तालिका–11.17: भारत में खाद्य आधिक्य एवं कमी वाले जिलों का वितरण

वर्ग	**उपलब्धता की सीमा रुपया मे**	**जिलों की संख्या**	**कुल जिलों का प्रतिशत**
पर्याप्त आधिक्य	1500 से अधिक	174	40.85
सामान्य आधिक्य	1500 से अधिक	124	29.10
कमी	800 से 1150 तक	48	11.27
बहुत कमी	800 से कम	80	18.78
कुल		**426**	**100.00**

स्रोत : नूरमोहम्मद (2002) पृ. 19

इस तरह देश के 70 प्रतिशत जिलों मैं खाद्य उपलब्धता की अधिकता है जिन्हे इस दृष्टि से सुरक्षित' कहा जा सकता है। केवल 30 प्रतिशत ही जिले कमी वाले हैं जहाँ इसकी कमी है।

पर्याप्त आधिक्य वाले 40 प्रतिशत जिले 10 क्षेत्रों में फैले हैं। इनमें से तीन क्षेत्र अधिक उत्पादकता वाले क्षेत्र भी हैं: उत्तरपश्चिमी भारत में पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान का गंगानगर जिला–तकनीकी दृष्टि से विकसित तथा अधोसंरचना में सम्पन्न, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न। दूसरा क्षेत्र पश्चिम बंगाल,दक्षिणपूर्व बिहार का मैदान तथा आसार के ब्रहमपुत्र घाटी के कुछ जिले मे फैला है। कारण चाय, जूट तथा उद्यान कृषि का विकसित होना है। तीसरा क्षेत्र आन्ध्र प्रदेश का पूर्वार्द्ध, अधिकांश तमिलनाडु केरल तथा कर्नाटक और महाराष्ट्र का पश्चिमी तटीय भाग पर फैला है। अन्य क्षेत्रों में उत्तरी गुजरात का मैदान, नर्मदा घाटी, छत्तीसगढ़ त्रिपुरा तथा उत्तराखण्ड के कुछ जिले उलेखनीय हैं।

मध्यम आधिक्य वाले जिले देश के कुल जिलों के 29 प्रतिशत हैं। इनका विस्तार पर्याप्त आधिक्य वाले जिलों के तारतम्य में है। ऐसे सबसे बड़े क्षेत्र का विस्तार उत्तरपश्चिम से दक्षिणपूर्व दिशा में राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा बिहार के जिलों में है। यहाँ जनसंख्या के अधिक दबाव के कारण 'आधिक्य की मात्रा मध्यम है। मध्यम आधिक्य वाले जिलों का दूसरा प्रमुख क्षेत्र मध्यपूर्वी प्रायद्वीपीय भाग पर है जिसका विस्तार मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश तथा उड़ीसा के कुछ जिलों पर है। देश के 11 प्रतिशत जिलों में सामान्य कमी है। ऐसे जिले यत्रतत्र फैले हैं। इनमें पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तरी झारखण्ड, पश्चिमी आसाम घाटी, मेघालय, महाराष्ट्र तथा उत्तरी तमिलनाडु के जिले उल्लेखनीय हैं। अधिक कमी वाले जिलों का विस्तार पश्चिमी राजस्थान के मरूस्थली क्षेत्र से लेकर उत्तरी गुजरात तथा उत्तरपश्चिमी मध्यप्रदेश में है। प्रायद्वीपीय भारत के वृष्टिछाया प्रदेश में भी कृषि उत्पादकता कम तथा खाद्य क्रयशक्ति की बहुत कमी है।

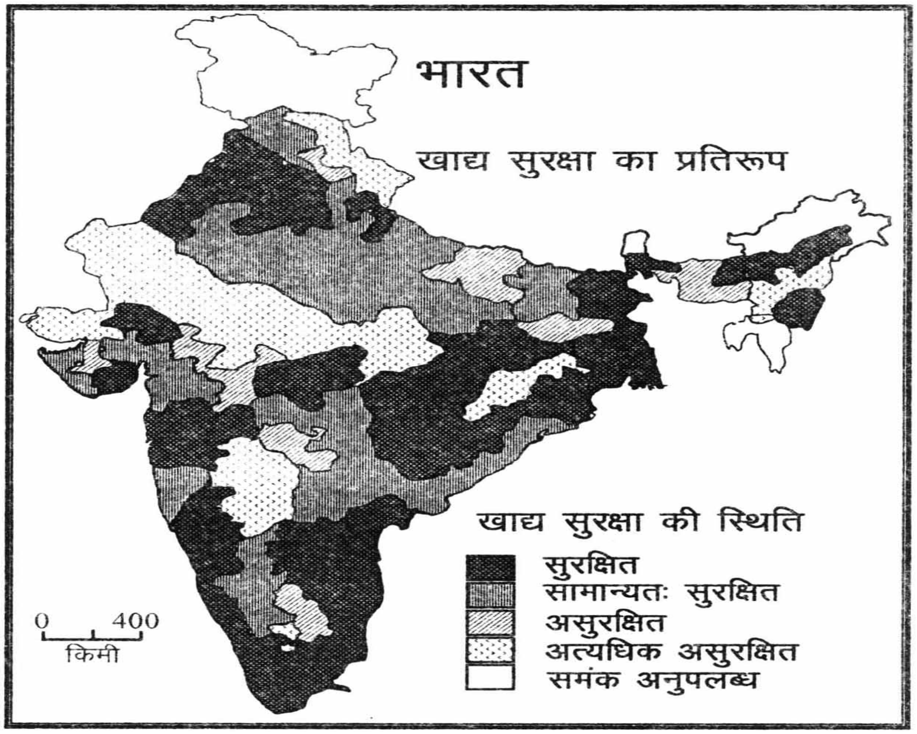

चित्र – 11.9: भारत में खाद्य सुरक्षा की स्थिति (नूरमोहम्मद 2002 के आधार पर)

खाद्यान्नों के उत्पादन में चार गुना वृद्धि होते हुए भी देश के सभी भागों में इसकी सुरक्षा नही है। अभी भी एक – तिहाई जिलों में इसकी कमी है। अस्तु भविष्य में इन क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने के लक्ष्य से योजनाएं बनाना चाहिए।

बोध प्रश्न-2

1. हरित क्रान्ति का आधार क्या था?

   ....

   ....

2. हरित क्रान्ति के दो दुष्प्रभाव बताइये।

   ....

   ....

3. शुष्क कृषि क्या हे?

   ....

   ....

4. खाद्य सुरक्षा की समस्या क्या है?

   ....

   ....

5. भारत की प्रमुख जायद फसलें कौनसी हैं?

   ....

   ....

11.9 सारांश (summary)

भारत में दो–तिहाई जनसंख्या कृषि पर निर्भर है जबकि विकास के वैश्विक दृष्टिकोण से यह है, क्योंकि प्राथमिक क्षेत्र में अधिक भागीदारी अनुकूल नहीं है। भारत की कृषि की पारम्परिक पद्धति रही जबकि कभी भी क्रांतिकारी बदलाव लाने का प्रयास किया गया तो शीघ्र ही उसके विपरीत प्रभाव आये है, जिनमें हरित क्रान्ति के बाद भू–जल अवनयन प्रमुख है। इसलिए भारत में सतत् कृषि की आधारशिला रखनी चाहिए क्योंकि निरन्तर बढ़ती जनसंख्या का भरण–पोषण सतत. कृषि ही कर सकती है न कि पारम्परिक कृषि। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में इन सभी घटकों का विस्तृत विवरण किया गया है।

11.10 शब्दावली (glossary)

- **भूमि उपयोग** : किसी भी राजनीतिक या प्रशासनिक इकाई के भौगोलिक क्षेत्र का विविध रूपों में उपयोग भूमि उपयोग कहलाता है।
- **शस्य गहनता** : बोये गए शुद्ध क्षेत्र के प्रतिशत के रूप में सकल फसलगत क्षेत्र शस्य गहनता की माप को दर्शाता है।
- **कृषि प्रदेश** : ऐसा प्रदेश जिसमें जलवायुविक एवं भौतिक स्वरूप की समरूपता के साथ फमलगत समरूपता भी, पायी जाती है।
- **हरित क्रान्ति :** खाद्य फसलों विशेषकर चावल एवं गेहू के उत्पादन मैं आकस्मिक वृद्धि को' 1960 के दशक में हरित क्रान्ति कहा गया।
- **शुष्क कृषि :** अर्द्धशुष्क प्रदेशों में की जाने वाली कृषि, जहाँ जलाभाव रहता है तथा फसलों मुखत : वर्षा पोषित रहती हैं।

11.11 सन्दर्भ ग्रंथ (References Books)

1. Singh, jasbir (1999), **Agricultural geography,** Tata Megraw hill Publication, PvtI, and New Delhi.
2. Shaffi, M. (2005), **Agricultural Geography Pearson** Publication, New Delhi.
3. Gujar, R.K. and Jat, B.C. (2008), **Geography of water Resources**, Rawat Publication, and Jaipur.
4. गुर्जर, आर. के. एवं जाट, बी. सी. (2007), **भारत का भूगोल,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर
5. तिवारी, आर. सी. (2008), **भारत का भूगोल,** वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर

11.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. पंजाब (कुल भूमि का 84. 3 प्रतिशत)।
2. कुल कृषित भूमि को निरा बोए गए क्षेत्र के प्रतिशत को शस्य गहनता का सूचक माना जाता है।

3. 3 क्षेत्रफल एवं उत्पादन दोनों में चावल।
4. चार क्षेत्र हैं (1) गंगा –युमना दो आब (2) रुहेल खण्ड (3) तराई तथा (4) मध्य तथा पूर्वी भाग।
5. तीन – उत्तरपूर्वी, उत्तरपश्चिमी तथा दक्षिडि छेत्र।
6. राजस्थान तथा मध्य प्रदेश।
7. जल वायु के आधार पर 4 वृहद् प्रदेश, धारतल के आधार पर 11 उपकृषि प्रदेश तथा शस्य संयोजन के आधार पर 6\0 लघु कृषि प्रदेश निर्धारित किया।

बोध प्रश्न – 2

1. विपुल उत्पादन देने वाले बीज।
2. क्षेत्रीय विषमता एवं छोटे किसानों को अल्प लाभ।
3. शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में की जाने वाली कृषि जहाँ मौसमी जल का अभाव पाया जाता है तथा वर्षा कम होती है।
4. सभी व्यक्तियों को सदैव भोजन की भौतिक एवं आर्थिक सुलभता।
5. पश्चिमी राजस्थान, उत्तरी गुजरात, उत्तर पश्चिमी मध्यप्रदेश तथा प्रायद्वीपीय भारत का वृष्टि छाया प्रदेश।

11.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत में भूमि उपयोग को दर्शाते हुए भारत के प्रमुख कृषि प्रदेशों का वर्णन कीजिए।
2. हरित क्रान्ति की भौगोलिक व्याख्या कीजिए।
3. खाद्य सुरक्षा का विवरण दीजिए।
4. भारत की प्रमुख फसलों का वितरण एवं उत्पादन बताइये।

इकाई 12 : उद्योग (Industries)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 स्वतंत्रता के पूर्व औद्योगिक विकास
12.3 स्वातंत्रोत्तर काल में औद्योगिक विकास
12.3.1 औद्योगिक नीति
12.3.2 पंचवर्षीय योजना काल में औद्योगिक विकास
12.4 सूती वस्त्र उद्योग
12.4.1 सूती वस्त्र उद्योग का विकास
12.4.2 सूती वस्त्र उद्योग का स्थानीकरण
12.4.3 सूती कपड़ा उद्योग का वितरण
12.4.4 उद्योग की समस्याएं
12.5 लोहा एवं इस्पात उद्योग
12.5.1 लोहा एवं इस्पात उद्योग का विकास
12.5.2 लोहा एवं इस्पात उद्योग का स्थानीकरण
12.5.3 लोहा एवं इस्पात उद्योग का वितरण
12.5.4 उद्योग की समस्याएं
12.6 शक्कर उद्योग
12.6.1 शक्कर उद्योग का विकास
12.6.2 शक्कर उद्योग का स्थानीकरण
12.6.3 शक्कर उद्योग का वितरण
12.6.4 शक्कर उद्योग की समस्याएं
12.7 औद्योगिक प्रदेश
12.7.1 वृहद् औद्योगिक प्रदेश
12.7.1 गौण औद्योगिक प्रदेश
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 संदर्भ ग्रन्थ
12.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.0 उद्देश्य (objectives)

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे :–

- भारत में औद्योगीकरण का इतिहास,

- भारत की औद्योगिक नीति एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक विकास
- सूती वस्त्र उद्योग, लोहा –इस्पात उद्योग त था शक्कर उधयोग का विकास, स्थानीकरण, वितरण एवं समस्याएं,
- भारत के मुख्य एवं गौण औद्योगिक प्रदेश।

12.1 प्रस्तावना (introduction)

औद्योगीकरण विकास का एक प्रमुख मापदण्ड है। औद्योगीकरण की दृष्टि से भारत की गणना विश्व के दस देशों में की जा सकती है। प्राकृतिक संसाधनों के प्रचुर भंडार और भारी जन – संसाधन के कारण भारत में औद्योगिक विकास की प्रबल संभावनाएँ हैं। औद्योगिक उत्पादन हेतु विविध प्रकार के कच्चे माल और शक्ति के साधनों के साथ ही सस्ते एवं कुशल श्रमिक तथा विस्तृत बाजार उपलब्ध है। तथापि औद्योगिक विकास अपेक्षित स्तर तक नही हो पाया। आधुनिक फैक्टरी उद्योग का विकास लगभग 160 वर्ष प्रारंभ हु आ। सन् 1950 के पूर्व भारत में लोहा–इस्पात, सूती –वस्त्र, जूट, शक्कर, कागज, सीमेंट. चमड़ा, साबुन आदि वस्तुओं के उद्योग स्थापित थे, लेकिन इनके विकास की गति मन्द थी। स्वतंत्रता के बाद व्यवस्थित औद्योगिक विकास के लिए नीतियों तैयार की गाई । उद्योगों को आर्थिक मदद देने, के लिए कई संस्थाएं स्थापित की गईं। फलत : उपभोक्ता उद्योगों के अलावा आधारभूत उद्योग, इंजीनियरिंग उद्यत।, वस्त्र, दवाइयाँ, रसायन, मशीनें रथ उपकरण, परिवहन उपकरण. इलेक्ट्रानिक उद्योग आदि के विकास के कारण औद्योगीकरण में विविधता आई है।

12.2 स्वतंत्रतापूर्व औद्योगिक विकास (Industrial Development in Pre– Independence Period)

यूरोप मैं औद्यौगिक क्रांति के पूर्व प्राचीन भारत में विभिन्न उद्योग विकसित थे। ये उद्योग वृहद् संयंत्रों के रूप में न होकर घरेलूकुटीर उद्योगों के रूप में सम्पूर्ण भारत में फैले थे तथा इनमें बहु त ही उच्च कोटि की वस्तुये तैयार होती थी। दसवीं सन् से एक हजार वर्ष पूर्व भारत में जंगरहित लोहे के निर्माण की तकनीकी विकसित थी। कुशल बुनकर कपड़े की अति आकर्षक बुनाई में पारंगत थे और उनके द्वारा बनाए गए वस्त्र विश्व प्रसिद्ध थे। भारतीय मलमल का निर्यात विश्व के विभिन्न देशों को होता था। देश में धातु, मिट्टी, लकड़ी एवं चमड़े से विभिन्न आकर्षक एवं कलात्मक वस्तुएं बनाई जाती थीं, जैसे – सोने एवं चांदी के आभूषण, पीतल एवं ताँबे के बर्तन, लोहे के औजार एवं यंत्र, लकड़ी के सामान, चमड़े के जूते एवं विभिन्न वस्तुएं आदि का निर्माण होता था। अठारहवीं शताब्दी की यूरोपीय औद्योगिक क्रांति से बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास हु आ। मशीनों निर्मित विभिन्न वस्तुएं भारतीय बाजार में बेची जाने लगीं। फलत : भारतीय कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित वस्तुएँ प्रतियोगिता में. गई तथा भारतीय घरेलू उद्योग धीरे – धीरे समाप्त होते गए।

भारत में फैक्टरी उद्योगों की शुरुआत सन् 1853 में काठ कोयला पर आधारित लोह गलाने के कारखाने से हु ई। यह कारखाना बीस साल बाद बन्द हो गया। आधुनिक औद्योगीकरण की वास्तविक शुरुआत सन् 1854 से मानी जाती है जब मुम्बई (पूर्व नाम बम्बई) में प्रथम सूती

वस्त्र की मिल की स्थापना हुई। इसी वर्ष कोलकाता (पूर्व नाम कलकत्ता) के निकट रिसरा में स्काटलैंड की एक कम्पनी ने जूट मिल की स्थापना की। सूती वस्त्र उद्योग की प्रगति प्रारंभ में मंद थी तथा सर 1861 तक लगभग एक दर्जन कारखाने ही लगाए जा सके थे। पहिली मिल मुम्बई में (द्वीप के बाहर) थी तथा अन्य भी मुम्बई के आसपास ही थीं। यहाँ से बाहर अहमदाबाद में सन् 1861 में शाहपुर मिल्स तथा सर 1863 में कैलिको मिल्स लगाई गईं। सर 1860–70 का दशक इस उद्योग के लिए अनुकूल नहीं था। वर्ष 1861–65 के अमेरिकी गृहयुद्ध के कारण कपास की कीमत बहुत बढ़ी। फलत : इसका निर्यात बढ़ा जिससे कारखाना तथा हाथकरघा दोनों को कच्चे माल की समस्या का सामना करना पड़ा। बाद के वर्षो में आशातीत वृद्धि हुई और मिलों कीं संख्या सन् 1879–80 में 58 हो गई। इनके साथ ही कपास उत्पादक क्षेत्रों में कपास की ओटाई (ginning) तथा संपीडन (pressing) के उद्योग भी लगाए गए। इस उद्योग में उल्लेखनीय प्रगति हुई और सन् 1895 में कारखानों की संख्या 144 हो गई।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में पूर्वी भारत में कारखानों का लगना सक्रिय रहा। कलकत्ता के निकट ' 'बैलीगंज" में प्रथम कागज उद्योग लगा। इसी दौरान कुल्टी मैं देश का पहला लोहा एवं इस्पात उद्योग स्थापित हुआ। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में सन् 1970 में 'जमशेदपुर ' में पहला एकीकृत लोहा एवं इस्पात उद्योग स्थापित हुआ। यहाँ जूट मिलों, का भी केन्द्रीकरण हुआ। वर्ष 1855 में पहले कारखाने के पश्चात् सन् 1859 मैं कातने एवं बुनने (spinning and weaving) के कारखानों की स्थापना हुई। उसके बाद सन् 1862 में दो नये उधयोग लगे और वर्ष 1869 से 1884 के बीच 23 नये कारखाने भी पूर्व में ही लगाये गये।

उन्नीसवीं सदी के अन्त एवं बीसवीं सदी के प्रारम्भ में ज्यादातर उद्योगों का केन्द्र बिन्दु, बम्बई एवं कलकत्ता थे, परन्तु कुछ कागज के कारखाने देश के अन्य प्रान्तों में भी लगाये गये। इनमें से वर्ष 1905 में लखनऊ मैं स्थापित मिल उल्लेखनीय है। वर्ष 1870 के दशक मैं ऊनी कपड़ा उद्योक कानपुर (उत्तरप्रदेश), धारीवाल (पंजाब), एवं बैंगलोर (कर्नाटक) में स्थापित हुआ। सैन्यबल, पुलिस 'एवं रेलवे कर्मचारी इन उत्पादकों के प्रमुख उपभोक्ता थे। वर्ष 1910 तक के काल की दो विशेषताएँ रही :–

(अ) बम्बई एवं कलकत्ता का औद्योगीकरण के केन्द्र बिन्दु में रहना, और

(ब) ज्यादातर उद्योगों में ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभाव।

वर्ष 1918 के पहले विश्वयुद्ध के प्रारम्भ से भारतीय उद्योगों को बढ़ावा मिला । देश का व्यापार 'स्वेज नहर' के माध्यम से होने लगा। वर्ष 1922 से 1939 के बीच इस्पात, सूती कपड़ा, पेपर एवं शक्कर उद्योगों को विशेष लाभ हुआ। दूसरे विश्वयुद्ध (1939–1944) के दौरान भारत में औद्यौगिक रसायन और उस पर आधारित उद्योग जैसे कि साबुन, वनस्पति इत्यादि तथा सीमेन्ट, विद्युत - शक्ति, लौहामय धातु (ferrous metals) एवं अभियांत्रिकी (Engineering) संबंदीत उद्योगों का विकास हुआ। भारत वर्ष के उद्योगों पर: दो विश्वयुद्धों का विशेष असर पड़ा, जैसे कि :–

(अ) विश्वयुद्धों के पूर्व केवल कुछ ही उद्योग स्थापित थे परन्तु तत्पश्चात् विभिन्न के उद्योगों का विकास हुआ। जैसे कि ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के अलावा बडे कारखानों का विकास या फिर कपास लूट, कपड़ों के अलावा सीमेन्ट, रसायन इत्यादि उद्योगों का विकास।

(ब) दूसरा पहलू जो इस अवधि में उभर कर सामने आया वह बम्बई एवं कलकत्ता के अलावा नये शहरों में कारखानों का लगना। बिहार राज्य में धातु कर्म, सीमेन्ट एवं चीनी उद्योग, उत्तर प्रदेश में चीनी, कपास एवं ऊनी.उद्योग तथा फिरोजाबाद में काँच के उद्योगों का विकास हु आ।

12.3 स्वातंत्रोत्तर काल में औद्योगिक विकास (industrial development in post–independence period)

सन् 1950 के पूर्व भारत में लोहा–इस्पात, सूती वस्त्र, चीनी, कागज, सीमेन्ट चमड़ा, साबुन आदि वस्तुओं के उद्योग स्थापित थे, लेकिन इनके विकास की गति मन्द थी। इसके विपरीत पूंजीगत वस्तुओं, मशीनरी एवं रसायन उद्योग बहु त कम थे। स्वतंत्र भारत में व्यवस्थित औद्योगिक नीति सन् 1948 में लागू की गई ताकि देश में समग्र औद्योगिक विकास हो सके। सर 1956 में औद्योगिक नीति में संशोधन किया गया और सार्वजनिक क्षेत्र के लिए उद्योग सुरक्षित रखे गए। उद्योगों को आर्थिक मदद देने के लिए कई संस्थाएं स्थापित की गईं। इन नीतियों रण प्रयत्नों के कारण पंचवर्षीय योजनाओं से औद्योगिक विकास में तीव्रता आई तथा देश में अनेकों आधारभूत उद्योगों एवं घरेलू उपयोग की वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना की गई। फलत : देश से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में औद्योगिक निर्मित वस्तुओं का हिस्सा काफी बढ़ गया।

12.3.1 औद्योगिक नीति (industrial policy)

स्वतंत्र भारत की औद्योगिक नीति की घोषणा सन् 1948 में की गई। इसमें मिश्रित अर्थ – व्यवस्था पर जोर दिया गया। उद्योगों के विकास का दायित्व सरकार पर रखा गया। सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के साथ ही निजी क्षेत्र के लिए भी समुचित उद्योग सुरक्षित रखे गये। सन् 1956 में औद्योगिक नीति में संशोधन किया गया। इस संशोधित नीति के आधार पर 'अ' सूची के उद्योगों के विकास की जिम्मेदारी सरकार की रखी गई। इस सूची में सुरक्षात्मक उद्योग, लोहा–इस्पात र मशीन निर्माण संबंधी उद्योग, अन्य भारी उद्योग, परिवहन तथा यातायात संबंधी उद्योग, शक्ति उत्पादन संबंधी उद्योग आदि राष्ट्रीय महत्व वाले उद्योग रखे गये हैं। 'ब' सूची उद्योगों के विकास में सरकार तथा निजी क्षेत्रों के सहयोग की अपेक्षा की गई हैं। उद्योगों को लाइसेंस देने के लिए कानून बनाये गये। उद्योगों के प्रबंध संबंधी नियम भी पारित किये गये। इन नियमों का उद्देश्य था कि उद्योगों पर निजी क्षेत्र का एकाधिकार न हो जाये। इस समस्या का कई व्यक्तियों एवं संस्थाओं द्वारा अध्ययन किया गया। इनके सुझावों को ध्यान मैं रखते हु ए लाइसेंस संबंधी कई नियम बनाये गये। उद्योगों को आर्थिक मदद देने के लिए कई संस्थायें स्थापित की गईं। इनमें भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आई. एफ. सी. आई.) की स्थापना सर 1948 में हु ई और अब यह भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई. डी. बी. आई.) का सहायक है। इस बैंक की "स्थापना सन 1964 में की गई। इसका कार्य अन्य वित्तीय संस्थाओं के कार्यो को संयोजित करना, मौलिक महत्व के उद्योगों के विकास में उनकी सहायता करना ओर भविष्य में उद्योगों के विकास की प्राथमिकता निर्धारित करना है। भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम (आई.

सी. आई. सी. आई) सर 1955 में स्थापित किया गया। ऐसे उद्योगों के पुनर्निर्माण के लिए जो बंद हो गये हैं अथवा बंद होने की स्थिति मैं हैं, भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम (आई आर सी.आई.) की स्थापना सन् 1971 में की गई। सूती तथा जूट वस्त्रोद्योग के पुनर्स्थापना के लिए सन् 1954 मैं राष्ट्रीय औद्योगिक विकास नियम बनाया गया था। कुछ उद्योगों में विदेशी धन भी आकर्षित किया गया।

भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया तो सन् 1980 के दशक में ही शुरू हो गई थी, जब विदेशी निवेशकों को अनेक छूटें दी जाने लगी थीं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रतिरक्षा सहित अनेक ऐसे क्षेत्रों में निवेश की स्वीकृति दी जाने लगी जो पहले विदेशियों के लिए प्रतिबंधित थे। कुछ क्षेत्रों को छोडकर सभी क्षेत्रों के लिए लाइसेंस पद्धति समास कर दी गई। आयात को बहुत उदार बना दिया गया। वैश्वीकरण की प्रक्रिया को वास्तविक प्रोत्साहन तब मिला जब भारत सरकार ने जुलाई 1991 में नई आर्थिक नीति लागू की। तब से लेकर वैश्वीकरण की दिशा में कुछ निश्चित कदम उठाए गये है। भारतीय रुपए को चालू खाते पर पूरी तरह से परिवर्तनीय बना दिया गया गया है । विदेशी निवेशकों को और अनिवासी भारतीयों को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए प्रोत्साहन और सुविधाएँ दी जा रही है।

औद्योगिक विकस संभव बनाने के लिए उदारीकरण किया गया है। उदारीकरण के प्रमुख उपाय ये हैं – (1) औद्योगिक लाइसेंसों को समाप्त, (2) विदेशी प्रौद्योगिकी का स्वतंत्र प्रवेश, (3) प्रत्यक्ष विदेश निवेश नीति, (4) पूँजी बाजार की सुलभता, (5) मुक्त बाजार (6) चरणबद्ध विनिर्माण कार्यक्रमों की समाप्ति और (7) औद्योगिक स्थानीकरण कार्यक्रमों में उदारता। सुरक्षा, सामरिक और पर्यावरण की दृष्टि से संवेदनशील उद्योगों की सूची में शामिल छः उद्योगों को छोडकर अन्य सभी वस्तुओं के लिये लाइसेंस की अनिवार्यता समाप्त कर दी गई है। साथ ही सन् 1956 में सार्वजनिक क्षेत्रों के लिए सुरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से घटाकर 4 कर दी गई है। सार्वजनिक क्षेत्रों के लिए सुरक्षित उद्योग वे ही हैं जो सुरक्षा और सामरिक दृस्ती से संवेदनशील हैं :– परमाणु ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा विभाग की सूची में दिखाये गये पदार्थ और रेल परिवहन। सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में सरकारी शेयरों में से कुछ भाग वित्तीय संस्थानों, सामान्य जनता और कामगारों का देने का फैसला किया है। परिसंपत्तियों की प्रारंभिक सीमा खत्म कर दी गई है अब लाइसेंस मुक्त किसी भी उद्योग में निवेश के लिए सरकार से पूर्व अनुमति लेनी नहीं पड़ती।

घरेलू निवेश की तरह भारत में विदेशी निवेश पर भी परंपरा से नियंत्रण चला आ रहा था। भारतीय कंपनियों की विदेशी प्रौद्योगिकी तथा विदेशी निवेश के लिए समझौता अनुबंध करने से पूर्व प्रत्येक परियोजना के लिए विशिष्ट पूर्व अनुमति लेना अनिवार्य था। लेकिन नई औद्योगिक नीति के अनुसार आर्थिक विकास की उच्चदर प्राप्त करने के लिए घरेलू पूँजी निवेश बढ़ाने से प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश से बढी मदद मिलती है। इससे न केवल घरेलू उद्योग लाभांवित होता है, बल्कि उपभोक्ताओं को उन्नत प्रौद्योगिकी, विश्व में प्रचलित प्रबंधन कुशलता, मानव तथा प्राकृतिक संसाधनों के पूर्ण उपयोग का लाभ भी मिलता हैं। इसलिए विदेशी निवेश को उदार बना दिया गया है और सरकार ने नकारात्मक सूची को छोड़कर अन्य सभी मामलों में स्वत : प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दे दी है। स्वत : विदेशी निवेश को सीधा सा अर्थ यह है कि विदेशी

निवेशकों को निवेश करने के लिए 30 दिनों के भीतर साथ ही कोई शेयर जारी करने के भी 30 दिनों के भीतर भारतीय रिजर्व बैंक को इस बारे में सूचित करना जरूरी है।

उद्योगों में स्थानीयता को लगातार बढ़ाने का चरणबद्ध उत्पादन कार्यक्रम समाप्त कर कर दिया गया है। सरकार ने वर्तमान औद्योगिक स्थानीकरण की नीति में भी परिवर्तन की घोषणा की है। केवल पर्यावरण संबंधी कारणों में बड़े शहरों में उद्योग की स्थापना को हतोत्साहित किया जाता है। नई औद्योगिक नीति के अनुसार निम्नलिखित मामलों में औद्योगिक लाइसेंस की आवश्यकता होती है – (1) जब परियोजना के अंतर्गत ऐसी वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जो अनिवार्य लाइसेंस वाले उद्योग की सूची में शामिल हैं, (2) बडे नगरों वाला प्रतिबंध जो दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में उद्योगों की स्थापना करने पर लाग. होता है, और (3) जब लघु उद्योग क्षेत्रों के लिए आरक्षित वस्तु का उत्पादन किसी अन्य क्षेत्र की इकाई द्वारा किया जाता हो। अन्य परियोजना के लिए एक निर्धारित प्रपत्र में एक ज्ञापन देना पर्याप्त होगा।

12.3.2 पंचवर्षीय योजनाकाल में औद्योगिक विकास (industrial development in five year plans)

इन नीतियों राव प्रयत्नों के फलस्वरूप देश के औद्योगिक संरचना का विस्तार हुआ तथा उसमें विविधता आई। स्थापित उद्योगों में नये कारखाने लगाये गये तथा अनेकों नवीन उढ़योग प्रारंभ किये गये। इस प्रकार औद्योगिक संस्थानों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। जैसे कि सन् 1951 में लोहा–इस्पात के केवल दो बड़े कारखाने थे, अब ऐसे आठ बड़े कारखाने हैं। इनसे उत्पादित इस्पात के कारण कई इंजीनियरिंग उद्योगों की वस्तुओं में आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकी है। नये स्थापित उद्योगों में कृषि के उपयोग आने वाले, ट्रेक्टर, इलेक्ट्रानिक और उर्वरक उद्योगों का अस्तित्व सन् 1951 के पूर्व नहीं था, परंतु इसके बाद इन उद्योगों ने इतनी प्रगति की कि उनका आयात न्यूनतम हो गया। औषधि बनाने वाले कारखाने काम कर रहे हैं। मशीन बनाने वाले उद्योगों ने भी सराहनीय प्रगति की है। भारतीय इंजीनियरिंग उद्योग देश की शक्ति उत्पन्न करने वाले उपस्कर (उपकरण), रेलवे उपकरण, सड़क परिवहन के उपकरण एवं संचार के उपकरणों की माँग को पूरा करने सकते हैं। देश में शक्कर और सीमेंट उद्योगों में लगने वाली मशीनों, पावर बायलर, भारतीय वस्तुओं को चलाने वाली मशीनों तथा अनेकों उपभोक्ता की वस्तुओं बनाने वाले उद्योगों में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली गई है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनावधियों में औद्योगिक प्रगति निम्नानुसार है (तालिका 12.1) ।

तालिका 12.1 : भारत में औघोगिक उत्पादन की प्रगति

उद्योग	1950–51	1960–61	1970–71	1980–81	1990–91	2000–01	2007–08
I. धातुकर्मीय उद्योग							
कच्चा लोहा (लाख टन)	17	43	70	96	112	31.1	421
अपरिष्कृत इस्पात (लाख टन)	15	35	61	103	NA	306	538.6
परिष्कृत इस्पात (लाख टन)	10	24	46	68	135	321	561
इस्पात पिंड (हजार टन)	-	35	62	71	262	252.4	567
अर्द्ध परिष्कृत इस्पात (लाख टन)	12	10	9	20	43	33	28
एलुमीनीयम	4	19	169	199	451	680	755.7

II. इंजीनियरिंग उद्योग							
मशीनी औजार (करोड़ रुपए)	0.3	8	43	169	773	1226	2637
वस्त्र उद्योग की मशीनें (करोड़ रुपए)	NA	NA	NA	NA	NA	12930	2910
अम मोटर गाड़ियाँ व्यापारिक (हजार)	8.6	28.2	41.2	71.7	145.5	152	545.1
मोटर एवं सवारी गाड़ियाँ, (हजार)	7.9	26.6	46.7	49.4	220.8	632.2	1767.9
विद्युत चालित पंप (हजार)	35	105	259	431	691	481	789.8
मोटर साइकिल एवं स्कूटर (हजार)	–	0.9	97	447.2	1842.8	37561	8009.3
डीजल इंजन (स्थिर) (हजार)	5.5	43.2	65	173.9	158.4	306	517.2
कृषीय ट्रेक्टर (संख्या हजार में)	NA	NA	NA	71	142.2	284.4	304.4
III. बिजली इंजीनियरिंग उद्योग							
बिजली के ट्रांसफारमर्स(लाख के बी. ए.)	2	14	81	125	368	707	732
बिजली के मोटर (लाख हार्स पावर)	2	14	81	125	368	707	732
बिजली के पंखे (लाख)	1	7	27	41	59	56	13.5
कम्प्यूटर सिस्टम (करोड़ रुपए)	NA	NA	NA	NA	NA	791.1	4201.1
IV. रसायन तथा सम्बद्ध उद्योग							
नत्रजन उर्वरक (हजार टन नत्रजन)	9	99	830	2164	6993	11025	10902
फास्फेटी उर्वरक (हजार टन P_2O_3)	9	54	229	842	2052	3745	3836
सोडा ऐश (हजार टन)	46	147	449	563	1385	1631	1981
कास्टिक सोडा (हजार टन)	12	99	371	578	992	1642	2058
कागज एवं गत्ता (हजार टन)	116	349	755	1149	2088	3090	4260
सीमेंट (लाख टन)	27	80	143	186	488	995	1626
पेट्रोलियम शोधन उत्पाद (लाख टन)	1	57	171	241	480	962	1441
V. वस्त्र उद्योग							
सूती धागा करोड कि.ग्रा.	53.3	78.8	92.9	106.7	151	226.7	294.8
सूती वस्त्र (करोड़ वर्ग मीटर)	421.5	673.8	760.2	836.8	1543.1	1971.8	2719.6
मिश्रित वस्त्र (करोड़ वर्ग मी.)	NA	NA	17	127	237–1	635–1	6888.8
कृत्रिम धागा के वस्त्र(करोड़ वर्ग भी.)	30	55	95.1	135	512.6	1416.4	2194.1
VI. खाद्य उद्योग							
शक्कर (लाख टन)	11.3	30.3	37.–4	51.5	120.5	NA	NA
वनस्पति (हजार टन)	155	355	558	735	850	NA	NA
VII.विद्युत							
उत्पादित (अरब कि.वा. ह.)	5.1	16.9	55.8	110.8	264.3	499.4	704.4

स्रोत : भारत सरकार – आर्थिक सर्वेक्षण, 2008 - 09

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56) : इस योजना में प्रधानता तो कृषि के विकास को दी गई, तथापि औद्योगिक विकास पर भी काफी ध्यान दिया गया। नये उद्योगों की स्थापना पर जोर सामान्य ही था, पर स्थापित उद्योगों की क्षमता के अधिकतम उपयोग को लक्ष्य बनाया गया। फलत : सूती वस्त्र उद्योग, शक्कर, वनस्पति तेल, सीमेंट, कागज, सोडा ऐश, कास्टिक सोडा, रेयान, विद्युत ट्रांसफार्मर, साइकिल, सिलाई मशीन तथा पेट्रोलियम शोधन के उत्पादन का लक्ष्य लगभग पूरा कर लिया गया। परंतु लोहा–इस्पात, ऐलुमीनियम, मशीनी औजार, उर्वरक, डीजल इंजन, पंप, मोटरकार, रेडियो, बैटरी, बिजली के मीटर, बल्व, जूट उद्योग, पेंट तथा वार्निष; सुपरफास्फेट आदि उद्योग का उत्पादन लक्ष्य से बहुत कम रहा। इस योजना काल में कई नये उद्योग पहली बार देश में स्थापित किये गये, जिनमें अखबारी कागज, कैल्शियम कार्बाइड,

पेनिसिलीन, डी. डी टी, स्वचालित करघा, इस्पाती तार के रस्से, लूट के धागे बनाने का फ्रेम बनाने वाले उद्योग उल्लेखनीय हैं। इस अवधि में स्थापित संस्थानों में चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स (1950), सिन्द्री फर्टिलाइजर फैक्टरी (1951), हिदुस्तान शिप यार्ड (1952), हिंदुस्तान केवित्स (1954), हिंदुस्तान मशीन टूल्स (1954), "हिंदुस्तान इन्सेक्सिाइदस (पेन्सिलिन प्लांट 1955), इण्टेग्रल कोच फैक्टरी (1955), यूपी. सीमेंट फैक्टरी (1954), नेपा मिल्स (1955) उल्लेखनीय हैं। इस योजना काल में कई निगमों की स्थापना की गई। इनमें राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (1954) तथा औद्योगिक साख तथा निवेश निगम (1955) मुख्य हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–69) : द्वितीय पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में भारत की पहली औद्योगिक नीति में संशोधन हुआ। इस योजना के निम्न मुख्य उद्देश्य रखे गये –

(अ) लोहा एवं इस्पात, भारी इंजीनियरिंग, मशीन निर्माण इत्यादि उद्योगों का उत्पादन बढ़ाना।

(ब) जूट एवं सूती कपड़ा, शक्कर इत्यादि उद्योग, जिनकी नींव स्वतन्त्रता के पूर्व पड़ी, वे राष्ट्रीय महत्व के उद्योग घोषित किये गये तथा इन उद्योगों में लगे यंत्रों का आधुनिकीकरण करने पर जोर।

(स) उद्योगों के स्थापित क्षमता एवं उत्पादन के बीच का अन्तर कम करना।

इस योजना में पूर्ण निवेश 1810 करोड़ रुपये रहा। इस योजना के दौरान सबसे अधिक विकास लोहा एवं इस्पात उद्योग का हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र में राऊरकेला. भिलाई रच दुर्गापुर में विदेशी सहायता से तीन नये कारखाने स्थापित किए गए। हिन्दुस्तान मशीन उपकरण, सिन्दरी का उर्वरक कारखाना, हिन्दुस्तान पोत कारखाना (Ship Yard) एवं चितरंजन रेल इंजिन कारखानों की उत्पादन क्षमता बढ़ाई गई। नंगल में एक नया उर्वरक कारखाना स्थापित हुआ। इसी योजना के दौरान तेल और कोयला उत्खनन एवं परमाणु ऊर्जा (Atomic Energy) विकसित हुये। 60 औद्योगिक इस्टेट स्थापित की गई जिनके अन्तर्गत 9000 लघु इकाइयाँ लगाई गई। इन क्षेत्रों में प्रमुखतः सिलाई मशीन, साइकिल, पंखे, मशीन उपकरण इत्यादि के कारखाने लगाये गये।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–66) : तीसरी पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य द्वितीय योजना के उद्देश्यों को मजबूत करना रहा। इस योजना में प्रमुखतः दो उद्देश्यों पर जोर था :

(अ) उद्योग, परिवहन एवं ऊर्जा के क्षेत्रों को मजबूत करना।

(ब) औद्योगिक (पं तकनीकी प्रक्रिया को तेज करना।

इस योजना औद्योगिक विकास हेतु 300 करोड़ रुपये का प्रावधान था। इस योजना काल में निर्धारित लक्ष्य नहीं पूरा किया जा सका। कपड़ा उद्योग (20 प्रतिशत) एवं शक्कर उद्योग ने 13 प्रतिशत विकास दर अर्जित किया। स्वचालित वाहन, सूती कपड़ा, मशीनरी, डीजल इंजन, विद्युत ट्रांसफारर्मर, पेट्रोलियम उत्पाद भारी रसायन, सीमेन्ट आदि उद्योगों में इस योजना के दौरान विकास संतोषजनक रहा। सन् 1966 एवं 1969 के बीच भारत–पाकिस्तान युद्ध के कारण भारतीय पंचवर्षीय योजनाएँ कार्यवाहित नहीं हो पाई। अतः 1969 में चौथी योजना फिर से चालू की गई।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–74) : भारत–पाक युद्ध के पूर्व में शुरु की गई कई परियोजनायें पूर्ण नही हो सकी। अत : चोथी पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य उन परियोजनाओं में निवेश करके उनको पूर्ण करना रहा। इस योजना का सम्पूर्ण निवेश 5300 करोड़ रुपये का था। इस निवेश के अलावा 746 करोड़ रुपया लघु एवं कुटीर उद्योग को मिले। इसमें से 75 प्रतिशत 'मूलखण्ड' उद्योगों जैसे कि लौह एवं इस्पात, उर्वरक, भूतेल, भूरसायन लौह एवं कोयला एवं

अलौहिक धातु के विकास में उपयोग हुआ। इस योजना के दौरान 5 प्रतिशत की औद्योगिक विकास दर दर्ज करी गयी।

पाँचवी पंच वर्षीय योजना (1974–78) : इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :–

(अ) मूल उद्योगों का तीव्र विकास।

(ब) औद्योगिक विकास के क्षेत्रीय विषमताओं को सीमित करना। इसके अन्तर्गत पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग लगाने पर विशेष सुविधाएँ एवं योजनाएँ उपलब्ध कराई गयी।

(स) निर्यात की वस्तुओं वाले उद्योगों को बढ़ावा देना।

(द) औद्योगिक उत्पादन क्षमता को बढ़ाना एवं इक्कीस नये उद्योगों को सक्रिय करना जिससे कि निजी उद्योगों को इन क्षेत्रों मैं उद्योग स्थापित करना आसान रहे।

(इ) लघु उद्योग के विकास के लिये 124 वस्तुओं को दर्ज किया जो कि केवल लघु उद्योग के रूप में विकसित हो सके। पाँचवीं योजना में 10,135 करोड़ रुपये उद्योग रख खनिज खनन के लिये नियत किये गये। इस योजना के दौरान 5.3 प्रतिशत औद्योगिक विकास दर दर्ज की गई।

छठवीं पंचवर्षीय योजना (1980–1985): संरचनात्मक विविधता, आधुनिकीकरण एवं आत्मनिर्भरता छठवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य थे। इस पर आधारित औद्योगिक क्षेत्र के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :–

(अ) सार्वजनिक एवं निजी दोनों प्रकार के उद्योगों का विकास।

(ब) पूँजीगत रख इलोक्ट्रानिकी माल के उद्योगों का उत्पादन बढ़ाना।

(स) विदेशी पूँजी को आकर्षित करने वाले उद्योगों का विकास करना जिससे उनका निर्यात बढ़े

(द) पिछड़े क्षेत्रों का विकास एवं बड़े शहरों में उद्योगों का विकेन्द्रीकरण।

छठवीं योजना में कुल 35,589 करोड़ रुपये का निवेश किया गया। इस योजना काल में औद्योगिक 7 प्रतिशत रहा। उत्पादन में विशेष प्रगति विद्युत उपकरण, रबर तथा प्लास्टिक उद्योग, रसायन उद्योग, अधात्विक खनिजों आधारित उद्योग, परिवहन उपकरण तथा अन्य मशीनी उद्योगों में हुई। पूंजीगत उद्योग उतनी नहीं बढ़ पाये।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90) : सातवीं पंचवर्षीय योजना के निम्नलिखित मुख्य हैं :

(अ) स्थापित सुविधाओं का पूर्ण उपयोग एवं उनकी तकनीकी को उन्नत बनाना।

(ब) घरेलू बाजार एवं निर्यात की क्षमता का पूर्णत: शोषण करते हुये औद्योगिक विकास को मजबूत करना।

(स) सनराइज उद्योगों को बढ़ावा देना, क्योंकि उनमें विकास की क्षमता ज्यादा है एवं वे हमारी जरूरतों की आपूर्ति भी करती है ।

(द) सामरिक क्षेत्र में एकीकृत योजना एवं औद्योगिक आत्मनिर्भरता पाना।

सातवीं योजना में 23,460 करोड़ रुपये का निवेश हुआ। सम्पूर्ण पंचवर्षीय योजना का 12.5 प्रतिशत निवेश औद्योगिक क्षेत्र में होना एवं 8.5 की विकास दर दर्ज होना इस योजना की विशेषताएँ रही। औद्योगिक लक्ष्य एवं उपलब्धि में बीच का अन्तर कम हुआ। लाइसेंस देने की नीति को उदार बनाने से काफी प्रगति हुई। इलेक्ट्रानिक्स, इलेक्ट्रिकल मशमईरी उद्योग और रसायन उद्योग में काफी प्रगति हुई।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97) – यह योजना एक नए वातावरण में तैयार की गई थी। इसके पूर्व ही देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए कई कदम उठाए गए थे। सन् 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई जिसमें उदारीकरण पर बहुत जोर दिया गया। उदारीकरण के उपायों में उद्योगों में पूँजी–निवेश की बाधाओं को हटाना, मुक्त व्यापार, विदेशी तकनीकी की छूट और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की छूट मुख्य हैं। औद्योगिक लाइसेन्स देने की प्रक्रिया सरल बनाई गई। सार्वजनिक क्षेत्र के आरक्षित उद्योग निजी क्षेत्र के लिए खोले गए और कुछ सार्वजनिक क्षेत्र के कारखाने भी निजी क्षेत्रों को बेंच दिए गए। इसके बाद निजी क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना में तीव्रता आई। निजी क्षेत्र में औद्योगिक विकास के लिए विदेशी पूंजी निवेशकों को आकर्षित करने के प्रयास किये गए। अप्रवासी भारतीयों को विशेष सुविधाओं की घोषणा की गई। 15 अप्रैल 1994 को "व्यापार एवं कर सामान्य समझौता" (GATT) नीति लागू हो गई, जिससे भारतीय आयात –निर्यात नीति में मूलभूत परिवर्तन हुए। निर्यात संबर्द्धन केन्द्रों को विकसित किया गया ताकि भारतीय उद्योगों का उत्पादन विदेशी बाजार में पहुँच सके। नियंत्रित नीति के स्थान पर उदार औद्योगिक नीति के लागू हो जाने से निजी क्षेत्र में अनेक उद्योगों की स्थापना हुई। परिणामत: औद्योगिक विकास में तीव्रता आई। फिर भी निर्माण उद्योगों में वांछित गति नहीं आ पाई और औद्योगिक उत्पादन में सन् 1992–93 में केवल 2.2070 तथा 1993–94 में 3.6 % वृद्धि हो पाई। सर 1992–94 की अवधि में 17 बड़े औद्योगिक समूहों में से पेय –तंबाकू की वस्तुयें, ऊन के वस्त्र, कागज तथा उससे बनी वस्तुयें, चमड़ा तथा फर की वस्तुओं एवं रसायन एवं रासायनिक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा। इनके विपरीत खाद्य उद्योग, अन्य वस्त्र उद्योग, विद्युत मशीनरी तथा विविध वर्ग के उद्योगों की अवनति हुई है।

नवीं पंचवर्षीय योजना (1997– 2002) : आधारभूत संरचना की गुणवत्ता, प्रत्यक्ष विदेशी, पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग विकास केन्द्र (Growth Centers) स्थापित करना एवं उत्तरपूर्वी प्रान्तों का विकास नवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य रहे। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम (Public Sector Enterprises, PSE) को तीन वर्गों में रखा गया। इससे पहले नम्बर की लाभ देने वाली सार्वजनिक इकाइयों को सबसे अधिक आर्थिक एवं प्रबन्धकीय सहायता दी गई। दूसरे नम्बर की कम लाभ / नुकसान देने वाली इकाईयों को सीमित सहायता दी गई एवं तीसरे नम्बर की ज्यादा नुकसान देने वाली इकाइयों को 'सख्त निर्णयों' के वर्ग में रखा गया तथा उन्हें निजी क्षेत्र में दिया गया।

इस काल में औद्योगिक विकास एवं उत्पादन तो अधिक हुआ, लेकिन मंदी तथा मूल्य गिरने के कारण उद्योगों को विशेष लाभ नहीं हुआ। रेडीमेड वस्त्र, खाद्य पदार्थो का प्रसंस्करण, रसायन, परिवहन, लोह –इस्पात आदि में विशेष प्रगति हुई।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) : दसवीं पंचवर्षीय योजना में 10 प्रतिशत विकास का लक्ष्य रखा गया है तकनीकी का आधुनिकीकरण, उन्नत सम्पादन लागत की दरों को घटाना, अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा में भागीदारी बढ़ाने के लिये निर्यात को बढ़ावा एवं संतुलित क्षेत्रीय विकास इस योजना के मुख्य उद्देश्य थे। पिछड़े प्रान्तों जैसे उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और काश्मीर तथा उत्तरपुरवी राज्यों को उद्योगों के विकास के लिये विशेष सुविधायें दी गयी।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) : इस योजना में औद्योगिक विकास का लक्ष्य 12 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया है।

बोध प्रश्न– 1

1. भारत में आधुनिक किस्म का कारखाना कहाँ और कब स्थापित किया गया?
 ....
 ....
2. सर 1956 की औद्योगिक नीति में उद्योगों को किन दो वर्गों में रखा गया?
 ....
 ....
3. सन् 1991 के बाद उदारीकरण के लिए क्या उपाय किए गए?
 ....
 ....
4. स्वतन्त्रता के बाद किस पंचवर्षीय योजना काल में लोहा–इस्पात के सार्वजनिक क्षेत्र के तीन कारखाने स्थापित किए गए?
 ....
 ....
5. व्यापार एवं कर सामान्य समझौते नीति कब लागू हुई?
 ....
 ....

12.4 सूती वस्त्र उद्योग (Cotton Textile Industry)

भारत का सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन, मूल्य, इकाइयों की संख्या रण क्षमता रच श्रमिकों की से अग्रणी उद्योगों में से एक है। देश के कुल औद्योगिक उत्पादन का 14% वस्त्र उद्योग से प्राप्त होता है। सूत और कपड़े के, दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण है

12.4.1 सूती वस्त्र उद्योग का विकास

भारत में सूती वस्त्र उद्योग का विकास आधुनिक मशीनीकरण उद्योग के विकास के पहले से हुआ है। ढ़ाका की मलमल, कालीकट का सादा सूती कपड़ा बुरहानपुर एवं सूरत में सोने से कढ़ी साड़ी आदि बहुत मशहूर थे। प्रारम्भ में सूती कपड़ा हाथ–करघे के द्वारा बनाया जाता था। आधुनिक मशीनीकरण करीब दो सदी पुराना ही है।

औद्योगिक क्रांति के बाद भारत में भी इस उद्योग के आधुनिक संयंत्र स्थापित करने के प्रयास किए गए। भारत में इस प्रकार का प्रथम प्रयास सर 1815 में कोलकता में तथा सर 1851 में दूसरा प्रयास मुम्बई में किया गया, परन्तु ये दोनों ही प्रयास विफल रहे। सूती वस्त्र उद्योग का प्रथम सफल आधुनिक संयंत्र सन् 1854 में मुम्बई में स्थापित किया गया। इसकी स्थापना कावसजी डाबर द्वारा की गई थी। अमेरिकी गृह युद्ध (सन् 1861–65) के कारण इंग्लैंड को

अमेरिकी कपास मिलना बन्द हो गई। तभी इंग्लैंड द्वारा भारतीय कपास का आयात किया जाने लगा। इस आयात का उपयोग सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना में किया गया। सन 1861 में शाहपुर मिल तथा सन 1863 में केलिको मिल की स्थापना की गई। सन 1869 में स्वेज मार्ग के खुल जाने के कारण मशीनों के आयात की सुविधा हो गई जिससे सूती वस्त्र उद्योग के विकास में मदद मिली। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम कण में चीन से सूत का व्यापार होने लगा। प्रथम विश्वयुद्ध के काल में जब युद्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति के कारण समुचित मात्रा मैं भारत के बाजार में कपड़ा नहीं आ रहा था, साथ ही भारत में स्वतंत्रता संग्राम में विदेशी कपड़े के बहिष्कार का आंदोलन चलाया गया था इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला। तथापि लकाशायर के कपड़े से प्रतियोगिता थी। फिर भी भारत का उद्योग धीरे – धीरे विकसित होता गया तथा मुम्बई के अतिरिक्त अहमदाबम, नागपुर, शौलापुर, कानपुर, दिल्ली आदि में भी सूती कपड़ा बनाने के कारखाने स्थापित हुए सर 1926 में देश में 334 मिलें हो गईं जो सन् 1945 में बढ़कर 417 हो गई। सन् 1947 में देश में 423 मिलें काम कर रहीं थी तथा विभाजन के बाद 409 मिलें भारत में रह गई थी।

भारत में सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना एवं तीव्र विकास के तीन प्रमुख कारण रहे हैं –(I) भारत में। परम्परागत रूप से यह उद्योग लघु एवं कुटीर उद्योगों के रूप में प्रचलित था, फलत : इसकी जड़े यहाँ हैं। (II) देश में कपास का उत्पादन होता है, अत : कच्चेमाल की प्राप्ति हो जाती है, और (III) भारतीय गर्म वातावरण में सूती कपड़ा पहिनने का प्रचलन परम्परा के रूप में है, अत : विस्तृत बाजार प्राप्त है। बाजार की विशालता का अनुमान डसी से लगाया जा सकता है कि इसके पूर्व यह तथा जापान से कपड़ा आयात करता था तथा उन देशों का सबसे बड़ा आयातक था; यद्यपि यह आयात देश की कुल जरूरत केवल 15 प्रतिशत ही होता था।

आरम्भ में मुम्बई में –इस उद्योग के एकत्रित होने के कई कारण थे। एक तो उस समय मुम्बई बंदरगाह से अधिकांश कपास का निर्यात ब्रिटेन को होता था। अस्त यहाँ कपास की स्वाभाविक उपलब्धि थी। दूसरे, पारसी तथा भाटिया पूंजीपतियों ने कपास तथा धागे के व्यापार से अर्जित भारी पूंजी इस उद्योग के लिए उपलब्ध कराई। प्रारंभिक काल में भारत का उद्योग आधारभूत आवश्यकताओं जैसे, मशीनों, कॉस्टिक सोडा, विरंजन पाउडर (Bleaching Powder), छापने और रंगने के रासायनिक रंगों के लिए आयात पर निर्भर था। मुम्बई बन्दरगाह के कारण विदेशों से इनके आयात की सुविधा थी। अब तो आवश्यक सामग्री का उत्पादन भी देश में होने लगा। रेल मार्गों के द्वारा मुम्बई देश के आन्तरिक बाजार से भी जुड़ा हुआ था।

शुरू में कोयला दामोदर घाटी से मँगाया जाता था जो मँहगा पड़ता था। अत : दक्षिण भारत में दक्षिणी अफ्रीका से कोयले का आयात होता था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में मुम्बई के निकट पश्चिमी घाट क्षेत्र में जल विद्युत केन्द्र स्थापित हुए जिनसे इन कारखानों को बिजली मिलती थी। साथ ही सन 1927 में ब्रिटेन तथा जापान से जो संधियाँ हुईं उनसे आयात पर रोक लगी और भारतीय उद्योग को सुरक्षा मिली। ऊर्जा के अतिरिक्त अन्य अनुकूल कारक सस्ते मजदूर थे। उनीसवीं सदी के अन्त तक मुम्बई में 82 सूती मिल स्थापित हो चुकी थी। किन्तु सन 1921 के बाद भारत में भी सूती वस्त्र उद्योग का विकेन्द्रीकरण आरंभ हुआ। मुम्बई के वस्त्र उद्योग की मंदी (सन् 1923) के बाद यह बिखराव और तेज हो गया। इसके कई कारण थे जिनमें भूमि की कीमत तथा किराए में वृद्धि, जीवनयापन का व्यय बढ़ना, आन्तरिक परिवहन का व्यय बढ़ना,

कर, चुंगी, पानी आदि की दरों में वृद्धि होना प्रमुख थे। फलत : आन्तीरक भागों की ओर यह उद्योग स्थानान्तरित हुआ। उद्योग के इस विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में नागपुर, इन्दौर, बंगलौर, मदुरई, कोयंबटूर, शोलापुर तक उद्योग की स्थापना होती गई तथा ये केन्द्र सूती वस्त्र उद्योग के प्रमुख केन्द्र बन गए। ये केन्द्र कपास उत्पादक तथा बाजार क्षेत्र के मध्य स्थित थे। इन सुधिाओं के साथ ही मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्र में कोयला भी उपलब्ध था जिससे भी यह उद्योग आकर्षित हुआ। दक्षिण भारत में जल विद्युत के विकास से उस क्षेत्र में इस उद्योग की तीव्र वृद्धि हुई।

द्वितीय विश्व युद्ध काल में उद्योग का तेजी से विकास हुआ, क्योंकि स्थानीय बाजार भी सुलभ था और युद्ध की आवश्यकता की पूर्ति भी भारतीय उद्योग ने की। यहाँ तक कि कारखानों में दो पारियों के स्थान पर तीन पारियों में काम होता था। तथापि सन् 1940 के बाद से भारतीय बाजार में कपडे की कमी गंभीर रूप से बढ़ गई जो सन् 1947 में स्वतंत्रता के बाद तक चलती रही। देश के विभाजन का भारतीय उद्योग पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव हुआ। अधिकतर सूती कपडे के कारखाने भारत को मिले जबकि कपास की खेती का एक बड़ा क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया। किन्तु दक्षिण भारत एवं पंजाब में कपास की खेती के विस्तार एवं आयात से उद्योग फिर से संभल गया।

सन 1951 के बाद नियोजित औद्योगिक विकास के कारण इस उद्योग का तीव्र विकास हुआ। सर 1999–2000 तक कुल 1837 मिलो की स्थापना हो चुकी थी। देश में सन् जनवरी 2007 में सूती / कृत्रिम वस्त्र की कुल 1818 मिलें थी, जिनमें 35 करोड तकुए, 448 हजार रोटर तथा 69 हजार करघे कार्यरत थे। इन सभी मिलो में 26. 48 लाख टन सूती धागा, तथा 2690 करोड़ वर्ग मीटर कपडे का उत्पादन हुआ। निम्नलिखित आँकडे (तालिका 12.2) विकास की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हैं।

तालिका –12.2: भारत में सूती धागा एवं सूती वस्त्र उत्पादन की प्रवृत्ति

वर्ष	सूती धागा (लाख टन)	सूती वस्त्र उत्पादन (करोड़ वर्ग मीटर)		
		मिल क्षेत्र	हैड़लूम / पावरलूस	कुल वस्त्र उत्पादन
1950–51	5.33	340.1	81.4	421.5
1960–61	7.88	464.9	208.9	673.8
1970–71	9.29	405.4	354.7	760.2
1980–81	10.67	343.4	493.4	836.8
1990–91	15.10	185.9	1357.2	1543.1
2000–01	22.67	110.6	1861.2	1971.8
2003–04	21.21	96.6	1707.1	1804.2
2007–08	26.48	124.9	2594.7	5689.8

स्रोत : भारत सरकार आर्थिक सर्वेक्षण, 2009.

12.4.2 उद्योग का स्थानीकरण

सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना अश्क कारकों द्वारा प्रभावित होती है, जैसे कच्चेमाल (कपास) की प्राप्ति, शक्ति के साधन, बाजार की सुविधा, आधुनिक मशीनों की प्राप्ति, परिवहन की व्यवस्था, सस्ते रण कुशल श्रमिकों की उपलब्धता, विभिन्न प्रकार के रग एवं रसायनों की प्राप्ति आदि। इस

उद्योग की स्थापना में प्रयुक्त कच्चा माल (कपास) भारक्षयमूलक नहीं है, अर्थात् कपास से धागा और कपड़ा बनने पर उसके भार में अधिक कमी नही आती। अत: इसे कपास –उत्पादन क्षेत्र में ही लगाना आवश्यक नहीं है, जैसा कि शक्कर उद्योग में है। कपास का उत्पादन दकन पठार में अधिक होता है, जबकि आरंभ में यह उद्योग पश्चिमी तटीय भाग में स्थापित किया गया था। सबसे पहले मुम्बई में ही इस उद्योग की स्थापना की गई। इसका कारण यह था कि निर्यात हेतु कपास दकन पठार से मुम्बई लायी जाती थी, अत: इन कारखानों के लिए कपास अपने आप आ जाती थी, उसके लिए प्रयास नही करना पड़ता था। इसी प्रकार की सुविधा अहमदाबाद को प्राप्त थी। लेकिन बाद में अन्य सुविधाएं होने पर यह उद्योग कच्चे माल से आकर्षित होकर पश्चिमी तट से देश के आन्तरिक भागों की ओर बढ़ता गया। उद्योग के इस विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में नागपुर, इन्दौर बंगलौर, मदुराई, कोयंबटूर, शोलापुर तक उद्योग की स्थापना होती गई तथा ये केन्द्र सूती वस्त्र उद्योग के प्रमुख केन्द्र बन गए। आज 90 प्रतिशत उद्योग कपास के क्षेत्र में स्थापित है।

सूती वस्त्र उद्योग में मशीनों का संचालन कोयला से होता था। आरंभ में कोयला विदेशों से आता था, इस कारण तटीय भागों में इस उद्योग की स्थापना की गई। इन कारखानों की शक्ति की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पश्चिमी घाट क्षेत्र में जल विद्युत केन्द्र स्थापित किए गए। सतपुड़ा स्थित कोयला क्षेत्रों की ओर भी यह उद्योग आकर्षित हुआ और इसका विकेन्द्रीकरण पश्चिमी तट से पूर्वी भागों की ओर होता गया। जल विद्युत शक्ति के विकास के बाद कोयला का महत्व घटने लगा तथा उध्योग कच्चे माल के क्षेत्रों की ओर स्थापित होने लगा। दक्षिण भारत में पाइकारा योजना (तमिलनाडु) के कारण अनेक सूती वस्त्र केन्द्र स्थापित हुए जैसे कौयम्बटूर, मदुराई, त्रिरूनेलवेली, आदि।

सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना में बाजार का सर्वाधिक महत्व है। पश्चिमी भाग में इस उद्योग की स्थापना कच्चेमाल की उपलब्धता के साथ बाजार से भी प्रभावित थी। मुम्बई एवं अहमदाबाद को आंतरिक बाजार के साथ–साथ विदेशी बाजार की सुविधा भी प्राप्त थी। इस उद्योग का विकेन्द्रीकरण भी आंतरिक बाजार क्षेत्रों की ओर होता गया। कोलकाता कानपुर में इस उद्योग की स्थापना में बाजार का ही महत्व रहा है।

समुद्री परिवहन ने इस उद्योग की स्थापना को सर्वाधिक प्रभावित किया है। कपास रख कोयले के परिवहन हेतु रेलमार्ग एवं सड्कों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कपास को उत्पादन क्षेत्रों से संयंत्र तक ले जाने तथा कपड़े को बाजार तक पहुँचाने में परिवहन का ये।गदान उल्लेखनीय है। सूती वस्त्र उद्योग का विकेन्द्रीकरण प्रायद्वीपीय भारत में रेलमार्गो के किनारे होता गया है।

सूती वस्त्र उद्योग में सस्ते एवं कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। श्रमिकों का आरंभ में उद्योग के स्थाएनीयकरण में अपेक्षाकृत कम महत्व रहा है, क्योंकि श्रमिकों का प्रवास उद्योग केन्द्रों की ओर हो गया था। बाद में उद्योग का स्थानीयकरण श्रमिक एवं बाजार क्षेत्रों की ओर भी हुआ है। तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल में इस उद्योग की स्थापना का यह भी एक कारण रहा है।

12.4.3 सूती कपड़ा उद्योग का वितरण

यह महत्वपूर्ण है कि आज मिलें सूती कपड़े की पर्याय नही रह गई हैं। देश का वस्त्र उद्योग दो हिस्सों में बंटा है: एक, संगठित क्षेत्र जिसमें कपड़े की मिलें आती हैं। वर्तमान में सभी प्रकार के कपड़े के उत्पादन में इनका केवल 3 प्रतिशत ही हिस्सा है। दूसरा असंगठित क्षेत्र है जो वर्तमान में देश का 96.5 प्रतिशत सभी प्रकार का कपड़ा निर्मित करता है। असंगठित क्षेत्र में तीन हिस्सेदार हैं : हाथ करघा, शक्तिचालित करघा तथा होजरी। सन् 1950–51 में कुल सूती कपड़ा उत्पादन में मिल क्षेत्र का हिस्सा 81% था जो घट कर सन् 1995–96 में केवल 6% तथा 2005– 06 में 4.6% रह गया है। दूसरी ओर असंगठित क्षेत्र में करघे का सूती कपड़ा निर्माण में इसी अवधि में हिस्सा क्रमश: 19%, 70% तथा 76% हो गया है। करघा क्षेत्र में भी शक्तिचालित करघा (पावरलूम) का कुल सूती कपड़ा उत्पादन में एक –तिहाई से अधिक हिस्सा हो गया है। हाथ करघे कुल सूती कपड़े का 22 प्रतिशत बनाते है। इनके साथ ही होजरी क्षेत्र में 36 प्रतिशत सूती कपड़ा बनने लगा है जिसमें टी–शर्ट के समान बुना कपड़ा होता है। इस प्रकार सूती वस्त्र उद्योग मूलत: करघा क्षेत्र में है।

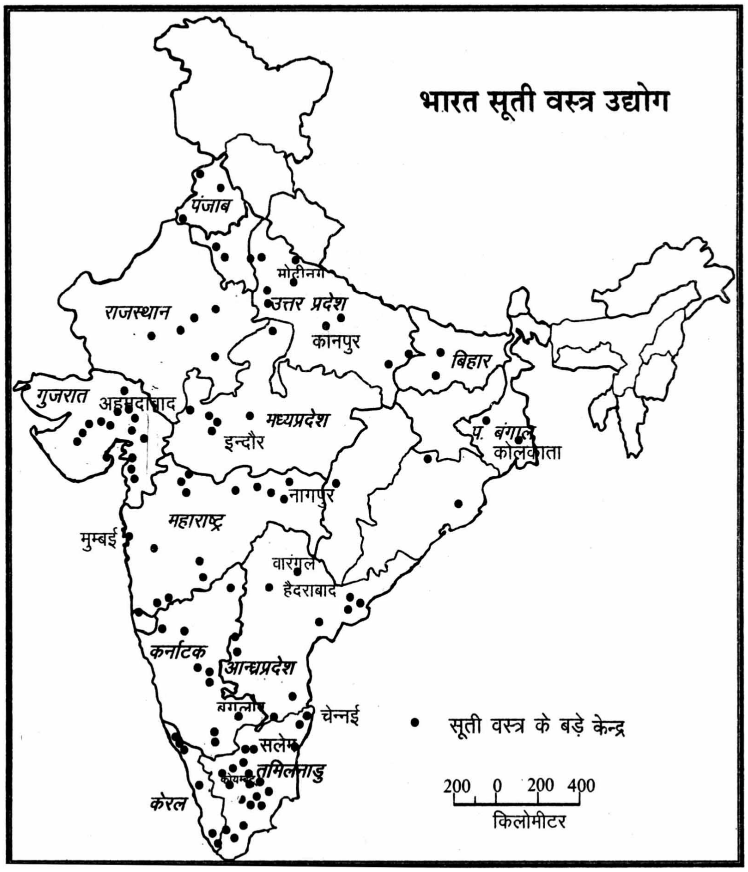

चित्र– 12.1: भारत सूती वस्त्र उद्योग

सूती वस्त्र उद्योग देश का सबसे विस्तृत उद्योग है। इस उद्योग की मिल देश के करीब–करीब हर प्रान्त में पाई जाती है। परन्तु इनका अधिक विकास कपास पैदा करने वाले प्रान्तों में हुआ। प्रायद्वीपीय भारत की काली कपास की मिट्टी विशेषत: कपास के उत्पादन लिये अनुकूल मानी

जाती है। यह क्षेत्र मुख्यत : गुजरात एवं महाराष्ट्र में केन्द्रित हैं। अत: देश की करीब 60 प्रतिशत मिल भी इन्हीं दो प्रान्तों में केन्द्रित है। तमिलनाडू आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, मध्यप्रदेश में भी सूती वस्त्र मिलें स्थित हैं ।

महाराष्ट्र : भारत में महाराष्ट्र प्रान्त सूती वस्त्र उद्योग में सबसे अग्रणी है। इस प्रान्त में सबसे ज्यादा मिल हैं एवं उनमें सर्वाधिक श्रमिक कार्यरत हैं। मुम्बई में देश की पहली मिल लगी एवं कई वर्षो तक यह शहर इस उद्योग का बिन्दु रहा। तकनीकी दृष्टिकोण से मुम्बई की कपड़ा मिलों में कई परिवर्तन आये। अब यहाँ उच्चकोटि के कपड़े अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के डेनिम एवं अधिक मात्रा में निर्यात प्रमुख विशेषतायें मानी जाती है। यह शहर इस उद्योग की राजधानी मानी जा सकती हैं। और इसे 'भारत का कॉटनोपोलिस' (Cottonopolis Of India) या 'भारत का मैनचेस्टर' (Manchester Of India) जैसी विशेषण भी प्राप्त हैं। शोलापुर, नागपुर, पूना एवं जलगाँव में भी सूती वस्त्र की मिल पाई जाती है।

गुजरात: मुम्बई से नजदीकता एवं कपास उत्पादक राज्य होने के कारण गुजरात प्रान्त सूती वस्त्र उद्योगकी दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सन 1930 के दशक से यहाँ इस उद्योग का विकास शुरु हुआ। आज रोजगार एवं उत्पादन की दृष्टि से महाराष्ट्र के बाद इसका दूसरा स्थान है। अहमदाबाद को 'गुजरात का मैनचेस्टर' (Manchester Of Gujarat) माना जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का कपड़ा न बना पाने के कारण यहाँ सर 2000 तक करीब 70 मिल बन्द हो गई। भरूच, बड़ौदा, मोरवी, वीरमगाँव, जामनगर, राजकोट, भावनगर, सूरत रण कैम्बे शहरों में यह उद्योग विकसित हैं। सूरत का 'जरदोसी' काम विश्व विख्यात रहा परन्तु आजकल यहाँ की कई सूती कपड़ा मिल कृत्रिम धागा एवं कपड़ा (Synthetic Yarn And Fabrics) बनाने लगी है।

तमिलनाडू: तमिलनाडू का कोयम्बटूर शहर 'दक्षिण का मैनचेस्टर' (Manchester Of South) माना जाता है। कपास उत्पादन क्षेत्र से निकटता और निपुण श्रमिकों की उपलबता के कारण सूती वस्त्र उद्योग इस शहर में केन्द्रित है। चैन्नई, मदुरई, तिरूनवेली, टयूटिकोर्न, सेलम, विरूद्धनगर, पोलाची इत्यादि शहरों में सूती वस्त्र मिलें पाई जाती हैं।

उत्तर प्रदेश : कानपुर, मोदीनगर, अलीगढ़, आगरा, इटावा, मुरादाबाद, गाजियाबाद, रामपुर, बरेली, मेरठ, बनारस, इत्यादि शहरों में सूती वस्त्र इकाईयाँ कार्यरत हैं।

पश्चिमी बंगाल: पश्चिमी बंगाल में पहली सूती कपड़ा मिल वर्ष 1818 में कोलकाता के निकट स्थापित हुई परन्तु कच्चे माल के अभाव के कारण यहाँ पर यह उद्योग विकसित नहीं हो सका। रानीगंज से कोयला, विशाल बाजार, दामोदर घाटी कारपोरेशन से जल एवं जल–विद्युत, रेल एवं समुद्री यातायात तथा निपुण श्रमिकों की उपलब्धता के कारण, मशीनीकरण के युग में इस उद्योग का विकास कोलकाता, हावड़ा, सेरमपोर, श्यामनगर, चौबीस परगना, हुगली, मुर्शीदाबाद इत्यादि में हुआ।

मध्य प्रदेश : सूती वस्त्र मिलें पश्चिमी मालवा पठार के कपास उत्पादक क्षेत्र में केन्द्रित हैं। इन्दौर, देवास, मन्दसौर, नागदा, जबलपुर रख ग्वालियर शहरों में यह उद्योग स्थित है।

कर्नाटक : कर्नाटक राज्य के मैसूर, बैंगलौर, देवानगोरे, गोकक, बेलारी, गुलबरगा, चित्रदुर्गा शहरों में सूती वस्त्र मिले पाई जाती ई।

आंद्रप्रदेश : आन्ध्र प्रदेश राज्य में हाथकरघा हैदराबाद, वारंगल, गुन्टूर, विशाखपटनम,अडोनि, रामगुन्दम् तिरुपति इत्यादि शहरों में विकसित है। इन सभी शहरों की मिलों की कपास की आपूर्ति तेलनगाना कपास क्षेत्र से होती है।

अन्य राज्य : केरल में कोची, अलवे, अलप्पानगर, एवं अलाप्पुझा। राजस्थान मैं श्रीगंगानगर, भीलवाड़ा, जयपुर, उदयपुर, कोटा, जोधपुर, ब्यावर, पाली, विजयनगर, भवानीमण्डी एवं किशनगढ़। हरियाणा में भिवानी, हिस्सार एवं पानीपत। पंजाब में लुधियाना में भी यह उद्योग स्थापित है। इसके अलावा पाँडिचेरी, दिल्ली, बिहार एवं उड़ीसा राज्यों में भी: सूती वस्त्र मिलें पाई जाती हैं।

12.4.4 उद्योग की समस्यायें (Problems of Textile Industry)

भारत के सबसे बड़े उद्योग को कई कठिनाइयों से सामना करना पड़ रहा है और इसी कारण कुछ मिल 'बीमार इकाई' (Sick Unit) घोषित की गई हैं। इस उद्योग की कुछ प्रमुख समस्यायें निम्नलिखित हैं :–

(अ) उच्च कोटि के कच्छे माल की कमी : भारत में लम्बे रेशे के कपास की कमी है अत: यह पाकिस्तान, कीनिया, यूगांडा, सूडान, मिश्र संयुक्त राज्य अमेरिका, तंजानिया एवं पेरू जैसे देशों से आयात किया जाता है। इसके फलस्वरूप सूती वस्त्र के उत्पादन की कीमत बढ़ जाती है।

(ब) पुरानी मशीनें : भारत में इस उद्योग की स्थापना उन्नीसवीं सदीं के प्रारम्भ में हुई थी। अंत : आज भी वही प्रविधि (Technique) उपयोग में लाई जा रही है जो कि अब लुप्तप्राय (Obselete) हो गई है।

(स) श्रमिकों की निम्न उत्पादन क्षमता (Low Labour Productivity) : भारत में हड़ताल (Strike), तालाबन्दी (Lockout), लोगों को काम से निकालना (Retrenchment) एवं धीरे काम करने की प्रवृत्ति के कारण मिलों की उत्पादन क्षमता कम है। 1970 के दशक में दत्तासांवत की अध्यक्षता में बम्बई की मिलो की लम्बी हड़ताल एवं तालाबन्दी के कारण भी यहाँ की मिलों को भारी नुकसान पहुँचा।

(द) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से प्रतियोगिता : भारतीय सूती वस्त्र उद्योग अपनी उत्पादकता एवं गुणों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का नहीं था अत : इस कारण से कई मिल बन्द हो गई और वह बीमार (Sick) घोषित हो गई।

(इ) सरकारी नीति : स्वतन्त्र भारत में कपड़े की कीमत सरकार द्वारा तय की जाती है। परन्तु उत्पादन की कमी, लम्बे रेशे कपास का आयात, पुरानी मशीनों के प्रयोग के कारण उत्पादन की कीमत अधिक हो जाती है! अनेक अवसरों में यह सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य से भी अधिक होती है अत : इससे कई उद्योगों को लागत मूल्य भी वसूल नहीं हो पाता और वह नुकसान में चलती 'है।

(स) बीमार मिल (Sick Unit) : सन् 1956 की औद्योगिक– नीति के अन्तर्गत नैशनल कपड़ा निगम (National Textile Corporation) की स्थापना हुई। यह निगम नुकसान में

चलने वाली इकाइयों का उत्थान करके फिर से लाभ देने वाली इकाईयाँ होने के उद्देश्य से बनाया गया परन्तु अधिक श्रमिकों का मिलों में कार्यरत होना और लुप्तप्राय मशीनों के प्रयोग के कारण यह संघ कुछ खास न कर सका।

12.5 लोहा एवं इस्पात उद्योग (Iron and Steel Industry)

भारत में लोहा एवं इस्पात उद्योग चुनिन्दा उद्योगों में से एक है जिसको कि स्वतन्त्रोत्तर काल में विकास की प्राथमिकता दी गई। स्वतन्त्रता के पूर्व में देश में केवल दो निजी उद्योग कुल्टी एवं जमशेदपुर में स्थापित थे। 1956 की उद्योग नीति में इस उद्योग का महत्व आलंकित किया गया एवं इस उद्योग को 'महत्वपूर्ण उद्योग ' (Key Industries) का दर्जा देकर इसके विकास को प्राथमिकता दी गई।

12.5.1 लोहा–इस्पात उद्योग का विकास

देश में इस्पात बनाने का इतिहास बहुत पुराना है। 1500 वर्ष पूर्व दिल्ली का पिटवाँ स्तम्भ (Wrought Iron Pillar) इसका उदाहरण है। आधुनिक फैक्टरी लोहा एवं इस्पात उद्योग सर 1830 में पोटो नोवो (Porto Novo) तमिलनाडू मे स्थापित हुआ। परन्तु वर्ष 1866 में यह कारखाना कच्चे माल की आपूर्ति न होने के कारण बन्द हो गया। इसी तरह के नि:स्फल प्रथम वर्ष 1830–60 के बीच बेपोर (केरल), कोयम्बटूर (तमिलनाडू), बीरभूमि (पश्चिम बंगाल) एवं कालाधूनी (उत्तरप्रदेश) में हुये। पहला सफल कारखाना कुल्टी में सन् 1874 में स्थापित हुआ जो 'बंगाल लौह कम्पनी' के नाम से स्थापित हुआ और बाद में उसका नाम हिन्दुस्तान लोहा एवं इस्पात उद्योग' हो गया। भारतीय लोहा एवं इस्पात उद्योग की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि वर्ष 1907 में टाटा के द्वारा जमशेदपुर में लगाया गया कारखाना रहा। इस कारखाने में पहला कच्चे लोहे का उत्पापदन वर्ष 1908 में सम्पन्न हुआ और सन् 1911 में पहली बार इस्पात का उत्पादन हुआ। प्रथम विश्व युद्ध (1914 –1919) के दौरान इस उद्योग को बहुत लाभ हुआ। तत्पश्चात् बर्नपुर में हिन्दुस्तान लोहा एव इस्पात कारखाना (Indian Iron and steel Company) और सन् 1923 में विश्वरैया लोहा एवं इस्पात कारखाने (vishweshwaraiya Iron and steel Company) की स्थापना हुई। वर्ष 1950–59 में देश में 147 लाख टन इस्पात का उत्पादन हुआ।

स्वातन्त्रोत्तर काल में लोहा एव इस्पात के नये कारखाने लगाये गये एवं पहले से स्थापित कारखानों की क्षमता बढ़ाई गयी। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–61) के दौरान तीन नये कारखाने – राउरकेला भिलाई एवं दुर्गापुर में जगाये गये। टिस्को (TISCO) एवं इस्को (IISCO) की उत्पादन क्षमता को बढ़ाकर 20 लाख टन एवं 90 लाख टन कर दी गयी। तीसरी पंचीवर्षीय योजना के दौरान तीनों सार्वजनिक क्षेत्र की इकार्सयों की उत्पादन क्षमता बढ़ाई गई तथा सन् 1964 में बोकारो में नया उद्योग स्थापित किया गया। सन् 1972 में कुल्टी की इस्को इकाई का राष्ट्रीयकरण किया गया एवं यह इकाई हिन्दुस्तान इस्पात लिमिटेड (Hindustan Steel Limited) द्वारा संचालित होने लगी। सन् 1973 में ' भारत का इस्पात प्राधिकार ' (Steel Authority of India) का गठन हुआ जो कि सार्वजनिक एवं निजी लोहा एवं इस्पात उद्योगों को संचालित करने लगी। पाँचवी पंचवर्षीय योजना (1974–78) के दौरान चार नये कारखाने सेलम (तमिलनाडु), विजनगर (कर्नाटक), विशाखापट्टनम (आन्धप्रदेश) एवं पारादवीप (उड़ीसा) में स्थापित किये गये।

स्वतन्त्रता के चार दशक के बाद इस उद्योग का प्रारूप फिर से तब बदला जब वर्ष 1991 की औद्योगिक नीति में इस उद्योग का निजीकरण कर दिया गया। इस बदलाव के तहत देश में कई निजी कारखाने स्थापित किये गये. जैसे कि इस्पात इण्डस्ट्रीज लिमिटेड (Ispat Industries Limited) डोलवी –रत्नागिरी जिला – महाराष्ट्र, जिन्दल –विजयनगर इस्पात लिमिटेड (Kindal Vijayanagar Steel Limited), चोरनागालू –बेलारी जिला – कर्नाटक, निपौन का लोहा संयन्त्र, रत्नागिरी (महाराष्ट्र) में डेनरो इस्पात, गैस पर आधारित इस्सार इस्पात इकाई, हजीरा (गुजरात), ग्रासिम गैस पर आधारित डी. आर. इकाई (रायगढ़ जिला महाराष्ट्र) में स्थापित हु ये। देश में लोहा एवं इस्पात उत्पादन की प्रगति तालिका 12.3 में वर्णित हैं।

तालिका – 123 : भारत में लोहा एवं इस्पात का उत्पादन (लाख टन)

वर्ष	**1950–51**	**190–71**	**1990–91**	**2000–01**	**2006–07**
तप्त धातु	17	70	122		346.7
अपरिष्कृत इस्पात	14.7	61.4	110.6	270.0	508.2
पीरष्कृत इस्पात	10.4	46.4	135.3	297.0	525.3
कच्चा लोहा	16.9	69.9	121.4	33.9	49.9

स्रोत : भारत सरकार, आर्थिक सर्वेक्षण 2004–05 तथा वार्षिक प्रतिवेदन 2007–08, भारत सरकार इस्पात मंत्रालय

12.5.2 लोहा –इस्पात उद्योग का स्थानीकरण

कच्चे खनिज की उपलब्धता लोह एवं इस्पात उद्योग की स्थापना का प्रमुख कारण है। यह आयतन वाला एवं भारी (Heavy) होता है! अत : इसकी स्थापना में यातायात की सुविधा महत्वपूर्ण होनी है। यह उद्योग खनिज उत्पादन एवं विकसित यातायात वाले क्षेत्रों के निकट स्थापित होता है। इस उद्योग में प्रमुखत : लौह अयस्क, कोयला, मैगमीज, चूना, ईंधन, पुराने लोहा का उपयोग होता हैं। भारत में हेमेटाइॅट एव मैग्नेटाइट किस्म का लोहा प्रयोग में आता है जिसमें लोहे का अंश 55 प्रतिशत से 68 प्रतिशत का होता है। इस श्रेणी का लोहा उडीसा, मध्यप्रदेश, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ एवं कर्नाटक से प्राप्त होता है। कोयला, झरिया, रानीगंज, बोकारो, कोरबा एवं गीरिडीह की कोयला खदानों से प्राप्त होता है। चूना सुन्दरगढ (उडीसा), राँची (झारखण्ड), दुर्ग (छत्तीसगढ), सतना (मध्य प्रदेश) एवं शिमोगा (कर्नाटक) से प्राप्त हातो है। जंग न 'लगना (De– oxidation) एवं अगंधकीकरण (De–sulphurisation) के लिए फेरो मैंगनीज (Ferro–Manganese) एवं फेरो –सिलीकॉन (Ferro–Silicon) का उपयोंग होता है। अग्निसह मृतिका (Fireclay) और सिलिका का प्रयोग भट्टी के अस्तर के उपयोग में लाया जाता है। लोहा एवं इस्पात उद्योग में अधिक मात्रा में बिजली, पानी एवं पूंजी तथा बाजार भी अन्य महत्वपूर्ण कारक है।

12.5.3 लोहा –इस्पात उद्योग का वितरण

लोहा एवं इस्पात उद्योग का वितरण प्राथमिक रूप से कच्चे माल की उपलब्धता से प्रभावित होता है। सस्ता एवं कुशल श्रमिक एवं बाजार की उपलब्धता इस उद्योग के स्थानीकरण एवं वितरण के अन्य महत्त्वपूर्ण कारक है। झारखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं पश्चिमी बंगाल में अधिक

खनिज की उपलब्धता के कारण यह उद्योग केन्द्रित है। ये कारखाने या तो लोहें अयस्क के क्षेत्र के समीप है (राउरकेला, भद्रावती) अथवा कोयला क्षेत्र के पास है (बोकारो, दुर्गापुर)। केवल जमशेदपुर दोनों के मध्य स्थित है। भारत में ग्यारह बड़े एकीकृत कारखानें (चित्र –12.2) 145 छोटी इस्पात की इकाईयां (Mini Steel Plants) एवं कई 'रोलिंग' (Rolling) री – रोलिंग (Rolling) एवं ढलाईखाना (Foundaries) हैं। टाटा लोहा –इस्पात कम्पनी (टिस्को) को छोड़कर सभी इकाईयों का प्रबन्ध स्टील अथोरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड (Steel Authority of India–SAIL) द्वारा संचालित है। इनकी उत्पादन क्षमता तालिका 12.4 में अंकित है।

तालिका – 12.4 : भारत में संयंत्रवार लोहा एवं इस्पात का उत्पादन. 2006–07 (हजार टन)

संयंत्र	तप्त धातु	अपरिष्कृत इस्पात	परिष्कृत इस्पात	कच्चा लोहा
बाएसपी भिलाई	4817	4799	3232	40
डीएसपी दुर्गापुर	064	1869	707	38
आरएमपी राउरकेला	2124	1990	1939	44
बीएसएल बोकारो	4588	4067	3612	160
आएसपी बर्नपुर	775	472	316	177
बोआईएसएल विश्वेस्वरैया	238	159	131	49
आरआइएनल विशाखापट्टनम	4046	3497	4032	352
टिस्को जमशेदपुर	5552	5174	4423	–
अन्य	10463	28790	34137	4133
कुल सार्वजनिक क्षेत्र	18652	17003	13176	860
कुल निजी क्षेत्र योग	16015	33814	39353	4133
योग	**34667**	**50817**	**52529**	**4993**

स्त्रोत : वार्षिक प्रतिवेदन 2007– 08, भारत सरकार इस्पात मंत्रालय

12.5.3.1 बड़े एकीकृत कारखाने

1. टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी

टाटा आयरन एवं इस्पात उद्योग भारत का द्वितीय सबसे बड़ा निजी उद्योग है जो सन् 1907 में स्थापित हुआ था। कच्चे लोहे का उत्पादन एक वर्ष बाद सन् 1908 तथा इस्पात का उत्पादन सन् 1911 में शुरु हुआ। यह कारखाना सुवण्ररिखा एवं खारकाई नदियों के शाम पर स्थापित है। यह कोलकाता नागपुर रेल लाईन पर झारखण्ड के सिंहभूमि जिले में स्थित है। टिस्को के समीप लौह अयस्क, चूना एव ईंधन तीनों समीप ही पाये जाते हैं। लौह – अयस्क गुरुमाहिसानी, बादमफर (मयूरभंज जिला) नोआमुण्डी (सिंहभूमि जिला) से लाया जाता है। ये खाद्याने 72.5 किमी. एवं 96.6 किमी. की दूरी पर हैं। कोयला –झीरया, सिरजुआ, जमवोड़ा एवं पश्चिम बोकारो से प्राप्त होता है जो कि 177 किमी. की दूरी पर है। चूना बीरमित्रापुर, हाथीबारी एवं बाराद्वार सुन्दरगढ जिला (उड़ीसा) से प्राप्त होता है। मैंगनीज – जोड़ा (क्योंझर जिला) एवं छत्तीसगढ़ से प्राप्त होता है। डोलोमाईट एवं अग्निसह मृतिका (Fireclay) दोनों की खाद्याने सुन्दरगढ़ जिले में

स्थित है। सुवर्णरेखा एवं खारकाई नदियाँ जल की आपूर्ति करती है। कोलकाता बन्दरगाह अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के लिये उपयोग में आता है।

इस इकाई में धमन भट्टी (Blast Furnace) है जो कि कच्चा लोहा एव इस्पात बनाने के उपयोग में लाई जाती है। बिजली की भट्टी (Electric Furnace) से जंगरोधी इस्पात बनाया जाता है। उच्च कोटि का इस्पात संरचमात्मक पुरजे (Structural Fitting) एवं टिन की चद्दर बनाने के काम आता है। टिस्को में एसिड इस्पात (Acid Steel) भी बनाया जाता है जिससे कि रेल के पहिये, टायर एव धुरी (Axle). छड़ एवं छड़ी (Bar and Rod) सादी एवं सिकुरित चादर (Plan and corrugared sheets) तार, कील, कलपुर्जा. टिन पत्तर (Tin Plates) एवं इस्पात से ढली वस्तु (Steel Casting) बनाई जाती हैं।

चित्र – 12.2 : भारत में लोहा –इस्पात उद्योग

2. इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी (बर्नपुर)

इस कम्पनी के तीन वृहद् सयंत्र कुल्टी (स्थापना 1874), बर्नपुर (1937) तथा होरापुर (1908) में स्थिएत हैं। सन् 1953 में इन तोनों का इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी में विलय हो गया। इस कम्पनी को भारत सरकार ने सन् 1972 में अधिग्रहित कर लिया था। इस कारखाने की तीनों इकाईयों आसनसोल के निकट हैं। हीरापुर (6.5 किमी. दक्षिण में), कुल्टी (16 किमी. पश्चिम में) एवं बर्नपुर (5 किमी. दक्षिण –पश्चिम में) ये तीनों इकाईयाँ कोलकाता से 227 किमी. की दूरी पर कलकत्ता – आसनसोल रेलमार्ग पर स्थित हैं।

इस कारखाने के कच्चे माल की आपूर्ति झारखण्ड में स्थित खदानों से होती है। कोकिंग कोयला रानीगंज की खदानों से और लोह – अयस्क गुआ (झारखण्ड) से प्राप्त होता है। कोयला रामनगर (जो कि कुल्टी से केवल 3.2 किमी. की दूरी पर है) और नूनडीइ एवं जीतपुर (झरिया) से प्राप्त होता है। चूना – पाराघाट एव बाराद्वार, मैंगनीज –झारखण्ड, बिहार, उड़ीसा एव मध्यप्रदेश. स्फटिक (Quartz), मुंगेर के निकट खड्गपुर पहाड़, अग्निसह (Fireclay) – कुमारधूबी सिलिका –

सिंहभूमि जिले से प्राप्त होता है। दामोदर घाटी निगम जल विद्युत मुहैया कराता है। कलकत्ता बंदरगाह भी इस उद्योग के विकास के लिये जिम्मेदार है!

इस्को उच्च कोटि का इस्पात बनाता है जो कि रेल शयनिका (Rail Sleeper), घरन (Grider), इस्पात की चादर एवं पाइप बनाने के उपयोग में आता है।

3. विश्वेश्वरईया लोहा एवं इस्पात उद्योग – भद्रावती

विश्वेश्वरईया लोहा एवं इस्पात उद्योग भद्रावती में सन् 1923 में स्थापित हुआ। प्रारम्भ से यह "मैसूर लोहा एव इस्पात" उद्योग के नाम से जाना जाता था। यह इकाई अमेरिकन कम्पनी द्वारा स्थापित हुई थी, परन्तु भारत की उद्योग नीति के तहत सन् 1962 में इसे केन्द्र सरकार ने अपने अधीन कर लिया। यह इकाई बिरूर –शिमोगा रेलवे लाइन पर शिमोगा से 17 किमी. की दूरी पर स्थित है। चिकमंगलम् जिले की बाबाबूदान पहाड़ी में केमनगुण्डी खदान, जिससे समृद्ध सिलिकॉन लोहा प्राप्त है, इस कारखाने की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चूना 21 किमी. पर भानडीगुनडा, मैंगनीज एवं क्रोमाइट 48 किमी. कच्चा कोयला मालनन्द के जंगलों से, बिजली जोग एवं शररावती जल –विद्युत परियोजनाओं से प्राप्त होती है। यह कारखाना मिश्रधातु (Alloy) एवं विशेष इस्पात (Special Steel) का प्रमुख उत्पादक है। यहाँ पर तंतु नली (Spun pipe) नरम इस्पात (Mild Steel), निक्षेपण (Castings) इत्यादि का उत्पादन होता है।

4. हिन्दुस्तान इस्पात लि. मि. राऊरकेला

हिन्दुस्तान इस्पात लि. मि. (Hindustan Steel Limited) भारतीय इस्पात प्राधिकरण (Steel Authroity of India) के प्रबन्धन के अधीन है। यह कारखाना उड़ीसा के सुन्दरगढ़ जिले में कोलकाता नागपुर रेलवे लाईन के समानान्तर स्थित है। यह सन् 1952 में जर्मनी के सहयोग से स्थापित हुआ था। राऊरकेला की इकाई संख एवं कोयल नदियों के संगम पर स्थित है। लोहा सुन्दरगढ एवं क्योंझार जिले के बारसुओ, कालता एवं तालदिह खदानों से प्राप्त होता है। इन खदानों के अयस्क में 60–66 प्रतिशत का लौह अंश होता है। कोयला - बोकारो, झरिया, तलवर (झारखण्ड) एवं कोरबा (छत्तीसगढ़) से प्राप्त होता है। मैंगनीज – बाराजामदा, चूना 24 किमी. की दूरी पर हाथीबारी, पुरानापानी एवं बिरमित्रपुर, डोलोमाइट – बारादवार, एवं जल की आपूर्ति सख नदी पर स्थित मन्दिरा बाँध से होती है। जल –विद्युत की आपूर्ति हीराकुण्ड जलविद्युत परियोजना से होती है।

इस कारखाने में उच्च कोटि का इस्पात बनाया जाता है। अत : वह सस्ता होता है। गर्म एवं ठण्डी बेल्लित चद्दर एवं पटी (Hot and cold rolled sheets and strips), जस्तेदार चद्दर (galvanized sheers) एवं विद्युत इस्पात पटिका (Electrical steel plates) का उत्पादन इस इस्पात इकाई में होता है। इस इकाई की एक अन्य विशेषता इसका अधिक मात्रा में नाइट्रोजन का उत्पादन है जिससे कि उर्वरक एवं विभिन्न प्रकार के रसायन जैसे कि डामर (Tar), औषधि (Benzole), टालुइन (Talune), दारू (Xylen), किउसोंट तेल (Creosote oil), कच्चा फिनाइल (Crude Phenol), नैफ्थलीन (Napthalene) इत्यादि तैयार किए जाते हैं।

5. हिन्दुस्तान इस्पात लि. भिलाई

हिन्दुस्तान इस्पात लि.मि. छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले में रूस के सहयोग से सन् 1953 में कोलकाता मुम्बई रेलमार्ग पर स्थापित हुआ।

यह इकाई दल्ली–राजहरा खदानों से 65 किमी. की दूरी पर स्थित है। कोयला – कोरबा (छतीसगढ़), बोकारो, कारगली, झीरया (झारखण्ड), चूना 19 किमी. दूर नदिनी खदानों से मैंगनीज – बालाघाट एवं भण्डारा, डोलोमाइट –भाटपारा, रामटोला, हरडी, कारोन्दी भानेश्वर. परसोदा, खरिया एवं पटपारा, जल– तांदुला नहर एवं कुण्ह बिजली, कोरबा तापीय विद्युतगह से प्राप्त होती है। विशाखापट्टनम से बन्दरगाह की सुविधाएँ प्राप्त है।

यह कारखाना रेल पटरी एवं संरचनात्मक वस्तुओं का उत्पादन करता है। उच्च तकनीक के प्रयोग के कारण यहाँ पर अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्ड की रेल पटरी बनाई जाती है। भिलाई कारखाने में भारी रेल पटरी, चौड़ी कड़ी (Broad Beams) मध्यम एवं हल्की सरचनात्मक, छड़ (Billets) एवं घुमावदार तार का भी उत्पादन होता है। हाल में यहां पोत निर्माण उद्योग (Ship Building) के लिए पट्टी (Plates) का भी उत्पादन शुरु हुआ। उपात्पादन (By–products) जैसे कि अमोनिया सलफेट, औषधि एवं सल्फेट एसिड भी बनाय जाते हैं।

6. हिन्दुस्तान इस्पात उद्योग – दुर्गापुर

दुर्गापुर लोहा एव इस्पान कारखाना पश्चिम बंगाल के बर्दमान जिले में कोलकाता आसनसोल रेल लाईन पर ब्रिटिश कम्पनी के सहयोग रो सन् 1962 में स्थापित किया गया। झरिया से कोयला, बिजली एवं जल दमोदर घाटी निगम, उड़ीसा की बोलानी खदानों से लोहा. चूना –बिरमित्रपुर एवं हाथीबाड़ी (सुन्दरगढ), मैगनीज–जामडा (क्योंझार जिला) एवं कोलकाता बन्दरगाह से व्यापार दुर्गापुर में कारखाने को स्थापित करने के प्रमुख कारण हैं। मिश्रित इस्पात एवं रेल वस्तुएँ जैसे कि पहिया, धुरी (Axle) एवं शतिया (Sleeper), हल्के संरचनात्मक वस्तुएँ इत्यादि का उत्पादन यहाँ होता है। उपोत्पादन कच्चा डामर, कच्ची औषधि एवं अमोनियम सलफेट मुख्य हैं।

7. बोकारो स्टील कम्पनी, बोकारो

बोकारो इस्पात कारखाना सन् 1964 में रूस के सहयोग से स्थापित हुआ, परन्तु इसमें उत्पादन आठ वर्ष बाद सर 1972 में चालू हो पाया। यह इकाई झाग्खण्ड के हजारीबाग जिले में बोकारो, कारगली एवं झरिया से कोयला, किरीबरू, मेघाटाबुरु, बाराजमदा, बोलानी, गुवा, बागिल, बारसुआ, बनमपानी, द्य देवझार से लौह अयस्क चूना भावनतपुर एवं डालटनगंज (पालामन जिला), डोलामाईट–बिलासपुर जिला (छत्तीसगढ़), जल दामोदर नदी पर स्थित टेनू बाँध, बिजली दमोदर घाटी निगम से प्राप्त होता है। बिहार एवं उत्तरप्रदेश की औद्योगिक इकाईयों को इस्पात की आपूर्ति बोकारो से होती है। बोकारो इकाई में मुख्यत : सपाट चीजों एवं गर्म एवं ठण्डी वेल्लित चद्दरों का उत्पादन होता है।

8. सेलम इस्पात उद्योग

तमिलनाडू प्रान्त के सेलम शहर में सन् 1982 में इस्पात उद्योग स्थापित हुआ था। चूना लोहा, लौह मिश्रधातु एवं खनिजों की निकटता इस कारखाने की स्थापना के प्रमुख कारक है। सस्ती बिजली, चारकोल एवं विस्तृत बाजार अन्य महत्वपूर्ण कारण हैं जिससे कि यह कारखाना स्थापित हुआ है। लोहे में कम मात्रा में गन्धक एवं फॉस्कोट के कारण यहाँ पर उच्च कोटि का इस्पात का उत्पादन होता है।

9. विजयनगर इस्पात का कारखाना

यह कारखाना कर्नाटक प्रान्त के बेलारी जिले में हास्पेट के निकट तोरंगल में स्थित है। इस इकाई में लोहा –हास्पेट, कोयला मध्य प्रदेश को कन्हान घार्टी एवं सिंगरेनी (आन्ध्रप्रदेश) – चूना एवं

डालोमाइट 200 किमी. की दूरी पर एवं जल और बिजली तुंगभद्रा जलाशय (36 किमी. की दूरी) से प्राप्त है ।

10. विशाखापट्टपनम इस्पात कारखाना

राष्ट्रीय इस्पात निगम द्वारा संचालित यह उद्योग भारत का पहला उद्योग है जो कि देश की तटीय सीमा पर स्थित है। इस कारखाने की नींव सन् 1971 में डाली गई थी, परन्तु यह सन् 1992 में चालू हो पाया। इस कारखाने को कोलया दामोदर घाटी, लौह अयस्क बैलाडीला (छत्तीसगढ़) एवं डोलामाइट (कर्नाटक) चूना, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश एवं उड़ीसा से प्राप्त होते हैं। यह कारखाना अत्यधिक मशीनीकृत है।

11. दायतारी इस्पात कारखाना

पाराद्वीप (उड़ीसा) के निकट स्थापित लोहा एवं इस्पात उद्योग है जो कि टाटा समूह के संचालन से स्थापित हुआ है।

12. डोलवी इस्पात कारखाना

यह इकाई महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले में इस्पात उद्योग लि.मि. द्वारा स्थापित की गई है।

12.5.3.2 छोटे इस्पात संयंत्र

10 हजार टन से लेकर 5 लाख टन की उत्पादन क्षमता वाली इकाइयों को, जो कि बिजली की भट्टी पर आधारित है, इस श्रेणी में रखा गया है। ये इकाईयाँ लोहे की कतरन एवं कच्चे लोहे पर आधारित होते है। भारत में इस तरह की 200 इकाईयों के करीब है। जिनकी उत्पादन क्षमता हर साल करीब 120 लाख टन है। यह देश के पूर्ण इस्पात का एक –तिहाई (1/3) है। छोटी इस्पात इकाईयाँ पूरे देश में फैला हैं, परन्तु कुछ बड़े कारखाने गोवा, विशाखापट्टनम, सुन्दर (कर्नाटक). बम्बई इत्यादि में स्थित है।

12.5.4 उद्योग की समस्यायें

भारत के लोहा एवं इस्पात उद्योग की प्रमुख समस्यायें निम्नलिखित हैं –

1. अधिक पूँजी की आवश्यकता।
2. सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों की अदक्षता (Inefficiency)।
3. उत्पादन क्षमता की निम्न उपयोगिता।
4. छोटे इस्पात उद्योगों का बीमार होना।
5. उत्पादकों के गुणों की निम्नता।
6. अन्य उत्पादकों जैसे प्लास्टिक से प्रतियोगिता।

12.6 शक्कर उद्योग (sugar Industry)

भारत विश्व में चीनी का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। यहाँ पर चीनी गन्ने से बनाई जाती है। चीनी उद्योग, सूती कपड़ा उद्योग की ही तरह संगठित कृषि आधारित उद्योग है और सूती कपड़ा उद्योग के बाद यह देश का दूसरा सबसे बड़ा उद्योग है।

12.6.1 शक्कर उद्योग का विकास

चीनी का उल्लेख अर्थववेद, कौटिल्य केअर्थशास्त्र, मेगास्थिनीज, के लेखन एलेक्जेण्डर के युद्ध विवरण सोलहवीं सदी की चीनी (Chinese), विश्वकोष (Enclyclopedia) में प्राप्त है। यह उल्लेख करीब 300 B.C. पूर्व का है। हिन्दुस्तान के खण्डसारी उद्योग का उल्लेख भी उसी समय पर मिलता है। परन्तु आधुनिक चीनी उद्योग ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान स्थापित हुआ जब डच उद्योंगपति ने उत्तरी बिहार में सन् 1840 में पहला उद्योग लगाया। यह कारखाना विफल हुआ और शीघ्र ही बन्द हो गया। तत्पश्चात् बीसवीं सदी के प्रारम्भ में पुरसा, प्रतापपुर, बाराचाकिया एवं मरहाकराह उत्तर पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं लगे हुए बिहार प्रान्त में स्थापित दुये। बिहार के नील के उत्पादन पर कृत्रिम नील के उपयोग के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ा तब किसानों ने चीनी उद्योग पर विशेष न दिया। दूसरा कारण सन् 1931 की सीमा शुल्क नीति रही जिससे कि चीनी का आयात महँगा हुआ उसका भी असर पड़ा। परिणामस्वरूप वर्ष 1931 में 32 मिलें थी जो सन् 1937 में बढ़कर 137 हो गई और इसी अवधि में चीनी का उत्पादन 1.6 लाख टन से बढ़कर लाख टन हो गया। वर्ष 1950–51 में देश में 139 चीनी मिलें थी जो 11.34 लाख टन चीनी बनाती थी। स्वतन्त्र भारत में इस उद्योग ने कफि प्रगति किया और वर्ष 2000–01 में मिलों की संख्या 450 हो गई एवं इनका उत्पादन बढ़कर 192 लाख टन हो गया। सन् 2006–07 में चीनी का उत्पादन 282 लाख टन हो 'गया (तालिका – 12.5)।

तालिका 12.5 भारत में चीनी उत्पादन में प्रगति

वर्ष	मिलों की संख्या	उत्पादन(लाख टन)	%वृद्धि
1831–32	32	1.6	–
1936–37	137	9.2	475.0
1950–51	139	11.3	22.8
1960–61	174	30.3	168.1
1970–71	215	37.4	23.4
1980–81	315	51.5	37.7
1990–91	380	120.5	134.0
2000–01	506	185.10	46.3
2006–07	–	282.0	–

स्त्रोत: भारत सरकार – आर्थिक सर्वेक्षण 2009

12.6.2 शक्कर उद्योग का स्थानीकरण

शक्कर उद्योग कच्चा माल उन्मुख उद्योग है। इसके प्रमुख कारण निम्न है – (1) इस उद्योग का कच्चा माल गन्ना है जो भारी, सस्ता एवं भारनाशक होता है। गन्ने में शक्कर की मात्रा 9 से 12 प्रतिशत तक होती है, शेष लगभग 90 प्रतिशत व्यर्थ पदार्थ होता है। इस कारण व्यय को न्यूनतम करने के लिए इस उद्योग की स्थापना गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में ही होती है। उत्तरी एवं दक्षिणी भारत की सभी चीनी मिलें प्रनुख गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में ही स्थित हैं। (2) गन्ने की

कटाई होने के चौबीस घण्टे के अन्दर यदि गन्ने का रस निकाल लिया जाए तो रस अधिक निकलता है अन्यथा रस एवं चीनी की मात्रा घटती जाती है। इस कारण भी इस उद्योग की स्थापना गन्ना उत्पादक क्षेत्रो में ही की जानी है। (3) शक्कर उद्योग एक मौसमी उद्योग है। गन्ना कटाई एवं पिराई कार्य के समय अधिक श्रमिकों की आवश्कयता होती है। अस्तु यह सघन क्षेत्रों में स्थापित हाता है। (4) शक्ति के साधन के रूप में जलविद्युत एवं ईंधन के रूप में गन्ने की खोई (Bagasse) का प्रयोग होता है। ये मिल क्षेत्र की स्थापना को विशेष प्रभावित नहीं करते। (5) गन्ने को मिल तक एवं चीनी को बाजार तक ले जाने के लिए सस्ते परिवहन की आवश्कता होती है। अत : उद्योग के क्षेत्र में परिवहन का समुचित विकास होना चाहिए ।

12.6.3 शक्कर उद्योग का वितरण

भारत में शक्कर उद्योग की स्थापना गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में ही हुई है (चित्र 12.3)। उत्तर भारत में गंगा–यमुना दोआब एवं तराई क्षेत्र में तथा दक्षिण–भारत में गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में चीनी उद्योग स्थापित है। इस उद्योग की आरंभिक स्थापना पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं उत्तरी बिहार के गन्ना क्षेत्रों में हुई थी। सन् 1970 के बाद गन्ना उद्योग का विस्तार दक्षिण भारतीय राज्यों मे आरंभ हुआ। इन राज्यों में गत्रा की प्रति हेक्टर अधिक उपज एवं वर्ष के अधिकांश समय तक उपलब्धता के कारण यह उद्योग आकर्षित एवं विकसित हुआ। देश के कुल शक्कर उत्पादन का 93 प्रतिशत सात राज्यों – महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात, आध्रप्रदेश एवं बिहार से प्राप्त होता है। महाराष्ट्र इसमें प्रथम तथा उत्तर प्रदेश द्वितीय स्थान पर है। ये दोनों राज्य देश की कुल शक्कर का दो–तिहाई (64%) उत्पादन करते हैं।

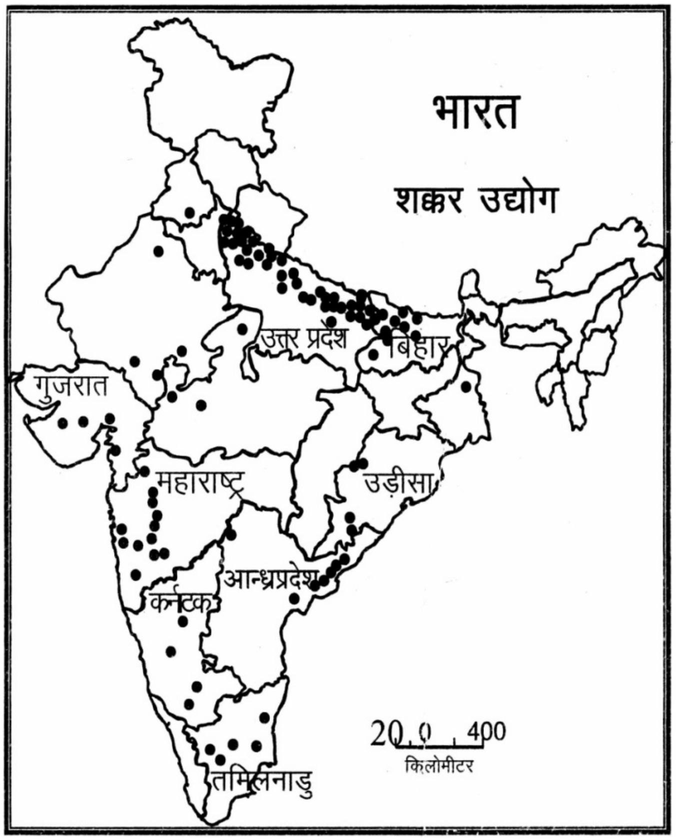

चित्र – 12.3 : भारत – शक्कर उद्योग

महाराष्ट्र : महाराष्ट्र राज्य चीनी उत्पादन का प्रमुख राज्य है। यह देश का करीब 35 प्रतिशत चीनी उत्पादित करता है। यहाँ पर करीब 107 चीनी मिलें है जिनमें से 87 सरकारी क्षेत्र में है। सभी मिलें एक पट्टी के रूप में पश्चिमी घाट के समानान्तर दक्षिण में कोल्हापुर से उत्तर में मडमाड़ तक फैली है। इस राज्य में सन् 1964–65 में देश की 19.7 प्रतिशत श्क्कर तैयार की जाती थी जो बढ़कर सर 2000–01 में 37 प्रतिशत हो गई है।

उत्तर प्रदेश : परम्परागत रूप से उत्तर प्रदेश ही चीनी का प्रमुख उत्पादक रहा है, परन्तु वर्ष 1999–2000 से यह महाराष्ट्र के बाद दूसरे स्थान पर आ गया है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश राज्य देश की 26 प्रतिशत चीनी का उत्पादन करता है। यहाँ पर करीब 16 मिलें पाई जाती हैं जो कि पश्चिम के गगा–यमुना डोआब (Doab) और पूर्व में तराई (Terai) क्षेत्र में केन्द्रित हैं। मेरठ, मुरादाबाद, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, गाजियाबाद, देवरिया, बस्ती, गोण्डा, सिद्धार्थनगर, सन्त कबीरनगर, सीतापुर, फैजाबाद जिलों में प्रमुखतः चीनी मिल पाई जाती हैं। ठण्ड में पाला एवं गर्मी में तापमान की अधिकता के कारण गन्ने की उत्पादकता एवं गुणवत्ता पर असर पड़ता है, जिससे यहों गन्ना पेरने का समय 120 दिन से अधिक नहीं हो पाता है। यह उत्तर प्रदेश की 'चीनी मिलों की उत्पादन क्षमता की कमी का प्रमुख कारण है।

तमिलनाडू : तमिलनाडू देश का करीब 10 प्रतिशत चीनी उत्पादन करता है। यहाँ पर 30 मिलें, कोयम्बतूर, तिरूचिरापल्ली कुडेलोर, रामनाथपुरम् मेलापदटे, नेलिकुप्पार, पुगालौर, चिनगल्पेट एवं विल्लौर जिलों में स्थित है। तमिलनाडू राज्य में प्रति वर्ष गन्ने का उत्पादन एवं गन्ने में शर्करा की अधिक मात्रा होती है। इसके अलावा पेरने की लम्बी अवधि एवं आधुनिक मशीनों के प्रयोग भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

कर्नाटक : कर्नाटक राज्य में करीब 28 चीनी की मिलें हैं जो कि बेलगाँव, मानडिया, बेलारी, शिमोगा, चित्रहु र्गा एवं बीजापुर जिलों में स्थित है।

गुजरात : गुजरात राज्य देश की 6 प्रतिशत चीनी का उत्पादन करता है। इस प्रदेश की सबसे अधिक चीनी मिलें महाराष्ट्र से लगे सूरत जिले में हैं। जूनागढ, राजकोट, अमरेली, वलसाड एवं भावनगर में भी चीनी मिलें पाई जाती हैं।

आन्धप्रदेश : आन्धप्रदेश में 33 मिल हैं जो कि हैदराबाद, निजामाबाद, काकिननाडा मेडक, चितूर, श्रीकाकुलम, एक, पीठापुरम एवं स्मालकोट में स्थापित हैं।

बिहार : बिहार की 29 मिलें चम्पारन, सरन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, गया, भागलपुर, चपड़ा, एवं शाहाबाद जिले में स्थित है। शर्करा की कम मात्रा, पुरानी मशीनें एवं कम दिनों का पेरने की अवधि बिहार के चीनी उद्योग की कुछ समस्याएँ हैं।

हरियाणा : हरियाणा में 8 मिल हैं जो कि देश की 3 प्रतिशत चीनी उत्पादित करती हैं। ये करनाल, अम्बाला, रोहतक, हिसार एवं गुड़गांव जिलों में केन्द्रित हैं।

मध्यप्रदेश : मध्यप्रदेश की 8 चीनी मिल देश की करीब 1 प्रतिशत 'चीनी उत्पादन करती हैं। यह उद्योग सीहोर, जावरा, सारंगपुर महीदपुर एव ग्वालियर में स्थित हैं।

राजस्थान : श्रीगंगानगर, भूपालसागर एवं केशोरीपट्राम् में चीन मिल स्थित हैं।

पंजाब : पंजाब की 13 मिल गुरदासपुर, देश का 2.0 प्रतिशत चीनी उत्पादित करती है। ये मिल जलन्धर, संगरुर, रूपर, पटियाला एवं अमृतसर जिलों में केन्द्रित हैं।

12.6.4 शक्कर उद्योग की समस्याएँ (Problems of Sugar Industry).

1. सस्ते गुड़ एवं खण्डसारी से प्रतियोगिता।
2. गन्ने की निम्न पैदावार।
3. पेरने की सीमित अवधि।
4. सरकारी नीति – नियन्त्रित मूल्य बाध्यकर प्राप्ति।
5. खोई, सिरा जैसे उपोत्पादों का प्रबन्धन।

बोधप्रश्न–2

1. स्वतन्त्रता के समय स्वतन्त्र भारत में कितनी सूती वस्त्र की मिले थी?

....

....

2. भारत में सूती वस्त्र की स्थापना एवं विकास के क्या कारण थे?

....

....

3. देश का निजी क्षेत्र का लोहा–इस्पात का सबसे बड़ा संयंत्र कौन सा है?

....

....

4. दक्षिण भारत का सबसे पुराना लोहा–इस्पात का कारखाना कहीं और कब स्थापित किया गया?

....

....

5. सन् 2006–07 में शक्कर का उत्पादन कितना था?

....

....

6. देश में सर्वाधिक शक्कर किस राज्य से उत्पन्न की जाती है?

....

....

12.7 औद्योगिक प्रदेश (Industrial Rehgions)

विनिर्माण उद्योगों का वितरण सर्वव्यापक नही हैं क्योंकि अवस्थिति को प्रभावित करने वाले कारक सर्वत्र एक जैसे नहीं हैं। इसके साथ ही उद्योगों में किसी निश्चित स्थान पर सकेंद्रण की प्रवृत्ति पाई जाती है। यही सकेन्द्रण धीरे –धीरे बढ़ते हुए औद्यागिक क्षेत्र, जिला और प्रदेश की रूप ले लेता है। औद्योगिक प्रदेश निर्धारित करने के लिए अनेक मापदंडों का उपयोग किया जाता है। इनमें से प्रमुख ये हैं : (1) औद्योगिक इकाइयों की संख्या, (2) औद्योगिक श्रमिकों की

संख्या, (3) औद्योगिक प्रक्रिया में उपयोग में लाई गई ऊर्जा की मात्रा, (4) कुल औद्योगिक उत्पादन, तथा (5) विनिर्माण द्वारा वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि।

भारत के औद्यागिक प्रदेश निर्धारित करने का पहिला व्यवस्थित प्रयास ट्रिवार्था और वेरवर ने (1951) किया था । इन लोगों ने रोजगार के आकड़े के आधार पर तीन औद्योगिक प्रदेश बनाया था। औद्योगिक प्रदेश बनाने का दूसरा और सबसे महत्वपूर्ण कार्य करण एवं जेकिंस (1959) का है। इन लांगों ने सन् 1950 की औद्योगिक श्रमिकों की औसत संख्या लेकर तथा जिलों को आधार इकाई मान कर औद्योगिक प्रदेश निर्धारित किया। इस प्रकार 4 प्रमुख, 13 लधु प्रदेश तथा 13 औद्योगिक क्षेत्र निश्चित किए गए। पुन : करन ने (1964) सन् 1960 के औद्योगिक श्रमिकों की औसत संख्या लेकर भारतीय औद्योगिक प्रतिरूप में 1950–1960 के दशक में हुए परिवर्तनों का व्याख्या की। इस बार उन्होने औद्योगिक प्रदेशों की संख्या 5 तथा लघु प्रदेशों की 14 निश्चित की। इनके साथ ही 17 औद्योगिक जिलों का भी उल्लेख किया। बाद के लोगों ने इसी का संशोधित रूप का प्रयोग किया है। आर. एल. सिंह ने औद्योगिक इकाइयों के सकेन्द्रण के आधार पर औद्योगिक प्रदेशों का निर्धारण किया है। पुन: कुमार और शर्मा ने (1990) सन् 1974 में औद्योगिक श्रमिकों की संख्या लेकर तथा जिलों को आधार इकाई मान कर औद्योगिक प्रदेशों का पुनर्निधारण किया है। इस तरह 8 प्रमुख औद्योगिक प्रदेश, 13 गौण औद्योगिक प्रदेश तथा 14 औद्योगिक जिले पहचाने गए हैं। देश के प्रमुख औद्योगिक प्रदेशों का चित्रण चित्र 12. 4 में किया गया है।

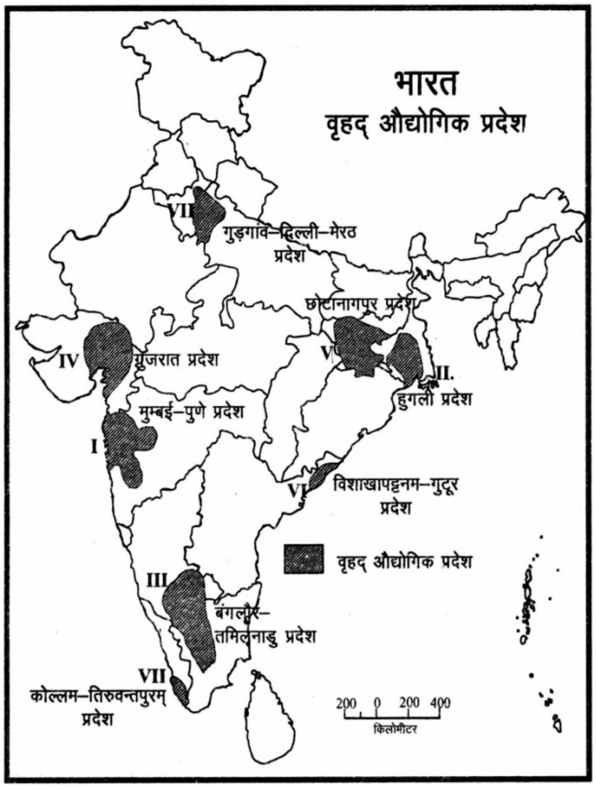

चित्र – 12.4 : भारत वृहद् औद्योगिक प्रदेश

भारत के औद्यागिक प्रदेश

वृहद् औद्योगिक प्रदेश (8): I. मुम्बई –पुणे प्रदेश, II. हुगली प्रदेश, III. बंगलोर –तमिलनाडु प्रदेश, IV: गुजरात प्रदेश, V. छोटानागपुर प्रदेश, VI विशाखापत्तनमू–गुंटूर प्रदेश, VII गुड़गांव – दिल्ली–मेरठ प्रदेश, VIII कोल्लम –तिरुवनन्तपुरम प्रदेश।

लघु औद्योगिक प्रदेश' (13) 1. अम्बाला–अमृतसर, 2. सहारनपुर –मुजफ्फरनगर –बिजनौर, 3. इन्दौर –देवास –उज्जैन, 4. जयपुर–अजमेर, 5. कोल्हापुर –दक्षिण कनारा, 6. उत्तरी मालाबार, 7. मध्य मालाबार, 8. आदिलाबाद –निजामाबाद, 9. इलाहाबाद – वाराणसी –मिर्जापुर, 10. भोजपुर –मुंगेर, 11. दुर्ग –रायपुर, 12. बिलासपुर –कोरबा, तथा 13. ब्रह्मपुत्र की घाटी।

औद्योगिक जिले (15) 1. कानपुर, 2. हैदराबाद, 3. आगरा, 4. नागपुर, 5 ग्वालियर, 6. भोपाल, 7. लखनऊ, 8. जलपाइगुड़ी, 9. कटक, 10. गोरखपुर, 11. अलीगढ़, 12. कोटा, 13. पूर्णिया, 14. जबलपुर, तथा 15. बरेली।

12.7.2 वृहद् औद्योगिक प्रदेश (Major Industrial Regions)

I. मुम्बई – पूणे औद्योगिक प्रदेश

मुम्बई–पूणे क्षेत्र देश का सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र है जो बहुत गतिशील रहा है। प्रारम्भ से ही यहाँ पर कई तरह के उद्योग स्थापित हुये। इस क्षेत्र का औद्योगिक विकास ब्रिटिश शासनकाल में हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से इसके विकसित होने के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं :

1. मराठा राज्य का सन् 1818 में पतन।
2. मुम्बई –पुणे के बीच सन् 1830 में भोरघाट का खुलना।
3. सन् 1869 में स्वेज नहर से व्यापार की शुरुआत।
4. मुम्बई – थाणे के बीच सन् 1853 में पहली रेल यातायात सेवा।
5. विकसित बन्दरगाह।

आज यह देश का सबसे बड़ा औद्योगिक क्षेत्र है। इसका आरम्भिक विकास सूती कपड़ा उद्योग (1851) से हुआ। वृहद् मुम्बई में ही 6000 से अधिक पंजीकृत कारखाने हैं। इनमें से 330 कपड़ा, 800 अभियान्त्रिकी, 190 खाद्य संसाधन, 216 रसायन एवं 50 चमड़ा संशोधन कारखाने हैं। सूती कपड़ा उद्योग का प्रतिस्थापन अभियान्त्रिकी उद्योग से हुआ। की कपड़े उद्योग की प्रतियोगिता जापान के कृत्रिम धागे से हुआ जिसके कारण यह उद्योग पिछड़ने लगा इस उद्योग के विकास के पिछड़ने का दूसरा कारण यहाँ की पुरानी मशीनें है। ग्रेटर मुम्बई में बिजली का सामान,अभियान्त्रिकी, पेट्रोलियम शोधन, यातायात के उपकरण, रबर उत्पाद कागज, इलेक्ट्रोनिक्स, कृत्रिम एवं प्लास्टिक के सामान, औषधि और खाद्य संसाधन के उद्योग स्थापित हैं।

पूणे इस औद्योगिक क्षेत्र का दूसरा बड़ा शहर है। यहाँ पर 1,150 पंजीकृत कारखानें हैं। धातुकर्मीय, रसायन एवं दूसरे अन्य कारखाने यहाँ स्थापित हैं। इन दो शहरों के अलावा कुर्ला, घाटकोपर, विलेपार्ले, जोगेश्वरी, अन्धेरी, थाने, नासिक, भानदूप, कल्यान, पिपरी, किरकी, अम्बरनाथ, ट्रामवे, सोलापुर, कोल्हापुर, उल्लासनगर एवं विकरोली भी औद्योगिक दृष्टि से विकसित है।

समस्यायें एवं सम्भावनायें (Problems and Prospects)

1. भारत –पाकिस्तान विभाजन के समय देश का 21 प्रतिशत कपास उत्पादन पाकिस्तान में चला गया एवं करीब 45 प्रतिशत मध्यम एवं लम्बा कपास भी देश में नहीं रहा। अत: सूती कपड़ा उद्योग को कच्चे माल की कमी का सामना करना पड़ा।
2. ईधन एवं बिजली की कमी : यह क्षेत्र झारखण्ड, छत्तीसगढ़ एवं पश्चिम बंगाल के कोयला क्षेत्रों से दूर है अत: यातायात की कीमत अधिक हो जाने से कच्चे माल की उपलब्धता की भी कीमत बढ़ जाती है। परन्तु हाल में पश्चिम घाट से जल – विद्युत एवं मुम्बई के निकट तारापुर से अणु विद्युत के कारण यहाँ के उद्योग लाभान्वित हुए हैं।
3. जगह की कमी : भौगोलिक दृष्टि से तटीय क्षेत्र की निकटता के कारण यहाँ पर उद्योगों के विस्तार के लिये जगह नहीं है। दूसरी समस्यायें जमीन की अत्याधिक कीमत एवं अधिक नगर निगम कर का होना है।
4. मजदूर हड़ताल, तालाबन्दी, कृत्रिम धागा से प्रतियोगिता, आधुनिक मशीनों और तकनीक की कमी एवं पर्यावरण प्रदूषण दूसरी समस्यायें हैं जो कि यह औद्योगिक क्षेत्र सामना कर रहा है।।

I. कोलकाता–हुगली प्रदेश

कोलकाता–हुगली औद्योगिक क्षेत्र देश में सबसे पहले औद्योगिक रूप में विकसित हुआ। यह हुगली नदी के दोनों ओर फैला हुआ है। बायें तट पर नैहाटी से बज –बज तथा दायें तट पर त्रिवेणी से नालपुर तक।

कोलाकाता का औद्यागिक विकास सत्रहवीं सदी में शुरु हुआ, परन्तु इसका अधिक विकास ब्रिटिश शासनकाल में हुआ। हुगली नदी से निकटता एवं समुद्र की समीपता के कारण यह दुनिया के अन्य देशों से सम्बद्ध था। दूसरा महत्वपूर्ण कारण इसका गंगा मैदान के निचले क्षेत्र में स्थित होना है। आधुनिक काल में इस क्षेत्र के विकास के प्रमुख कारण निम्नलिखित है : –

1. छोटा नागपुर पठार, के कोयला एवं लौह अयस्क के क्षेत्रों की समीपता।
2. आसाम एवं उत्तरी बंगाल में चाय के बागानों का विकास।
3. बगाल मैदान में जूट की पैदावार जिसके कारण लूट मिलों का स्थापित होना।
4. अधिक जनसंख्या घनत्व वाले बंगाल एवं उड़ीसा के राज्यों से निकटता। यहाँ से सस्ते मजदूर कारखानों में कार्यरत है।
5. पूंजी का जमाव जो अफीम, नील, कपास और जूट की मिलों से हुआ है।
6. रेल एवं जल यातायात का विकास।

जूट एवं रेशम कपड़ा, अभियान्त्रिकी, विद्युत, कागज, माचिस, रसायन, औषधि, यातायात के उपकरण, पैट्रोलियम शोधन, चमड़ा उद्योग, लोहा एवं इस्पात एवं खाद्य संसाधन उद्योग यहाँ पर अधिक विकसित है। जूट उद्योग इस क्षेत्र क महत्वपूर्ण उद्योग है। नैहाटी, जगतदल, अगरपारा, शामनगर, बैरकपोर, टिटागढ़, बेलधारिया, किट्टरपोर, बाटानगर, बज –बज, त्रिवेणी, हुगली, सेरमपोर, कोननगर, उत्तरपारा, बेलूर, तिलऊहा, हाओरा, शिबपुर, श्रसरा, अनदुल, चन्दननगर, कलकत्ता के समीप स्थित विकसित ओद्योगिक शहर है। आसनसोल, कुल्टी, बर्नपुर, रानीगंज एवं दुर्गापुर पास में स्थित लोहा एवं इस्पात उद्योग हैं जो कि इस क्षेत्र के आधार हैं।

समस्याएँ एवं संभावनायें

हाल के वर्षों में इस क्षेत्र का औद्योगिकी पतन हुआ है इनके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं : –

1. भीड़भाड़, यातायात रूकावट, जमीन का अभाव, पीने के पानी की कमी, नागरिक सुख–सुविधाओं का अभाव व प्रदूषित वातावरण।
2. हुगली नदी के प्रवाह की कमी के कारण कलकत्ता बंदरगाह पर रेत का भराव हो गया है जिससे बड़े पोत बन्दरगाह के पास तक नहीं पहुँच पाते।
3. दक्षिण–पूर्वी एवं पूर्वी रेल यातायात का यहाँ पर मार्गवरोधक बन जाने के कारण माल के प्रवाह में अवरोध।
4. राजनीतिक उथलपुथल जैसे कि सन् 1970 में हड़ताल एवं तालाबन्दी के कारण कई कारखानों का बन्द हो जाना।
5. बिजली की कमी और साल्ट लेक सिटी के विस्तार पर रोक।

इन समस्याओं के समाधान के लिये कलकत्ता नगर विकास निगम ने निम्नलिखित उपायों का सुझाव दिया है जिससे कि बीता हुआ पल वापिस आ सके : –

1. फरक्का बाँध से हुगली नदी के बहाव को बढ़ाना।
2. रेल यातायात को जमीन के नीचे विकसित करना.।
3. साल्ट लेक सिटी क्षेत्र को फिर से शहर के विकास के लिये विकसित करना।
4. हलदिया बन्दरगाह को व्यापार के लिये विकसित करना।
5. दामोदर घाटी निगम की बिजली की क्षमता को बढ़ाना।

II. बंगलौर–तमिलनाडू प्रदेश

मदुराई–कोयम्बतूर –बंगलौर औद्योगिक क्षेत्र भी कपास उत्पादक क्षेत्र हैं। अत: यहाँ भी सूती कपड़ा उद्योग केन्द्र हैं। इस क्षेत्र को विकसित करने वाले अन्य कारक हैं : –

बड़ा स्वदेशी बाजार, सस्ते एवं निपुण मजदूर की उपलब्धता, अच्छी जलवायु एवं पइकारा, मैटूर, शिवसमुद्रम, पापानासाम एवं शेरावती परियाजनाओं से नियमित एवं सस्ती जल विद्युत उपलब्ध होना मुख्य है। यहाँ चैन्नई, बैंगलूर, कोयम्बतूर, मुदराई, शिवकाशी, मैसूर, तिरुचिरापल्ली, सेलम, मण्डया, भद्रवती एवं मेटटूर महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र है। चेन्नई में सूती कपड़ा, वनस्पति तेल एवं चमड़े से बने सामान का उत्पादन होता है। कोयम्बतूर में सूती कपड़ा उद्योग केन्द्रित हैं। यहाँ से मदुराई के हाथकरघा सूती उद्योग को सूती धागा भी आपूर्ति होती है। इसके अलावा कोयम्बतूर में काफी संसाधन इकाई, तेल की मिलें, सीमेन्ट के कारखानें एवं चमड़े का सामान बनाने की इकाई भी स्थापित हैं। बैगंलौर में सूती, रेशम एवं ऊनी कपड़ा उद्योग स्थापित है। यहाँ पर कई पब्लिक सेक्टर इकाईयाँ जैसे कि हिन्दुस्तान एइरोनांटिक्स (Aeronotics), हिन्दुस्तान मशीन उपकरण (HMT), हिन्दुस्तान दूरभाष उद्योग (Indian Teliphone Industry), भारत इलेक्ट्रोनिक्स (Bharat Elecronics), एवं विश्वेशवरईया लौह एवं इस्पात उद्योग भी केन्द्रित हैं। यह शहर भारत की सिलिकॉन घाटी (Silicon Valley) के नाम से भी विकसित हो रहा है जो कि इलेक्ट्रानिक्स एवं सूचना तकनीक (Electronics and Information technology) की इकाईयों का केन्द्र है। इस औद्योगिक क्षेत्र में भी उद्योगों में विविधिकरण प्रतीत होता है। विविध प्रकार के कपड़ा उद्योग, चीनी, चमड़ा, रसायन, पेपर, अभियान्त्रिकी, वैद्युत यन्त्र, रबर, माचिस बनाने और इलेक्ट्रानिक्स उद्योग यहाँ स्थापित हैं। 57 प्रतिशत औद्योगिक मजदूर सूती कपड़ा उद्योग में

कार्यरत हैं। इसके बाद 16 प्रतिशत अभियान्त्रिकी में 10 प्रतिशत खाद्य संसाधन रख 5 प्रतिशत रसायन में।

III. गुजरात प्रदेश

यह देश का तीसरा औद्योगिक क्षेत्र है। वर्तमान में यह क्षेत्र तीव्र गति से विकसित हो रहा है। अहमदाबाद के उत्तर में महेसाना से लेकर बडौदरा के दक्षिण में सूरत तक यह क्षेत्र विकसित है। गुजरात मैदान के कपास उगाने वाले क्षेत्रों से निकटता के कारण और मुम्बई से सूती कपड़ा उद्योग का बिखराव (Dispersal) इस क्षेत्र के औद्योगिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण कारक हैं। इसके अलावा अन्य कारक निम्मलिखित हैं : –

1. सस्ती जमीन की उपलब्धता
2. सस्ता एवं निपुण मजदूर
3. बन्दरगाह की सुविधा,
4. विकसित रेल एवं सड़क यातायात,
5. बिजली की आपूर्ति – उकई जल–विद्युत परियोजना, द्रवरन कोयल बिजली घर, आरन गैस बिजली घर एवं काकरापारा अणु बिजली घर।

खम्भात की खाड़ी से पेट्रोलियम के उत्पादन के कारण बडौदरा एवं अंकलेश्वर में पेट्रो रसायन समूह के उद्योग विकसित हो गये हैं। कांधला बन्दरगाह के मुक्त व्यापार क्षेत्र के कारण यह औद्योगिक क्षेत्र विकसित हुआ। यहाँ करीब 10,000 पंजीकृत इकाईयां है। अहमदाबाद इस क्षेत्र का सबसे बड़ा औद्योगिक शहर हैं जहाँ पर क्षेत्र की 25 प्रतिशत औद्योगिक इकाईयों विकसित है। देश का यह दूसरा सबसे बड़ा सूती कपड़ा उद्योग का केन्द्र है। इस उद्योग के अलावा रसायन अभियान्त्रिकी एवं भेषजीय उद्योग भी यहाँ पर विकसित है।

इस क्षेत्र का दूसरा बड़ा शहर सूरत है। यह शहर रेशम के कपड़े एवं हीरा काटने के लिये प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में 16 प्रतिशत औद्यौगिक इकाईयाँ सूरत में केन्द्रित है। बडौदरा, खेड़ा, कलोल, नडियाद, भरूच, नवसारी, अंकलेश्वर, आनन्द एवं कोयली अन्य प्रमुख केन्द्र हैं जहाँ पर कपड़ा, रसायन, पेट्रो रसायन, अभियान्त्रिकी, रेयान, माचिस, भेषजिक, ऊनी कपडा, पेट्रोलियम शोधन, कुम्हारी, पेंट इत्यादि उद्योग विकसित हैं। इस क्षेत्र की प्रमुख विशेषता रसायन एवं उसके सहबद्ध उद्योगों एकत्रित होना है। परिणामस्वरूप यह क्षेत्र देश के सबसे बड़े पेट्रो–कॉम्प्लेक्स के रूप में उभर कर आ रहा है।

तटीय पश्चिम गुजरात में एक नया औद्योगिक क्षेत्र विकसित हो रहा है, जहाँ पर जामनगर,, पोरबन्दर, भुज एवं भावनगर इत्यादि केन्द्र विकसित हो रहे है।

IV. छोटा नागपुर प्रदेश

यह क्षेत्र झारखण्ड, बिहार एवं पश्चिम बंगाल राज्यों में विस्तृत हैं। इस क्षेत्र के विकसित होने प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं : –

1. दामोदर घाटी के कोयला क्षेत्र,
2. लौह अयस्क, अभ्रक, तांबा, मैंगनीज एवं चूनापत्थर की स्थानीय उपलब्धता,
3. दामोदर घाटी निगम से बिजली की उपलब्धता,
4. बिहार, पूर्वी उत्तरप्रदेश एवं उड़ीसा से सस्ते मजदूर की उपलब्धता।

इस क्षेत्र में प्रमुखतः खनिज पर आधारित भारी उद्योग स्थापित हैं। लोहा एवं इस्पात उद्योग जमशेदपुर, दुर्गापुर, आसनसोल, बोकारो, कुल्टी, बर्नपुर में स्थित है। सिन्दरी में उर्वरक उद्योग, रेल इंजन, चितरन्तन में, रामगढ़ एवं भूरकुण्डा में काँच उद्योग, खालारी में सीमेन्ट की इकाईयां है। धातुकर्मीय एवं भारी उद्योग में 47 प्रतिशत, अभियान्त्रिकी में 19 प्रतिशत, खाद्य संसाधन में 10 प्रतिशत एवं रासायनिक उद्योग में 7 प्रतिशत श्रमिक समूह लगे हैं। कागज, माचिस, कांच, सीमेन्ट, फर्नीचर एवं परतदार लकड़ी यहाँ के अन्य प्रमुख उद्योग हैं। उद्योगों की बीमारी, बिजली की कमी, राज्यों का पुनः संगठन, राजनैतिक, उथलपुथल इस औद्योगिक क्षेत्र की प्रमुख समस्यायें हैं।

V. विशाखापट्टनम – गुंटूर प्रदेश

यह औद्योगिक प्रदेश विशाखापट्टनम जिले से लेकर दक्षिण में कुर्नूल और प्रकाशम जिलों तक फ़ैला है। इस प्रदेश का अगैद्योगिक विकास मुख्यत : विशाखापट्टनम और मछलीपत्तनम के बन्दरगाहों और इनके पृष्ठ प्रदेश की विकासित कृषि तथा खनिजों के विशाल भंडार पर आश्रित है। गोदावरी घाटी के कोयला क्षेत्र इस प्रदेश को शक्ति और ऊर्जा प्रदान करते हैं। सन् 1941 में विशाखापट्टनम में जलयान निर्माण उद्योग लगाया गया था। यही आयातित कच्चे तेल पर आधारित पैट्रोलियम शुद्धिशाला स्थापित की गई तथा इसने अनेक पेट्रोरसायन उद्योगों को जन्म दिया है। इस प्रदेश के प्रमुख उद्योग चीनी, वस्त्र, जूट, कागज, उर्वरक, सीमेन्ट, ऐलूमीनियम और इंजीनियरी के हल्के सामान है। गुंटूर जिले में एक सीसा–जस्ता प्रगलन संयंत्र भी चालू है। विशाखापट्टनम में स्थित लोहे और इस्पात का कारखाना बैलाड़िला के लोह –अयस्क का उपयोग करता है। इस प्रकार यहाँ खानिज, वन तथा कृषिगत वस्तुओं पर आधारित उद्योग विकसित हुए हैं। इस प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक केन्द्र विशाखापट्टनम, विजयनगर, राजासुन्दरी, गुंटूर, एलुरु और कुर्नुल है।

VI. गुड़गाँव – मेरठ प्रदेश

इस क्षेत्र का विकास दिल्ली की निकटता के कारण हुआ है। विकास के दृष्टिकोण से इसका विकास स्वतन्त्रता के पश्चात् हुआ। राजधानी की निकटता के अलावा इस क्षेत्र के विकास के दूसरे कारण निम्नलिखित हैं : –

1. कच्चे माल जैसे कि गन्ना, कपास, गेहूँ इत्यादि की उपलब्धता।
2. फरीदाबाद एवं कोयला बिजली घर और भाखड़ा नांगल एवं यमुना जल विद्युत परियोजना से बिजली कीं उपलब्धता।
3. बाजार की उपलब्धता

दिल्ली को केन्द्र मानकर यह क्षेत्र दो भागों में विस्तृत है।

1. उत्तर–दक्षिण दिशा में फरीदाबाद एवं अम्बाला (हरियाणा) के बीच और
2. मथुरा–सहारनपुर (उत्तरप्रदेश) क्षेत्र जो कि दिल्ली के दक्षिण में बसा है।

अभियान्त्रिकी विद्युत, रसायन, काँच, कपड़ा एवं उपभोक्ता उद्योग यहाँ पर प्रमुखत' पाये जाते हैं। मोदीनगर में कपड़ा, साबुन एवं अभियान्त्रिकी, गाजियाबाद में कृत्रिम धागा, रसायन, विद्युत उपकरण, भेषजिक, कृषि उपकरण, साइकल के टायर एवं ट्यूब, शाहदरा में होजरी, मोदीपुरम् में

मोटरकार टायर, फरीदाबाद में अभियान्त्रिकी, फिरोजाबाद में काँच, गुड़गाँव में मोटरकार, मुद्रानगर में अध्यादेश कारखाना, मेरठ में चीनी एवं मद्य निर्माणशाला, मोहननगर में पेय एवं मदिरा एवं मथुरा की तेल परिष्कृत अन्य प्रमुख औद्योगिक नगर है। यहाँ का दूसरा प्रमुख केन्द्र नोएडा उभर का आ रहा है।

इस क्षेत्र की मुख्य समस्या कोयला, भूतेल एवं अन्य खनिज पदार्थों का दूर क्षेत्रों से प्राप्त करना है।

VII.कोल्लम –तिरुवनन्तपुरम प्रदेश

इस प्रदेश का विस्तार तिरुवनन्तपुरम, कोल्लम, अलप्पूजा, एर्नाकुलम और एत्वाय जिलों में है। यह क्षेत्र खनिजों से दूर है। इप कारण यहाँ भी बाजारोन्मुख हल्के उद्योग स्थापित किए गए हैं। दक्षिणी सह्याद्रि में विकसित जलविद्युत तथा रोपण कृषि ने इस प्रदेश को औद्योगिक आधार प्रदान किया है। इस प्रदेश के मुख्य उद्योग सूती वस्त्र, चीनी, रबड़, –माचिस, कांच, रासायनिक उर्वरक और मछली आधारित उद्योग हैं। इनके अलावा खाद्य प्रसंस्करण, कागज, नारियल रेशे के उत्पाद, ऐलूमीनियम और सीमेंट उद्योग भी उल्लेखनीय हैं। कोच्चि में पेट्रोलियम शुद्धिशाला कार्यरत है। इसने इस प्रदेश के उद्योगों में एक नया आयाम जोड़ दिया है। इस प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक केंद्र कोल्लम् तिरूवनन्तपुरम, एल्वाए, कोच्चि और अलप्पुजा हैं।

गौण औद्योगिक प्रदेश

उपर्युक्त आठ औद्योगिक प्रदेशों के अलावा ग्यारह ऐसे क्षेत्र हैं –जहाँ फैक्टरी श्रमिकों की औसत संख्या 25 हजार से एक लाख के मध्य हैं। ऐसे जिलों के समूहों को लघु औद्योगिक प्रदेश कहा गया है।

(1) **अम्बाला– अमृतसर औद्योगिक क्षेत्र –** यह पंजाब –हरियाणा का प्रथम औद्योगिक क्षेत्र है। यहाँ ऊनी वस्त्र उद्योग एवं होजरी उद्योग सबसे प्रमुख हैं। ऊन और ऊनी वस्त्र के लिँए यह प्रसिद्ध क्षेत्र है। भारी एवं हल्के इंजीनियरिंग उद्योग, विधुत मोटर, पंपिंग सेट, इस्पात की विभिन्न वस्तुयें, भारी मशीन टूल्स, लेथ मशीन, ग्राइंडर, सिलाई की मशीनें, साइकिल, ट्रेक्टर अन्य कृषि उपकरण, कीटनाशक दवाइयों, रासायनिक उर्वरक, वनस्पति घी, शक्कर, शराब, सूती, रेशमी और कृत्रिम रेशे के वस्त्रों के कारखाने लगाये गये हैं। औद्योगिक केन्द्रों में अमृतसर, लुधियाना, जालंधर, होशियारपुर, नहान, बटाला, जगाधारी, गुरुदासपुर, धारीवाल, पटियाला, फगवाड़ा, नंगल और अंबाला मुख्य हैं।

(2) **सहारनुपर–मुजफ्फरनगर–बिजनौर –** इस विकासशील क्षेत्र का आधार कृषि है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में यह शक्कर उद्योग का प्रमुख क्षेत्र है। शक्कर उद्योग के अलावा सूती वस्त्र उद्योग, रेशमी वस्त्र उद्योग, ऊन से वस्तुयें बनाने के उद्योग, कागज, भारी यंत्र एवं मशीनरी उद्योग, हल्के इंजीनियरी उद्योग, रासायनिक उद्योग, काँच उद्योग आदि भी विकसित हैं। हरिद्वार में भारी बिजली के सामान तथा दवाई बनाने तथा रुड़की में इंजीनियरी उद्योग केन्द्रित हैं।

(3) **इंदौर–उज्जैन क्षेत्र –** मालवा के कृषि–संपन्न क्षेत्र में स्थित इस औद्योगिक प्रदेश का आधार भी कृषि है। कपास की सुविधा, बाजार तथा श्रमिकों की उपलब्धि के कारण यहाँ सूती वस्त्र उद्योग का केन्द्रीकरण हुआ है। इस पेटी में ऊनी, सिल्क तथा कृत्रिम रेशे के वस्त्र उद्योग, वनस्पति घी, बियर मिनी स्टील प्लाट, बिजली के सामान, इलेक्ट्रानिक्स, इर्जीनियीरंग

उद्योग, वाहन उद्योग, सोयाबीन से तेल बनाने का उद्योग, रसायन तथा दवाई उद्योग भी विकसित हैं।

(4) **जयपुर– अजमेर क्षेत्र –** इस क्षेत्र में औद्योगिक विकास अपेक्षया नवीन है। इस क्षेत्र का उत्तर भारत के विकसित क्षेत्र से घनिष्ठ संबंध हैं। इस भाग में कृषि उपजों, खनिजों और पशुधन पर आधारित उद्योग लगाये गये हैं। इनमें सूती वस्त्र, सीमेंट, नमक, ताँबा और काँसे की वस्तुयें बनाने, इंजीनियरी उद्योग तथा बिजली के सामान बनाने का भी उद्योग काफी विकसित है। औद्योगिक केन्द्रों में जयपुर और अजमेर के अलावा ब्यावर, किशनगढ़, सांभर और अम्बेर भी उल्लेखनीय हैं। जयपुर में रेलवे का वर्कशाप भी है।

(5) **कोल्हापुर –दक्षिण कनाडा क्षेत्र –** इस क्षेत्र का विस्तार उत्तर में बेलगाँव से लेकर धारवाड़, शिमोगा और दक्षिण कनाडा तक फैला है। उत्तर में महाराष्ट्र का कोल्हापुर भी इसी से जुड़ा है। यह क्षेत्र खनिजों में काफी सम्पन्न है तथा जल विद्युत उपलब्ध है। शिमोगा के भद्रावती स्थान पर लोहा–इस्पात का कारखाना है। यही फेरो–मैगनीज, फेरो–सिक्किन, सीमेंट आदि के भी कारखाने स्थापित किये गये हैं। ऐलुमीनियम, सूती वस्त्र उद्योग, चावल सल कना, शक्कर उद्योग रासायनिक उद्योग तथा हल्का इंजीनियरी उद्योग भी इस क्षेत्र में केन्द्रित है। कागज उद्योग, चमड़ा पकाने का पदार्थ बनाने तथा दियासलाई उद्योग भी स्थापित किये गये हैं। इनके अतिरिक्त मछली से तेल निकालने का भी कम होता है। मंगलौर में रासायनिक उर्वरक, विद्युत तथा परिवहन उपकरण उद्योग, कागज उद्योग तथा काजू और कहवा पुरस्सरन उद्योग स्थापित किये गये हैं।

(6) **उत्तरी मलाबार तटीय क्षेत्र –** केरल के उत्तरी जिले कन्नानोर, कण्णूर तथा कोझीकोड में विकसित उद्योग कृषि तथा वनों पर आधारित हैं। इनमें सूती वस्त्र, नारियल पर आधारित उद्योग, कहवा पुरस्सरन, लकड़ी चीरना, कागज तथा प्लाइबुड, साबुन बनाना मुख्य हैं। मत्मोद्योग तथा उन पर आधारित उद्योग भी विकसित हैं।

(7) **मध्य मलाबार क्षेत्र –** त्रिचूर और एर्नाकुलम जिलों में उद्योगों का तेजी से विकास हु आ है। उल्लेखनीय प्रगति कोच्चि में पेट्रोलियम शोधक कारखाना की स्थापना (सन् 1966) है। फलत : यहाँ अनेक पेट्रोरसायन उद्योग भी विकसित हो गये हैं। इनमें रासायनिक उर्वरक तथा कृत्रिम रेशे के वस्त्र उद्योग उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा यहाँ ऐलूमीनियम, जहाज निर्माण, कागज, सीमेंट, मत्स्य, कई रासायनिक तथा हल्के इंजीनियरी उद्योग, काँच, काजू तथा नारियल पर आधारित उद्योग भी विकसित है!

(8) **आदिलाबाद–निजामावाद क्षेत्र –** यह क्षेत्र उत्तरी आध्र प्रदेश में स्थित गोदावरी घाटी में स्थित है। इस राज्य के कोयला क्षेत्र का पश्चिमी भाग इसी क्षेत्र में स्थित है जिससे यहाँ भारी उद्योगों की स्थापना में मदद मिली है। यहाँ सीमेंट, रासायनिक उर्वरक उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, शक्कर उद्योग, कागज उद्योग के साथ ही रासायनिक तथा इंजीनियरी उद्योग भी स्थापित है

(9) **इलाहाबाद–वाराणसी –सोनभद्र क्षेत्र –** पश्चिम में इलाहाबाद से लेकर पूर्व में बनारस, मिर्जापुर और दक्षिण में सोनभद्र तक एक औद्योगिक पेटी विकसित हो रही है। उत्तरी भाग में सूती वस्त्र तथा करघा उद्योग. सिल्क (वाराणसी), ऊनी कालीन (भदोही, वाराणसी, मिर्जापुर), शक्कर, रसायन, विद्युत इंजीनियरी तथा उपभोक्ता वस्तुयें बनाने वाले उद्योग मुख्य हैं।

इनमें महुआडीह का डीजल इंजन, साक्षर का रसायन उद्योग 'और समनगर (सभी वाराणसी के समीप) का काँच उद्योग उल्लेखनीय हैं। इलाहाबाद में वायुयान सुधारने का भी उद्योग है। सोनभद्र क्षेत्र में रेनुकूट का ऐलुमीनियम और चुर्क का सीमेंट कारखाना प्रमुख हैं।

(10) **भोजपुर –मुंगेर क्षेत्र –** यह क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार में फैले गन्ना उत्पादन क्षेत्र का भाग है। यहाँ शक्कर, सूती वस्त्र बनाने का शक्तिचालित करघा उद्योग मुख्य हैं। बरौनी का पेट्रोलियम शोधक कारखाना (क्षमता 60 लाख टन) इसी भाग में है। इससे प्राप्त कच्चे माल पर पेट्रोरसायन उद्योगों का सकुल विकसित हुआ है। डालमिया नगर में खनिज, वन और कृषि से प्राप्त कच्चे मालों पर उद्योगों का रूस सकुल विकसित हुआ है। प्रदेश के अन्य उद्योगों में इंजीनियरी, अल्कोहला और काँच पर आधारित उद्योग भी उल्लेखनीय हैं। अमालपुर में रेलवे का वर्कशाप है।

(11) **ब्रहमपुत्र घाटी क्षेत्र –** इस क्षेत्र का विस्तार ऊपरी आसाम घाटी में डिबूगढ और शिवसागर जिलों में है तथा पश्चिम में दारंग जिलें में भी बढ़ रहा है। इस भाग में कृषि उपजा ओर खनिजो पर आधारित उद्योग विकसित हुए हैं। राज्य के चौथाई चाय तैयार करने के कारखाने लखीमपुर, शिवसागर और दारंग जिले में ही केन्द्रित है। यह पेट्रोलियम अग्रणी है। डिगबोई में देश का पहिला शौधन कारखाना (सन् 1893) स्थापित किया गया था। अब यहीं उस पर पेट्रोरसायन उद्योग भी विकसित हो गए हैं। इसके अलावा उर्वरक बनाने, ऐलुमीनियम के बर्तन बनाने का उद्योग भी हैं।

बोध प्रश्न – 3

1. औद्योगिक प्रदेश निर्धारित करने के मुख्य मापदण्ड कौन से है ?

   ....

   ....

2. भारत के प्रथम तीन औद्योगिक प्रदेशों के नाम बताइए।

   ....

   ....

3. भारी धात्विक उद्योग के लिए कौन सा औद्योगिक प्रदेश जाना जाता है ?

   ....

   ....

4. दक्षिण भारत के किस शहर को सिलिकाँन घाटी कहा जाता है?

   ....

   ....

5. ब्रहापुत्र घाटी लघु औद्योगिक प्रदेश के किस प्रकार के उद्योग विकसित हुए हैं?

   ....

   ....

12.8 सारांश (Summary)

भारत में आधुनिक फैक्टरी उद्योग का विकास का आरम्भ सर 1854 में सूती वस्त्र की मिल की स्थापना के साथ माना जा सकता है। इस तरह इसका इतिहास लगभग 160 वर्ष का है। सन् 1950 के पूर्व भारत में लोहा –इस्पात, सूती वस्त्र, जूट, शक्कर, कागज, सीमेन्ट, चमड़ा, साबुन आदि वस्तुओं के उद्योग स्थापित थे, लेकिन इनके विकास की गति मन्द थी। स्वतत्रता के बाद व्यवस्थित औद्योगिक विकास के लिए नीतियों तैयार की गई। उद्योगों को आर्थिक मदद देने के लिए कई सस्थाए स्थापित की गईं। वर्ष 1991 की उदारवादी नीति का उद्योगों की स्थापना, सरचना एवं वितरण में काफी परिवर्तन हुआ। सुरक्षा, सामरिक और पर्यावरण की दृष्टि से संवेदनशील उद्योगों की सूची में शामिल छ : उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं को लिये लाइसेंस की अनिवार्यता समापत कर दी गई है। सार्वजनिक क्षेत्रों के लिए सुरक्षित उद्योगों का निजीकरण किया जाने लगा। फलत उपभोक्ता उद्योगों के अलावा आधारभूत उद्योग, इंजीनियरिंग उद्योग, वस्त्र, दवाइयाँ, रसायन, मशीने एवं उपकरण, परिवहन उपकरण, इलेक्ट्रानिक उद्योग आदि के विकास के कारण औद्योगीकरण में विविधता आई है।

राजनीतियों एवं प्रयत्नों के फलस्वरूप देश के औद्योगिक सरचना का विस्तार हुआ तथा उसमें विविधता आई। स्थापित उद्योगों में कारखाने लगाये गये तथा अनेकों नवीन उद्योग प्रारभ किये गये। इस प्रकार औद्योगिक संस्थानों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। सन् 1951 में लोहा –इस्पात के केवल दो बड़े कारखाने थे, अब ऐसे आठ बड़े कारखाने हैं। इनसे उत्पादित इस्पात के कारण इंजीनियरिंग उद्योगों की वस्तुओं में आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकी है। नये स्थापित उद्योगों में कृषि के उपयोग आने वाले,इलेक्ट्रानिक और उर्वरक उद्योगों का अस्तित्व सन् 1051 के पूर्व नहीं था, परतु इसके बाद इन उद्योगों ने इतनी प्रगति की आयात न्यूनतम हो गया। औषधि बनाने वाले कारखाने काम कर रहे हैं। मशीन बनाने वाले उद्योगों ने भी सराहनीय प्रगति इंजीनियीरंग उद्योग देश की शक्ति उत्पन्न करने वाले उपस्कर (उपकरण), रेलवे उपकरण, सड़क पीरवहन के उपकरण उपकरणों की माँग को पूरा करने सकते हैं देश में शक्कर और सीमेंट उद्योगिक में लगने वाली मशीनों, पावर बायलर को चलाने वाली मशीनों तथा अनेकों उपभोक्ता की वस्तुओं बनाने वाले उद्योगों में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली गई श्रमिकों के आधार पर आज देश में 8 प्रमुख औद्योगिक प्रदेश, 13 गौण औद्योगिक प्रदेश तथा 14 औद्योगिक प्रदेश है।

12.9 शब्दावली (Glossary)

वे उद्योग जो देश की सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, जैसे कि रक्षा, नोटों को छापना, सैनिक आयुद्ध

उद्योग जो इरे उद्योगों के विकास के लिये महत्वपूर्ण होते हैं, जैसे कि लोहे एवं इस्पात उद्योग, रसायन

उद्योग जो कि निजी रूप से स्थापित होते हैं और उनके मूल्यों के नियन्त्रिण में साकार की कोई भूमिका के लिए कुटीर एवं ग्रामीण उद्योग ।

उद्योग जिसमें लागत उनके उत्पाद से अधिक हो तथा वह या तो हानि में चल रहे हो अथवा बहुत हैं

जिनमें विकास की क्षमता अत्यधिक है एव वह हमारी जरूरतों की आपूर्ति करती है, उदाहरण

- **औद्योगिक समूह :** जिस क्षेत्र में एक तरह के उद्योग विकसित होते हैं उदाहरण के लिये सेलम तमिलनाडू में स्टील।
- **औद्योगिक प्रदेश.** जिस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के उद्योग सकेन्द्रित हों।

12.10 संदर्भ (Reference Books)

1. Choudhary, M.R. (1975) **The Lron and Steel Industry of India.** Calcutta: Oxford & IBH Publishing Co.
2. Gadgil D.R. (1972) **The Industrial Evolution of India in Recent Times** (1860–1939). Oxford University Press.
3. Karan, P.P. (1958) The Areal Distribution of Manufacturing in India, **Jour. Of Geog**. 57,294–300.
4. Karan, P.P. (1964) Change in Indian Industrial, **Ann. Asso. Am. Geogr.** 54, 336–354.
5. Karan, P.P. and W.M. Jankins (1956) Geogaphy of Manufacturing in India, **Eco. Geog.** 35,269–278.
6. Rao, B.s. (1957) **Surveys of India Industries**, Vols 1 and 2. London Oxford University Press.
7. Sharam, T.N. (1964) **Location of Industries in India.** Bombay Hind Kitabs Ltd.
8. Sharam, T.R. and S.D.S. Chouhan (1977) **Indian Industries**. Agra: Shiv Lala and co.
9. Singh, B.N. (1985) **Indistrial Development in Indian - A Geographical Analysis.** Varanasi: Lotus Publications.
10. Singh, M.B. (1972) **Indistrial Geography of India**. Calcutta: The World Press Ltd.
11. श्रीकमल शर्मा, सम्पादक, (2004) **भारत का भूगोल**, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल,.
12. कुमार, प्रमीला एवं श्रीकमल शर्मा (1997) **औद्योगिक भूगोल**, मध्यप्रदेष हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल

12.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. भारत में आधुनिक किस्म का कारखाना मुम्बई में 1854 में स्थापित किया गया।
2. सन् 1956 की औद्योगिक नीति में उद्योगों को दो वर्गों में रखा गया। 'अ' वर्ग में सामरिक महत्व एवं आधारभूत उद्योग रखे गए जिनके विकास की जिम्मेवारी सरकार की

रखी गई। वर्ग 'ब' के उद्योगों का विकास सरकार तथा निजी क्षेत्र के सहयोग से किया जाना था।

3. उदारीकरण के प्रमुख उपाय ये हैं – (1) औद्योगिक लाइसेसों की समाप्ति, (2) विदेशी प्रौद्योगिकी का स्वतंत्र प्रवेश, (3) प्रत्यक्ष विदेश निवेश नीति, (4) पूँजी बाजार की सुलभता, (5) मुक्त बाजार, (6) चरणबद्ध विनिर्माण कार्यक्रमों की समाप्ति और (7) औद्योगिक स्थानीकरण कार्यक्रमों में उदारता।
4. तीसरी पंचवर्षीय योजना काल में।
5. व्यापार एवं कर सामान्य समझौत नीति सर 1994 में लागू हुई।

बोध प्रश्न – 2

1. स्वतंत्रता के समय स्वतंत्र भारत में 407 सूती वस्त्र की मिले थी।
2. भारत में सूती वस्त्र की स्थापना एवं विकास के तीन कारण थे – (i) भारत में परम्परागत में यह उद्योग प्रचलित था, अस्तु इसकी कुशलता प्राप्त थीं। (ii) देश में कपास का उत्पादन होता हैं, अत : कच्चेमाल की सुविधा थी, और (iii) भारतीय गर्म वातावरण में सूती कपड़ का विस्तृत बाजार प्राप्त है।
3. टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी जमशेदपुर।
4. वर्तमान कर्नाटक राज्य के भद्रावती स्थान पर पर सन् 1923 मे स्थापित किया गया।
5. सन् 2006–07 में शक्कर का उत्पादन 282 लाख था।
6. महाराष्ट्र से।

बोध प्रश्न – 3

1. औद्योगिक प्रदेश निर्धारित करने के –मुख्य मापदण्ड हैं : – (1) औद्योगिक इकाइयों की संख्या (2) औद्योगिक श्रमिकों की संख्या, (3) औद्योगिक प्रक्रिया में उपयोग में लाई गई ऊर्जा की मात्रा, (4) कुल उत्पादन, तथा (5) विनिर्माण द्वारा वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि।
2. प्रथम तीन औद्योगिक प्रदेश हैं (1) मुम्बई –पुणे प्रदेश, (2) हुगली प्रदेश, (3) बंगलौर – तमिलनाडू प्रदेश।
3. भारी धात्विक उद्योगों के लिए छॉटा नागपुर औद्योगिक प्रदेश जाना जाता है।
4. बंगलौर को।।
5. यहाँ कृषि उपजों तथा खनिजों पर आधारित उद्योग विकसित हुए हैं।

12.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत की औद्योगिक नीति के परिपेक्ष्य में पंचवर्षीय योजना काल के औद्योगिक विकास की कीजिए।
2. भारत के सूती वस्त्र उद्योग के विकास, स्थानीकरण एवं वितरण का विवरण कीजिए।
3. स्थानीकरण के कारकों के सन्दर्भ में भारत के लोहा–इस्पात उद्योग के वितरण की समीक्षा कीजिए।
4. शक्कर उद्योग का वितरण बताइए तथा समझाइए कि यह गन्ने के क्षेत्रों में ही क्यों केन्द्रित हैं?

5. भारत को औद्योगिक प्रदेशों में विभाजित कीजिए तथा उनमें से किन्हीं दो वृहद् औद्योगिक प्रदेशों के संसाधन–आधार, संभावनाओं तथा समस्याओं का विवरण दीजिए।

इकाई13: परिवहन, संचार तंत्र एवं व्यापार (Transport, Communication system and Trade)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 रेल परिवहन

13.3 सडक परिवहन

13.4 वायु परिवहन

13.5 जल परिवहन

13.6 तेल एवं गैस पाइप लाइनें

13.7 संचार तंत्र

13.8 सूचना तकनीकी

13.9 विदेशी व्यापार

13.10 सारांश

13.11 संदर्भ पुस्तकें

13.12 बोध प्रश्न

13.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे : –

- भारत में परिवहन के विभिन्न साधन,
- रेल परिवहन का विकास एवं गुणात्मक सुधार,
- सड़क परिवहन का विकास एवं सड़क वर्गीकरण,
- वायु परिवहन का विकास एवं वायु सेवाएँ,
- जल परिवहन का महत्व एवं जल परिवहन का वर्गीकरण,
- तेल एवं गैस पाइप लाइनें,
- विदेशी व्यापार की संरचना में परिर्वतन।
- भारत में उभरता संचार तंत्र
- सूचना तकनीकी का अर्थव्यवस्था एवं–समाज पर प्रभाव।,

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

देश की समृद्धि के लिए कृषि, खनन और उद्‌योग अधिक महत्व रखते हैं, पस्तु उतना हीं महत्व परिवहन तथा संचार के साधनों का हैं, जिनके बिना व्यापार सम्भव नहीं हो सकता हैं। यदि कृषि और उद्‌योग को अर्थव्यवस्था की काया समझा जाये, तो परिवहन तथा संचार इसके नसें है। एकीकृत और समन्वित परिवहन एवं संचार तंत्र सामाजिक बूरियों, राजनीतिक विखण्डन और

आर्थिक अलगांव को कम करता है। यह समाज, प्रशासन, और अर्थव्यवस्था की अभिकेन्द्री शक्तियों को मजबूत करता है।

यातायात के साधनों का विकास का सीधा सम्बन्ध तकनीकी विकास से है। अस्तु अब परम्परागत साधनों का महत्व कम हो गया है। देश में आधुनिक यातायात के साधनों में रेल गाड़ी, मोटर गाड़ियाँ, जलयान तथा वयुयान महत्वपूर्ण हैं। तरल तथा गैस पदार्थे का पाइप द्वारा भी परिवहन होता है। इन परिवहन के साधनों का देश में वितरण एवं वृद्धि की चर्चा नीचे की जा रही है।

13.2 रेल परिवहन

रेल परिवहन यात्रियो और माल के आन्तरिक पीरवहन के लिए सस्ता साधन है। यह देशां के दूर –दूर क्षेत्रों से यात्रियों कों एक साथ 'ले आता है तथा वस्तुओं के उत्पादन के केन्द्रों से मांग के क्षेत्रों में वितरण को संभव बनाता है। विगत 156 वर्षो में रेल प्रमुख एकताकारी ताकत रही है। भारत में मुम्बई से थाने के मध्य 34 कि .मी. कि दूरी पर 16 अप्रेल 1853 को पहली रेल चली। मुम्बई – थाने रेल मार्ग को 1 मई 1854 को कल्याण तक एवं 12 मई 1856 को खोपोली ((Khopoli) तक बढ़ा दिया गया। कांदला– पुणे रेल मार्गे पर 14 जून 1858 को परिवहन प्रारम्भ हुआ। इसी दौरान 15 अगस्त 1854 को हावड़ा – हुगली रेल मार्ग प्रारम्भ हुआ। कानपुर – इलाहाबाद रेलमार्ग (1859), हावडा – खन्ना – राजमहल रेल मार्ग (1860), हावडा–दिल्ली रैल मार्ग (1866), कलकत्ता – मूम्बई रेल मार्ग (1870), मुगल सराय – लाहौर रेल मार्ग (पाकिस्तान) (1870), मुम्बई – चेन्नई रेल मार्ग (1871) प्रारम्भ हुए सन् 1853 से 1871 तक की 18 वर्ष की अवधि में भारत के सभी महत्वपूर्ण नगरों को रेल मार्ग से जोड़ दिया गया।

तालिका - 13.1 भारत में रेल परिवहन का विकास

वर्ष	रेलमार्ग की लम्बाई (किमी.)कुल			यात्री संख्या	माल ढुलाई	रेल इंजनों की सख्य		
	विद्युतिकृत	अविद्दितीकृत	कुल	(लाख)	लाख टन	स्टीम	डीजल	विद्युत
1950–51	388	53208	53596	12840	930	8120	17	72
1960–61	748	55499	56247	15940	1562	10312	181	131
1970–71	3706	56084	59790	24311	1965	9387	1169	602
1980–81	5345	55895	61240	36125	2200	7469	2403	1036
1990–91	9968	52399	62367	38576	3414	2915	3759	1743
2000–01	14856	48172	63028	48327	5042	54	4702	2810
2001–02	15994	47146	63140	50927	5222	53	4815	2871
2002–03	16272	46850	63122	49708	5187	52	4699	2930

Soure : India 2005: A Reference Annual . p . 675

31 मार्च 2007 तक रेलमार्गो की लम्बाई 63327 कि.मी. रही जिसमे बडी लाईन (1.676 मी.) 49820 कि.मी., मध्यम लाइन (1.0 मी) 10621 कि.मी. एवं छोटी लाइन (0.762 मी.) 2886 कि.मी. थी। 31 मार्च 2007 तक 6909 रेलवे स्टेशन, 8153 रेल इंजन एवं 4536० यात्री गाड़िया थी। वर्तमान मे भारत रेलमार्गो की लम्बाई की दृष्टि से एशिया महाद्वीप में द्वितीय एवं विश्व मे

संयुक्त राज्य अमेरिका (227736 कि. मी), रूस (222293 कि.मी) तथा चीन (87157 कि.मी) के उपरान्त चतुर्थ स्थान है।

प्रशासनिक व्यवस्था

15 अगस्त 1947 तक 42 रेलवे सिस्टम 37 कम्पनियो के माध्यम से संचालित किये जाते थे। स्वतंत्रता के उपरान्त सन् 1950 में रेलवे बोर्ड ने रेल परिवहन संचालन के लिए छ : क्षेत्रो का गठन किया – दक्षिणी क्षेत्र (9654 कि.मी), मध्यक्षेत्र (8689 कि.मी), पश्चिमी क्षेत्र (9122) ,उत्तरी क्षेत्र (9667 कि.मी), उतरी पूर्वी क्षेत्र (7726 कि.मी.) तथा पूर्वी क्षेत्र (9109 कि.मी)। पूर्वी क्षेत्र का विभाजन पूर्वी क्षेत्र (3775 कि.मी) एवं दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र (5374 कि.मी) मे किया गया। पुन : 15 जनवरी 1958 को उतरी पूर्वी क्षेत्र को उतरी पूर्वी सीमान्त क्षेत्र (2797 कि.मी) तथा उतरी पूर्वी क्षेत्र (4929 कि.मी) मे विभाजित किया गया। 2 अक्टूबर 1966 को दक्षिण–मध्य क्षेत्र (6072 कि.मी)का गठन किया। इन 9 रेलवे क्षेत्रो द्वारा तीन दशको तक प्रशासनिक व्यवस्था की गई। दो नये रेलवे क्षेत्र पूर्वी मध्य रेलवे क्षेत्र, हाजीपुर एवं उतरी पश्चिमी रेल्वे क्षेत्र जयपुर ने 1 अक्टूबर 2002 को कार्य करना प्रारम्भ किया। पांच नये रेलवे क्षेत्र : पूर्वी तटीय रेलवे क्षेत्र। भुवनेश्वर उतरी मध्य रेलवे क्षेत्र इलाहाबाद, दक्षिणी पूर्वी मध्य रेलवे क्षेत्र बिलासपुर, दक्षिणी पश्चिमी रेलवे क्षेत्र हुबली एवं पश्चिमी मध्य रेलवे क्षेत्र जबलपुर ने 1 अप्रेल 2003 को कार्य करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार प्रशासनिक दृष्टि से भारतीय रेल परिवहन को 16 रेलवे क्षेत्रों मे विभाजित किया गया।

तालिका – 13.2 भारत रेलवे जोन एवं मुख्यालय

	रेलवे जोन	**मुख्यालय**
1.	मध्य रेलवे क्षेत्र	मुम्बई सी स टी
2.	पूर्वी रेलवे क्षेत्र	कोलकाता
3.	उतरी रेलवे क्षेत्र	नई दिल्ली
4.	उतरी पूर्वी रेलवे क्षेत्र	गोरखपुर
5.	उतरी पूर्वी सीमान्त क्षेत्र	मालीगाँव (गुवाहाटी)
6.	दक्षिणी रेलवे क्षेत्र	चेन्नई
7.	दक्षिणी मध्य रेलवे क्षेत्र	सिकन्दराबाद
8.	दक्षिणी पूर्वी रेलवे क्षेत्र	कोलकाता
9.	पश्चिमी रेलवे क्षेत्र	चर्चगेट मुम्बई
10.	पूर्वी मध्य रेलवे क्षेत्र	हाजीपुर
11.	पूर्वी तटीय रेलवे क्षेत्र	भुवनेश्वर
12.	उत्तरी मध्य रेलवे क्षेत्र	इलाहाबाद
13.	उत्तरी पश्चिमी रेलवे क्षेत्र	जयपुर
14.	दक्षिणी पूर्वी मध्य रेलवे क्षेत्र	बिलासपुर
15.	दक्षिणी पश्चिमी रेलवे क्षेत्र	हुबली
16.	पश्चिमी मध्य रेलवे क्षेत्र	जबलपुर

गुणात्मक सुधार –

1. गेज परिवर्तन

गेज से तात्पर्य रेल्वे पटरियों के (आन्तरिक भाग) मध्य की दूरी से है। भारतीय रेलवे को गेज की द्वीष्ट से तीन वर्गो मे विभाजित किया गया है : (i) ब्रॉडगेज (1.675 मीटर) (ii) मीटर गेज (1.0 मीटर) (iii) नैरो गेज (0.762 मीटर एवं 0.610 मीटर)। अलग –अलग गेज के रेलमार्गो का निमार्ण ब्रिटिश काल की देन है। बन्दरगाह महानगरों को जोड़ने के लिए ब्रॉडगेज रेलमार्गो का निर्माण, मैदानी एवं पठारी भागों में मीटर गेज एवं पहाड़ी असमतल भागों में नैरो गेज रेलमार्गो का निर्माण किया गया। रेलमार्गो के गेज मे अन्तर के कारण यात्री एवं माल परिवहन मे समय, धन एवं ऊर्जा अधिक लगती है एवं परिवहन किये गये माल का नुकसान अधिक होता है अत : एक गेज वाले रेलमार्गो के निर्माण के द्वारा अधिक मात्रा में माल का परिवहन तीव्र गति एक सस्ती दर से किया जा सकता है। सन् 199 –92 में ब्रॉडगेज रेलमार्गो की लम्बाई 35109 कि.मी थी, जो सन् 2002–03 में बढ़कर 45622 कि.मी हो गई। 31 मार्च 2007 को ब्रॉडगेज रेलमार्ग की लम्बाई बढ़कर 49820 कि.मी हो गई।।

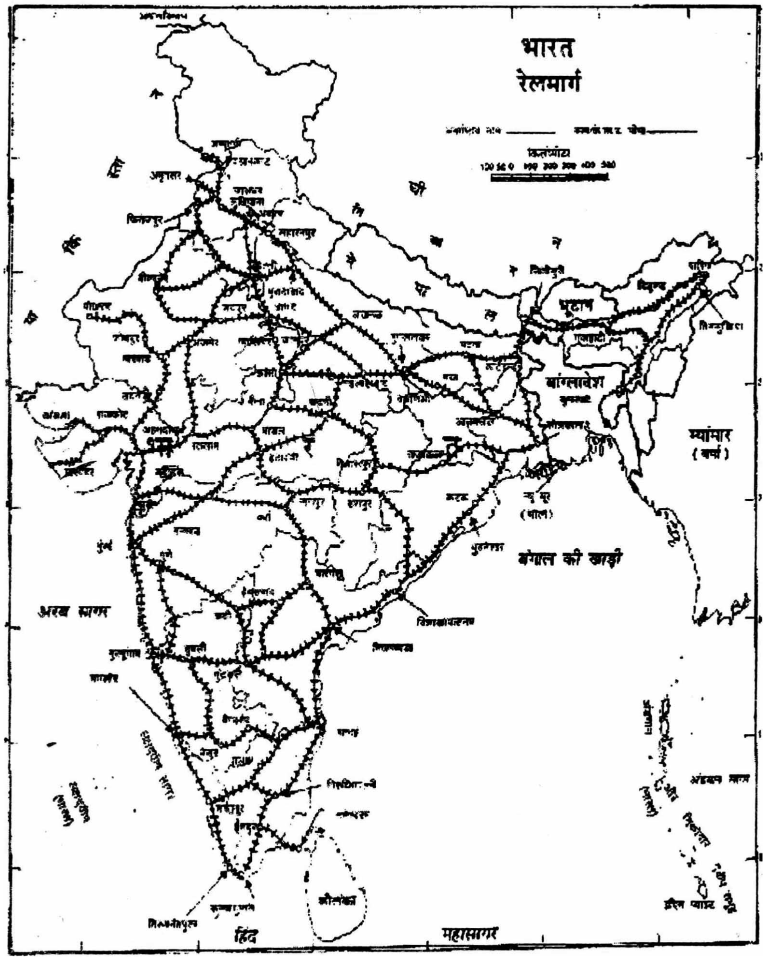

चित्र – 13.1 : भारत रेल मार्ग

2. रेल इंजन एवं रेल डिब्बो का आधुनिकीकरण

रेल इंजन एंव रेल डिब्बो में मात्रात्मक वृद्धि के साथ – साथ गुणात्मक सुधार भी हुआ है। सन् 1950–51 में 8120 वाष्प इंजन थे जो सन् 2002–03 में घटकर 52 रह गये। सन् 1950–51 में डीजल इंजन एवं विद्युत इंजन क्रमश: 17 एवं 72 थे जो सन् 2002–03 में बढ़कर क्रमश: 4699 एंव 2930 हो गये। वाष्प इंजन वायु प्रदषण अधिक करता है। डीजल इंजन वाष्प इंजन की अपेक्षाकृत कम वायु प्रदूषण करता है एवं विद्युत इंजन वायु प्रदूषण नही करता है, जिसके कारण से वाष्प इंजन का स्थान डीजल इंजन एवं विद्युत इंजन ले रहा है। चितरंजन लोकोमेटिव वर्क्स एंव डीजल लोको मेटिव वर्क्स वाराणसी में उन्नत श्रेणी के विद्युत एवं डीजल का निर्माण चल रहा है। यात्री डिब्बों को आरामदायक एवं सुविधाजनक बनाया जा रहा है। तृतीय श्रेणी डिब्बों को द्वितीय श्रेणी डिब्बों में परिवर्तित किया जा रहा है तथा द्वितीय श्रेणी डिब्बों को वातानुकुलित डिब्बों में परिवर्तित किया जा रहा है।

3. रेलमार्गो का विद्युतीकरण

भारत में सन् 1920 में रेलमार्गो का विद्युतीकरण प्रारम्भ हुआ। सन् 1925 में विक्टोरिया टर्मिनल–कुर्ला तथा विक्टोरिया टर्मिनल –बाद्रा रेलमार्ग का विद्युतीकरण हो गया। सन् 1950–51 में 388 कि.मी. रेल मार्ग विद्युतीकृत थे, जो सन् 2002–03 में बढ़कर 16272 कि.मी. हो गये।

4. अन्य सुधार

मुख्य रेलमार्गो पर ऑटोमेटिक सिग्रल प्रणाली को विकसित किया जा रहा है। भारी मालवाहक गाड़ियों के रेलमार्गो को मजबूत रेल पटरियों एवं कंक्रीट से निर्मित स्लीपरो के द्वारा निर्मित किया गया है। आरामदायक एवं तीव्रगति से यात्रा के लिए राजधानी एक्सप्रेस एवं शताब्दी एक्सप्रेस जैसी रेलगाडियो को चलाया जा रहा है।

रेल परिवहन का महत्व

1. रेल परिवहन लम्बी दूरी की यात्रा के लिए सस्ता एवं आरामदायक रहता है। सन् 1950–51 में 128.4 करोड़ यात्रियों ने यात्रा की जिनसे 98.2 करोड़ रूपये की आय हुई जो, सन् 2002–03 में बढ़कर 497.1 करोड यात्रियों ने यात्रा की, जिनसे 12575 करोड रूपये की आय हुई।
2. सन् 1950–517.32 करोड़ टन माल का परिवहन किया गया जो सन् 2003–04 में बढकर 55. 7 करोड़ टन हो गया।
3. रेल परिवहन उद्योगो के विकास में अहम् भूमिका अदा करता है। मुम्बई में वस्त्र उद्योग,कलकात्ता के निकटवर्ती क्षेत्रों में जूट उद्योग, झारखण्ड में कोयला उद्योग का विकास रेल परिवहन के माध्यम से ही सम्भव हो पाया है। रेल परिवहन के माध्यम से कच्चामाल एवं अन्य सुविधाएँ उद्योग केन्द्रों तक उपलब्ध करवा दी जाती हैं, वहीं तैयार माल मांग वाले क्षेत्रों तक पहुँचा दिया जाता है।
4. रेल परिवहन के माध्यम से वर्तमान में कृषक अपना माल मांग वाले क्षेत्रों में बेचकर उचित मूल्य ले सकता है।

5. रेल परिवहन शहरों एवं गाँवों के मध्य अलगाव को दूर करता है एवं नये विचारों तथा तकनीक के प्रसार में भूमिका अदा करता है।
6. रेल परिवहन लम्बी दूरी की यात्रा संभव बनाता है तथा राष्ट्रीय एकता को मजबूती प्रदान करता है।
7. प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, अकाल, भूकम्प आदि में राहत सामग्री पहुँचाने एंव नियंत्रण में विशेष योगदान देती है।
8. सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक उपद्रवो को निपटाने के लिए पुलिस, सैनिक दस्तो एवं सुरक्षा उपकरणों को रेल परिवहन के द्वारा आसानी से पहुँचाया जा सकता है।

13.3 सड़क परिवहन

देश की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है और आवास का ढाँचा ग्रामोन्मुख है, सड़क परिवहन आधारभूत संरचना का महत्वपूर्ण अंग है। उत्तम सडकें ईधन में किफायत प्राप्त करने और सड़क परिवहन क्षेत्र की समग्र उत्पादिता में उन्नति में सहायता देती हैं।

भारत में सड़क निर्माण में वास्तविक वृद्धि सल्तनत एवं मुगल काल से प्रारम्भ हुई। साम्राज्य को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए सड़कों का निर्माण किया गया'। शेरशाह सूरी ने पेशावर से कलकत्ता तक ग्राण्ड ट्रंक रोड का निर्माण किया। भारत में सन् 1950–51 में 4 लाख किमी. लम्बी सड़के थी जो सन् 2003–04 में बढ़कर 33 लाख किमी. हो गई। सन् 1950–51 में 6 अरब टन किमी. माल ढुलाई हुई एवं 23 अरब यात्रियों ने यात्रा की, वही सन् 2003–04 में 600 अरब टन किमी. माल ढुलाई हुई एवं 3135 अरब यात्रियों ने यात्रा की।

सड़कों का वर्गीकरण

निमार्ण एंव कार्यात्मक आधार पर सड़कों को पाँच वर्गो में विभाजित किया गया हैं –

1. **राष्ट्रीय राजमार्ग –** यह देश का प्रमुख सड़क तंत्र है। इसके निर्माण और मरम्मत की जिम्मेदारी सार्वजनिक निर्माण विभाग की है। सन् 1950–51 में राष्ट्रीय राजमार्ग की लम्बाई 19811 किमी. थी, जो सन् 2005 में 66754 किमी. हो गई। राष्ट्रीय राजमार्ग की लम्बाई सड़कों की कुल लम्बाई का 2 प्रतिशत है, लेकिन यातायात में इसकी भागीदारी 40 प्रतिशत है (तालिका 13.3)।

तालिका – 13.3 : भारत में विभिन्न प्रकार की सड़कें – 2005

सड़क का मार्ग	**लम्बाई कि.मी.**
राष्ट्रीय मार्ग	662, 754
राजकीय मार्ग	1,28,000
जिला की सड़कें	4,70,000
ग्रामीण तथा अन्य	26,50,000
सभी प्रकार की सड़कें	33,14,754

ऐतिहासिक महत्व का शेरशाह सूरी मार्ग राष्ट्रीय राजमार्ग – 1 के नाम से जाना जाता है जो दिल्ली – अमृतसर को जोड़ता है। राष्ट्रीय राजमार्ग – 2 दिल्ली –कोलकाता, राष्ट्रीय राजमार्ग – 3 आगरा – मुम्बई, राष्ट्रीय राजमार्ग – 7 वाराणसी – कन्याकुमारी, राष्ट्रीय राजमार्ग – 8 दिल्ली

– मुम्बई, राष्ट्रीय राजमार्ग – 11 आगरा – बीकानेर, राष्ट्रीय राजमार्ग – 15 पठानकोट – जैसलमेंर, राष्ट्रीय राजमार्ग 5 पूर्वी घाट के सहारे एवं राष्ट्रीय राजमार्ग – 17 पश्चिमी घाट के सहारे गुजरता है।

फरवरी 2008 में कुल राष्ट्रीय मार्ग में से 27 प्रतिशत चार अथवा अधिक लेन वाले, 59 प्रतिशत दो लेन वाले तथा शेष 27 प्रतिशत एक लेन वाले हैं। इन राष्ट्रीय मार्ग में सर्वाधिक लम्बाई वाला राष्ट्रीय मार्ग नम्बर 7 (2369 किमी) है जो वाराणसी से कन्याकुमारी को जोड़ता है तथा सबसे छोटा राष्ट्रीय मार्ग 47–। (06 किमी) है जो एर्नाकुलम से कोच्चि बन्दरगाह को जोड़ता है। सन् 1988 में इनके रखरखाव के लिए नेशनल हाईवेज अथार्टी आफ इण्डिया (National Highways Authority) की स्थापना की गई। यह नेशनल हाईवेज डेवलपमेंट प्रोजेक्ट (National Highways Development Project) के माध्यम से राष्ट्रीय मार्गो के विस्तार, सुधार तथा रखरखाव का काम कर रही है। इसका एक मुख्य उद्देश्य देश में उत्तर –दक्षिण तथा पूर्व –पश्चिम आवागमन की सीधी सुविधा निर्मित करना है। हाल ही में एक्सप्रेसवेज की अवधारणा का विकास हुआ है। ये दो मुख्य स्थानों को जोड़ने वाली बाधारहित सड़के हैं। इनमें मुम्बई –पुणे एक्सप्रेसवे सबसे महत्वपूर्ण है जो देश की आर्थिक राजधानी मुम्बई तथा सूचना तकनीकी के केन्द्र पुणे को जोड़ता है। इसी तरह दिल्ली – गुड़गांव, अहमदाबाद –बड़ोदरा, ताज एक्सप्रेसवे, दिल्ली –नोयडा, जीकेवी जयपुर – किशनगढ़, दुर्गापुर, रायपुर –भिलाई भी उल्लेखनीय एक्सप्रेसवेज हैं।

तालिका– 13.5 : स्वर्ण चतुष्कोण परम राजमार्ग

नाम	**लम्बाई (किमी.)**
दिल्ली– मुम्बई	1419
मुम्बई–चैन्नई	1290
चैन्नई– कोलकाता	1684
कोलकाता– दिल्ली	1453
कुल	**5846**
उत्तर– दक्षिण गलियारा (श्रीनगर से कन्याकुमारी)	4000
पूर्व– पश्चिम गलियारा (सिलचर से पोरबन्दर)	3300
कुल	**7300**

स्रोत : आर्थिक समीक्षा, भारत - 2009

2. **राज्य राजमार्ग –** राज्य राजमार्गो का निमार्ण एंव रखरखाव राज्य सरकारो द्वारा किया जाता है। भारत सरकार के केन्द्रीय सड़क कोष के माध्यम से अन्तर्राज्य सड़को के निर्माण के लिए 100 प्रतिशत वित्तीय सहायता तथा अन्य आर्थिक महत्व की सड़को के निर्माण के लिए 50 प्रतिशत वित्तीय सहायता प्रदान करता है। इन राजमार्गो से राज्य राजधानी से जिला केंन्द्रों एवं मुख्य कस्बों को जोड़ा जाता है। ये राज्य राजमार्ग राष्ट्रीय राजमार्गो से भी जुड़े हुए होते हैं। सन् 1971 में राज्य राजमार्गो की लम्बाई 56765 कि.मी. थी, जो सन् 2005 में बढ़ कर 128000 कि.मी. हो गई। सन् 1999 में भारत की सड़को की लम्बाई में राज्य राजमार्ग 5.46 प्रतिषत रहे।

3. **जिला सड़कें –** जिला सड़कों के जिला केंन्द्र से जिला के अन्य स्थानों को जोड़ा जाता है। इसका विकास एंव रखरखाव का दायित्व सार्वजनिक निर्माण विभाग का होता है। सन् 1951 में जिला सड्कों की लम्बाई 173723 कि.मी. थी, जो सन् 1999 में बढ़कर 470000 किमी हो गई। सन् 1999 में कुल सड़क लम्बाई में 31.74 प्रतिशत भाग इन सड़कों के अन्तर्गत आता है।

4. **ग्रामीण सड़कें –** ग्रामीण सड़कों के निर्माण की जिम्मेदारी ग्राम पंचायत की होती है। इन सड़कों के माध्यम से गाँवों को निकटवर्ती गाँवों तथा कस्बो से जोड़ा जाता है। सन् 1951 में इन सड़कों की लम्बाई 206408 किमी. थी, जो सन् 1999 में बढ़कर 26,50,000 कि.मी. हो गई। सन् 1999 में कुल सड़क लम्बाई में 40.71 प्रतिशत भाग इन सड़कों के अन्तर्गत आता है। ग्रामिण क्षेत्रों को सड़कों से जोड़ने के लिए दिसम्बर 2000 में प्रधानमंत्री सड़क योजना क्रियांवित की गई, जिसके अन्तर्गत पहाड़ी, रेगिस्तानी एवं जनजातीय क्षेत्रों में 250 जनसंख्या वाले तथा सामान्य रूप से 500 जनसंख्या वाले गाँवों को इन सड़कों से जोड़ने की योजना है।

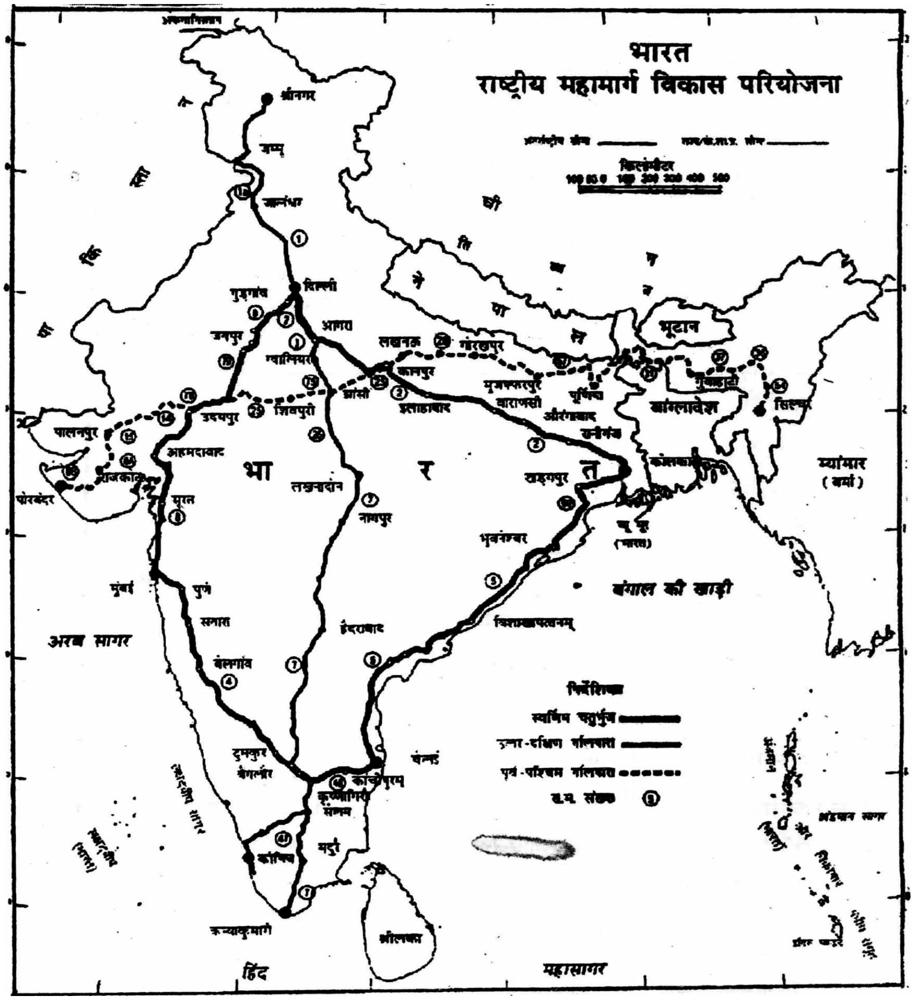

चित्र – 13.2 : भारत में राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना

5. **सीमान्त सड़कें –** सीमान्त सड़कें देश के सीमावर्ती क्षेत्रों में सुरक्षा की दृष्टि से बनायीं गयी। इसके रखरखाव के लिए सन् 1960 में सीमा सड़क संगठन का गठन किया गया। वर्तमान समय मे यह संगठन देश के सीमावर्ती क्षेत्रों मे सड़कों का निर्माण एवं रखरखाव कर रहा है। सीमा संगठन मे सन् 1960 से लेकर मार्च 2004 तक 31934 कि.मी सड़कों का निर्माण किया। राष्ट्रीय राजमार्ग परियोजना के अंतर्गत देष के उत्तर – दक्षिण एक्सप्रेस मार्ग के हिस्से के रूप मे राष्ट्रीय राजमार्ग सख्या 'ए' पर पठान कोट से श्रीनगर के भाग को चार लेन का बना दिया गया तथा 9 कि.मी. लम्बी रोहतांग सुरंग बनायी गई है।

सड़कों का महत्व

1. कम एवं मध्यम दूरी पर वस्तुओं एवं यात्रियों के परिवहन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।
2. सडक मार्ग निर्माण एवं रखरखाव की दृष्टि से आसान एवं सस्ता है।
3. सड़क मार्ग खेतों, कारखानो एवं बाजार के मध्य पहुँच को आसान बनाता है तथा प्रत्येक द्वार तक आसानी से पहुँच सम्भव हो जाती है।
4. सड़क मार्गो का निर्माण असमतल पहाड़ी एवं पर्वतीय भागो मे आसानी से किया जा सकता है।
5. सड़क मार्ग रेलमार्गो के पूरक साधन के रुप में कार्य करता है। सड़क मार्गो के माध्यम से ही ग्रामीण क्षेत्रों से सामान एवं यात्रियों को रेलवे स्टेशनों तक लादा जाता है।
6. सड़क परिवहन अधिक लचीला है परिवहन के साधनो को कहीं भी किसी भी समय रोका जा सकता है।
7. जल्दी नष्ट होने वाले पदार्थ जैसे फल, सब्जी, दूध एवं मांस को सड़क परिवहन आसानी से एवं जल्दी मांग वाले क्षेत्रों मे पहुँचा सकता है। अत; सड़क पीरवहन की देश के आर्थिक – सामाजिक विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका है।

13.4 वायु परिवहन

वायु परिवहन आधुनिक परिवहन के साधनो मे तीव्रतम साधन है। भारत मे भौगोलिक दूरियों की अधिकता तथा दक्षिण एशिया मे पूर्व तथा पश्चिम के मध्य संगम स्थान पर इसकी स्थिति के कारण यहाँ परिवहन व्यवस्था में वायुसेवा का केन्द्रीय स्थान है। गति और समय के आधार पर इस परिवहन का कोई भी अन्य परिवहन का साधन स्थान नहीं ले सकता है। दुर्गम क्षेत्रों को वायुसेवा से जोड़ा जा सकता है। युद्ध, बाढ़, महामारी और अकाल के समय में वायु परिवहन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

1. देश की विशालता।
2. औद्योगिक एवं व्यापारिक नगरों के मध्य अधिक दूरी एवं बिखरा होना।
3. वर्ष में 8 से 10 माह तक आकाश का साफ रहना तथा शीतकाल में कोहरे के दिनो की संख्या का कम होना।

4. भारत की स्थिति दक्षिण एशिया में स्थित होने के कारण विश्व के प्रमुख वायुमार्ग भारतीय क्षेत्र से होकर गुजरते हैं।
5. एल्यूमिनियम की पर्याप्त उपलब्धता के कारण वायुयान बनाने में सुविधा रहती है।
6. हवाई अड्डे बनाने के लिए पर्याप्त समतल व कठोर भूमि उपलब्ध है।

इन सुविधाओं के साथ – साथ वायु परिवहन विकास मे असुविधाएँ भी विद्यमान हैं जैसे पेट्रोल की कमी एवं पेट्रोल कीमतों का ऊँचा होना. विमान दुर्घटनाएँ, विमान अपहरण, अधिकांश लोगों का जीवन स्तर नीचा होना तथा वायु यात्रा के किराये का ऊँचा होना।

वायु परिवहन का विकास

भारत में वायु परिवहन का प्रारम्भ सन् 1911 में इलाहाबाद एवं नैनी के बीच प्रथम उड़ान के साथ ही हुआ। भारत सरकार ने सन् 1953 में वायु निगम अधिनियम द्वारा वायु सेवाओ का राष्ट्रीयकरण कर दिया तथा दो निगमों का गठन किया। इण्डियन एअरलाइन्स तथा एयर इण्डिया। इसके उपरान्त सन् 1981 मे वायुदूत सेवा तथा 1985 मे पवन हंस सेवा का प्रारम्भ हुआ। भारत सरकार ने राष्टीय एअर पोर्ट प्राधिकरण 1985 के अधिनियम के अन्तर्गत 1 जून 1986 को राष्ट्रीय एअरपोर्ट प्राधिकरण का गठन किया गया। इसका उद्देश्य भारत में वायु परिवहन के लिए आधारभूत ढॉचा की सुविधाएँ उपलब्ध करवाना था। 1 अप्रेल 1995 से भारत के अन्तर्राष्ट्रीय एअरपोर्ट तथा राष्ट्रीय एअरपोर्ट प्राधिकरण का विलय करके एक भारतीय एअरपोर्ट प्राधिकरण बना दिया। नागीरक उड्डयन मंत्रालय इसके नियमनकारी व विकासमूलक कार्यो का संचालन करता है।

वायु सेवाएं

1. **एयर इण्डिया –** यह देश की अन्तर्राष्ट्रीय वायु सेवा है। अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों (दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता, चैन्नई, तिरूवन्तपुरम, बंगलौर, हैदराबाद, पणजी, कोच्चि, अमृतसर, गुवाहाटी एवं अहमदाबाद) से विश्व के प्रमुख शहरों के लिए वायु सेवा संचालित करती है। इसकी मुख्य वायु सेवाएँ संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, यूरोपियन देशो, रूस, खाड़ी के देशों, पूर्वी एशियाई देशों, अफ्रीकी देशों एंव आस्ट्रेलिया के लिए वायु सेवा संचालित करती है। सन् 1960 – 61 में जहाजी बेड़े में 13 विमान थे जो 2003 – 04 में बढ़कर 35 हो गये। सन् 1660 – 61 में 1. 25 लाख यात्रियों ने यात्रा की, वही सन् 2003 – 04 में बढ़कर 38.35 लाख हो गई।
2. **इण्डिया एयरलाइन्स –** भारत की घरेलू वायु सेवा है। इसके साथ –साथ 12 देशों (पाकिस्तान, मालद्वीव, नेपाल, श्रीलंका, मलेशिया, बांग्लादेश, थाइलैण्ड, सिंगापुर, संयुक्त राज्य अमीरात, ओमान, म्यांमार एवं कुवैत) को वायु सेवा प्रदान करती)। सन् 1660– 61 में जहाजी बेड़े में 88 विमान थे जो सन् 2003 – 04 में 56 हो गये। यात्रियों की संख्या सन् 1660 – 61 में 7.90 लाख बढ़कर सन् 2003 – 04 में 59 लाख हो गई।

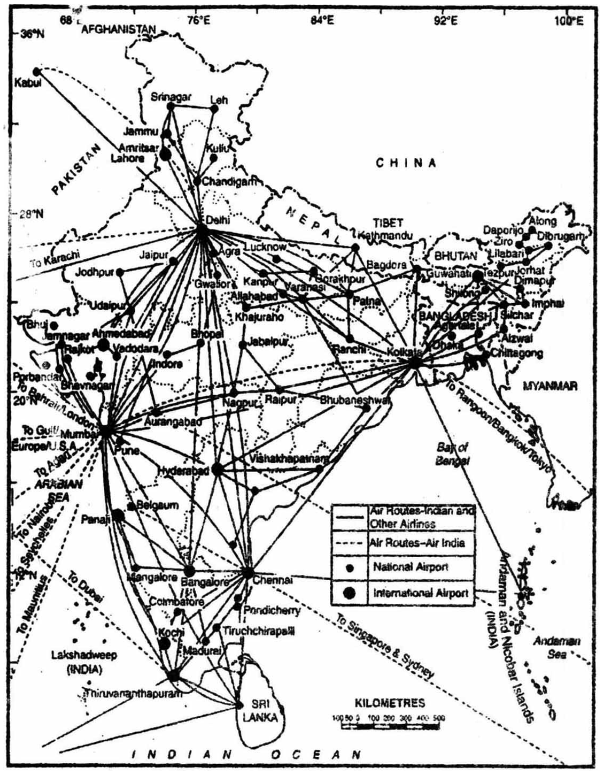

चित्र – 13.3 : भारत वायु मार्ग

3. **वायुदूत -** सन् 1981 में वायुदूत सेवा प्रारम्भ हुई। यह उन स्थानों को अपनी सेवाएँ प्रदान करता है, जहाँ पर इण्डियन एअरलाइन्स की पहुँच नही है, जैसे पहाड़ी क्षेत्र, सीमान्त क्षेत्र, घने वनीय क्षेत्र आदि। प्रारम्भ में वायुदूत सेवा उत्तरी पूर्वी राज्यों के 14 स्टेशनो के लिए प्रारम्भ की, इसके बाद इन राज्यों के बाहर 23 स्टेशनों पर इसकी वायु सेवाएँ प्रारम्भ की गई। सन् 1992 – 93 में इसके बेड़े में 16 विमान थे । मई 1993 में वायुदूत सेवा का इण्डियन एअरलाइन्स में विलय हो गया।
4. **पवन हंस लिमिटेड –** पवन हंस वायु सेवा 15 अक्टूबर 1985 में प्रारम्भ की गई। इसके फ्लीट मे 31 हेलिकोप्टर शामिल है। यह ओ. एन. जी. सी., ऑयल इण्डिया लि., अेनरॉन ऑयल एवं गैस एवं मुम्बई हाई को हेलिकॉप्टर सेवा प्रदान करती है। इसके अलावा पंजाब, मध्यप्रदेश, जम्मू कश्मीर, लक्ष्यद्वीप तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को हेलिकोप्टर सेवा प्रदान करती है।

वर्तमान में निजी क्षेत्र में पाँच कम्पनियाँ वायु सेवाएँ संचालित कर रही हैं। जेट एअरवेज, एवं एअर सहारा घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय वायुमार्गो पर वायु सेवाएँ संचालित कर रहा है, वहीं एअर दक्कन, किंगफिशर एवं स्पाइसजेट कम्पनियाँ घरेलू वायुमागों पर वायुसेवाएँ संचालित कर रही हैं। इनके जहाजी बेड़े में 100 विमान हैं।

13.5 जल परिवहन

जल परिवहन सस्ती दर पर भारी सामान के परिवहन के लिए सबसे उपयुक्त है। ईधन की बचत एंव पर्यावरण की गुणवत्ता के लिए जल परिवहन एक उत्तम साधन है। जिसके माध्यम से रोजगार के अवसर अधिक मात्रा में सृजित किये जा सकते हैं। जल परिवहन को सड़क परिवहन एवं रेल परिवहन के हाथों नुकसान उठाना पड़ रहा है क्योंकि जल परिवहन रेल एवं सड़क परिवहन की गति से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता है। जल पीरवहन को तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है : –

1. आन्तरिक जल परिवहन
2. समुद्री परिवहन
3. तटीय परिवहन

1. आन्तरिक जल परिवहन

नदियों, नहरों, पश्चजल तथा संकरी खाड़ियों सहित देश में 14500 किमी. नौसंचालन मार्ग है, जिसमें से 3700 किमी नौसंचालन मार्ग पर यांत्रिक नौकाएँ चलाई जा सकती हैं। जिसमें भी केवल 2000 कि.मी. नौसंचालन मार्ग का ही उपयोग वर्तमान में हो रहा है। जहाँ तक नहरों का सम्बंध है 4300 कि.मी. नौसंचालन योग्य मार्ग में 900 कि.मी. नौसंचालन मार्ग पर यांत्रिक नौकाएँ चलाई जा सकती हैं। भारत में आन्तरिक जल परिवहन का अंश 1 प्रतिशत है।

राष्ट्रीय जलमार्ग – आन्तरिक जल परिवहन की महता को बढ़ाने एवं आन्तरिक जलमार्गो का सुधार करने के लिए भारत सरकार ने 10 जलमार्गो को चिन्हित किया है, जिन्हे राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया है। भारत सरकार ने 27 अक्टूबर 1986 को गंगा नदी के इलाहाबाद से हल्दिया तक 1620 कि.मी. जलमार्ग, 26 अक्टूबर 1988 को ब्रहमपुत्र नदी के सदिया से दूबरी तक के 891 कि.मी. जलमार्ग, 1 फरवरी 1993 को केरल राज्य में पश्चिमी तटीय नहर के कोल्लम से कोदटापुरम तक के 168 कि.मी. जल मार्ग के साथ–साथ चम्पाकारा नहर (14 कि.मी.) तथा उद्योग मण्डल नहर (22 कि.मी.) तथा सन् 1996 में गोदावरी नदी के चरला से राजमुन्द्री तक के 208 कि.मी. जलमार्ग को राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया। कुछ अन्य जलमार्ग जैसे सुन्दरवन जलमार्ग, गोवा के जलमार्ग एंव बराक नदी कें जलमार्ग को राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया जा चुका है। भारत में नौसंचालन योग्य नहरें भी आन्तरिक जलमार्ग में योगदान दे रही है। बकिंधम नहर आन्ध्रप्रदेश एवं तमिलनाडु राज्यों में पूर्वी तट के समानान्तर आन्ध्रप्रदेश के गंटूर जिला से तमिलनाडु के अरकाट जिला तक 413 किमी. नौसंचालन मार्ग स्थित है। कुर्नुल – कुदप्पा नहर (116 कि.मी.), सोन नहर (326 कि.मी.), उड़ीसा नहर (272 कि.मी.) मेदिनीपुर नहर (459 कि.मी.) दामोदर, नहर (136 कि.मी.) नौसंचालन योग्य नहरें है।

भारत में आन्तरिक जलमार्ग परिवहन का विकास कम हुआ है। इसके कई कारण हैं ।

1. नदियों एवं नहरों में पर्याप्त मात्रा में पानी का प्रवाह वर्ष भर नियमित नही रहता है, जहाँ वर्षा ऋतु में पानी का प्रवाह तेज रहता है, जिसके कारण बाढे आती रहती है, वहीं वर्ष के शेष समय में पानी का प्रवाह बहुत कम मात्रा में रहता है।

2. मैदानी भागों में नदियाँ अपरदित किये गये पदार्थो का तली एवं किनारों पर जमाव करती रहती है, जिसके कारण नदी मार्ग में पानी की गहराई कम होती रहती है, जिसके कारण नावों का संचालन नही हो पाता।
3. प्रायद्वीपीय पठारी भागों में धरातल असमतल एंव कठोर होने के कारण नदियाँ जल–प्रपात बनाती है, जो नौसंचालन में बाधा उत्पन्न करता है।
4. सिंचाई तथा अन्य उद्देश्यों के लिए नदियों पर बाँध बना दिये जाते हैं, जिसके कारण से नौसंचालन में बाधा आती है।
5. भारत के मैदानी भागों में बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण नदियों का प्रदूषित होना भी कारण है।

2. समुद्री जलमार्ग

भारत की 7516.6 किमी. लम्बी तटरेखा और 20 लाख वर्ग किमी. से अधिक का समुद्री आर्थिक क्षेत्र है। इस विशाल तटीय भाग में नौपरिवहन ही परिवहन का प्रमुख साधन है। सम्पूर्ण तट पर 12 प्रमुख पत्तन (मुम्बई, जवाहर लाल नेहरू पोर्ट, कांदला, मारमगांव, न्यूमंगलौर, कोच्चि, कलकत्ता, हल्दिया, पाराद्वीप, विशाखापट्टनम, चैन्नई, इन्नौर रच तुतीकोरन) तथा 185 लघु और मध्यम पत्तन है । भारत में 98 प्रतिशत से अधिक विदेशी व्यापार समुद्री जलमार्ग के द्वारा होता है। विकासशील देशों में भारत की व्यापारिक जहाजरानी बेड़ा सबसे बड़ा है। सन् 2002 में इस जहाजरानी बेड़े में 617 जहाज थे, जिनकी सकल पंजीकृत क्षमता 62.07 लाख टन थी ।

3. तटीय जलमार्ग

देश में एक पत्तन से दूसरे को जोड़ने वाले जलमार्ग तटीय जलमार्ग कहलाते हैं। तटीय जलमार्गो द्वारा परिवहन के कई लाभ हैं। इनमें 1. प्रदूषण रहित, 2. कम पूंजी लागत 3. अधिक मात्रा में रोजगार के अवसर, 4. समुद्री संसाधन आधारित उद्योगों का विकास तथा 5. तटीय भागों की सुरक्षा में सहायता मुख्य हैं।

भारत का आकार प्रायद्वीपीय होने, तटीय रेखा की लम्बाई 7516.6 किमी. तथा इस तटीय रेखा पर 12 प्रमुख पत्तन तथा 185 अन्य पत्तन स्थित होने के कारण तटीय जलमार्गो द्वारा परिवहन की प्रबल सम्भावनाएँ हैं। सन् 2002 में तटीय जलमार्ग पीरवहन के अन्तर्गत जहाजरानी बेडे मे 424 जहाज थे, जिनकी सकल पंजीकृत क्षमता 8.04 लाख टन भी।

13.6 तेल और गैस पाइप लाइनें

तरल पदार्थ और गैस की लम्बी दूरियों के परिवहन के लिए पाइप लाइन परिवहन का सबसे सुविधावनक साधन है। परम्परा से जल आपूर्ति कि लिए प्रयुक्त पाइप लाइनें अब पेट्रोलियम और पेट्रोलियम उत्पादों तथा गैस का लम्बी दूरियों तक परिवहन करती हैं। परिवहन के अन्य साधनों की तुलना में पाइप लाइप परिवहन को निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त हैं।

1. पाइप लाइन असमतल भूमि और पानी के नीचे भी बिछाई जा सकती है।
2. इनके सचालन और रखरखाव की लागत कम होती है।
3. तरल पदार्थ एवं गैस का आसानी से परिवहन हो जाता है।

4. ऊर्जा एवं श्रम की बचत होती है।
5. सुरक्षित, दुर्घटनारहित एव पर्यावरण हितैषी है।

सन् 1980 मे भारत मे 5035 कि.मी. लम्बी पाइप लाइन थी, जो वर्तमान 7000 कि.मी. से अधिक हो चुकी हैं। भारत मे महत्वपूर्ण पाइप लाइनें निम्नलिखित हैं।

1. **नाहरकारिया – नूनमती – बरौनी पाइप लाइन –** सन् 1962 से 1966 के मध्य बिछायी गई 1167 कि.मी. भारत की प्रथम पाइपलाइन है, जिसका उद्देष्य असम तेल क्षेत्रों से कच्चा खनिज तेल बरौनी तेल शोधन कारखाने तक पहुँचना है। सहायक पाइप लाइनें : 1. नूनमती –सिलीगुडी पाइपलाइन, 2. लकवा – रूद्रसागर – बरौनी पाइपलाइन; 3. बरौनी–हल्दिया पाइपलाइन, 4. बरौनी –कानपुर पाइपलाइन, 5. नूनमती – बौंगाईगांव पाइप लाइन तशा 6. हल्दिया – राजबंध – मौरीग्राम पाइपलाइन हैं।
2. **मुम्बई हाई – मुम्बई – अंकलेश्वर – कोयली पाइपलाइन –** यह पाइपलाइन मुम्बई हाई और गुजरात के तेल क्षेत्रों को कोयली रिफाइनरी तक जोड़ती है। मुम्बई हाई से मुम्बई तट तक कच्चा तेल और गैस लाने के लिए 210 कि.मी. लम्बी दोहरी पाइप लाइनें बिछायी गई हैं। सन् 1965 में अंकलेश्वर –कोयली पाइप लाइन बिछायी गई।
3. **सलाया–कोयली मथुरा पाइप लाइन –** सलाया (गुजरात) से मथुरा (उत्तर प्रदेश) तक 1256 किमी. लम्बी पाइपलाइन आयातित कच्चे तेल को कोयली और मथुरा रिफाइनरी तक पहुँचाने के लिए गया। इस पाइपलाइन को पानीपत (हरियाणा) तथा जालंधर (पंजाब) तक बढ़ा दिया गया।
4. **हजीरा बीजापुर जगदीशपुर (HBJ) गैस पाइपलाइन –** गैस ऑथोरिटी ऑफ इण्डिया (GAIL) ने हजीरा (महाराष्ट्र) से जगदीशपुर (उत्तरप्रदेश) तक 1750 कि.मी. लम्बी पाइपलाइन का निर्माण किया गया। यह पाइपलाइन प्रतिदिन 18 मिलियन घनमीटर गैस तीन तापगृहों [कवास (गुजरात), अन्ता (राजस्थान), एंव औरेया (उत्तर प्रदेश)] तथा 6 उर्वरक कारखानों (बीजापुर, सवाईमाधोपुर, जगदीशपुर शाहजांपुर, लांबला एंव बबराला) को आपूर्ति करती है।
5. **जामनगर – लोनी एल. पी.जी. पाइप लाइन –**गैस आथोरोटी ऑफ इण्डिएया लि. ने 1250 करोड़ की लागत से 1269 कि.मी. लम्बी पाइपलाइन जामनगर (गुजरात) से लोनी (दिल्ली के पास उत्तरप्रदेश में स्थित है) तक बिछाई हे। विश्व की सबसे लम्बी यह एल.पी.जी. पाइप लाइन गुजरात, राजस्थान एवं उत्तरप्रदेष राज्यों से गुजरती है। यह एल.पी.जी. पाइप लाइन प्रतिदिन 3.5 लाख एल.पी.जी. गैस सिलेण्डर का प्रवाह करती है। इससे प्रतिवर्ष 500 करोड रूपए की बचत होने के साथ– साथ परिवहन के समय होने वाले प्रदूषण से मुक्ति है।
6. **कांदला – भटिण्डा पाइपलाइन –** इण्डियन ऑयल कारपोरेशन ने 690 करोड़ की लागत से आयातित कच्चा तेल को प्रस्तावित भटिण्डा रिफाइनरी तक पहुँचाने के लिए 1331 किमी. लम्बी पाइपलाइन प्रस्तावित है।
7. **अन्य महत्वपुर्ण पाइपलाइनें –** कलोल – साबरमती तेल पाइपलाइन, नवगांव – कलोल – कोयली तेल पाइपलाइन, काम्बे – धिवरान गैस पाइपलाइन एव अंकलेश्वर बडोदरा गैस

पाइपलाइन। गैस ऑथोरिटी ऑफ इण्डिया को 10000 करोड़ रूपये की महत्वाकांक्षी योजना के द्वारा गैस पाइपलाइनों का विस्तार करने का लक्ष्य है।

13.7 संचार तंत्र

वर्तमान समय में संचार तंत्र परिवहन तंत्र से अधिक महत्व रखता है। मनुष्य अधिकांश यात्राएँ 'व्यवसाय, सामाजिक एंव सांस्कृतिक कार्यो के लिए दूसरे व्यक्तियों से मिलने, संवाद करने एवं सूचनाओं के आदान–प्रदान करने के लिए करता है। संचार तंत्र का विकास करके समय, धन एवं ऊर्जा की बचत कर सकता है।

संचार के साधनों को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है ।

1. व्यक्तिगत संचार तंत्र
2. जनसंचार तंत्र

व्यक्तिगत संचार डाक सेवा तथा दूरसंचार द्वारा सम्पन्न होता है। यह आधुनिक संचार तकनिकी भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के तीव्र विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस तंत्र द्वारा इंटरनेट और ई–मेल के माध्यम से सारे संसार से अपेक्षाकृत कम लागत पर सूचनाएँ प्राप्त कीं जा सकती हैं। कम्प्यूटर द्वारा दस्तावेजों को तीव्र गति और सस्ते में भेजा और प्राप्त किया जा सकता है।

जन संचार के लिए मुद्रण माध्यम (समाचार पत्र और पत्र पत्रिकाएँ) तथा इलेक्ट्रोनिक्स माध्यम (रेडियो और दूरदर्शन) का उपयोग किया जाता है। भारत जैसे राष्ट्र में जनसंचार तंत्र सूचना और शिक्षा प्रदान करके लोगों में राष्ट्रीय नीति और कार्यक्रमों के विषय में जागरूकता पैदा करके महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय देश में सूचना और प्रसारण के विकास तथा नियमन के लिए जिम्मेदार है। प्रसार भारती, भारत का स्वायत्त प्रसारण निगम है। इसका गठन 1997 में किया गया था। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन इसके दो घटक हैं। यह निगम अब देश में संचार के इलेक्ट्रोनिक्स माध्यम पर नियंत्रण करता है।

डाक सेवाएँ

डाक सेवाओं का देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। डाक सेवाओं का विस्तार ग्रामीण विकास, रोजगार संवर्द्धन, अल्प बचत प्रोत्साहन व पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग की स्थापना में मद्द देने वाला माना गया है। भारत में आधुनिक डाक प्रणाली सन् 1837 में प्रारम्भ हुइ्र सन् 1854 में 700 डाक घर थे। मनी आर्डर प्रणाली सन् 1888 में प्रारम्भ हुई थी। आजादी के समय देश मे 23344 डाक घर थे, इनमें से 19184 डाकघर ग्रामीण क्षेत्रो में और 4160 शहरी क्षेत्रो में थे। अब 31.03.06 को देश में 1,55,333 डाकघर हैं जिनमें से 139074 डाकघर ग्रामीण क्षेत्र में एवं 16259 शहरी क्षेत्रो में हैं। भारत में औसत के आधार पर एक डाकघर 2116 वर्ग कि. मी. क्षेत्र और 6623 व्यक्तियों को अपनी सेवा प्रदान करता ई। डाक सेवाओं में उच्च टेक्नॉलोजी का प्रयोग किया जा रहा है। कम्पूटरीकरण, इलेक्ट्रोनिक्स डाक व मुद्रा का हस्तान्तरण और यंत्रीकरण छंटाई, उत्तम श्रेणी की सील व स्टाम्प आदि से नई सुविधाएँ व अधिक उत्तम ग्राहक सेवा तथा लागत में कमी सम्भव हो सकी है।

स्पीड पोस्ट – स्पीड पोस्ट सेवा 1 अगस्त 1986 को प्रारम्भ किया गया। इस सेवा के अन्तर्गत पत्रों, दस्तावेजों और पार्सलों की डिलीवरी एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत की जाती है। वर्तमान

में स्पीड पोस्ट नेटवर्क में 266 राष्ट्रीय और 857 राज्य स्पीड पोस्ट केन्द्र शामिल हैं। वर्तमान में एक सैटेलाइट प्रोजेक्ट को आरम्भ करने पर विचार किया जा रहा है वो फैक्स, गीरो [giro], इलेक्ट्रोनिक्स डाक, ट्रेकिंग व ट्रसिंग (अन्तर्राष्ट्रीय द्रुतगामी डाक सेवा) की सुविधाएँ उपलब्ध करायेगा।

दूरसंचार सेवाएँ

स्वतत्रता के उपरान्त दूरसंचार सेवाओं में निरन्तर विकास हुआ है। सन् 1948 में टेलीफोन कनेक्शन 1.68 लाख थे जो 31 मार्च 2008 को बढ़कर 30.049 करोड़ हो गये। वर्तमान टेलीफोन कनेक्शन की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है।

वर्तमान में फैक्स सेवा के अधिक लोकप्रिय हो जाने से टेलेक्स कनेक्शनों की मांग कम होने लगी है। टेलेक्स के द्वारा कोई भी सूचना दूसरे स्थान पर भेजी जा सकती है, जो वहाँ टाइपराइटर पर टाइप हो जाती है, लेकिन फैक्स के द्वारा किसी भी तथ्य की फोटो, चित्र, डिजाइन व ड्रांइग दूसरी जगह वैसी की वैसी भेजी जा सकती है। इस कारण से वर्तमान में टेलेक्स की जगह फैक्स अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है।

दूरसंचार सेवाओं में सुधार

1. सन् 1991 तक दूरसंचार उपकरणों का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्रों में ही किया जाता था। जुलाई 1991 से उदारीकरण की नीति के तहत सम्पूर्ण दूरसंचार उपकरणों के निर्माण के उद्योग को लाइसेन्स से मुक्त कर दिया गया था। इसमें विदेशी इकिटी की 51 प्रतिशत की स्वचालित स्वीकृति दे दी गई। लेकिन मूलभूत दूरसंचार सेवाओं, सेक्टर मोबाइल व रेडियो पेकिंग के लिए 49 प्रतिशत सीमित की गई।
2. मई 1994 में राष्ट्रीय दूर संचार नीति (N.T.P.) घोषित कि गई। इसमें भारत में पंजीकृत कंपनियों को मूलभूत दूरसंचार सेवाओं में विभाग के पंजीकृत प्रयासों में मद्द देने की व्यवस्था की गई। यह उल्लेखित किया गया कि सन् 1997 तक ग्राहक द्वारा मांगते ही टेलीफोन उपलब्ध करवा दिया जायेगा, सभी गाँवो में यह सुविधा पहुँचा दी जायेगी। देश में दूरसंचार उपकरणों का निर्माण होने लगेगा । इसके लिए निजी क्षेत्र में मूलभूत दूरसंचार सेवाओं का निर्माण होने लगेगा तथा इनका बड़े पैमाने पर निर्यात भी होने लगेगा। सन् 1999 में नई दूरसंचार नीति की घोषणा की गई, जिसमें इस क्षेत्र के विकास के लिए विकसित ढाँचा तैयार करने, भारत को आई.टी. सुपर पावर बनाने के स्वप्न को साकार करने और देश में विश्व स्तरीय दूरसचार ढाँचा विकसित करने पर बल दिया गया।
3. सरकार के उदारीकरण के प्रयास दूरसंचार कनेक्शनों में निजी क्षेत्र की बढ़ती भागेदारी में स्पष्ट दिखते हैं, जो 1999 में मात्र 5 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 2008 में 73.5 प्रतिशत हो गयी।
4. सरकार ने एक वैधानिक **दूरसंचार नियामक प्राधिकरण** (T.R.A.I) की स्थापना 20 फरवरी 1997 को की गई जो इस क्षेत्र में उचित प्रतिस्पर्धा की व्यवस्था करेगा, उपभोक्ता के हितों का संरक्षण व संवर्धन करेगा और दूरंसचार क्षेत्र के स्वस्थ विकास को सुनिश्चित करेगा।

आकाशवाणी

देश में रेडियो जनसंचार का सशक्त माध्यम है । भारत में सन् 1927 में रेडियो का प्रसारण प्रारम्भ हुआ। इसके लिए मुम्बई और कोलकाता में निजी ट्रांसमीटर लगाये गए थे। सन् 1936 में इसे ऑल इण्डिया रेडियो नाम दिया गया और यह सन् 1957 में आकाशवाणी के नाम से पुकारा जाने लगा। इस समय आकाशवाणी के 231 स्टेशन तथा 327 प्रसारण केन्द्र हैं। ये केन्द्र एवं प्रसारण केन्द्र देश की 99 प्रतिशत जनसंख्या तथा 90 प्रतिशत क्षेत्र को प्रसारण सेवाएँ प्रदान करते हैं। निजी क्षेत्र में 100 प्रतिशत एफ.एम. रेडियो स्थापित किये गये। आकाशवाणी सूचना, शिक्षा और मनोरंजन से संबन्धित विविध प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित करता है। आकाशवाणी समाचार और समीक्षाओं का प्रसारण, संसद या राज्य विधानसभाओं के अधिवेशनों पर विशेष समाचार बुलेटिन का प्रसारण तथा राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर भारतीय दृष्टिकोण को विशेष महत्व देकर प्रसारित करता है। ग्रामीण श्रोताओं के लिए स्वास्थ्य, परिवार कल्याण कार्यक्रम, संगीत और नाटक का प्रसारण प्रतिदिन किया जाता है।

दूरदर्शन

दूरदर्शन भारत का राष्ट्रीय टेलीविजन है। सार्वजनिक सेवा प्रसारक दूरदर्शन विश्व के सबसे बड़े टेलीविजन नेटवर्क में से एक है। इसने गाँवो और नगरों में दोंनो में ही लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को बदल दिया है। वर्तमान समय में दूरदर्शन के राष्ट्रीय नेटर्वक में 64 केन्द्र, 24 क्षेत्रीय समाचार कैंन्द्र, 126 दूरदर्शन रखरखाव केन्द्र तथा 1399 दूरदर्शन ट्रांसमीटर देश की अधिकांश जनसंख्या तक कार्यक्रम पहुँचाते हैं। दूरदर्शन का पहला कार्यक्रम 15 सितम्बर 1959 को प्रसारित किया गया था। दूरदर्शन की नियमित शुरूवात दिल्ली (1965), मुम्बई (1972), कोलकाता (1975) तथा चेन्नई (1975) में हुई। भारत में उपग्रह तकनीकी से संबन्धित पहला उपयोग वर्ष 1975 – 76 में सैटेलाइट इस्ट्रकशनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट (साइट) कार्यक्रम के अन्तर्गत किया गया था। देश में राष्ट्रीय कार्यक्रम और रंगीन टेलीविजन की शुरूवात सन् 1992 में ही हो सकी। इसके उपरान्त महत्वपूर्ण मोड़ इस प्रकार आये :

- मेट्रो चैनल शुरू करने के लिए दूसरे चैनल की नेटवर्किंग (26 जनवरी 1993)
- अन्तराष्ट्रीय चैनल डी. डी. इण्डिया की शुरूवात (14 मार्च 1995)
- प्रसार भारती का गठन 23 नवम्बर 1997
- खेल चैनल डी. डी. स्पोर्ट की शुरूवात (18 मार्च 1999)
- सांस्कृतिक चैनल की शुरूवात (26 जनवरी 2002)
- डी.डी. न्यूज की शुरूवात (3 नवम्बर 2003)
- डी. टी. एच. सेवा की शुरूवात (16 दिसम्बर 2004)

उपग्रह

कृत्रिम उपग्रहो के विकास और उपयोग के द्वारा संचार और भारत के संचार तंत्र में एक क्रांति आ गई है। उपग्रह प्रक्षेपण यान और संबन्धित स्थलीय प्रणालियों का विकास देश के अन्तरिक्ष कार्यक्रम का अंग है। आकृति और उद्देश्यों के आधार पर भारत की उपग्रह प्रणालियों को दो वर्गो में रखा जा सकता है – भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली (इंसैट) तथा भारतीय सूदूर संवेदन उपग्रह प्रणाली (आई.आर.एस.) इंसैट दूरसंचार, मौसम विज्ञान सम्बंधित प्रेक्षण और अन्य विविध आकड़ों तया कार्यक्रमों के लिए एक बहुउद्देशीय उपग्रह प्रणाली है। इंसैट प्रणाली की स्थापना सन् 1983 में की गई थी।

भारतीय सूदूर संवेदन (आई.आर.एस.) उपग्रह प्रणाली का प्रारम्भ 19 मार्च 1988 में हुआ। जब पहला आई.आर.एस. – I ए. अन्तरिक्ष में छोड़ा गया। सन् 1997 में पहले स्वदेशी निर्मित प्रक्षेपण यान पी.एस.एल.वी. – सी. 1 के द्वारा 1200 किग्रा के उपग्रह आई.आर.एफ. – 1 डी का सफल प्रक्षेपण किया गया। 26 मई 1999 को पी.एस.एल.वी. – सी D प्रक्षेपण यान द्वारा आई.आर.एस. – पी 4 उपग्रह का प्रक्षेपण, 5 मई 2005 को पी.एस.एल.वी. – सी 6 प्रक्षेपण यान द्वारा कार्टोसैट – 1 उपग्रह का प्रक्षेपण तथा 10 जुलाई 2006 को जी.एफ.एल.वी. – एफ 2 प्रक्षेपण यान द्वारा – इंसैट 4 सी. उपग्रह का प्रक्षेपण किया गया। ये उपग्रह अनेक स्पैक्ट्रल बेडो में आंकडे एकत्र करते हैं तथा विभिन्न उपयोगों के लिए स्थलीय स्टेशनों को उनका प्रसारण करते हैं। भारतीय सुदूर संवेदन एजेंसी (NRSA) हैदराबाद में स्थित है। यह आंकड़ों के अर्जन और इनके प्रसंस्करण की सुविधाएँ प्रदान करता हैं।

13.8 सूचना तकनीकी (Communication Technology)

सूचना तकनीकी वह उद्योग है जो कम्प्यूटर और सहायक उपकरणों की सहायता से ज्ञान का करता है। सूचना तकनीकी में कम्प्यूटर, हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर, टेलीसंचार उपकरण एवं व्यष्टि इलैक्ट्रोनिक्स को शामिल किया जाता है। सूचना टेक्नालॉजी से अभिप्राय उस समग्र व्यवस्था से है जिसके द्वारा संचार माध्यम और उपकरणों की सहायता से सूचना पहुँचाई जाती है और इसका उपयोग समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा किया जाता है। इस कारण सूचना तकनीक की संज्ञा सूचना एवं संचार क्रांति के रूप में दी जातीं है।

सूचना तकनीकी का विकास – भारत में सूचना तकनीकी का विकास 1994 की अन्तर्राष्ट्रीय संधि के उपरान्त प्रारम्भ हुआ। भारत में लगभग 50 करोड़ मध्यम वर्ग के लोगों से संबन्धित होने से कारण सूचना तकनीकी विकास में प्रबल सम्भावनाए है। सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र, विश्वविद्यालयों, स्कूलों एंव कॉलेजों तथा तकनीकी संस्थाओं में इसका उपयोग बढ़ रहा है। साफ्टवेयर और सेवा कम्पनियों की राष्ट्रोय संस्था (NASSCOM) की स्थापना के उपरान्त कम्प्यूटर उद्योग की प्रगति संबन्धित आंकडे एकत्रित किये जानें लगे। नासकाम के अध्ययन के आधार पर 31 मार्च 2000 को देश में 43 लाख वैयक्तिक कम्प्यूटर थे जिसे समर 2008 तक 2 करोड़ तक बढ़ाने का लक्ष्य रखा था। 31 मार्च 2003 को देश में इंटरनेट ग्राहकों की संख्या 80 लाख थी। सूचना तकनीकी अपना राजस्व साफ्टवेयर, हार्डवेयर, कम्प्यूटर सम्बंधी उपकरणों, प्रशिक्षण, रखरखाव और नेटवर्क से प्राप्त करती है।

सूचना तकनीकी आधारित सेवा से वित्त वर्ष 2006 – 07 के 48.1 अरब अमरीकी डॉलर के मुकाबले वर्ष 207 – 08 में 64 अरब अमरीकी डॉलर का सकल राजस्व प्राप्त हुआ है। सूचना तकनीकी आधारित सेवा – बी.पी.ओ. सहित भारतीय साफ्टवेयर व सेवा निर्यात 2006 – 07 से प्राप्त राशि 31.4 अरब अमरीकी डॉलर के मुकाबले 2007 – 08 में 40.3 अरब अमरीकी डॉलर हो गयी है। देश के सकल घरेलू उत्पाद (जी. डी. पी.) में आई.टी. –बी.पी.ओ. क्षेत्र का राजस्व का हिस्सा 2007 – 08 में 55 प्रतिशत रहा।

सूचना तकनीकी को भूमि, श्रम और पूंजी के साथ उत्पाद का चौथा साधन माना जाता है। अब उत्पादन में सूचना एक महत्वपूर्ण निवेश बन गयी है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए सूचना का उपयोग एक कच्चे माल के रूप में किया जाता है उसी प्रकार जैसे लोहे का उपयोग मशीनरी के

लिए किया जाता है। अतः सूचना तकनीक बहुत से उद्योगों में, जैसे विनिर्माण, षिक्षा, मनोरंजन, प्रतिरक्षा एंव व्यापार में प्रवेश कर गई है। भारत में सूचना तकनीक सॉफ्टवेयर और सेवाओं में रोजगार सन् 2007 – 08 में 20 लाख के आंकड़े को छू गया है।

13.9 विदेशी व्यापार

वस्तुओं के आदान प्रदान को व्यापार कहा जाता है। व्यापार मुख्यतः तीन प्रकार का होता है स्थानीय व्यापार, प्रादेशिक व्यापार एंव विदेशी व्यापार। एक देश से दूसरे देश में वस्तुओं एवं सेवाओं के आदान प्रदान को अन्तर्राष्ट्रीय या विदेशी व्यापार कहते हैं। विकसित विदेशी व्यापार देष की समृद्धि का आधार भी माना जाता है जिसके कारण से विदेशी व्यापार को आर्थिक बैरोमीटर भी कहा जाता है।

भारत मे विदेशी व्यापार की प्रवृति

भारत के विदेशी व्यापार की संरचना में बहुत विविधता पाई जाती है। निर्यात में कृषि क्षेत्र से लेकर औद्योगिक क्षेत्रों की वस्तुओं के साथ – साथ हथकरघों और कुटीर उघोगों में निर्मित वस्तुएँ हस्तशिल्प की वस्तुएँ तथा कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर का निर्यात किया जाता है। आयात में खनिज तेल, खनिज तेल उत्पाद, उर्वरक, बहुमूल्य रत्न, मशीनरी, इलेक्ट्रोनिक्स सामान तथा पूंजीगत वस्तुएँ शामिल हैं। इस प्रकार आयात और निर्यात की परम्परागत वस्तुओं के स्थान पर अनेक नई वस्तुओं का आयात और निर्यात होने लगा है।

तालिका – 13.6 भारत का विदेशी व्यापार (करोड़ रूपये में)

सन्	आयात	निर्यात	कुल व्यापार	व्यापार का संतुलन
1950–51	608	606	1214	–2
1660–61	1122	642	1764	–480
1970–71	1634	1535	3169	–99
1980–81	12549	6710	19259	–5839
1990–91	43193	35558	75751	–10625
2000–01	230873	203571	434444	–27302
2002–03	297206	255137	552343	–42069
2003–04	353976	291582	645558	–62394
2006–07	840506	571779	1412285	–268727

Source– "Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics Kolkata"

भारत के आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार ने निर्णायक भूमिका निभाई है। समय के साथ विदेशी व्यापार में व्यापक परिर्वतन हुए हैं। सन् 1950 – 51 में कुल व्यापार 1214 करोड़ रुपये था, जो सन् 2006 – 07 में बढ़कर 1412285 करोड़ रूपये हो गया (तालिका 13.6)। भारत के आयात एवं निर्यात मूल्य में अन्तर निरन्तर बढ़ रहा है। यह अन्तर व्यापार के असंतुलन के रूप में दिखाई पड़ता है। व्यापार में असंतुलन के दो प्रमुख कारण है – 1. विश्व स्तर पर मूल्यों में वृद्धि तथा 2. विश्व बाजार में भारतीय रूपये का अवमूल्यन। उत्पादन में धीमी वृद्धि, घरेलू उपभोग में बढ़ोतरी तथा विश्व बाजार में कड़ी प्रतिस्पर्धा निर्यात में धीमी वृद्धि के अन्य कारण हैं।

तालिका – 13.7 भारत: निर्यात 2006 – 07

क्रं.सं	**वस्तु का नाम**	**निर्यात करोड़ में**
1.	बागान उत्पाद	3939
2.	कृषि और सम्बद्ध उत्पाद	49345
3.	समुद्री उत्पाद	8001
4.	अयस्क और खनिज	31686
5.	चमड़ा चमड़े का सामान	13650
6.	रत्न और आभूषण	72295
7.	खेल का सामान	574
8.	रसायन – सम्बद्ध उत्पाद	83357
9.	इंजिनियरिंग का सामान	119875'
10.	इलेक्ट्रोनिक्स सामान	17235
11.	पारियोजनागत सामान	622
12.	वस्त्र	74391
13.	दस्तकारी सामान	1982
14.	गलीचे	4199
15.	कच्ची रुई	6108
16.	पेट्रोलियम उत्पाद	84520
कुल		571779

स्रोत - आर्थिक समीक्षा भारत: 2009

भारत के प्रमुख निर्यात

भारतीय निर्यातो को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है – परम्परागत निर्यात जिसमें जूट का निर्मित सामान, चाय, सूती वस्त्र, काजू, खली, तम्बाकू, मसाले व कॉफी आदि आते हैं तथा गैर परम्परागत निर्यात जिसमें इंजीनियरिंग का माल, कच्चा लोहा, रेडीमेड वस्त्र, चमड़ा व चमड़े की वस्तुएं, दस्तकारी के सामान आदि आते हैं। '

तालिका – 13.8 भारत की निर्यात संरचना (प्रतिषत में)

वस्तु	**1960–61**	**2006–07**
1. कृषि व सहायक वस्तुएँ	44.2	12.1
2. खनिज पदार्थ व अयस्क	8.1	5.8
3. इंजीनियरिंग सामान, मशीनरी , परिवहन उपकरण	3.4	23.3
4. रसायन व सम्बद्ध पदार्थ	1.1	15.6
5. रत्न व जवाहरात	0.2	13.8
6. टेक्सटाइल्स, रेडीमेड वस्त्र	0.2	13.5
7. चमड़ा व चमड़े की बनी वस्तुएँ	4.3	2.4

8. अन्य	38.5	13.7
कुल	100	100

तालिका 13.8 से स्पष्ट है कि सन् 1960 – 61 से 2006 – 07 की अवधि में भारत के निर्यातो में कृषि व सहायक वस्तुओं का हिस्सा 44.2 प्रतिशत से घटकर 12.1 प्रतिशत पर आ गया है! खनिज पदार्थो तथा अयस्कों के निर्यात का हिस्सा भी घटा है। जिन वस्तुऔं का निर्यात में हिस्सा बढ़ा है उनके नाम है :– इंजीनियरिंग सामान, मशीनरी, व परिवहन उपकरण, रत्न व जवाहरात, रसायन, टैक्सटाइल्स व रेडीमेड वस्त्र, जो एक उल्लेखनीय परिवर्तन है। इस प्रकार निर्यात में औद्योगिक माल का हिस्सा काफी बढ़ा है ।

निर्यात की दिशा में परिवर्तन

निर्यात की मात्रा बढ़ने के साथ ही उसकी दिशा में भी काफी परिवर्तन हुआ है। जैसा कि तालिका 13.8 से स्पष्ट है कि भारत के निर्यातों में वर्ष 1960 – 61 से 2002 – 03, की अवधि में ब्रिटेन का हिस्सा 26.9 प्रतिशत से घटकर 4.7 प्रतिशत पर आ गया है । संयुक्त राज्य अमेरिका का अंश 16 प्रतिशत से बढ़कर 20.7 प्रतिशत हो गया है। ओपेक के देशों का 4.1 प्रतिशत से बढ़कर 13.1 प्रतिशत हो गया। विकासशील देश का अंश 14.8 प्रतिशत से बढ़कर 30.8 प्रतिशतहो गया है।

तालिका 13.9 दिशा के अनुसार निर्यात में परिवर्तन (प्रतिशत में)

देशों के नाम	**1960–61**	**2002–03**
1. ब्रिटेन	26.9	4.7
2. जर्मनी	3.1	4.0
3.यूरोपियन यूनीयन के अन्य देश	14.6	12.5
4.संयुक्त राज्य अमेरिका	16.0	20.7
5.जापान	5.5	3.5
6.रूस (1992–93 के पूर्व का)	4.5	1.3
7.अन्य पूर्वी यूरोप के देश	2.5	0.5
8.ओपेक देश	4.1	13.1
9.विकासषील देश (गैर ओपेक)	14.8	30.8
10.षेष अन्य देश	8.0	8.9
कुल	**00**	**100**

तालिका - 13.10 भारत में आयात की संरचना 2006–07

क्रं.सं	**वस्तु का नाम**	**आयात (करोड़ में)**
1.	अनाज और उत्पाद	5996
2.	उर्वरक	14227
3.	खाद्य तेल	9540
4.	चीनी	3
5.	लुग्दी और रद्दीकागज	2893
6.	गत्ता और उससे तैयार माल	5626

7.	अखबारी कागज	2407
8.	कच्चा रबड़	2407
9.	आलौह धातुएँ	11787
10.	धातुमय अयस्क	37764
11.	लोहा और इस्पात	29071
12.	पेट्रोलियम (अशोधित) और उत्पाद	258572
13.	मोती,कीमती और अर्द्धकीमती रत्न	33881
14.	मशीनरी	120952
15.	परियोजना सामान	8126
16.	इलेक्ट्रोनिक सामान	72275
17.	सोना व चाँदी	66272
18.	कार्बनिक और अकार्बनिक रसायन	35433
19.	कोयला कोक	20710
20.	कृत्रिम रेजिन	11696
21.	व्यवसायिक यंत्र	10593
22.	धातुनिर्मित वस्तुएँ	7256
23.	औषधि और औषधीय उत्पाद	5866
24.	रसायनिक उत्पाद	5980
25.	काष्ठ और काष्ठ उत्पाद	4684
	कुल	**840506**

स्रोत : आर्थिक समीक्षा भारत : 2009

आयात की संरचना

आयात एक ओर तो घरेलू उपभोग की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है, दूसरी ओर निर्यात की वस्तुओं में विनिवेष, उत्पादन और निवेश के लिए भी किया जाता है। तालिका 13.11 से स्पष्ट है कि भारत के आयातों में 1960 – 61 से 2006 – 07 की अवधि में खनिज तेल (अशोधित) व उत्पाद 6.1 प्रतिशत से बढ़कर 30.8 प्रतिशत हो गया है। मोती, कीमती पत्थर, सोना चांदी 0.1 प्रतिशत से बढ़कर 12.5 प्रतिशत हो गया। पूंजीगत माल, मशीनरी व इलेक्ट्रोनिक्स सामान 31.7 प्रतिशत से घटकर 24.2 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार भारत की आयात संरचना में भारी परिवर्तन हुए है।

तालिका – 13.11 आयात संरचना में परिवर्तन (प्रतिशत मे)

क्रं.सं	**वस्तुएँ**	**1960–61**	**2006–07**
1.	खनिज तेल और उत्पाद	6.1	30.8
2.	उर्वरक और उर्वरक पदार्थ	1.2	1.6
3.	रसायन	3.5	5.6
4.	मोती, कीमती पत्थर, सोना– चाँदी	0.1	12.5
5.	लोहा व इस्पात	11.0	3.4

6.	पूंजीगत माल (मशीनरी, इलेक्ट्रोनिक सामान)	31.7	24.2
7.	अनाज व दाले	16.1	1.8
8.	अलौह धातु	4.2	5.9
9.	अन्य वस्तुएँ	26.1	14.2
	कुल	**100**	**100**

तालिका 13.12 से स्पष्ट होता है कि 1960 – 61 से 2002 – 03 की अवधि में हमारे आयात ब्रिटेन, जर्मनी, योरोपियन यूनियन के देश, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान से घटा है। ओपेक देश, गैर – ओपेक विकासशील देश तथा अन्य देशों से आयात का प्रतिशत बढ़ा है।

तालिका – 13.12 आयात के दिशा में परिवर्तन (प्रतिशत में)

क्रं.सं.	**देशो के नाम**	**1960–61**	**2002–03**
1.	ब्रिटेन	19.4	4.5
2.	जर्मनी	10.9	3.9
3.	योरोपियन यूनियन के अन्य देश	13.1	10.6
4.	संयुक्त राज्य अमेरीका	29.2	7.2
5.	जापान	5.4	3.0
6.	रूस (1992–93 से पूर्व का)	1.4	1.0
7.	अन्य पूर्वी यूरोप के देश	2.0	0.3
8.	ओपेक देश	4.6	5.6
9.	गैर ओपेक विकासशील देश	11.8	19.8
10.	अन्य देश	2.2	44.3
	कुल	**100**	**100**

बोधप्रश्न–1

1. भारत में रेल परिवहन का प्रारम्भ कब हुआ ?

....

....

2. 31 मार्च 2007 को भारत में रेलमार्गो की लम्बाई कितनी थीं ?

....

....

3. उत्तरी पश्चिमी रेलवे क्षेत्र का मुख्यालय कहाँ हैं?

....

....

4. नैरो गेज का निर्माण कौन से धरातलीय भागों में किया जाता हैं ?

....

....

5. पर्यावरण की गुणवत्ता के लिए कौनसे इंजन उपयुक्त हैं ?

....

....

6. राष्ट्रीय राजमार्ग परियोजना कब प्रारम्भ हुई?

....

....

7. स्वर्ण चतुष्कोण परम राजमार्ग की लम्बाई कितनी हैं ?

....

....

8. पूर्व पश्चिम गलियारा किन दो नगरों को जोड़ता है?

....

....

9. भारत में पवन हंस सेवा का प्रारम्भ कब हुआ?

....

....

10. भारत की अन्तर्राष्ट्रीय वायु सेवा कौनसी हैं?

....

....

11. भारत में कौनसी निजी कम्पनियाँ अन्तर्राष्ट्रीय वायुमार्गो पर वायु सेवाएँ संचालित करती है ?

....

....

12. भारत सरकार ने कितने जलमार्गो को राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया हैं

....

....

13. भारत में. सबसे लम्बा जलमार्ग कौनसा हैं ?

....

....

14. भारत की तटीय रेखा की लम्बाई कितनी हैं?

....

....

15. नाहरकाटिया – नूनमती – बरौनी पाइप लाइन की लम्बाई कितनी हैं?

....

....

16. सलाया – कोयली – मथुरा तेल पाइपलाइन को कहाँ तक बढ़ा दिया गया है ?

....

....

17. HBJ गैस पाइपलाइन से राजस्थान के कौनसे तापगह को गैस की आपूर्ति की जाती हैं?

....

....

18. जामनगर – लोनी एल.पी.जी. पाइप लाइन का निर्माण किसने किया?

....

....

19. भारत से निर्यात की जाने वाली गैर–परम्परागत दो वस्तुओं के नाम लिखें ।

....

....

20. भारत में सबसे अधिक आयात किसका किया जाता हैं?

....

....

21. भारत के निर्यात में सन् 2006 – 07 में कृषि एवं सहायक वस्तुओं का प्रतिशत कितना हैं?

....

....

22. प्रसार भारती का गठन कब किया गया?

....

....

23. भारत में आधुनिक डाक प्रणाली कब प्रारम्भ हुई?

....

....

24. मार्च 2008 में दूरसंचार कनेक्शनों में निजी क्षेत्र की भागीदारी कितनी प्रतिशत हैं?

....

....

25. भारत की बहुउद्देशीय उपग्रह प्रणाली का नाम क्या हैं?

....

....

26. 10 जुलाई 2006 को जी.एस.एल.वी. – एफ 2 प्रक्षेपण यान द्वारा कौन से उपग्रह का प्रक्षेपण किया गया?

....

....

27. सन् 2007 – 08 में सकल घरेलू उत्पाद में आई.टी. -बी.पी.ओ. क्षेत्र का हिस्सा कितने प्रतिशत था?

....

....

13.10 सारांश (Summary)

1. किसी देश के विकास के लिए परिवहन, व्यापार दूरसंचार तंत्र अति आवश्यक है। 31 मार्च 2007 को भारत में रेलमार्गो की लम्बाई 63327 कि.मी. थी। भारत में रेल परिवहन में गुणात्मक सुधार करने के लिए मीटर गेज रेलमार्गो को ब्रॉडगेज मार्गो में परिवर्तित किया जा रहा है, जिसके कारण से यात्री एच माल का कम समय में सस्ती दर पर परिवहन हो सकेगा।
2. सन् 2003 – 04 में भारत में 33 लाख कि.मी. सड़के थी। भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना के अन्तर्गत 5846 कि.मी. लम्बा चतुष्कोण परम राजमार्ग, 4000 कि.मी. लम्बा उत्तर दक्षिण गलियारा तथा 3300 कि.मी. लम्बा पूर्व पश्चिम गलियारा का निर्माण किया गया जिसके माध्यम से सड़क परिवहन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ रहा हैं।
3. भारत में वायु सेवाओं के अन्तर्गत एअर इण्डिया, इण्डियन एअरलाइन्स एवं पवन हस लि. की सेवायें संचालित की जा रही हैं। वायु परिवहन क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी तीव्र गति से बढ़ रही है।
4. भारत में नदियों एवं नहरों में वर्ष भर पानी का प्रवाह न होना, मैदानी भाग में नदी की तली में मलवा का जमाव, पठारी भागों में जल प्रपात के कारण आन्तरिक जल परिवहन का कम विकास हु आ (3700 कि.मी. लम्बे जलमार्ग पर यांत्रिक नौकाएँ चलाई जा सकती हैं)। भारत की तट रेखा की लम्बाई 7516.6 कि.मी. होने तथा देश का आकार प्रायद्वीपीय होने के कारण तटीय जल परिवहन तथा समुद्री जल परिवहन की अधिक सम्भावनाएँ हैं।
5. भारत में वर्तमान में 7000 कि.मी. लम्बी तेल एवं गैस पाइप लाइने हैं। जिनके माध्यम से तेल एवं गैस की आपूर्ति की जाती है ।
6. भारत में संचार तंत्र का विकास तीव्र गति से हो रहा है। आधुनिक संचार तकनीक भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के तीव्र विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। सूचना तकनीकी के विकास के कारण से आधारभूत संरचना और सेवाओं में सुधार, ज्ञान अर्थव्यवस्था का विकास, इलेक्ट्रोनिक्स प्रशासन एवं विदेशी मुद्रा का अर्जन निरन्तर बढ़ रहा है।
7. विकसित विदेशी व्यापार देश की समृद्धि का आधार माना जाता हैं। सन् 1950– 51 में भारत में आयात एवं निर्यात क्रमश: 608 करोड़ रूपये एवं 606 करोड़ रूपये था जो सन् 2006 – 07 में बढ़कर क्रमश: 80506 करोड़ रूपये एवं 571779 करोड़ रूपये हो गया। भारत में आयात एवं निर्यात सरंचना में वस्तुओं एवं दिशा में परिवर्तन हो रहा हैं।

13.11 शब्दावली (Glossary)

- **बड़ी लाइन :** रेल पटरियों के बीच की दूरी 1.676 मीटर वाला रेल मार्ग।
- **मध्यम लाइन :** रेल पटरियों के बीच का अन्तराल 1 मीटर।
- **छोटी लाइन :** पटरियों के बीच 0.762 मीटर के अन्तर वाला रेल मार्ग।
- **रेलवे जोन :** रेल मुद्रालय का कार्य क्षेत्र।
- **उत्तर–दक्षिण गलियारा :** उत्तर से दक्षिण का राष्ट्रीय मार्ग जो श्रीनगर से कन्याकुमारी तक 4000 किलोमीटर लम्बा है।
- **पूर्व–पश्चिम गलियारा :** सिलवर से पोरबन्दर तक राष्ट्रीय मार्ग जिसकी लम्बाई 3300 किमी. है।
- **आयात :** दूसरे देशों से मंगाई जाने वाली वस्तुएँ।
- **निर्यात :** दूसरे देशों को भेजी जाने वाली वस्तुएँ।

13.12 सन्दर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. आर्थिक समीक्षा – भारत : 2009
2. योजना – जनवरी, 2008 से मई, 2009
3. लक्ष्मीनारायण नाथूरामका, **भारत की अर्थव्यवस्था**, कालेज बुक हाउस प्रा.लि., जयपुर
4. रुद्रदत्त, **भारत की अर्थव्यस्था**, एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी लि. ,नई दिल्ली
5. बी. सी. जाट, **भारत का भूगोल**, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
6. सुरेश चन्द्र बंसल, **भारत का भूगोल**, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
7. आर. सी. तिवारी, **भारत का भूगोल,** वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर
8. श्रीकमल शर्मा, सम्पादक **भारत का भूगोल**, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 2004.
9. Khullar. D.R. Khullar, **India: A Comprehensive Geo**graph, Kalyani Publishers, Ludhiana
10. Gopal Singh, **Geography of India–** Atma Ram & Sons, New Delhi.
11. Jagdish Singh, **India : Comprehensive Geography.**

13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. 16 अप्रैल 1853
2. 63327 कि.मी.
3. जयपुर
4. पहाड़ी या असमतल भागों में
5. विद्‌युत इंजन
6. 2 जनवरी 1999
7. 5846 कि.मी.
8. सिलचर एवं पोरबंदर

9. 1985
10. एअर इण्डिया
11. जेट एअरवेज एवं एअर सहारा
12. 10 जलमार्ग
13. गंगा नदी पर, इलाहबाद से हल्दिया (1620 कि.मी.)
14. 7516.6 कि.मी.
15. 1167 कि.मी.
16. पानीपत (हरियाणा) एवं जालंधर (पंजाब)
17. अंता (बारां)
18. GAIL
19. इंजीनियरिंग के सामान, रेडीमेड वस्त्र
20. खनिज तेल (अशोधित) एवं उत्पाद
21. 12.1 प्रतिघत
22. 1997
23. 1837
24. 73.5 प्रतिषत
25. इंसैट प्रणाली
26. इंसैट 4 सी एए
27. 5.5 प्रतिशत

13.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत में रेल परिवहन तथा उसका राष्ट्रीय विकास में भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
2. भारत में सड़क परिवहन के विकास तथा उपादेयता की व्याख्या कीजिए।
3. भारत में वायुपरिवहन के क्षेत्र में संचालित की जाने वाली वायु सेवाओं का वर्णन कीजिए।
4. भारत में आन्तरिक तथा समुद्री जलमार्गो के कम विकास के कारण स्पष्ट कीजिए। इनका देश में वितरण बताइए।
5. देश की प्रमुख गैस एवं तेल पाइप लाइनों का वर्णन कीजिए।
6. भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यपार की संरचना एवं दिशा में हाल ही में हुए परिवर्तनों की समीक्षा कीजिए।
7. सूचना तकनीकी विकास का भारतीय अर्थव्यवस्था रख समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन कीजिए।

इकाइ 14 : प्रादेशिक नियोजन (Regional Planning)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 प्रादेशिक नियोजन
14.3 पंचवर्षीय योजनाओं में प्रादेशिक नियोजन
14.4 प्रादेशिक विषमता
14.5 विषमता के सूचक
14.6 प्रादेशिक विषमता के कारण
14.7 भारत के नियोजन प्रदेश
14.8 गरीबी एवं निर्धनता उन्मूलन
14.9 सारांश
14.10 शब्दावली
14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ
14.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे :–

- प्रादेशिक विकास की संकल्पना,।
- प्रादेशिक नियोजन,
- भारत में प्रादेशिक नियोजन का इतिहास,
- प्रादेशिक विषमता एवं इसके सूचक
- प्रादेशिक विषमता के कारण एवं दूर करने के उपाय,
- भारत के नियोजन प्रदेशों का विचार एवं विवरण,
- भारत में गरीबी एवं निर्धनता उन्मूलन।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ से ही प्रादेशिक विकास प्राथमिकता दी जाने लगी। 1970 के दशक में प्रादेशिक विकास की विशिष्ट योजनाएँ चलायी गई तथा 1980 के दशक में भारत में इस क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। वर्तमान में भारत में प्रादेशिक विकास एवं नियोजन का अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि आज स्वतंत्रता प्राप्ति के छः दशक बाद भी देश में अनेक प्रकार की प्रादेशिक विषमताएँ व्यापत हैं। ऐसे में भारत में प्रादेशिक विकास एवं नियोजन सम्बंधी भौगोलिक अध्ययन समसामयिक एवं सन्दमापक है।

14.2 प्रादेशिक नियोजन

प्रादेशिक नियोजन प्रादेशिक भिन्नताओं के आधार पर किसी भौगोलिक प्रदेश की मौलिक एवं विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक विकास योजनाओं का आधारभूत ढाँचा प्रस्तुत करता है। इसे स्पष्ट करते हुए सी.वी. नरसिंहम ने लिखा है कि "प्रादेशिक नियोजन द्वारा एक उपयुक्त ढाँचे का निर्माण होता है, जिसमें राष्ट्रीय एवं स्थानीय महत्व की योजनाओं में एकीकरण होता है। इस प्रकार के पूर्ण प्रादेशिक महानगरीय विकास क्षेत्र, प्राकृतिक संसाधन के क्षेत्र तथा ग्रामीण पुनरुत्थान के नियोजन तथा उद्योग – धन्धों के स्थानीय करण सम्बद्ध होते हैं।" अत: प्रादेशिक नियोजन में किसी प्रदेश में उपलब्ध स्थान एवं संसाधनों के दोहन के तरीकों का अध्ययन किया जाता है, जिनसे सम्पूर्ण प्रदेश का सर्वांगीण विकास हो सके। प्रादेशिक नियोजन को स्पष्ट करते हुऐ पेट्रिक (Y.N. Patrik) ने लिखा है कि :

"प्रादेशिक नियोजन प्रदेश के प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग, प्राकृतिक पर्यावरणीय रूपान्तरण, उत्पादन शक्तियों तथा उसके विवेकपूर्ण संगठन पर आधारित होता है" (Regional planning is an integrated plan for use and transformation of natural environment of a region, the development of its productive forces and the rational organization of territory)

लेविस, मम्फोर्ड के अनुसार, "प्रादेशिक नियोजन उन समस्त क्रिया –कलापों का चेतन निर्देशन तथा सामूहिक समाकलन है, जो पृथ्वी के स्थान, संसाधन तथा संरचना के रूप में उपयोग पर आधारित है अथवा इस प्रकार कहा जाय कि प्रदेश का व्यवस्थित विकास करना तथा इसका अन्य देशों से अधिक सूक्ष्म सम्बन्ध स्थापित करना प्रादेशिक नियोजन की कार्य है।"

जान फ्रीडमैन के अनुसार, "प्रादेशिक नियोजन अधिनगरीय स्थान अर्थात् एक नगर की अपेक्षा, अधिक बड़े क्षेत्र में मानवीय क्रिया – कलापों के व्यवस्थापन से सम्बन्धित है अथवा प्रादेशिक नियोजन अधिनगरीय स्थान के अन्तर्गत मानवीय क्रिया –कलापों के व्यवस्थापन में सामाजिक उद्देश्यों के सूत्रीकरण की प्रक्रिया है।"

पी. सेनगुप्ता के अनुसार, "प्रदेश के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के पूर्णरूप से विकास करने के लिए प्रादेशिक नियोजन एक सुनियोजित प्रयास है।"

राधाकमल मुकर्जी के अनुसार, "प्रादेशिक नियोजन का उद्देश्य विभिन्न पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में संस्कृति और प्रदेश के भावी पारस्परिक व्यवस्थापन के लिए पूर्वानुमान करना और व्यवस्थापन करना है।"

इस प्रकार प्रादेशिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य प्रदेश के सभी लोगों के लिए मानवीय एवं साधनों का अधिकतम उपयोग, सर क्षण तथा विकास करना है।

प्रादेशिक नियोजन की विषय –वस्तु एवं क्षेत्र को निम्न रूपों में विभाजित किया जा सकता –

(1)**नगरीय क्षेत्रों का नियोजन** : इसके अन्तर्गत महानगरीय क्षेत्रों के भौतिक, आर्थिक तथा सामाजिक विकास को महत्व दिया जाता– है, जिसमें नगर की स्थानिक संरचना को मध्यनजर रखा जाता है।

(2) **प्राकृतिक संसाधनों का नियोजन–** भौगोलिक दृष्टि से यह नियोजन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है, क्योंकि मानव संसाधनों का विकास प्राकृतिक संसाधन की उपलब्धता पर निर्भर करता है अत: प्राकृतिक संसाधनों का पोषणीय या संधृत विकास उनके नियोजन पर आधारित होता है।

(3) **आर्थिक विकास का नियोजन**–व्यावहारिक भूगोल तथा अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों और विधियों के, विस्तृत उपयोग की सहायता से आर्थिक विकास हेतु नियोजन किया जाता है। इसमें आर्थिक तत्वों को आधार मानकर आर्थिक प्रदेशों का सीमांकन किया जाता है।

(4) सामुदायिक और मानव संसाधन नियोजन –किसी भी प्रदेश में पाये जाने वाले संसाधनों का विवेकपूर्ण दोहन मानव संसाधन नियोजन द्वारा ही सम्भव है।

(5) **पर्यावरण नियोजन –**निरन्तर अवक्रमित हो रहे पर्यावरण को नियोजित किया जाना किसी भी प्रदेश के पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार प्रादेशिक नियोजन के विषय –वस्तु को मेकेई (Mackaye B.) ने स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, “प्रादेशिक नियोजन के अन्तर्गत मानवीय लक्ष्यों की पूर्ति हेतु प्रकृति की योजनाओं को तलाशने का प्रयास किया जाता है। इसमें उद्योग को संस्कृति के दास के रूप में देखा जा सकता है तथा उसका मुख्य उद्देश्य प्रदेश के अन्तर्गत सभ्यता के संचार करने मे मार्गदर्शन करना होता है।“

प्रादेशिक नियोजन का महत्व (Importance of Regional Planning)

प्रादेशिक नियोजन निम्न दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है –

(1) प्राकृतिक संसाधनों का पोषणीय विकास,
(2) प्रादेशिक आय में समानता
(3) रोजगार के अवसर प्रदान करना,
(4) सन्तुलित विकास में प्रमुख भूमिका,
(5) स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सीमित संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग,
(6) जीवन स्तर में सुधार,
(7) आर्थिक सुरक्षा,
(8) यातायात एवं संचार के साधनों का विकास,
(9) औद्योगिक वातावरण का विकास,
(10) राजनीतिक स्थिरता।

नियोजन प्रदेशों की संकल्पना (Concept of Planning Region)

नियोजन प्रदेश ऐसा भू – भाग होता है, जिसमें आर्थिक निर्णयों को क्रिंयान्वित किया जाता है। वर्तमान समय में नियोजन का अर्थ आर्थिक विकास के लिए अपनाये गये आर्थिक निर्णयों तथा उनके क्रियान्वयन से है। नियोजन प्रदेश नियोजन उद्देश्यों, मुख्यत: सामाजिक न्याय, आर्थिक विकास तथा पर्यावरण की गुणवत्ता के स्तर को प्राप्त कराने वाला होता आवश्यक है।

नियोजन के उद्देश्य से चयनित प्रदेश प्रशासनिक या राजनीतिक हो सकते हैं, जैसे –राज्य, जिला अथवा विकास खण्ड। सामान्यत: नियोजन के लिए आवश्यक आंकडे प्रशासनिक प्रदेशों के लिए एकत्र किये जाते हैं अत: नियोजन के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र, राज्य नियोजन के लिए सम्पूर्ण राज्य तथा सूक्ष्म स्तर पर नियोजन के लिए जिला या विकास खण्ड नियोजन प्रदेश के रूप में चिह्नित किये जाते हैं। नियोजन प्रदेशों में धरातलीय एवं सामाजिक –सांस्कृतिक समानता के साथ–साथ आर्थिक संरचना में भी समरूपता होना आवश्यक है।

नियोजन प्रदेश के सीमांकन में समरूपता, संकेन्द्रियता (Nodality) तथा प्रशासनिक सुविधा के मध्य सन्तुलन लाना आवश्यक माना गया है। नियोजन प्रदेश का विस्तार इतना होना चाहिए कि

उसमें पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हों जो उसकी अर्थव्यवस्था को विकास की गति दे सकें। साथ ही आन्तरिक तथ्यों में समानता होनी चाहिए। मानव एवं माल के प्रवाह के उपयुक्त गति से नियन्त्रित करने के लिए नियोजन प्रदेश में कुछ सकेन्द्रिय बिन्दु (Nodal Point) होना आवश्यक हैं। नियोजन प्रदेशों के सीमांकन हेतु निम्न विधियाँ महत्वपूर्ण हैं : –

(1) नियोजन प्रदेश का सीमांकन करते समय वहाँ की जलवायु, भूगर्भित संरचना, प्राकृतिक्र उत्पाद, प्रजाति, रीति –रिवाज, ऐतिहासिक परिवेश तथा भाषा आदि की समरूपता को मध्यनजर रखा जाना चाहिए।

(2) इन प्रदेशों की विशेषताओं को पूर्णरूपेण समाकलन आवश्यक है, जिसमें उपलब्ध विविधताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(3) सम्बन्धित प्रदेश के आर्थिक प्रतिरूपों पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक माना है।

(4) क्षेत्रफल की दृष्टि से नियोजन प्रदेशों में समानता होनी चाहिए ।

पदानुक्रम की दृष्टि से नियोजन प्रदेश तीन प्रकार के होते हैं, जो निम्न हैं–

(1) **वृहद् नियोजन प्रदेश–**इन प्रदेशों में संसाधन की विशालता को मद्देनजर रखते हुए निर्णय लिये जाते हैं। जहाँ परस्पर अन्तर सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण के साथ–साथ समन्वित विकास के लिए आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता को आवश्यक माना गया है जिन पर उस क्षेत्र का विकास आधारित होता है।

(2) **मध्यम नियोजन प्रदेश–** ये वृहद् नियोजन प्रदेशों के उपभाग होते हैं, जो नियोजन की द्वितीय आर्थिक इकाई के रूप में होते है। इनकी पहचान प्रति व्यक्ति आय, प्रति व्यक्ति भूमि उपयोग उपलब्धता, उत्पादन सूचकांक आदि से की जा सकती है ।

(3) **लघु नियोजन प्रदेश–**ये मध्यम प्रदेशों के उपभाग होते है जिनमें किसी समुदाय विशेष की इच्छाओं का भी समन्वय किया जाता है ।

भारत में नियोजन का प्रमुख उद्देश्य कृषि एवं सम्बन्धित विकास, उद्योग, शक्ति संसाधन यातायात तथा संचार के साधनों का विकास, सामाजिक सेवाओं का विकास आदि हैं। इस प्रकार प्रशासनिक दृष्टि से भारत में निम्नलिखित नियोजन प्रदेश है–

(1) **प्रशासनिक प्रदेश–** सम्पूर्ण देश प्रशासनिक दृष्टि से राज्यों, केन्द्रशासित प्रदेशों, तहसीलों, विकास खण्डों तथा पंचायतों में विभक्त है अत: नियोजित योजनाएँ इन विभिन्न स्तरों पर क्रियान्वित की जाती हैं।

(2) **संसाधन विकास प्रदेश –**इनका सीमांकन धरातलीय दशाओं, भूगर्भिक बनावट, जलवायु (वर्षा एवं तापमान), मृदा, भूमि उपयोग, कृषि, फसल प्रतिरूप, जनसंख्या घनत्व तथा विभिन्न संसाधनों की प्राप्ति के आधार पर किया जाता है। योजना आयोग ने स्थलाकृति, भूगर्भिक बनावट, मृदा, जलवायु, कृषि, भूमि उपयोग एवं फसल प्रतिरूप के आधार पर भारत के योजना प्रदेश निर्धारित किये हैं।

(3) **महानगरीय प्रदेश–**इसमें महानगरों का समीपवर्ती क्षेत्र सम्मिलित किया जाता है, जिन्हें पुन: छोटे नगरों रख केन्द्रीय ग्रामों के अनुसार छोटी इकाइयों में विभक्त किया जाता है।

(4) **संक्रमण मेखला–**ये क्षेत्र महानगरीय प्रदेश के मध्य पाया जाता है जहाँ दो महानगरीय क्षेत्रों का संक्रमण होता हे।

भारत में प्रादेशिक नियोजन (Regional Planning in India)

भारत में प्रादेशिक नियोजन को वर्तमान समय में सर्वाधिक महत्व दिया जा रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त देश में व्यवस्थित आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया गया तथा साथ ही प्रादेशिक नियोजन की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित किया गया। इसमें सरकार के साथ अनेक संस्थाओं ने अपना योगदान दिया जिनमें निम्न प्रमुख है –

(1) **भारत का योजना आयोग –** भारत सरकार ने एक सलाहकार संस्था के रूप में इसका गठन किया जिसके द्वारा भारत के भू–आर्थिक तथा संसाधन प्रदेशों कीं राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर योजनाएँ निर्मित की गई हैं।

(2) **राष्ट्रीय मानचित्रावली संगठन–**इस संगठन ने योजना आयोग की आवश्यकतानुसार विस्तृत रूप से सर्वेक्षण करते हुए भारत के विकास के लिए एक विस्तृत प्रादेशिक विभाजन प्रस्तुत किया है। एस. पी. चटर्जी के नेतृत्व में इस संगठन द्वारा भारत को निम्नांकित तीन वृहद् आर्थिक प्रदेशों में विभक्त किया गया है –

   (i) **उत्तरी वृहद् आर्थिक प्रदेश–**इसमें जम्मु –कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, पश्चिमी मध्य प्रदेश, उत्तरांचल एवं उत्तर प्रदेश का उत्तरी –पश्चिमी भाग सम्मिलित किया है, जो वन सम्पदा, कृषि, जलसंसाधन तथा कृषि आधारित उद्योगों की दृष्टि से सम्पन्न है।

   (ii) **पूर्वी वृहद् आर्थिक प्रदेश**–इसमें बिहार, झारखण्ड उत्तरी–पूर्वी राज्य, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश, तथा छत्तीसगढ़ एवं मध्य प्रदेश के कुछ भाग सम्मिलित हैं। यहाँ औद्योगिक दृष्टि से सम्पन्नता है।

   (iii) **दक्षिणी वृहद् आर्थिक प्रदेश–**इसमें महाराष्ट्र, गोवा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल तथा द्वीप समूह सम्मिलित हैं। यहाँ मुम्बई तथा चेन्नई वृहद् व्यापारिक नगर हैं।

   उपर्युक्त वृहद् आर्थिक प्रदेशों को 23 द्वितीय स्तर के तथा 200 तृतीय स्तर के व 1000 चतुर्थ स्तर के आर्थिक प्रदेशों में विभाजित किया गया है।

(3) **भारतीय सांख्यिकीय संस्थान –**इस संस्थान ने राष्ट्रीय राज्य स्तर पर देश में विद्यमान संसाधनों के आधार पर भू– आर्थिक अथवा संसाधन प्रदेशों की योजना प्रस्तुत की हैं।

(4) **भारत के महापंजीयक कार्यालय–**इसके द्वारा प्रादेशिक स्तर पर विकास क्षेत्रों का विचार तथा मात्राकरण का प्रयास किया गया है, जिसमें 1967 में पी. सेनगुप्ता तथा सोवियत भूगोलवेत्ता सदास्युक गैलीना द्वारा प्रमुख प्रादेशिक योजना प्रस्तुत की गई। इन्होंने आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चरों के आधार पर भारत को सात वृहद् आर्थिक प्रदेशों में विभक्त किया, जिन्हें पुन: 42 मध्यम स्तर के प्रदेशों में विभाजित किया गया। ये सात वृहद् आर्थिक प्रदेश निम्न हैं –

   (i) उत्तरी –पूर्वी प्रदेश (North Eastern Regions)
   (ii) पूर्वी प्रदेश (Eastern Region)
   (iii) उत्तरी मध्य प्रदेश (North Central Region)
   (iv) मध्य या केन्द्रीय प्रदेश (Central Region)
   (v) उत्तरी –पश्चिमी प्रदेश (North Western Region)
   (vi) पश्चिमी प्रदेश (Western Region)
   (vii) दक्षिणी प्रदेश (Southern Region)

(5) **केन्द्रीय जल तथा शक्ति आयोग–**इस आयोग ने शक्ति संसाधन प्रदेश, प्रादेशिक नियोजन के लिए प्रस्तावित किये जो नियोजन के लिए समन्वित आर्थिक प्रादेशीकरण की विचारधारा पर निर्भर है।

(6) **व्यावहारिक आर्थिक अन्वेषण परिषदें –**इन परिषदों ने भारतीय राज्यों की आर्थिक योजनाएँ निर्मित की तथा प्राविधिक आर्थिक सर्वेक्षण के प्रतिवेदनों को ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित किया।

(7) **भारत सरकार का नगरीय तथा ग्राम नियोजन संगठन–**भारतीय महानगर नियोजन द्वारा यातायात एवं परिवहन की समस्याओं के समाधान में असमर्थता महसूस की गई जिसके उपरान्त योजना आयोग में सन् 1965 में इस सन्दर्भ में महानगरीय यातायात सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन हेतु महानगरीय यातायात अध्ययन दल का गठन किया जिसकी परामर्शदात्री संस्था के रूप में *'भारत सरकार का नगर तथा ग्राम नियोजन सगंठन'* कार्य कर रहा है।

उपर्युक्त संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ व्यक्तिगत तथा विद्यालय व विश्वविद्यालय स्तर पर भी इस सन्दर्भ में प्रयास किये गये हैं। इनमें आर.पी. मिश्रा के सम्पादन में 1969 में मैसूर विश्वविद्यालय में प्रादेशिक नियोजन पर संगोष्ठी आयोजित की गई तथा इसमें प्रस्तुत विचारों को में प्रकाशित किया गया। इनके अतिरिक्त एल. एस. भट्ट, रामेश्वर प्रसाद मिश्र प्रमुख हैं। प्रकाश राव ने 'प्रादेशिक नियोजन प्रान्त' के सम्बंध में अपनें विचार प्रस्तुत किये। राव ने एस. एस. बोस तथा एम. पी. चौवरी की सहायता से प्रादेशीकरण की योजना को प्रस्तुत कर भारत को 21 प्रादेशिक योजना प्रान्तों में विभक्त किया। आगे चलकर राव ने एल. एस. भट्ट के सहयोग से भारत के प्राकृतिक – आर्थिक प्रादेशीकरण का संश्लेषण करते हुए संसाधन विकास के लिए एक नवीन प्रादेशिक ढाँचा प्रस्तुत किया।

बोध प्रश्न– 1

1. प्रादेशिक नियोजन किसे कहते है?

   ....

   ....

2. भारत को कितने वृहद् आर्थिक प्रदेशों में बाँटा गया है?

   ....

   ....

3. पर्यावरण नियोजन क्या है?

   ....

   ....

4. प्रादेशिक नियोजन का महत्व बताइये।

   ....

   ....

5. नियोजन प्रदेश के सीमांकन के तत्व बताइये।

   ....

....

14.3 पंचवर्षीय योजनाओं में प्रादेशिक नियोजन

स्वतंत्र भारत की प्रथम दो योजनाओं के दौरान क्षेत्रीय नियोजन की तुलना में औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्र के विकास पर मुख्य जोर दिया गया। तीसरी योजना में संतुलित क्षेत्रीय विकास को पहली बार एक उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया गया। महानगरों, प्रादेशिक राजधानियों, बंदरगाहों, वृद्धिशील औद्योगिक केंद्रों, तीर्थस्थलों एवं पर्यटन केंद्रों हेतु विकास योजनाएं तैयार करने के लिए विशेष कोष स्थापित किये गये। बहुउद्देशीय सिंचाई परियोजनाओं एवं सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों के लिए भी व्यापक योजनाएं तैयार की गयीं। दामोदर घाटी क्षेत्र, दण्डकारण्य क्षेत्र, रिहन्द क्षेत्र, भाखडा–नांगल क्षेत्र तथा राजस्थान नहर कमांड क्षेत्र जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों को इस योजना के अंतर्गत विकसित किया गया। राज्यों ने अपने –अपने क्षेत्रों में 'मास्टर प्लान' तैयार किये तथा कुछ राज्यों ने नियोजन बोर्ड जैसी क्रियान्वयन संस्थाएं स्थापित की।

चौथी योजना के दौरान राज्यों को मिलने वाली केंद्रीय सहायता का विस्तार किया गया तथा राज्यों की जरुरतों पर आधारित नीतियों का निर्माण किया गया। अंधाधुंध शहरी विकास को नियंत्रित करने के लिए भी क्षेत्रीय उपागम को व्यवहार में लाया गया। पाँचवीं योजना में क्षेत्रों के लिए विभिन्न संसाधन स्थितियों के सर्वेक्षण आयोजित किये गये ताकि इन क्षेत्रों की जरूरतों एवं सुविधाओं के अनुकूल विशिष्ट नीतियां बनायी जा सकें। विभिन्न क्षेत्रों में औद्योगिक पिछड़ेपन को समाप्त करने, कृषि सुधार लाने तथा जल संस्थानो का विकास करने के उद्देश्य से विशेष क्षेत्र योजनाएं तैयार की गयीं। मलिन बस्तियों के सुधार हेतु शहरी विकास परियोजनाएं लागू की गयीं तथा शहरी विकास उद्देश्यों के लिए सर्वेक्षण किये गये।

छठी योजना में क्षेत्रीय नियोजन के एक अधिक तीव्रतर रूपांतर को अपनाया गया। नियोजन के बहुस्तरीय उपागम पर बल दिया गया। स्थानीय संसाधनों के उपयोग पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया। इसी योजना के दौरान लक्षित समूह उपागम की पहल की गयी। एकीकृत ग्रामीण विकासकार्यक्रम(आईआरडीपी) का आरंभ किया गया।

सातवीं योजना में लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से क्षेत्रीय मुद्दों पर ध्यान दिया गया। स्थानीय संसाधनों के उपयोग तथा क्षेत्रीय आवश्यकताओं पर आधारित केंद्रीय सहायता विस्तार के द्वारा लोगों की न्यूनतम जरुरतों की पूर्ति का प्रयास किया गया।

एक क्षेत्र की कीमत पर दूसरे क्षेत्र के संसाधन विस्तार से उत्पन्न असंतुलन को भी ध्यान में रखा गया। सातवीं योजना के दौरान विशेष कार्यक्रमों को जारी रखा गया।

आठवीं योजना में यह उल्लेखित किया गया कि रोजगारी निर्माण, गरीबी उन्मूलन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य में सुधार विकास से घनिष्ठतः जुड़े हैं तथा विकास को इस प्रकार प्राप्त किया जाना चाहिए, जिससे क्षेत्रीय असमानता घट सके और विकास के लाभों का विस्तार हो सके। समाज के पिछड़े वर्गों एवं विकास की दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों के लिए पर्याप्त सुरक्षोपाय अपनाये गये। इसके लिए पर्याप्त खाद्य आपूर्ति प्रणाली, रोजगार निर्माण योजनाओं, मुद्रा–स्फीति नियंत्रण तथा

आधारभूत संरचना के निर्माण को वरीयता दी गयी। आठवीं योजना के दौरान एक संशोधित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को आरंभ किया गया ताकि सूखाग्रस्त, पहाड़ी, जनजातीय पिछड़े एवं सुदूर क्षेत्रों के निवासियों को खाद्य सुरक्षा प्रदान की जा सके।

नौवीं योजना के दस्तावेज में संतुलित क्षेत्रीय विकास के महत्व को रेखांकित किया गया। इस दस्तावेज में कहा गया कि देश के सभी भागों द्वारा विकास अवसरों का समान लाभ न उठा पाने तथा ऐतिहासिक असमानताओं के पूर्णत: समाप्त न हो पाने के कारण नियोजित हस्तक्षेप की जरूरत अभी तक बनी हुई है। ऐसी स्थिति में अल्पविकसित राज्यों की आधार संरचना में पक्षपातपूर्ण सार्वजनिक निवेश करना जरुरी हो जाता है। साथ ही यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि निवेश से लाभान्वित होने वाले राज्य अपने संसाधनों का दुरुपयोग न करें।

राज्य सरकारों द्वारा निजी निवेश को आकर्षित करने हेतु किये जाने वाले प्रयासों के चलते इन राज्यों को वित्तीय एवं अन्य रियासतें देने में भी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है। इसी प्रवृत्ति के चलते निजी निवेश का महत्व बढ़ता जा रहा है। यद्यपि, निजी निवेश जुटाने की यह प्रतिस्पर्द्धा सीमित मात्रा में लाभकारी हो सकती है, तथापि, दीर्घावधिक उद्देश्यों के लिए यह अपर्याप्त सिद्ध होती है। इससे कई राज्यों की वित्तीय क्षमता प्रभावित हो सकती है तथा वे मूलभूत सामाजिक –आर्थिक आधार संरचना उपलब्ध कराने में असमर्थ साबित हो सकते है। इस स्थिति में इन राज्यों की भविष्यकालीन उन्नति बाधित होगी और वे क्षेत्रीय असंतुलन एवं असमानता के वाहक बन जायेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी राज्य सहकारी संघवाद की भावना से कार्य करते हुए एक सामान्य नीति एवं कार्य–योजना को अमल में लाएं।

ऐसे क्षेत्र भी मौजूद हैं जो निर्धनतावश समग्र विकास प्रक्रिया का लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं। ऐसे अधिकांश निर्धन क्षेत्र व्यापक विकास प्रक्रिया में स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं के अपर्याप्त एकीकरण को प्रतिबिम्बित करते है, जो मूलत: ऐतिहासिक कारणों का परिणाम है। इन क्षेत्रों का विकास सरकारी हस्तक्षेप के इन क्षेत्रों में संवहनीय गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रत्यक्ष रोजगार निर्माण, आय वृद्धि के साथ–साथ गरीबों की परिसम्पत्ति में बढ़ोतरी लाने वाले उपाय भी शामिल किये जाने चाहिए ताकि ऐसे क्षेत्र शेष अर्थव्यवस्था के साथ बेहतर ढंग से एकीकृत हो सकें।

पिछड़ेपन एवं क्षेत्रीय संतुलन के मुद्दों का केंद्र बिंदु परम्परागत रूप से औद्योगिकीकरण रहा है। प्रमाणों के आधार पर यह माना जाता है कि क्षेत्रीय असमानताओं को कृषि एवं अन्य ग्रामीण गतिविधियों पर व्यापक ध्यान देकर ही कम किया जा सकता है। इसके लिए जरुरी है कि पिछड़े क्षेत्रों में केवल कृषि की उत्पादकता में ही वृद्धि न लायी जाय बल्कि परिवहन एवं संचार साधनों के माध्यम से देश के ग्रामीण तथा अन्य भागों के बीच एकीकरण की मात्रा को भी बढ़ाया जाय। इस उद्देश्य की दीर्घकालिक पूर्ति के लिए आधार संरचना में पर्याप्त सार्वजनिक निवेश करना होगा।

देश के कई ऐसे क्षेत्रों, जो सापेक्षित रूप से आय का उच्च स्तर रखते हैं, में निम्न मानव विकास सूचकांक एवं कमजोर सामाजिक – आर्थिक आधार संरचना देखी जा सकती है। इन क्षेत्रों में निजी पहलकर्ता किसी प्रकार की मुख्य भूमिका निभाने से परहेज रखते है। इस प्रकार सरकार के लिए उपयुक्त हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाता है। इसलिए ऐसी आधार संरचना की उपलब्धता के

न्यूनतम मानदंडों की पहचान करना तथा इन मानदंडों की समयबद्ध रण संतुलित तरीके से प्राप्ति हेतु सार्वजनिक निवेश में वृद्धि करना एक अनिवार्य कदम है।

शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में गरीबों को आवास उपलब्ध कराने की समस्या भी गंभीर है तथा आवास निर्माण हेतु सहायता प्रदान करने वाले एक कार्यक्रम को क्रियान्वित किये जाने की आवश्यकता है।

क्षेत्रीय संतुलन का मुद्दा अंतर –राज्यीय एवं अंत: राज्यीय दोनों स्तरों पर कार्य करता है। इसलिए इसे एक ऐसे ढांचे में रखकर देखने की आवश्यकता है जो राज्यों की राजनीतिक एवं प्रशासनिक सीमाओं से व्यापक एवं लचीला हो। संवृद्धि एवं विकास का गहन सम्बंध देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच मौजूद आर्थिक एकीकरण के स्तर तथा विकसित रख पिछड़े क्षेत्रों के बीच स्थापित सम्पर्कों में होता है। ऐसी स्थिति में जरूरी है कि प्रतिस्पर्द्धी नीति –निर्माण की अवधारणा को त्यागकर सहकारी संघवाद के एक ढांचे को अपनाया जाए, जिसमें परस्पर पड़ौसी राज्य अपने–अपने पिछड़े भागों में एक संतुलित समन्वित विकास रणनीति को लागू कर सकें तथा अंतर–राज्यीय वाणिज्य में आने वाली बाधाओं को समाप्त कर सकें।

सरकार द्वारा सभी स्तरों पर संसाधनों की कमी का सामना किया जा रहा है। इसको ध्यान में रखकर क्षेत्र विशेष के आधार पर जीवन की गुणवत्ता के विभिन्न मापदंडों के प्राथमिकीकरण की जरूरत है जो क्षेत्र विकास प्रक्रिया के लाभों का पर्याप्त लाभ उठा पाने में असमर्थ रहे हैं, उनमें गरीबी–उन्मूलन कार्यक्रमों पर मुख्य जोर देना होगा। ऐसे क्षेत्रों में एक बाजार– आधारित विकास रणनीति की पूर्व शर्तों को तय करना होगा, भले ही इनसे कुछ मात्रा में सकारात्मक पक्षपात की संभावना बनी रहे।

14.4 प्रादेशिक विषमता

किसी देश के विभिन्न भागों में होने वाले असमान विकास को प्रादेशिक असन्तुलन या विषमता कहते हैं। यह विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध संसाधनों के उपयुक्त विकास न होने से उत्पन्न होती है। प्रादेशिक असमानताओं का अध्ययन विभिन्न राज्यों के मध्य किया जा सकता है, जिसे अन्तर्राज्यीय असमानता कहते हैं जो एक राज्य में विभिन्न जिलों के मध्य या खण्डों के मध्य किया जा सकता है, इसे राज्य के अन्दर की असमानता कहते हैं।

भारत में प्रादेशिक विषमताओं व असमानताओं को कम करने की आवश्यकता पर सर्वप्रथम तृतीय पंचवर्षीय योजना से बल दिया जाना आरम्भ किया गया, जिसका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न राज्यों के मध्य विकास में समानता स्थापित करना था। भारत एक विशाल देश है, जहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा भौगोलिक विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। सामान्यत: प्रादेशिक विषमता को मापना कठिन कार्य है, लेकिन विभिन्न राज्यों के मध्य असमानता के विभिन्न सूचक होते हैं. जिनके आधार पर प्रादेशिक विषमता को माप सकते हैं। ये सूचक निम्न हैं–

(i) **प्रति व्यक्ति आय, निर्धनता व बेरोजगारी** (Per Capita Income, Poverty and Unemployment) प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से पंजाब, महाराष्ट्र, हरियाणा व गुजरात अन्य राज्यों की अपेक्षा अग्रणी है। निर्धनता के सन्दर्भ में राष्ट्रीय औसत (26 प्रतिशत) से अधिक वाली श्रेणी से बिहार, उडीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु व कर्नाटक आते है। बेरोजगारी केरल, तमिलनाडु, प. बंगाल तथा आन्ध्र प्रदेश में अधिक हैं।

(ii) **कृषिगत सूचक** (Agricultural Indicators) कृषि क्षेत्र में पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश आगे हैं। यहाँ कृषि विकास अच्छा होने का कारण उत्तम सिंचाई सुविधाओं के उपलब्धता, उन्नत बीज तथा रासायनिक उर्वरकों का उपयोग है।

(iii) **औद्योगिक सूचक** (Industrial Indicators) औद्योगिक दृष्टि से महाराष्ट्र प्रदेश अग्रणी है जो देश के कुल औद्योगिक उत्पादन का 25 प्रतिशत भाग उत्पादित करता है। महाराष्ट्र के साथ पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडु, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश मिलकर भारत का 83.5 प्रतिशत औद्योगिक उत्पादन करते हैं।

(iv) **आधारभूत ढाँचे से सम्बन्धित सूचक** (Indicators Related to Infrastructure) आर्थिक व सामाजिक आधारभूत ढाँचे के सापेक्ष विकास का सूचकांक प्रति व्यक्ति बिजली का उपभोग, साक्षरता की दर व शिशु मृत्यु दर को सम्मिलित करते हैं। लेकिन विस्तृत विवेचन में राज्यवार रेलों व सड़कों की लम्बाई, स्कूलों, अस्पतालों तथा बैंकिंग सुविधाओं को भी सम्मिलित किया जाता है।

(v) **जनसंख्या घनत्व** (Population Density) 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। राज्यों में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व पश्चिमी कमल का (903 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.) है तथा सबसे कम अरूणाचल प्रदेश का केवल 13 व्यक्ति प्रति वर्ग कमी है।

(vi) **साक्षरता सूचक** (Literacy Indicators) भारत में 2001 के अनुसार साक्षरता 64.8 प्रतिशत जिसमें सर्वाधिक केरल की 9092 प्रतिशत तथा सबसे कम बिहार राज्य की 470 प्रतिशत है।

(vii) **नगरीयकरण** (Urbanisation) सन् 2001 के अनुसार भारत की 27.8 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय तथा 72.2 प्रतिशत ग्रामीण है। गोवा में सर्वाधिक नगरीय जनसंख्या 49.8 प्रतिशत तथा सबसे कम 9.79 प्रतिशत हिमाचल प्रदेश में है जबकि सर्वाधिक नगरीय जनसंख्या महाराष्ट्र में (4.11) करोड़ है, जो देश की कुल नगरीय जनसंख्या का 14.37 प्रतिशत हैं। इनके अतिरिक्त सामाजिक सेवाओं व प्रगति से सम्बन्धित सूचकों, सिंचाई सुविधाओं तथा राज्यवार वित्तीय साधन आवटन से सम्बन्धित सूचकों के आधार पर भी विषमता का आकलन किया जा सकता है।

14.5 भारत में प्रादेशिक विकास के सूचक

किसी भी देश के विकास का प्रभाव उसके चारों ओर परिलक्षित होने लगता है जिसे विभिन्न संकेतों द्वारा पहचाना जा सकता है। आर. जी. लोप्से ने स्पष्ट किया है कि "किसी देश के विकास की मात्रा के बहुत सम्भावित माप हो सकते है, जिनमें प्रति व्यक्ति आय, अवशोषित साधनों का अनुपात, प्रति व्यक्ति पूँजी, प्रति व्यक्ति बचत, सार्वजनिक पूँजी की मात्रा, जैसे – सड़कें, रेलें, स्कूल एवं विभिन्न वर्गो की शिक्षा की मात्रा आदि प्रमुख हैं।"

विकास के सूचकों को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न रूपों में वर्णित किया है। अर्थशास्त्रियों की दृष्टि में विकास का प्रमुख सूचक देश का सोना, चाँदी के कोष में वृद्धि है। प्रमुख अर्थशास्त्री एवं

स्मिथ ने राष्ट्रीय उत्पादन को विकास का सूचक माना है। देश की उत्पादन शक्ति, श्रम की स्थिति, तकनीकी जानकारी तथा विशिष्टीकरण की मात्रा ही विकास के सूचक हैं।

वर्तमान समय में निम्नांकित कारकों को प्रादेशिक विकास के संकेतक माना जा रहा है, जिन्हें भारत में भी स्वीकार किया जाता है –

(1) **राष्ट्रीय आय में वृद्धि** (Growth in National Income)–विभिन्न प्रमुख अर्थशास्त्री राष्ट्रीय अब को विकास का सर्वोत्तम सूचक मानते हैं। यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो रही है तो यह माना जाता है कि राष्ट्र विकास च रहा है।

(2) **प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि** (Growth in Per Capita Income)–राष्ट्रीय आय में वृद्धि की तुलना में प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय आर्थिक विकास का सूचक है। इस सन्दर्भ में लीविन्सटीन लिखा है कि, "आर्थिक विकास के लिए राष्ट्रीय आय में वृद्धि पर्याप्त नहीं है बल्कि प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होना आवश्यक है।"

(3) **पूँजी में वुद्धि की दर** (Rate of Capital Growth)–भौतिक साधनों के विकास की दर में वृद्धि होने पर पूँजी निर्माण में सुधार माना जाता है। यदि पूँजी निर्माण दर उच्च है, तो देश विकसित होगा जबकि यह दर न्यून होने पर अल्पविकसित माना जायोगा ।

(4) **आर्थिक कल्याण में वृद्धि** (Growth in Economic Welfare)–ओकन तथा रिचर्डसन के अनुसार आर्थिक विकास भौतिक समृद्धि में ऐसा निरन्तर एवं दीर्घकालीन सुधार है जो कि वस्तुओं एवं सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह से पहचाना जा सकता है।

(5) **जीवन स्तर** (Living Standard)–राष्ट्रीय आय में वृद्धि के उपरान्त प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने से रहन–सहन के स्तर में भी सुधार आता है अत: विकास का अन्तिम लक्ष्य लोगों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करके उनके जीवन स्तर में सुधार लाना होता है। समाज का भौतिक दृष्टिकोण भी आर्थिक विकास का सूचक होता है।

(6) **आय का समान वितरण** (Equal Distribution of Income)–राष्ट्रीय आय के समान वितरण विकास का प्रमुख सूचक माना जाता है। विकसित तथा विकासशील देशों में इसमें भारी अन्तर मिलता है। विकसित देशों में वितरण समान तथा विकासशील देशों में असमान पाया जाता है।

(7) **व्यावसायिक संरचना** (Occupational Factors)– प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कोलीन क्लार्क ने आर्थिक विकास तथा व्यावसायिक संरचना में घनिष्ट सम्बन्ध बताया है।

14.6 प्रादेशिक विषमता के कारण

भारत में प्रादेशिक विषमता के लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं –

(1) **भौगोलिक कारक** (Geographical Factors) भारत में प्रादेशिक विषमता का मुख्य कारण भौगोलिक कारकों की विभिन्नता है। धरातल, जलवायु, मृदा, वनस्पति आदि की दृष्टि से प्रादेशिक अन्तर पाया जाता है। प्राकृतिक परिघटनाओं के प्रादेशिक आयाम जैसे दक्कन की जीर्ण भू – आकृति से लेकर हिमालय की युवा लक्षणों तथा विश्व की उच्चतम शिखरों के अत्यधिक विभेदित तन्त्र से लेकर विस्तृत मैदानों की अपरिवर्तित एकरूपता के, बंगाल तक डेल्टा में नदी मार्गो की जटिलता, भूल – भुलैया से लेकर थार में सतही प्रवाह की पूर्ण

अनुपस्थिति तक विश्व के सर्वाधिक आर्द्र प्रदेश मासिनराम से लेकर शुष्कतम क्षेत्र तक, उत्तर–पूर्व में उष्ण कटिबन्धीय वनों के विस्तार से लेकर घासविहीन क्षेत्रों तक भारत का भौतिक परिवेश विभिन्नतायुक्त है, जिनके कारण सम्पूर्ण देश में विभिन्न प्रकार की प्रादेशिक विषमताएँ पायी जाती हैं।

(2) **आर्थिक संसाधनों में अन्तर** (Differences in Economic Resources) भौगोलिक परिवेश के अनुसार आर्थिक साधनों, जैसे –कृषि, उद्योग तथा परिवहन आदि में अन्तर के कारण भी प्रादेशिक विषमताएँ पनपती हैं। गंगा, सतलज के मैदान में अच्छा कृषि विकास पाया जाता है जबकि थार के रेगिस्तान में पानी के अभाव में तथा हिमालय क्षेत्रों में धरातलीय विषमताओं के कारण कृषि का अल्प विकास हो पाया है। खनिज संसाधनों की उपलब्धता तथा विकास का स्तर, परिवहन व्यवस्था का विकास औद्योगिक प्रगति को प्रभावित करता है। दक्षिण के पठारी भागों तथा हिमालय क्षेत्रों में परिवहन व्यवस्था विकसित नहीं हो पायी है जिसका प्रभाव अनेक आर्थिक क्रियाओं पर पड़ता है। आर्थिक साधनों का विकास भौगोलिक कारकों पर निर्भर करता है।

(3) **सामाजिक कारक** (Social Factors) भारत में सामाजिक तत्वों, भाषा, धर्म तथा जाति की विषमता पायी जाती है। भाषा एक प्रमुख सामाजिक कारक के रूप में प्रादेशिक विभिन्नता का प्रतिबिम्बन करती है। भारत के 28 राज्यों तथा 7 केन्द्रशासित प्रदेशों में कुल 1652 भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें से भारत की 97 प्रतिशत जनसंख्या केवल 23 भाषाएँ बोलती हैं। भारत में भाषाई आधार पर चार प्रादेशिक विभाजन पाये जाते हैं – (1) दक्षिण का द्रविड़ प्रदेश, (2) उत्तर एवं उत्तर –पश्चिम का इण्डो आर्य प्रदेश, (3) उत्तर –पूर्व एवं हिमालय परिमंडल का मान खमेर तथा तिब्बती म्यानमार प्रदेश, तथा (4) अरावली– विंध्य –छोटा नागपुर समूह का आस्ट्रियन प्रदेश भारत में धार्मिक भिन्नता भी पायी जाती है जो प्रादेशिक विषमता को जन्म देती है। भाषा एवं धर्म के आधार पर विकसित संस्कृतियाँ भी प्रादेशिक विषमता उत्पन्न करती हैं। जाति व्यवस्था भी भारत के सामाजिक जीवन को प्रभावित कर विषमता लाती है। इस व्यवस्था की जड़ें प्रमुखत: हिन्दू धर्म है। जिसने साथ –साथ अन्य धर्मो, जैसे मुस्लिम, सिक्ख तथा ईसाइयों को भी प्रभावित किया है।

(4) **विनियोग की मात्रा में अन्तर** (Difference in Amount of Investment) विनियोग की मात्रा से विकास का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। वर्तमान में अपेक्षाकृत अधिक विकसित प्रदेशों से पूर्व में काफी विनियोग हुआ है तथा अन्य में कम, जिस कारण इनके मध्य विषमता उत्पन्न हुई है। सामान्यत: यह देखा गया है कि बन्दरगाह वाले राज्यों, सैनिक महत्त्व के केन्द्रों तथा निर्यात वाली फसलों को उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में आरंभिक समय में भारी मात्रा में विनिवेश किया गया जिससे वे वर्तमान में विकास में अग्रणी हैं तथा इनके लिए कम विनियोग वाले क्षेत्रों में श्रम व पूँजी की आपूर्ति निरन्तर की गई जिससे प्रादेशिक विषमतायें काफी सुदृढ़ हो गईं।

(5) **राजनीतिक एवं प्रशासनिक कारण** (Political and Administration Causes) योजनाओं में राजनीतिक व प्रशासनिक कारणों से विभिन्न राज्यों की प्रगति में अन्तर आ जाता है।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में स्पष्ट हुआ है कि विभिन्न राज्यों की प्रगति समान नहीं रही है। राजनीतिक तथा प्रशासनिक अन्तरों के कारण नियोजित विकास की दर बाधित हुई है। कुछ राज्यों ने अपनी प्रभावशाली औद्योगिक नीतियों के कारण अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से औद्योगिक विकास किया है, जिनमें महाराष्ट्र तथा गुजरात प्रमुख हैं। इसके विपरीत जिन राज्यों का प्रशासनिक ढाँचा कमजोर रहा, उन्होंने आर्थिक विकास में कम दक्षता प्राप्त की है।

(6) **अन्य कारण** (Other Causes) प्रादेशिक विकास पर जनता के दृष्टिकोण, सहयोग, साझेदारी, लोगों की सांस्कृतिक परम्पराओं, ऐतिहासिक परिस्थितियों आदि विभिन्न तत्वों का प्रभाव पड़ता है। इनके अतिरिक्त कृषि विकास, प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन, मानव संसाधन आदि कारक भी प्रादेशिक विषमताएँ उत्पन्न करते हैं।

प्रादेशिक विषमता के कारण किसी भी देश के उपलब्ध साधनों का पूर्ण उपयोग सम्भव नहीं हो पाता, उनका अनुचित उपयोग होता है। जिस कारण सामाजिक लागत में वृद्धि होती है। प्राकृतिक विपदा की आशंका रहती है अत: सन्तुलित विकास के लिए, प्रादेशिक विषमता कम करने के लिए निम्न सुझाव उपयोगी हैं –

(i) आधारभूत ढाँचे (Infrastructure) को सुदृढ़ करने की नीति अपनाना,

(ii) बहुस्तरीय नियोजन प्रणाली को लागू करना,

(iii) विविध केन्द्रचालित परियोजनाओं को राज्य को हस्तान्तरित करना,

(iv) निर्धनता उन्मूलन,

(v) पिछड़े राज्यों को अधिक अनुदान,

(vi) विशेष कार्यक्रम तथा सुविधाएँ,

(vii) सार्वजनिक क्षेत्र का विकास, तथा

(viii) अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों से वित्तीय तथा तकनीकी सहयोग प्राप्त करना।

14.7 भारत के नियोजन प्रदेश

नियोजन प्रदेश ऐसा भू–भाग होता है, जिसमें आर्थिक निर्णयों को क्रियान्वित किया जाता है अर्थात् आर्थिक विकास हेतु लिये गये आर्थिक निर्णयों एवं उनके क्रियान्वयन को नियोजन कहा जाता है। नियोजन के लिए चयनित प्रदेश का स्वरूप प्रशासनिक होता है, क्योंकि नियोजन के लिए आँकड़े प्राय: प्रशासनिक इकाइयों के अनुसार ही उपलब्ध होते हैं। अत: इस आधार पर नियोजन प्रदेश राष्ट्र, राज्य, जिला, तहसील या विकास खण्ड हो सकता है। इन प्रदेशों में नियोजन के उद्देश्य को पूरा करने के लिए भौतिक तथा सामाजिक –सांस्कृतिक समरूपता होनी आवश्यक है। सामान्यत: नियोजन प्रदेश के लिए निम्नांकित तथ्यों का होना आवश्यक है –

(1) नियोजन प्रदेश का विस्तार इतना हो कि उसमें अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हों।

(2) नियोजन प्रदेश के संसाधन भण्डार ऐसे होने चहिए कि उपभोग तथा विनिमय के लिए उत्पन्न का एक सन्तोषजनक स्तर प्राप्त किया जा सके।

(3) नियोजन प्रदेश में भौगोलिक दृष्टि से आन्तरिक समरूपता होनी चाहिए।

(4) इसमें कुछ संकेन्द्रीय बिन्दु होना आवश्यक है।

आर्थिक नियोजन के लिए प्राकृतिक प्रदेशों एवं उनमें विद्यमान संसाधनों की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। नियोजन प्रदेशों के सीमांकन के समय सर्वप्रथम देश को प्राकृतिक प्रदेशों में विभक्त किया जाना चाहिए तत्पश्चात् विभिन्न पदानुक्रम के तहत उप–प्रदेशों में बाँटा जाता है। सूक्ष्म स्तर पर प्रादेशिक सीमा रेखाएँ, प्रशासनिक सीमा रेखाओं के अनुरूप होना चाहिए। लघु स्तर की इकाइयों को मिलाकर मध्यम स्तर के नियोजन प्रदेश निश्चित किये जाते हैं। इन इकाइयों को एक साथ में मिलाने से पूर्व प्राकृतिक कारकों तथा संसाधनों की उपलब्धता की समरूपता को मद्देनजर रखा जाता है। इस प्रकार मध्यम स्तर की इकाईयों को संयोजित करके वृहद् नियोजन प्रदेशों का निर्धारण किया जाना चाहिए। इन वृहद् नियोजन प्रदेशों की संसाधन उपयोग सम्बन्धी समस्याएँ भी समान होनी चाहिए।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर भारत को 13 वृहद् तथा 35 मध्यस्तरीय नियोजन प्रदेशों में विभक्त किया गया है। जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न हैं।

(1) **दक्षिण प्रायद्वीपीय प्रदेश–** इसका विस्तार तमिलनाडु तथा केरल में है। यहाँ पर तटीय मत्स पालन, कृषि, खनिज, वन सम्पदा, सिंचाई एवं ऊर्जा के लिए जल संसाधन, तापीय तथा अणु शक्ति साधन उपलब्ध हैं। इसके प्रमुख औद्योगिक नगर कोयम्बटूर, कोचीन तथा चेन्नई हैं। यह प्रदेश आवागमन के साधनों के माध्यम से प्राकृतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सम्बन्धों के द्वारा एकरूपता लिए हुए है। इसे तीन मध्यम स्तरीय नियोजन प्रदेशों में विभक्त किया गया है जो केरल, चेन्नई, कोयम्बटूर औद्योगिक प्रदेश तथा तमिलनाडु के तटवर्ती मैदान है।

(2) **मध्यवर्ती प्रायद्वीय प्रदेश –**यह प्रदेश कर्नाटक, गोवा तथा सम्पूर्ण आन्ध्र प्रदेश में विस्तृत है। यहाँ पर तटीय क्षेत्र में मल्ल पालन, आन्ध्र प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में कृषि होती है तथा कर्नाटक व गोवा में लोहा, मैंगनीज, बॉक्साइट तथा कोयला, आदि खनिज पाये जाते हैं। मालनाड़ व कुर्ग के बाग –बगीचे तथा साथ ही पर्याप्त जल सम्पदा विद्यमान है। हैदराबाद, बंगलोर तथा पणजी प्रमुख नगर हैं। इस प्रदेश में तुंगभद्रा बहुउद्देश्य परियोजना, सुदृढ़ औद्योगिक विकास तथा सांस्कृतिक एकता प्रमुख एकता स्थापक कारक है।

(3) **पश्चिमी प्रायद्वीपीय प्रदेश–**इसका विस्तार पश्चिमी महाराष्ट्र के तटीय तथा आन्तरिक जिलों में है, जिनमें प्रमुख नगर मुम्बई, पुणे, शोलापुर, नासिक आदि हैं। संसाधनों की उपलब्धता की दृष्टि से यहाँ तटीय क्षेत्रों का मल्ल पालन, कपास कृषि, खनिज भण्डार (लौह तथा अलौह धातु), जल एवं अणु शक्ति साधन प्रमुख हैं। मुम्बई पोताश्रय का पृष्ठ प्रदेश है जहाँ आर्थिक –सामाजिक एकता घनिष्ठ है।

(4) **मध्य –दक्कन प्रदेश –**इसमें पूर्वी महाराष्ट्र, मध्य तथा दक्षिणी मध्य प्रदेश तथा पश्चिमी छत्तीसगढ़ सम्मिलित हैं जिनका प्रमुख नगर नागपुर है। यहाँ उद्यान, कपास कृषि, लौह अयस्क (चन्द्रपुर), कृषि आधारित उद्योग, नर्मदा जल संसाधन तथा सतपुड़ा तापीय शक्ति की सम्भावना आदि संसाधन प्रमुख है। प्राकृतिक बनावट व मृदा संगठन की एकरूपता पायी जाती है ।

(5) **पूर्वी प्रायद्वीपीय प्रदेश –**इस प्रदेश में उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, पूर्वी मध्य प्रदेश, उत्तरी –पूर्वी आन्ध्र प्रदेश, समीपवर्ती पश्चिमी बंगाल तथा उत्तर प्रदेश के क्षेत्र समाहित हैं। यहाँ पर

पूर्वी तट पर मत्स पालन, कोयला, लौह – अयस्क, मैंगनीज, बॉक्साइट, अभ्रक, वन –सम्पदा, महानदी घाटी में कृषि, जल तथा तापीय विद्युत का विकास, लौह –इस्पात उद्योग का विकास आदि संगठित विकास के लिए सम्पदा के रूप में उपलब्ध हैं। राउरकेला, जमशेदपुर, भिलाई, दुर्गापुर, कटक तथा विशाखापट्टनम् यहाँ के प्रमुख नगर हैं।

(6) **गुजरात प्रदेश –**इसका विस्तार गुजरात राज्य में है। यहाँ संसाधन उपलब्धता की दृष्टि से पेट्रो –रसायन, नमक, चूना–पत्थर, बॉक्साइट, कृषि विकास (दाँतीवाड़ा, नर्मदा) तथा मछली व पशुपालन प्रमुख हैं,जो आवागन के साधनो के माध्यम से तथा सांस्कृतिक तत्वों द्वारा एकरूपता लिये हुए है। अहमदाबाद, बड़ोदरा, सूरत तथा पोरबन्दर इस प्रदेश के प्रमुख नगर हैं।

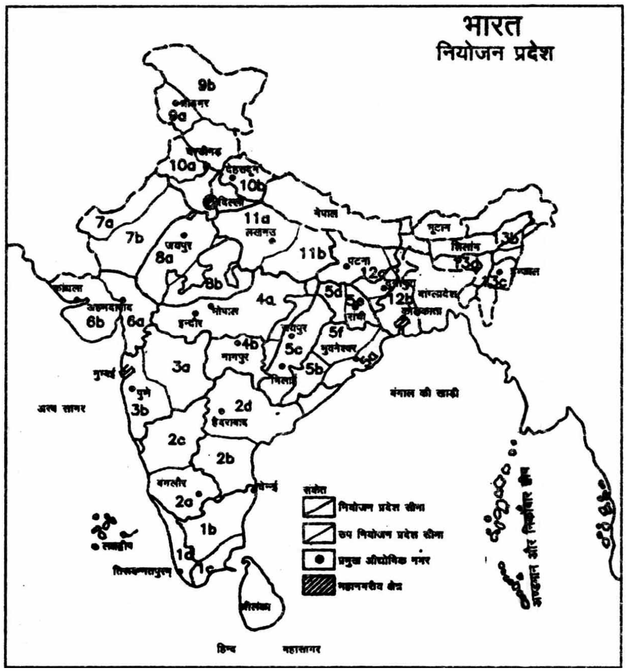

चित्र–14.1 : भारत के नियोजन प्रदेश

(7) **पश्चिमी राजस्थान–** पश्चिमी राजस्थान के विस्तृत क्षेत्र में लिग्नाइट कोयला, जिप्सम, चूना–पत्थर, मूल्यवान पत्थर, खनिज तेल, अणु शक्ति विकास, पशुपालन विकास व इन्दिरा गाँधी नहर द्वारा सिंचित क्षेत्र में कृषि विकास आदि संगठित विकास के लिए प्रमुख सम्पदा है यहाँ की प्राकृतिक जलवायु उच्च स्तर की समरूपता रखती है ।साथ ही इन्दिरा गाँधी नहर के विकास तथा इस क्षेत्र की सामाजिक व सांस्कृतिक संरचनाओं द्वारा यह क्षेत्र एकरूपता में दिखाई देता है। जोधपुर, बीकानेर तथा श्री गंगानगर इसके प्रमुख नगर है।

(8) **अरावली प्रदेश–** अरावली प्रदेश का विस्तार पूर्वी राजस्थान तथा पश्चिमी मध्य प्रदेश में है, जहाँ संगठित विकास के लिए आलौह धातुएँ, सीसा, जिंक, ताँबा, अभ्रक, चूना–पत्थर, संगमरमर नमक, पशुपालन, सिंचित कृषि (चम्बल घाटी परियोजना) जल तथा अणु शक्ति (कोटा) आदि सम्पदा के रूप में उपलब्ध है। यहाँ ऐतिहासिक व सांस्कृतिक सम्बन्धों की एकरूपता पायी जाती है। कोटा, जयपुर, अजमेर, इन्दौर, रतलाम तथा सवाई माधोपुर इसके प्रमुख नगरीय क्षेत्र हैं।

(9) **जम्मू–कश्मीर तथा लद्दाख प्रदेश–** यहाँ विस्तृत वन–सम्पदा, फलोद्यान, उद्योग व पर्यटन तथा सांस्कृतिक तत्वों की एकरूपता विद्यमान है। श्रीनगर, सोपोर, जम्मू तथा लेह प्रमुख नगरीय क्षेत्र हैं। इसमें जम्मू तथा लद्दाख मध्यमस्तरीय प्रदेश है ।

(10) **ट्रांस सिंधु–गंगा का मैदान तथा पहाड़ियाँ–** इसका विस्तार पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में है। यहाँ पंजाब, हरियाणा में उच्च प्रकार की सिंचित कृषि का विकास हुआ है। हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड में कृषि उद्यानों तथा वन आधारित विकास, पर्यटन, जल विद्युत आदि का विकास हुआ है। यह प्रदेश उर्वर भूमि, साहसी लोगों तथा सामाजिक, सांस्कृतिक व ऐतिहासिक कारकों से संगठित है। दिल्ली, मेरठ, लुधियाना, चण्डीगढ़, गुड़गाँव, फरीदाबाद तथा देहरादून आदि इस प्रदेश के प्रमुख नगरीय क्षेत्र हैं।

(11) **गंगा–यमुना का मैदानी प्रदेश –**यह प्रदेश पूर्वी, मध्य तथा दक्षिणी –पश्चिमी, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के उत्तरी जिलों में विस्तृत है। यहाँ उपलब्ध संसाधनों में गंगा के मैदान की कृषि सम्पदा मध्य प्रदेश के वन क्षेत्र तथा कृषि सम्बन्धी उद्योग व विद्युत विकास प्रमुख हैं। इस प्रदेश में गंगा –यमुना का सांस्कृतिक प्रभाव विद्यमान है। कानपुर, आगरा, वाराणसी, इलाहाबाद तथा लखनऊ इस प्रदेश के प्रमुख नगर हैं।

(12) **गंगा का निचला मैदान–** यह उत्तर बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में फैला हुआ है। यहाँ मैदानी भागों में कृषि (जूट), पर्वतीय भागों में चाय, बरौनी क्षेत्र में खनिज तेल, रसायन उद्योग, जल व तापीय विद्युत विकास आदि कारक विकास के लिए संगठित रूप में उपलब्ध हैं। इस क्षेत्र को आर्थिक पूरकता व कोलकाता बन्दरगाह का पृष्ठ प्रदेशीय प्रभाव आदि एकता में बाँधते हैं। कोलकाता, पटना, बरौनी तथा वर्धमान यहाँ के प्रमुख शहर हैं।

(13) **उत्तरी –पूर्वी प्रदेश–** इसका विस्तार पूर्वोत्तर राज्यों–असम, अरूणाचलप्रदेश, मेघालय, नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा तथा उत्तरी –पश्चिमी बंगाल के पहाड़ी जिलों में है। यहाँ पर चाय के बागान, पटसन की कृषि, खनिज तेल, सिलीमीनपाइट का खनन व वनोपजें, जल –विद्युत् तथा तापीय शक्ति विकास की सम्भावनाएँ आदि कारक संगठित विकास के लिए उपलब्ध हैं। इसमें आर्थिक अन्तर –निर्भरता, सांस्कृतिक विविधता आदि तत्व पाये जाते हैं। डिगबोई, गुवाहाटी, शिलांग, तिनसुखिया तथा दार्जिलिंग इस प्रदेश के प्रमुख नगरीय क्षेत्र हैं।

उपर्युक्त वर्ण ने उपरान्त हम कह सकते हैं कि भारत में नियोजन प्रदेशीकरण की यह योजना अभी अन्तिम नहीं है। प्रत्येक योजना के अपने गुण–दोष हैं अत: यह वर्णन आर्थिक धारण की आवश्यकता एवं राष्ट्रीय योजना पद्धति में इसकी उपयोगिता को परिलक्षित करती है। अत: इसमें समय के साथ परिवर्तन सम्भव है।

14.8 गरीबी एवं निर्धनता उन्मूलन

भारत एक लम्बे समय से गरीबी से ग्रस्त रहा है। जिसमें विगत शताब्दी में लगातार गिरावट आ रही है। इसमें सर्वाधिक कमी स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत आयी है। जब देश में एक ओर कृषि विकास एवं गरीबी उन्मूलन के प्रयास किये गए तथा दूसरी ओर भारतीय अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय संरचना (Sectoral Structure) में भी परिवर्तन आया है। जिसमें स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व प्राथमिक

व्यवसाय में कार्यरत लोगों का प्रतिशत घटकर द्वितीयक एवं तृतीयक व्यवसायों में बढ़ा है। इस प्रकार देश में विगत पांच दशकों में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति हुई है। यह अर्थव्यवस्था के विस्तार एवं विविधीकरण से संभव हुआ है।

गरीबी को परिभाषित करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने अलग – अलग आधार अपनाये है। जुलाई 1962 में योजना आयोग द्वारा गठित एक समिति ने राष्ट्रीय आधार पर गरीबी को न्यूनतम उपभोग स्तर के आधार पर परिभाषित किया। इस समिति ने प्रचलित कीमतों के आधार पर न्यूनतम जीवन के लिए आवश्यक प्रति व्यक्ति आय (तत्कालीन 20 रूपये मासिक) निर्धारित की थी। इसमें शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भिन्नता नहीं थी। सर्वमान्य परिभाषा योजना आयोग ने दी है जिसके अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में स्व व्यक्ति के प्रतिदिन के भोजन में 2400 कैलोरी होनी चाहिए। आहार संबंधी आवश्यकताओं को मध्य नजर रखते हुए 1979 – 80 की कीमतों पर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा 77 रूपये तथा शहरी क्षेत्रों में 88 होती है।

देश में गरीबी की रेखा से नीचे से जीवनयापन करने वाली जनसंख्या के अनेक अनुमान लगाये गये हैं। इनमें दांडेकर व रथ, बी. एस. मिन्हास, एम. एम्स. आहलूवालिया के अनुमान प्रमुख हैं। संस्थाओं में योजना आयोग व विश्व बैंक के अनुमान महत्वपूर्ण है। एम. एस. आहलूवालिया ने 1960 – 61 की कीमतों पर ग्रामीण क्षेत्रों के लिए गरीबी रेखा की रेखा को 15 रूपये प्रति माह के रूप में पीरभाषित किया था। उनके अनुसार 1956 – 57 में देश में ग्रामीण जनसंख्या का 54.1 प्रतिशत गरीबी की रेखा के नीचे थे। विश्व बैंक ने भारत में गरीबी के अनुमान लगाने के लिए राष्ट्रीय नमूना सर्वे क्षण (National Sample Survey, NSS) द्वारा उपलब्ध कराये आंकड़ों का उपयोग किया है। इन आंकड़ों के आधार पर विश्व बैंक ने लगभग चार दशकों (सन् 1951 से 1992) की अवधि के गरीबी संबंधी अनुमान प्रस्तुत किये हैं। इसके अनुसार 1992 में ग्रामीण क्षेत्रों में 43.5 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में 33.7 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे थी।

भारत में निर्धनता की समस्या कोई नवीन नहीं है किन्तु इस पर सर्वप्रथम अध्ययन दादाभाई नौरोजी वे सन् 1869 में किया था जिसमें भारत की वार्षिक आय मात्र बीस रुपया प्रति व्यक्ति बताई थी। 1899 में दिग्बाई ने औसत आय 18 रुपये प्रतिवर्ष आँकी । 1945 में राव ने एक अध्ययन के आधार पर वार्षिक औसत आय 204 रूपए बताई। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत इस ओर अनेक प्रयास किए गए। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के अनुमान के आधार पर 1953 – 54 में राष्ट्रीय आय का 17 प्रतिशत भाग जनसंख्या के 50 भाग द्वारा उपभोग में लाया जाता था। मुखर्जी ने 1961 – 62 में अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष दिया कि उस समय को आवश्यकताओं के अनुसार ग्रामीण को कम –से –कम 15 रुपये प्रति माह एवं नगरीय को 22 रूपये प्रति माह आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यकता थी। इस दृष्टि से 38 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या व 44 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रही थी। सन् 1969 – 70 में दाण्डेकर व रथ के अध्ययन के अनुसार गाँव में प्रति व्यक्ति 15 रुपये मासिक रख नगरों में 22 रुपये मासिक न्यूनतम व्यय है। इनके अनुसार ग्रामीण जनसंख्या के 40 प्रतिशत और नगरीय जनसंख्या के 41 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी की रेखा के नीचे जीवन –यापन करने को बाध्य है।

वर्तमान में गरीबी का सर्वमान्य अनुमान योजना आयोग द्वारा राष्ट्रीय प्रतिदर्श (नमूना) सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा घरेलू उपभोक्ता व्यय के संबंध में बड़े पैमाने पर किए गए पंचवार्षिक

प्रतिदर्श सर्वेक्षण (Sample Survey) के आधार पर किया जाता है। इस आधार पर 1999 – 2000 से संबंधित है जिसके अनुसार वर्तमान में देश में 26.1 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है। यह अनुपात 1977 – 78 में 51.3 प्रतिशत या इस प्रकार गरीबों की संख्या 328.9 मिलियन (1977 – 78) से घटकर वर्तमान में 260.3 मिलियन ही रह गई है। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2000 – 2007) में वर्ष 2007 तक निर्धनता अनुपात में पांच प्रतिशत कमी करके 19.3 प्रतिशत तक लाने व वर्ष 2012 तक 15 प्रतिशत कमी लाने का लक्ष्य रखा गया है। इसी प्रकार वर्ष 2007 तक ग्रामीण निर्धनता 21.1 प्रतिशत तथा शहरी निर्धनता 16.1 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य रखा गया है।

तालिका – 14.1 : भारत में गरीबी के अनुपात की प्रवृत्ति 1973 - 2000

(संख्या दस लाख व्यक्तियों में)

वर्ष	संख्या संपूर्ण भारत	सम्पूर्ण भारत का प्रतिशत	ग्रामीण संख्या	ग्रामीण प्रतिशत	नगरीय संख्या	नगरीय प्रतिशत
1973–74	321.3	54.9	261.3	56.4	60.0	49.0
1977–78	328.9	51.3	264.3	53.1	64.6	45.2
1983–84	322.9	44.5	252.0	45.7	70.9	40.8
1993–94	320.3	36.0	244.0	37.3	76.3	32.4
1999–00	260.3	26.1	193.2	27.1	67.0	23.6
2007*	220.1	19.3	170.5	21.1	49.6	15.1

* अनुमानित Source: Economic Survey, 2004–05

यद्यपि कृषि के स्थिर विकास एवं सरकार के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के प्रभाव से गरीबी का प्रतिशत निरंतर कम हो रहा है लेकिन ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या में यह अंतर कम नहीं हुआ है। वहीं इसमें प्रादेशिक विषमता भी पायी जाती है। हरित क्रांति के बाद कृषि विकास एवं 1980 के दशक में गैर कृषि रोजगारों में वृद्धि से भी गरीबी कम हुई है। गरीबी में केरल, जम्मू और कश्मीर, गोवा, लक्ष द्वीप, दिल्ली, आन्धप्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक, पश्चिमी बंगाल तथा अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह में उल्लेखनीय कमी आयी है। कृषि विकास से गरीबी कम करने में पंजाब व हरियाणा सफल रहे हैं। केरल एक मात्र राज्य है जहाँ गरीबी उन्मूलन के लिए मानव संसाधन विकास पर बल दिया गया। पश्चिमी बंगाल में भूमि सुधार व पंचायतों के सशक्तिकरण को लागू किया गया!

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली जनसंख्या के प्रतिशत में बड़ी प्रादेशिक विषमता मिलती है। राष्ट्रीय स्तर पर सबसे कम गरीबी का प्रतिशत जम्मू और कश्मीर (3.48 प्रतिशत) में तथा सबसे अधिक उड़ीसा में (47.1 प्रतिशत) में है। देश के मध्यवर्ती एवं उत्तर मध्यवर्ती व पूर्वी भारत में 30 से 40 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा से नीचे हैं।

तालिका– 14.2 : भारत में गरीबी का अनुपात (1973–74 और 1999–2000)

राज्य केन्द्र शासित प्रदेश	1973 – 74	1999 – 2000		
	योग	योग	ग्रामीण	नगरीय
आध्र प्रदेश	48. 96	15.77	11. 5	26.63

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	55. 56	20.99	20. 55	22.21
अरूणाचल प्रदेश	51. 93	33.47	40. 04	7.47
असम	51. 21	36.9	40.04	7.47
बिहार	61.91	42.6	44.3	32.91
चंडीगढ़	27. 96	5.75	5. 75	5.75
दादरा और नागर हकेली	46. 55	17.14	17. 57	13.52
दमण और दीव	अनुपलब्ध	4.44	1. 35	7.52
दिल्ली	49. 61	8.23	0.40	9.42
गोवा	44. 26	4.40	1. 35	7.52
गुजरात	48. 15	14.07	13. 17	15.59
हरियाणा	35. 36	8.74	8. 27	9.99
हिमाचल प्रदेश	26. 39	7.63	7.94	4.63
जम्बू और कश्मीर	40. 83	3.48	3. 97	1.98
कर्नाटक	54. 47	20.04	17. 38	25.25
केरल	59. 79	12.72	9. 38	20.27
लक्षद्वीप	59.68	15.60	9.38	20.27
मध्य प्रदेश	61.78	37.43	37.06	38.44
महाराष्ट्र	53.24	25.02	23.72	26.81
मणिपुर	49.96	28.54	40.04	7.47
मेघालय	50.20	33.87	40.04	7.47
मिजोरम	50.32	19.47	40.04	7.47
नागालैंड	50.81	32.67	40.04	7.74
उडीसा	66.18	47.15	48.01	42.83
पांडिचेरी	53.82	21.67	20.55	22.11
पंजाब	28.15	6.16	6.35	5.75
राजस्थान	46.14	15.28	13.75	19.85
सिक्किम	50.86	36.55	40.04	7.47
तमिलनाडु	54.94	21.12	20.55	22.11
त्रिपूरा	51.00	34.44	40.04	7.47
उत्तर प्रदेश	57.07	31.15	20.55	30.89
पाश्चम बंगाल	63.43	27.02	40.04	14.86
संपूणं भारत	54.88	26.10	31.22	23.62

गरीरबी निवारण (Poverty Alleviation)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत देश में ग्रामीण विकास एवं रोजगार कार्यक्रमों व कृषि विकास द्वारा गरीबी निवारण के अनेक प्रयास किये गये है। लेकिन गरीबी निवारण को आर्थिक नियोजन में

मुख्य स्थान पाँचवीं योजना के दौरान मिला। 1970 के दशक में इस दिशा में ठोस कदम उठाते हुऐ ग्रामीण गरीब जनता के लिए अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये इनमें सूखा संभाव्य क्षेत्र कार्यक्रम, लघु एवं सीमांत किसान विकास अभिकरण, काम के बदले अनाज कार्यक्रम प्रमुख हैं। ये कार्यक्रम केवल स्थानीय प्रभाव ही दिखा पाये। इसलिए 1980 के दशक में कुछ राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम चलाये गये इनमें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme, IRDP) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण खेतिहर मजदूर रोजगार गारण्टी कार्यक्रम प्रमुख हैं। गरीबी उन्मुलन के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रभावी हो सकते है :

(i) **रोजगार उत्पन्न करना–** यह समस्या गाँवों में अधिक है जहाँ कृषक 4–5 माह बेकार बैठा रहता है। कुटीर उद्योगों में इसी प्रकार श्रमिक पर्याप्त समय तक निष्क्रिय रहते हैं। उनके लिए कुछ अतिरिक्त व्यवसायों की व्यवस्था की जाए।

(ii) **कृषि–व्यवस्था में सुधार–** कृषि के नवीनतम साधनों का उपयोग बढ़ाया जाए। कृषि–मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी दी जाए। भूमि सुधार के नियम लागू किए जाएँ तथा भूमि –हीनो को कृषि योग्य भूमि वितरित की जाए।

(iii) **तीव्र आर्थिक विकास–** आर्थिक विकास की गति अति धीमी है, उसे तेज करने के प्रयास किए जाएँ। इसके लिए अधिकाधिक औद्योगीकरण किया जाए, गाँवों में छोटे उद्योगों को बढ़ावा दिया जाये, सरकारी उद्योगों के प्रबन्ध में कुशलता लाई जाए तथा उद्योगपतियों के एकाधिकार को समाप्त करके उसका राष्ट्रीयकरण किया जाए। इससे निर्धनता में अवश्य कमी होगी क्योंकि अनेक लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे।

(iv) **जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण–** तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या जो हमारी भावी योजनाओं को कार्यान्वित नहीं होने देती, उस पर नियन्त्रण रखा जाए जिससे अधिकाधिक व्यक्तियों को उच्च शिक्षा व रोजगार मिल सके। इसके लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम को अधिकाधिक महत्व दिया जाए।

(v) **शिक्षा का प्रसार–** आज सामान्य शिक्षा के साथ–साथ व्यवसायोन्मुख शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे बढ़ती हुई बेरोजगारी पर नियन्त्रण किया जा सके। शिक्षा की योजना आर्थिक विकास से जुड़ी होनी चाहिए। इससे निर्धनता का निराकरण हो सकेगा।

(vi) **साधनों का उचित वितरण –**निर्धनता की समाप्ति के क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि उत्पादन के साधनों को समाज के सभी लोगों में उपयुक्त रूप से वितरित किया जाए। ऐसी व्यवस्था प्रारम्भ की जाए, जिसके द्वारा सम्पत्ति का वितरण इस प्रकार किया जाये, जिसका लाभ निर्धन वर्ग को मिले। कृषकों को उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उचित मूल्य मिले। इससे निर्धनता पर नियन्त्रण किया जा सकेगा।

(vii) **असामाजिक कुप्रथाओं का उन्मूलन करना–** भारत में अनेक सामाजिक कुरीतियाँ व कुप्रथाएं व्याप्त हैं । जिन्हें व्यक्ति ऋण लेकर पूरा करता है। मृत्यु भोज व दहेज जैसी कुरीतियों के कारण निम्न वर्ग सदैव कर्ज में डूबा रहता है। इन पर नियन्त्रण पाने के लिए सरकारी कानूनों को प्रभावशाली बनाये जाने की आवश्यकता है। इसके विरोध मे कड़ी दण्ड –व्यवस्था हो, साथ ही सामाजिक चेतना व जन–जागरण की आवश्यकता है जिससे इन कुरीतियों पर नियंत्रण लाया जा सकता है जो व्यक्ति को निर्धन बनाने के लिए उत्तरदायी हैं।

निर्धनता उम्लन के प्रमुख कार्यक्रम

(i) **काम के बदले अनाज का राष्ट्रीय कार्यक्रम–**राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम के अनुरूप, 14 नवंबर, 2004 को काम के बदले अनाज का राष्ट्रीय कार्यक्रम देश के 150 सर्वाधिक पिछड़े जिलों में इस उद्देश्य के साथ शुरू किया गया था कि पूरक वेतन रोजगार के सृजन को बढ़ाया जाए। यह कार्यक्रम ऐसे सभी ग्रामीण गरीबों, के लिए है जिन्हें वतन रोजगार की जरूरत है और जो शारीरिक अकुशल श्रम करना चाहते हैं। यह कार्यक्रम 100 प्रतिशत केन्द्रीय प्रायोजित योजना के रूप में कार्यान्वित किया जाता है और राज्यों को खाद्यान्न मुक्त मुहैया कराया जाता है।

(ii) **स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना–** वर्ष 1999 में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य सहायता प्राप्त गरीब परिवारों (स्वरोजगारी) को बैंक ऋण एवं सरकारी सब्सिडी के मिले–जुले रूप के जरिए स्व –सहायता समूहों में संगठित करके गरीबी रेखा से ऊपर लाना है।

(iii) **सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना–** वर्ष 2001 में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य सभी ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त वेतन – रोजगार मुहैया कराना है और ऐसा करके खाद्य सुरक्षा और पोषण स्तरों में सुधार लाना है। यह योजना ऐसे सभी ग्रामीण गरीबों के लिए हे जिन्हें वेतन रोजगार की जरूरत है और जो गांव के आस–पास शारीरिक और अकुशल श्रम करना चाहते हैं। यह कार्यक्रम पंचायती राज संस्थाओं (पी आर आई) के जरिए कार्यान्वित किया जा रहा है।

(iv) **ग्रामीण आवास –इन्दिरा आवास योजना–** 1999 – 2000 से शुरू की गई इन्दिरा आवास योजना गरीबों के लिए मुफ्त में मकानों के निर्माण की प्रमुख योजना है। ग्रामीण विकास मंत्रालय इस प्रयोजनार्थ ग्रामोदय योजना (पी एम जी आई) वर्ष 2000– 01 में शुरू की गई पी एम जी वाई में प्राथमिक स्वास्थ्य ,.प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण आश्रय –स्थल, ग्रामीण पेय जल, पोषण और ग्रामीण विद्युतीकरण जैसी चुनिंदा बुनियादी सेवाओं के लिए राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता (ए सी ए)के आवटन की बात की गई है।

(v) **ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम –** 1995 में ग्रामीण इलाकों और छोटे शहरों में स्व –रोजगार के अवसर पैदा करने के उद्देश्य से शुरू किया। गया इस योजना का खादी और ग्रामोद्योग आयोग (के वी आई सी) द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। आर ई जी पी के अंतर्गत, अधिकतम 25 लाख रु. की लागत वाली परियोजनाओं के लिदू उद्यमी के वी आई सी और बैंक ऋणों से प्राप्त मार्जिन धन–सहायता का लाभ उठाकर ग्राम –उद्योग स्थापित कर सकते हैं। आर ई जी पी का आरंभ 31 मार्च, 2००4 को हुआ।

(vi) **प्रधानमंत्री रोजगार योजना –** 1993 में यह योजना इस उद्देश्य के साथ शुरू की गई कि शिक्षित बेरोजगार युवकों को कोई अर्थक्षम काम शुरू करने में सहायता देकर स्व–रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जाएं।

(vii) **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना –** दिसम्बर, 2000 में शत प्रतिशत केन्द्रीय प्रायोजित योजना के रूप में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य दसवीं योजनावधि के अंत तक ग्रामीण क्षेत्रों में 500 या अधिक की जनसंख्या वाली संपर्क रहित बस्तियों को ग्रामीण सम्पर्क –सुविधा

मुहैया कराना है। ग्रामीण सडकों में वृद्धि करने और उनका आधुनिकीकरण राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम की एक मद के रूप में शामिल किया गया है। यह कार्यक्रम मुख्यतया केन्द्रीय सड़क निधि में डीज़ल उपकर के अर्जन से वित्तपोषित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, कार्यक्रम की वित्तीय जरूरतों को पूरा करने के लिए बहुपक्षीय वित्तपोषण एजेन्सियों और घरेलू वित्तीय संस्थाओं से सहायता प्राप्त की जा रही है।

(viii) **सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (डी पी ए पी) मरूस्थल विकास कार्यक्रम (डी डी पी) और समेकित बंजर भूमि विकास कार्यक्रम (आई डबल्यू डी पी)** सूखा प्रवण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के लिए 1974 में डी पी. ए पी. तथा मरुस्थलीय क्षेत्रों में डी डी पी. तथा मरुस्थलीय क्षेत्रों में 1977 –78 में डी. डी. ए. पी. तथा शेष बचे क्षेत्रों में 1989 में आई. डब्ल्यू.डी पी. चलाये गये।

(ix) **अन्त्योदय अन्य योजनाएं–**दिसम्बर, 2000 में शुरू की गई ए ए वाई लक्षित सार्ववनिक वितरण प्रणाली (टी पी डी एस) के अंतर्गत गरीब परिवारों को 2.00 रु. प्रति कि ग्रा. गेहूँ और 3.00 रु. प्रति कि ग्रा. चावल की अत्यधिक सब्सिडी –प्राप्त दर पर खाद्यान्न मुहैया कराती है।

(x) **वाल्मिकी अम्बेडकर आवास योजना (वैम्बे) –**दिसम्बर, 2001 में शुरू की गई वैम्बे गन्दी बस्तियों में रहने वालों के घरों के निर्माण और उन्नयन को सुसाध्य बनाती है तथा इस योजना के एक घटकनिर्मल भारत अभियान के अन्तर्गत सामुदायिक शौचालयों के जीरए एक स्वस्थ और समर्थकारी वातावरण मुहैया कराती है। केन्द्रीय सरकार 50 प्रतिशत की सब्सिडी देती है और शेष 50 प्रतिशत की व्यवस्था राज्य सरकार द्वारा की जाती है।

(xi) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना (NREGA) –इसे फरवरी 2006 में आरम्भ किया गया था। पहले देश के चुनिन्दा 200 जिलों में लागू किया था। अप्रैल 2008 से इसे पूरे राष्ट्र आरम्भ कर दिया। इसमें प्रत्येक परिवार के एक अकुशल श्रमिक को 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जाता है।

बोध प्रश्न – 2

1. प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं में किन तत्वों को महत्व दिया गया?
   ....
   ....
2. संतुलित क्षेत्रीय विकास को महत्व किस योजना में दिया गया?
   ....
   ....
3. प्रादेशिक विषमता के दो सूचक बताइये।
   ....
   ....
4. प्रादेशिक विकास के प्रमुख सूचक कौन –कौन से हैं?
   ....
   ....

5.	भारत को कितने नियोजन प्रदेशों में विभाजित किया गया है? ....

14.9 सारांश (Summary)

भारत में प्रादेशिक नियोजन सम्बन्धी अनेक योजनायें चली है जिनमें अधिकांश के प्रभावी परिणाम आये हैं। इसके पश्चात् भी विषमताएँ पायी जाती हैं जिनमें भौगोलिक, आर्थिक एवं सामाजिक –सांस्कृतिक विषमताएँ प्रमुख हैं। इनको स्थानीय स्तर पर संगठित करके नियोजन हेतु अनेक कार्यक्रम चलाये जाते रहे हैं लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर भारत को 13 नियोजन प्रदेशों में विभाजित किया गया है। भारत में आर्थिक विषमता का सबसे बड़ा सूचक गरीबी है जिसके कारणों एवं उपायों की विवेचना भी इस अध्याय में की गई है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में भारत में प्रादेशिक विकास एवं नियोजन सम्बन्धी पक्षों की विस्तृत विवेचना की गई है।

14.10 शब्दावली (Glossary)

- **प्रादेशिक नियोजन :** किसी भी प्रदेश के प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग, प्राकृतिक पर्यावरणीय रूपांतरण, उत्पादन शक्तियों तथा उसके विवेकपूर्ण संगठन पर आधारित होता है।
- **नियोजन प्रदेश :** यह ऐसा भू –भाग होता है, जिसमें आर्थिक निर्णयों को क्रियान्वित किया जाता है।
- **संसाधन विकास प्रदेश :** ऐसे प्रदेशों का सीमांकन धरातलीय दशाओं, भूगर्भिक बनावट, जलवायु, मृदा, भूमि उपयोग, फसल प्रारूप, जनसंख्या घनत्व तथा विभिन्न संसाधनों की प्राप्ति के आधार पर किया जाता है।
- **योजना आयोग :** यह भारत सरकार की एक सलाहकार संस्था है। इसके द्वारा भारत के भू– आर्थिक तथा संसाधन प्रदेशों की राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर योजनाएँ निर्मित की गई है।
- **प्रादेशिक विषमता :** किसी प्रदेश में पायी जाने वाली विकास की भिन्नता को प्रादेशिक विषमता कहते हैं।

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Singh आर.एल.(1968). India–A Regional Geography, NAGI, Banaras.
2. गुर्जर, आर. के. एवं जाट. बी. सी. (2008), भारत का भूगोल, पंचशील प्रकाशन,।
3. Tirtha, R. (2001), Geography of India, Rawat Publication, Jaipur.
4. चांदना, आर. सी. (2003), प्रादेशिक नियोजन, कल्याणी पब्लिशर्स, जालंधर।
5. श्रीवास्तव, वी. के. (2004), भारत में प्रादेशिक नियोजन, वसुंधरा प्रकाशना, गोरखपुर।
6. भारत 2009 (2009), प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।
7. जाट, बी. सी. (2007), भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मलिक एण्ड कं., जयपुर। –

14.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. प्रदेश के प्राकृतिक एंव मानवीय संसाधनों के पूर्णरूप से विकास करने के लिए स्व सुनियोजित प्रयास प्रादेशिक नियोजन कहलाता है।
2. 7
3. इसमें अवकृमित हो रहे पर्यावरण को नियोजित किया जाता है।
4. (i) प्राकृतिक संसाधनों का पोषणीय विकास (ii) प्रादेशिक आय में समानता
   (iii) सन्तुलित विकास में भूमिका
5. इनके सीमांकन में संकेंद्रियता तथा प्रशासनिक सुविधा के मध्य सन्तुलन आवश्यक है।

बोध प्रश्न – 2

1. ओद्योगिक एवं कृषि विकास को।
2. नौवीं योजना में।
3. (i) प्रति व्यक्ति आय एवं निर्धनता (ii) बेरोजगारी
4. (i) राष्ट्रीय आय मैं वृद्धि (ii) प्रति व्यक्ति आय मैं
   (iii) जीवन स्तर में वृद्धि (iv) आय का समान
5. 13

14.13 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में प्रादेशिक विकास एवं नियोजन पर लेख लिखिए।
2. पंचवर्षीय योजनाओं में प्रादेशिक नियोजन का विवरण दीजिए।
3. प्रादेशिक विषमता को दर्शाने वाले प्रमुख सूचकों का वर्णन कीजिए।
4. भारत को नियोजन प्रदेशों मे विभाजित कर उनकी विस्तृत विवेचना कीजिए।
5. भारत में गरीबी रख निर्धनता उन्मूलन की भौगोलिक व्याख्या कीजिए।

इकाई15: भारत के भौगोलिक प्रदेश (Geographical Regions of India)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 भारत के प्राकृतिक प्रदेशों का निर्धारण
15.3 आर. एल. सिंह के अनुसार भारत के भौगोलिक प्रदेश
15.3.1 विशाल मैदान
15.3.2 हिमालय पर्वतीय प्रदेश
15.3.3 प्रायद्वीपीय उच्च भूमि
15.3.4 भारतीय तट और द्वीप –समूह
15.4 सारांश
15.5 शब्दावली
15.6 सन्दर्भ ग्रन्थ
15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे :

- भौगोलिक प्रदेश का अभिप्राय,
- भारत के भौगोलिक प्रदेश का निर्धारण,
- भारत के भौगोलिक प्रदेशों की मुख्य विशेषताएँ।

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

भौगोलिक अध्ययन का एक मुख्य उद्देश्य तत्वों की समानता के आधार भौगोलिक प्रदेशों का निर्धारण करना है। अस्तु प्रस्तुत इकाई में भारत के भौगोलिक प्रदेशों का निर्धारण एवं उनके अभिलाक्षणिक गुणों का वर्णन किया गया है। भौगोलिक प्रदेशों के निर्धारण के लिए आर. एल. सिंह के विभाजन को आधार माना गया है।

15.2 भारत के भौगोलिक प्रदेशों का निर्धारण

प्रदेश का अभिप्राय एक ऐसे क्षेत्र से है जो अपने गुण अथवा गुणों की दृष्टि से समरूप हो परन्तु उन्हीं गुण अथवा गुणों में पड़ोसी प्रदेशों से भिन्न हो। इस तरह आन्तरिक समानता तथा बाह्य विभिन्नता ही प्रदेश निर्धारण का आधार है। प्रदेश के अन्दर भौगोलिक तत्वों की सापेक्षिक समानता होती है, परन्तु इसके समीपवर्ती क्षेत्रों से असमानता एक प्रदेश को दूसरे से पृथक करती है। यह समरूपता – गुण अथवा कई गुणों के आधार पर निर्धारित की जा सकती है। एक

लक्षण के आधार पर निर्धारित प्रदेश तात्विक प्रदेश कहलाते हैं। जैसे भूआकृतिक प्रदेश आदि। इसके विपरीत भौगोलिक प्रदेश बहु –तात्विक प्रदेश होते हैं, क्योंकि इनका निर्धारण अनेक तत्वों पर विचार कर के किया जाता है।

भौगोलिक प्रदेश कई लक्षणों पर विचार कर के बनाए जाते हैं। सामान्यतया विश्वस्तर पर भौगोलिक प्रदेशों का निर्धारण जलवायु के आधार पर किया गया है। परन्तु विश्व से छोटे क्षेत्रों में ऐसे प्रदेशों के लिए भौतिक स्वरूप को आधार माना जाता है। समान भौतिक व्यरूप को ध्यान में रखकर इनका सीमांकन किया जाता है। ऐसे समरूप भौतिक क्षेत्र में मानवीय क्रिया–कलाप में भी बड़ी समानता मिलती है। इस तरह इन भौतिक तथा सांस्कृतिक गुणों की समानता पर विचार कर निर्धारित किया प्रदेश भौगोलिक प्रदेश कहलाना है। अत: भौगोलिक प्रदेश एक ऐसा इकाई क्षेत्र होता है जिसमें भौतिक एवं सांस्कृतिक दोनों प्रकार के तत्वों की समानता होती है।

भारत एक विस्तृत देश है, जहाँ प्राकृतिक एंव सांस्कृतिक विभिन्नताएँ बहुत अधिक हैं। भौगोलिक प्रदेशों में विभाजन करने के लिए अधिकांश विद्वानों ने प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों को आधार माना है। चूँकि प्राकृतिक दशाएँ ठोस आधार प्रस्तुत करती हैं। अत : प्राय : सभी के प्राकृतिक दशाओं को वृहद् स्तरीय विभाजन के लिए प्रमुख आधार माना है। इस आधार पर पर्वतीय, मैदानी तथा पठारी भाग निश्चित किये गए हैं। कुछ विद्वान समुद्र तटीय भागों को अलग भौगोलिक प्रदेश मानते है। मध्यम स्तरीय तथा लघु स्तरीय विभाजन के लिए सभी विद्वानों ने सामाजिक –सांस्कृतिक लक्षणों को आधार बनाया है।

भारत को भौगोलिक प्रदेशों ग्रे बाँटने का कार्य सर्वप्रथम मैकफारलेन (mac Farlane) नामक विद्वान ने किया। इन्होंने भारत को प्रायद्वीपीय भारत तथा इतर –प्रायद्वीपीय भारत नामक दो वृहद् भागो में विभक्त किया। फिर इन दो वृहद् भागों को 16 उप भागों में विभक्त किया। एल डी. स्टैम्प ने सन् 1927 में सम्पूर्ण भारत को तीन भागों में बाँटा है, तत्पश्चात 22 उपविभाग किये हैं। एम बी. पीठावाला ने सन् 1939 मै भारत को तीन वृहद् विभागों तथा 17 उप विभागों में विभक्त किया। काजी सैयदउद्दीन अहमद ने अपना वर्गीकरण सन् 1954 यू में प्रस्तुत किया। इन्होंने तटीय भाग को चौथा भौगोलिक प्रदेश स्वीकार करते हुए भारत को 30 उप विभागों में विभक्त किया। ओ.एच के. स्पेट ने अपना वर्गाकरण सन् 1954 में प्रस्तुत किया। इन्होंने भारत और पाकिस्तान को एक उपमहाद्वीप मानकर पर्वतीय श्रृंखला, विशाल मैदान, प्रायद्वीप तथा द्वीप चार भागों में बाँटा है। इसके बाद इन्होंने 37 द्वितीय स्तर के तथा 80 तृतीय स्तर के प्रदेश निरूपित किए। इनके विभाजन का आधार भौगोलिक परिस्थितियां हैं। एस पी. चटर्जी ने सर 1962 में स्वतंत्र भारत का विस्तृत भौगोलिक विभाजन प्रस्तुत किया। इन्होंने भारत को 7 प्रमुख प्रदेश, 20 उप –प्रदेश तथा 22 भौगोलिक प्रदेशों में विभाजित किया। आर एल. सिंह ने सन 1971 में “भारत –एक प्रादेशिक भूगोल” नामक पुस्तक में प्राकृतिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक आदि तत्वों के आधार पर भारत को भौगोलिक प्रदेशों में विभाजित किया है। इस आधार पर इन्होंने 4 वृहत् स्तरीय तथा 28 मध्यम स्तरीय प्रदेशों का निर्धारण किया है। सामान्यीकरण एवं सूक्ष्म विविधता को पहचानकर मध्यम स्तरीय प्रदेशों को पुन : 67 प्रथम स्तरीय (लघु), 192 द्वितीय स्तरीय (सूक्ष्म) तथा 484 तृतीय स्तरीय (अति सूक्ष्म) प्रदेशों में विभक्त किया।

बोध प्रश्न– 1

1. 'प्रदेश' से क्या अभिप्राय : है?

....

....

2. भौगोलिक प्रदेशों का विभाजन किन मुख्य आधारों पर किया जाता है?

....

....

3. भारत को किस विद्वान ने सर्वप्रथम भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त किया था?

....

....

4. सन 1962 में स्वतंत्र भारत का विस्तृत भौगोलिक विभाजन किसने प्रस्तुत किया?

....

....

5. आर एल. सिंह के अनुसार भारत के कितने वृहद स्तरीय एवं मध्यम स्तरीय `प्रदेशों का निर्धारण किया गया?

....

....

15.3 आर एल. सिंह के अनुसार भारत के भौगोलिक प्रदेश

आर एल. सिंह ने सन 1971 में " भारत : एक प्रादेशिक भूगोल " नामक पुस्तक में प्राकृतिक, सांस्कृतिक प्रशासनिक आदि तत्वों के सम्मिलित सामंजस्य को ध्यान में रखते हुए भारत को 4 वृहद् प्रदेशों में विभक्त किया जो निम्नलिखित हैं

1. विशाल मैदान
2. हिमालय पर्वतीय प्रदेश
3. प्रायद्वीपीय उच्च भूमि
4. भारतीय तट और द्वीप समूह

उन्होंने इस वृहत् प्रदेश को पुन : 28 मध्यम (Meso) तथा 67 लघु (micro) प्रदेशों में विभक्त किया, जिसका आधार स्थलरूप, जलवायु मिट्टी, प्राकृतिक वनस्पति, खनिज, जनसंख्या, अधिवास एवं अनेक सांस्कृतिक तत्व थे।

15.3.1 विशाल मैदान (The Great Plains)

यह प्रदेश अत्यन्त समतल भूमि, उपजाऊ जलोढ़' मिट्टी, मोड़ बनाकर बहती हुई नदियाँ, कृषि के विस्तृत व लगातार फैले फार्म, सघन जनसंख्या तथा सघन बस्तियाँ, यातायात का सघन जाल तथा मानव निर्मित भूदृश्यों से सुसज्जित है। ये विशेषताएँ इसे हिमालय पर्वतीय तथा प्रायद्वीपीय पठारी प्रदेशों से अलग करती हैं।

भ्रूभिक दृष्टि से विशाल मैदान भारत का नवीनतम भौगोलिक प्रदेश है। यह मैदान आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से देश का उन्नत भाग है। इस मैदान की लम्बाई 2500 किलोमीटर है। इतने विस्तृत लम्बे मैदान के पश्चिमी एवं पूर्वी भाग एक –दूसरे से मिट्टी जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, फसलों के प्रकार, मकानों के प्रकार, लोगों की पोशाक एवं उनकी भाषा तथा अन्य सांस्कृतिक विशेषताओं में स्पष्ट भिन्न हैं। पश्चिम में शुष्क राजस्थान मैदान, पूर्व में अति आर्द्र निम्न गंगा मैदान एक –दूसरे से बिलकुल विपरीत परिस्थितियों वाले हैं। पंजाब का मैदान अर्द्ध शुष्क है, ऊपरी गंगा का मैदान उप–आर्द्र तथा मध्य गंगा का मैदान एवं आसाम की घाटी आर्द्र हैं। इन सभी मध्यम स्तरीय प्रदेशों के बीच स्पष्ट सीमा निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। नदियाँ इस मैदान के उप–प्रदेश निर्धारित करने में कोई मदद नहीं करती जबकि खादर व बांगर मिट्टी के समूह केवल स्थानीय महत्ता को बताने में सहायक हैं। जलवायु फसले, फसलों का प्रारूप आदि विशेषताओं को एक साथ ध्यान में रखकर इस विशाल मैदान को 6 मध्यम स्तरीय (Meso) प्रदेशों में विभाजित किया गया है :–

I. राजस्थान मैदान
II. पंजाब का मैदान
III. ऊपरी गंगा का मैदान
IV. मध्य गंगा का मैदान
V. निचला गंगा का मैदान, एवं
VI. आसाम घाटी

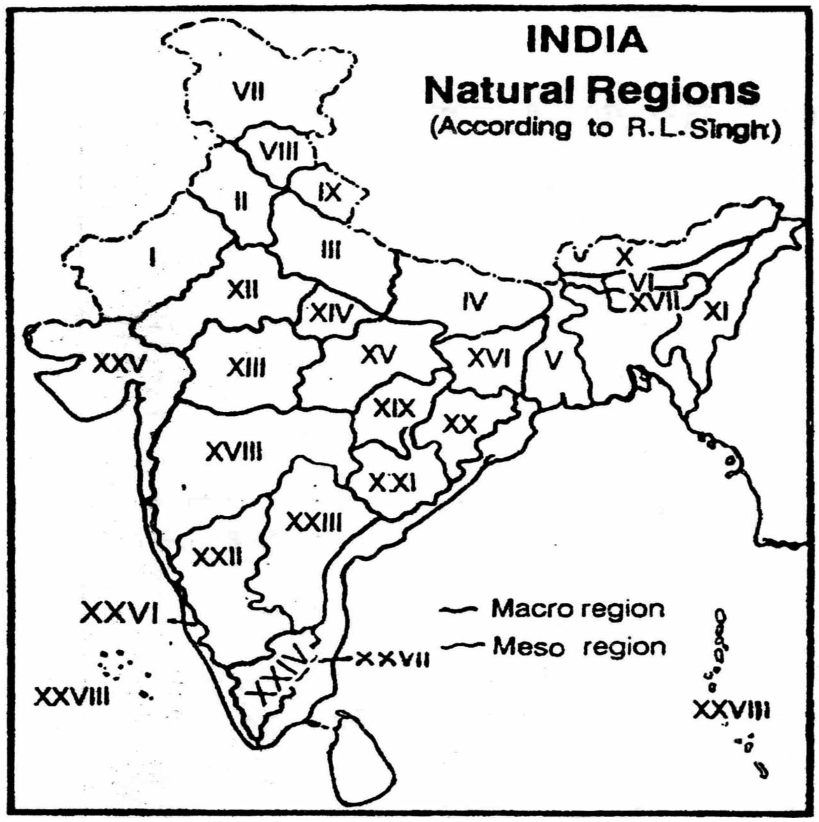

चित्र–15.1 : भारत के भौगोलिक प्रदेश (आर.एल. सिंह के अनुसार)

राजस्थान मैदान की सीमा उत्तर में हरियाणा, पश्चिम में पाकिस्तान, दक्षिण में गुजरात तथा पूर्व में अरावली पहाड़ियों द्वारा निर्धारित होती हैं। पंजाब मैदान की सीमा हरियाणा एवं पंजाब राज्यों और दिल्ली केन्द्र शासित राज्य को सम्मिलित करके निर्धारित की गई है। यह वास्तव में सतजल–यमुना अपवाह तंत्र का विभाजक प्रदेश है। ऊपरी गंगा की सीमा यमुना नदी (दिल्ली के निकट शाहदरा को छोड़कर) से बनती है। ऊपरी तथा मध्य गंगा मैदान के बीच की सीमा इलाहाबाद से होकर उत्तर और दक्षिण दिशा में जाने वाली रेखा का अनुसरण करती है। यह रेखा अवध की मध्यवर्ती सीमा बनाती है। आर.एल. सिंह ने इन दोनों मध्यस्तरीय प्रदेशों के बीच की सीमा रेखा 300 फीट की समोच्च रेखा, फसल–समूह, जनसंख्या घनत्व, ऐतिहासिक प्रारूप तथा प्रशासकीय सीमाओं को ध्यान में रखते हुए निर्धारित की है। मध्य गंगा मैदान व निम्न गंगा मैदान की सीमा साधारणतया पश्चिम बंगाल और बिहार राज्यों की सीमा का अनुसरण करती है। बिहार राज्य की पूर्णिया जिले की किशनगंज तहसील निम्न गंगा मैदान में सम्मिलित की गई है। निम्न गंगा मैदान वास्तव में सम्पूर्ण पश्चिमी बंगाल राज्य पर फैला है। केवल उत्तरी पहाड़ी जिले के कुछ भागों को छोडकर शेष भाग मैदानी हैं। आसाम घाटी पूर्ण रूप से एक भौगोलिक इकाई है। उत्तर में हिमालय पर्वत व दक्षिण में मेघालय–मिकिर पहाड़ियाँ इसका स्पष्ट सीमांकन करती हैं। इस भौगोलिक प्रदेश के 07 मध्यम स्तरीय प्रदेशों को 13 प्रथम क्रम के (लघु), तथा 38 द्वितीय क्रम के (सूक्ष्म) प्रदेशों में बाँटा गया है जो इस प्रकार हैं

मध्यम प्रदेश	लघु प्रदेश	सूक्ष्म प्रदेश
I. राजस्थान मैदान	1. मरुस्थली	(क) जैसलमेर मरूस्थली
		(ख) बाड़मेर मरूस्थली
		(ग) बीकानेर -चूरू मरूस्थली
	2. राजस्थान बांगर	(घ) घग्घर प्रदेश
		(च) शेखावाटी प्रदेश
		(छ) नागौर प्रदेश
		(ज) लूनी प्रदेश
II. पंजाब मैदान	3. उत्तरी पंजाब मैदान	(क) होशियारपुर–चंडीगढ़ मैदान
		(ख) अपर बारी दोआब
		(ग) जाक्यर मैदान
		(घ) पंजाब मालवा मैदान
	4. दक्षिण पंजाब मैदान	(च) अम्बाला,मैदान
		(छ) पूर्वी हरियाणा (कुरूक्षेत्र)
		(ज) पश्चिमी हरियाणा
		(झ) दक्षिणी हरियाणा
III. अपर गंगा मैदान	5. उत्तरी ऊपरी गंगा मैदान	(क) रूहेलखण्ड मैदान
		(ख) अवध मैदान
	6. दक्षिण ऊपरी गंगा मैदान	(ग) अपर गंगा–यमुना दोआब

		(घ) ट्रान्स यमुना मैदान
		(च) निम्न गंगा–यमुना दोआब
IV. मध्य गंगा मैदान	7. उत्तरी मध्य गंगा मैदान	(क) गंगा–घाघरा दोआब
		(ख) सरयूपार मैदान
		(ग) मिथिला मैदान।
		(घ) कोसी मैदान।
	8. दक्षिण मध्य गंगा मैदान	(च) सोन -गंगा विभाजक
		(छ) मगध का मैदान।
V. निम्न गंगा मैदान	9. उत्तरी बंगाल मैदान	(क) दुआर प्रदेश
		(ख) तिस्ता का मैदान
	10. बंगाल डेल्टा	(ग) मोरीबंद डेल्टा।
		(घ) परपिक डेल्टा
		(च) क्रियाशील डेल्टा?
	11. रार मैदान	(छ) मयूराक्षी मैदान '
		(ज) बांकुडा उच्च प्रदेश
		(झ) मिदनापुर उच्च प्रदेश
VI. असम घाटी	12. उत्तरी मध्य गंगा मैदान	(क) उत्तरी ऊपरी असम घाटी
		(ख) दक्षिण ऊपरी असम घाटी
		(ग) उत्तरी निम्न असम घाटी
	13. निम्न असम घाटी	(च) दक्षिण निम्न असम घाटी

15.3.2 हिमालय पर्वतीय प्रदेश(The Himalayas Mountain Region)

हिमालय पर्वतीय भाग नवीन भूगर्भिक संरचना, हिमाच्छादित चोटियाँ, विषम उच्चावच, संकीर्ण गहरी घाटियाँ, तेज प्रवाह वाली नदियाँ, जंगलों से आच्छादित, छोटे –छोटे सीढ़ीदार खेत, अति विरल जनसंख्या, बिखरी हुई बस्तियां तथा दुष्कर आवागमन आदि के कारण यह देश के अन्य भौगोलिक प्रदेशों से पूर्णत : भिन्न एक अलग प्रकार का वृहद् प्रदेश है,। जो अपनी समीपवर्ती विशाल मैदान से पूर्णतया अलग एवं भिन्न है।

यह वृहद् प्रदेश उत्तर–पश्चिम में हिमालय कश्मीर से लेकर पूर्व में पूर्वांचल तक अनेक विविधताओं से भरा हुआ है। इसका उप प्रदेशों में विभाजन कठिन एवं पेचीदा है। यहाँ विविध नदी, घाटियाँ जैसे – काँगड़ा घाटी, देहरादून, मणीपुर घाटी, लाहौर व स्थिति घाटी व अनेकों दून एवं द्वार घाटियाँ पाई जाती हैं। यहाँ पर पूर्व से पश्चिम में जाने पर वर्षा घटती जाती है तथा वनस्पति वर्षा के साथ – साथ ऊँचाई का भी अनुसरण करती है। यहाँ पर वनस्पति और जीव–जन्तु के आधार पर स्पष्ट विभाजन देखने को मिलता है। यहाँ प्राकृतिक विविधताओं के साथ – साथ मानवीय और सांस्कृतिक विविधताएँ देखने को मिलती हैं। इस प्रदेश में चरागाह प्रदेश, उच्च स्थानों पर मौसमी प्रवास की क्रिया, काष्ठ उद्योग, सीढ़ीदार कृषि, फलों की कृषि, हाथ से चलने वाले उद्योग – धन्धे तथा पर्यटन व्यवसाय आदि आर्थिक क्रियाएँ मुख्य हैं। सामाजिक विशेषताएँ भी भिन्न हैं। राजनीतिक दृष्टिकोण से भी प्रदेश विविधता पूर्ण है। यहाँ नेपाल एक स्वंतत्र देश है।

भूटान भारत से विशेष संधि से सम्बन्धित हैं। पूर्व में अरुणाचल, मणीपुद त्रिपुरा, सिक्किम, नागालैण्ड तथा मेघालय एव पश्चिम में जम्बू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तरांचल पूर्णतया पर्वतीय राज्य है। पश्चिम बंगाल का भी कुछ भाग इसमें सम्मिलित है

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए इस वृहद् प्रदेश को 5 मध्यम (Meso) उप प्रदेशों में विभक्त किया है, जो निम्नलिखित हैं -

VII. कश्मीर प्रदेश

VIII. हिमाचल प्रदेश

IX. उत्तरांचल प्रदेश

X. पूर्वी हिमालय

XI. पूर्वांचल

कश्मीर प्रदेश में सम्पूर्ण जम्मू–कश्मीर राज्य सम्मिलित है। हिमाचल प्रदेश भी एक राज्य का प्रतिनिधित्व करता है। उत्तरांचल में पहाड़ी भाग आता है। पूर्वी हिमालय उप प्रदेश सिक्किम, प. बंगाल के पहाड़ी भाग तथा अरूणाचल प्रदेश को मिलाकर बनाया गया है। पूर्वाचल में नागालैण्ड, त्रिपुरा, मिजोरम को सम्मिलित किया गया है। इन पाँचों उप –प्रदेशों को 11 लघु और 13 सूक्ष्म प्रदेशों में बाँटा गया है, जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है –

मध्यम प्रदेश	**लघु प्रदेश**	**सूक्ष्म प्रदेश**
VII. कश्मीर प्रदेश	14. उत्तरी कश्मीर प्रदेश	(क) जास्कर लद्दाख प्रदेश
		(ख) देवसाई, स्काड्र प्रदेश
		(ग) गिलगित –बाल्टिस्तान प्रदेश
	15 दक्षिण कश्मीर प्रदेश	(घ) अक्साई –चिन प्रदेश
		(च) कश्मीर घाटी
		(छ) जम्मू–मीरपुर प्रदेश
VIII. पंजाब मैदान	16. हिमालय हिमाचल प्रदेश	(क) चन्द्रभागा बेसिन
		(ख) रावी बेसिन
		(ग) व्यास बेसिन
		(घ) हिमालय सतलज बेसिन
		(च) ऊपरी यमुना बेसिन
	17. हिमालय पार हिमाचल	(छ) स्थिति व सतलज बेसिन प्रदेश
		(ज) मंलुग बेसिन
IX. उत्तरांचल	18 हिमाद्रि	(क) हिमाद्रि श्रेणियाँ
		(ख) हिमाद्रि बेसिन
		(ग) यमुना –टोंस –बेसिन
	19. हिमाचल	(घ) भागीरथी – अलकनन्दा बेसिन
		(च) रामगंगा –कोसी बेसिन
		(छ) सरयू–काली बेसिन
	20. शिवालिक पहाड़ियाँ	(ज) यमुना–गंगा क्षेत्र

		(झ) गंगा–रामगंगा क्षेत्र
		(ट) रामगंगा–कली क्षेत्र
X. पूर्वी हिमाचल	21. दार्जिलिंग –सिक्किम – भूटान हिमाल्य	(क) दार्जिलिंग–सिक्किम–हिमालय
		(ख) भूटान हिमालय
	22. असम हिमालय	(ग) डालफा प्रदेश
		(घ) मिरी प्रदेश
		(च) अवोर प्रदेश
		(छ) मिश्मी प्रदेश.
XI. पूर्वांचल प्रदेश	23. उत्तरी पूर्वांचल	(क) लोहित–तिराप प्रदेश
		(ख) नागालैण्ड
	24. दक्षिणी पूर्वांचल	(ग) मणिपुर प्रदेश
		(घ) मिजो प्रदेश
		(च) त्रिपुरा–कछार प्रदेश

बोध प्रश्न– 2

1. आर एल. सिंह द्वारा निर्धारित वृहद् भौगोलिक प्रदेशों के नाम लिखिए।
   ....
   ....
2. भूगर्भिक दृष्टि से भारत का नवीनतम भौगोलिक प्रदेश कौन सा है?
   ....
   ....
3. विशाल मैदान को आर एल. सिंह ने कितने मध्यम स्तरीय उपप्रदेशों में बांटा है?
   ....
   ....
4. उत्तरप्रदेश किस भौगोलिक प्रदेश में आता है?
   ....
   ....
5. उत्तरी पूर्वाचंल के सूक्ष्म प्रदेशों के नाम बताइए।
   ....
   ....
6. हिमालय पर्वतीय प्रदेश के मध्यम स्तरीय उप प्रदेश पूर्वांचल में सम्मिलित राज्य कौन से हैं?
   ....
   ....

15.3.3 प्रायद्वीपीय उच्च भूमि (Penisular Upland)

विशाल मैदान के दक्षिण में स्थित यह प्रदेश हिमालय पर्वतीय प्रदेश तथा मैदानी भूभाग से अलग ही विशेषताओं वाला है। यह प्रदेश भूगर्भिक संरचना और धरातलीय दृष्टि से तो अन्य प्रदेशों से भिन्न है ही लेकिन साथ ही अनेक पर्वतों का समूह, पठार, नदी निर्मित मैदान, नदी बेसिन व गर्त आदि विशेषताएँ इसे अद्‌वितीय बना देती हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी यह पठारी भाग हिमालय और विशाल मैदान की अपेक्षा पुराना है। पठार की आन्तरिक भागों पर सिंचाई एवं कृषि की जाती है तथा यहाँ जनसंख्या का घनत्व मध्यम से अधिक है। यह उच्च भूमि भारत के अधिकांश खनिज पदार्थों का भण्डार है। विशाल मैदान और पठारी भूभाग के बीच की सीमा उच्च भूमि के अग्र भाग से बनती है। यहाँ पर बुन्देलखण्ड की सीमा–रेखा यमुना नदी का अनुसरण करती है, बिल्कुल ठीक इसी तरह मेघालय पठार की सीमा–रेखा ब्रहमपुत्र, का अनुसरण करती है। इस वृहत् प्रदेश को 13 मध्यम स्तरीय प्रदेशों में विभिन्न आधारों को ध्यान में रखकर बाँटा गया है। ये उप–प्रदेश निर्धारित करने पर पठारी विशेषता, नदी बेसिन या गर्त, सांस्कृतिक तत्वों, जैसे –अर्थव्यवस्था का प्रकार, दण्डकारण्य प्रदेश का ऐतिहासिक एकांकी अस्तित्व, मालवा व बुन्देलखण्ड के लोगों का विकास होना, भाषा के अनुसार राज्यों का निर्माण आदि बातों को ध्यान में रखा गया है। इस उप–विभाजन में राजनीतिक सीमाओं को काफी हद तक आधार माना गया है। इसके साथ साथ भौगोलिक विशेषताओं को भी ध्यान में रखा गया है। इस सभी बातों को ध्यान में रखते हुए इस वृहद् प्रदेश को 13 मध्यम स्तरीय उप –प्रदेशों, 33 लघु प्रदेशों तथा 96 सूक्ष्म प्रदेशों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैं

मध्यम प्रदेश	**लघु प्रदेश**	**सूक्ष्म प्रदेश**
XII. उदयपुर–ग्वालियर प्रदेश	25. अरावली उच्च भूमि प्रदेश	(क) उत्तरी अरावली प्रदेश
		(ख) मध्य अरावली प्रदेश
		(ग) दक्षिणी अरावली प्रदेश
	26. चम्बल–सिंध बेसिन	(घ) मध्य चम्बल बेसिन
		(च) निम्न चम्बल बेसिन
		(छ) सिंध बेसिन
XIII. मालवा प्रदेश	27. उत्तरी मालवा बेसिन प्रदेश	(क) पूर्वी माही बेसिन
		(ख) ऊपरी चम्बल बेसिन
		(ग) ऊपरी बेतवा बेसिन
	28. दक्षिणी मालवा प्रदेश	(च) पश्चिमी विध्यन प्रदेश
		(छ) मध्य नर्मदा की घाटी
		(ज) पश्चिमी सतपुडा
XIV. बुन्देलखण्ड प्रदेश	29. बुन्देलखण्ड मैदान	(क) बीहड़ प्रदेश
		(ख) जालोन प्रदेश
		(ग) हमीरपुर प्रदेश
		(घ) बांद्रा प्रदेश
	30. बुन्देलखण्ड उच्च	(च) बुन्देलखंण्ड नीस प्रदेश

	भूमि प्रदेश	(छ) बुन्देलखंण्ड विंध्यन पठारी प्रदेश
XV. विंध्याचल– बघेलखण्ड	31. उत्तरी विंध्याचल–बघेल खण्ड प्रदेश	(क) रीवा–पन्ना पठार
		(ख) मिर्जापुर–रोहतासगढ़ पठार
	32. दक्षिणी विंध्याचल– बघेल खण्ड प्रदेश	(ग) बघेलखण्ड प्रदेश
		(घ) छिंदवाड़ा –मैकाल पठार
		(च) नर्मदा -सोनघाटी
XVI. छोटा नागपुर	33. उत्तरी छोटा नागपुर प्रदेश	(क) पलामू उच्च भूमि प्रदेश
		(ख) हजारी बाग पठार
		(ग) दामोदर घाटी
		(घ) संथाल परगना उच्च भूमि
	34. दक्षिणी छोटा नागपुर प्रदेश	(च) पाट भूमि का प्रदेश
		(छ) राँची का पठार
		(ज) सिंह भूमि प्रदेश
XVII. मेघालय मिकिर प्रदेश	35. पश्चिम मेघालय मिकिर प्रदेश	(क) उत्तरी गारो प्रदेश
		(ख) दक्षिणी गारो प्रदेश
		(ग) उत्तरी खासी प्रदेश
		(घ) दक्षिणी खासी प्रदेश
	36. मध्य मेघालय मिकिर प्रदेश	(च) जयन्तिया प्रदेश
		(छ) पश्चिम मिकिर प्रदेश
		(ज) पूर्वी मिकिर प्रदेश
XVIII. महाराष्ट्र प्रदेश	37. महाराष्ट्र सहयाद्री	(क) उत्तरी महाराष्ट्र सहयाद्री
		(ख) दक्षिणी महाराष्ट्र सहयाद्री
	38. ताप्ती पूर्णा घाटी	(ग) पश्चिम ताप्ती घाटी
		(घ) पूर्वी ताप्ती पूर्णा घाटी
	39. महाराष्ट्र पठार	(च) अजन्ता पहाड़िया
		(छ) गोदावरी घाटी
		(ज) बालाघाट उच्च प्रदेश
		(झ) ऊपरी भीमा घाटी
		(ट) महादेव उच्च प्रदेश
	40. विदर्भ मैदान	(ठ) वर्षा–पैनगंगा मैदान
		(ड) वान गंगा मैदान
XIX. छत्तीसगढ प्रदेश	41. बाह्य प्रदेश (Rim land)	(क) उत्तरी बाह्य प्रदेश
		(ख) पश्चिमी बाह्य प्रदेश
		(ग) दक्षिणी बाह्य प्रदेश
	42. छत्तीसगढ़ मैदान	(घ) रायपुर–दुर्ग मैदान
		(च) विलासपुर मैदान
		(छ) रायगढ़ मैदान

XX. उड़ीसा उच्च भूमि प्रदेश	43. उत्तरी –पूर्वी पहाड़ी प्रदेश	(क) उत्तरी–पश्चिमी प्रदेश
		(ख) गढ़्जात पहाड़ी प्रदेश
		(ग) उत्तरी –पूर्वी पठार प्रदेश
	44. मध्य महानदी घाटी	(घ) हीराकुड–सोनार घाटी
		(च) बाँध घाटी प्रदेश
	45. दक्षिणी–पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश	(छ) हीराकुंड बोलनागंरो बेसिन
		(ज) उड़ीसा घाट प्रदेश
XXI. दण्डकारण्य घाट	46. दण्डकारण्य घाट	(क) पूर्वी दण्डकारण्य घाट
		(ख) मध्य दण्डकारण्य घाट
		(ग) पश्चिमी दण्डकारण्य घाट
	47. दण्डकारण्य पठार	(घ) तेलजोंक घाटी प्रदेश
		(च) बस्तर पठार
		(छ) इन्द्रावती सेवली मैदान
XXII. कर्नाटक पठार	48. उत्तरी मालनाड़	(क) उत्तरी मालनाड़ू
		(ख) मध्य मालनाड़.
		(ग) दक्षिणी मालनाड़
	49. उत्तरी मैदान	(घ) बीदर पठार
		(च) गुलबर्गा मैदान
		(छ) रायचूर मैंदान
		(ज) बिलारी का मैदान
		(झ) घारवाड मैदान
		(ट) बीजापुर प्रदेश
	50. दक्षिणी मैदान	(ठ) चित्रदुर्ग प्रदेश
		(ढ़) तुमकुर प्रदेश
		(ड) बंगलौर प्रदेश
		(ण) मैसूर प्रदेश
XXIII. आन्ध्र पठार	51. तेलगाना	(क) हैदराबाद पठार भूमि
		(ख) तेलंगाना समुप्राय
		(ग) गोदावरी घाटी
		(घ) कृष्णा घाटी
	52. रायलसीमा	(च) रायलसीमा समप्राय भूमि
		(छ) रायलसीमा पठार
	53. आन्ध्र घाट	(ज) उत्तरी आन्ध्र घाट
		(झ) दक्षिणी आन्ध्र घाट
XXIV. तमिलनाडू पठार एवं दक्षिणी सहयाद्री	54. दक्षिणी सहयाद्री	(क) अन्नामलाय –पालनी पहाड़ियों
		(ख) इलायची की पहाड़ियाँ
		(ग) अगस्तमलाय पहाड़ियाँ

55. तमिलनाडू घाट	(घ) नीलगिरी
	(च) मेट्रूर–बेतूर प्रदेश
	(छ) तमिलनाडू पहाड़ियाँ
56. कोयम्बत–मदुराई पठार	(ज) कोयम्बटूर पठार
	(झ) मदुराई पग

15.3.4 प्रायद्वीपीय तट और द्वीप समूह (The Indian Coasts and Island)

भारत के तटीय मैदान और द्वीप समूहों को एक पृथक भौगोलिक प्रदेश के अन्तर्गत रखा गया है, क्योकि यह समुद्रतटीय स्थिति समतल धरातल, भारी वर्षा, मैन्ग्रोव व दलदली वनस्पति से युक्त है। ये लक्षण अन्य प्रदेशों में नही हैं। कृषि एवं औद्योगिक विकास सघन जनसंख्या, बन्दरगाह, नगर और कस्बों की अधिकता, ऐतिहासिक समुद्रपारीय सम्बन्धों ने इनको पठारी भू –भाग से अलग कर दिया है। तटीय भूमि के समुद्री किनारों पर महानदी का डेल्टा, गोदावरी–कृष्णा का डेल्टा तथा काबेरी का डेल्टा, तमिलनाडु व केरल के सपाट तटीय भूमि, गुजरात और सौराष्ट्र के संकरे तटीय भाग इस तटीय प्रदेश के भू–भाग हैं। पश्चिमी तटीय मैदान की सीमाएं अधिक स्पष्ट हैं। पूर्वी तटीय मैदान की पश्चिमी सीमा पर स्थित पूर्वी घाट अनेक स्थानो पर कट गए हैं। नदियों ने समतल उपजाऊ भूमि का निर्माण काफी अन्दर तक कर लिया हैं।

इस वृहद प्रदेश को 4 मध्यम स्तरीय प्रदेशों में बाँटा गया है, जो इस प्रकार हैं -।

XXV. गुजरात प्रदेश,

XXVI. पश्चिमी तटीय प्रदेश,

XXVII. पूर्वी तटीय प्रदेश,

XXVIII. भारतीय द्वीप सखा

गुजरात प्रदेश और पश्चिमी तटीय प्रदेश के बीच की सीमा को निर्धारित करने में खम्भात की खाड़ी तथा गिरिनार पहाड़ियों को आधार माना गया है। गुजरात प्रदेश को उप– प्रदेशों में नर्मदा, ताप्ती, व साबरमती नदियों की निचली एस्चुअरी घाटियों को आधार मानकर विभाजित किया गया है। यह गुजरात राज्य की सीमा का अनुसरण करता है। पश्चिमी तटीय प्रदेश गुजरात के दक्षिण से लेकर केरल राज्य के दक्षिणी सिरे तक फैला है। पूर्वी तटीय मैदान बंगाल के निम्न गंगा मैदान की दक्षिणी सीमा से लेकर तमिलनाडू के दक्षिणी सिरे तक फैला है। भारतीय द्वीपों को स्व मध्यम स्तरीय प्रदेश में रखा गया है। इस प्रकार इस वृहद् प्रदेश को 4 मध्यम स्तरीय प्रदेश।, 10 लघु प्रदेशों और 24 सूक्ष्म प्रदेशों में निम्नानुसार विभाजित किया गया है।

मध्यम प्रदेश	**लघु प्रदेश**	**सूक्ष्म प्रदेश**
XXV. गुजरात प्रदेश	57. पश्चिमी गुजरात प्रदेश	(क) भुज प्रदेश
		(ख) काठियावाड़ प्रदेश
	58. पूर्वी गुजरात प्रदेश	(ग) अहमदाबाद प्रदेश
		(घ) खम्भात प्रदेश
		(च) पूर्वी पहाड़ी प्रदेश
XVI. पश्चिमी तटीय प्रदेश	59. कोंकण तट	(क) उत्तरी कोंकण प्रदेश
		(ख) दक्षिणी कोंकन प्रदेश

	60. कर्नाटक तट	(ग) उत्तरी कनारा
		(घ) दक्षिणी कनारा
	61. मालाबार तट	(च) उत्तरी मलाबार तट
		(छ) दक्षिणी मलाबार तट
		(ज) उत्तरीपूर्वी पहाडी प्रदेश
XXVII. पूर्वी तटीय मैदान	62. तमिलनाडु तटीय मैदान	(क) वैगाई. ताम्रपर्णी प्रदेश
		(ख) डेल्टाई प्रदेश
		(ग) पलार –पोनियार मैदानी प्रदेश
	63. आन्ध्र तटीय प्रदेश	(घ) पेन्नार प्रदेश
		(च) कृष्णा –गादावरी डेल्टा
		(छ) विशाखापट्टनम प्रदेश
	64. उत्कल तटीय प्रदेश	(ज) चिल्का प्रदेश
		(झ) माहीनदी डेल्टा
		(ट) बालासौर मैदान
XXVIII. भारतीय	65. अरब सागरीय द्वीप समूह द्वीप समहू	(क) अमिनदीवी द्वीप समूह
		(ख) लक्कादीवी द्विप समूह
		(ग) मिनिकाय द्वीप समूह
	66. बंगाल की खड़ी के द्वीप समूह	(घ) अण्डमान द्वीप समूह
		(च) निकोबार द्वीप समूह

अत: स्पष्ट है कि भारत को वृहत् प्रदेश को 4 वृहद प्रदेशों, 28 मध्यम स्तरीय प्रदेशों में बांटा गया है। इन मध्यम स्तरीय प्रदेशों को कुल मिलाकर 66 प्रथम क्रम व 192 द्वितीय क्रम के उप–प्रदेशों विभक्त किया गया है।

बोध प्रश्न – 3

1. आर एल सिंह के अनुसार प्रायद्वीपीय उच्च भूमि को कितने मध्यम स्तरीय उप–प्रदेशों में विभक्त किया गया है?

   ....

   ....

2. प्रायद्वीपीय उच्च भूमि की मुख्य विशेषताएँ क्या है?

   ....

   ....

3. भारत के तटीय मैदान किन कारणों से पठारी भू–भाग से पृथ्क है?

   ....

   ....

4. गुजरात प्रदेश और पश्चिमी तटीय प्रदेश के बीच की सीमा रेखा का आधार किसे माना गया है?

……………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………

5. प्राय:द्वीतिय तट और द्वीप समूह के मध्यम स्तरीय उप–प्रदेशों के नाम बताइए?

……………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………

15.4 सारांश (summary)

भौगौलिक प्रदेश एक ऐसा इकाई क्षेत्र होता है जिसमें भौतिक एवं सांस्कृतिक दोनों प्रकार के तत्वों की समानता होती है। भारत को भौगोलिक प्रदेशों में विभाजन करने के लिए अनेक विद्वानों ने प्रयास किया है। चूँकि प्राकृतिक दशाएँ ठोस आधार प्रस्तुत करती हैं, अत : इन्हें वृहद् स्तरीय विभाजन का प्रमुख आधार माना है। मध्यम स्तरीय तथा लघु स्तरीय विभाजन के लिए सभी विद्वानों ने सामाजिक–सांस्कृतिक आधारों को अपनाया है। भारत को भौगोलिक प्रदेशों में विभाजित करने का कार्य सर्वप्रथम मैकफारलेन (Mac Farlane) ने किया। इनके बाद एलडी स्टेम्प (सन् 1927) एम –बी. पीठावाला (सन 1939), काजी सैयदउद्दीन अहमद (सन् 1944), ओ एच. स्पेट (सन् 1954) एस. पी. चटर्जी (सन् 1962), एवं आर एल सिंह (सन् 1971) ,ने भारत को विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त किया। आर. एल. सिंह ने भारत को 4 वृहत् स्तरीय तथा 28 मध्यम स्तरीय प्रदेशों में बांटा। मध्यम स्तरीय प्रदेशों को पुन : 67 प्रथम स्तरीय, 192 द्वितीय स्तरीय तथा 484 तृतीय स्तरीय प्रदेशों में विभक्त किया। भूगर्भिक दृष्टि से नवीनतम भौगोलिक प्रदेश विशाल मैदान अपनी समतल एवं विस्तृत उपजाऊ भूमि, नदियों, कृषि, उपयोगी वनस्पति, सघन जनसंख्या व बस्तियाँ, यातायात का सघन जाल तथा मानव निर्मित भू –दृश्यों से सज्जित प्रदेश है। हिमालय पर्वतीय प्रदेश अपनी विशेषताओं, नवीन भूगर्भिक सरचना, हिमाच्छादित चोटियों, गहरी घाटियों, तेज प्रवाह वाली नदियों, जंगलों की अधिकता सीढ़ीदार खेत, छितरी बस्तियों के कारण यह अलग बृहत प्रदेश का निर्माण करता है। यह पर्वतीय प्रदेश उत्तर पश्चिम में हिमालय कश्मीर से लेकर पूर्व में पूर्वांचल तक अनेक विविधताओं से भरा हुआ है। यहाँ पूर्व से पश्चिम जाने पर वर्षा घटती जाती है। यहाँ पर प्राकृतिक विविधताओं के साथ –साथ मानवीय और सांस्कृतिक विविधताएँ देखने को मिलती है। प्रायद्वीपीय उच्च भूमि प्रदेश भूगर्भिक संरचना, पठार, नदी निर्मित मैदान, बेसिन व गर्त आदि विशेषताएँ रखता है। यह उच्च भूमि भारत के खनिज पदार्थों का भण्डार है। इस पठारी भाग के आन्तरिक भागों पर सिंचाई व कृषि की जाती है तथा यहाँ सघन जनसंख्या निवास करती है। इस वृहत् प्रदेश को। 13 मध्यम स्तरीय, 33 प्रथम क्रम व 96 द्वितीय क्रम के उपप्रदशों में विभक्त किया गया है।

भारत के तटीय मैदानों एवं द्वीप समूहों को एक पृथक भौगौलिक प्रदेश के अन्तर्गत रखा गया है, जो कृषि एवं औद्योगिक विकास सघन जनसंख्या, बन्दरगाह, नगर और कस्बों की अधिकता, ऐतिहासिक समुद्रपारीय सम्बन्धों ने इनको पठारी भूभाग से अलग कर दिया है। इस वृहत् प्रदेश को 4 मध्यम स्तरीय 10 प्रथम क्रम व 24 द्वितीय क्रम के उपप्रदशों में विभक्त किया गया है।

15.5 शब्दावली (Glossary)

- **प्रदेश :** ऐसा क्षेत्र जिसमें सामान्य दशाओं की समानता, अपनी कुछ विशिष्टता और विकासीय समस्याओं की समरूपता पाई जाती है।
- **भौगोलिक प्रदेश :** ऐसा क्षेत्र जिसमें भौतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों की समानता पाई जाती है।
- **विशाल मैदान** : भारत के पर्वतीय प्रदेश के दक्षिण एवं प्रायद्वीपीय उच्च भूमि के मध्य में स्थित गंगा एवं यमुना नदियों द्वारा सिंचित क्षेत्र।
- **हिमालय पर्वतीय प्रदेश :** भारत के उत्तर –पश्चिम में कश्मीर से लेकर पूर्व में पूर्वांचल तक अनेक विविधताओं से युक्त पर्वतीय प्रदेश।
- **प्रायद्वीपीय उच्च भूमि** विशाल भारत के दक्षिण में स्थित यह प्रदेश भुगर्भित संरचना, धरातलीय दृष्टि से भिन्नता रखता है।
- **प्रायद्वीपीय तट और द्वीप समूह :** यह समुद्रतटीय स्थिति, समतल धरातल, भारी वर्षा।

15.6 सन्दर्भ ग्रंथ (Referance Book)

1. बंसल, सुरेश चन्द्र : **भारत का भूगोल**, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2006.
2. गौतम अलका : **भारत का भूगोल**, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2008.
3. सिंह, आर एल (सम्पादक) : **भारत – एक प्रादेशिक भूगोल**, NGSI वाराणसी 1971.
4. श्रीकमल शर्मा, सम्पादक **भारत का भूगोल**, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 2004.
5. शर्मा एवं शर्मा : **राजस्थान का भूगोल,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2006.

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. प्रदेश वह क्षेत्र होता है जिसके आन्तरिक गुणों में समानता हो तथा उन्हीं गुणों में वह, सीमावर्ती क्षेत्र से पूर्णत : भिन्न हो।
2. भौगोलिक प्रदेशों का विभाजन प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों के समरूपता के आहार पर किया जाता है।
3. मैक फारलेन (Mac Farlan)।
4. एस पी चटर्जी ने।
5. 4 वृहद् तथा 28 मध्यम स्तरीय प्रदेश।

बोध प्रश्न – 2

1. आर एन. सिंह द्वारा निर्धारित वृहद् भौगोलिक प्रदेशों के नाम हैं विशाल मैदान, पर्वतीय प्रदेश, प्रायद्वीपीय उच्च भूमि तथा भारतीय तट एवं द्वीप समूह।
2. उत्तर का विशाल मैदान।
3. 6 मध्यम स्तरीय उप प्रदेशों में।
4. उत्तर का विशाल मैदान में।
5. उत्तरी पूर्वाचल के सूक्ष्म प्रदेश है : लोहित–तिराप प्रदेश तथा नागालैण्ड।

6. नागालैण्ड, त्रिपुरा, मिजोरम, मणिपुर।

बोध प्रश्न – 3

1. 13 मध्यम स्तरीय उपप्रदशों में।
2. पठारी भूमि, नदी बेसिन व गर्त, सांस्कृतिक तत्व, भाषा आदि।
3. कृषि, औद्योगिक विकास, सहान जनसंख्या, बन्दरगाह, नगर और कस्बों की, ऐतिहासिक सखपारीय सम्बन्ध।
4. खम्भात की खाड़ी व गिरीनार पहाडियों।
5. गुजरात प्रदेश, पश्चिम तटीय प्रदेश, पूर्वी तटीय प्रदेश एवं भारतीय द्वीप समूह।

15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भौगौलिक प्रदेश से क्या अभिप्राय है? विभिन्न विद्वानों द्वारा भारत को भौगौलिक प्रदेशों में विभाजन की समीक्षा कीजिए।
2. आर. एल. सिंह के अनुसार भारत को विभिन्न भौगौलिक प्रदेशों में विभक्त कीजिए एवं वृहद् प्रदेशों का संक्षिप्त विवरण कीजिए।
3. आर. एल. सिंह के अनुसार 'विशाल मैदान' की विशेषताओं का विवरण दीजिए तथा उसके मध्यम स्तरीय एवं लघुस्तरीय उप–प्रदेशों का वर्णन कीजिए।
4. आर. एल. सिंह के अनुसार 'प्रायद्वीपीय उचभूमि' की विशेषताओं का विश्लेषण करते उसके मध्यमस्तरीय प्रदेशों का उल्लेख कीजिये।

इकाई 16 : राजस्थान का प्रादेशिक अध्ययन (Regional Study of Rajasthan)

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 राजस्थान के भौगोलिक प्रदेश
16.2.1 मरुस्थल
16.2.2 बांगड़
16.2.3 अरावली प्रदेश
16.2.4 चम्बल बेसिन प्रदेश
16.3 सारांश
16.4 शब्दावली
16.5 सन्दर्भ ग्रंथ
16.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे :

- राजस्थान के भौगोलिक प्रदेश
- इन भौगोलिक प्रदेशों की विशेषताएं
- भौगोलिक प्रदेशों का संसाधन – आधार तथा संसाधनों का उपयोग,
- भौगोलिक प्रदेशों की मुख्य समस्याएं।

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई में राजस्थान को भौतिक एवं सामाजिक लक्षणों के आधार पर भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त कर उनका वर्णन किया गया है। इस इकाई में राजस्थान का क्षेत्रीय अध्ययन किया गया है, जिसके अन्तर्गत मरुस्थल, बांगड, चम्बल –मैदान एवं अरावली प्रदेशों के भौगोलिक लक्षणों का विवरण किया गया है। इस विवरण में इनके संसाधन, आर्थिक दशा तथा मानवीय विशेषताओं को समाहित किस। गया है।

16.2 राजस्थान के भौगोलिक प्रदेश।

भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग में स्थित राजस्थान राज्य का भौतिक स्वरूप अत्यधिक जटिल तथा विविधतायुक्त है। यहाँ एक ओर मरु भाग है, वहीं दूसरी ओर मैदानी व पठारी भाग स्थित हैं। राज्य का भौतिक स्वरूप, भूगर्भिक इतिहास में होने वाली आन्तरिक और जलवायु द्वारा नियंत्रित बाहय शक्तियों की क्रियाओं का प्रतिफल है। राजस्थान का भूभाग प्राचीनतम भूखण्डों का अवशिष्ट है, जो गौंडवानालैण्ड से सम्बन्धित प्री–कैम्ब्रियन युगीन है। यहाँ की संरचना, अपरदन

की प्रक्रिया तथा अवस्था के कारण इस भाग में उपस्थित भूस्वरूप देश के अन्य भागों से भिन्न हैं। भौतिक परिवेश के अनुसार सामाजिक एंव आर्थिक दशाओं का विकास हु आ हैं

राजस्थान राज्य का क्षेत्रफल 3.42 लाख वर्ग किमी.है। इतने बड़े क्षेत्र का एक ही प्रदेश के अन्तर्गत भौगोलिक अध्ययन नहीं किया जा सकता है अत : अध्ययन की सुविधा हेतु इसके विविधतायुक्त स्वरूप, सांस्कृतिक विकास, आर्थिक विभिन्नता तथा सामाजिक परिवेश की परिवेश के अनुसार राजस्थान को विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त करना आवश्यक है।

वी सी. मिश्रा ने सर्वप्रथम सन 1968 में राजस्थान को 7 भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त किया था (चित्र 16. 1) । इसके बाद आर. एल. सिंह ने सन् 1971 में राजस्थान को दो मध्यम स्तरीय प्रदेशों तथा उन्हें पुन : 4 प्रथम श्रेणी (लघु) प्रदेशों और 12 द्वितीय श्रेणी (सूक्ष्म) प्रदेशों में विभक्त किया है (चित्र 16. 2)। आर. एल. सिंह के अनुसार राजस्थान के भौगोलिक प्रदेश निम्नलिखित है।

1. राजस्थान का मैदान

(अ) जैसलमेर मरुस्थली

(ब) बाडमेर मरुस्थली

(स) बीकानेर –चुरू मरुस्थली

2. राजस्थान बांगड़ प्रदेश –

(अ) घग्घर प्रदेश

(ब) शेखावाटी प्रदेश

(स) नागौर प्रदेश

(द) लूनी प्रदेश

3. राजस्थान का पठार –

(अ) उत्तरी अरावली प्रदेश

(ब) मध्य अरावली प्रदेश

(स) दक्षिणी अरावली प्रदेश

4. चम्बल बेसिन प्रदेश –

(अ) निम्न चम्बल बेसिन

(ब) मध्य –चम्बल बेसिन।।

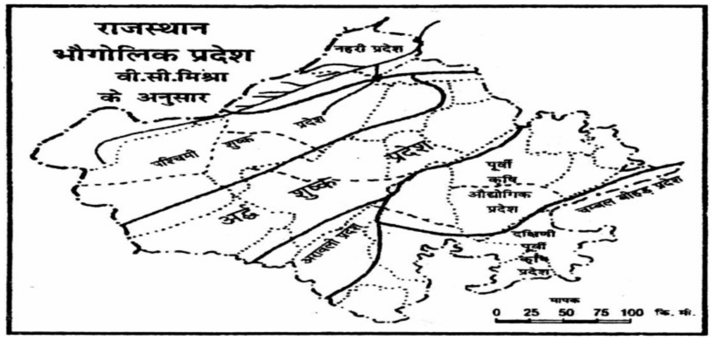

चित्र – 16.1 : वी सी. मिश्रा के अनुसार राजस्थान के भौगोलिक प्रदेश

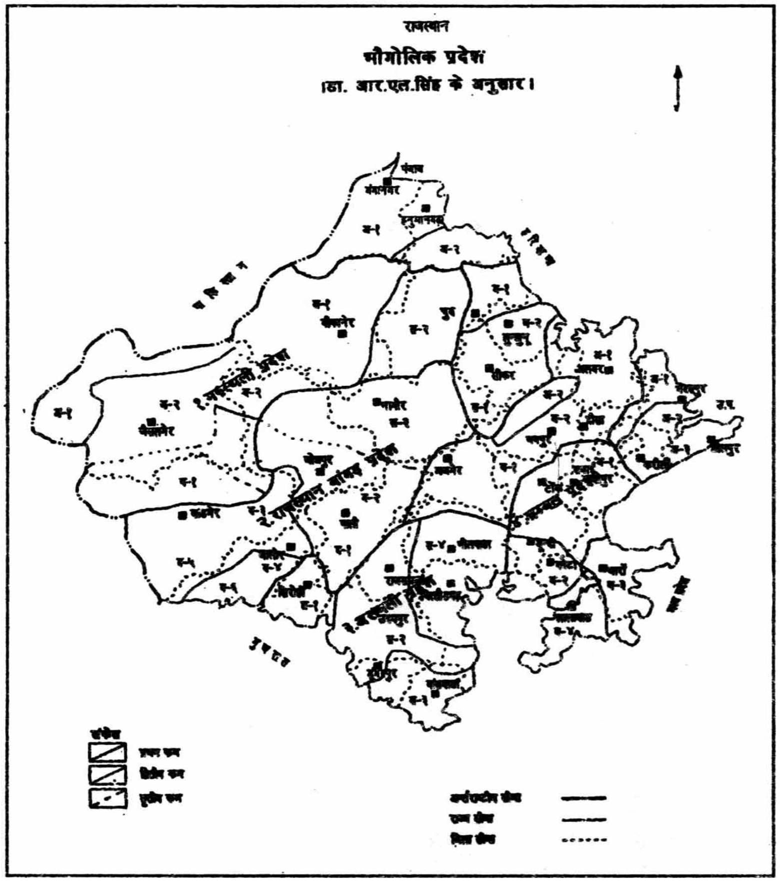

चित्र–16.2 : आर .एल. सिंह के अनुसार राजस्थान के भौगोलिक प्रदेश

16.2.1 मरुस्थल (Marusthal)

राजस्थान के अरावली श्रेणियों के पश्चिम का क्षेत्र एक शुष्क एवं अर्द्धशुष्क मरुस्थली प्रदेश है, जहाँ विस्तृत क्षेत्रों में बालुका सतूपों का विस्तार है तो कहीं बंजर चट्टानें तथा अपरदित शैलें पाई जाती हैं। इसे 'थार मरुस्थल' के नाम से भी जाना जाता है। यह एक ऐसा प्रदेश है जहाँ वायु–क्रिया का प्रभुत्व है तथा पारिस्थितिकीय दृष्टि से यह एक 'मरुस्थल' है। यह एक वृहद् रेतीला मैदान है जिसका सम्पूर्ण विस्तार लगभग 1,75,000 वर्ग किमी पर है। इसके अन्तर्गत जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर, जालौर, नागौर, सीकर, चुरू, हवपू हनुमानगढ़ तथा गंगानगर जिले सम्मिलित किये जाते हैं। यद्यपि सिंचाई के विस्तार से कुछ क्षेत्रों (गंगानगर, हनुमानगढ़, बीकानेर) के मानवीय दशाओं में परिवर्तन हो रहा है तथापि इसका मूल स्वरूप मरुस्थलीय है।

भूआकृतिक लक्षण

भूआकृतिक दृष्टि से मरुस्थल भारत के विशाल मैदान का पश्चिमी भाग है। इस प्रदेश का सामान्य बाल पूर्व से पश्चिम की ओर तथा उत्तर से दक्षिण की ओर है। यह प्रदेश समुद्र तल से 75 से 300 मीटर तक ऊँचा है। उत्तर –पूर्व में ऊँचाई लगभग 150 मीटर है। सम्पूर्ण प्रदेश में बालूका विस्तार है, जिसके मध्य कहीं–कहीं छोटी –छोटी पहाड़ियाँ भी दृष्टिगोचर, होती हैं। इस सम्पूर्ण मरुस्थलीय क्षेत्र को प्रधानत : दो प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है : –

(i) रेतीला मरूस्थल (Sandy Desert) तथा (ii) पथरीला मरुस्थल (Rocky Desert)

(i) **रेतीला मरुस्थल (Sandy Desert) : –** इसका धरातल समुद्रतल से 150 से 300 मीटर। तक ऊँचा है। इस भाग की शैलों में सझी जीवों के अवशेष हैं। रेत के विशाल समुद्र के समान फैला हुआ। यह मरुस्थल वनस्पति विहीन, विभिन्न प्रकार के बालुका स्कूपों से युक्त, बलुई रेतीली मिट्टी न्यूनतम वर्षा, अत्यधिक तापमान, फलत : जनसंख्या, अल्प औद्यौगिक विकास, सड़क, रेल परिवहन एवं विकास की गति में पिछड़ा हुआ क्षेत्र माना जाता है। कई क्षेत्र में बालू के प्रवाह, बालुका स्कूपों का स्थानान्तरण तथा वायु प्रवाह इस क्षैत्र की घटनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

(ii) **पथरीला मरुस्थल (Rocky Desert) : –** यह मरूस्थल पश्चिमी राजस्थान की विशिष्ट भूआकृति का द्योतक है। यहाँ विविध ऊँचाई के इन्सलबर्ग (Inselberg), छोटी–छोटी एकांकी पहाड़ियों, पथरीला धराड़ल, कंकडयुक्त क्षेत्र तथा विविध प्रकार की चट्टानें पाई जाती हैं। जैसलमेर के उत्तरी भाग में लुद्रवा के सम्पूर्ण क्षेत्र में पथरीला क्षेत्र पाया जाता है जहाँ चूना पत्थर व पीला पत्थर पाया जाता है।

बीकानेर क्षेत्र में बीकानेर के चारों ओर पथरीला क्षेत्र पाया जाता है। विशेषत : उत्तरी भाग में बसा पत्थर की छोटी सी पहाड़ी है जिसके पत्थर से ही सम्पूर्ण बीकानेर के मकानों, महलों, जूनागढ़ लालगढ़ महलों, जैन मन्दिरों आति का निर्माण हुआ है। यहाँ बलुआ पत्थर धरातल पर ही मिलता है।

जोधपुर की फलौदी तहसील में पथरीला मरुस्थल पाया जाता है। बाप बोल्डर्स का क्षेत्र, फलौदी के पड़ोस का क्षेत्र पथरीला एवं तृतीय महाकल्प की बलुआ पत्थर की चट्टानों से परिपूर्ण है। यहा इओसीन एवं जुरासिक काल के बलुआ पत्थर पाए जाते हैं। इसी बलुआ पत्थर से जोधपुर का मेहरानगढ़ का किला, जसवंत थड़ा, उम्मेदभवन महल, राई का बाग पैलेस, काजरी की नवीनतम भवन श्रृखलाएँ बने हैं। शहर के मकान एवं समीपस्थ क्षेत्र में छत के लिए पट्टियाँ यहाँ से लाई जाती हैं।

जलवायु

ग्रीष्म में तापमान का बहुत अधिक होना परन्तु शीत में निम्न तापमान, दिन–रात के तापमान मोर बहुत अन्तर होना एवं अनिश्चित व अनियमित मौसमी वर्षा मरुस्थलीय जलवायु की प्रमुख विशेषताएं हैं। यह प्रदेश भारत का उष्णतम क्षेत्र है, जहाँ वार्षिक तापान्तर 14^0 सेग्रे से 17^0 सेग्रे के मध्य रहता है। ग्रीष्म ऋतु में तापमान 35^0 सेग्रे तथा शीत ऋतु में 15^0 सेग्रे रहता है। औसत ग्रीष्मकालीन सापेक्षिक आर्द्रता 15 प्रतिशत तथा जुलाई –अगस्त में 60 से 70 प्रतिशत तक पहुँच जाती है। यहाँ औसत वार्षिक वर्षा का अधिकतम 30 सेमी एवं न्यूनतम 5 सेमी तक पाया जाता है। वर्षा पूर्व से पश्चिम की ओर घटती जाती है। अधिकांश वर्षा जुलाई तथा अगस्त में संवाहनिक धाराओं से होती है।

मिट्टियाँ (Soils)

मरूस्थलीय प्रदेश की मिट्टियाँ गंगा–सिन्धु की मिट्टियों का ही भाग है। ये मिट्टियाँ बालूके नाम से जानी जाती हैं। यह वायुढ़ मिट्टियाँ हैं। इनमें 85 से 90 प्रतिशत बालू का अंश होता है। इस प्रदेश

के अधिकांश भाग में बलुई दोमट मिट्टियाँ पाई जाती है। इनमें नाइट्रोजन का अंश कम मिलता है। इस प्रदेश में हल्की पीली और पूरी मिट्टियाँ विद्‌यमान हैं। उत्तर में श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़ में कांप मिट्टी मिलती हैं। इस मिट्टी का रंग लाल है, इसमें चूना, फॉस्फेट, एसिड तथा ह्यूमस की कमी पाई जातो है। कृषि के लिए यह मिट्टी उपयुक्त है। बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर तथा नागौर के रन (Runn) में मिट्टियों में लवणता के उच्च प्रतिशत के कारण यहाँ कृषि कार्य संभव नही है।

वनस्पति

वर्षा की अल्प मात्रा, उच्च दैनिक तापान्तर तथा वर्षा की तुलना में वाष्पीकरण की अधिकता होने से इस प्रदेश में वनस्पति अत्यन्त क्षीण एवं छोटे पौधों तथा झाड़ियों तक सीमित हैं। इस प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पति में फोग, खींपरा जाल (पीलू) धोर, कैर, खेजड़ी, कीकर, कूमटा, हिंगोटा रोहिड़ा, बबूल आदि की प्रधानता है। पोकरन तथा जैसलमेर के मध्य विस्तृत क्षेत्र पर अनेक किस्म की घासें पाई जाती है।इनमें मूँज, सेवण, धामण आदि प्रमुख हैं। इस प्रदेश में जहाँ कहीं भूमिगत जल प्राप्त है। वहाँ बस्तियों के निकट नीम, खजूर, रोहिड़ा, कीकर एव घासों की अधिकता है। इसके अलावा वृक्षारोपण कार्यक्रमों के अन्तर्गत शीशम, विदेशी बबूल, यूकेलिप्टस आदि वृक्षों का रोपण किया गया है।

खनिज

यह प्रदेश खनिजों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जिप्सम के भण्डार बीकानेर जिले के जामसर, लूनकरणसर व कोलायत क्षेत्र सियासर, हरकासर, फ़ाल की खानें तथा जैसलमेर जिले में मोहनगढ़, हमीर वाली, घाणी औलखा में, बाड़मेर जिले में मधुपुर का वासा, श्योकर उत्तर लाई और खूटानी क्षेत्रों में मिलते हैं तथा जिप्सम का खनन भी किया जाता है। तेल के भण्डार तनोट से 30 किमी. दूर डांडेवाला क्षेत्र में मिले हैं। रामगढ़ क्षेत्र में तेल की सम्भावनाएँ बढ़ी हैं। इसके अलावा घोटारू, रामगढ़, बीकानेर क्षेत्र के भीकमपुर आदि में तेल व गैस भण्डारों का पता चला है। बीकानेर क्षेत्र में लिग्नाइट कोयला मिलता है। इसके भण्डार बीकानेर के पास बरसिंहपुर पलाना, तलाना, खारी, चानेरी, गंगासरोवर, मुंध आदि क्षेत्र में पाये जाते हैं। बाड़मेर जिले में कपूरड़ी क्षेत्र में लिग्नाइट के भण्डार हैं।

जैसलमेर के पास स्टीलग्रेड चूना पत्थर, पेट्रोल, प्राकृतिक गैस एव भवन निर्माण पत्थर के अकूत भण्डार है। मुल्तानी मिट्टी के जमाव बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर आदि में पाये जाते हैं। संगमरमर जैसलमेर मूलसागर, अमर सागर, अबूर नारपिया से प्राप्त किया जाता है। सानू क्षेत्र में मिलने वाले स्टीलग्रेड चूना पत्थर का उपयोग देश के इस्पात संयन्त्रों की धमन भट्टियों में होता है। सानू क्षेत्र चूना पत्थर की गुणवत्ता एवं ऊपरी सतह पर पाये जाने के कारण जैसलमेर देश के औद्‌योगिक मानचित्र पर अंकित हो गया है।

जनसंख्या एवं नगर

इस प्रदेश में जनसंख्या बहुत कम तथा उसका वितरण बहुत असमान है। जनसंख्या का घनत्व कम है। प्रदेश की प्रतिकूल दशाओं ने यहाँ की जनसंख्या के बसाव को अत्यधिक प्रभावित किया है। शुष्क जलवायु फलत : जल की अल्पता ने इस भाग को निवास के अयोग्य बना दिया है। अस्तु विस्तृत भूभाग जन–विहीन है। अधिकांश जनसंख्या इस प्रदेश के पूर्वी और उत्तरी–पूर्वी भाग में निवास करती है। पूर्व से पश्चिम की ओर घनत्व कम होता जाता है। इस प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व 50 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी. है। पिछले दो दशकों में इस प्रदेश में जनसंख्या

वृद्धि में तीव्रता आई है। सबसे अधिक जनसंख्या वृद्धि 1981–91 के दशक में बीकानेर एवं जैसलमेर जिलों में हुई है। इस भाग में जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारण इन्दिरा गाँधी नहर द्वारा जल की उपलब्धि, नगरीकरण परियोजना के सिंचित क्षेत्र में अप्रवासी किसान परिवार, पाकिस्तानी शरणार्थी, सेवा–निवृत सैनिक कर्मचारियों, शहीदों के परिवारों, अनुसूचित जाति के गरीब लोगों और पोंग बाँध के विस्थापितों को भूमि आवंटन कर रहे हैं। इस प्रदेश मैं सबसे अधिक नगरीय जनसंख्या जोधपुर जिले में तत्पश्चात बीकानेर जिले में हैं। जोधपुर एवं बीकानेर 1 लाख से अधिक आबादी वाले नगर है। एक लाख से कम आबादी वाले नगर बाड़मेर, जैसलमेर, बिलाड़ा, बालोतरा एवं चुरू हैं। इस प्रदेश के प्रमुख व्यापारिक नगर जोधपुर, बीकानेर, चुरू, सुजानगढ़ रतनगढ़, बाड़मेर, बालोतरा, जैसलमेर, बिलाड़ा, लूनकरणसर आदि हैं। श्री गंगानगर जिला कृषि–विपणन की दृष्टि से अग्रणी है।

अर्थव्यवस्था

इस प्रदेश में लोगों का मुख्य व्यवसाय पशुपालन एवं पशु उत्पादों का विनिमय है। कृषि सहायक धन्धे क़े रूप में है। नगरों की बाहरी सीमा पर फल, सब्जी की कृषि एवं दुग्ध व्यवसाय प्रमुख धन्धा है। इस प्रदेश के कस्बों में मोटे वस्त्र, ऊन कताई, बुनाई एवं अन्य लघु उद्योंगों का व्यवसायिक रूप से विकास हुआ है।।

पशु सम्पदा

राजस्थान की मरुस्थली क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का आधार पशुधन है। इस क्षेत्र में भेड़–बकरी, ऊँट घोड़े एवं गधे पशु सम्पदा के रूप में जाने जाते हैं। ऊँट यहाँ भारवाहक, कृषि कार्य, पानी खींचने, पानी ढोने, सवारी करने तथा गाड़ी में जुतने आदि के काम आता है। भेड़, दूध, ऊन, माँस, चमड़े आदि के लिए पाली जाती हैं। बकरी दूध, माँस, चमड़ा आदि के लिए पाली जाती हैं। अन्य पशुओं में गाय, बैल, घोड़ा एवं भैंस हैं। गोवंश की थारपारकर नस्ल जैसलमेर, कांकरेज नस्ल बाड़मेर, राठी नस्ते बीकानेर एवं जैसलमेर के उत्तरी–पूर्वी भाग में तथा हरियाणा नस्ल बीकानेर में मिलती है। गौ वंश की उत्तम नस्लों के कारण दुग्ध व्यवसाय में यह प्रदेश अग्रणी हैं। बीकानेर दूध उत्पादों के व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र है। भेड़ पालन की दृष्टि से यह प्रदेश अग्रणी है। भेड़ों की नाली एव पूगल नस्ल बीकानेर में, मगरा नस्ल जैसलमेर व जोधपुर में मिलती है।

कृषि (Agriculture)

इस प्रदेश में जलवायु, मिट्टियाँ, धरातलीय अवस्थायें, सिंचाई के लिए जल की अनुपलब्धता जैसी कठिन परिस्थितियों में संघर्ष कर यहाँ का किसान कृषि करता है। खरीफ की फसल में बाजरा, मूँग, मोठ, तिल, उड़द आदि की खेती की जाती है तथा रबी की फसल में जौ, गेहूँ चना सरसों, तारामीरा एवं अरण्डी आदि की फसलें बोई जाती हैं। इस प्रदेश में भूमि की उर्वरता, वर्षा का मात्रा, वर्षा अनिश्चितता की स्थिति, प्राकृतिक वातावरण आदि के आधार पर जुताई, फसल चक्र, खाद का उपयोग तथा समस्त कृषि का प्रारूप निर्धारित होता है।

कृषि अधिकांशत: मानसूनी वर्षा पर ही आश्रित है। मरुस्थली क्षेत्र में वर्षा की कमी, रन्ध्रयुक्त ढीली, खुली बालू से वाष्पीकरण की अधिकता तथा शुष्क जलवायु के कारण पानी की अनवरत आवश्यकता होती है। इसीलिए इस प्रदेश में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराई गई है। फलत: कोलायत, देशनोक, पलाना नोखा, लूणकरणसर आदि क्षेत्रों में जहाँ पहले मात्र बाजरा मोठ, ग्वार ही होते थे, वहाँ अब चना, गेहूँ मूँगफली, दालें, तिलहन पैदा होने लगी हैं । लूणकरणसर क्षेत्र

राजस्थान का प्रमुख मूँगफली उत्पादक क्षेत्र एवं मण्डी बन गया है । सिंचाई के कारण यहाँ कृषि का प्रकार, फसल चक्र तथा फसल संयोजन में परिवर्तन आ गया है। इसी प्रकार जैसलमेर एवं चुरु क्षेत्र में भी कुछ समय बाद सिंचाई के कारण फसल चक्र, कृषि प्रारूप एवं प्रतिरूप में बदलाव सम्भावित है ।

उद्योग (industries)

इस मरुस्थलीय क्षेत्र में पानी, बाजार, पूँजी, ऊर्जा तथा सस्ते और कुशल श्रमिकों की कमी के कारण औद्योगिक विकास सम्भव नहीं हो सका है । औद्योगिक दृष्टि से राज्य का यह सबसे पिछड़ा प्रदेश है । इस प्रदेश में वृहद् उद्योगों का अभाव है । स्थानीय उपलब्ध कच्ची सामग्री पर आधारित कुटीर एवं ग्रामीण उद्योगों का विकास हुआ है । बीकानेर जिले में ऊन और डेयरी उद्योग के अलावा सूती, खादी के कम्बल, दरी, रेडीमेड वस्त्र, भुजिया, पापड़, रसगुल्ला, मंगोड़ी, ग्वारगम पाउडर उद्योग, दाल मिल, तेल घाणी, बर्तन, रंगाई, छपाई, स्कीनप्रिंट आदि लघु एवं कुटीर उद्योगों में सम्पन्न होते हैं । बालोतरा में पावरलूम, सूती कपड़ों पर रंगाई –छपाई का कार्य होता है । बाड़मेर जिले का पावरलूम उद्योग प्रसिद्ध है । बाड़मेर की प्रिंट काफी लोकप्रिय है । यहाँ पचपदरा में नमक बनाया जाता है । जैसलमेर में ऊनी तथा सूती खादी के वस्त्रों का निर्माण अधिक होता है । यहाँ पत्थर की जालियाँ बनाने का उद्योग काफी उन्नत है ।

परिवहन के साधन

यह प्रदेश प्राचीनकाल से ही व्यापारिक मार्गो से जुड़ा रहा है । इसका सम्पर्क एक ओर वर्तमान पाकिस्तान के सिन्ध क्षेत्र से था, तो दूसरी ओर गुजरात और राजस्थान के अन्य भागों से । सन् 1965 के पश्चात् इस प्रदेश की सड़कों का मात्रात्मक एवं गुणात्मक विकास हुआ है जिससे वर्तमान में यातायात एवं भार वाहन सुगम हो गया है । राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 14 गंगानगर से बीकानेर, जोधपुर, बालोतरा, बाड़मेर होते हुए गुजरात को जाता है। जैसलमेर से बीकानेर का सम्बन्ध सीमा सुरक्षा सड़क के द्वारा सम्भव हो पाया है । इस प्रदेश में पूर्व में मीटर गेज रेल लाइन की सुविधा थी, किन्तु अब जोधपुर–जैसलमेर के बीच ब्रॉडगेज की सुविधा होने से यह क्षेत्र सम्पूर्ण देश की 'यूनीगेज' की योजना में आ गया है तथा अब यहाँ के स्टीलग्रेड चूने के पत्थर, जिप्सम, मुल्तानी मिट्टी, लिग्राइट कोयला, गैस, तेल आदि सभी की ढुलाई आसान हो जायेगी जिससे इस प्रदेश को भारी आर्थिक लाभ होगा । बीकानेर को वायुग्र सेवा से जोड़ने की योजना है क्योंकि बीकानेर का 'नाल' हवाई अड्डा सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । जोधपुर नगर प्रमुख हवाई अड्डा है। यहाँ से नियमित वायुसेवा जयपुर, मुम्बई एवं दिल्ली को है ।

मरुस्थल प्रदेश के सूक्ष्म प्रदेश

आर.एल. सिंह ने राजस्थान के मैदान को तीन सूक्ष्म भागों में विभक्त किया है:–

(अ) जैसलमेर मरुस्थली

यह क्षेत्र मरूस्थली प्रदेश का सबसे अधिक शुष्क, कठोर, वर्षाविहीन, पानी विहीन तथा जीवन की क्रियाओं को अनवरत चालू रखने में कठिनाईयाँ प्रस्तुत करने वाला है । इसमें न्यूनतम जनसंख्या, न्यूनतम कृषि योग्य क्षेत्र, अधिकतम पड़ती भूमि तथा अधिकतम वाष्पीकरण की स्थिति पाई जाती है । यहाँ जनसंख्या का घनत्व 9 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. से भी कम है। मुख्य व्यवसाय पशुपालन है । प्रमुखतः थारपारकर एवं राठी नस्ल की गायें पाली जाती हैं तथा घुमक्कड़ पशुपालन, मौसमी तथा परम्परागत हैं । यहाँ से जिप्सम का निर्यात किया जाता है । यह क्षेत्र

जैसलमेर–जोधपुर से रेल यातायात द्वारा देश के अन्य हिस्सों से जुड़ा हुआ है । सीमा सड़क संगठन ने यहाँ सड़कों का जाल बिछाने की कोशिश है । इस क्षेत्र का विकास इन्दिरा गाँधी नहर क्षेत्र से जुड़ा हुआ है । इसकी जैसलमेर– रामगढ़ –गडरारोड शाखा से सम्पूर्ण क्षेत्र की कायापलट हो जावेगी । जैसलमेर मरूस्थलों को पुन: दो उपविभागों में बाँटा गया है:–

(1) **पश्चिमी जैसलमेर मैदान –** यह राजस्थान एवं जैसलमेर जिले का पश्चिमी भाग है, जहाँ कभी – कभी वर्षा की एक बूँद भी नहीं गिरती, कोई बड़ा नगर भी नहीं है। यहाँ मरुभूमि का असली स्वरूप देखा जा सकता है ।

(2) **पूर्वी जैसलमेर मैदान –** इस क्षेत्र में जिप्सम के भण्डार पाये जाते हैं । इसीलिए यहाँ की अर्थ व्यवस्था पर जिप्सम के जमावों का प्रभाव पीरलक्षित होता है। यह क्षेत्र सहायक सड़कों एवं सीमा सड़क संगठन द्वारा निर्मित सड़कों द्वारा जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर से जुड़ा हुआ है ।

(ब) बाड़मेर–फलौदी मरूस्थली

यह क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक अच्छी अर्थव्यवस्था वाला प्रदेश है । यहाँ शुष्क कृषि एवं पशुपालन मुख्य रूप से होता है । यहाँ भूमिगत जल के दोहन से सिंचाई करके कृषि की जाती है । इसीलिए जनसंख्या का घनत्व 54 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. पाया जाता है । बाड़मेर क्षेत्र में ओ. एन. जी.सी. ब्रिटिश एवं फ्रांसिसी कम्पनियों के सहयोग से प्राकृतिक गैस एवं तेल की खोज का सक्रिय एवं सफल प्रयास किया गया है । अत: संभवत: वर्तमान शताब्दी में यह क्षेत्र अत्यधिक विकसित प्रदेश हो जावेगा । इस क्षेत्र के प्रतिनिधि नगर बाड़मेर एवं फलौदी हैं । फलौदी में नमक उत्पादन एक उपयोगी अर्थव्यवस्था का अंग है । इसलिए क्षेत्र के निवासियों पर इसका भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रदेश को पुन: दो भागों में विभक्त किया गया है ।

(1) **बाड़मेर क्षेत्र –** इस बाड़मेर क्षेत्र के चारों ओर जिप्सम, बेन्टोनिक, लिग्राइट, तेल, प्रकृतिक गैस आदि खनिज बहुतायत से मिलते हैं ।

(2) **फलौदी क्षेत्र –** इस क्षेत्र में वाष्पीकरण विधि से नमक बनाया जाता रहा है। भी यहाँ की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है ।

(स) बीकानेर – चूरू मरुस्थली ।

यह क्षेत्र अपनी सुदृढ़ अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक धरोहर एवं विकास की दृष्टि से गतिमान क्षेत्र है । यहाँ कृषि एवं पशुपालन दोनों ही अर्थव्यवस्था के दो स्तम्भ हैं । इस क्षेत्र में मुख्य फसलें खरीफ में बाजरा, मूँग, मोठ, ग्वार, तथा रबी की फसलों में गेहूँ जौ, चना, सरसों, तारामीरा आदि हैं । प्रमुख निकाले जाने वाले खनिजों में जिप्सम, लिग्राइट, काँच, बालुका, मृत्तिका आदि हैं । इस क्षेत्र को भाखड़ा–नांगल परियोजना से बिजली प्राप्त होने के कारण तथा इन्दिरा गाँधी नहर, परियोजना से सिंचाई होने के कारण विकास दिन दुगना एवं रात चौगुना हो रहा है । इस क्षेत्र में ताप विद्युत सयत्र भी लग गये हैं । इस, उपप्रदेश को पुन: दो भागों में बाँटा जाता है –

(1) **बीकानेर मैदान –** बीकानेर का मैदान मिश्रित अर्थव्यवस्था का क्षेत्र है । यहाँ उद्योग एवं खनन दोनों ही पाये जाते हैं । इसके साथ कृषि एवं पशुपालन भी किया जाता है । इसका अधिकांश भाग इन्दिरा गाँधी परीयोजना से सिंचाई प्राप्त करता है फलत: अब यहाँ सभी प्रकार की फसलें होने लगी हैं । बीकानेर शहर नगरीय सामूहिकरण केन्द्र बन गया है । यहाँ प्रमुख नगर नोखा, नेपासर, देशनोक, लूणकरण आदि हैं । बीकानेर शहर की जनसंख्या सन् 2001 की जनगणनानुसार 5,29,007 है । बीकानेर शहर की सांस्कृतिक धरोहर जूनागढ़

लालगढ़, बीकानेर कृषि विश्वविद्यालय, देवीकुण्ड सागर, महाराजाओं की समाधियाँ एवं हवेलियाँ हैं ।

(2) **दक्षिण–पश्चिमी चूरू मैदान –** यहाँ की अर्थव्यवस्था पूर्णतया कृषि प्रधान है। पशुपालन एक पूरक का काम करता है । इस क्षेत्र से होकर जोधपुर–दिल्ली एवं बीकानेर–दिल्ली को रेलगाड़ी जाती हैं । रतनगढ़–सरदार शहर, कार्ड लाईन भी इसी क्षेत्र में हैं । यहाँ 'बरखान' बालुका स्तूप बहुत पाये जाते हैं । सरदारशहर, रतनगढ़, डूंगरगढ़, बिदासर, राजलदेशर, छापरा, सुजानगढ़ आदि इस क्षेत्र के प्रमुख व्यापारिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं वाणिज्यिक नगर हैं । इस क्षेत्र में यत्र–तत्र "ताल" बालुका स्तूपों की बीच विस्तृत, कठोर किन्तु समतल धरातल का निम्न भूमि के क्षेत्र पाए जाते हैं जिसमें वर्षा में जल भरता है । यही ताल, बच्चों के खेलने, राष्ट्रीय पर्वो पर समारोह सम्पन्न करने, मनोरंजन के काम आते हैं ।

16.2.2 बाँगड़ प्रदेश (Bangar Region)

यह प्रदेश राजस्थान के पश्चिम में स्थित मरुस्थली प्रदेश के पूर्व में और अरावली क्षेत्र के पश्चिम में विस्तृत है । इसके अन्तर्गत राज्य के श्री गंगानगर, चूरू के पूर्वी भाग, झुंझुनू सीकर, नागौर, जोधपुर के पूर्वी भाग, पाली, जालोर, बाड़मेर के कुछ दक्षिणी भाग सम्मिलित हैं । इसका देशान्तरीय विस्तार $72^{0}3$ ' से 76^{0} पूर्व तथा अक्षांशीय विस्तार $24\ 30^{10}$ उत्तर से 30˚15' उत्तर तक है । यह प्रदेश मरूस्थली प्रदेश की तुलना में चट्टानी क्षेत्र है । इसका पश्चिमी तथा उत्तरी भाग अधिक बलुआ एवं शुष्क है । इस प्रदेश में कई क्षेत्रों में प्राचीन जलोढ़ मैदान 'बांगड़' विद्यमान है । इस प्रदेश का उत्तरी भाग अन्त: स्थलीय (inland Drainage) प्रवाह का क्षेत्र है ।

धरातल

धरातल की दृष्टि से यह भौगोलिक प्रदेश ऊबड़–खाबड, बालूका स्तूयुक्त उच्च चट्टानी भूमि से परिपूर्ण है । झुंझुनू सीकर और नागौर जिले के पूर्वी भाग में फैली अरावली पहाड़ी क्षेत्र में धरातल की औसत ऊँचाई 300 से 600 मी. है । कहीं–कहीं यह ऊँचाई 900 मीटर तक है । इस प्रदेश में सबसे कम ऊँचाई नागौर जिले में है । इस प्रदेश के दक्षिण भाग में धरातलीय ऊँचाई में विभिन्नता पायी जाती है । जालौर की सांचौर तहसील की औसत ऊँचाई 63 मीटर है जबकि इसके पूर्व में स्थित मालानी श्रेणी की ऊँचाई 300 से 400 मीटर है । इस प्रदेश का दक्षिणी भाग लूनी एवं उसकी सहायक लघु नदियों द्वारा प्रवाहित है । लूनी बेसिन में लूनी सवाई एवं उनकी सहायक नदियों ने उत्तर एवं दक्षिण में पहाड़ी को काट–छाँट दिया है किन्तु पूर्व में अरावली के पदस्थ भाग में विकसित गिरिपद मैदान् को असख्य छोटी–छोटी नदियों से जल प्राप्त होता है । यहाँ भूमिगत जल की स्थिति उत्तम एवं जलवायु भी अर्द्ध शुष्क है, अत: कृषि की दृष्टि से यह प्रदेश अपेक्षाकृत धनी है ।

जलवायु

इस प्रदेश की जलवायु अपेक्षाकृत कम कठोर है । यहाँ ग्रीष्मकालीन तापमान 32^{0} सेग्रे से 36˚ से. ग्रे. तक पाया जाता है । शीतकालीन औसत तापमान 10^{0} सेग्रे से 17^{0} से.ग्रे. के बीच रहता है । शीतकाल में कभी–कभी तापमान हिमांक से भी नीचे चला जाता है । यहाँ शीतऋतु छोटी किन्तु शुष्क होती है । वर्षा का औसत 20 सेमी. से 40 सेमी. के बीच रहता है । ग्रीष्मकाल में 'लू' चलती है । मई–जून के महीनों में काली–पीली आँधी आती है ।

वनस्पति

इस प्रदेश में वनस्पति वहाँ के धरातल, जलवायु, मिट्टियों एवं चट्टानों के अनुरूप पाई जाती है । चट्टानी, कठोर एवं बालू वाले भागों में उष्ण कटिबंधीय काँटेदार वृक्ष पाये जाते हैं किन्तु बलुई मैदानी शुष्क बलुका स्कूप वाले क्षेत्रों में शुष्क वनस्पति पाई जाती है । इनमें कैर, बेर, खेजडी, बल, जाल, पीलू खेर, कुमीठया मुख्य है । चुरू, झुंझुनू सीकर तथा नागौर जिलों में सेवण घास पाई जाती है जो पशुओं के लिए बहुत पौष्टिक होती है ।

मिट्टियाँ

धरातल, जलवायु, वनस्पति आदि का सम्मिलित प्रभाव मिट्टियों में देखने को मिलता है । इस प्रदेश का धरातल उत्तर–पूर्व में ऊबड़–खाबड, कहीं–कहीं पहाड़ी है । यहाँ की जलवायु शुष्क, अर्द्ध शुष्क प्रकार की है । फलस्वरुप इस भाग में प्रमुखत: बलुई मिट्टी पाई जाती है । इस मिट्टी में 90 से 95 प्रतिशत बालू के कण पाये जाते हैं तथा शेष मृत्तिका के कण मिलते है । झुझुपू सीकर, नागौर जिलों में पीली–पूरी, पूरी बलुई और लाल मरुस्थली मिट्टियाँ पाई जाती है । इस प्रदेश के दक्षिणी भाग में लूनी बेसिन में पूरी दोमट मिट्टी पाई जाती है । यहाँ लवणयुक्त एवं क्षारीय मिट्टियाँ पाई जाती है । इस प्रदेश में सिंचाई सुविधा वाले क्षेत्रों तथा लूनी बेसिन में गेहूँ सरसों, चावल, कपास, मूँगफली तथा दलहनों की फसलें उत्पादित की जाती हैं । इस प्रदेश में कृषि एवं पशुपालन का विकास तीव्रगति से हुआ है ।

खनिज

इस प्रदेश में विविध प्रकार के खनिज मिलते हैं । जिप्सम के जमाव नागौर जिलें में विस्तृत क्षेत्र पर पाये जाते है, जो गोठ–मागलोद क्षेत्र में अधिक है । चुरु जिले के तारा नगर के उत्तरपूर्व में, खुटामी (पाली), पालसुद, कारम, मिलसगासी, बादवासी और मनोंना (जोधपुर) क्षेत्रों में भी जिप्सम मिलता है । ताँबे के भण्डार झुंझुनू जिले के खेतड़ी–सिंघाना क्षेत्र में कोल्हन, मन्धान,खेतड़ी,पपरना, चाँदमारी, अखवाली, बबाई तथा बूरखेड़ा में पाये जाते है । नागौर जिले के मकराना क्षेत्र में डूँगरी, मकराना, बोरावड, राजपुरा क्षेत्र में संगमरमर निकाला जाता है । इस के अलावा सीकर में मेओण्डा तथा पाली में बर सेन्दड़ा कुण्डा में संगमरमर पत्थर निकाला जाता है । ग्रेनाईट का खनन जालौर में किया जाता है । टंगस्टन रावल पहाड़ी, डेगाना (नागौर) आन्ध्र फेल्सपार चाँदिया, प्रतापगढ, फुलाद (पाली) काचराड़ा (सीकर) में निकाला जाता है । बेरीलियन टोरड़ा द्वारा से, चुरला (सीकर) से प्राप्त होता है। सीकर और जोधपुर से डोलमेनाइट निकाला जाता है। नमक सांभर, डीड़वाना, कुचामन (नागौर) से निकाला जाता है। अभ्रक काचारड़ा, मकरी, मुण्डा स्थानों से निकाला जाता है। तामड़ा पत्थर महवा–बागेश्वर (सीकर) से निकाला जाता है। युरेनियम खंडेला, घाटेश्वर (सीकर) बबाई (झुंझुनू), पाइराइट, सलादीपुरा (सीकर), केल्साइट पापुरना (झुंझुनू), रायपुर माओथा, रायपुरा (सीकर) ,बारागुंड़ा (पाली), चीनी मिट्टी खजवाना (नागौर), लिटेरिया (पाली), टौरेड़ा (सीकर) और ग्रेफाईट, बर तथा हीरावास (जोधपुर) में पाये जाते है। अन्य खनिज डोलोमाइट, लोहा (डाबला, सिंघाना, नीम का थाना) क्षेत्र में पाए जाते हैं।

जनसंख्या

राजस्थान बांगड़ प्रदेश में जनसंख्या घनत्व 134 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है जो कि राज्य के औसत घनत्व (129 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.) से कुछ ही अधिक है। इस प्रदेश के शेखावाटी क्षेत्र में ग्रामीण जनसंख्या सबसे अधिक पाई जाती है। जनसंख्या का सबसे कम घनत्व चुरू जिले में

91 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है। गत शताब्दियों में सबसे कम जनसंख्या वृद्धि दर 186.30% सीकर जिले में अंकित की गई है। सर्वाधिक ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत जालौर जिले में 92.72 है। नागौर में 84.02 पाई जाती है। सम्पूर्ण प्रदेश में कृषि प्रधान व पशुपालन सहायक किन्तु महत्वपूर्ण व्यवसाय है। नहरी प्रदेश में कृषि में 70%' एवं बांगड़ एवं लूनी बेसिन क्षेत्र में कृषि पशुपालन व्यवसाय में 75% जनसंख्या सलग्र है।

कृषि

यहाँ मुख्य व्यवसाय कृषि है। श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, सीकर, झुंझुनूं जिलों में जालौर शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल 72 से 76 प्रतिशत तक है। पाली जिले में 43%, जालौर जिले में 55% क्षेत्रफल में कृषि कार्य किया जाता है। इस क्षेत्र में कृषि की प्रमुख फसलों में खरीफ में ज्वार, बाजरा, मूँग, मोठ, मूँगफली, तिलहन, दालें आदि है जबकि रबी की फसल में गेहुँ जौ, चना, सरसों तारामीरा, राई, अलसी, अरण्डी, तम्बाकू आदि का उत्पादन किया जाता है। इन्दिरा गाँधी नहर क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा के कारण किसानों ने फसलों का निश्चित फसलचक्र अपनाया है।

श्रीगंगानगर में फलों में किन्तु मालटा, अमरूद तथा फूल–गुलाब, हजारा, गेंदा, गुलदाउदी आदि का उत्पादन भी बहुतायत से हो रहा है। यहाँ चावल, गन्ना, कपास एवं चने का उत्पादन भी गुणवत्ता एवं मात्रा दोनों की दृष्टि से बहुत अच्छा होता है। सूरतगढ़ में इसकी सहायता से निर्मित बड़े कृषि फार्म हैं जिसमें विस्तृत कृषि प्रणाली से विविध प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जाता है। ये फार्म पूर्णतः यन्त्रीकृत हैं। नागौर जिले में जीरा और तिल, जालौर जिले में ईसबगोल तथा जीरा, झुंझुनूं सीकर जिले में बाजरा, दालें एवं गेहूँ जी का उत्पादन होता है।

पशुपालन

इस प्रदेश में झुंझुनू से जालौर व सिरोही तक पशुपालन भी महत्वपूर्ण कार्य है। राज्य सबसे अधिक गाय, बैल, भेड़ एवं बकरी इस प्रदेश में पाले जाते हैं। सम्पूर्ण प्रदेश में कृषि के साथ दूध प्राप्ति के लिए पशुओं को पाला जाता है। पशुपालन की दृष्टि से, कांकरेज, थारपारकर एव नागौरी नस्ल की गायें, बाड़मेर, जालौर, नागौर में पाई जाती है। डेयरी व्यवसाय इस क्षेत्र मैं अत्यधिक पनपा है। सरदार शहर में दुग्ध अवशीतन प्लान्ट से लगभग एक लाख लीटर दूध दिल्ली भेजा जाता है। उन्नत देशी गाय व मुर्गा भैंसे मुख्यतः डेरी उत्पादों के लिए नागौरी व सांचौर बैल कृषि कार्यो व बोझा ढ़ोने एव बैलगाड़ी में जोते जाते है। सबसे अधिक भैंसे सीकर, पूर्वी चुरु, झुंझुनू एवं नागौर में पाली जाती हैं, भेड़ें व बकरी पूर्वी भागों में अरावली के पश्चिमी ढालों व निकटवर्ती भागों में पाली जाती हैं। ऊँट भार ढोने व कृषि कार्य के लिए पाले जाते हैं। इस प्रदेश में राज्य की 40% भेड़, बकरी एवं एक तिहाई गायें पाई जाती हैं।

उद्योग धंधे

औद्योगिक विकास की दृष्टि से बांगड़ प्रदेश अभी आरम्भिक अवस्था में है। इस प्रदेश में भारी उद्योगों का विकास नहीं हुआ है। मध्यम एवं अनेक छोटे उद्योगों का विकास अवश्य हुआ है। इस प्रदेश में औद्यौगिक विकास हेतु राको द्वारा उद्योगों की स्थापना हेतु वित्तीय सहायता राजस्थान वित्त निगम, जिला उद्योग केन्द्र, राजस्थान लघु उद्योग निगम द्वारा प्रदान की जानें लगी है। इस प्रदेश में सूती वस्त्र मिलें पाली में स्थापित की गई हैं। ऊनी वस्त्र के कारखाने जोधपुर एवं बीकानेर में हैं। नवलगढ़ चुरू, लाडनू एवं सरदारः शहर में ऊन को प्रोसेस करने, नर्मदा कम्बल आदि बनाने के लघु उद्योग लगाए गए है। सांभर–डीडवाना, कुचामन, फलौदी, सुजानगढ़

में नमक बनाने के कारखाने केन्द्रित हैं। पाली में रास नामक स्थान पर सीमेंट का कारखाना, नीम का थाना, फुलेरा में मिनी सीमेंट प्लान्ट, जोधपुर में टैक्टर का कारखाना, राजस्थान स्टेट कैमिकल वर्क्स, डीडवाना, साभर साल्ट्स लि. सांभर–लेक स्थापित है। मकराना के संगमरमर की टेबिल, कुर्सी, खरल, दीपदान, चकला–वेलन, शोपीस, डायनिंग टेबिल का उद्योग किशनगढ़ तथा मकराना में केन्द्रित है। फालना में ट्राँजिस्टर एवं विद्युत उपकरण बनाने का कारखाना है।

छोटे उद्योगों में स्टील अलमारी, कृषि उपकरण, हाथी दाँत और प्लास्टिक की चूडियाँ, साबुन संगमरमर के टाईल्स, तेल मिल आदि उद्योग विकसित हुए हैं। जालौर में कृषि उपकरण बनाना, बर्तन बनाना, लोहा इस्पात का सामान, प्लास्टिक, स्टेशनरी, मशीन उपकरण, वैज्ञानिक उपकरण हैण्डीक्राफ्ट प्रमुख है।

परिवहन

इस प्रदेश में परिवहन की दृष्टि से अब प्रगति हुई है। अब सीमा सुरक्षा सगठन, सार्वजनिक निर्माण विभाग, नाबार्ड, मण्डी क्षेत्र आदि के द्वारा सड़को का जाल बिछाया जा रहा है। मुख्य सड़कों में राष्ट्रीय राजमार्ग 11 जयपुर–सांभर–कुचामन होती हुई बीकानेर–जोधपुर को जाती है। राजमार्ग संख्या 14 भी गंगानगर–बीकानेर होकर गुजरने लगा है। प्रदेश की मुख्य सड़कें इस प्रकार हैं– (i) रतनगढ़, चुरू, सरदारशहर, झुंझुनू, सीकर, डीडवाना, नागौर होकर फलौदी व जोधपुर (ii) सीकर, मकराना, मेड़ता, डीडवाना होकर जोधपुर (iii) जोधपुर, पाली, ब्यावर हनुमानगढ़, रतनगढ़, (v) जोधपुर से जालौर, भीनमाल होकर साण्डेराव, (vi) पाली से सिरोही (vii) बाड़मेर से बालोतरा होकर सिरोही एव जोधपुर तक के राज्यीय राज मार्ग महत्वपूर्ण हैं।

सम्पूर्ण प्रदेश का रेल मार्ग उत्तरी रेलवे का अंग है। यहाँ पर गंगानगर से बीकानेर व मेड़ता होकर जोधपुर तक एवं जोधपुर से फुलेरा होकर जयपुर तक का मार्ग ब्रॉडगेज में बदल दिया गया है। प्रमुख रेलमार्ग इस प्रकार हैं –

(i) गंगानगर–चुरू–सीकर–जयपुर

(ii) बीकानेर, जोधपुर–पाली, मारवाड़,

(iii) जोधपुर–मेड़तासिटी–डेगाना–फुलेरा–जयपुर,

(iv) बीकानेर–नागौर–मेड़ता सिटी,

(v) बीकानेर–रतनगढ़–चुरू–दिल्ली

(vi) बीकानेर–गंगानगर

(vii) सूरतगढ़–अनूपगढ़ आदि।

इस क्षेत्र के जयपुर, गंगानगर, जयपुर–चुरू एवं चुरू लोहारू रेल मार्गअभी मीटरगेज के हैं। बीकानेर डिवीजन रेल सेवा का मुख्यालय है। मुख्य रेलवे जंक्शन श्रीगंगानगर, सादुलपुर, बीकानेर, रतनगढ़, चुरू, मेड़ता, फुलेरा एवं मारवाड़ हैं। फुलेरा एवं मारवाड़ जंक्शन पश्चिमी रेल्वे के भी केन्द्र हैं। वायु यातायात की दृष्टि से बीकानेर का नाल हवाई अड्डा तथा जोधपुर का हवाई अड्डा ही उपयोगी है।

बाँगड प्रदेश के सूक्ष्म प्रदेश

बाँगड प्रदेश को पुन: चार सूक्ष्म प्रदेशों में विभक्त किया गया है।

(अ) घग्घर का मैदान

श्रीगंगानगर एवं हनुमानगढ जिले में घग्घर नदी की घाटी एवं सिंचित क्षेत्र इसी भाग में सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में ही चावल, गन्ने, कपास, तिलहन नकद फसलें, किन्नू, माल्टा, नीबू

जैसे फल, गेहूँ, जौ, चना, दालें, मोटे अनाज जैसे खाद्यान्न आदि पैदा किये जाते हैं। कृषि अन्य उद्योग यथा चावल साफ करना, आटा मिलें, चीनी मिलें, सूती मिलें, ऊनी वस्त्र मिलें आदि यहाँ पनप पाई हैं। सूरतगढ़ – अनूपगढ़ के बीच ब्राडगेज रेल लाइन बनी है। नाहर, भादरा, सांगरिया, रायसिंह नगर, हनुमानगढ़, करनपुर प्रमुख शहर हैं। इस प्रदेश के पुन : दो उप विभागों में बांटा जाता है।

(1) **गंगानगर मैदान –** इस क्षेत्र में इन्दिरा गांधी नहर एवं गंग नहर द्वारा सिंचाई होती है तथा अब गहन कृषि होने लगी है। एक साल में 3 फसले ली जाती हैं।

(2) **नोहर–भादरा मैदान –** यह सिंचाई सुविधाओं से वंचित भू–भाग है अत: निर्वाह कृषि अर्थव्यवस्था यहाँ की विशेषता है। इस क्षेत्र के नोहर–भादरा क्षेत्र में अभी नये सिरे से सिंचाई सुविधाएं विकसित की गई हैं।

(ब) शेखावाटी मैदान

यहाँ मुख्यत: कृषि कार्य होता हैं। कुएँ एवं नलकूप सिंचाई के प्रमुख साधन हैं। खरीफ की प्रमुख फसलों में बाजरा, ग्वार, मूँग, मोठ, मोटे अनाज आदि प्रमुख हैं। रबी की फसलों में गेहूँ जौ, चना, सरसों, राई, अलसी, तम्बाकू आदि उल्लेखनीय हैं। रेल एवं सड़क सुविधाएं भी ठीक है। जयपुर–लुहारूँ, जयपुर–रींगस–रेवाड़ी रेलमार्ग प्रमुख रेल साधन हैं तथा सड़को का जाल बिछा हुआ है। भाखरा–नांगल से बिजली प्राप्त होती है। जनसंख्या का घनत्व लगभग 190 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है। प्रमुख नगर एवं शहर चूरू, झुंझुनूं रतनगढ, तारानगर, मांडवा, चिड़ावा, पिलानी, नवलगढ़, सीकर, फतेहपुर, लक्ष्मणगढ़, रामगढ़, बिसाऊ आदि। सीकर से आगे मोदी संस्थान देश का अग्रणीय कन्या महाविद्यालय है जिसमें तकनीकी एवं सामान्य शिक्षा होती है। इसको दो उपविभागों में बाँटा जाता है।

(1) **उत्तरी—पूर्वी चूरू क्षेत्र–**इस क्षेत्र में बालुका स्तूपों का प्राधान्य है।

(2) **पश्चिमी सीकर–झुंझुनूं मैदानी क्षेत्र–** इस क्षेत्र में भी कम वर्षा, कम वनस्पति एवं बालुका स्तूपों एवं सर (ताला) की प्रधानता पाई जाती है।

(स) नागौर प्रदेश

यह क्षेत्र आन्तरिक प्रवाह, अथाह भूमिगत जल, अत्यधिक जिप्समयुक्त एवं तिल पैदा करने वाला, नागौरी मैथी, नागौरी गौवंश एवं कृषक वर्ग से धनी प्रदेश है। इस प्रदेश में सांभर, डीडवाना, कुचामन की खारे पानी की झीलें पीई जाती हैं। औसत वर्षा 30 सेमी. से भी कम होती है। किन्तु यहाँ का सालभर का मौसम उपयुक्त रहता है। प्रमुखत: लोगों का मुख्य धन्धा कृषि है। खरीफ की फसलों में बाजरा, ज्वार, मूँग, मोठ, मैथी, ग्वार की खेती की जाती है। कृषित क्षेत्र के 50% से भी अधिक भाग पर बाजरा बोया जाता है। रबी की फसलों में गेहूँ जी, चना, जीरा, सरसो एवं राई की खेती होती है।

खनिजों की दृष्टि से मकराना का संगमरमर, जिप्सम, डेगाना के पास रेवत की पहाड़ी से टंगस्टन निकाला जाता है। प्रमुख नगर, कुचामन, डीडवाना, मेड़ता, नावां, मकराना, लाडनूं परबतसर, तरनाऊ आदि है। धरातल सीकर से नागौर तक का समतल एव उपजाऊ है। इस प्रदेश के पुन: निम्न विभाग किये जाते हैं।

(1) **सांभर–डीडवाना क्षेत्र: –** यह क्षेत्र प्रमुखत: नमक उद्योग के लिए प्रसिद्ध है! सांभर में पर्यटक उद्योग भी पनप सकता है। यहाँ पर प्रवासी पक्षी देश –विदेश से शीतकाल में आते है।

(2) **नागौर – ओसियान क्षेत्र–** यह कृषि प्रधान क्षेत्र है किन्तु यहाँ पर खनिजों की भी विपुल सम्भावनायें है।

(द) लूनी बेसिन

यह राजस्थान बांगड़ का एक अति विशिष्ट क्षेत्र है। यह क्षेत्र शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्र है। इसमें जोधपुर, पाली, जालौर एवं नागौर के पश्चिमी हिस्से सम्मिलित है। बाड़मेर के भी पूर्वी क्षेत्र में यह फैला हुआ है। इस क्षेत्र में लूनी एवं उसकी सहायक नदियों का प्रवाह कम है। यह कृषि एवं पशुपालन आधारित क्षेत्र है। इसमें बोया गया क्षेत्र भी अपेक्षाकृत अधिक है तथा सिंचाई के साधन भी उपलब्ध है। तालाबो से भी यहाँ सिंचाई होती है। खरीफ की फसलों मे बाजरा प्रमुख हैं। इसके अलावा रबी की फसलों में जौ, गेहूँ, तिलहन भी पैदा किए जाते हैं। जोधपुर में औद्योगिक एव खनन कार्य होता है। अन्य नगर हैं –पीपाड़, बिलाडा, सोजतरोड, नाकोडा, पाली, बालोतरा, खींचन बड़ायली सादड़ी,जालौर, भीनमाल, आदि। इस क्षेत्र को भी निम्न उप विभागों में बाँटा जाता है –

(1) **दक्षिणी पूर्वी मैदान –**यह क्षेत्र आन्तरिक जल प्रवाह का क्षेत्र है। यहाँ साबखा (Sabkha) नमक का गर्त (अरेबिक शब्द) पाये जाते हैं, जिनमें प्रमुख थोबरन, पोकरन, वापरन, बड़ायली प्रमुख है।

(2) **पाली सोजत मैदान –** यह ऊपरी लूनी बेसिन में स्थित है जहाँ कृषि एवं पशुपालन का बोलबाला है।

(3) **लूनी–सूकड़ी द्रोणी –** सूकरी एवं गुहिया के संगमरमर बना सरदार समन्द बाँध खारी हो रहा है। किन्तु इस क्षेत्र में यत्र–तत्र कृषि कार्य किया जा रहा है।

(4) **लूनीखाड़ी क्षेत्र–** लूनी की सहायक नदी बांड़ी के अपवाह क्षेत्र से नाचे खाड़ी क्षेत्र व्यापक है। इस क्षेत्र में मिट्टी खारी पाई जाती है। अत : यहाँ कृषि का क्षेत्र कम हो जाता है किन्तु फिर भी कृषि ही मुख्य व्यवसाय है।

(5) **जालौर भीनमाल मैदान –**यह क्षेत्र जवाई नदी जो लूनी की महत्वपूर्ण सहायक नदी है तथा इस पर जवाई बॉध बना हुआ है। उससे यह क्षेत्र सिंचित है। इसी से यहाँ खरीफ एवं रबी दोनों ही फसलें अच्छी होती है।

(6) **दक्षिणी–पूर्वी बाड़मेर–** यह प्रदेश तुलनात्मक दृष्टि से आंशिक शुष्क, कम वर्षा वाला, कम कृषि वाला एवं कम आर्थिक प्रगति वाला है।

बोध प्रश्न– 1

1. राजस्थान राज्य का क्षेत्रफल कितना है?

   ....

   ....

2. वी.सी. मिश्रा ने राजस्थान को कितने भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त किया है?

   ....

   ....

3. धार मरुस्थल का विस्तार क्या है?

   ....

   ....

4.	सम्पूर्ण मरूस्थल को प्रधानत: किन दो प्रकारों में विभक्त किया गया है?	
	....	
	....	
5.	जोधपुर की फलौदी तहसील में कौन सा मरुस्थल पाया जाता है?	
	....	
	....	
6.	बांगड़ प्रदेश के उत्तरी भाग में किस प्रकार का प्रवाह पाया जाता है?	
	....	
	....	
7.	राजस्थान के बांगड़ प्रदेश में जनसंख्या घनत्व क्या है?	
	....	
	....	

16.2.3 अरावली प्रदेश (The Aravalli Region)

अरावली प्रदेश 23°20 से 28°20’ उत्तरी अक्षांश एवं 72°10' से 77°50' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है (चित्र 16.3)। इसका क्षेत्रफल 99,771 वर्ग किमी. है तथा जनसंख्या 180.28 लाख है। इसमें उत्तरपूर्व में अलवर, दौसा, जयपुर, अजमेर, भीलवाड़ा, राजसमन्द, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, डूँगरपुर, सिरोही, बांसवाड़ा जिले, झुंझुनूं जिले की खेतड़ी तहसील, सीकर जिले की नीम का थाना तहसील, श्रीमाधोपुर एवं दांतारामगढ़ तहसील सम्मिलित हैं। अरावली श्रेणी राज्य के मध्य में उत्तर–पूर्व से दक्षिण पश्चिम दिशा में 692 कि. मी. की लम्बाई में दिल्ली राज्य की सीमा से गुजरात के खेड़ ब्रह्मा तक फैली हुई है। यह उत्तर–पूर्व में कम चौड़ी तथा दक्षिण–पश्चिम में हिम्मतनगर, बनासकांठा एवं डाबरकांठा (गुजरात) जिलों में अधिक चौड़ाई में फैली हुई है। इन पर्वतों में बुद्धकालीन (विराटनगर) रामायण, महाभारतकालीन (पाण्डुपोल, भर्तृहरि, बैराठ, खेतड़ी) स्थापित नगर स्थित हैं। पुष्कर बुद्धकाल में बौद्ध धर्म का महान केन्द्र था।

अरावली पर्वत क्षेत्र राजस्थान राज्य के लिए जीवनदायक है। राज्य की सभी बड़ी छोटी नदियाँ यहाँ से निकलती है। राज्य की व्योम रेखा इसी से सुनिचित होती है। राजस्थान के 90% वनखण्ड इसी क्षेत्रों में है तथा 90% जड़ी बूटियाँ इसी क्षेत्र से प्राप्त होती हैं। यहाँ से बनाल की खाड़ी की शाखा के बादल वर्षा करके पूर्वी, उत्तरी–पूर्वी भाग में वर्षा करते हैं जबकि अरब सागरीय शाखा की मानसून इनके प्रसार की दिशा में बहने के करण वर्षा नहीं करती है।

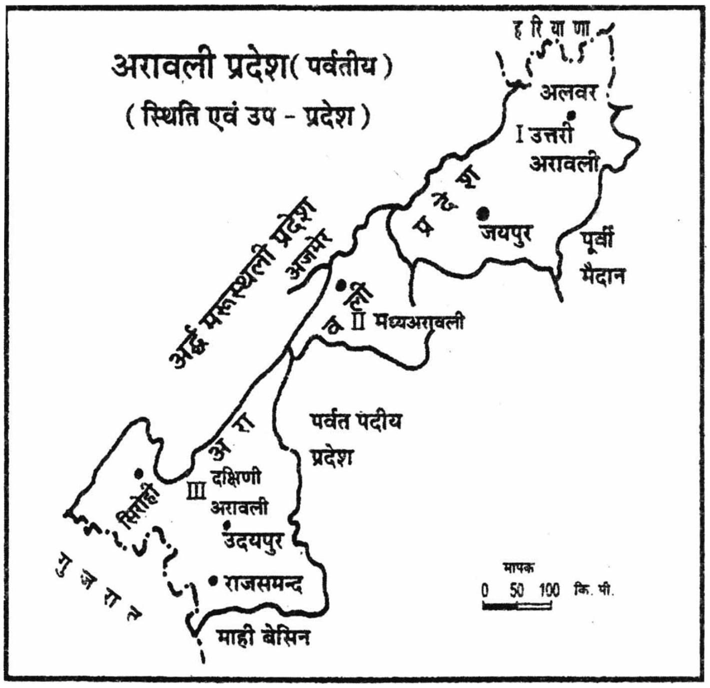

चित्र – 16.3 : अरावली प्रदेश

धरातल एवं संरचना

अरावली संसार के प्राचीन पर्वतों में एक है जिनका निर्माण प्री–कैम्ब्रियन महाकल्प में हुआ था। यह न केवल पश्चिमी और पूर्वी राजस्थान मैदानों के बीच अवरोध है बल्कि वृहद जल विभाजक भी है जो गंगा और अरब सागरीय जल प्रवाह की अलग करता है। इनका विस्तार उत्तरपूर्व–दक्षिणपश्चिम में कर्ण के रूप में 530 कि. मी. है। यह श्रेणी 1000 मी. उठी हुई हार्स्ट प्रतीत होती है। इसके दोनों किनारो का भूभाग भ्रंसित है जो विन्ध्यन युग में समुद्र के नीचे था। अपेलेशियन श्रेणियों की भांति यह श्रेणी भी बहु चक्रीय है। कोमल चट्टानो में घाटियों का विकास हुआ है। उत्तर तथा दक्षिणी अरावली में क्रमश : अलवर और तोरावटी तथा मेवाड़ की पहाड़ियों हैं। मध्य अरावली मे पहाड़ियों की ऊँचाई 600 मी. से 900 मी. तक है। मुख्य श्रेणी के दक्षिण पश्चिम ग्रेनाइट का बैथोलिथ आकार की आबू पहाड़ियां हैं, जिसमें गुरू शिखर 1622 मी. इस क्षेत्र में सबसे ऊँची चोटी है। इनमें प्रधान आग्नेय चट्टानें तथा परिवर्तित चट्टानें पाई जाती हैं। नीस, सिस्ट, ग्रेबो, डोलोमाइट, पेग्मेटाइट, संगमरमर आदि पाई जाती है। इन पहाड़ों में अनेक खनिज पाये जाते हैं। खनिजों की विपुलता इसके पुरातन स्वरूप का द्योतक है। इन पहाड़ों के बीच अलवर, नीमकाथाना, खेतड़ी, विराटनगर, अचलगढ़, अजमेर, ब्यावर, भीलवाड़ा, जयपुर, उदयपुर, झाड़ोल, करौली, सवाईमाधोपुर आदि के बेसिन पाये जाते हैं तथा लूनी, बनास, बेड़च, सोम, काली सिंध, कालीसिल, पार्वती, घोड़ा पछाड़, मोरेल, ढूँढ, साबी, साहिबी, बांडी, परवन आदि की नदी घाटियाँ पाई जाती हैं।

जलवायु

इस क्षेत्र में उत्तर में तापमान अधिक होता है तथा वर्षा 75 से मी. होती है जबकि दक्षिण में ज्यों –ज्यों इसकी चौड़ाई और ऊँचाई। बढ़ती है त्यों–त्यों वर्षा की मात्रा बढ़ती जाती है। आबू पर्वत पर 150 से मी. तक वर्षा हो जाती है। तापमान सार्दियों में हिमांक बिन्दु को छू जाता है। ऊँचाई के

कारण ग्रीष्मकालीन तापमान भी 10° से 20° सेल्सियस के बीच ही रहते है। आर्द्रता गर्मियों में 20% से 30% एवं जून से सितम्बर तक 60% से 80% तक पाई जाती है। गर्मियों में अलवर में सर्वोच्च तापमान 44° सेल्सियस तक पाया जाता है।

वनस्पति

अरावली पर्वतों पर खेर, हरड़, बहेड़, आवंला, बरगद, गूलर, आम, धाऊ, सिरिस, बेल तथा आबू पर्वत पर चमेली, मोगरा, अम्बरतरी आदि के पेड़ भी पाये जाते हैं। अब अरावली पर्वतों पर से वनों को बहुत काट दिया गया है अतः मात्र चट्टानें ही दिखाई देती है।

मिट्टीयाँ

अरावली पर्वतीय क्षेत्र में भूरी रेतीली कछारी मिट्टी, लाल–पीली मिट्टी, लाल दुमट मिट्टी, मिश्रित लाल–काली मिट्टी पाई जाती है।

खनिज सम्पदा

राजस्थान में प्राप्त खानेज सम्पदा का लगभग 80% भाग इसी क्षेत्र में पाया जाता है। धातु खनिजों का शत–प्रतिशत भाग अरावली पर्वतीय क्षेत्र में ही पाया जाता है। अरावली पर्वतों में सीसा, जस्ता, तांबा, अभ्रक, लौह अयस्क, बोरिलियम, एस्बेस्टोज, पन्ना, मैगनीज, बेराइदस, तामड़ा, सगमरमर फेल्सपार, काँच बालुका, चीनी मृत्तिका, यूरेनियम, डोलोमाइट, चूने का पत्थर, इमारती पत्थर आदि मिलते हैं।

जनसंख्या

अरावली क्षेत्र पहाड़ी होने के कारण त्रिरल जनसंख्या का क्षेत्र है। प्रति वर्ग कि. मी. जनसंख्या का घनत्व 128 व्यक्ति से 205 व्यक्ति तक है। अलवर की पहाडियों के कुछ हिस्सों में जनसंख्या का घनत्व 305 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. से अधिक है। जयपुर जिलें में घनत्व 335 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. है। अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। मेवाड़ में भील जनजाति 'टापरों' में निवास करती है। बस्तियाँ छोटी, ढालों पर, सीढ़ीनुमा ढालों पर निवास करती हैं एवं कृषि भी करती है। सिंचाई की सुविधा भी उपलब्ध है। लगभग 23% जनसंख्या अलवर दौसा, बांदीकुई. राजगढ़, नीमकाथाना, थानागाजी, बैराठ, शाहपुरा, जयपुर, अजमेर, भीलवाड़ा, मांडलगढ़, मावली, चित्तौड़गढ़, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, किशनगढ़ आदि नगरों में रहती है। इसी क्षेत्र में जयसमन्द, सिलीसेढ, जलमहल, रामगढ, आनासागर, फाईसागर, राजसमंद, पिछौला, फतेहसागर, उदयसागर, पुष्कर आदि झीलें हैं।

आर्थिक प्रतिरूप

अरावली क्षेत्रों में बेसिनों तथा नदी घाटियों के सिंचित क्षेत्रों पर कृषि की जाती है।

कृषि

खरीफ की फसलों में बाजरा, कपास, ज्वार, तिल, मूँगफली, मक्का, अरण्डी, दालें मुख्य हैं। रबी में गेहूँ, जौ, चना, सरसों, राई अलसी, अरण्डी, चावल, चना, तम्बाकू, गन्ना आदि की खेती की जाती है। सिंचाई के लिए मेजा बाँध, मोरेल बाँध, बीसलपुर बाँध, पाँचना बाँध, जवाई बाँध, जयसमंद, औराई बाँध, कालख बाँध, जाखम परियोजना, माही–बजाज परियोजना, अडवान परियोजना आदि उपलब्ध हें।

उद्योग धन्धे

इस प्रदेश के अधिकांश उद्योग औद्योगिक बस्तियों में स्थित हैं जिनमें प्रमुख भिवाड़ी, अलवर, नीमराणा, खेड़ली, कठूमर, राजगढ़, बांदीकुई, हिण्डौन, दौसा, जयपुर – विश्वकर्मा, सीतापुरा, बाईस गोदाम, सांगानेर, बगरू, नोवटा–मुहाणा, गोनेर रोड, आगरा रोड, कानोता, आमेर रोड आदि हैं। अजमेर, भीलवाड़ा, उदयपुर, राजसमन्द–मकराना, किशनगढ़ एवं मकराना–संगमरमर आदि में कई उद्योग स्थापित है। वनस्पति तेल, (अलवर, भरतपुर, हिण्डौन, खेड़ली, खैरथल) अलवर में माडर्न सिन्थेटिक इण्डिया लि., भिवाड़ी में सुपर टुल्स इण्डिया, अलवर इंजन प्लान्ट, केल्वीनेटर स्कूटर कारखाना, भारत एलम्न्स एण्ड केमिकल लि. आदि, अजमेर में मशीन टूल्स कारखाना, खेतड़ी में कॉपर कारखाना, देवारी में सीसा–जस्ता गलाने का संयंत्र (उदयपुर) तथा विद्युत, इलेक्ट्रोनिक्स, सीमेन्ट, कपड़ा, इंजीनियरिंग आदि के उद्योग यहाँ पनप रहे हैं। इसमें विशेषत : (1) मकराना–किशनगढ़– अजमेर–ब्यावर क्षेत्र (ii) भीलवाड़ा–चित्तौड़गढ़ क्षेत्र (iii) उदयपुर क्षेत्र आदि प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र हैं।

परिवहन

प्रमुख रेलमार्ग ब्राडगेज दिल्ली से अहमदाबाद, दिल्ली से अजमेर, दिल्ली से उदयपुर, जयपुर से जोधपुर, जयपुर से सवाईमाधोपुर, कोटा, श्रीगंगानगर एवं कोटा से चित्तौड़गढ़ इस क्षेत्र में होकर गुजरती है। सड़को में राष्ट्रीय राजमार्ग 8,11,12,14, एवं राज्य मार्ग इस क्षेत्र में होकर गुजरते है।

अरावली प्रदेश के सूक्ष्म प्रदेश

अरावली प्रदेश को तीन उपविभागों में बाँटा गया है –

(अ) उत्तरी अरावली क्षेत्र

(ब) मध्य अरावली क्षेत्र

(स) दक्षिणी अरावली क्षेत्र

(अ) उत्तरी अरावली क्षेत्र को पुन : विभाजित किया गया है।

(1) सांभर –बेसिन

(2) अलवर पहाड़ियाँ

(ब) मध्य अरावली को भी पुन: निम्न भागों में विभक्त किया गया है।

(1) **मेवाड़ पहाड़ियाँ –** यहाँ के प्रमुख नगर अजमेर, किशनगढ़, ब्यावर, नसीराबाद, पुष्कर आदि हैं।

(2) **मालवपुरा उच्च भूमि क्षेत्र –** इसमें फुलेरा, बैराठ, कोटपूतली, फागी, डिग्गी, मालपुरा, टोडारायसिह, सांगानेर, दौस आदि प्रमुख कस्बे हैं।

(स) दक्षिणी अरावली क्षेत्र

इसे पुन: विभाजित किया गया है।

(1) **आबू खण्ड –** इसमें आबू पर्वत, आबू रोड, सिरोही रोड, सिरोही उपखण्ड आते हैं।

(2) **मेवाड़ पहाडियाँ–** इसके प्रमुख नगर, उदयपुर 'पूर्व का वेनिस' पर्यटक नगर, नाथद्वारा, डूँगरपुर, चित्तौड़गढ़, कपासन, मावली, भीलवाड़ा, मोख का पठार आदि हैं।

(3) **मध्य माही बेसिन –** यहाँ 'छप्पन के मैदान' जयसमन्द झील का क्षेत्र, भील तथा गरासिया जनजाति का घर है। यहाँ मक्का, चावल, गन्ना, चना आदि की खेती होती है। गलिया कोट एवं केसीरयाजी के धार्मिक स्थल भी यहाँ हैं।

(4) **बनास बेसिन–** इसमें भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, निम्बाहेड़ा, मांडलगढ़, राजसमन्द, मावली, वल्लभनगर स्थित है। यह क्षेत्र खारी, कोठारी, बेड़च, बनास नदियों से सिंचित है। यहाँ से रतलाम– अजमेर मार्ग, रतलाम–चित्तौड़गढ़ रेलमार्ग उपलब्ध है। कई सड़के भी हैं। यह क्षेत्र खारी, कोठारी, बेड़च, बनास नदियों से सिंचित हैं। यहाँ से रतलाम – अजमेर मार्ग, रतलाम – चित्तौड़गढ़ रेलमार्ग उपलब्ध है। कई सड़कें भी हैं।

16.2.4 चम्बल बेसिन प्रदेश (The Chambal Basin Region)

चम्बल बेसिन के अन्तर्गत राजस्थान राज्य के भरतपुर, धौलपुर, सवाई–माधोपुर, बूँदी, कोटा, झालावाड़ और टोंक जिले आते हैं। इस प्रदेश का विस्तार 23° 50', उत्तरी से 27°50' उत्तरी अक्षांश एवं 75°15' पूर्व से 78°15' पूर्व देशान्तर के बीच है। इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल 50,026 वर्ग कि. मी. तथा जनसंख्या 71.35 लाख है। इस क्षेत्र की मुख्य नदी चम्बल है जो एक विशाल भ्रंश के सहारे बहती है तथा सैकड़ों किलोमीटर तक राजस्थान रख मध्यप्रदेश के बीच प्राकृतिक सीमा का निर्माण करती है। चम्बल यमुना की सहायक नदी है जो विध्यन पठार के उत्तरी पश्चिमी लोब तथा अरावली पर्वत श्रेणियों के बीच जलोढ़ संरचना के बीच होकर प्रवाहित होती है। इसकी घाटो कहीं गहरी, तंग तथा कहीं चौड़ी एवं गहरे गर्तो युक्त है। चम्बल की सहायक नदियों में बनास, काली सिंध, परवन, पार्वती आदि पमुख हैं जो पूर्व एवं पश्चिम दोनों दिशाओं से पानी लाकर इसमें उड़ेलती रहती है। इसीलिए चम्बल ही एक मात्र राजस्थान राज्य की नियतवाही नदी है। विंध्ययन चट्टानों का प्रसार करौली के डांग क्षेत्र में चम्बल के सहारे–सहारे पश्चिमी किनारे के साथ बहु त हु आ है जो एक भूतात्विक तथ्य है।

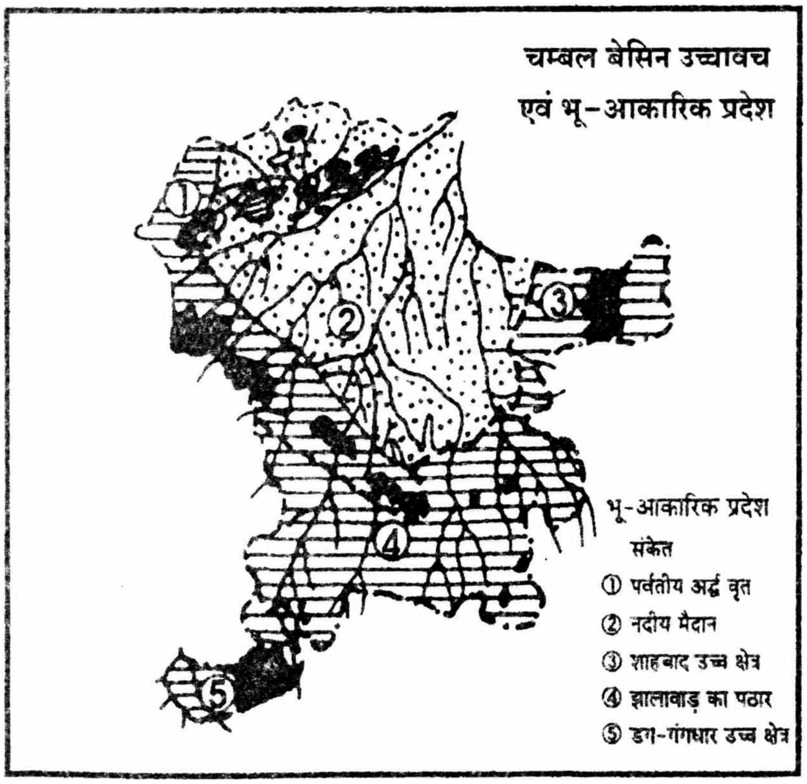

चित्र –16.4: चम्बल बेसिन

चम्बल बेसिन का भौतिक भूदृश्य

चम्बल नदा करौली –किरावली की पहाड़ियों, बयाना–लालसोट की पहाड़ियों, सवाईमाशपुर–करौली की पहाड़ियों, धौलपुर, बसेड़ी, सरमथुरा की पहाड़ियों एवं बूँदी–कोटा तथा मुकन्दवाडा की पहाड़ियों एव हाड़ौती की पहाड़ियों का पानी प्रवाहित होता है। इस क्षेत्र के बीन–बीच में बाढ़ के मैदान, नदी कगार, नदी सोपान, अन्त : सरिता, बीहड़ (Ravines) नदी की गर्त (Pools) आदि इस क्षेत्र की प्रमुख विशेषतायें हैं। चम्बल ऊपरी हिस्से में यह सामान्य नति पर अनुदैर्ध है यही यह मुकन्द्वारा पहाड़ियों को काटती हुई कई गार्ज बनाती है। इनमें से एक पर गांधी सागर नामक जलाशय तथा दूसरे पर कोटा के पास एक बैरेज बनाया गया है जहाँ से चम्बल का पानी नहरों की ओर मोड़ा जाता है। कोटा के नीचे चम्बल एक भ्रंशित घाटी में बहती है। इस भ्रंश को भूगर्भ साहित्य में राजपूताना का विशाल सीमा भ्रंश (Great Boundary fault of Rajputana) कहा गया है। कोटा और धौलपुर के मध्य चम्बल के अधःकर्तित विपर्स का कारण नवीन युग में क्षेत्र का थोड़ा सा उत्थान है। इसकी सीमान्त श्रेणियाँ विवर्तनिक प्रकार की प्रतीत होती है जो पूर्णतः वलित तथा भ्रंशित हैं। चम्बल की निचली घाटी में गहरे खड्ड विकसित हो गए है जिन्हें Ravines कहते हैं।

जलवायु

यहाँ आर्द्र जलवायु पाई जाती है। औसत वर्षा 80 से. मी. होती है तथा कहीं–कहीं यह 100–125 से. मी. भी होती है। ग्रीष्मकालीन तापमान 32° से 34° सेल्सियस तथा शीतकालीन 14° से 17° सेल्सियस होता है। शीत ऋतु में कभी–कभी 'मावट' भी हो जाती है।

वनस्पति

यहाँ शुष्क सागवान तथा शुष्क पतझड़ वाले वन पाये जाते हैं। आम, धोंक, सागवान, धोकड़ा, बबूल, बरगद, जामुन आदि प्रमुख पेड़ पाये जाते हैं।

मिट्टियाँ

कछारी मिट्टी भरतपुर, धौलपुर, सवाईमाधोपुर में पाई जाती है। मिट्टियों में चूना, फास्फोरस एवं ह्यूमस की कमी पाई जाती हैं। लाल–पीली मिट्टी सवाईमाधोपुर एवं करौली जिलों में पाई जाती है।

खनिज

सामान्यतया : बलुई पत्थर की पट्टियाँ, खण्डे, काँच, बालुका, चीनी मृतिका, चूने का पत्थर, सीसा–जस्ता, बोरेलियम, अभ्रक, तामड़ा, बेराइट्टान, बेन्टोनाइट आदि खनिज प्रदेश में पाये जाते हैं।

जनसंख्या

जनसंख्या का घनत्व टोंक में 135 से लेकर भरतपुर में 325 प्रति वर्ग किमी. है। राज्य के औसत घनत्व 129 से सभी जगह घनत्व अधिक है। अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण (79%) है। गाँव की स्थिति पानी की प्राप्ति, समतल एवं उपजाऊ भूमि की प्राप्ति, पर्वत पदीय स्थिति या घाटी के पास है। प्रमुख नगर भरतपुर, धौलपुर, टोंक, सवाईमाधोपुर, करौली, हिण्डौन, कोटा, बून्दी, झालावाड़, बाराँ, लाखेरी आदि हैं।

अर्थव्यवस्था

यहाँ की अर्थव्यवस्था के आधार प्रमुखतः कृषि, पशुपालन, खनन एवं उद्योग हैं। कृषि में खरीफ में चावल, मूँगफली, तिल, कपास, तम्बाकू, मक्का, गन्ना, ज्वार, बाजरा आदि तथा रबी में गेहूँ, जौ, चना, सरसों, अलसी, दालें, तम्बाकू आदि की खेती की जाती है। चम्बल घाटी परियोजना के बाँधों से सिंचाई होती है। सिंचाई की मदद से ही खेती होती है। इसके अलावा पार्वती योजना

(धौलपुर), पाँचना बाँध (करौली), बीसलपुर बाँध (टोंक, सवाईमाधोपुर, बूँदी) गुढ़ा बाँध (बूँदी ओर बिलास सिंचाई योजना (कोटा) द्वारा भी सिंचाई होती है। पशु सम्पदा की दृष्टि से गौवंश, भैंसें, हरियाणा नस्ल, मावली नस्ल पाई जाती है, भैंसें मुर्राह नस्ल की हैं। भेड़ें टोंक जिले में अधिक हैं। बकरियाँ – भेड़ें सब जगह पाई जाती हैं।

उद्योग– धन्धे

चीनी, सीमेन्ट, इन्स्ट्रूमेन्टेशन, चमड़ा फेक्ट्री, काँच के कारखाने, छपाई, बर्तन उद्योग, लकड़ी उद्योग आदि इस क्षेत्र में पनपे हैं। कोटा औद्योगिक नगरी है। यहाँ मूख्यत : सूती वस्त्र उद्योग, रासायनिक उद्योग, इंजिनियरिंग उद्योग एव कुटीर उद्योग पनपे हैं। लाखेरी में सीमेन्ट का कारखाना है।

परिवहन

राजकीय राजमार्ग सं. 11 तथा 13 यहाँ से गुजरते हैं। हर बड़ा छोटा नगर सड़क पीरवहन से भी का है। ब्राडगेज रेल लाइन भरतपुर, कोटा–रतलाम–मुम्बई तक जाती हैं। अन्य रेलमार्ग भी हैं। यह क्षेत्र राज्य का प्रगतिशील भाग है। अन्य रेल मार्ग भी है किन्तु जल प्लावन, क्षारीयपन, अम्लीयता, बीहड़, डकैतों आदि की समस्याऐं हैं।

बोध प्रश्न– 2

1. राजस्थान राज्यका क्षेत्रफल कितना है?
   ....
   ....
2. अरावली प्रदेश की सर्वोच्च चोटी का क्या नाम है तथा कहाँ स्थित है?
   ....
   ....
3. मध्य माही बेसिन किस दूसरे नाम से जाना जाता है?
   ....
   ....
4. चम्बल बेसिन के अन्तर्गत आने वाले जिले कौनसे हैं?
   ....
   ....
5. राजस्थान की एक मात्र नियतवाही नदी का क्या नाम है?
   ....
   ....
6. चम्बल बेसिन क्षेत्र के दो प्रमुख नगर कौन से हैं?
   ....
   ....

16.3 सारांश (Summary)

राजस्थान राज्य को भौगोलिक वातावरण, प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं पारिस्थिकीय दृष्टि से विभिन्न भौगोलिक प्रदशों में विभाजित किया जा सकता है। वी. सी. मिश्रा ने सर्व प्रथम सन् 1968 में राजस्थान को 7 भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त किया था। इसके बाद आर. एल. सिंह ने सर 1971 में राजस्थान को दो मध्यम स्तरीय, 4 प्रथम क्रम एवं 12 द्वितीय क्रम के उपप्रदशों में विभक्त किया।

अरावली श्रेणियों के पश्चिम के क्षेत्र को मरुस्थल कहा गया है। इसका अधिकांश भाग शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क मरूस्थली है। इसके अन्तर्गत–जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर, जालौर, नागौर, सीकर, झुंझुनू सीकर, चुरू, झुंझुनू हनुमानगढ़, गंगानगर जिले आते हैं। शुष्कता इसकी मुख्य विशेषता है। मरुस्थल के पूर्व में राजस्थान का बाँगड़ प्रदेश विस्तृत है। इसके अन्तर्गत राज्य के श्रीगंगानगर, पूर्वी चुरू, झुंझुनू सीकर, नागौर, पूर्वी जोधपुर, पाली, जालौर, बाड़मेर के कुछ दक्षिणी भाग सम्मिलित हैं। इस प्रदेश के उत्तरी भाग में अन्त: स्थलीय प्रवाह क्षेत्र है। यह क्षेत्र ऊबड़–खाबड़, बालेकास्तूप युक्त उच्च चट्टानी भूमि है। राज्य के दक्षिणपूर्वी भाग पर अरावली प्रदेश है जिसमें अलवर, दौसा, जयपुर, अजमेर, भीलवाड़ा, राजसमन्द, चितौड़गढ़, उदयपुर, डूँगरपुर, सिरोही जिले, झुंझुनू जिले की खेतड़ी तहसील, सीकर जिले की नीम का थाना, श्रीमाधोपुर एवं दांतारामगढ़ तहसीलें सम्मिलित हैं। अरावली श्रेणी इस राज्य के नदियों का स्रोतस्थल है। इसके उत्तरपूर्व में चम्बल बेसिन है जिसके अन्तर्गत भरतपुर, धौलपुर, सवाईमाधोपुर बूँदी, कोटा, बाराँ, झालावाड़ और टोंक जिले सम्मिलित हैं। सिंचित कृषि तथा सघन जनसंख्या इसकी विशेषताओं में है।

16.4 शब्दावली (Glossary)

- **भौगोलिक प्रदेश**: ऐसा क्षेत्र जिसमें भौतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों की समांगता पाई जाती है।
- **मरुस्थल प्रदेश:** राजस्थान की अरावली श्रेणियों से पश्चिम का एक शुष्क एवं अर्द्धशुष्क मरु प्रदेश, जिसे 'थार मरुस्थल' भी कहते हैं।
- **बांगड़ प्रदेश:** यह राजस्थान के मरुस्थल के पूर्व में और अरावली प्रदेश के पश्चिम में विस्तृत ऊबड़ –खाबड़, बालेकास्तूपयुक्त उच्च चट्टानी भूमि का क्षेत्र है।
- **अरावली प्रदेश:** यह राज्य के अलवर, दौसा, जयपुर, अजमेर, भीलवाड़ा राजसमन्द, चितौड़गढ़, उदयपुर, डूँगरपुर, सिरोही, बाँसवाड़ा, झुंझुनू, सीकर, जिलों के भागों में विस्तृत है।
- **चम्बल बेसिन:** इसके अन्तर्गत राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर, सवाईमाधोपुर, बूँदी, कोटा, बाराँ, झालावाड़ और टोंक जिले सम्मिलित हैं।

16.5 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. बसल, सुरेश चन्द्र: **भारत का भूगोल,** मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2006.
2. गौतम, अलका: **भारत का भूगोल**, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2008.
3. सक्सेना एच एम: **राजस्थान का भूगोल,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2007.
4. सिंह, आर एल (सम्पादित): **भारत एक प्रादेशिक अध्ययन,** NGSI वाराणसी 1971.

5. श्रीकमल शर्मा, सम्पादक **भारत का भूगोल,** मध्यप्रदेष हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 2004.
6. शर्मा एवं शर्मा : **राजस्थान का भूगोल,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2006.

16.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. 3.42 लाख वर्ग किलोमीटर।
2. सात
3. 1,75,000 वर्ग किलोमीटर।
4. खम्भात की खाड़ी व गिरीनार पहाड़ियाँ।
5. पथरीला मरूस्थल।
6. अन्त : स्थलीय प्रवाह।
7. 134 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर।

बोध प्रश्न – 2

1. 99,771 वर्ग किलोमीटर।
2. गुरू शिखर (1722 मीटर), आबू पर्वत पर
3. छप्पन का मैदान।
4. भरतपुर, धौलपुर, सवाईमाधोपुर, बूँदी, कोटा, बाराँ, झालावाड़ और टोंक।
5. भरतपुर, कोटा।

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राजस्थान राज्य को विभिन्न भौगौलिक प्रदेशों में विभक्त करते हुए 'मरुथल'प्रदेश का से वर्णन कीजिए।
2. राजस्थान के बाँगड प्रदेश के संसाधन–आधार तथा आर्थिक दशा का उदाहरण सहित से वर्णन कीजिए।
3. अरावली भौगौलिक प्रदेश की अर्थव्यवस्था की समीक्षा कीजिए।
4. चम्बल बेसिन का भौगौलिक विवरण प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 17: समसामयिक मुद्दे (Contemporary Issues)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 पर्यावरणीय प्रकोप एवं आपदायें

17.3 प्रदूषण

17.4 पर्यावरणीय अधिप्रभाव मूल्यांकन

17.5 जनसंख्या विस्फोट एवं खाद्य सुरक्षा

17.6 पर्यावरण अवनयन

17.7 मरुस्थलीकरण

17.8 वैश्वीकरण एव भारतीय अर्थव्यवस्था

17.9 जलवायु पीरिवर्तन एवं विश्व तापन

17.10 सारांश

17.11 शब्दावली

17.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

17.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निम्नलिखित के बारे में जान सकेंगे :–

- भारत में पर्यावरणीय प्रकोप एवं आपदायें,
- पर्यावरणीय प्रदूषण,
- पर्यावरण अधिप्रभाव मूल्यांकन,
- जनसंख्या विस्फोट एवं खाद्य सुरक्षा,
- पर्यावरण अवनयन,
- भारत में मरुस्थलीकरण की समस्या,
- वैश्वीकरण एवं भारत की अर्थव्यवस्था
- भारत में जलवायु परिवर्तन एवं विश्व तापन की समस्या।

17.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में अनेक भौगोलिक तथा सामाजिक–आर्थिक समस्यायें व्याप्त हैं, जिनकी भौगोलिक जानकारी आवश्यक है। इस अध्याय में ऐसे ही समसामयिक मुद्दों को सम्मिलित किया गया है। इनमें देश में आने वाली प्रमुख आपदाओं एवं सम्भावित प्रकोपों, विभिन्न प्रकार के प्रदूषण तथा पर्यावरणीय अवनयन के सभी पक्ष प्रमुख हैं। बढ़ती जनसंख्या एवं बदलते पर्यावरण की जानकारी भारतीय भूगोल की प्रमुख विषय वस्तु बन गई है। वैश्विक बदलावों के भारत पर प्रभाव व

भारत से संयोजन का भौगोलिक अध्ययन भी महत्त्वपूर्ण हैं। विशाल भारतीय उपमहाद्वीप में आ रहे परिवर्तन एवं इनके प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन इसलिए भी उपयोगी है क्योंकि भारतीय भूमि अनेक बदलावों से गुजर रही है।

17.2 पर्यावरणीय प्रकोप एवं आपदायें (Enviromental Hazards and Disaster)

प्राकृतिक आपदायें लोगों के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। आपदा घटने के उपरान्त सर्वत्र विनाश, दुर्दशा तथा सन्नास का दृश्य उत्पन्न हो जाता है। प्राकृतिक आपदाओं के सामने मानव की विवशता सदियों से बनी हुई है। प्राकृतिक आपदाओं को जन्म देने वाले प्रक्रम मानव समाज पर इतना अधिक प्रभाव छोड़ते हैं कि प्रकोप व विनाश की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जैसे विवर्तनिक घटना के कारण भूकम्प एवं ज्वालामुखी का उत्पन्न होना, दीर्घ अवधि तक सूखे की स्थिति का होना, बाढ़ों का आना, वायुमण्डलीय तूफान यथा हरिकेन, टारनैडो, टाइफून आदि। इन घटनाओं के कारण अन्य सम्बन्धित विनाशकारी घटनायें जन्म लेती हैं, जिनका प्रतिकूल प्रभाव भी मानव जीवन पर परिलक्षित होता है। इनमें भूकम्प के कारण नदी मार्ग अवरुद्ध होकर बाढ़ की स्थिति उत्पन्न होना (1950 में असम भूकम्प के कारण ब्रहमपुत्र में बाढ़ आयी थी) तथा तटवर्ती चक्रवातीय तूफानों से महामारी का फैलना (1999 में उड़ीसा में आये तूफान के कारण) आदि प्रमुख प्रभाव हैं।

प्राकृतिक प्रकोप उन चरम घटनाओं को कहते हैं, जो प्राकृतिक पारिस्थितिक तब के जैविक तथा अजैविक संघटकों की सहन–शक्ति की सीमा से ऊपर प्रभाव डालते हैं, जिनके द्वारा होने वाले पीरवर्तनो के साथ सामंजस्य करने में ये संघटक असमर्थ रहते है तथा प्रलयंकारी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक एवं मानवीय क्षति होती है। प्राकृतिक आपदा के कारण विकृत वास्तविक स्वरूप को पुन: स्थापित होने में दीर्घ अवधि लगती है, जबकि विनाश में अल्प समय लगता है। मानव प्राकृतिक आपदाओं की मार प्राचीनकाल से सहन करता आ रहा है।

आपदा को अंग्रेजी भाषा में 'डिजॉस्टर' (Disaster) कहते हैं, जिसकी उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के शब्द 'डेस्सास्टेर ' से हुई है, जिसमें 'डेस्स' का अर्थ है 'बुराई' तथा 'असटेर ' का अर्थ है 'स्टार' अर्थात् सितारा। इस प्रकार डिजॉस्टर शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'एक बुरा सितारा'। सामान्य अर्थ में 'डिजॉस्टर' शब्द का अभिप्राय 'भारी क्षति' (Very Heavy Loss) होता है। बेब्सटर शब्दकोष में आपदा (Disaster) का अर्थ एक अचानक होने वाली विध्वंसकारी घटना जिससे व्यापक भौतिक क्षति होती है। जानमाल की हानि होती है तथा संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सामान्यत: प्रकोप (Hazard) तथा आपदा (Disaster) शब्दों का प्रयोग परस्पर एक–दूसरे समानार्थी शब्दों के रूप में किया जाता है लेकिन इनका अभिप्राय एवं प्रभाव पृथक् होता है। उक्त सन्दर्भ में यह मद्देनजर रखना चाहिए कि प्रकोप (Hazard) किसी भौतिक घटना से होने वाला संकट या खतरा है, जो किसी विशिष्ट स्थान पर घटित होता है तथा इसमें हानि पहुँचाने या क्षति करने की पर्याप्त क्षमता होती है। यदि भूकम्प या ज्वलामुखी उद्गार गैर बसे क्षेत्रों जैसे समुद्री क्षेत्र या दूसरे जनशून्य क्षेत्रों में परिलक्षित होता है, तो इसे प्रकोप की संज्ञा दी जाएगी, लेकिन यदि यही घटनाएँ बसे हुए आबाद क्षेत्रों में घटित होती हैं तथा इससे उक्त क्षेत्र में भौतिक तथा मानवीय सम्पत्ति को क्षति पहुँचती है, तो इसको आपदा (Disaster) कहा जायेगा। इसी प्रकार समुद्र तटीय

तूफान भी जनशून्य क्षेत्रों में आने पर 'प्रकोप' तथा आबादी वाले क्षेत्रों में 'आपदा' कहलाएँगे। स्पष्ट है कि 'प्रकोप' आपदा के पूर्व की स्थिति होती है, जिसकी परिणति विशाल क्षति (आपदा) के रूप में हो सकती है।

प्राकृतिक प्रकोप के द्वारा जब मानवीय, सामाजिक–आर्थिक या आधारभूत संरचना को भारी क्षति का सामना करना पड़ता है तो वह आपदा के रूप में परिलक्षित होती है। प्रकोप के प्रभाव को नियन्त्रित करके आपदा के रूप में परिणित होने से रोका जा सकता है। आपदा के सामान्य जन –जीवन में व्यवधान आता तथा वह अचानक एवं गम्भीर होता है। 26 जनवरी, 2001 को प्रात: काल गुजरात के कच्छ क्षेत्र में सामान्य जन–जीवन तथा महकती प्रकृति को भूकम्प के ऐसे झटके लगे कि वहाँ सर्वत्र मलबे का ढेर नजर आने लगा। जहाँ एक ओर लोग अपनी दैनिक क्रियाएँ संचालित करते थे वहीं अचानक शवों के ढेर मलबे में दब गये तथा संचालन समाप्त सा हो गया। इस प्रकार आपदा घटित क्षेत्र में सामाजिक–आर्थिक ढांचा, स्वास्थ्य एवं संचार प्रणालियाँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। सार्वजनिक परिसम्पत्तियों को क्षति पहुँचने से विकास गतिविधियों में व्यवधान आता है तथा संसाधनों का ह्रास होता है।

व्यावहारिक दृष्टि से प्राकृतिक आपदा पर वस्तुस्थिति की आवश्यकतानुरूप सही ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। आपदा जब परिलक्षित होती है तो वह मानव पर विनाशकारी प्रभाव छोड़ने के साथ ही सरकारी तन्त्र पर भी प्रभाव डालती है। आपदा के घनत्व, विनाशक क्षमता की बारम्बारता, पूर्वानुमान की अवस्था तथा अवधि के परिप्रेक्ष्य में प्राकृतिक आपदाएँ भिन्न–भिन्न प्रकार की होती हैं।

प्लेटों का संचलन पृथ्वी के आन्तरिक भागों में तापीय दशाओं के कारण उत्पन्न संवहनीय तरंगों के परिणामस्वरूप होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के डेनवर में स्थित विश्व भूकम्पमापी आंकड़ा केन्द्र के अनुसार 26 जनवरी, 2001 में गुजरात में आने वाला भूकम्प भारतीय प्लेट के उत्तर की ओर यूरेशियाई प्लेट से टकराने से उत्पन्न हुआ।

प्राकृतिक आपदायें निम्मलिखित हैं (1) भूकम्प, (2) ज्वालामुखी, (3) हिमस्खलन, (4) भूस्खलन, (5) चक्रवात एवं (6) बाढ़।

1. **भूकम्प (Earthquake):** पृथ्वी की चट्टानों से होकर दोलनकारी तरंगों के गुजरने से उत्पन्न कम्पन को 'भूकम्प' कहते हैं। इसके आने के विभिन्न कारण होते हैं, जिनमें ज्वालामुखी क्रिया, भ्रंशन क्रिया (Faulting), समस्थितिक समायोजन (Isostatic Adjusment) आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पर्वतीय स्थानों पर भूस्खलन तथा महाद्वीपीय जलमग्न तट का यकायक टूटना आदि स्थानीय कारण भी सम्मिलित है। भूकम्प की तीव्रता मरकेली (Mercali) तथा रिक्टर (Richter) पैमाने की सहायता से मापी जाती है। भूकम्प की विस्तृत भौगोलिक जानकारी अध्याय में दी गयी है।

तालिका– 17.1: भारत में 20वीं शताब्दी के प्रमुख विनाशकारी भूकम्प

क्र.सं.	वर्ष	स्थान	तीव्रता	मृत
1.	1905	कांगड़ा	8.6	19,000
2.	1906	कांगड़ा	6.3	9
3.	1918	इस्त्रिमंगल(असम)	7.6	–

4.	1934	बिहार–नेपाल	8.4	11,000
5.	1947	असम	7.9	–
6.	1950	असम	8.7	1526
7.	1963	बड़गाँव	5.1	79
8.	1967	अनन्तनाग	5.6	1
9.	1975	किन्नौर	6.8	48
10.	1986	धर्मशाला	5.7	2
11.	1988	बिहार–नेपाल	6.6	1004
12.	1991	उत्तरकाशी	6.6	712
13.	1999	चमोली	6.8	104
14.	2001 (21वीं सदी का प्रथम भूकम्प)	भुज	5.9	1लोख

2. **ज्वालामुखी क्रिया (Valcanism):** ज्वालामुखी क्रिया की भूकम्प की तरह एक प्रमुख आपदापन्न प्राकृतिक घटना है। ज्वालामुखी विस्फोट के अनेक कारण बताये जाते है, जिनमें पृथ्वी तल के अन्दर दरारों में जल का प्रवेश, वलनों का प्रभाव, रेडियो एक्टिव कणों की उपस्थिति आदि प्रमुख है। ज्वालामुखी क्रिया द्वारा भूगर्भिक संरचना में परिवर्तन होता है।
3. **हिमस्खलन (Snowslide):** उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में हिमस्खलन के कारण प्रभावित क्षेत्रों में काफी हानि पहुँचती है, लेकिन इस क्रिया का प्रभाव अधिक व्यापक नहीं होता है। भारत में हिमालय में हिमस्खलन होता है।
4. **भूस्खलन (Landslide):** भूस्सलन एक प्रमुख प्राकृतिक आपदा है। इस घटना में भूमि का एक भाग टूटकर निम्नतर भागों की ओर खिसकता है। यह क्रिया गुरुत्वाकर्षण द्वारा प्राकृतिक रूप से होती है। यह क्रिया अधिकांशत: पर्वतीय उच्च प्रदेशों में होती है। स्ट्रेहलर के अनुसार "पर्वतीय ढाल पर किसी भी चट्टान का गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे की ओर खिसकना भूस्सलन कहलाता है।" यदि यह खिसकाव मंद गति से हो तो इसे मृदा खिसकाव (Soilcreep) कहते हैं तथा जब वृहद स्तर पर बड़े शिलाखण्डों का खिसकाव होता है तो इसे भूस्खलन कहते हैं। ये दो प्रकार का होता है (अ) चट्टानी खिसकाव: इसमें चट्टानों का आधारी आवरण वृहद् रूप में खिसकता है, जो भ्रंशों या आवरण तल के रूप में खिसकती हैं। (ब) अचानक गिरना (Slumping): इसमें ऊपरी उत्तर ढाल से यकायक चट्टानों खिसकती हैं।

तालिका– 17.2: संसार के 10 सर्वोच आपदाग्रस्त देश

देश	वार्षिक प्रभावित लोग (मिलियन)	कुल जनसंख्या (मिलियन) (1966)	प्रभावित जनसंख्या का प्रतिशत
चीन	99.07	12332.08	8.04
भारत	56.56	1027.01	5.99

बांग्लादेश	18.57	120.07	15.47
इथियोपिया	4.02	58.24	6.90
फिलीपाइन्स	3.69	69.28	5.33
आस्ट्रेलिया	2.28	18.05	12.63
थाइलैण्ड	1.67	58.70	2.84
सूडान	1.48	27.29	5.42
मालावी	1.44	9.84	14.63
पाकिस्तान	1.40	139.99	1.00

Sources: World Disaster Report, 1998, International Federation of Redcross and Red Crescent Societies.

भूस्खलन एक प्रमुख प्राकृतिक आपदा के रूप में जान–माल की हानि के अतिरिक्त पर्यावरण सन्तुलन को भी प्रभावित करते हैं। सन् 1911 में पामीर क्षेत्र में एक 7–8 हजार टन का प्रस्तर खण्ड खिसककर एक नदी के प्रवाह क्षेत्र में जा पहुंचा जिसके कारण सेरेज झील का निर्माण हुआ। यह झील 80 किलोमीटर लम्बी है। भारत में नैनीताल क्षेत्र में 1880 में एक विशाल भूस्खलन हुआ, जिसमें 150 लोग मारे गये। भूस्खलन विभिन्न कारणों से होता है, जिनमें पृथ्वी की आन्तरिक हलचल, भूसन्तुलन का बिगड़ना, जल द्वारा कटाव, ज्वालामुखी उद्गार तथा भूकम्प प्रमुख हैं।

5. **चक्रवात (Cyclones):** ये समस्त आपदायें जलवायु तथा मौसम सम्बन्धी चरम घटनाओं से सम्बन्धित होती हैं। इनकी उत्पत्ति वायुमण्डलीय प्रक्रमों आकस्मिक आपदायें, दीर्घालिक आपदाओं में बाढ़, सूखा, ताप तथा शीत लहर आदि को सम्मिलित किया जाता है, जो संचयी प्रभाव वाले होते हैं। आकस्मिक आपदाओं में उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात व तूफान सम्मिलित हैं।
6. **बाढ़ (Flood):** बाढ़ भी एक प्राकृतिक आपदा है, जिसके कारण विस्तृत क्षेत्र जल प्लावित हो जाता है। इस कारण कृषि का विनाश होता है। वनस्पति समाप्त होकर मृदा अपरदन तीव्र हो जाता है। आवासीरा बस्तियाँ जलमग्न हो जाती हैं। मनुष्य, पशु एवं पक्षियों, बाढ़ रूपी काल के ग्रास बन जाते हैं। बाढ़ के उपरान्त विभिन्न क्षेत्रों में जल के फैसले से विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ दूषित जल एवं दलदली क्षेत्रों में उत्पन्न होती हैं। भारत में बाढ़ग्रस्त क्षेत्र से बहुत हानि होती है। सितम्बर 2000 में प. बंगाल में बाढ़ से लगभग 1000 लोग मारे गये। पी. के. सेन ने बाढ़ से होने वाली पर्यावरणीय क्षति के बारे में लिखा है कि, "बाढ़ की आपदा एक क्षेत्र के पर्यावरण के लिए गम्भीर समस्याओं को जन्म देती है, क्योंकि इससे अनेक प्राकृतिक क्रियाओं में एकाएक परिवर्तन आ जाता है। अपरदन की गति में वृद्धि हो जाती है। परिवहन क्रिया अधिक होती है। साथ में निक्षेप भी अधिक होने से मृदा की संरचना एंव पर्यावरण के अन्य पक्षों पर प्रभाव पड़ता है।"
7. **सूखा (Droughts):** इस प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं का जन्म वर्षा के अभाव में होता है। ऐसी स्थिति में भयंकर जल संकट के साथ ही पशुओं के लिए चारे की भी समस्या पैदा

हो जाती है। सूखा जब अधिक तीव्र होकर भयावह स्वरूप में आ जाता है तो अकाल की स्थिति बन जाती है। भारत के अनेक भागों में सूखा की स्थिति उत्पन्न होने से अकाल पड़ते हैं। अत्यधिक तीव्र एवं व्यापक अकालों में 1899 का 'छप्पनिया का अकाल' तथा 1917 का अकाल प्रसिद्ध हैं, जब लाखों लोग मारे गये।

सन् 2000 में देश के 12 राज्यों के लगभग 10 करोड़ लोग सूखे से प्रभावित हुए राजस्थान में 2,3,406 और आन्ध्रप्रदेश में 17,431 गाँव सूखे की गिरफ्त में आये। राजस्थान के 345.6 लाख जानवरों के लिए चारे की कमी आयी। इस सूखे का कारण मानसून सत्र में कम वर्षा, उसके बाद सर्दी में वर्षा न होना तथा उपलब्ध जल संसाधनों का अतिदोहन किया जाना है।

आपदा प्रबन्धन (Disaster Management)

प्रकृति में भूकम्प, ज्वालामुखी उद्गार, बाढ़, सूखा, चक्रवात, भूस्खलन आदि अपना प्रभाव डालते हैं। इन क्रियाओं के प्रकोप से मानव तथा अन्य जीव–जन्तु प्रभावित होते हैं, विगत दशकों में देश के लगभग सभी भागों में महाविपत्तिकारी घटनाएँ घटी हैं।

पृथ्वी पर प्रत्येक स्थिति में कहीं–न–कहीं किसी–न–किसी रूप में आपदायें उत्पन्न हो रही हैं। जल के अभाव में भीषण सूखा (उप भारत, अफ्रीकी साहेल प्रदेश) पड़ता है, तो जलाधिक्य की स्थिति में बाढ़ की स्थिति बन जाती है, जैसे पश्चिमी भारत में भीषण सूखा पड़ रहा है तथा पूर्वी भारत में बाढ़ की स्थिति बन रही है। इस प्रकार असन्तुलन की स्थिति में भूकम्प एवं भूस्खलन की घटनाएँ हो रही हैं। वर्षो से सन्तुलित अवस्था में चल रहे मानसून को नूतन वर्षो में उत्पन्न अलनिनो (El–Nino) ने प्रभावित किया, जिस कारण दक्षिणी–पूर्वी एशिया के अनेक स्थानों को सूखे की स्थिति का सामना करना पड़ा। पृथ्वी पर समतल एवं पर्वतीय क्षेत्रों में भी आपदापन्न घटनाएँ होने लगी हैं। समतल क्षेत्रों में सघन कृषि करने के लिए भूजल संसाधन का अन्धाधुन्ध दोहन किया गया जिससे भयंकर जल संकट उत्पन्न हो गया तथा ऐसी स्थिति में दूसरी आपदाओं की तीव्रता बढ़ जाती है। 26 जनवरी, 2001 के गुजरात में आये भूकम्प के बारे में शोध के उपरान्त स्पष्ट हुआ है कि राजस्थान के विभिन्न भागों में नलकूप लगवाकर भूजल का अतिदोहन किया जा रहा है जिसके दुष्परिणाम आने वाले समय में भूकम्प जैसी भीषण प्राकृतिक आपदा के रूप में सहन करने पड़ सकते हैं। दोहन के अनुपात में भूजल का पुनर्भरण न होने पर आन्तरिक चट्टानों में तनाव व फैलाव होता है तथा चट्टानों में दरारें आ जाती हैं जिस कारण भूजल के परस्पर एक –दूसरे जलभरे (Aquifer) में संचरित होने पर भूगर्भिक असन्तुलन उत्पन्न हो सकता है तथा साथ ही इन फ्रेक्चर वाली चट्टानों के टकराने की आशंका बनी रहती है। प्राकृतिक आपदा प्रबन्धन के निम्नलिखित तीन चरण होते हैं।

(1) आपदाओं के आने की भविष्यवाणी करना या पूर्वानुमान लगाना।

(2) आपदा आने के उपरान्त तुरन्त राहत सामग्री पहुंचाना।

(3) आपदाओं की रोकथाम के उपाय करना तथा कुछ सीमा तक समायोजन के उपाय।

किसी व्यवस्थित क्रम में तैयार की गई आपदा प्रबन्ध योजना के निम्नलिखित छः चरण होते है

1. **आपदा रोकथाम :** आपदा की रोकथाम के उपायों में वे सभी कार्य सम्मिलित हैं, जो किसी प्राकृतिक प्रकोप (Nature Hazard) को आपदा (Disater) में परिवर्तित होने से रोकने के लिए किए जा सकते हैं। यह स्पष्ट है कि समुंद्री तूफान बाढ़ और हिमस्खलन जैसे प्राकृतिक

खतरों की रोकने के लिए कुछ नहीं किया जा सकता, लेकिन उनके आपदाकारी प्रभावों को रोकने के लिए प्रयास किये जा सकते हैं। उदाहरण में लिए, 29 अक्टूबर, 1999 को उड़ीसा में आये भीषण समुन्द्री तूफान की पूर्वसूचना सम्बन्धित जिलों में वायरलेस एवं आकाशवाणी द्वारा 25 अक्टूबर, 1999 को दे दी गई थी। इसी प्रकार 1998 के गुजरात तूफान के समय भी इसके अरब सागर में उत्पन्न होते ही गुजरात एवं समीपवर्ती क्षेत्रों को इसकी पूर्व सूचना दे दी गई थी। रोकथाम के कुछ उपाय राष्ट्रीय विकास के अन्तर्गत आते हैं, जब कि अन्य का सम्बन्ध विशेष आपदा प्रबन्ध कार्यक्रमों के साथ है।

2. **आपदा का प्रभाव कम करना :** आपदा का प्रभाव कम करना आपदा प्रबन्धन योजना का प्रमुख हिस्सा है। सामान्य शब्दों में, प्रभाव कम करने के अन्तर्गत उन सभी उपायों की सम्मिलित किया जाता है, जिनसे किसी क्षेत्र के लोगों को आपदा से यथासम्भव बचाने में मदद मिलती है। प्रभाव कम करने की आधारभूत नीतियों में भूमि -उपयोग को नियन्त्रित करना, आपदा प्रतिरोधी आदर्श भवनों का निर्माण करना, सामुद्रिक गतिविधियों को नियन्त्रित करना, भवन निर्माण सम्बन्धी उपयुक्त सहित एवं भवनों के वास्तुशिल्प सम्बन्धी डिजाइन तैयार करना तथा चट्टानों को गिरने से रोकने के लिए अवरोध खड़े करना आदि उपाय सम्मिलित हैं।

   इनके अतिरिक्त जलग्रहण प्रबन्ध, श्रेणियों में सुधार. फसल चक्र, मवेशी प्रबन्धन और मृदा संरक्षण प्रविधियाँ भी आपदाओ का प्रभाव कम करने मे महत्वपूर्ण सहयोग करती हैं। गैर रचनागत उपायों में आपदाओं से रक्षा के लिए पर्याप्त कानून, नियम और उपनियम, बीमा एवं ऋण योजनाएँ, शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रम, स्वयं सहायता समूहों को सक्रिय बनाना, उपयुक्त चेतावनी प्रणाली और संस्थाओं की स्थापना जैसे उपाय सम्मिलित हैं।

3. **आपदा से निपटने की तैयारी :** आपदाओं से निपटने की तैयारी सम्बन्धी उपाय निश्चय ही राष्ट्रीय आपदा तैयारी योजना के दायरे में आनी चाहिए और साथ ही विशेष आपदा की स्थिति में केन्द्र, राज्य, जिला और खण्ड स्तर पर अल्प एवं दीर्घ अवधि की योजनाएँ बनाई जानी चाहिए। बाढ़, सूखा, तूफान और भूकम्प जैसी आपदाओं के लिए अलग – अलग आपात योजनाएँ, राहत योजनाएँ तथा पुनर्वास योजनाएँ बनायी जानी चाहिए।

4. **आपदा आने पर कार्यवाही करना :** आपदा आने पर तुरन्त कार्यवाही करनी चाहिए अन्यथा दूसरी अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे 1999 के उड़ीसा तूफान के कारण उपजी महामारी की आशंका आदि ऐसी ही सम्बद्ध समस्याएँ हैं, अत : तुरन्त यथासम्भव कार्यवाही की जानी चाहिए।

5. **आपदा राहत एवं पुनर्वास :** आपदा ग्रस्त क्षेत्र में आपदा के स्वरूप एवं सहने की क्षमता अनुसार राहत एवं पुनर्वास के कार्य चलाए जा सकते हैं। आपदा के उपरान्त सहायता की आवश्यकता, प्रकार, मात्रा तथा अवधि का निर्धारण करने में इससे सहायता मिलती है।

6. **आपदा एवं विकास :** आपदाओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध विकास से होता है। जनहानि के अतिरिक्त अनेक ऐसी क्रियाएँ या तो मन्द हो जाती हैं या विनष्ट हो जाती हैं, जो विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आपदा होने वाली क्षति विकास में बाधा बनती हैं।

आपदा क्षति का संग्रह एवं पूर्वानुमान आपदा के कारगर प्रबन्धन में सहायक हो सकते हैं। आपदा मानचित्र तैयार करना भी उन सर्वाधिक कारगर उपायों मैं से एक है जिनसे आपदा प्रबन्ध के विभिन्न पहलुओं के बारे मैं आकड़े एकत्र कर, उनका विश्लेषण किया जा सकता है। आपदा की आशंका वाले प्रमुख क्षेत्रों के मानचित्र तैयार किए जा सकते हैं, जिनमें भूकम्पीय गतिविधियों वाले क्षेत्रों, लघुस्तर पर औद्‌यौगिक क्षेत्रों, भूमि उपयोग की योजना तथा प्राकृतिक भूगोल, 'जल विज्ञान, भू–विज्ञान, जनसंख्या वितरण के बारे में स्थानीय आंकड़ों का विश्लेषण तथा आपदा की...आशंका वाले क्षेत्रों का सामाजिक -आर्थिक स्वरूप आदि तथ्यों को रेखांकित किया जा सकता है।

आपदा की आशंका वाले क्षेत्रों मैं उपग्रह आधारित विश्वसनीय एवं बेजोड़ संचार प्रणाली का विकास किया जा सकता है। इस दिशा में भारत में प्रयास किया गया है, जिसे आपदा चेतावनी प्रणाली का नाम दिया है। अब हवा के न्यून दबाव वाले क्षेत्रों का 72 घण्टे पहले पता लगाया जा सकता है। आपदाओं का पहले से ही कारगर प्रबन्ध करने के लिए हमारे पास एक समुचित, विश्वसनीय और समयानुकूल आगाह करने वाली चेतावनी प्रणाली होनी चाहिए, जो विश्वसनीय पूर्वानुमानों के आधार पर सम्भव हो सकती है। सही– सही पूर्वानुमान केवल उन्हीं आपदाओं के बारे में व्यक्त किया जा सकता है, जिनके बारे मे पूर्व सूचनाएँ मिल सकें। इस प्रकार सूचनीयता, पूर्वानुमान एवं चेतावनी के मध्य एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध है।

17.3 पर्यावरणीय प्रदूषण (Environmental Pollution)

पर्यावरण प्रदूषण वर्तमान युग का एक बहुचर्चित विषय व आधुनिक सभ्यता द्‌वारा उत्पन्न एक भयावह समस्या है। एक स्वस्थ एवं सन्तुलित पर्यावरण में बाहरी अवांछित तत्वों के द्‌वारा उत्पन्न असन्तुलन की दशा को पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं. जिसमें जीव –जन्तुओं एवं मानव के लिए जीवन की अनुकूल दशाएँ घटती जाती हैं। प्रदूषण (Pollution) का शाब्दिक अर्थ है 'गन्दा या अस्वच्छ करना, अपवित्र करना।' सामान्य शब्दों में प्रदूषण पर्यावरण के जैविक तथा अजैविक तत्वों के रासायनिक, भौतिक तथा जैविक गुणों में होने वाला वह अवांछनीय परिवर्तन है जो कि मानवीय क्रिया –कलापों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है।

पर्यावरण प्रदूषण में मनुष्य की प्रमुख भूमिका होती है, जबकि पर्यावरण अवनयन में मानवीय तथा प्राकृतिक प्रक्रमों का सम्मिलित योग होता है। इस प्रकार प्रदूषण स्थानीय स्तर पर पर्यावरणीय गुणवत्ता में ह्रास करता है जबकि पर्यावरण अवनयन द्‌वारा स्थानीय, प्रादेशिक तथा विश्वस्तर पर पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास तथा अवनयन होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका (U. S.A) में राष्ट्रपति विज्ञान 'समिति की पर्यावरण प्रदूषण उपसमिति ने 1965 के प्रतिवेदन में प्रदूषण को निम्न रूप में परिभाषित किया है

" प्रदूषण मानवीय क्रिया –कलापों का ऐसा उप उत्पाद है, जिसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऊर्जा प्रतिरूपों, विकिरण स्तरों, जीवों के भौतिक व रासायनिक संगठनों तथा जीवों की बहुलता में हुए इनके प्रभावों में ऐसा वातावरणीय प्रतिकूल परिवर्तन किया है जिससे मानव को प्रत्यक्ष रूप में तथा परोक्ष रूप में उत्पन्न जल संसाधन, जलापूर्ति, कृषि व जैविक उत्पादों, मानव के भौतिक स्वामित्व, मनोरंजन के अवसरों व नैसर्गिक सुन्दरता के आकलन को प्रभावित किया है। "

प्रदूषक (Pollutants) : जीवमण्डल में संचरित विविध पारिस्थितिक तन्त्रों की प्राकृतिक सन्तुलन की अवस्था में असन्तुलन उत्पन्न करने वाले कारकों या तत्वों को प्रदूषक कहते हैं। सामान्य

भाषा में उपयोग के उपरान्त अवशिष्ट रूप में फेंके गये तत्वों को प्रदूषक कहते हैं। ये मानवीय क्रिया –कलापों के उप उत्पाद होते हैं, जो तकनीकी विकास व उच्च स्तरीय जीवन के सहगामी परिणाम होते हैं। प्रदूषक तत्व तथा निस्तारण की प्रक्रिया में विकसित एवं विकासशील देशों में भिन्नता पायी जाती है। उत्पत्ति के स्रोत के आधार पर प्रदूषक दो प्रकार के होते हैं

(1) प्राकृतिक प्रदूषक (Natural Pollutants)

(2) मानव निर्मित प्रदूषक (Man–made Pollutants)

प्रदूषकों की प्रकृति एवं अवस्था के अनुसार इन्हें छ : वर्गों में विभक्त किया जा सकता है

(1) ठोस अपशिष्ट (Solid Wastes)

(2) द्रव अपशिष्ट (Liquid Wastes)

(3) गैसीय अपशिष्ट (Gaseous Wastes)

(4) भारहीन अपशिष्ट (Weightless Wastes)

(5) ताप अपशिष्ट (Heat Wastes)

(6) ध्वनि अपशिष्ट (Noise Wastes)

(1) **ठोस अपशिष्ट (Solid Wastes) :** ये औद्योगिक घरेलू अपशिष्ट होते हैं, जिन्हें सामान्य भाषा में कूडा –कर्कट (Garbage) कहते हैं। ये कचरा रसोई, मांसघरों, डिब्बा, बोतल उद्योग आदि से नि:सृत होता है। उद्योगो व घरों से प्राप्त राख, इमारतें तोड़ने के उपरान्त उपलब्ध मलबा, प्लास्टिक, मृत जन्तुओं के कंकाल, खनिज खानो से निकले अपशिष्ट आदि इनमें सम्मिलित किये जाते हैं।

(2) **द्रव अपशिष्ट (Liquid Wastes) :** इनमें घरों से निकले जल, मलमूत्र व इसके साथ बहकर आये मृदा कणों को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार के सान्द्रण में घुलित ऑक्सीजन से कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीकरण हो जाता है। विभिन्न उद्योगो बड़ी मात्रा में अम्लीय एवं क्षारीय द्रव नि:सृत करते हैं।

(3) **गैसीय अपशिष्ट (Gaseous Wastes) :** इनमें Co, Co_2, No_2 तथा धूम कोहरे में मिश्रित हाइड्रोकार्बन गैसें सम्मिलित हैं जो विभिन्न औद्योगिक संस्थानों से नि सृत होती हैं।

(4) **भारहीन अपशिष्ट (weightless Wastes).** इनमें अदृश्य ऊर्जा अपशिष्ट को सम्मिलित किया जाता है, जिनगें ताप ध्वनि त था रेडियोधर्मी अवशिष्ट समाहित हैं।

(5) **ताप अपशिष्ट (Heat Wastes) :** विभिनन औद्योगिक संस्थानों से नि:सूत अत्यधिक गर्म जल, द्रव अपशिष्ट व तप्त गैसें सम्मिलित हैं।

(6) **ध्वनि अपशिष्ट (Noise Wastes) :** अवांछनीय ध्वनि इस वर्ग का प्रमुख अपशिष्ट है जो अदृश्य भी होती है।

पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से ओडम ने प्रदूषकों को निम्न दो वर्गों में विभक्त किया है

(1) अविघटनीय प्रदूषक (Non Degradable Pollutants)

(2) जैव विघटनीय प्रदूषक (Biodegradable Pollutants)

(1) **अविघटनीय प्रदूषक (Non Degradable Pollutants) :** ये मानव निर्मित ऐसे औद्योगिक पदार्थ होते हैं, जो प्राकृतिक (भौतिक), रासायनिक व जैव रासायनिक क्रियाओं द्वारा विघटित नहीं होते हैं। जिस कारण पारिस्थितिक तन्त्र में इनका पुन: चक्रीकरण नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप ये तत्व एकत्रित होकर खाद्य शृंखला द्वारा व जैव भूरासायनिक चक्रों द्वारा

जीवों में प्रविष्ट होकर हानिकारक प्रभाव प्रकट करते हैं। इनमें एल्यूमिनियम एवं टिन के डिब्बे, पारा के लवण, फिलोलिक यौगिक, डी. डी. टी., बी. एच. सी., एल्ड्रीन तथा टोक्साफनि प्रमुख हैं।

(2) **जैव विघटनीय प्रदूषक (Biodegradable Pollutions) :** ये प्रदूषक अधिकांशत : जीवन – जन्तुमें और वनस्पतियों की जैविक क्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। इनकी रासायनिक संरचना अधिक स्थायी नहीं होती है, जिस कारण ये प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा आसानी से विघटित हो जाते हैं। इनमें घरेलू अपशिष्ट जैसे मल –मूत्र, अन्न, शाक व फलों के अंश आदि सम्मिलित हैं। इनका अनुपात विघटन दर से अधिक होने पर ये प्रदूषण का कार्य करने लग जाते हैं।

प्रदूषण के स्रोत (Sources of Pollution) : प्रदूषण करने वाले प्रदूषकों के स्रोत उत्पत्ति के आधार पर दो प्रकार के होते हैं

(1) प्राकृतिक स्रोत (Natural Sources)

(2) मानवीय स्रोत (Human Sources)

(1) **प्राकृतिक स्रोत (Natural Sources)** ष : इस वर्ग में प्राकृतिक क्रियाओं के दौरान नि:सृत प्रदूषक तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। इनमें ज्वालामुखी राख एवं धूल, भूकम्पीय घटनाओं के दौरान आने वाले धरातलीय परिवर्तन सै उत्पन्न तत्व, बाढ़, सूखा, मृदा अपरदन, चक्रवातीय तूफान आदि से उत्पन्न तत्व प्रमुख हैं।

(2) **मानवीय स्रोत (Human Sources).** प्रदूषण के मानव जनित स्रोतों में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है

1. औद्योगिक बहि:स्राव (Industrial Effluents)
2. घरेलू बहि:स्राव (Domestic)
3. वाहित मल (Sewage)
4. कृषि बहि:स्राव (Agriculturl Effuents)
5. तेलीय स्रोत (Oil Pollutants)
6. तापीय स्रोत (Thermal sources)
7. रेडियोधर्मी अपशिष्ट (radioactive Wastes)
8. दहन क्रिया (Combustion Process)
9. नगरपालिका अपशिष्ट (Municipal wastes)
10. खनन अपशिष्ट (Mining wastes)
11. परिवहन के साधन (Means of Transportation)
12. मनोरंजन के साधन (Means of Entertainment)
13. सामाजिक क्रिया –कलाप (Social Activites)

प्रदूषण के प्रकार (Types of Pollutants) प्रकृति में विभिन्न रूपों में प्रदूषण पाये जाते हैं, जिनका वर्गीकरण प्रदूषक तत्वों, प्रदूषण के स्रोतों तथा विसरण प्रक्रिया के आधार पर किया जा सकता है। इस आधार पर निम्न प्रक़ार के प्रदूषण पाये जाते हैं

प्रदूषण के स्वरूप के आधार पर दो प्रकार का पर्यावरण प्रदूषण होता है। प्रथम, भौतिक या प्राकृतिक प्रदूषण तथा द्वितीय, सामाजिक या सांस्कृतिक प्रदूषण। भौतिक प्रदूषण पर्यावरण के भौतिक घटकों जल, वायु, मृदा आदि में पाया जाता है। जिस आधार पर इन्हें जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं भूमि प्रदूषण कहा जाता है। इसी प्रकार सामाजिक या सांस्कृतिक प्रदूषण को भी निम्न रूपों में विभक्त किया जा सकता है (1) आर्थिक प्रदूषण (गरीबी व बेरोजगारी), (2) राजनीतिक प्रदूषण (युद्ध), (3) धार्मिक प्रदूषण (धार्मिक आधार पर हिंसा), (4) सामाजिक प्रदूषण (अपराध, लूट, डकैती आदि)। इसी प्रकार क्षेत्रीय आधार पर नगरीय प्रदूषण, ग्रामीण प्रदूषण. औद्योगिक क्षेत्रों का प्रदूषण, कृषि प्रदूषण तथा धार्मिक पर्यटक स्थलों का प्रदूषण आदि ' में विभक्त किया जा सकता है ।

17.4 पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन (EIA)

पर्यावरण पर मानव जनित गतिविधियों द्वारा पड़ने वाले सम्भावित प्रभाव को 'पर्यावरणीय प्रभाव' कहते हैं। मानवीय क्रिया –कलापों के पर्यावरणीय प्रभावों के मूल्यांकन व आंकलन को 'पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन ' (Environmental Impact assessment,EIA) कहा जाता है, प्राकृतिक संसधनों के विदोहन तथा प्रसंस्करण के दौरान पर्यावरण पर पड़ने वाले मानव जनित प्रभावों के सम्बन्ध में दिये गये सामान्य वक्तव्यों को ' पर्यावरणीय प्रभाव वक्तव्य ' कहा जाता है।

ई. आई. ए. के प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैं

1. मौजूदा पर्यावरणीय दशाओं की समीक्षा।
2. उत्पादक पद्धतियों की उपयोगिता का निर्धारण।
3. ई. आई. ए. से जुड़ी कार्यप्रणालियाँ।
4. परियोजनाओं का पर्यावरण पर प्रभाव।
5. मौजूदा उत्पादन तकनीक में सुधार एवं रूपान्तरण द्वारा पर्यावरण के संरक्षण की तकनिकों का विकास।

पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के उद्देश्य : ई. आई. ए. का आरम्भ राष्ट्रीय पर्यावरण नीति अधिनियम (संयुक्त राज्य अमेरिका) के साथ 1969 में हुआ। इस अधिनियम (NEPA) के प्रमुख उद्देश्य है

1. मानव एव पर्यावरण के मध्य एक उत्पादक सम्बन्ध को सुनिश्चित करने के लिए एक राष्ट्रीय नीति घोषित करना।
2. ऐसे प्रयासों को प्रोत्साहित करना, जिनसे पर्यावरण की क्षति को रोका जा सके।
3. मानव जीवन हेतु निर्णायक प्राकृतिक संसाधनों तथा परितंत्र के बारे में मौजूदा समझ के स्तर को बढ़ाना।
4. पर्यावरण गुणवत्ता पर एक परिषद् (si.ई.क्यू.) का गठन करना।

1975 में भारत में पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन जारी किया गया जिसमें अब निम्नलिखित परियोजनाएँ शामिल हैं

1. नदी घाटी, तापीय ऊर्जा, खनन, उद्योग, नाभिकीय शक्ति, रेलमार्ग, सड़क, राजमार्ग एवं पुल, पोताश्रय एव बदरगाह, हवाई पतन, नये नगर, संचार परियोजनाएँ।

2. जिनके लिए सार्वजनिक निवेश बोर्ड/योजना/आयोग, केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण के अनुमोदन की जरूरत पड़ती है।
3. जिन्हें अन्य मंत्रालयों द्वारा पर्यावरण व वन मंत्रालय के पास अग्रसित किया गया है।
4. ऐसी संवेदनशील पीरशोजनाएँ, जो पर्यावरण जोखिम वाले क्षेत्रों में स्थित हैं।

1994 में जारी एक अधिसूचना के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत विकास परियोजनाओं की 29 श्रेणियों के लिए EIA को वैधानिक बनाया गया। एक समीक्षा समिति द्वारा व्यापक जांच पड़ताल एवं मूल्याकन करने के बाद परियोजना के अनुमोदन या अस्वीकार करने की सिफारिश की जाती है। इस प्रक्रिया मैं पोरदर्शिता लाने के लिए फरवरी 1999 से वन एवं पर्यावरण समाशोधन की स्थिति को वेबसाइट पर उपलब्ध कराया जाता है।

परियोजना की प्रकृति के आधार पर कुछ सुरक्षा उपायों की सिफारिश भी की जाती है। प्रस्तावित सुरक्षा उपायों के समयबद्ध क्रियान्वयन तथा निगरानी हेतु शिलांग, लखनऊ, भुवनेश्वर, चण्डीगढ़, बंगलौर एवं भोपाल में कुल 6 क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किए गए हैं। एक राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण द्वारा पर्यावरणीय दृष्टिकोण से प्रस्तावों के अस्वीकार के बाद की गई अपीलों को सुना जाता है। इसका उद्देश्य प्रक्रिया को पारदर्शी बनाना तथा उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करना है ताकि विकास, परियोजनाओं का अविलम्ब एवं क्रियान्वयन हो सके। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के लिए एक पृथक पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन प्राधिकरण का गठन किया गया है।

पर्यावरण कार्यवाही कार्यक्रम

जनवरी 1994 में सरकार द्वारा एक 'पर्यावरण कार्यवाही कार्यक्रम ' (EAP) का निर्माण किया गया। इसका लक्ष्य प्राकृतिक संसाधनों का आकलन व पर्यावरणीय सांख्यिकी की एक संगठित प्रणाली के माध्यम से विभिन्न परियोजनाओं के पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन को सृदृढ़ बनाना है। यह कार्यक्रम निम्न क्षेत्रों पर ध्यान देता है

1. मृदा व नमी संरक्षण
2. जैव विविधता संरक्षण
3. शहरी पर्यावरण से जुड़े मुद्दों को निपटाना
4. औद्योगिक प्रदूषण एवं कचरे पर नियंत्रण
5. स्वच्छ तकनीकों का प्रयोग
6. पर्यावरणीय शिक्षा, प्रशिक्षण, जागरूकता तथा संसाधन प्रबन्धन का विस्तार
7. वैकल्पिक ऊर्जा योजना।

यह कार्यक्रम पृथ्वी शिखर सम्मेलन में स्वीकृत एजेंण्डा– 21 के अन्तर्गत पहचाने गए क्षेत्रों के साथ समन्वय करता है।

17.5 जनसंख्या विस्फोट एवं खाद्य सुरक्षा (Population Explosion and Food Security)

जनसंख्या विस्फोट किसी भी देश में जनसंख्या वृद्धि की उस स्थिति को कहते हैं, जब देश की जनसंख्या उत्पादन और आय से संबधित इच्छित जीवन स्तर की अपेक्षा अधिक तीव्र गीत से बढती है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुऐ डॉ. वी. सी. सिन्हा ने बताया कि वर्तमान जीवन

स्तर को बनाये रखने के लिए यदि देश की जनसंख्या में प्रतिवर्ष एक प्रतिशत वृद्धि होती है, तो राष्ट्रीय आय में कम से कम चार प्रतिशत वृद्धि आवश्यक है तथा इस दृष्टि से भारत में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति विद्यमान है। भारत की वर्तमान वार्षिक जनसख्या वृद्धि दर 1.93 प्रतिशत है। इसके अनुपात में देश की राष्ट्रीय आत 8 प्रतिशत होने पर जनसंख्या विस्फोट की स्थिति नहीं होगी। लेकिन इस दृष्टि से भारत में जनाधिक्य एवं जनसंख्या विस्फोट की स्थिति है। ईस बारे में श्री एस. चन्द्रशेखर ने कहा है कि भारत में जानसंख्या विस्फोट के पीरणामस्वरूप जीवन स्तर निरन्तर नीचा हो सकता है तथा गरीब परिवारों की संख्या में भी वृद्धि हो सकती है इसी प्रकार जनसंख्या विस्फोट की स्थिति के सन्दर्भ में प्रसिद्ध जनाकिकीविद ए. एम. कार साऊण्डर्स ने कहा है कि यहाँ जीवन निर्वाह के साधनों पर जनसंख्या का अत्याधिक भार है।

भारत में वर्तमान में विश्व की 17.87 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है तथा यह अनुमान लगाया जाता है कि जनसंख्या वृद्धि की सही स्थिति रही तो सन् 2050 तक भारत को विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बनने की नकारात्मक छवि की जोखिम उठानी पड़ सकती है। विगत दो दशकों के दौरान सामाजिक –जनसांख्यिकीय मानकों मे महत्वपूर्ण प्रगति की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत अन्य देशों से पिछड़ रहा है।

इनमें जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (वर्ष), पाँच वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर (प्रति 1000 जन्म पर), शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जीवित जन्म) व मातृ शिशु मृत्यु अनुपात (प्रति 100000 जीवित जन्म) प्रमुख हैं। इस प्रकार भारत वर्तमान में जनसंख्या के उपर्युक्त मानकों की दृष्टि से पिछड़ रहा है तथा जनाधिक्य के जाल से घिर गया है इस स्थिति ने देश के विकास को विविध रूपों में प्रभावित कर रही है भारत के पूर्व नियोजन मंत्री अशोक मेहता ने कहा है कि जनसंख्या वृद्धि रात्रि के उस चोर के समान है, जो हमारे आर्थिक विकास में प्राप्त सफलता को लूट रहा है।

तालिका – 17.3 : जनसंख्या के पूर्वानुमान (मिलियन में)

वर्ष	15 वर्ष से कम	15 से 64 वर्ष	65+	कुल
2001	363	622	42	1028
2006	360	702	52	1114
2011	351	780	66	1197
2016	343	854	78	1275
2021	337	916	94	1347
2026	328	967	116	1411

स्त्रोत : महापंजीयक , भारत

जनसंख्या विस्फोट के कारण

देश में प्रारम्भिक समय में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति नहीं थी लेकिन धीरे – धीरे जनसंख्या 'वृद्धि तीव्र हुई एवं जनसंख्या दबाव की स्थिति गहराती गई। वर्तमान जनसंख्या विस्फोट की स्थिति लगभग पूर्णतया मानव प्रदत्त है ,जिसके लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी हैं

(i) **तीव्र जनसंख्या वृद्धि–** 300 ईसा पूर्व देश की जनसंख्या मात्र 100 मिलियन थी। जो बढकर 1800 मे 120 मिलियन व 1901 मे 238 मिलियन थी जो वर्तमान में 1028 मिलियन को पार कर गई है।

(ii) **जनंसख्या का विषम वितरण –** भारत का केवल 43 प्रतिशत भाग ही मैदानी है। जहाँ सघन जनसंख्या वितरित है। जबकि शेष 57 प्रतिशत भू भाग (29.3 प्रतिशत पर्वतीय तथा 27.7 प्रतिशत पठारी) पर जनसंख्या वितरण भी जनाधिक्य के लिए उत्तरदायी है।

(iii) **जनसंख्या स्थानांतरण–**मानव एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानातरण करता है लेकिन वर्तमान में स्थानातरण के उपरात स्थायी बसाव के फलस्वरूप संसाधनों पर दबाव बनने से आर्थिक विकास अवरूद्ध हो जाता है।

(iv) **प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन–**लगातार प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के कारण उनका अनुपात जनसंख्या की दृष्टि से घट जाता है एवं जनाधिक्य की स्थिति बन जाती है।

(v) **औद्योगीकरण एवं नगरीयकरण –**तीव्र गति से बढ़ते औद्योगीकरण के साथ ही नगरीयकरण भी बढ़ा है जिसके कारण जनसंख्या का बडे.नगरों में संकेन्द्रण होने से जनाधिक्य हुआ है।

(vi) **अन्य कारण–**इन सभी कारणों के अतिरिक्त भूकंप, ज्वालामुखी, बाढ़, सूखा, चक्रवात व सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण व युद्ध आदि के कारण भी जनाधिक्य हो जाता है।

जनसंख्या विस्फोट की स्थिति को नियंत्रित करने की दिशा में देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही अनेक प्रयास किये हैं। सन् 1951 में परिवार कल्याण कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया, जिसका प्रमुख उद्देश्य जन्म दर को घटाकर जनसंख्या को राष्ट्रीय आर्थिक नीति की आवश्यकताओं के अनुरूप स्तर तक स्थिर रखना था। इसके उपरात समय –समय पर जनसंख्या नीतियों को लागू किया गया। इनमें सन् 1976 की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 1977 की संशोधित राष्ट्रीय जनसंख्या नीति तथा वर्ष 2000 की जनसंख्या नीतियों प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त 22 अप्रेल 2002 को राष्ट्रीय जनसंख्या स्थिरता कोष एवं राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग की भी स्थापना की गई है। जनसंख्या विस्फोट की स्थिति से निम्नलिखित उपायों द्वारा बचा जा सकता है.

(i) **जनसंख्या नियंत्रण–** तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या को विविध उपायों से त्वरित रूप में नियंत्रित किया जाये।

(ii) **रोजगार के अवसर सृजित करना–**बढ़ती जनसंख्या में आकस्मिक नियंत्रण संभव नहीं है अत: इस अवधि तक अतिरिक्त जनसंख्या के लिए रोजगार के अवसर सृजित किये जाने चाहिए।

(iii) **कृषि पद्धति में परिवर्तन–**वर्तमान समय में भारत में कृषि उत्पादों की उत्पादकता अन्य देशों की तुलना में काफी कम है अत: वैज्ञानिक विधियों व गहन कृषि द्वारा इसे बढाया जाना चाहिए। साथ ही अनेक रूपों (दलदली व चरागाह भूमि आदि) बेकार पड़ी भूमि को भी विकसित की जाऐं।

(iv) प्राकृतिक संसाधनों का पोषणीय विकास किया जाये ताकि उनकी उपलब्धता दीर्घकाल तक बनी रहें।

(v) क्षेत्रीय विषमताओं को विभिन्न रूपों में कम करके जनसंख्या वितरण को भी संतुलित किया जा सकता है।

(vi) समग्र आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

(vii) परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाये तथा भारत जैसे देश में जहाँ बड़ा भाग निरक्षर है एवं इन कार्यक्रमों से अवगत नही रहता है ऐसे में शिक्षा एवं प्रचार प्रसार द्वारा इन्हें सफल बनाया जाना चाहिए।

खाद्य सुरक्षा एक ऐसी दशा है जिसमें सभी समयों पर सभी लोगों के लिए सक्रिय व स्वस्थ जीवन हेतु पर्याप्त भोजन उपलब्ध हो। ऐसे समय में, जब विश्व जनसंख्या 6.5 अरब के आकड़े को पार कर चुकी है, सभी के लिए भोजन की भविष्यकालीन उपलब्धता एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया है।

भारत में खाद्य सुरक्षा की विकट स्थिति है। भारत को खाद्य सुरक्षा के समक्ष दो मोर्चों पर प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे –जनसंख्या विस्फोट के कारण एक ओर जहाँ कृषि वृद्धि दर में बढ़ोतरी हुई है, वहीं दूसरी ओर पर्याप्त क्रय शक्ति के अभाव में खाद्य संसाधनों का असमान विसरण भी हुआ है। यदि खाद्य का समान वितरण कर भी दिया जाए तो भी कृषि वृद्धि दर 4.5 प्रतिशत पर स्थिर करना होगा ताकि सम्पूर्ण वृद्धि दर को सात प्रतिशत तक रखा जा सके।

खाद्य सुरक्षा की समस्या खाद्य फसलों के एक संकुचित मिश्रण पर आधारित रहने की हमारी प्रकृति द्वारा आवृत्त है। जनसंख्या का दबाव एक लाभकारी फसल पद्धति को हानिकारक पद्धतियों में बदल देता है, जैसेझूम खेती।

स्वतन्त्र भारत में अकाल से मरने वालों की संख्या में कमी आई है। इसका एक बहुमुखी रणनीति को अंगीकार करना है जिसमें खाद्य उत्पादन वृद्धि, अनाज भण्डारों में वृद्धि, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार तथा रोजगार निर्माण शामिल है, फिर भी न्यून पोषण के कारण, भुखमरी की घटनाएँ सामने आ रही हैं। हमारे देश में प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण की दर की उच्च बनी हुई है। भारत की 80 प्रतिशत ग्रामीण तथा 70 प्रतिशत शहरी जनसंख्या अनुमोदित स्तर से कम कैलोरी पर जीवित है। वर्ष 2025 तक भारत की कुल जनसंख्या का 50 प्रतिशत शहरों में रहने लगेगा, जिसके कारण खाद्य कृषि प्रतिरूप में बदलाव आ जायेंगे, क्योंकि अधिकांश फसलों की राष्ट्रीय उत्पादकता आश्चर्यजनक रूप से कम है। इसलिए यह जरूरी है कि हम तकनीकी स्थानान्तरण द्वारा वास्तविक व विभव उत्पादकता में अन्तर कम करके सभी के लिए भौजन सुनिश्चित करें।

स्वतंत्रता के उपरान्त पहले तीन दशकों के दौरान खाद्य के लिए भौतिक पहुँच का होना महत्वपूर्ण था, किन्तु वर्तमान में आर्थिक पहुँच अधिक महत्वपूर्ण साबित हो चुकी है। नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक भारत में लगभग 21.5 करोड़ टन खाद्यान्नों की जरूरत होगी, जबकि विगत कुछ वर्षों में खाद्यान्न उत्पादन 20 करोड़ टन के आस –पास ही रहा है। आपातकालीन भण्डार तथा निर्यात हेतु अलग से 1.5 करोड़ टन खाद्यान्न की जरूरत है।

भारत में तीव्र जनसंख्या वृद्धि की समस्या निम्म प्रतिव्यक्ति आय, निम्न क्रय शक्ति, स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव तथा वृहत स्तरीय अशिक्षा आदि से जुड़ी हुई है। जनसंख्या विस्फोट के कारण कृषि भूमि सिकुड़ती जा रही है। इसी कारण से खाद्य मूल्य में तीव्र बढ़ोतरी होती है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा सरकार पर सब्सिडी का भारी बोझ पड़ रहा है। सामाजिक क्षेत्र में संवहनीय विकास से जुड़ी स्थिर आर्थिक वृद्धि ही नई सहस्राब्दी में हमारे लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कर सकती है।

17.6 पर्यावरण अवनयन (Environmental degradation)

प्रगति प्रकृति पर आक्रमण का पर्याय बनती जा रही है। हम जो प्रकृति के अभिन्न अंग हैं और हर आवश्यकता के लिए उस पर निर्भर हैं तथा निरन्तर प्रकृति के दोहन की बात करते हैं। मानव निरतंर विकासशील रहता है तथा अपने प्राकृतिक परिवेश का विविध रूपों में दोहन कर परिवर्तन करता रहता है। यह एक सीमा तक संतुलित रहता है लेकिन जब संसाधनों की उपलब्धता घटने लगती है। तथा इनके प्रयोग से पर्यावरण संतुलन बिगड़ने लगता हे तो पर्यावरण प्रभावित होता है आज मानव ने विगत दो शताब्दियों के विकास के परिणाम स्वरूप पर्यावरण को काफी प्रभावित किया है। वर्तमान में पर्यावरण अवनयन निम्नलिखित रूप में परिलक्षित हो रहा है :

(i) **पर्यावरण प्रदूषण (Environmental Pollution)** –पर्यावरण प्रदूषण वायु, जल व स्थल के रासायनिक, भौतिक व जैविक गुणों में होने वाला ऐसा अवांछनीय परिवर्तन है जो कि मानव जीवन, औद्योगिक प्रगति, जीवन की परिस्थितियों रण सांस्कृतिक धरोहर के लिए अत्यन्त हानिकारक है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण के प्राकृतिक सन्तुलन की आनुपातिक सरचना में मानवीय हस्तक्षेप से अवांछित तत्वों द्वारा परिवर्तन को पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। वर्तमान में भारत में मुख्यत: जल, वायु, ध्वनि, भूमि तथा रेडियोधर्मी प्रदूषण दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

(अ) **जल प्रदूषण (Water Pollution)** –जल प्रदूषण की समस्या विकट रूप धारण करती जा रही हैं। रसायन, वस्त्र, कागज, पेट्रोरसायन, चीनी, धातु, दवाओं और उर्वरकों के कारखानों के कारण नदियों में हानिकारक रसायन जाकर मिल रहे हैं। जल का प्राकृतिक स्वरूप अनेक प्राकृतिक एवं मानवीय स्रोत से अवनयित हो जाता है। इन स्रोतों द्वारा जल में कुछ प्रदूषण तत्व प्रवेश कर जाते है, जो पर्यावरण को अधिक हानि पहुँचाते हैं। राष्ट्रीय पर्यावरण अभियान्त्रिक शोध संस्थान (NEERI) नागपुर के शोधकर्त्ताओं के आकलन के अनुसार देश का लगभग 70 प्रतिशत भूजल मानवीय उपयोग के लिए अनुपयुक्त हो चुका है।

(ब) **वायु प्रदूषण (Air Pollution) –**वायुमण्डल में विभिन्न हानिकारक गैसों के विमोचन के लिए कल –कारखाने, ताप बिजली, वाहन तथा औद्योगिक भट्टियाँ आदि मुख्यतया दोषी हैं। औद्यागिक इकाइयों से कार्बन डाई आक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड तथा सल्फर डाई आक्साइड मुख्य रूप से निर्मुक्त होती है, जो वायु में मिलकर उसकी प्राकृतिक संरचना को विकृत करती हैं। इनके अतिरिक्त जीवाश्मीय ईधन (कोयला एवं पेट्रोलियम) के दहन से कार्बन मोनो आक्साइड, हाइड्रो कार्बन के यौगिक, नाइट्रोजन के आक्साइड तथा निलम्बित ठोस पदार्थ (Suspended Solid Matter) आदि भी वायु प्रदूषण फैलाते हैं।

(स) **ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution) –**प्रकृति में किसी भी जीव –जन्तु तथा मनुष्य के लिए असमय, अवांछित तथा असहनीय ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। स्वीकार्य ध्वनि सामान्यतया 45 से 56 db के मध्य मानी जाती है। यह मानक विभिन्न परिस्थितियों में परिवर्तित हो सकता है। ध्वनि प्रदूषण के स्त्रोतों में उद्योग, यातायात के साधन, पटाखे तथा विभिन्न ध्वनि प्रसारक मनोरंजन के उपकरण प्रमुख हैं।

(ii) **जल संकट (Water Crisis)** –भारत में भूजल का सर्वाधिक दोहन कृषि में सिंचाई के लिए किया जा रहा है। कुल शुद्ध जल के 69 प्रतिशत हिस्सा कृषि कार्यो में प्रयुक्त होता है तथा शेष 23 प्रतिशत उद्योगों व 8 प्रतिशत घरेलू उपयोग में लिया जाता है विगत चार दशकों में कृषि में आये क्रान्तिकारी परिवर्तनों में जल की मांग बढी है तथा इस मांग की पूर्ति शुद्ध भूजल के द्वारा की गई है। अवैज्ञानिक कृषि में मनमाने कृषि प्रतिरूप अपनाये गये जिनमें जल की अधिक आवश्यकता महसूस की गई। महाराष्ट्र में गन्ने के खेतों तथा चीनी की मिलों में इतनी बड़ी संख्या में नलकूप लगा दिये कि तालगाँव के लगभग 2000 कुएँ सूख गये इस समस्या से लगभग 23000 गाँव ग्रसित हैं जहाँ कृषि में भारी मात्रा में भूजल का दोहन किया गया जबकि वर्तमान में पेयजल भी दुर्लभ हो गया है। इसी प्रकार राजस्थान की स्थिति गंभीर बनी हुई है। यहाँ कुल क्षेत्रफल (342239 वर्ग किमी.) का 63 प्रतिशत भाग (215142 वर्ग किमी.) ही भूजल सम्भव क्षेत्र है इसका 29 प्रतिशत भाग पश्चिमी राजस्थान में स्थित है जो लवणीय प्रकृति का है तथा 8 प्रतिशत पहाड़ी भूमि है। इस भूजल संभाव्य क्षेत्र में विगत दो दशकों में भूजल के अतिदोहन से भूजल स्तर 5 से 10 मीटर नीचे चला गया है। फलस्वरूप जहाँ 1980 के दशक में कृषि कार्य के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध था वहीं आज पेयजल संकट का सामना करना पड़ रहा है।

देश में घटते जल संसाधन के कारण प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता में भी कमो आयी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 5326 घनमीटर प्रतिवर्ष थी जो घटकर सन् 1991 में 2267 घनमीटर रह गई तथा समय के साथ सापेक्षिक रूप से मांग भी बड़ी है। सन् 1990 में प्रति व्यक्ति जल की मांग 550 घन किमी. थी सर् 2000 में बढ़कर 757 घन किमी. हो गई तथा इसके सन् 2025 में 1050 घन किमी. होने की संभावना है इसका मूल कग्रण बढती जनसंख्या तथा जल की मात्रा में गुणात्मक एवं मात्रात्मक ह्रास है। भारत को बर्फ एवं वर्षा से 4000 घन किमी. जल मिलता है लेकिन वर्षा का वितरण समान नहीं होने से जहाँ एक और चेरापूँजी में 11000 मि. मी वर्षा होती है वहीं पश्चिमी राजस्थान में 150 मिमि वर्षा ही प्राप्त हो पाती है। इस प्रकार वर्षा से प्राप्त जल की अधिकांश मात्रा बिना उपयोग के ही प्रवाहित या बह जाती है। सतही जल स्रोतों, नदी, तालाब, झील, कुएँ, बावडियाँ आदि में केवल 1669 घन किमी. जल है। शेष बचा है जिसका भी केवल 640 धन किमी. जल ही विभिन्न उपयोगों के लिए उपलब्ध हो पाता है। इसमें 360 घन किमी. भूजल भी सम्मिलित है जो सिंचाई के लिँए उपलब्ध हो पाता है। विगत दशक मैं सिंचाई में 85 प्रतिशत से अधिक जल की खपत रही है लेकिन आगामी दो दशकों में यह घटकर 60–70 प्रतिशत के मध्य रह जायेगी तथा शेष कार्यो में जहाँ आज केवल 15 प्रतिशत जल उपयोग में आता है सन् 2025 तक बढ़कर 27 प्रतिशत तक पहुँच जाएगा। इस प्रकार सन् 2010 तक सम्पूर्ण देश में जल संकट का असर दृष्टिगत होने लगेगा। देश के नदी बेसिनों में सर्वाधिक जल ब्रह्मपुत्र बेसिन में उपलब्ध है यहाँ प्रति व्यक्ति 18061 घन किमी. जल उपलब्ध है जबकि साबरमती में 360 घन मीटर. ही जल उपलब्ध है। ब्रह्मपुत्र नदी बेसिन मैं जल की उपलब्धता तो पर्याप्त है लेकिन इसके अनुरूप जल का उपयोग नहीं हो पाता हैं तथा अधिक जल बिना दोहन के ही बह जाता है। बिना उपयोग हुऐ ही प्रवाहित जल को रोकने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। यमुना नहर तथा आगरा नहर

सोलहवीं शताब्दी में बनाई गई जिनके द्वारा हिमालय का पानी पंजाब, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश मे ले जाया जाता था। उन्नीसवीं शाताब्दी में कुरगुल कुड़प्पा तथा पेरियार बेगल नहरें बनाई गई। इसी प्रकार वर्तमान में देश में जहाँ जल अतिरेक रहता है उनको जलाभाव वाले क्षेत्रों से जोड़ने के लिए राष्ट्रीय जल ग्रिड का निर्माण किया जाना प्रस्तावित है।

(iii) **पारिस्थितिकीय संकट (Ecological Problems) –**वर्तमान समय में मानवीय अविवेकपूर्ण कार्यों के दुष्पीरणामस्वरूप विभिन्न पारिस्थितिकीय समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं, जिनके कारण जैव विविधता का विलोपन हो रहा है। विभिन्न पारिस्थितिक तन्त्र अपनी क्रिया विधि को पूर्ण रूपेण सम्पादित नहीं कर पा रहे हैं। विभित्र पोषण स्तुर खाद्य ऊर्जा का पूर्ण संचरण नहीं कर पा रहे हैं। विकास की सही दिशा होनी चाहिए तथा यह सही दिशा जीवनधारणीय या पोषणीय विकास है। पारिस्थितिकीय पोषणीय विकास से तात्पर्य उस विक़ास से है जो मानव जीवन की उत्तमता (मानव कल्याण) को बिना पर्यावरण को क्षति पहुँचाए बनाये रखे। "पोषणीय दृष्टिकोण पर्यावरण के साथ सामंजस्य करने की प्रेरणा देता है, जिसमें पर्यावरणीय सन्तुलनै को मद्देनजर रखा जाता है। पोषणीय विकास के लिए आर्थिक, सामाजिक, साँस्कृतिक एवं राजनीतिक तथ्यों का भी समन्वय करना होगा। हमें प्रकृति से बहुत कुछ सीखना होगा, क्योंकि हम अपने अविवेकपूर्ण कार्यों से प्रकृति की अमूल्य सम्पदा के रूप में प्राणियों, पादपों व पक्षियों को नष्ट कर रहे हैं। पृथ्वी को अनेक प्रकार की नीति ही पुन: सन्तुलित स्थिति में ला सकती है। अत: विकास एवं पर्यावरण परस्पर विरोधी नहीं है। विकास को नई दिशा देकर प्राकृतिक पर्यावरण का उपयोग किया जा सकता है तथा पारिस्थितिकी के अनुरूप विकास प्रारूप अपना कर पोषणीय आयार पर सामंजस्य करके पारिस्थितिक समस्याओं से निजात पा सकते हैं।

(iv) **वनोन्मूलन (Deforestation) -**वनोन्मूलन किसी भी देश की आर्थिक स्थिति, जीन्स्तर व पर्यावरण के भविष्य के लिए एक भीषण विनाश का द्योतक है। सर 1900 में भारत में वन क्षेत्र 7000 मिलियन हैक्टैयर था जो 1975 में घटकर 2890 मिलियन हैक्टेयर तथा वर्तमान समय में 752.3 लाख हैक्टेयर रह गया है जो कुल क्षेत्रफल का 19.47 प्रतिशत है।

देश में बढ़ती हुई जनंसख्या तथा घरेलू पशुओं की बढ़ती हुई संख्या, इमारती काष्ठ व ईंधन की बढ़ती हुई खपत, कृषि विस्तार आदि के कारण वनक्षेत्र घट रहा है। बड़ी–बड़ी नदी घाटी योजनाओं पर निर्मित बाँधों के कारण भी वनोन्मूलन होता है। वनोन्मूलन के कारण मृदा अपरदन, बाढ़ तथा अकाल जैसे प्राकृतिक प्रकोपों में तीव्र वृद्धि होती है। भारत में वनोन्मूलन से प्रतिवर्ष 1 प्रतिशत भूमि अवनयित (Degraded) हो जाती है। हिमालय क्षेत्र में 3 – 4 प्रतिशत वर्षा में कमी आयी है तथा वन्य जीवों के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है।

(v) **ऊर्जा संकट (Energy Crisis) –**ऊर्जा का उपयोग वर्तमान विकास के युग में प्रगति का परिचायक बन गया है। अत : ऊर्जा के अधिकतम उपयोग की प्रतिस्पर्द्धा बढ़ूती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप ऊर्जा संकट उत्पन्न हुआ है। विकास का आधार ऊर्जा उपभोग को माना जा रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्व की 33. प्रतिशत ऊर्जा की खपत होती है, जबकि भारत में केवल 1.5 प्रतिशत ऊर्जा का उपयोग होता है। पेट्रोलियम उत्पाद तीव्र गति से घटते जा रहे हैं। बढ़ती उपभोग दर के आधार पर अगले 30 वर्षो में पेट्रोलियम समाप्त हो जायेगा। कोयला आगामी 100 वर्षो में तथा प्राकृतिक गैस 50 वर्षों में समाप्त हो जायेंगे। जल शक्ति

कुल ऊर्जा का 20 प्रतिशत योगदान देती है। उद्योगों, परिवहन तथा घेरलू उपयोग में ऊर्जा की बढ़ती माँग ने ऊर्जा संकट को बढ़ाया है। विगत 25 वर्षो में ईंधन का उपभोग दुगुना, तेल एवं प्राकृतिक गैस का उपभोग चौगुना बढ़ गया है। जिसके कारण ऊर्जा संकट का जन्म हुआ है।

(vi) **भूमि अवनयन (Land degradation)** भूमि संसाधनों के निरन्तर दोहन से आज इनके अवनयन की स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसका प्रमुख कारण तीव्रगति से हुआ कृषि प्रसार, वनोन्मूलन व खनन कार्य रहा है। भूमि संसाधन अवनयन मुख्यत : मृदा अपरदन के रूप में हुआ है। मृदा संसाघन विभिन्न जातियों रण किस्मों के जीवित जीवों (पौधों एवं जन्तुओं) के लिए अनुकूल आदर्श पर्यावरणीय दशाएँ रण आवास प्रदान करती है। प्राकृतिक पर्यावरण अवनयन के रूप में जब मृदा अपरदन होने लगता है तो सम्पूर्ण उपरोक्त क्रिया बाधित होकर पर्यावरण को अवक्रमित कर देती है। अपरदित क्षेत्र बजर तथा कृषि के अयोग्य हो जाता है। साथ ही अधिक मृदा अपरदन से वनस्पति आवरण भी कम हो जाता है।

(vii) **कृषि विकास के पर्यावरणीय प्रभाव (Environmental Effect of Agriculture Development)** – विश्व की बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति के लिए हमने निरन्तर कृषि विकास किया है। यह कृषि विकास दो रूपों में हुआ। प्रथम कृषि क्षेत्र में वृद्धि की तथा द्वितीय कृषि क्षेत्र में वृद्धि के साथ –साथ कृषि की गहनता में वृद्धि की जिसके अन्तर्गत प्रति हेक्टेयर उत्पादन बढ़ाया गया। कृषि क्षेत्र बढ़ने के साथ –साथ वन क्षेत्र में कमी आती गई तथा कृषि गहनता में वृद्धि के साथ जल की कमी आयी तथा मृदा उर्वरक मे हास हुआ फलस्वरूप एक सीमा के बाद खाद्यान्नों के उत्पादन बढ़ने की अन्तिम वहन क्षमता (Carrying Capacity) आ गई। इस प्रकार मानव ने तीव्रता से कृषि क्रियाओं का विस्तार करके सर्वत्र पर्यावरण को हानि पहुँचाई है। कृषि गहनता को बढ़ाने के लिए उन्नत किस्मों के बीजों एवं इनके उन्नत कृषि प्रविधिकी का उपायोग अपरिहार्य है। साथ ही रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का उपयोग किये बिना कृषि गहनता असम्भव है जिसके फलस्वरूप पर्यावरण पर दुष्प्रभाव दृष्टिगत होते हैं।

(viii) **औद्योगिकरण का प्रभाव (Impact Industrialization) –**औद्योगिक क्रियाओं द्वारा जहाँ एक ओर प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन किया है वहीं औद्योगिक प्रक्रिया द्वारा कई हानिकारक तत्वों का विसर्जन करके पर्यावरण को ग्रसित किया है। उद्योग कच्चे पदार्थों के रूप में प्रकृति से वनोपजें, खनिज पदार्थ, जीवाश्मीय संसाधन (ईंधन) , जल आदि तत्वों का उपयोग करते हैं। औद्योगिक संस्थानों के विकास के लिए भूमि पर प्राकृतिक आवरण को भी हटाया जाता है जिस कारण कृषि भूमि में कमी आती है तथा भूमि अनुपजाऊ हो जाती है। कभी –कभी इस कार्य हेतु वनोन्मूलन भी किया जाता है।

इस प्रकार उद्योगों के विकास द्वारा पर्यावरण निरन्तर अवक्रमित होता रहता है जो अग्र रूपों में परिलक्षित होता है –

- वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार की गैसों का विसर्जन जैसे कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड आदि।
- वायुमण्डलीय सुरक्षा कवच (ओजोन परत)का ह्रास ।
- वनोन्मूलन से वन क्षेत्र में कमी।

- विभिन्न वायुमण्डलीय प्रभावों (जैसे अप्लीय वर्षा) में वृद्धि।
- जल संसाधनों की मात्रा में कमी तथा जल प्रदूषण।
- जीवाश्मीय ईंधन (खनिज तेल एवं कोयला) की मात्रा में ह्रास ।
- खनिजों के अतिदोहन से उनकी मात्रा में कमी एवं उक्त क्षेत्र का बंजर व अनुपजाऊ होना।
- भूमि प्रदूषण को बढ़ावा।

उपरोक्त गतिविधियों के उपरान्त जैव विधिता में असन्तुलन होना।

(ix) **ठोस अपशिष्ट निस्तारण (Solid Wastes disposal) –**तीव्र गति से बढ़ रहे नगरीकरण तथा औद्योगीकरण ने ठोस अपशिष्टों के निस्तारण की समस्या को जन्म दिया है। ठोस अपशिष्टों में खनन से उत्पन्न अपशिष्ट, कृषि अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट, नगर पालिका अपशिष्ट, रेडियोएक्टिव अपशिष्ट आदि प्रमुख है। भारत भी बहुत अधिक अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं। भारत में भी भारी मात्रा में अपशिष्टों का उत्पादन प्रतिदिन होता है। कोलकाता से प्रतिदिन 3500 टन अपशिष्ट कचरा निकलता है। यह न्यूयार्क शहर से निस्तारित दैनिक कचरे का दसवाँ भाग है। मुम्बई से प्रतिदिन 4000 टन कचरा निकलता है, दिल्ली में 3000 टन तथा चैन्नई में 2000 टन कचरा प्रातेदिन उत्पादित होता है। –

बोध प्रश्न– 1

1. भारत में प्रमुख प्राकृतिक प्रकोप बताइये।

   ....

   ....

2. भारत में चक्रवातीय तूफानों का प्रमुख क्षेत्र कौनसा है?

   ....

   ....

3. पर्यावरणीय अधिप्रभाव मूल्यांकन क्या है?

   ....

   ....

4. जनसख्या विस्फोट की स्थिति क्या है?

   ....

   ....

5. भारत में वर्तमान में खाद्य सुरक्षा की क्या स्थिति है ?

   ....

   ....

17.7 मरुस्थलीकरण (Desertification)

वर्तमान समय में विश्व का लगभग 20% भाग मरुस्थलों, अर्द्ध मरुस्थलो के रूप मैं विस्तृत है। मरुस्थलीय प्रदेशों के 1977 में तैयार किये गये मानचित्रों के अनुसार यूरोप के 2%, अमेरिका के

19%, एशिया के 31%, अफ्रीका के 34% तथा आस्ट्रेलिया के 75% भाग पर मरुस्थलों का विस्तार है। विश्व में प्रतिवर्ष आधे ग्रेट ब्रिटेन के बराबर भूमि रेगिस्तान में पीरवर्तित हो रही है जिससे लगभग 85 करोड़ लोगों के समक्ष खाद्य संकट उत्पन्न हो जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) के एक विशेष प्रतिवेदन के अनुसार अविवेकपूर्ण मानवीय क्रियाओं से 1 करोड़ 30 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मरुस्थली भूमि हो गयी है। इन विशेषज्ञों के अनुसार प्रत्येक वर्ष सहारा का रेगिस्तान अपनी सीमाएँ बढ़ा रहा है तथा आगामी कुछ वर्षों में सहारा का आकार 20% बढ़ जायेगा। इसी प्रकार थार का मरुस्थल भी प्रतिवर्ष 13000 एकड़ भूमि को निगल रहा है।

विश्व में मरुस्थल बिखरे हुए न होकर दो असतत पट्टियों (Discontinuous Belt) में विस्तृत है। एक पट्टी पर उत्तरी गोलार्द्ध में है तथा दूसरी दक्षिणी गोलार्द्ध में। मुख्य रूप से पृथ्वी पर मरुस्थलीय विस्तार कर्क रेखा (Tropic of Cancer) तथा मकर रेखा (Tropic of Capricorn) के सहारे स्थिति है। इनका सर्वाधिक विस्तार 20 डिग्री से 30 डिग्री उत्तरी अक्षांशों के मध्य पाया जाता है ।

भारत के 12.13 प्रतिशत भाग पर शुष्क तथा 29.13 प्रतिशत भाग पर अर्द्धशुष्क दशायें पायी जाती हैं। इनका सर्वाधिक विस्तार राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हीरयाणा में है। आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक राज्यों मे शुष्क एवं अर्द्धशुष्क दशाओं का विस्तार है ।

तालिका– 17.4 : भारत में मरुस्थल का विस्तार

राज्य	**कुल भौगोलिक क्षेत्र का प्रतिशत भाग**	
	शुष्क क्षेत्र	**अर्द्धशुष्क क्षेत्र**
राजस्थान	57.42	36.5
गुजरात	33.72	47.50
पंजाब	28.60	75.40
हरियाणा	29.32	59.77
महारज्ञष्ट्र	0.42	61.17
आन्ध्र प्रदेश	7.18	44.66
कर्नाटक	4.27	72.60
जम्मू कश्मीर	31.13	6.22
उत्तर प्रदेश	–	21.73
मध्य प्रदेश	–	13.38
तमिलनाडु	–	65.54
भारत	**12.13**	**29.13**

भारत के 12.3 प्रतिशत अर्थात् 3,20,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर मरुस्थल का विस्तार है। मरुस्थलीकरण पर्यावरण संकट का एक पक्ष है। मरुस्थलीय प्रदेश अत्यधिक कम वर्षा वाले क्षेत्र होते हैं, जहाँ दैनिक तापान्तर उच्च पाया जाता है। कोपेन के अनुसार 18.25 सेमी. औसत वर्षा वाले वे शुष्क प्रदेश मरुस्थल कहलाते हैं। यहाँ का वार्षिक तापमान 16 डिग्री सेल्सियस से अधिक रहता है। थार्नथ्वेट ने वर्षा –वाष्पन अनुपात के आधार पर 40 से कम वाष्पन अनुपात वाले क्षेत्रों को शुष्क माना है। मरुस्थल दो प्रकार के होते हैं

(अ) ठण्डे मरुस्थल जो आर्कटिक रण टुण्ड्रा में है।

(ब) उष्ण कटिबन्धीय मरुस्थल मानव के लिए उष्ण कटिबन्धीय मरुस्थल अधिक कठिन समस्या है। सामान्यतया यहाँ पर 15 इंच से कम वर्षा होती है। यह वर्षा अनिश्चित होती है। कहीं –कहीं इन क्षेत्रों में 10 इंच से भी कम वर्षा पायी जाती है।

मरुस्थलीकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Desertification)

(1) **कम वर्षा (Low rainfall) :** 15 इंच से कम वर्षा तथा वर्षा की मात्रा एवं वर्षा का होना अनिश्चित है।

(2) **तापमान (Temperature) :** 20 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान रहता है तथा दिन एवं रात के तापमान में अत्यधिक अन्तर पाया जाता है। कभी–कभी यह तापमान 45 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाता है।

(3) **आर्द्रता (Humidity).** आर्द्रता बहुत कम होती है। कभी–कभी 10 प्रतिशत से भी कम पाई जाती है।

(4) **मिट्टी (Soil) :** मिट्टी अनुपजाऊ, ढीली एवं संगठित नहीं होती है। भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग में मरुस्थलीय जलवायु पायी जाती है। राजस्थान में अरावली पर्वत के पश्चिम में मरुस्थल स्थित है जिसका क्षेत्रफल लगभग 2.08 लाख वर्ग किमी है तथा इसके अन्तर्गत राजस्थान के 11 जिले शामिल हैं, जो सम्पूर्ण राज्य का 3/5 भाग है। यहाँ पर बबूल व अन्य छोटी, कंटीली झाड़ियाँ पाई जाती हैं। वर्षा 5 – 15 इंच तक होती है, जो पूर्वी जिला सीकर, झुँझुनूँ की अपेक्षा पश्चिम की ओर कम होती जाती है। आर्द्रता वर्ष भर कम रहती है। यहाँ पर अक्सर सूखे पड़ते हैं। राजस्थान के मरुस्थल में औसत आबादी का घनत्व लगभग 65 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है जो अन्य रेगिस्तान की तुलना में अधिक है। गर्मियों के दिनों में धूल भरी आँधियाँ चलती हैं, जिनसे रेत के टीलों का निर्माण होता है।

मरुस्थलीकरण की समस्याएँ (Problems of Desertification)

रेगिस्तान मनुष्य के लिए समस्या बन रहा है। अनेक लोगों ने यह अनुभव किया है कि मरुस्थल का प्रभाव बढ़ रहा है। इस समस्या के सम्बन्ध में 1977 के संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में नैरोबी (कीनिया) में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। ऐसा अनुमान है कि संसार के करीब 18 प्रतिशत जनसंख्या मरुस्थलीय समस्याओं से सम्बन्धित है। संयुक्त राष्ट्र वातावरण संगठन (UNEO) के अनुसार पृथ्वी पर करीब 50–70 हजार वर्ग किमी. उपजाऊ भूमि को अनुपजाऊ धरती बनाया जा रहा है। मरुस्थलीय विकास पूरे विश्व की समस्या है। यह केवल रेगिस्तानी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है। भौतिक एवं मानवीय दोनों की क्रियाओं द्वारा मरुस्थल का विकास हो रहा है। मनुष्यों के द्वारा वृक्षों आदि को काटने के द्वारा वातावरण शुष्क होता जा रहा है। आर्द्रता में कमी हो रही है। दूसरी ओर प्राकृतिक कारण जैसे सूखा पड़ना व तेज हवाओं के कारण मरुस्थल का विकास होता जा रहा है।

मरुस्थलीय विकास के कारण (Causes of Desert Development)

(1) भौतिक कारण (Physical Causes)

1. दिन और रात के अत्यधिक तापीय परिवर्तन के कारण भूपटल पर चट्टानें टूट जाती हैं तथा हवाओं द्वारा उत्पन्न रेत ले जाई जाती है।

2. अधिक वाष्पीकरण एवं कम वर्षा के कारण लवणता की मात्रा बढ़ जाती है।
3. वैज्ञानिकों ने 100 वर्षों के आधार पर यह माना है कि इस वर्षा की मात्रा बराबर कम होती जा रही है।
4. वनस्पति की कमी के कारण उपजाऊ मिट्टी की रचना नहीं होती है।
5. सूखा की अधिकता के कारण मानव एवं वनस्पति कम हो जाती है।
6. अत्यधिक गर्मी के कारण हवा में जल धारण की शक्ति बढ़ जाती है। इसलिए वर्षा नहीं होती है।
7. धूल के कणों के आकार व मात्रा में वृद्धि होने के कारण वर्षा नहीं हो पाती है।

(2) मानवीय कारक (Human Causes)

(1) वृक्षों का कटाव मनुष्य दिन –प्रतिदिन वृक्षों को बड़ी तीव्रता से काट रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भी वृक्षों का कटाव बढ़ रहा है।

(2) कृषि के गलत तरीके आदिकाल से अभी तक भी मनुष्य स्थानान्तरण कृषि कर रहा है। इसमें भूमि की उपजाऊ शक्ति खत्म हो जाने पर मनुष्य दूसरी जगह वृक्षों को साफ करता है, जिससे मरुस्थलीकरण को बढ़ावा मिला। आज तक भी मनुष्य कृषि करने व रहने के लिए वनों को काटता जा रहा है।

मरुस्थलीकरण के मुख्य सिद्धान्त

(1) **धूल कण का सिद्धान्त :** वायुमण्डल में अधिक धूल कण की उपस्थिति से वर्षा की मात्रा कम होती जाती है। वर्षा की कमी के कारण अधिक धूलभरी ऑधियाँ आती हैं, जो उपजाऊ कृषि प्रदेश तक भी पहुँच जाती है।

(2) **कार्बन डाई ऑक्साइड का सिद्धान्त :** जलवायु परिवर्तन का कार्बन डाई ऑक्साइट सिद्धान्त टी.सी. चेम्बरलीन ने दिया था। कार्बन डाई ऑक्साइड वातावरण को सीधे प्रभावित करती है। औद्योगिकरण के फलस्वरूप अधिक कार्बन डाई ऑक्साइड वातावरण में मिल जाता है, जिससे तापमान में वृद्धि हो जाती हैं।

(3) **आर्द्रता का सिद्धान्त :** अधिक वनस्पति से वर्षानुकूल दशायें बनती हैं। सम्पूर्ण वर्षा का 5 प्रतिशत भाग जंगलों से सीधे सम्बन्धित होता है।

मरूस्थलीकरण विस्तार के लिए निर्धारित मापदण्ड

रेगिस्तानों के विस्तार के सम्बन्ध में अनुमान लगाने के लिए अनेक भौतिक व मानवीय क्रिया – कलापों के मापदण्ड का निर्धारण किया जा सकता है

भौतिक कारक

(1) **मिट्टी (Soil) :** मिट्टी की गहराई पर प्रभाव, मिट्टी के कार्बनिक तत्वों की उपस्थिति (कम होने पर रेगिस्तान), रेत के कणों की अधिकता तथा लवणता की अधिकता आदि।

(2) **जलवायु (Climate) :** वर्षा की मात्रा में कमी, सूखे की अधिकता, वर्षा के समय मे कमीं, धूलभरी आँधियों के समय एवं मात्रा में अधिकता, आर्द्रता की कमी, दैनिक तापमान में अधिकता, मौसम मे परिवर्तन।

(3) **जल संसाधन (Water Resources) :** भूमिगत जल स्तर में गिरावट, नदियों के प्रवाह में जल की कमी, झीलों एवं जलाशयों में जल की कमी।

जैविक मापदण्ड

(1) **वनस्पति (Vegetation) :** जंगल क्षेत्रों में कमी, वृक्षों की संख्या में कमी, भू –उपज में कमी, अनेक वृक्षों का विलोपन (लुप्त होना)।

(2) **पशु (Cattle) :** पालतू पशुओं में कमी, दूध आदि में कमी, कुछ खास किस्म के पशुओं में कमी, जैसे कालाहिरण व गोड़ावण पक्षी।

मानवीय मापदण्ड

कृषि में परिवर्तन : कृषि पद्धतियों में परिवर्तन, शुष्क खेती का विकास, सिंचित क्षेत्र में कमी, खनिज सम्पदा का दुरुपयोग, फसलों के उत्पादन में परिवर्तन, मानव बस्तियों के स्वरूप में परिवर्तन, कुछ छोटी बस्तियों का विकास, बड़ी बस्तियों में कमी, जनसंख्या में वृद्धि, लोगों का अन्य क्षेत्रों में पलायन, जानवरों के चरागाहों के लिए बाहरी क्षेत्रों में पलायन।

मरुस्थलीकरण की समस्या रोकने के लिए आवश्यक सुझाव

1. वृक्षों के कटाव को रोकना,
2. पर्वतों एवं खाली जगहों पर वृक्षारोपण करना,
3. ईंधन के लिए अन्य साधनों की सुलभता,
4. मरुस्थलीकरण जलवायु के अनुकूल वृक्षों को लगाना,
5. उपलब्ध जल संसाधनों का उचित प्रयोग,
6. स्थानीय लोगों का सूखा निवारण कार्यक्रमों में सहयोग लेना,
7. मरु विकास कार्यक्रम: को लागू करना, जैसे शुष्क खेती करना,
8. इन्दिरा गाँधी नहर मरुस्थल के पश्चिम हिस्से में बन जाने से 3० से 5० किमी. तक का क्षेत्र हरा –भरा हो जायेगा, जिसके कारण पश्चिम से आधियों का चलना कम हो जायेगा तथा वायुमण्डल में नमी भी पाई जायेगी।
9. बालूका स्तूप स्थायीकरण वृक्ष लगाकर किया जाये,
10. अव्यवस्थित पत्थरों की खदानों को रोकना,
11. मरु के बीच मे वृक्ष लगाना
12. क्षारीय मिट्टी में सुधार – क्षारीयता को कम किया जाये, रसायन व उर्वरक मिलाकर मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाई जाये,
13. कृषि व्यवस्था में परिवर्तन,
14. पशु चारण पर नियंत्रण,
15. जल ग्रहण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित गतिविधियों को प्रभावी ढंग से लागू करना,
16. इस समस्या के प्रति जन –चेतना फैलाना।

17.8 वैश्वीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था (Globallization and Indian Economy)

वैश्वीकरण का इतिहास आज से 200 - 300 वर्ष पुराना है जब पश्चिमी देशों ने एशिया एवं अफ्रीका में अपना प्रभाव जमाकर वहॉ के आर्थिक जीवन को प्रभावित किया था। लेकिन इसका आधुनिकीकरण नूतन है। इस दिशा में तीव्र प्रसार विगत तीन दशकों में हुआ है! भारत मैं सार्वभौमिकरण या वैश्वीकरण वर्ष 1980 के दशक में शुरू हुआ जब विदेशी निवेशकों को छूट दी गई लेकिन सर्वप्रथम वर्ष 1991 से प्रभावी हुआ। जब बजट में रुपयें की पीरवर्तनीयता पर सहमति ही गई। इससे पूर्व वर्ष 1991 में विश्व बैंक ने भारत को यह सुझाव दिया था कि आयात उदारीकरण को बड़े पैमाने पर लागू किया जाए। इस प्रकार विदेशी आर्थिक नीति में उदारीकरण प्रदान कर सार्वभौमिकरण की नींव डाली गई। उत्पादन एवं निवेश पर नियन्त्रणों को कम करके घरेलू उदारीकरण भी प्रोत्साहित किया। जिससे प्रशासनिक हस्तक्षेप एवं प्रतिबंधों में कमी आती है। स्पष्ट हुँ कि वर्ष 1990 एवं 1991 की आर्थिक् पीरीस्थेतियों ने भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक द्वारा थोपे गये संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम को अपनाने के लिए विवश कर दिया तथा सावभौमिकरण इस सरचनात्मक समायोजन का दी एक हिस्सा है।

देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करना ही सार्वभौमिकरण, भूमण्डलोकरण या वैश्वीकरण कहलाता है। इस प्रक्रिया में पूँजी एवं वस्तुऐं व सेवाओं, श्रमिक और संसाधन परस्पर एक देश से दूसरे देश में जाने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में विदेशी कंपनियों को भारत की विभिन्न आर्थिक गति विधियों में निवेश करने की अनुमति देकर अर्थव्यवस्था को विदेशी कंपनियों के साथ सहयोग की अनुमति देना, मात्रात्मक प्रतिबंधों को खत्म करके उनके स्थान पर प्रशुल्कों को प्रतिस्थापित करना तथा बाद में प्रशुल्क भी कम करके आयात उदारीकरण को लागू करना प्रमुख हैं।

वैश्वीकरण के प्रभाव (Effect of Globalisation) :

विगत दो दशकों से धीरे –धीरे प्रभावी हुऐ वैश्वीकरण के प्रभाव विगत दशक मे ही महसूस किये गये है जिनके अतंर्गत विदेशी सेक्टर एवं भारतीय उद्यमों को लाभ हुआ है इस प्रक्रिया के प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित हैं :

(i) भारत के विदेशी विनिमय भण्डार में. वृद्धि हुई है जिसक अतंर्गत यह वर्ष 1992 में 1100 मिलियन डालर से बढ़कर वर्ष 1995 को ही 20000 मिलियन डालर हो गया था।

(ii) निर्यात आयात पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़े है।

(iii) आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया से हमारी आत्मनिर्भरता बढ़ी है।

(iv) चालू खाते मैं घाटा कम हुआ है।

(v) विदेशी ऋण भार में कमी आयी है।

(vi) धीरे–धीरे भारत की क्षमताओं पर विदेशी निवेशकों के विश्वास में वृद्धि हुई है जिससे देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की दर भी तीव्र हुई है ।

विदेशी कंपनियों द्वारा निवेश तो तीव्र हो गया लेकिन इसका प्रभाव भारतीय उद्यमों पर भी पड़ा जिसके कारण एक असमान प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हो गई। यह प्रतिस्पर्द्धा मजबूत बहुराष्ट्रीय निगमों एवं कमजोर भारतीय उद्यमों के मध्य बनी। इसके परिणामस्वरूप अनेक बड़ी कंपनियों ने तो

भारतीय छोटी डकाइयों को अपने में समा ही लिया जबकि कुछ अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष – कर रही हैं इस प्रकार भारत वैश्वीकरण का अर्थ बताते हुए पश्चिमी बंगाल के एक सांसद ने कहा कि यह तो भारत के लिए हाथियों के झुण्ड में एक चुहे के घुसने जैसी स्थिति होगी। इस प्रकार कुछ आलोचकों ने तो यहाँ तक कहा है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया एक बार फिर भारतीय कंपनियों पर व भारतीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी प्रभुत्व की दिशा में बढ़ रही हैं।

17.9 जलवायु परिवर्तन एवं विश्व तापन (Climate Change and Global Warming)

प्रकृति के साथ मनमानी छेड़छाड़ से सदियों से सन्तुलित जलवायु के कदम लड़खड़ा गये हैं। तीव्र औद्योगिकरण एवं वाहनों के कारण धरती दिन –प्रतिदिन गरमाती जा रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है। सन् 1938 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रमे तथा विश्व मौसम विज्ञानी संगठन ने वैज्ञानिकों ने एक अन्तर्राष्ट्रीय दल –इंटर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेंट चेंज का गठन किया है. जिसके शोध में पाया गया है कि पिछली सदी के दौरान औसत तापमान 0.3 से 0.6 डिग्री सैल्सियस की वृद्धि होने मात्र से ही जलवायु डगमगा गई है और खतरनाक नतीजे सामने आने लगे हैं। इस दौरान महासागरों का जल स्तर 10.25 सेंटीमीटर ऊँचा हो गया है, जिसमें 2.7 सेंटीमीटर की बढ़ोत्तरी बड़े हुए तापमान के कारण पानी मे फैलाव से हुई है।

जलवायु एक जटिल प्रणाली है, इसमें परिवर्तन आने से वायुमण्डल के साथ ही महासागर, बर्फ, भूमि, नदियाँ, झीलें तथा पर्वत और भूजल भी प्रभावित होते हैं। 'इन कारकों के परिवर्तन से पृथ्वी पर पायी जाने वाली वनस्पति और जीव–जन्तुओं पर भी प्रभाव परिलक्षित होता है। सागर के वर्षा वन कहलाये जाने वाले मूंगा की चट्टानों पर पायी जाने वाली रंग –बिरंगी वनस्पतियाँ प्रभावित हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन से सूखा पड़ेंगे जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव खाद्यान उत्पादन पर पड़ेगा। जल की उपलब्धता भी घटेगी, क्योंकि वर्तमान समय में कुल स्वच्छ पानी का 50 प्रतिशत मानवीय उपयोग में लाया जा रहा है। अतः कुवैत, जार्डन, इस्राइल, रवांडा तथा सामालिया जैसे जलाभाव वाले देशों में घातक जल संकट उत्पन्न होगा। अमेरिका सुरक्षा एजेंसी ने अनुमान लगाया है कि कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा दुगुनी होने से उत्पन्न गर्मी के कारण कैलिफोर्निया में पानी की वार्षिक आपूर्ति में सात से सोलह प्रतिशत की कमी आ सकती है। जलवायु परिवर्तन से कृषि के साथ ही वनों की प्राकृतिक संरचना भी बदल सकती है। सूक्ष्म वनस्पतियों से लेकर विशाल वृक्षों तक का तापमान और नमी का एक विशेष सीमा मे अनुकूलन रहता है। इसमे परिवर्तन होने से ये वनस्पतियाँ या तो अपना स्थान परिवर्तित कर लेंगी या सदा के लिए विलुप्त हो जायेंगी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि बढ़ती जनसंख्या एवं शहरीकरण के कारण इन्हें दूसरा रास्ता ही अपनाना होगा। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन से विश्व के एक –तिहाई वनों को खतरा है। उच्च तापमान से वनाग्नि की घटनायें भी बढ़ रही हैं। वनाग्नि से वायुमण्डल की कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ सकती है ।

पृथ्वी की जलवायु परिवर्तित होने से कई संक्रामक रोगों का प्रकोप भी तीव्र गति से बढ़ रहा है। ठण्डे देशों में लू जैसी हवायें चलने लगी हैं। सन् 1995 के जुलाई माह में शिकागो में एक सप्ताह तक गर्म हवाएँ (लू चलीं, जिससे 50 लोग मारे गये। जलवायु परिवर्तन एवं मलेरिया में अनुकूल

सम्बन्ध है, क्योंकि मलेरिया फैलाने वाले मच्छर और मलेरिया परजीवी दोनों को ही ठण्डी जलवायु रास नहीं आती है, बढ़ते तापमान में ये स्वतंत्र कार्य करते हुए अनेक संक्रामक रोग फैलाते हैं। रवांडा में सन् 1960 में एक डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ने से मलेरिया में दौगुनी वृद्धि हो गई। कुख्यात डेंगू बुखार भी तापमान वृद्धि से ही होता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि जलवायु पीरेवर्तन के कारण पुन : उत्पन्न होंने वाले संक्रामक रोगों का सर्वाधिक कहा विकासशील देशों को झेलना पड़ेगा। स्टेन फोर्ड विश्व विद्यालय के वैज्ञानिक स्टीफेन श्नाइडर ने अपनी चर्चित पुस्तक 'Laboratory Earth ' में बताया है कि जलवायु परिवर्तन का जो चक्र चल पड़ा है, उसे अब एकदम रोक पाना नामुमकिन है। परन्तु सावधानियों बरतकर इसकी गति अवश्य कम की जा सकती है। अत : प्रकृति की ओर वापसी का मूल मंत्र अपनाना होगा।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से अनिश्चितता की स्थिति में आने वाले मुख्य क्षेत्र

- नदियों एवं झीलों में जल की अनुक्रिया।
- उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की बारम्बारता।
- स्थायी हिम के पिघलने का प्रतिरूप हिमनदों.
- हिम टोपियों की अनुक्रिया।
- सागर तल में उत्थान की सीमा।
- सागर तल के उत्थान से पुलिन क्षेत्रों की अनुक्रिया।
- प्रवाल भित्तियों. डेल्टा तथा आर्द्र भूमि की स्थिति।

विश्व तापमान में वृद्धि (Global Warming) : औद्योगिकरण की बढ़ती प्रक्रिया के कारण वायुमण्डल में कार्बन –डाई आक्साइड की मात्रा बढ़ी है, जिसने हरित गृह प्रभाव को जन्म दिया है। पृथ्वी पर पायी जाने वाला कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा बढ़ने से धरती की सतह से परावर्तित किरणों द्वारा उत्सर्जित होने वाली तापीय ऊर्जा को वायुमण्डल से बाहर जाने से रोकती है। इस प्रकार तापीय ऊर्जा के वायुमण्डल में सान्द्रण से धरती के औसत तापमान में वृद्धि होती है. जिसे विश्व व्यापी तापन (Global Warming) कहते हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि विश्व तापमान में वृद्धि के कहर से पृथ्वी की जलवायु परिवर्तित होगी, जिसके तहत वर्षा में कमी आयेगी। वर्षा की कमी का प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि पर पड़ेगा तथा सूखे की स्थिति उत्पन्न होगी। तापमान वृद्धि एवं वर्षा की कमी के कारण वन क्षेत्र तेजी से घटेगा जिससे जैव विविधता का भी ह्रास होगा। तापमान वृद्धि के लिए कार्बन डाई आक्साइड के अतिरिक्त मीथेन, क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) यौगिक तथा नाइट्रस आक्साइड भी उत्तरदायी है। भूमण्डल के गरमाने से नजदीकी और दूरगामी दोनों प्रभाव मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए घातक होंगे। नजदीकी प्रभावों में तापीय वृद्धि के कारण मृत्यु, सूखा, तूफान, बाढ़ एवं पर्यावरण अवनयन प्रमुख हैं। दूरगामी प्रभावों में संक्रमण एवं सम्बन्धित रोग, खाद्य समस्या, अकाल तथा जैव विविधता को खतरा पैदा होगा। इनके अतिरिक्त ताप वृद्धि से ध्रुवीय एवं उच्चपर्वतीय बर्फ पिघलने से समुद्री किनारे पर स्थित कई शहर डूब सकते हैं।

मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार पिछली सदी में 0.3 से 0.6 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ा है। विश्व मौसम सस्थान (WMO) जेनेवा के नवीनतम आकड़ों के अनुसार सन् 1861 के उपरान्त वर्ष 2002 दूसरी बार सर्वाधिक गर्म रहा। 2002 में औसत वार्षिक तापमान 1961 - 1990 के तापमान से 0.48 अधिक रहा। विश्व जलवायु परिवर्तन के अन्तर्सरकारी पेनल

(Intergovernment Panel on Climate Change–IPCC) के वैज्ञानिकों ने जनसंख्या, आर्थिक व तकनीकी विकास को मद्देनजर रखते हुए हरित गृह प्रभाव की तीव्रता का आकलन करके बताया कि अगली सदी के मध्य में वातावरण में कार्बनडाई आक्साइड की मात्रा औद्योगिक युग से पूर्व की तुलना में दुगुनी हो जायेगी, जिसके फलस्वरूप 2025 तक 1 डिग्री सेल्सियस तथा 2100 में 2 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ जायेगा। वातावरण का तापमान 0.3 से 0.6 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि मात्र से ही महासागरों का जलस्तर 10.25 सेंटीमीटर ऊँचा हो गया। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने पूर्वानुमान लगाया है कि अगली सदी के दौरान महासागरों का जल स्तर 15 से 95 सेंटीमीटर तक ऊँचा हो सकता है। महासागरों का जलस्तर ऊपर उठने से हिन्द महासागर, भूमध्य सागर, अफ्रीकी अटलांटिक महासागर और कैरिबियन सागर के तट पर बसे अनेक नगर व महानगर सागर में समा सकते हैं। प्रतिष्ठित पत्रिका 'टाइम ' के अनुसार मालद्वीप 2025 तक सागर में समा जायेगा। मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के अनुसार सागर का जलस्तर एक मीटर ऊपर उठने से मिस्र, बांग्लादेश, चीन, नाइजीरिया के लगभग 9.40 करोड़ लोगों का जीवन सकट में पड़ जायेगा। अकेले मिस्र की भूमध्य सागर तटीय 15 प्रतिशत कृषि भूमि नष्ट हो जायेगी। इसी प्रकार बांग्लादेश का विश्व प्रसिद्ध 'सुन्दरवन ' भी सागर में विलीन हो जायेगा। जिससे परिस्थितिकी दलदली तन्त्र नष्ट हो जायेगा। प्रायद्वीप भारत को भी इससे खतरा उत्पन्न हो सकता है।

जलवायु प्राकृतिक तत्व के रूप में एक जटिल संरचना रखती है, जो वायुमण्डल के साथ ही महासागर, हिम, भूमि, नदियाँ, झीलें, पर्वत आदि से अन्तर्सम्बन्धित है। इनकी अन्त: क्रिया से उत्पन्न जलवायु परिवर्तन से वर्तमान वनस्पतियों तथा जीव –जन्तुओं पर आघात करती है। जलवायु संरचना में परिवर्तन अकाल के रूप में भी परिलक्षित होता है। अमेरिकी पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी के एक अध्ययन के अनुसार सन् 2060 तक दुनिया का चावल, गेहूँ तथा अन्य खाद्यान्नों का उत्पादन 1.2 से 7.6 प्रतिशत तक कम हो जायेगा। तापमान वृद्धि से विश्व जल संकट को भी गति मिलेगी।

विश्वव्यापी तापन से हिमालय के हिमनद हिम झीलों में परिवर्तित हो रहे हैं। ये झीलें प्रतिदिन चौडी होती जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिका 'न्यू साइंटिस्ट' के अनुसार सन् 2025 तक हिमालय के सभी हिमनद नष्ट हो जायेंगे जिसके दौरान विकराल बाढ़ की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है, जिसका प्रभाव घाटी के आसपास पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों पर पड़ेगा। नई खोजों से पता चला है कि पृथ्वी के गर्म होने के साथ –साथ उत्तर की ओर ग्रीनलैण्ड के हिमनद बड़ी भयावह गति से पिघल रहे हैं। अंटार्कटिका मैं 'रास सागर ' (Ross Sea) के विशाल हिमखंडों के अपने मूल स्थानों से अलग हो जाने के कारण भोजन के अभाव में हजारों पैंग्विन भूख और थकान से मर रहे हैं।

'द न्यूज़ीलैंड हेराल्ड टाइम्स ' ने खबर दी है कि विश्व में 'एडेली पैंग्विन' के सबसे बड़े निवास स्थान में से एक केप क्रोजियर को हिमखंडों ने घेर लिया है, जिसके कारण लगभग एक लाख 30 हजार एडेली पैंग्विन के जीवन को खतरा पैदा हो गया है। पत्र ने न्यूजोलैंड के अंटार्कटिका विज्ञान प्रमुख उनि पेटरसन के हवाले से कहा कि खाद्य पदार्थों के स्रोत से अपने निवास स्थलों तक का रास्ता ढूँढने में असफल होने के कारण पैंग्विन के नवजात बच्चे भूख से मर रहे है। यह स्थिति रास हिम आवरण से मार्च 2000 मैं 37 किलोमीटर चौड़े तथा 87 किलोमीटर लम्बे दो विशाल

हिमखंडों और अन्य 18.5 किलोमीटर चौड़े तथा 55 किलोमीटर लम्बे हिमखण्डों के यहाँ आने सै उत्पन्न हुई है। इन हिमखण्डों के कारण रास समुद्र क्षेत्र और सह में अवरोध उत्पन्न हो गया है । 1992 में रियो शहर में पृथ्वी सम्मेलन मैं 160 देशों ने विश्व की जलवायु परिवर्तन पर हस्ताक्षर तथा दिसम्बर 1997 में जापान में हुए क्योटो सम्मेलन में विश्व के कई देशों ने कार्बन डाई आक्साइड के स्तर को कम करने के लिए सहमत हुए इसमें 160 देशों के अतिरिक्त 300 गैर सरकारी संगठनों ने भाग लिया था। सन् 2002 में जोहान्सबर्ग में भी इन पूर्व के समझौतों को पुनरावृत्ति मात्र की गई। जबकि इस दिशा मैं कोई प्रभावी निर्णय नही लिया गया।

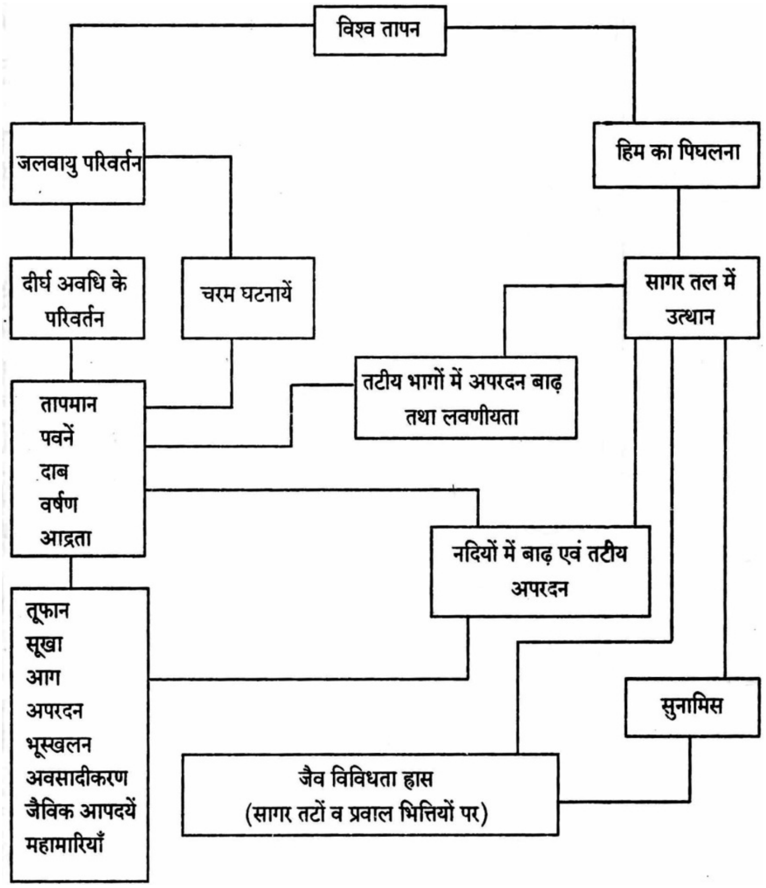

आरेख : विश्क तापन (Global Warming)के पर्शवरणीय प्रभाव की सम्भाविन अनुक्रियात्मक श्रंखला। विश्व तापन के क्रमिक प्रभाव प्रत्यक्ष (जलवायु परिवर्तन) तथा अप्रत्यक्ष (सागर तल में उत्थाण द्वारा) रूप में एक गभीर समस्या का रूप लेंगे ।

बोध प्रश्न –2

1. भारत में पर्यावरण अवनयन के प्रमुख रूप बताइये।

   ....

   ....

2. मरुस्थलीकरण क्या है? इसका सर्वाधिक प्रभाव कहा है?

   ....

   ....

3. वैश्वीकरण को समझाइये।

....

....

4. जलवायु परिवर्तन के भारत में सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र कौनसे हैं?

....

....

5. विश्व तापन का भारत पर प्रभाव बताइये।

....

....

17.10 सारांश (Summary)

भारतीय उपमहाद्वीप में आ रहे भौगोलिक बदलावों की सामान्य विवेचना इस अध्याय में सम्मिलित की गई है, जिनकी सामान्य जानकारी आज के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है। भारत की उत्तर पर्वतीय क्षेत्र बड़े बदलावों के दौर से गुजर रहा है जिसके अन्तर्गत भारतीय प्लेट यूरेशियाई प्लेट से टकरा रही है। हिमालय का उत्थान हो रहा हैं। हिमालय मैं भूस्खलन, भूकम्प, हिमस्खलन, बाढ़ आदि प्रकोपों की सम्भावना बनी रहती है, इसी तरह उत्तर के मैदान एवं दक्कन में बाढ एवं सूखे की तथा तटीय भागों में चक्रवातों की सम्भावना बनी रहती है। भारत में कृषि उत्पाद, खाद्यसुरक्षा एवं बढ़ती जनसंख्या, पर्यावरण अवनयन, सूखा एवं मरुस्थलीलकरण आदि ज्वलंत समस्यायें हैं। दुनिया विश्व तापन एवं जलशय परिवर्तन से प्रभावित है तथा इसका प्रभाव भारत तक है। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में इन्हीं समसामयिक मुद्दों–को सम्मिलित किया गया है।

17.11 शब्दावली (Glossary)

- **प्रकोप (Hazard) :** ऐसी प्राकृतिक घटना या चरम घटना, जिसके द्वारा पर्यावरण एवं जान–माल के नुकसान की सम्भावना रही हो या हो, प्रकोप कहतें हैं।
- **आपदा :** प्राकृतिक या मानव जनित घटना, जिसके द्वारा जान–माल की भारी हानि होती है। जैसे भूकम्प, चक्रवात, बाढ़, वनाग्नि ।
- **प्रदूषण :** पर्यावरण में अवांछित तत्वों के प्रवेश से उसका मानव स्वास्थ्य के अनुकूल न रहना।
- **पर्यावरणीय अधिप्रभाव मूल्यांकन :** कोई भी आर्थिक क्रिया–कलाप करने से पूर्व उसके पर्यावरण पर सम्भावित खतरों का मूल्यांकन।
- **जनसंख्या विस्फोट :** किसी प्रदेश के प्राकृतिक संसाधनों की तुलना में जनसंख्या का कर अत्यधिक हो जाना है।
- **मरुस्थलीकरण :** ऐसी प्रक्रिया, जिसकें द्वारा सामान्य भूमि मरुस्थली भूमि मे परिवर्तित होने लगती है।

- **पयावरण अवनयन :** पर्यावरण में मात्रात्मक एवं गुणात्मक ह्रास पर्यावरणीय अवनयन कहलाता है, जब पर्यावरणीय घटकों की पोषक क्षमता घट जाती है।

17.12 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Park, C.C।–1997), **The Environment : Principles and Application**, Routledge,London.
2. गुर्जर, आर. के. एवं जाट. बी. सी. (2007), **पर्यावरण भूगोल,** पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. गुर्जर, आर. के. एवं जाट. बी. सी. (2009), **भारत का भूगोल**, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
4. जाट, बी. सी. (2007), **आपदा प्रबन्धन**, मंथन पब्लिकेशन्स, जयपुर।
5. Jat , B.C. (2008),**Natural Hazard and Disaster Management**,MD Publication,New Delhi.
6. Down to Earth (2008), **Centre for Science and Environment**,New Delhi .
7. पुरी, वी. के. एवं मिश्र, एस. के (2003), **भारत की अर्थव्यवस्था**, नई दिल्ली।

17.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. भूकम्प ,बाढ़, सूखा, चक्रवात
2. बंगाल की खाड़ी के तटीय भाग
3. किसी उद्योग या आर्थिक इकाई के सम्भावित पर्यावरणीय प्रभावों का मूल्यांकन।
4. संसाधनों की उपलब्धता की तुलना में जनसंख्या का अत्यधिक दबाव।
5. वर्तमान मे निरन्तर बढ़ती जनसंख्या से खाद्य सुरक्षा की स्थिति चरमरा रही है।

बोध प्रश्न– 2

1. प्रदूषण, जन संकट, खनन एवं उद्योगों का प्रभाव वनोन्मूलन।
2. सामान्य उर्वर भूमि का मरुस्थली भूमि में रूपान्तरण। इसका सर्वाधिक प्रभाव पश्चिमी राजस्थान में है।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व की अर्थव्यवस्थाओं से संयोजित होना वैश्वीरकण कहलाता है।
4. हिमालयी हिमावरण का पिघलाव, तटीय क्षेत्र।
5. जल संकट, हिमावरण का पिघलाव, तटीय क्षेत्रों के लोगो की आर्थिक व्यवस्था पर प्रभाव।

17.14 अभ्यामार्थ प्रश्न

1. भारत में प्राकृतिक प्रकोप एवं आपदाओं के प्रभावों की भौगोलिक व्याख्या कीजिए।
2. भारत में पर्यावरणीय प्रदूषण कीं स्थिति की विस्तृत विवेचना कीजिए।
3. पर्यावरणीय अधिप्रभाव मूलयांकन क्या है? इसे भारतीय सन्दर्भ में समझाइये।
4. जनसंख्या विस्फोट एवं खाद्य सुरक्षा पर लेख लिखिए।

5. भारत में पर्यावरण अवनयन की विस्तृत विवेचना कीजिए।
6. भारत में जलवायु परिवर्तन एवं विश्व तापन के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

इकाई18: भारत का राजनीतिक परिदृश्य (Political Scenario of India)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 संघीय राज्य
18.2.1 संघीय राज्य की विशेषताएँ
18.2.2 संघीय राज्य के प्रकार
18.3 संघवाद
18.3.1 संघवाद की संकल्पना
18.3.2 भारत में संघवाद का उद्भव
18.3.3 भारतीय संघवाद के भौगोलिक आधार
18.4 प्रादेशिक चेतना एवं राष्ट्रीय एकता
18.4.1 भारत में क्षेत्रीयता
18.4.2 भारत में राष्ट्रीय एकता
18.5 भारत की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएँ
18.5.1 भारत–चीन सीमा
18.5.2 भारत–पाक सीमा
18.5.3 भारत –नेपाल सीमा
18.5.4 भारत -भूटान सीमा
18.5.5 भारत –म्यांमार सीमा
18.5.6 भारत– श्रीलंका सीमा
18.6 सीमा पार आंतकवाद
18.7 वैश्विक मामलों में भारत की भूमिका
18.8 सारांश
18.9 शब्दावली
18.10 संदर्भ ग्रन्थ
18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.12 अभ्यासार्थ प्रश्न के उत्तर

18.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप समझ सकेंगे -

- भारत का एक संघीय राज्य के रूप में विकास,
- भारत में प्रादेशिक चेतना एवं राष्ट्रीय एकता,

- भारत की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएँ एवं सीमा विवाद,
- सीमापार से संचालित आंतकवाद,
- विश्व मामलों में भारत की भूमिका।

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी राष्ट्र की अखण्डता, सम्प्रभुता एवं सामाजिक –आर्थिक विकास उस राष्ट्र के राजनैतिक ढाँचा तथा सीमावर्ती राष्ट्रों से सम्बन्धों पर बहुत अधिक निर्भर होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत की राजनयिक व्यवस्था की समीक्षा इस इकाई में की गई है। भारत एक संघीय गणतंत्र है जिसमें संघ और राज्यों के बीच सौहार्द्रपूर्ण सकारात्मक सम्बन्ध ही प्रगति का मार्ग प्रशस्ति कर सकता है। सम्प्रति देश में क्षेत्रीयता का तेजी से विकास हो रहा है। इसके मूल में देश में धर्म, बोली–भाषा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आदि में विविधता का होना है। इसका सीधा प्रभाव संघ सरकार और राज्यों के बीच तालमेल पर पड़ता है। कभी–कभी क्षेत्रीयता की इतनी आवाजें उठती हैं कि राष्ट्रीय स्वता एव अखण्डता पर प्रश्न उठने लगता है। इन समस्याओं के पीछे भौगोलिक कारक भी हैं। यह चिन्तनीय है कि स्वतंत्र सम्प्रभु भारत के उदय के साथ ही वह सीमा विवादों में उलझा हुआ है, जिनके कारण युद्ध भी हुए और भविष्य में भी युद्ध का भय मंडराता रहता है। ये कुछ ऐसे राजनैतिक पहलू हैं जिनका देश के वर्तमान परिदृश्य को समझने के लिए चिन्तन आवश्यक है।

18.2 संघीय राज्य (Federal State)

विषमांगी (Heterogenous) जनसंख्या वाले क्षेत्रों में प्रादेशिक नृवंशीय असमानताएं संकेन्द्रित हो तथा आर्थिक उद्देश्यों में तीव्र प्रादेशिक विभाजन हो, ऐश्वी विशेषताओं वाले राज्य में संघ के माध्यम से सरकारी कार्य संचालित होते हैं। संधीय प्राणाली में केन्द्रीय सरकार राज्य की विभिन्न इकाईयों का प्रतिनिधित्व करती है तथा, ये इकाईयाँ कुछ निश्चित क्षेत्र में अपने पृथक–पृथक नियम, नीतियाँ और परम्पराएं रखती हैं। जब किसी क्षेत्र में अलग –अलग प्रकृति और एक सीमा तक स्वायत क्षेत्रीय इकाईयाँ पारस्परिक हित, बाह्य आक्रमण से सुरक्षा आदि कारणों से कुछ अर्थों में अपनी स्वायतता कायम रखते हुये भी आपस में मिलकर एक संघीय प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण करती हैं। अर्थात् विभिन्न इकाईयाँ अपनी परम्परा, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अलग–अलग अस्तित्व रखती हैं। कुछ अर्थों में उन्हें यह आभास होता है कि अलग–अलग रहकर उनका राजनीतिक अस्तित्व स्थायी नहीं रह सकता है, तो वे आपस में मिलकर स्व राज्य का निर्माण करती हैं, यही **संघीय राज्य** कहलाता है।

18.2.1 संघीय राज्य की विशेषताऐं

(i) संघीय राज्य क्रमिक रूप से विकसित होते हैं और समयानुसार परिवर्तित होते रहते हैं।

(ii) संघीय राज्य में विधायी रण कार्यात्मक शक्तियाँ संघीय (केन्द्र सरकार) एवं प्रान्तीय सरकार में विभाजित होती हैं।

(iii) संघीय प्राणाली के राज्यो में विभिन्न समुदाय, भाषा, जाति, धर्म, संस्कृति आदि कि दृष्टि से भित्रकाऐं होती हैं, परन्तु राजनीतिक दृष्टि एक इकाई के रूप में होते हैं।

(iv) संघीय राज्य कार्यात्मक दृष्टि से सुदृढ़ होते हैं क्योंकि सभी क्षेत्रीय राजनीतिक इकाईयाँ एक सरकार एवं एक ही प्रशासन व्यवस्था से शासित होती हैं।

(v) संघीय राज्य विस्तृत आकार एवं प्रादेशिक विषमता युक्त होते हैं।

(vi) संघीय राज्यों में व्यक्ति एक ओर अपनी प्रदेश सरकार तथा दूसरी ओर केन्द्र सरकार के प्रति उत्तरदायी होता है।

18.2.2 संघीय राज्यों के प्रकार

संघीय राज्य चार प्रकार के होते हैं –

(i) **पारस्परिक समझौतों पर आधारित संघीय राज्य (Federal States on Compromise) :** कभी –कभी कुछ समुदाय अपने व्यक्तिगत लाभों का त्याग कर पारस्परिक समझौतों द्वारा एक संघात्मक राज्य का निर्माण करते हैं। भारत इसका सर्वोत्तम उदाहरण है जहाँ सर 1947 में भारत –पाकिस्तान विभाजन के समय 12 राज्य व 562 रियासतें थी। इन रियासतों को प्रान्तों में मिलाकर प्रान्तों की सीमाओं में परिवर्तन करके वर्तमान भारतीय संघ बनाया गया।

(ii) **पारस्परिक हित पर आधारित संघीय राज्य (Federal States based on Mutual States) :** इस प्रकार के राज्यों में जनसंख्या में भाषा, राजनीतिक विचार दर्शन आदि की दृष्टि से काफी भिन्नता होते हुए भी बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा हेतु भित्र –भित्र समुदाय परस्पर मिलकर सामना करते हैँ। कनाडा में फ्रेंच भाषी एवं अंग्रेजी भाषी समुदायों ने मिलकर सन् 1867 में एक संघीय राज्य का निर्माण किया। ब्राजील, आस्ट्रेलिया व स्वीटजरलैण्ड इसी प्रकार के संघीय राज्य हैं।

(iii) **केन्द्रीयकृत संघीय राज्य (Centralised Federal States) :** इस श्रेणी में अत्यधिक केन्द्रीकृत एकात्मक राज्य आते है। र्द्व सोवियत संघ इसका अच्छा उदाहरण था, जहाँ वर्ष 1917 में जार शासन का अन्त होने के बाद साम्यवाद का विस्तार हुआ और अनेक राष्ट्रीयताओं के मिलन से एक संघीय राज्य की स्थापना हुई।

(iv) **आरोपित संघीय राज्य (Imposed Federal System) :** इसमें वे राज्य आते हैं जहां संघीय राज्यों की स्थापना वहाँ के बहुसंख्यक समुदाय की इच्छा के विपरित की गयी है। केन्द्रीय अफ्रीकी संघ व माली इसके उदाहरण हैं।

18.3 संघवाद की संकल्पना (Concept of Federalism)

संघवाद एक संवैधानिक समझौता है जिसके द्वारा किसी क्षेत्र में भौतिक, सामाजिक, धार्मिक, प्रजातीय, भाषीय भिन्नता रखने वाली इकाईयाँ कुछ सामान उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आपस में मिलकर समन्वय करती हैं। इसमें समान उद्देश्यों को पूरा करने वाले कार्य संघीय व्यवस्था से तथा स्वायतता का आभास देने वाले कार्य सदस्य इकाईयों द्वारा स्वयं संचालित होते हैं। इसलिए संघ का स्वरूप संघीय और प्रादेशिक इकाईयों के कार्य व अधिकार बदलते रहते हैं। इसलिए संघवाद एक गत्यात्मक तथ्य माना गया है। संघवाद के जन्म के बाद विभिन्न इकाईयों में केन्द्रीकरण की भावना विकसित होती हैं, तो संघ का स्वरूप केन्द्रीयकृत (Centralised) हो जाता है। जब संघ में शामिल इकाईयों में स्वायतता की भावना या अपकेन्द्रीय शक्तियों की अधिकता होती है, तो संघ का स्वरूप पीरसंघीय (Confederated) होता जाता है। इस प्रकार संघवाद का स्वरूप विभिन्न इकाईयों की भौतिक एवं सामाजिक – धार्मिक विशेषताओं तथा उनके समान उद्देश्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है।

18.3.1 संघवाद की संकल्पना (Concept of Federalism.)

राजनीतिक भूगोल के अन्य पक्षों की अपेक्षा संघवाद का अध्ययन काफी समय बाद प्रारम्भ हुआ। इसके आधुनिक स्वरूप की व्याख्या बहुत कम भूगोलवेताओं ने की है। संघीय प्रणाली के भौगोलिक आधारों की व्याख्या पर अपेक्षाकृत कम साहित्य उपलब्ध है। संघवाद के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के विचार निम्न प्रकार से हैं –

डीसी (Dicey, 1885) ने लिखा है– "संघवाद राजनीतिक इकाईयों के लोगों के मनोविज्ञान पर आधारित है जो बिना एकता के संघ की इच्छा रखते हैं। संघवाद से शक्ति के कुछ ही हाथों में केन्द्रीयकरण से बचा जा सकता है। इससे राजनीतिक व व्यक्तिगत स्वतंत्रता निश्चित होती ।"

राबिन्सन (1961) के अनुसार – "सभी राजनीतिक पद्धतियों में संघ भौगोलिक रूप में सर्वाधिक अभिव्यक्ति के योग्य है। यह प्रादेशिक विभिन्नता के अस्तित्व पर आधारित होता है और इसमें सम्मिलित क्षेत्रीय इकाईयों को अपनी प्रकृति की पूर्ववत बनाये रखने को मान्यता देता है। "

टार्लटन (1963) ने नये राष्ट्र–राज्य (Nation – State) के निर्माण, महानगरीय क्षेत्रा में सरकारी प्रबन्धन, विश्वयुद्धों से बचने के लिए संगठनों के निर्माण आदि समस्याओं के समाधान के लिए संघबाद को अत्यन्त उपयोगी बताया है।

डीब्लिज (1967) ने संघीय व्यवस्था को राजनीतिक समाधान के रूप में प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया कि संघवाद में केन्द्र सरकार राज्य की सम्पूर्ण इकाईयों के प्रतिनिधित्व की प्रतिफल होती है तथा प्रान्तीय सरकारें अपने प्रभुत्व के क्षेत्र में अपनी नीति व व्यवस्था के अनुसार शासन करते है।

दीक्षित (1971) के अनुसार – "संघ विभिन्न संस्थाओं का एक समूह है जो एक विशिष्ट सरकार की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति में व्यवस्था हेतु स्थापित होता है। ये तत्व स्थैतिक नहीं बल्कि गतिशील होते हैं जो उद्भव एवं परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरते हैं। "

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संघबाद का जन्म उस स्थिति में संभव होता हैं जब किसी भी क्षेत्र में भौतिक, सामाजिक, धार्मिक, प्रजातीय, भाषायी विभिन्नता रखने वाली इकाईयाँ कुछ समान उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आपस में मिलकर समन्वय स्थापित करती है। विश्व के राजनीतिक इतिहास का अध्ययन किया जाये तो संघवाद की जड़े यद्धपि प्राचीन काल में भी देखी जा सकती हैं। ईस्वी पूर्व ग्रीक व प्राचीन भारत के गणराज्यों को भी संघवाद का ही एक रूप माना जा सकता है लेकिन वर्तमान संघवाद अमेरिकन पद्धति पर विकसित संघवाद माना जा सकता है।

18.3.2 भारत में संघवाद का उद्भव

वैदिक काल से ही सम्पूर्ण भारत अनेक बार स्व राज्य प्रशासन के अर्न्तगत. समन्वित हुआ है और संघीय शासन की स्थापना के तुरन्त पहले तक ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित कार्यात्मक एकता का प्रभाव पड़ा है। स्वंतत्रता के पश्चात भारतवासी एंव संविधान निर्माता इसके लिए किसी प्रकार की राज्य प्रणाली के चयन हेतु स्वतंत्र थे, लेकिन सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में आबद्ध करने के लिए संघीय शासन व्यवस्था की उपादेय सिद्ध हुई।

भारत विविधताओं का देश रहा है। यहाँ अनेक प्रजातियों, संस्कृतियों, जीवन पद्धति, परम्पराओं, धर्म एवं भाषाओं का संग्रहालय जैसा है। यहाँ धनी व निर्धन तथा शिक्षित व अशिक्षित जनंसख्या में बड़ा अन्तर है। इसी कारण भारत ने केन्द्रीयकृत संघवाद (Centralized Federlism) का चयन

किया गया है। भारत जैसे विशाल देश में सामुदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद, उग्रवाद जैसे अनेक समस्याओं का पाया जाना स्वाभाविक है। इन्ही सब बातों को ध्यान में रखकर यहाँ संघीय व्यवस्था के केन्द्रीकृत स्वरूप का वरण किया गया है।

भारत की संघीय व्यवस्था इसके भौगोलिक वातावरण व स्वरूप के बिलकुल अनुरूप है। इसमें प्राकृतिक तत्वों की विविधता के परिणामस्वरूप उत्पन्न सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक विविधता और इसमें भारतीयता की भावना से संचालित एकता हेतु यह व्यवस्था सबसे उपयुक्त व प्रभावी है।

18.3.3 भारतीय संघवाद का भौगोलिक आधार

(i) **विशाल आकार :** भारत विश्व का 7 वाँ सबसे बड़ा देश हैं भारत का क्षेत्रफल विश्व का 2,4% है तथा यहाँ विश्व की 16% जनसंख्या निवास करती है। विशाल एवं विस्तृत आकार ने देश के भौतिक एवं सांस्कृतिक वैभव को जन्म दिया है जो संघीय व्यवस्था को आधार प्रदान करते हैं।

(ii) **स्थलाकृतिक विविधता :** भारत के उत्तर में बर्फीली चोटियाँ, मध्य में विस्तृत व उपजाऊ सतलज–गंगा का मैदान एवं दक्षिण में प्राचीन दृढ़ भूखण्ड के रूप में दक्कन का पठार फैला हुआ है। तीनों स्थलाकृतिक प्रदेशों में मिट्टियों एवं वनस्पति की विभिन्नता ने लोगों की जीवन शैली में विविधता उत्पन्न की है जो संघीय व्यवस्था की स्थापना में सहायक है।

(iii) **जलवायु को विभिन्नता :** सामान्यत: भारत में उष्ण मानसूनी जलवायु पायी जाती है, परन्तु यहाँ तापमान एवं वर्षा में पर्याप्त भित्रताऐं देखी जा सकती है। विशाल आकार, अंक्षाशीय विस्तार, विविध स्थलाकृतियों एवं प्रायद्वीपीय स्थिति ने इसे उपमहाद्वीपीय जलवायु का रूप प्रदान किया है।

(iv) **अपवाह तंत्र में अन्तर :** भारत की नदियों के अपवाह में अत्यधिक अन्तर देखा जा सकता सै। एक और हिमालय की सदावाही नदियाँ है, वहीं दूसरी ओर प्रायद्वीपीय मौसमी नदियाँ। ऐसी स्थिति में संघीय सरकार ही बाढ़ व सूखे की समस्याओं का बेहतर ढंग से प्रबन्धन कर सकती हैं।

(v) **जातीय एवं नस्लीय विविधता :** जातीय एवं नस्लीय विविधता संघवाद का महत्वपूर्ण आधार है। ऐसा माना जाता है कि अत्यधिक अल्पमत जातीय समूह की उपस्थिति देश की आन्तरिक सुरक्षा एवं मजबूत एकता के लिये गंभीर खतरा है। ऐसी समस्या को नियंत्रित करने के लिए संघीय संरचना बेहतर है।

(vi) **भाषायी विविधता :** भारत एक बहुभाषीय देश है जहाँ 190 से भी अधिक भाषाऐं बोली जाती है। इन भाषाओं को बढ़ावा देते हुये हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में मान्यता देकर राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में संघीय ढांचा अधिक उपयुक्त है।

(vii) धार्मिक विविधता : भारत एक धर्म निरपेक्ष लोकतांत्रिक देश है। यहाँ हिन्दू मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, फारसी आदि विभिन्न धर्मो के व्यक्ति निवास करते हैं। जहाँ एक ओर कश्मीर, असम, केरल एवं पं. बंगाल के कई जिलों में मुस्लिम समुदाय का बाहुल्य है, वहीं पंजाब में सिखों का और पूर्वोतर राज्यों में ईसाइयों का बाहुल्य है। विभित्र धर्मो के

अनुयायियों के धार्मिक व सांस्कृतिक स्वों के संरक्षण के लिए संघीय व्यवस्था उपयुक्त है।

(viii) **क्षेत्रीय आर्थिक असमानताऐं :** भौगोलिक विभिन्नताओं के कारण देश में मिट्टियों, खनिज, कृषि, उद्योग उगदि में भी अनेक असमानताऐं मिलती है। फलस्वरूप देश में आर्थिक विकास में भी असमानता आना स्वभाविक है। परन्तु संघीय सरकार पिछड़े क्षेत्रों में विशेष योजना द्वारा विकास का आधार प्रदान कर इन असमानताओं को कम करने में सक्षम हैं।

(ix) **ऐतिहासिक कारण :** भारत में भू–आकृतिक विषमताओं के कारण विभिन्न क्षेत्रों में छोटे–बडे आकार वाले विभिन्न राज्यों का अस्तित्व रहा है। प्राचीन काल से स्वतंत्रता के पूर्व तक अनेक राज्य व रियासतें अचित्व में रही। इसलिए राजनीतिक इकाईयों की इसी विभिन्नता के कारण ही संविधान निर्माताओं ने ऐसी प्रणाली को अपनाया जिसमें क्षेत्रीयता की भावना रखने वाली इकाईयां भी संतुष्ट रहे और वे आपस में मिलकर एक कार्यात्मक राज्य की स्थापना भी कर सके।

बोध–प्रश्न– 1

1. संघीय राज्य से क्या अभिप्राय है?

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

2. भारत किस प्रकार का संघीय राज्य है?

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

3. संघवाद का स्वरूप किस पर निर्भर करता है?

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

4. क्षेत्रीय आर्थिक सअसमानताओं में संघीय व्यवस्था कैसे उपयुक्त है?

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

5. भारतीय संघवाद में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि किस प्रकार सहायक रही है?

……………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………

18.4 क्षेत्रीय चेतना एवं राष्ट्रीय एकता (Regional Conciousness and National Integration)

क्षेत्रीयता के माध्यम से स्वदेशी संस्कृति को संरक्षित किया जा सकता है। राज्य द्वारा औपचारिक रूप से क्षेत्रीयता का कदम उठाया जाता है क्योंकि ऐसा करने से प्रशासनिक अथवा

योजना क्षेत्रों का निर्माण होता है। कई बार अनौपचारिक रूप से किसी अल्पसंख्यक समूह को स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए भी ऐसा किया जाता है। राजनीतिक भूगोल में, क्षेत्रीयता एक राजनीतिक विचारधारा है, जो किसी विशेष क्षेत्र या समूह के हितों को केन्द्रित करती है। क्षेत्रीयता के द्वारा किसी क्षेत्र के प्रभाव व राजनीतिक वर्चस्व को बढ़ाने में मदद मिलती है, चाहे वो आन्दोलनों के माध्यम से हो या फिर अधिक प्रभावशाली उपायों के द्वारा स्वायत्तता के लिये हो।

18.4.1 भारत में क्षेत्रीयता

भारत एक बहुआयामी देश है। स्वतंत्रता के समय देश की जनसंख्या 340 मिलियन थी जो 2001 में बढ़कर 1027 मिलियन हो गयी। स्वतंत्रता के बाद देश की विभिन्न रियासतों को संगठित कर एक सूत्र में बांधा गया था लेकिन 1960 में महाराष्ट्र एवं गुजरात तशा 1966 में पंजाब और हरियाणा का निर्माण भाषा के आधार पर क्षेत्रीय आकांक्षाओं को समायोजित करने के लिए हुआ था।

क्षेत्रीयवाद के पक्ष–विपक्ष के लिए अलग – 2 तर्क दिये जाते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि यदि लोगों के दिल में क्षेत्रबाद की भावना है, तो वह गलत नहीं है क्योंकि इससे –

(i) उनकी लोकतांत्रिक आवश्यकता की पूर्ति होती है।
(ii) इससे राजनीतिक प्रबन्धन की सुबिधा मिलती है।
(iii) इससे क्षेत्र का समग्र विकास संभव होता है।
(iv) इससे निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी की सुविधा मिलती है।
(v) इससे स्थानीय जवाब देही के अवसर मिलते है।
(vi) इससे राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास होता है।

क्षेत्रीयवाद के पक्षकार विद्वान रूप व पाकिस्तान का उदाहरण देते हुये कहते है कि वहाँ क्षेत्रीयवाद की मांगो को दबाने से असंतोष पनप रहा है। पाकिस्तान का विखण्डन होने के पीछे बांग्ला पहचान का दमन करना रहा है।

दूसरे मत के विद्वान इसका विरोध करते हुए मानते हैं कि इससे देश का विखण्डन हो सकता है, क्योंकि इस भावना का परिणाम है कि महाराष्ट्र में केवल मराठी भाषी ही रहेंगे। जैसाकि आये दिन नारे रण वक्तव्य सुनने को मिलते हैं। क्षेत्रीयवाद का ही दुष्परिणाम है कि राज्य पानी पर लड़ रहे हैं जैसे कावेरी नदी के जल पर कर्नाटक व तमिलनाडु के मध्य विवाद चल रहा है। कई राज्यों में कुछ क्षेत्र आर्थिक रूप से पिछड़े हैं अत: वहाँ क्षेत्रीयवाद का परिणाम है कि अलग राज्य की मांग की जा रही है। उदाहरण के लिए आन्धप्रदेश में तेलंगाना, असम में बोडोलैण्ड, प. बंगाल में गोरखालैण्ड आदि।

उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित करना कठिन है। सन् 1947 में 300 जिले थे, जो आज बढ़कर 600 से भी ज्यादा है। कई जिले क्षेत्र व जनसंख्या में संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों से भी बडे है। अत : छोटे राज्यों के निर्माण का तात्पर्य यह नहीं है कि इससे क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिलेगा या फिर देश का विखण्डन होगा। छोटे राज्यों का प्रशासनिक प्रबन्धन अधिक बेहतर ढंग से हो सकेगा, जवाबदेही बढ़ेगी एवं लोकतांत्रिक भागीदारी भी बढ़ेगी। अत: राष्ट्रीय एकता नये राजनीतिक एवं प्रशासनिक इकाईयों

बनाने से ही नहीं बनेगी अपितु क्षेत्रवाद को सही तरीके से प्रबन्धन नहीं करे तो देश का विखण्डन हो जायेगा। इसलिए जातीय भावनाएँ और भाषाई एकरूपता छोटे राज्यों के निर्माण के लिए वाछंनीय नही हैं। देश में संसाधनों की कमी है, अत : नये राज्यों की मांग आर्थिक व्यवहार्यता एवं प्रशासनिक सुविधा के आधार पर ही स्वीकार्य होनी चाहिए।

18.4.2 भारत में राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकता का अर्थ है समन्वय, विलय नहीं अपितु सह– अस्तित्व नहीं अपितु सहचर्य का भाव, अनेक क्षेत्रों में रहने वाले लोगों में क्षेत्रीय सम्प्रभुता नहीं अपितु अनुशासित एकजुटता से है। राष्ट्रीय एकता को विविधता की एकता के रूप में देखना चाहिए। राष्ट्रीय एकता एवं विविधता को मानना चाहिए, क्योंकि यदि एकता है तो अखण्डता की आवश्यकता नहीं और यदि केवल विविधता है तो एकीकरण संभव नहीं। जाहिर है कि एकीकरण विविधताओं के एकरूपता में रूपान्तरण की प्रलेयान होकर एक उच्च स्तर की साशल्य एकता का स्तर है जिसमें दोनों विभित्रताएँ व समानताओं का ध्यान रखा जाता है।

साम्प्रदायिक तनाव अक्सर उन लोगों की अभिव्यक्ति है जिन्हें लगता है कि उनका धर्म के आधार पर भेदभाव हो रहा है। भारत सरकार ने साम्प्रदायिक दंगों, भेदभाव की समस्याओं, गरीबी, अभाव और क्षेत्रवाद की समस्या से निपटने के लिऐ कई कदम उठाये है। जून 1962 से भारत सरकार ने राष्ट्रीय एकता पीरपद का गठन किया जिसका मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीयवाद रख साम्प्रदायिकता की समस्या से निपटना था। परन्तु इस पर कार्य न हो सका क्योंकि चीन के आक्रमण से देश में राष्ट्रीयता की भावना उमड़ने से एकता में वृद्धि हुई। इसके बाद समय–समय पर केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय एकता परिषद् का गठन किया परन्तु उसके कोई ठोस परिणाम नहीं मिले और आज तक साम्प्रदायिक सद्भाव पैदा करने की राष्ट्रीय एकता परिषद की कोशिशें नाकाम रहीं।

18.5 भारत की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएँ (International Boundaries of India)

भारत उत्तरी गोलार्द्ध में 2°4 ' से 37°6 ' उत्तरी अंक्षाशों तथा 68°7 ' से 97°25 ' पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। इसका उत्तर से दक्षिण विस्तार 3214 किमी एवं पूर्व से पश्चिम 2933 किमी है। इसकी थल सीमा 15200 किमी लम्बी एवं सम्पूर्ण जल सीमा 7517 किमी है। उत्तर पश्चिम में अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान से इसकी सीमा लगती है तो उत्तर में नेपाल, चीन व भूटान से, पूर्व में म्यानमार। दक्षिण में श्रीलंका से पाक जलडमरूमध्य तथा मत्रार की खाड़ी इसकी सीमा बनाती है। सबसे लम्बी सीमा 4096 किमी बांग्लादेश के साथ तथा सबसे कम सीमा अफगानिस्तान के साथ 80 किमी पड़ती है।

18.5.1 भारत – चीन सीमा (The Indian - Sino Border)

चीन के साथ भारतीय सीमा की लम्बाई 3917 किर्मा है जो संपूर्ण थल सीमा की लग भग 26% है। जम्बू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम एव अरूणाचल प्रदेश राज्य की सीमा चीन से लगती है (चित्र 18.1)। यह सीमा मान्चू नीति, चीनी रिपब्लिक नीति एव ब्रिटिश नीति का परिणाम है। चूँकि इस सीमावर्ती क्षेत्र की स्थलाकृति ऊँचे – ऊँचे पहाड़ों और कठोर जलवायु

वाली है। इसलिए धरातल पर सीमा का सीमांकन करना नामुमकिन था अत : सोमा को मानचित्र पर सीमांकित किया गया। भारत की स्वतंत्रता के बाद। अक्टूबर 1949 तक जब समपंथियों ने चीन का अधिग्रहण किया, सीमा शान्तरही। 1954 में भारत ने तिब्बत पर अपने अतिरिक्त क्षेत्रीय अधिकार छोड़ दिये और औपचारिक रूप से तिब्बत पर चीन की सम्प्रभुता को मान्यता देनें से सम्पूर्ण हिमालय क्षैत्र के भू –सामरिक महत्व में बदलाव आया। चीन और भारत के बीच तिब्बत का बफर जोन के रूप में अस्तित्व समाप्त हो गया। फलस्वरूप भारत और चीन के मध्य सीमा स्थापित हौ गयी।

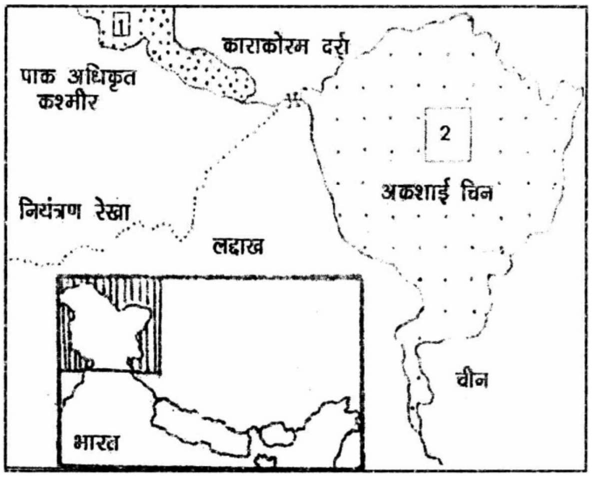

चित्र-18.1: भारत चीन सीमा (पश्चिमी क्षेत्र)

भारत चीन सीमा विवाद : चीन ने 1954 – 59 में उत्तर प्रदेश सीमा के मध्यवती भाग में तथा वर्ष 1956 –57 में लद्दाख क्षेत्र में अक्साईचिन सड़क का निर्माण करके चीन ने अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का उत्क्रमण किया। अक्टूबर 1959 में चीन सेना ने सॅमा पर व्यापक आक्रमण किये और कालान्तर में सन् 1962 में सम्पूर्ण उत्तरी सीमा पर व्यापक आक्रमण करके सीमान्त क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। तभी से आज तक भारत व चीन के मध्य सीमा विवाद का कोई स्थाई हल नहीं निकला। सम्पूर्ण सीमा क्षेत्र के भौगोलिक कारणों का सूक्ष्म विश्लेषण करने के लिए भारत चीन सीमा को तीन भागों में बांटा जा सकता है –

(i) **पश्चिमी भाग :** इस भाग में भारत–चीन सीमा 2152 किमी लम्बी है जिसका विस्तार पाक अधिकतर कश्मीर से लेकर लद्दाख, गिलगिट, हूंजा क्षेत्र तक हैं (चित्र 18.1)। इस क्षेछमें लगभग 42555 वर्ग किमी क्षेत्र पर चीन का दावा है। प्राय : वीरान व भारत के लिए सीमान्त उपयोग का क्षेत्र होने के कारण लद्दाख के विकास का ध्यान नहीं दिया गया। यहीं से होकर चीन ने अक्साईचिन सड़क का निर्माण किया और सर 1962 के युद्ध में लद्दाख क्षेत्र के 38000 वर्ग किमी भू –भाग पर चीन ने आधिपत्य कर लिया।

(ii) **मध्य भाग :** हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड से लगी हुई सीमा की लम्बाई 625 किमी है। यह सीमा चू, पारा, सतलज, काली, अलकनन्दा एवं भागीरथी के मध्य जल विभाजक द्वारा निर्धारित है। चीन इस क्षेत्र में लगभग 1300 वर्ग किमी क्षेत्र पर अपना दावा करता है। अभी भी बाडा होती दर्रे तथा अन्य क्षेत्रों पर चीन का नियंत्रण है।

(iii) **पूर्वी भाग :** भारत के पूर्व में सिक्किम व अरूणाचल प्रदेश में चुम्बी घाटी से लेकर तुला दर्रे तक 1140 किमी लम्बी सीमा है। यह सीमा ब्रह्मपुत्र के उत्तरी जल विभाजक और हिमालय के सर्वोच्च शिखरों के सहारे आधारित है। इस भाग में 95000 वर्ग किसी क्षेत्र पर चीन अपना दावा करता है और मेकमोहन रेखा को गैर कानूनी करार देता है। 1962 के युद्ध के बाद आज भी बहुत अधिक क्षेत्र पर अनधिकृत कब्जा किये हुये है (चित्र– 18.2)।

वर्तमान समय में परिवर्तनशील विश्व के राजनोतिक परिप्रेक्ष में दोनों देश एक दूसरे के निकट आ रहे है। दोनों के बीच सीमा विवाद एक अहम मुद्दा है। इसलिए हिमालय क्षेत्र की सम्पूर्ण भौतिक, परम्परागत एवं सामाजिक विशेषताओं को ध्यान में रखकर सीमांकन होना चाहिए।

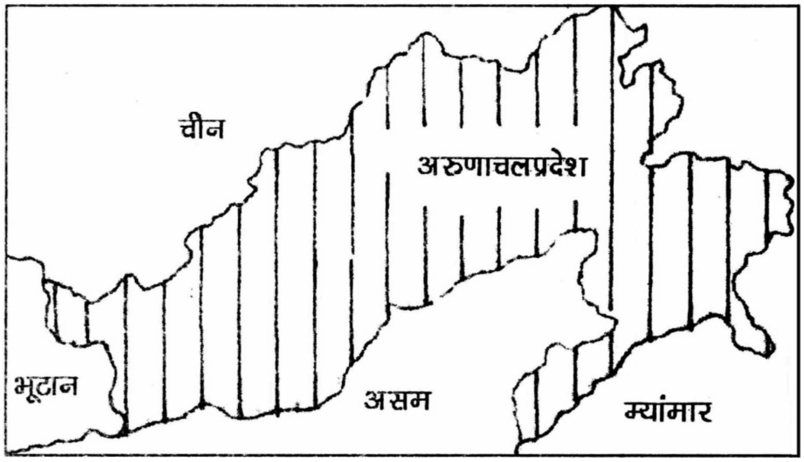

चित्र –. 18.2 : भारत चीन सीमा (पूर्वी क्षेत्र)

18.5.2 भारत – पाक सीमा (Indo - Pak Border)

सन, 1947 में भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन के समय रेड क्लिफ द्वारा भारत –पाक सीमा काःनिर्धारण किया गया। यह सीमा विविध भौगोलिक विशेषताओं वाले क्षेत्र से गुजरती है। कच्छ के रन से प्रारम्भ होकर राजस्थान के रेतीले मरूस्थल से होती हुई पंजाब के उपजाऊ मैदान और जम्मू कश्मीर में हिमालय की ऊँची पर्वत क्षुखलाओं तक विस्तृत है (चित्र – 18.3)।

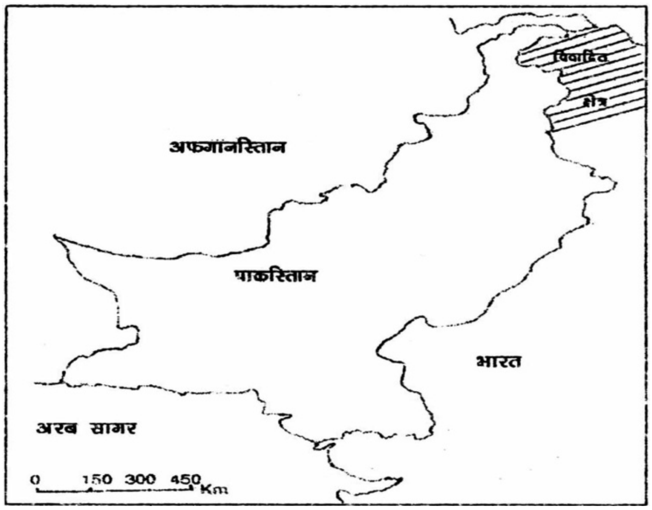

चित्र-18.3:भारत पाक सीमा

भारत पाक सीमा विवाद : विभाजन के समय से ही भारत –पाकिस्तान के बीच सीमा समस्या अभी तक बनी हुई है। इस सीमा सरक्रिक एवं सियाचिन ग्लैशियर विवाद प्रमुख है –

(i) **कश्मीर समस्या :** जम्मू कश्मीर राज्य का क्षेत्रफल 2, 22, 236 वर्ग किमी है जौ मुख्यत : 6 क्षेत्रों मैं विभक्त है। प्रथम, प्रमुख क्षेत्र कश्मीर घाटी है जो मुख्यत : मुरिलेम बाहुल्य हैं यहाँ के कश्मीरी पण्डित परम्परागत रूप से आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सत्ता के केन्द्र रहे हैं, जबकि मुस्लिम बाहुल्य जनसंख्या गरीब व शोषित है। दूसरा क्षेत्र, कश्मीर घाटी के दक्षिण मे जम्मू क्षेत्र है जो राज्य के 1/7 वे क्षेत्र पर विस्तृत हे और हिन्दू बाहुल्य है। तीसरा क्षेत्र विशाल बजर चट्टानी पठारी क्षेत्र लद्दाख है जो राज्य के एक तिहाई भाग पर फैला है। यहाँ तिब्बती बौद्ध धर्म के अनुयायियों का आधिपत्य है। चौथा क्षेत्र, राज्य के उत्तर में गिल–गिट पहार्डी क्षेत्र मुस्लिम बाहुल्य है। इस क्षेत्र में श्रीनगर से ऊंचे पहाड़ों एवं ग्लेशियरों का पार करके पहुँचा जा सकता है। राज्य के उत्तरी छोर पर बल्तिस्तान पांचवाँ क्षेत्र है जौ उच्च पर्वत श्रेणियों से युक्त मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र सिन्धु नदी के सहारे सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है। छठा क्षेत्र रख, कश्मीर घाटी के दक्षिण–पश्चिम में पाकिस्तान से सुगम्य मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र है अत. राज्य में बहुत –अधिक सांस्कृतिक विविधता है।

पाकिस्तान का कश्मीर पर दावा मुख्यत : धार्मिक व आर्थिक आधार पर है। वह मुस्लिम बाहुल्य राज्य पाकिस्तान से सटा हुआ एवं कई स्थानों से सड़क मार्गों द्वारा जुड़ा हुआ है। पाकिस्तान की कृषि व्यवस्था यहाँ से होकर बहने वाली चार नदियों चिनाब, रावी. झेलम व सिन्धु पर आधारित है। पाकिस्तान ने संयुक्त राष्ट्र संघ के जनमत संग्रह के प्रस्ताव को स्वीकार किया और उसे कश्मीर समस्या का एक मात्र हल माना। भारत कश्मीर पर अधिकार मानते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव अनुसार पाक अधिकृत कश्मीर से पाक सेना हटाने पर दबाव डाल रहा है।

भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है और धर्म के आधार पर कश्मीर का समर्थन भारत के सिद्धान्तों के खिलाफ है। चीन को दृष्टिगत रखते हुए कश्मीर की सामरिक स्थिति भारत के लिए महत्वपूर्ण है। कश्मीर के तत्कालीन महागज हरिसिंह ने 26 अक्टूबर 1947 में कश्मीर को भारत का हिस्सा बनाने की सहमति दे दी थी और तभी से पाकिस्तान यहाँ की मुस्लिम जनता की भावना के साथ छल व धोखा मानकर कश्मीर पर वर्ष 1948, 1965, 1971 और 1999 में भारत के साथ युद्ध कर चुका है। युद्ध मे भारत को नहीं हरा पाने के कारण राज्य की शान्ति भंग करने के लिए घुसपैठ, तस्करी और आतंकवाद फैला रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण रेखा पर लगभग एक लाख भारतीय जवान तैनात हैं जो भारत की सम्प्रभुता व अखण्डता की रक्षा करने के लिए सदैव तत्पर हैं। आज 6 दशक पश्चात् भी कश्मीर समस्या जहाँ की तहाँ बनी हुई है।

(ii) **सियाचिन ग्लेशियर विवाद :** सियाचिन ग्लेशियर 75 किमी लम्बा तथा 2 से 8 किमी चौड़ा है जो कि काराकोरम के निकट है। यह समुद्रतल से 58०० मीटर ऊँचा है जहाँ औसत तापमान– 50°c रहता है। चीन व पाकिस्तान को जोड़ने वाला काराकोरम राजमार्ग इसके काफी निकट है, जो इसके सामरिक महत्व को दर्शाता है। इसके दो तिहाई क्षेत्र पर भारत का अधिकार हैं सियाचिनग्लेशियर पर जब पाकिस्तान ने जापानी पर्यटकों को स्कीइंग की

अनुमति दी, तब से यह एक विवाद व आकर्षण का केन्द्र बन गया। 3 अप्रेल, 1984 में भारत में 'ऑपरेशन मेघदूत' प्रारम्भ किया और तभी से विषम पर्यावरणीय दशाओं में भी दोनों देशों की सेना यहाँ चौकसी के लिए तैनात हैं

(iii) **सरक्रकि विवाद :** भारत में गुजरात एवं पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त के मध्य सरक्रकि द्वारा सीमा बनायी गयी है (चित्र– 18. 4)। यह क्रीक सामुदायिक जीवन की दृष्टि से समृद्ध है; इसी कारण दोनों देशों के मध्य विवाद का कारण है। भारत इस क्रीक के मध्य को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के तौर पर मानता है, जबकि पाकिस्तान इसके पूर्वी तट को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के तौर पर मानता है अत : पाकिस्तान भारत के क्षेत्र में 4० किमी अन्दर तक के भाग पर अपने अधिकार का दावा करता है।

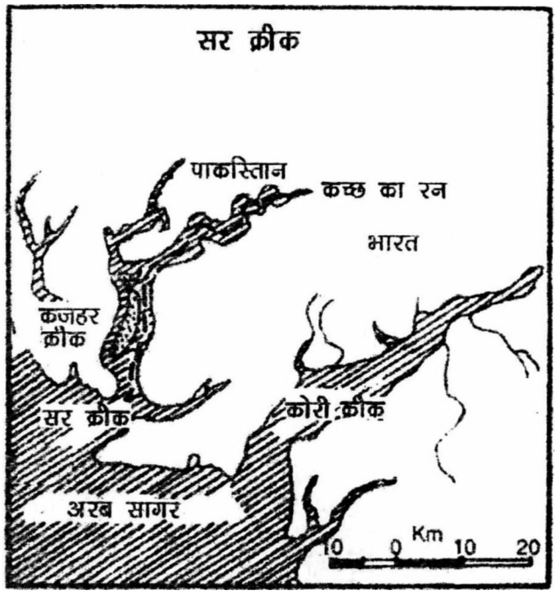

चित्र–18.4:सर क्रीक क्षेत्र

भारत बांग्लादेश सीमा (Indo–Bangladesh Border)

बांग्लादेश के मध्य 3910 किमी लम्बी सीमा है। इसमें से 2450 किमी धरातल पर सीमांकित है (चित्र – 18. 5)। यह सीमा भी रेड़क्लिक द्वारा विभाजन के समय प्रस्तावित की थी। भारत बांग्लादेश सीमा पर चार क्षेत्रों पर दोनों का विवाद है –

(i) प्रथग विवाद राजशाही (बांग्लादेश) और मुर्शीदाबाद (भारत) के मध्य गंगा नदी के तटों का बार–बार मार्ग बदलना है। इस विवाद का फैसला भारत के पक्ष में हुआ और जिले की उत्तरी सीमा को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा मान लिया गया।

(ii) दूसरा विवाद करीमपुर (भारत) और दौलतपुरा (बांग्लादेश) के मध्य था, जहाँ रेडक्लिक प्रस्ताव में संशोधन कर मातामंगा नदी के बीच से सीमा रेखा मानी गयी। फलस्वरूप बांग्लादेश को 13 वर्ग किमी क्षेत्र का लाभ हुआ।

(iii) तीसरा विवाद बांग्लादेश के सिलहट जिले और भारत के गारो, खासी ओर जयन्तिया हिल जिलों के मध्य था। यह एक सघन वनाच्छादित प्रदेश है और सीमा को धरातल पर सीमांकित करना नामुमकिन था अत : रेड क्लीफ प्रस्ताव को ही मानते हुए भारत की जीत हुई।

(iv) चौथा विवाद सीमा पर बडीसारी व गोविन्दपुर के मध्य है जहाँ अप्रेल 2001 में बांग्लादेश राइफल्स ने पीरदीवाह गांव जबरदस्ती घुसकर 18 सीमा सुरक्षा बल के जवानों की हत्या कर दी थी। इससे क्षेत्र में काफी तनाव उत्पन्न हो गया।

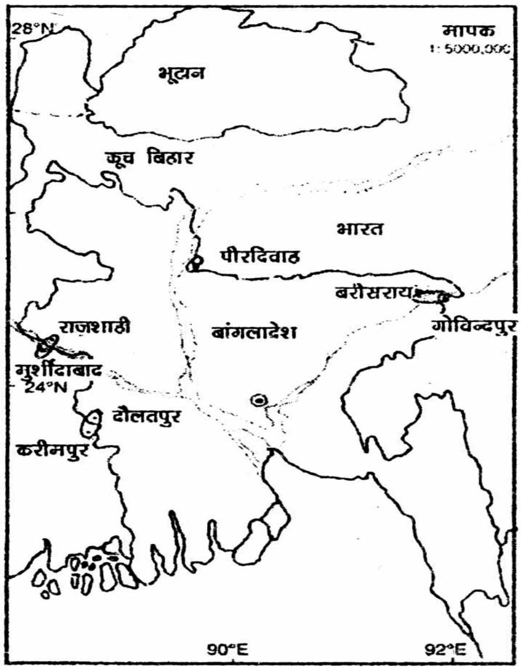

चित्र-18.5:भारत बांग्लादेश सीमा

18.5.3 भारत–नेपाल सीमा (Indo–Nepal Boeder)

भारत –नेपाल की सीमा 1752 किमी. लम्बी है जो उत्तराखण्ड, उत्तरप्रदेश, प. बंगाल एव सिक्किम राज्यों की सीमा को छूटती है वर्तमान सीमा 1858 में सीमांकित हुई थी। तब से दोनों देशों के मध्य सीमा को लेकर कोई विवाद नहीं है।

18.5.4 भारत– भूटान सीमा (Indo–Bhutan Border)

भारत – भूटान सीमा सन् 1975 से चले लम्बे विवाद के बाद 1865 में भूटान व ग्रेट ब्रिटेन के मध्य 'संचुला ' में हुई एक संधि के द्वारा निश्चित की गयी। ब्रिटेन ने बंगाल का समीपवर्ती भूटानी क्षेत्र, कूच बिहार एवं असम की सीमावर्ती क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। इर संधि के द्वारा भूटान को 50,000 रूपये वार्षिक अनुदान ब्रिटेन –द्वारा दिये गये, जो जून 1911 में एक लाख कर दिया गया।

भारत –'पूटान के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध 1949 की संधि पर आधारित है जिसमें चिर शान्ति एवं मित्रता सुनिश्चित करने की एक ठोर रूपरेखा प्रदान की गयी है। इस संधि के तहत भारत को भूटान की सम्प्रभुता की रक्षा का अधिकार प्राप्त है और इसकी सीमाओं की रक्षा के लिए भारतीय सेना की यूनिटों को भूटान –तिब्बत सीमा पर स्थायी रूप से तैनात कर रखा है।

18.5.5 भारत म्यांमार सीमा (Indo–Myanmar Border)

भारत –म्यांमार सीमा 1450 किमी लम्बी है जो उत्तर में भारत –चीन –म्यांमार त्रिसंयोजी बिन्दु से होकर मिजोरम के दक्षिणी सिरे तक विसतत है (चित्र – 18. 6)। यह सीमा ब्रहपुत्र व इरावदी नदियों के जलग्रहण क्षत्रों के सड़ारे –सहारे गुजरती है। यह सीमा अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर एवं मिजोरम राज्यों की सीमाओं के सहारे सघन वनाच्छादित पहाडियों से गुजरती है। यह सीमा रेखा 10 मार्च 1967 को हुई संधि द्वारा निर्धारित है, परन्तु भारत –चीन म्यांमार त्रिसंयोजी के समीप दीफू दर्रे को लेकर कुछ कठनाई है। भारत 'का दावा है कि दीफू दर्रा त्रिसंयोजी के पास न होकर इससे कुछ दूर दक्षिण में है।

भारत – म्यांमार सीमा क्षेत्र में उग्रवाद व तस्करी की मुख्य समस्याएँ है। म्यांमार के क्म्युनिस्ट सहायता और प्रोत्साहन दे रहे हैं। साथ ही नशीले पदार्थों एवं दवाओं की तस्करी कर रहे हैं। कुछ छोटी घटनाओं को छोडकर भारत – म्यांमार सीमा शान्तिपूर्ण है।

चित्र-18.6:भारत म्यांमार सीमा

18.5.6. भारत–श्रीलंका सीमा (Indo–Srilanka Border)

भारत–श्रीलंका की सीमा समुद्री हैं जो 30 किमी चौड़ी छिछली पाक –जलसंधि द्वारा अलग है (चित्र–18.7)। दोनों के मध्य निकटतम बिन्दु धनुषकोड़ी, तमिलनाडू (भारत) और तलाईमन्नार, जाफना (श्रीलंका) है। ऐतिहासिक दृष्टि से भारत– श्रीलंका सीमा आमतौर पर शान्तिपूर्ण रही है।

हालांकि पाक जलसंधि में काछीतेयु द्वीप के स्वामित्व को लेकर कुछ कड़वाहट हुई थी, परन्तु 1974 में भारत ने इसे श्रीलंका को देने से मधुर सम्बन्ध हो गये। यह समुद्री सीमा श्रीलंका के तमिलों के लिए एक अलग देश की मांग से लिट्टे विद्रोहियों के कारण जीवंत हो गयी है।

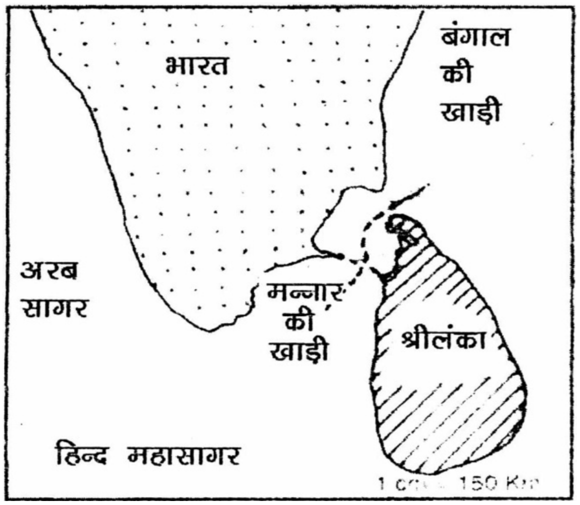

चित्र-18.7:भारत श्रीलंका सीमा

बोध प्रश्न–2

1. क्षेत्रीय चेतना किस प्रकार लाभदायक है?

....

....

2. 1960 में महाराष्ट्र व गुजरात तथा 1966 में पंजाब व हरियाणा के निर्माण का आधार क्या था?

....

....

3. छोटे राज्य किस प्रकार लाभदायक हैं?

....

....

4. राष्ट्रीय एकता से क्या अभिप्राय है?

....

....

5. भारत की सबसे लम्बी एवं छोटी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा किन देशों की है?

....

....

6. भारत –चीन सीमा को किस प्रकार सीमांकित किया गया?

....

....

7 भारत – चीन सीमा का विवाद कब से प्रारम्भ हुआ?

....

....

8. भारत –पाक सीमा की भौगोलिक विशेषता बताइये।

....

....

9. भारत–पाक सीमा की पर कोन कोन से क्षेत्रों पर विवाद है?

....

....

10. सियाचिन ग्लेशियर भारत के लिए किस प्रकार महत्वार्ण है?

....

....

11. सरक्रीक क्या हे?

....

....

12. भारत –म्यांमार सीमा पर किस क्षेत्र पर विवाद है।

....

....

18.6 सीमा – पार आतंकवाद (Cross Border Terrorism)

सीमा पार आतकवाद देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए एक अहम मुद्दा है। सीमा पार से संचालित आतकवाद सरकार एवं देश की जनता के लिए अनेक समस्याओं को जन्म दे रहा है। पाकिस्तान कई वर्षो से भारत विरोधी दृष्टिकोण को ध्यान में रकर आंतकवाद को एक हथियार के रूप में प्रयोग कर रहा है। आई.एस.आई. के माध्यम से भारत की आंतरिक सुरक्षा को चुनौती देना इसका प्राथमिक केन्द्र हो गया हैं आतंकवाद भाग की सीमाओं के भीतर कम तीव्रता का संघर्ष कहा जा सकता है। यदि आतंकवाद 'शान्तिकबाल समतुल्य युद्ध अपराध ' के रूप मे है। तो यह कम तीव्रता के संघर्ष क्षेत्र भारत के मुख्य आतंकवाद के क्षेत्र हैं। आज जम्मूकश्मीर, मध्य भारत (नक्सलवाद) और सात बहिन राज्य (उ.पू. के स्वतंत्रता व स्वायतता आन्दोलन) लम्बे समय से आतंकवादी गतिविधियों के क्षेत्र है। अतीत में पंजाब के उग्रवादी आन्दोलन ने पंजाब व दिल्ली में आतंकवाद घटनाओं को बल दिया है।

जम्मू व कश्मीर में आतंकवाद जम्बू कश्मीर में विभिन्न रूपों में हिंसा जारी है। 1989 के बाद से ही तीव्र विद्रोह के कारण हजारों जाने चली गयी है। इस सीमा पार आतंकवाद के पीछे पाक अधिकृत कश्मीर के अलगाववादी आतककारी संगठन कार्यरत हैं। हुरियत नेता और जम्मू कश्मीर लिब्रेशन फ्रन्ट स्वतंत्र कश्मीर चाहते हैं, जबकि लश्कर –ए–तैयबा व जैस –ए–मौहम्मद कश्मीर का विलय पारिकस्तान में चाहते हैं। इन आतंकवादी संगठनों के तार तालिबान और ओसामाबिन लादेन से जुड़े हुए है। अमेरिकी जाँच ऐजेन्सी कश्मीर में आतंकवादी घटनाओं के पीछे पाकिस्तान

जमीन से अलकायदा को मानती है। जम्बू कश्मीर में सीमापार आतंकवाद से कुल हताहतों की संख्या का अनुमान लगाना कठिन है। भारत सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार सन् 2000 में 31, 000 भारतीय नागरिकों को जीवन गंवाना पड़ा, जबकि मानवाधिकार संगठन एवं स्थानीय गैर सरकारी संगठनों के अनुसार वर्ष 2005 तक 84000 नागरिकों को जाने गयी। आतंक्कारियों के प्रशिक्षण शिविर पाक अधिकृत कश्मीर में संचालित हो रहे है, जिन्हें पाकिस्तानी सेना की मदद भी मिल रही है। इन आ नृककारियों से निपटने के लिए भारतीय सेना व अर्द्धसैनिक बलों की अनेक इकाईयाँ कश्मीर में तैनात है। पाकिस्तान समर्थित सीमा पार आतंकवाद से अधिकतर कश्मीरी मुसलमानों की जाने गयी है, जिससे उनके परिजनों को निम्न स्तर का जीवन यापन करना पड़ रहा है।

पंजाब मे आंतकवाद: जरनेल सिंह भिण्डरवाले के नेतृत्व में खालिस्तान की मांग बुलन्द हुई थी जिससे पंजाब व दिल्ली में आंतककारी घटनाओं मैं वृद्धि हुई थी। इन आंतकारियों को पाकिस्तान का समर्थन प्राप्त था। 1984 में ' ऑपरेशन ब्लू स्टार ' के माध्यम से आनतंकवाद का दमन किया गया, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के अग रक्षकों ने उनकी हत्या कर दी ' इसरेह बाद दिल्ली में हिदु सिख दंगों में 2000 सिखों को अपना जीवन गंवाना पड़ा।

नयी दिल्ली में आतंकवाद: सितम्बर 2002 में भारतीय संसद पर आतंककारियों का हमला भारतीय प्रजातंत्र के मनोबल को ध्वस्त करने की नाकाम कोशिश पाकिस्तान समर्थित कश्मीरी उग्रवादियों ने की थी।

उत्तर प्रेरश : 5 जुलाई, 2005 को अयोध्या में बाबरी मस्जिद राम जन्म भूमि मन्दिर परिसर में पाकिस्तान समर्थित लश्कर –ए–तैयबा के आतंकवादी घुस गये पुलिस के साथ घण्टो चली मुठभेड़ में 6 आतंकवादी ढेर हो गये। समझा जाता है

कि इन उग्रवादियों को दाउद इब्राहिम ने आर्थिक रूप से मदद की थी। 7 मार्च, 2006 को वाराणसी में एक क्रमबद्ध क्षंखला में कई विस्फोट हुए जिसमें 15 व्यक्ति मारे गये एवं 101 घायल हुए पीछे भी पाक समर्थित लश्कर–ए–तैयबा का हाथ था।

मुम्बई: 26 नवम्बर, 2008 को पाकिस्तानी आतंकवादी समुद्र के रास्ते से मुम्बई में प्रविष्ट हुए और ताज होटल, नारीमन हाउस एंव रेल्वे स्टेशन पर हमल। बोल दिया। लगभग 2 दिन चली इस मुठभेड़ में कई आतंककारी ढेर हुऐ और मोहम्मद कसाब जिन्दा पकड़ा गया जिस पर भारतीय कानून के तहत मुकदमा चल रहा है।

पूर्वोत्तर राज्यों में आंतकवाद : भारत के पूर्वोत्तर राज्यों असम, मिजोरम, नागालैण्ड एव त्रिपुरा में अलगाववादी तत्व आतंक फैलाकर क्षेत्र में अस्थिरता पैदा कर रह हैं। असम में बोडो वं उल्फा संगठन क्षेत्र में बांग्लादेशी घुसपेठियों के विरोध मं स्वायतता की मांग कर रहे हैं और भारतीय सेना में छद्म युद्ध करते हैं। मणिपुर में पीपुल्स लिब्रेशन आर्मी म्यांमार की मैतेई जनजाति क्षेत्र को मणिपुर में मिलाकर एक स्वतंत्र रागच की मांग करता है। इसी प्रकार मिजोरम और नागालैण्ड वृहद प्रदेशों की मांग की जा रही है। माना जाता है कि पूर्वोत्तर राज्यों में उग्रवादियों को सीमापार से सहायता मिल रही है।

18.7 विश्व मामलों मे भारत की भूमिका (Indians Role in world Affairs)

भारत विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से दसूरे पायदान पर है और यहाँ की तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था की दृष्टि से इसे एक उभरती हुई महाशक्ति के रूप में देखा जा रहा है। विश्व मामलों मे भारत का बढ़ता हुआ अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव का प्रमुख स्वर के रूप में माना जाता है। भारत का अनेक देशों से सहयोग का दीर्घकालीन इतिहास है जब से विकाशील देशों को नेइत्व प्रदान कर रहा है। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ और गुट निरपेक्ष आन्दोलन का संस्थापक सदस्य रहा है और विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का सक्रिय सदस्य है। शीतयुद्ध के दौरान भारत ने गुटनिरपेक्ष की नीति को अपनी विदेशी नीति को शामिल करते हुए तटस्थ भूमिका निभाई लेकिन सौ. संघ के साथ इसकी निकटता से भारत ने रूस से अत्यधिक सैन्य सहायता प्राप्त की। शीत युद्ध की समाप्ति ने जिस प्रकार विश्व को प्रभावित किया उसी प्रकार की विदेश नीति पर भी इसका व्यापक असर पड़ा। अत : भारत अब अमेरिका, चीन, यूरोपीय संघ, जापान, इजराइल, लैटिन अमेरिका एवं दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों से कूटनीतिक एवं आर्थिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करना चाहता है। रूस के साथ भी भारत के मजबूत सैन्य सम्बन्ध है

भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के शान्ति अभियानों में सक्रिय भूमिका अदा की है तथा उसके शान्ति अभियानों को सर्वाधिक सैन्य सहायता प्रदान की है। वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में स्थायी शीट की मांग रखी है। भारत की बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था, सामरिक स्थिति, मैत्रीपूर्ण विदेशी नीति जैसे गुणों से दुश्मनी की अपेक्षा मित्र देशों की संख्या में वृद्धि हुई है। हालांकि भारत किसी भी बड़े सैन्य गठबन्धन का हिस्सा नहीं है, लेकिन विश्व की बड़ी शक्तियों से इसके मधुर सामरिक एवं सैन्य सम्बन्ध है। भारत के नजदीकी सहयोगी देशों में रूसी संघ के देश, इजराइल, भूटान, नेपाल, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस एवं जापान के साथ घनिष्ठ सम्बंध बनाये है भारत ने विकासशील देशों द. अफ्रीका, ब्राजील, मैक्सिको, चीन आदि के साथ मिलकर विश्व आर्थिक मंचो पर विकासशील देशों के हितों का प्रतिनिधित्व किया है।

भारत के खाड़ी देशों के साथ भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध है। द.पू. एशियाई देशों के साथ आर्थिक व सामरिक भागीदारी विकसित करने में भारत की 'पूर्व की ओर देखो' विदेशी नीति ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत ने 1985 में अपने पड़ौसी के साथ मिलकर सार्क संगठन (SAARC) की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य सदस्य देशों के बीच कृषि, ग्रामीण विकास, व प्रौद्योगिकी, संस्कृति, स्वास्थ्य, जनसंख्या नियंत्रण, नशीले पदार्थों की तस्करी पर नियंत्रण और आतंकवाद के खिलफ एक दूसरे का सहयोग प्रदान करना था।

हिन्द महासागर तीन ओर स्थल से आबद्ध होने के कारण प्रकृति ने भारत को एक समादेशक स्थिति प्रदान की है जिससे भारत एक महान भू–_राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक महत्व का केन्द्र बना है। हिन्द महासागर में कई संकरे जल संयोजी मार्ग हैं जिनसे विश्व व्यापार संचालित होता है। इन मार्गों को खुले एवं नियंत्रण मुक्त रखने के लिए भारत ने समय–समय पर महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

बोध प्रश्न– 3

1. शान्ति समतुल्य युद्ध अपराध ' किसे कहा जाता है।

....

....

2. भारत में सीमा पार आतंकवाद के प्रमुख क्षेत्र कौन–कौन से है?

....

....

3. आतांकारियों के प्रशिक्षण शिविर कहाँ आयोजित हो रहे है?

....

....

4. असम मे बोड़ों व उल्फ़ा सांगनों आंदोलनरत क्यों है?

....

....

5. शीत युद्ध के दोरान राजनीति मे भारत भूमिका कसी रही?

....

....

6. संयुक्त राष्ट्र संघ के शान्ति प्रयासों में भारत की भूमिका का उल्लेख कीजिए?

....

....

18.8 सारांश (Summary)

किसी भी देश के राजनीतिक परिदृश्य के लिए भौगोलिक दशा का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। विभिन्न क्षेत्रीय इकाईयाँ अपनी परम्परा, सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से अलग अस्तित्व रखते हुए किसी एक केन्द्रीय सत्ता के नियंत्रण में रहती है तो उसे संघीय व्यवस्था का नाम दिया गया है। विश्व में संघवाद प्राचीन काल से ही प्रचलित है। भारत में विभिन्न राज्यों व रियासतों को एक सूत्र में आबद्ध करने के लिए संघीय व्यवस्था उपादेय सिद्ध हुई है। विभिन्न भौगोलिक विभिन्नताओं के कारण देश की राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए संघवाद अपरिहार्य था। लोकतांत्रिक व्यवस्था, राजनीतिक प्रबन्धन, समग्र विकास भागीदारी, स्थानीय जवाबदेही एवं राष्ट्रीय एकता की भावना के विकास के लिए संघवाद अत्यावश्यक है।

भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सीमा में 15200 किमी थल सीमा है जो चीन, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, म्यांमार एवं श्रीलंका से लगती है। भारत–चीन के मध्य लद्दाख क्षेत्र, उत्तराखण्ड एवं अरूणाचल एवं प्रदेश की सीमा के कुछ क्षेत्रों को लेकर विवाद है। भारत–पाक सीमा पर कश्मीर, सियाचिन एवं सरक्रकि को लेकर काफी समय से विवाद चल रहा है। पाकिस्तान घुसपैठ, तस्करी, नकली करेन्सी, आतंकवाद आदि माध्यमों से भारत की आन्तरिक सुरक्षा में सेंध लगाकर दबाव में कश्मीर को प्राप्त करना चाहता है

भारत में सीमापार से पाक समर्थित छद्म युद्ध आतंकवाद के रूप 'शान्तिकाल समतुल्य युद्ध अपराध ' देश के लिए महत्वपूर्ण समस्या बना हुआ है। विभिन्न आतंककारी संगठनों द्वारा अब तक हजारों निर्दोष लोगों की जान ले ली हैं। पंजाब में उग्रवाद, दिल्ली, वाराणसी व जयपुर में क्रमबद्ध बम्ब विस्फोट, भारतीय संसद पर हमला और हाल ही में मुम्बई में ताज होटल व नरीमन हाउस में बम्ब विस्फोट सीमा पार से संचालित आतंकवाद का परिणाम है।

भारत की बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था ,दक्षिणी एशिया में विशेष भू–राजनीतिक स्थिति, मैत्रीपूर्ण विदेश नीति, विकासशील देशों का नेतृत्व, विशाल जन शक्ति आदि की दृष्टि से इसे एक उभरती हुई महाशक्ति के रूप में आका जा रहा है। विश्व मामलों में सक्रिय भूमिका एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के शान्ति अभियानों में सर्वाधिक सहायता के फलस्वरूप सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के दावे को काफी समर्थन मिल रहा है।

18.9 शब्दावली (Glossary)

- **संघवाद :** विभिन्न क्षेत्रीय इकाईयों को मिलाकर चलायी गयी एक तंत्रीय व्यवस्था।
- **पीरसंधीय** : संघ में सम्मिलित इकाईयों में स्वायतता की भावना।
- **विषमांगी** : विभिन्न प्रकार के गुणों से युक्त।
- **नृवंशीय** : मानव जाति से सम्बन्धित।
- **क्षेत्रीयता** : स्थानीय व्यवस्थाओं के अनुरूप जवाबदेह स्थानिक राजनीतिक भागीदारी की।
- **सानुकूल्य** : विविधताओं मैं सभी के अनुकूल एक स्थिति।
- **भू–सामरिक** : सुरक्षा रख सैन्य व्यवस्था के लिए उपयुक्त धरातलीय स्थिति।
- **सीमान्त क्षेत्र** : दो देशों की सीमा के आस–पास का कुछ किमी क्षेत्र।
- **त्रिसंयोजी** : तीन देशों की सीमाओं का मिलन बिन्दु।
- **जल संधि** : दो स्थलीय भागों के मध्य संकड़ा महासागरीय भाग।
- **सात बहिन राज्य** : पूर्वोत्तर भारत के सात राज्यों का समूह।
- **समादेशक** : सैन्य नेतृत्व प्रदान करने वाला।

18.10 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. पी. आर. चौहान रख महात्तम प्रसाद : **भारत का वृहद भूगोल**, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर,। 2005
2. बंसल, सुरेश कुमार : **भारत का वृहद भूगोल**, साहित्य भवन, आगरा, 2006
3. गुर्जर, राम कुमार एवं जाट, बी सी. : **भारत का भूगोल**, पंचशील प्रकाशन, मेरठ, 2008
4. Gautan,Alka: **Geography of India**, Rartogi publications, Metrth,2007
5. Hussan, Mazid: **Geography of India**, Rawat Pudlications, New Delhi, 2007
6. दीक्षित, श्रीकांत : **राजनीतिक भूगोल**, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, 1997
7. चौहान, पी. आर. **राजनीतिक भूगोल**, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1995

18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. विभिन्न राजनीतिक इकाईयाँ अपनी परम्परा, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अस्तित्व रखती हुई आपस में मिलकर एक राज्य का निर्माण करती है, तो उसे संघीय राज्य कहते है।
2. भारत पारस्परिक समझौतों पर आधारित संघीय राज्य है।
3. संघवाद का स्वरूप विभिन्न इकाईयों की भौतिक, सामाजिक एवं धार्मिक विशेषताओं एवं उनके सामन उद्देश्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है।
4. संघीय व्यवस्था पिछड़े क्षेत्रों में विशेष योजना द्वारा विकास का आधार प्रदान कर आर्थिक असमानताओं को कम करने में सक्षम होती है।
5. स्वतंत्रता से पूर्व अनेक राज्य व रियासतों का अस्तित्व संघवाद में सहायक रहा।

बोध प्रश्न – 2

1. लोकतांत्रिक आवश्यकता, राजनीतिक प्रबन्धन, स्थानीय भागीदारी, क्षेत्र के समग्र विकास एवं राष्ट्रीय एकता के लिए क्षेत्रीय चेतना लाभदायक है।
2. भाषा।
3. जवाबदेही, लोकतांत्रिक भागीदारी एवं प्रशासनिक प्रबन्धन की दृष्टि से।
4. राष्ट्रीय एकता से अभिप्राय समन्वय, सह – अस्तित्व, सहचर्य भाव एवं अनुशासित एकजुटता से है।
5. भारत की सबसे लम्बी सीमा 4096 किमी बांग्लादेश के साथ एवं सबसे कम अफगानिस्तान के साथ 80 किमी है।
6. मानचित्र पर सीमांकित किया गया है।
7. 1954 में भारत–चीन के बीच तिब्बत का बफर जोन समाप्त होने के बाद।
8. भारत–पाक सीमा गुजरात में कच्छ के रन से प्रारम्भ होकर राजस्थान में रेतीले मरूस्थल, पंजाब में उपजाऊ समतल मैदान व जम्बू कश्मीर में ऊँची–ऊँची पर्वत श्रंखलाओं से गुजरती है।
9. भारत–पाक सीमा पर कश्मीर, सियाचिन ग्लेशियर एवं सरक्रीक क्षेत्रों पर विवाद है।
10. यह चीन व पाकिस्तान को जोड़ने वाले कराकोरम राजमार्ग के निकट होने के कारण भारत के लए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।
11. गुजरात व सिन्ध प्रान्त के मध्य भारत–पाक सीमा पर स्थल जल संयोजी क्षेत्र है।
12. भारत–म्यांमार सीमा पर दीफू दर्रे को लेकर विवाद है।

बोध प्रश्न – 3

1. सीमा पार आंतकवाद को!
2. जम्मू व कश्मीर, पंजाब, मध्य भारत एवं पूर्वोत्तर राज्य।
3. पाक अधिकृत कश्मीर में।
4. बांग्लादेशी घुसपेठियों के विरोध में स्वायतता की मांग के लिए।
5. गुट निरपेक्ष नीति को अपनी विदेशी नीति में शामिल करते हुए तटस्थ भूमिका निभाई।
6. यू.एन.ओ. शान्ति अभियानों में सर्वाधिक सैन्य सहायता प्रदान की।

18.12 अभ्यसार्थ प्रश्न

1. संघीय राज्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करते हुए भारत में संघवाद के आधारों की विवेचना कीजिये।
2. भारत में प्रादेशिक चेतना एवं राष्ट्रीय एकता की विवेचना कीजिये।
3. भारत–चीन एवं भारत–पाक सीमाओं की भौगोलिक विशेषता बताते हुए इन सीमाओं के विवाद की व्याख्या कीजिए।
4. 'सीमा पार आतंकवाद कम तीव्रता का छद्म संघर्ष है' कथन के संदर्भ में सीमापार आतंकवाद की व्याख्या कीजिये।
5. वैश्विक मामलों में भारत की भूमिका का परीक्षण कीजिये।
6. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये–
   (i) संघीय राज्य के प्रकार
   (ii) संघवाद की संकल्पना
   (iii) भारत–म्यांमार सीमा
   (iv) भारत में राष्ट्रीय एकता

ISBN - 13/978-81-8496-172-0